Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

5.2

उपनिषत्सुधा:

भाष्यकार
पण्डित भीमसेन शर्मा

प्रकाशक -
हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर, रोहतक

CC-0 Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

उपनिषत्समुच्चयः

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्यवर्य्य

श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनां

शिष्येण

पण्डितेन भीमसेनशर्मणा

लोकोपकाराय संस्कृतार्यभाषाभ्यां
व्याख्यातः

यश्च

श्रीयुत्-ओमानन्दसरस्वतीस्वामिनामुद्योगेन

प्राकाश्यं नीतः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक
हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर सोहतक

सृष्टि संवत् १९६०८५३०८२
कलिसंवत् ५०८२
विक्रमसंवत् २०३८
दयानन्दाब्द १५७
प्रथम संस्करण २०००
मूल्य ५० रुपये

मुद्रक
जैयद प्रेस
बल्लीमारान, दिल्ली—६

प्रथम ४ पृष्ठ भाटिया प्रेस, गांधीनगर, दिल्ली में मुद्रित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

प्रकाशकीय वक्तव्य

उपनिषदो की गणना वेदान्तशास्त्र में होती है। इनमें मुख्यतया ब्रह्मविद्या का उपदेश है। आध्यात्मिक, आधिभौतिक और आधिदैविक इस तापत्रय से सन्तप्त मानव के मन और आत्मा में इनके अध्ययन तथा तदनुसार आचरण से शान्ति और आनन्द की प्राप्ति होती है। आज विश्व की बहुल जनसंख्या अर्थ और काम के पीछे अन्धाधुन्ध दौड़ लगा रही है। इसी से सर्वत्र चोरी, डकैती, लूट, हत्या, मारपीट, व्यभिचार, इन्द्रियलोलुपता, भ्रष्टाचार, उत्कोच, अण्डा, मांस, मदिरा, तम्बाकू और चाय आदि अभक्ष्य और अपेय पदार्थों के सेवन का बाहुल्य दृष्टिगोचर हो रहा है। ऐसा मानव समाज यदि कभी और कहीं शान्ति एवं सुख प्राप्त कर सकता है तो वह, वेदानुकूल इन उपनिषदों के अनुसार अपना जीवन निर्माण करके ही प्राप्त कर सकता है अन्यथा नहीं। आज जम्बूद्वीप (एशिया), हरिवर्ष (योरोप) और पाताल (अमेरिका) जैसे विशाल महाद्वीप अशान्ति के अग्नि में जल रहे हैं। धनलिप्सा की होड़ में अतुल धनराशि एकत्र करने पर भी इनके निवासियों को आत्मतोष प्राप्त नहीं हो सका। ये अभी भी शान्ति की कामना से आर्यावर्त्त की मूलभूत पवित्र प्राचीन शिक्षा वेद और उपनिषदों की ओर निहार रहे हैं उनकी सन्तुष्टि के लिये ऋषियों की अमृतमय और शान्तिदायिनी उपनिषदों की शिक्षा हम मानवमात्र तक पहुंचाने का प्रयास कर रहे हैं।

इसी कामना से योगिवर्य्य महर्षि दयानन्द सरस्वती के शिष्य पण्डित भीमसेन शर्मा द्वारा विरचित उपनिषत्समुच्चय हम प्रकाशित कर रहे हैं। १८ फरवरी सन् १९३३ में इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन श्री स्वामी लक्ष्मणानन्द सरस्वती के सत्प्रयास से 'चौधरी एण्ड सन्स,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बनारस' की ओर से जे. पी. चौधरी, संस्कृताध्यापक हाईस्कूल बनारस ने कराया था। उपनिषद् विद्या के प्रेमी जनों के आग्रह को देखते हुये तथा संस्कृत भाषा में उपनिषदो के शुद्ध भाष्य के अभाव की पूर्ति हेतु हमने इस बृहदाकार ग्रन्थ को प्रकाशित करने का गुरुतर भार उठाया है।

यहाँ ईशोपनिषद् में १७ मन्त्र दिये हैं। श्री शंकराचार्य्य ने अपने उपनिषद् में १८ मन्त्रों का भाष्य किया है, उनका पाठ कण्वसंहिता के अनुसार है। इसी प्रकार बृहदारण्यक उपनिषद् का पाठ भी कण्व-संहिता के अनुकूल है। पण्डित युधिष्ठिर जी मीमांसक का ऐसा मत है। इसलिये पृष्ठ ४८ पर उल्लिखित मत से इसका सामञ्जस्य कर लेना चाहिये। शंकराचार्य जी का पाठ भी प्राचीन परम्परा के अनुकूल ही है।

उपनिषदों की संख्या बहुत है। बम्बई से २८ और १२८ उपनिषदें मूलमात्र एकत्र छप चुकी हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती के अनुसार ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य और बृहदारण्यक ये दस उपनिषद् प्रमाणिक हैं। श्वेताश्वतर उपनिषद् के भी प्रमाण उन्होंने दिये हैं, इसी कारण कुछ विद्वान् उसे भी प्रमाण कोटि में गिनते हैं। इस ग्रन्थ में प्रथम आठ उपनिषद् तथा नवमी श्वेताश्वतरोपनिषद् प्रकाशित की गई हैं। आशा है ब्रह्मविद्या के जिज्ञासु महानुभाव इनके पठन-पाठन और आचरण से मानसिक शान्ति प्राप्त कर सकेंगे जिससे चाञ्चल्य दूर होकर ईश्वर भक्ति की ओर झुकाव हो सके।

गुरुकुल झज्जर
मकरसंक्रान्ति
२०३८ विक्रमसंवत्

निवेदक
ओमानन्द सरस्वती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथ-

वाजसनेयोपनिषत्प्रस्तावः ।

ओ३म्--सहनाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्य्यङ्करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

मन्त्रार्थभाषा—हे परमेश्वर सर्वशक्तिमन् ! आपकी कृपा से हम लोग परस्पर निष्कपट शुद्धान्तःकरण से धर्मपूर्वक मिल के प्रीति बढ़ावें । एक दूसरे की सहायता से धर्मयुक्त कार्य्योंका पालन करें तथा विद्या और धर्मसम्बन्धी बल और शारीरिक बल को परस्पर बढ़ाते रहें । और हमलोगों के तीन प्रकार के (आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक) दुःखों की शान्ति हो, जिससे हमलोग सब दुःखों से छूट कर मुक्ति को प्राप्त होवें ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्र०—तावत् प्रयोजनमनभिसन्धाय प्रेक्षावन्तो न प्रवर्त्तन्त इत्यतः प्रयोजनमभिधेयम्। तथा चोक्तम्। "सिद्धार्थं सिद्धसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते। शास्त्रादौ तेन वक्तव्यस्सम्बन्धः सप्रयोजनः" सिद्धो ज्ञातोर्थः प्रयोजनमस्य तत्। प्रयोजनञ्च चैतन्यविशिष्टमात्रस्य सुखसुखहेत्वोरभीप्सा दुःखदुःखहेत्वोश्च जिहासैव प्रतिभाति। ते चोक्ते अभीप्साजिहासे यथायथम्पूर्णप्रकारेण लोकेऽनवगते प्रत्युत विपरीते दृश्येते। यथाऽयञ्जनः सुखाय कर्माणि कुर्वन्नपि सुखन्न लभतेऽपि तु दुःखमपीति तत्र को हेतुरन्यो ह्यविद्यायाः। तन्नाशिका च विद्यैव सा च द्विधाऽपरा परा च तथा चोक्तं मुण्डकोपनिषदि—

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदस्सामवेदोऽथर्वाङ्गिरस इत्यादि—अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते इति॥ सैव परा ब्रह्मसम्बन्धित्वाद्ब्रह्मविद्या शमदमतितिक्षाशान्त्युपरतिध्यानसमाधिरूपा ब्रह्मज्ञानेन संनिकृष्टा। एतस्याश्चाव्यवहितं साधनमुपनिषदोऽत उपनिषच्छब्दवाच्याऽपि पूर्वापेक्षया पराऽस्ति। अत्र परापरशब्दौ प्रधानाप्रधानार्थकौ नैव गृह्येते किन्तु सुखाऽवाप्तिदुःखहान्योः पूर्वं साधनमृग्वेदादिकमपरानाम्ना प्रसिद्धम्। द्वितीयं च परानाम्नोक्तम्। यतः विशरणगत्यवसादनार्थस्य सद्धातोरुपनिपूर्वस्य क्विबन्तस्य रूपमुपनिषदिति तदर्थस्तु ये मुमुक्षवो दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णास्सन्त उपनिषच्छब्दवाच्यां विद्यामुपसद्योपगम्य तन्निष्ठतया निश्चयेन शीलयन्ति तेषामविद्यादेस्संसारबीजस्य विशरणाद्धिंसनाद्वि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महर्षि पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथि.....
पु०सं०.1657
भारती पुस्तकालय

नाशनादित्यनेनार्थयोगेन ब्रह्मविद्योपनिषदित्युच्यते—तथा चोक्तम्—निचाय्य तम्मृत्युमुखात्प्रमुच्यत इति। अथ च यां विद्यामाश्रित्य मुमुक्षवो ब्रह्म गच्छन्तीति ब्रह्मप्राप्तिसाधनैकहेतुयोगाच्च ब्रह्मविद्योपनिषत् तथा च या विद्या क्लेशकर्मविपाकानुभवनिर्म्मिता दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानप्रवर्त्तिका अनादिकालसञ्चिता वासना अवसादयति शिथिलीकरोतीति दुःखबन्धनशैथिल्यापादनेनार्थत्रितयेनापि ब्रह्मविद्योपनिषदिति स्थितम्। उक्तयोश्च दुःखजिहासासुखाभीप्सयोर्ब्रह्मविद्यामन्तरेण सिद्धिर्नैव सम्भवति सर्वदुःखविमुक्तब्रह्मणो ज्ञानादेव तयोः सम्भवात्। तरति शोकमात्मविदित्यादिश्रुतेः ब्रह्म च वेदैकवेद्यम्। सर्वे वेदा यत्पदमामनन्तीत्यादिश्रुतेः। तत्र कर्मकाण्डे परम्परातो ब्रह्म प्रतिपाद्यते। उपासनाज्ञानकाण्डयोश्च मुख्यतया साक्षादेव ब्रह्म प्रतिपादितम्। तन्त्वौपनिषदं पुरुषं व्याख्यास्याम इति प्रामाण्यात् तत्र चोपनिषच्छब्दवाच्यं वेदसिद्धान्तानुकूलं वेदान्तशास्त्रमखिलदुःखमोचकम्। तथा चोक्तम्—समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्। न शक्यते वर्णयितुं तदा गिरा स्वयं तदन्तःकरणेन गृह्यते॥ वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः क्षीणसत्त्वाः। ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे॥ आत्मनि चेतसो निवेशनं च वेदान्तशास्त्रोक्तविधिनैव सम्भवति। अतो वेदान्तशास्त्रं जिज्ञासवे सर्वोपरिस्थम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र चोपनिषच्छब्दप्रसिद्धा द्वादश निबन्धास्तेष्वाद्या वाजसनेयोपनिषत् । यामीशावास्यमित्याद्युनिका ब्रुवन्ति । इयं च वाजसनेय्युपनिषद् मूलयजुर्वेदवाजसनेयीसंहितान्तर्गता । तत्र यजुर्वेदे चत्वारिंशदध्यायाः । तेष्वेकोनचत्वारिंशदध्यायैस्तु प्राधान्येन कर्मकाण्डमुक्तं तद्यथा विहितकर्मानुष्ठानेन शुद्धान्तःकरणाय साधितशमदमादिसाधनाय भुक्तभोगायापाकृतर्णत्रयाय दृष्टानुश्रविकत्रिषयवितृष्णाय कर्मफलमनाश्रित्य निस्पृहं कार्य्यवैदिककर्मकर्त्रे ब्रह्मजिज्ञासवे मुमुक्षवे चत्वारिंशत्तमेनैकेन वाजसनेयोपनिषद्रूपेणाध्यायेनेशावास्यमित्यादिसप्तदशमन्त्रात्मकेन ब्रह्मविषयकं ज्ञानकाण्डमुच्यते ॥

भूमिकाभाषा—जबकिसी कार्य्य का प्रारम्भ किया जाता है तब उसका कुछ प्रयोजन अवश्य होता है। यहां भी उपनिषदों के भाष्य का आरम्भ है इसलिये इसका प्रयोजन अवश्य कहना चाहिये। क्योंकि पण्डित लोग बिना प्रयोजन (जिसके करने में विशेष फल न हो) किसी कार्य्य के करने को प्रवृत्त नहीं होते इसलिये प्रयोजन कहना चाहिये। किसी विद्वान् का श्लोक है कि (सिद्धार्थम्०) जिसका प्रयोजन और सम्बन्ध जान लिया हो उस ग्रन्थ के सुनने और पढ़ने के लिये श्रोता लोग प्रवृत्त होते हैं। इसलिये ग्रन्थकर्त्ता को बहुत आवश्यक है कि किसी पर भाष्य बनावे वा कोई ग्रन्थ रचे तो उस शास्त्र के आदि में प्रयोजन सहित

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ग्रन्थ के पढ़ने सुनने तथा तदनुसार आचरण से होने-वाले फल सम्बन्ध को अवश्य कहै।

और संसार में प्राणिमात्र का मुख्य प्रयोजन यही है कि सुख और सुख के साधनों के प्राप्त होने की इच्छा और दुःख तथा दुःख के साधनों को छोड़ने की इच्छा सिद्ध हो। यदि अन्य भी कुछ प्रयोजन हो तो वह इसी में से निकलेगा। और सुखप्राप्ति वा दुःखहानिरूप प्रयोजन संसार में पूर्ण प्रकार से नहीं दीख पड़ते किन्तु विपरीत तो दीखते हैं। अर्थात् यह नियम नहीं है कि जो पुरुष अपने विचारानुसार वा देखे सुने के अनुसार सुख प्राप्ति का उपाय करे उसको सुख ही प्राप्त हो और दुःखत्याग का यत्न करनेवाला दुःख से बच ही जावे किन्तु सुख प्राप्ति का यत्न करनेवाला कहीं दुःख को भी प्राप्त होता और दुःख छोड़नेवाले को भी दुःख अकस्मात् प्राप्त हो जाते हैं। ध्यान देकर देखने से यही ज्ञात होता है कि इसका कारण अविद्या ही है और अविद्या का नाश विद्या से ही हो सकता है। वह विद्या दो प्रकार की होती है—एक अपरा और दूसरी परा। इसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद आदि अपरा विद्या और परा विद्या वह है कि जिससे अविनाशी परमेश्वर को प्राप्त होते हैं। इसी शम, दम, तितिक्षा, शान्ति, समाधिरूप परा को ज्ञान के समीपी होने से ब्रह्मविद्या भी कहते हैं। इस के साक्षात् साधन उपनिषद् हैं इस कारण उपनिषद् शब्दवाच्य भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व की अपेक्षा पर है। यहां पर और अपर शब्द गौण मुख्य के वाचक नहीं लिये जाते किन्तु सुख की प्राप्ति और दुःख के छुड़ाने में पहिला साधन अपर नामक ऋग्वेदादि और द्वितीय ध्यान उपासनादि पर साधन है। उपनिषद् शब्द का अर्थ यह है कि जो मुमुक्षु जन लोक वा परलोक के सुख की भोगाकाङ्क्षा से विरक्त हुए उपनिषद् रूप विद्याको प्राप्त हो कर उसी ब्रह्मविद्या में आसक्त हुए, अपनी दुःखनिवृत्ति का साधन उसी को निश्चय से मान कर उस विद्या का बार २ अभ्यास करते हैं उन ज्ञानी जनों की दुःख में बांधने वाली वासनारूप रस्सियों का नाश होने रूप अर्थ से ब्रह्मविद्या का नाम उपनिषद् भी है। उपनिषद् में कहा भी है कि उसी ब्रह्म को जान के मृत्युरूप ग्राह के मुख से मनुष्य छूटता है। अर्थात् उपनिषद् शब्द उप, नि, उपसर्ग पूर्वक सद् धातुसे क्विप् प्रत्ययान्त बनता है। इस धातुके तीन अर्थ हैं विशरण, गति, अवसादन। इनमें विशरण नाम हिंसा वा नाश का है सो दुःखोत्पादक वासनाओंका नाश प्रथम अर्थ से दिखाया गया। द्वितीय अर्थ गति है सो दुःख तथा वासनाओं के नाश से उसी ब्रह्मविद्या के आश्रित हो मुमुक्षु जन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं इसलिये ब्रह्मप्राप्ति का मुख्य एक ही साधन होने से भी ब्रह्मविद्या का नाम उपनिषद् है। तथा जो विद्य अविद्यादि पांच क्लेश और कर्मफलों के अनुभव से उत्पन्न हुई दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्याज्ञान में प्रवृत्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करानेवाली अनादिकाल से सञ्चित वासनाओं को शिथिल करती है अर्थात् दुःख में बांधनेवाली वासनारूप रस्सियों को शिथिल करना इन तीनों अर्थों से ब्रह्मविद्या का नाम उपनिषद् भी हो सकता है यह बात स्थिर हुई ॥

पूर्व कही जो सुखप्राप्ति की इच्छा और दुःख का त्याग उसकी सिद्धि ब्रह्मविद्या के विना सम्भव नहीं है क्योंकि सब दुःखों से पृथक् ब्रह्म के ज्ञान से ही सुखप्राप्ति और दुःख का त्याग हो सकता है। श्रुति में भी कहा है कि "आत्मज्ञानी पुरुष शोक के पार हो जाता है"। और ब्रह्म एक वेद से ही जानने योग्य है। श्रुति में कहा भी है कि सब वेद जिस प्रापणीय परमेश्वर को कहते हैं इत्यादि सो कर्मकाण्ड में परम्परा से ब्रह्म का प्रतिपादन है तथा उपासना और ज्ञान-काण्ड में मुख्य कर साक्षात् ब्रह्म का प्रतिपादन किया है। कहा भी है कि "उपनिषद् रूप शास्त्र से जानने योग्य पुरुष ईश्वर का व्याख्यान करेंगे"। इसमें उपनिषद् शब्द से प्रसिद्ध वेद के सिद्धान्तानुकूल वेदान्तशास्त्र ही समस्त दुःखों का छुड़ानेवाला है। कहा भी है कि "(समाधि०) समाधि से निरन्तर जिसका मल धोया गया ऐसा चित्त जब आत्मा में लगाया जाता है तो उससे जो सुख होता है वह वाणी से नहीं कहा जाता किन्तु वही उपासक यथावत् जानता है।" परमात्मा में चित्त का निवेश करना वेदान्तशास्त्र में कही विधि के अनुसार बन सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमेश्वर ही सबसे शुद्ध सनातन और तीनों काल में सब दुःखों से रहित है। इसलिये उसी के ज्ञान और उपासना से मनुष्य सब दुःखों से छूट सकता है। उपासक जैसे उपास्य की उपासना करेगा वैसे गुण उपासक में भी स्वतः आवेंगे यह न्याय से सिद्ध है। और ईश्वर की ज्ञानउपासना इन्हीं उपनिषद् शास्त्रों से यथावत् बन सकती है। इसलिये उपनिषद् रूप वेदान्तशास्त्र का आश्रय ही मनुष्य का अभीष्ट साधक है। इससे यह उपनिषद्शास्त्र जिज्ञासु के लिये सर्वोपरि समझना चाहिये॥

इस वेदान्त शास्त्र में बारह उपनिषद् हैं। उनके नाम ये हैं:—१—वाजसनेयी (ईश)। २-तलवकार (केन)। ३-कठ। ४-प्रश्न। ५-मुण्डक। ६-माण्डूक्य। ७-तैत्तिरीय। ८-ऐतरेय। ९—छान्दोग्य। १०—बृहदारण्य। ११—श्वेताश्वतर। १२—मैत्र्युपनिषत्। इन बारहों में वाजसनेयोपनिषद् पहिली है जिसको आधुनिक लोग ईशावास्य नाम से बोलते हैं। यह वाजसनेयी उपनिषद् मूल यजुर्वेद की संहिता के अन्तर्गत समझी जाती है। इस यजुर्वेद में ४० चालीस अध्याय हैं इनमें से ३९ उनतालीस अध्याय के द्वारा मुख्य कर कर्मकाण्ड कहा गया है सो यथोक्त कर्म के अनुष्ठान से जिसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया हो, शम, दम, तितिक्षा, इन चार साधनों से युक्त (शम—काम क्रोधादि की शान्ति वा सुख दुःख स्तुति निन्दा आदि से व्याकुल न होना। दम—इन्द्रियों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के राजा मन को अपने वश में रखना। तितिक्षा—सहनशीलता। उपरति—संसारी फलभोगों से वैराग्य) जिसने गृहस्थादि आश्रमों के सुख भोग लिये हों तथा ऋषि, देव और पितृसम्बन्धी तीनों ऋण तीन आश्रमों के यथावत् अनुष्ठान से चुका दिये हों, इस लोक वा परलोक के सुख भोग की तृष्णा जिसको न रही हो अर्थात् विषय के सुख-भोग से वैराग्य हो गया हो ऐसे फलाकाङ्क्षारहित वैदिक कर्म करनेवाले, ब्रह्मज्ञान की इच्छा से युक्त मुमुक्षु पुरुष के लिये १७ मन्त्रवाला वाजसनेय नामक ४० चालीसवां अध्याय ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी ज्ञानकाण्ड कहा जाता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

अथ-

वाजसनेयोपनिषदारम्भः ।

ईशा वास्यमिदꣳसर्वं यत्किञ्च जगत्यान्जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥१॥

अन्वितोऽर्थः—यत् किञ्च (यत्किमपि) जगत्याम् (पृथिव्याम्) जगत्—(चलनात्मकं स्वरूपतो न्यूनाधिक्येन वर्तमानं प्रत्यक्षं घटाद्यात्मकमप्रत्यक्षमनुमानगम्यं परमाण्वाकाशमनोबुद्ध्याद्यात्मकम्) अस्ति तदिदम् (आत्मापेक्षया प्रत्यक्षमेव) सर्वम् (कार्यकारणरूपेणोभयात्मकम्) ईशा—(यस्यैश्वर्य्यं साम्यातिशयविनिर्मुक्तं तेन) वास्यम्—(आच्छादयितुं योग्यमर्थाद्यद्वस्तु यदन्तर्गतं भवति तत्तेनैवाच्छाद्यते जगच्चेश्वरापेक्षयाऽतिन्यूनमतएव तेनाच्छाद्यं तदन्तर्गतमिति भावः। सर्वमात्मन्यवस्थितमिति स्मरणाच्च । यद्वा वासयितुं योग्यं वास्यं एयन्ताद्यत् तेनैव स्वस्वयोनौ कर्मानुसारतः सर्वः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी वासित इति भावः। अथवा वस्तुं योग्यं वास्यं व्यापकत्वादीश्वर एव सर्वस्मिँश्चराचरात्मके जगति वस्तुमर्हति नान्यः कश्चिदिति तथाचोक्तम्-एको देवः सर्वभूतेषु गूढ इत्यादि) तेन (ईशा परमात्मना) त्यक्तेन-(प्रारब्धकर्मानुसारतो दत्तेन न्यायतोऽनपेतेनान्नादिना) भुञ्जीथाः—(भृत्यविभागपूर्वकमविरोधेन भुङ्क्ष्व। एकः स्वादु न भुञ्जीतेति स्मृतेः) मा गृधः कस्यस्विद्धनम्—(कस्यचिदन्यस्यान्यायतो धनादि पदार्थं माकाङ्क्षीः। यद्वा तेनेशा जगदुत्पत्त्यादि कर्मकुर्वताऽपि त्यक्तेन तन्नित्यत्वादिधर्मापेतेन जगता त्वं भुञ्जीथाः कार्यं कर्म कुर्वन्नपि तत्फलानि मा गृधः तत्फलेष्वासक्तिं मा कुरु। इदं च मुक्तेः परमं साधनम्। कुतः धनं कस्यस्वित् न कस्यापि किन्तु यस्य यस्य सन्नीड आगच्छति स स मुधैव स्वत्वेनाभिमन्यते। यद्वा तेन त्यक्तेन जगति व्याप्तेनापि नश्वरत्वादिजगद्धर्मालिप्तेनार्थाद्दुःखाद्यात्मके जगति वर्तमानेनापि दुःखविमुक्तेनेशा सह तदभिमुखस्त्वं भुञ्जीथाः कार्यं कर्म पालयेथाः मा गृधः तृष्णाविशेषं मा कुरु। कस्यस्विद्धनं सर्वाध्यक्षस्य कस्यचिदेकस्य ईश्वरस्यैव धनमस्ति न तु सर्वस्य अतस्त्वं धनादिविषयां संसारसुखभोगतृष्णां विहायेश्वरज्ञानोपासनादि कर्माणि द्वन्द्वमोहराहित्येन कुर्वन् निःश्रेयसमाप्नुहीत्याशयः॥१॥

भाषार्थः—(यत्, किम्, च) जो कुछ (जगत्याम्) पृथ्वी पर (जगत्) अपने स्वरूप से कम बढ़ होनेवाला स्वभाव से चलायमान घट आदि प्रत्यक्ष और अनुमान से जानने योग्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणु, आकाश, मन, बुद्धि आदि परोक्ष जगत् है वह (इदम्) परमेश्वर की अपेक्षा सूक्ष्म-स्थूल सभी प्रत्यक्ष (सर्वम्) कार्य कारण दोनों रूप जगत् (ईशा) जिसकी बराबर वा जिससे अधिक ऐश्वर्यवाला कोई नहीं, उस परमेश्वर से (वास्यम्) अच्छादन करने योग्य है। यह नियम है कि जो वस्तु जिसके अन्तर्गत होती है वह उसीसे ढाँपी जाती है। जगत् भी ईश्वर की अपेक्षा बहुत छोटा है इसलिये उससे आच्छादन करने के योग्य है अर्थात् उसके अन्तर्गत है। मनुस्मृति में लिखा भी है कि सब चराचर जगत् ईश्वर में अवस्थित है। अथवा ईश्वर ने ही सब प्राणिमात्र को कर्मानुसार उस २ की योनि में बसाया है वा जगत् ईश्वरसे बसने योग्य है अर्थात् व्यापक होने से ईश्वर ही सब चराचर जगत् में निवास कर सकता है अन्य पदार्थ सब एकदेशी हैं। उपनिषद् में कहा भी है कि- एक ही देव परमेश्वर सब जगत् में सूक्ष्मता से व्याप्त हो कर अदृश्य हो रहा है (तेन) उस परमेश्वर ने (त्यक्तेन) प्रारब्ध कर्मानुसार दिये न्यायसे युक्त स्वकीय अन्नादिसे (भुञ्जीथाः) स्त्री पुत्रादि को अविरोधपूर्वक विभाग देकर तू फल भोग कर। [महाभारत में लिखा भी है कि एक मनुष्य स्वादु भोजन अकेले आप ही न कर ले किन्तु अपने आश्रितों को भाग दे कर स्वयं भोगै] (कस्यस्वित्) अन्याय से किसी दूसरे के (धनम्) धनादि पदार्थ की (मा गृधः) कांक्षा मत कर। अथवा जगत् की उत्पत्ति आदि कर्म करते हुए भी (तेन)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस ईश्वर से (त्यक्तेन) ईश्वर के नित्यत्व आदि धर्म से पृथक् हुए नाशवान् अनित्य जगत् के साथ (भुञ्जीथाः) भोग कर किन्तु कर्तव्य कर्म करता हुआ भी (मा गृधः) कर्मफल-भोग की आकांक्षा मत कर। यही मुक्ति का परम साधन है क्योंकि संसार में धनादि पदार्थ किस का है? किन्तु किसी का नहीं। जिसके २ समीप धनादि पदार्थ आता है वह वह उन्हें अपना मान कर मिथ्या अभिमान करता है। अथवा (तेन त्यक्तेन) जगत् में व्याप्त हुए भी नाशवान् होना आदि जगत् के धर्म से पृथक् दुःखादि रूप जगत् के साथ वर्त्तमान हुए भी सब दुःखों से विमुख उस उक्त ईश्वर के साथ (उसको सन्मुख मानकर) (भुञ्जीथाः) कर्त्तव्य कल्याणकारी कर्मोंको पालना कर। (मा, गृधः) अधिक तृष्णा मत कर क्योंकि (कस्य, स्विद्धनम्) धनादि पदार्थ किसी सर्वाध्यक्ष ईश्वर का है किन्तु सब का नहीं है। इसलिये हे मनुष्य! तू धनादि पदार्थसम्बन्धी संसारी सुखभोगकी तृष्णा को छोड़ कर निन्दा स्तुति आदि द्वन्द्व और शोकमोहादि को त्याग के ईश्वर का ज्ञान और उपासनादि कर्म करता हुआ मुक्तिको प्राप्त होनेका उपाय कर यही मुख्य अभिप्राय है ॥१॥

कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषेच्छतꣳ समाः।
एवम्त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥२॥

इह (अस्मिन् संसारे मनुष्यजन्मनि वा) कर्माणि (कर्तुं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योग्यानि धर्म्माण्यग्निहोत्रादीनि नित्यनैमित्तिकभेदभिन्नानि वेदादिसच्छास्त्रप्रतिपादितानि विधिनिषेधमुखपराणि निःश्रेयसहेतूनि) कुर्वन्नेव शतं समाः (जीवेम शरदः शतमित्यादि वेदप्रामाण्यान्मनुष्यस्यायुषः शतं वर्षाण्यवधिः। अतः शतं वर्षाणि) जिजीविषेत् (जीवितुमिच्छेत्) एवम्) उक्तप्रकारेण, निष्काम्यं कर्म कुर्वन् जिजीविषति त्वयि नरे (मनुष्ये) कर्म्म न लिप्यते (असारसंसारसागरसंसरणहेतुकं न भवतीति भावः) इतः (उक्तप्रकारात्) अन्यथा (अन्यः प्रकारः कर्मालेपस्य) न (नास्ति)। अर्थाल्लौकिकफलभोगाकांक्षया कर्माणि कुर्वंस्तु लिप्यत एव। यथा यावज्जीवं स्वभावसिद्धानि प्राणयात्रापराणि कर्म्माणि ज्ञानिभिरपि क्रियन्त एव। एवं तैर्यथाधिकारं यथाकालं यथादेशं यथावेषं यथावस्थं च कार्यं कर्म कर्त्तव्यमेव। स्मृतं च "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन" इति। "कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय इति च" संन्यासिनां च स एव संन्यासो यत्कर्मफलानां समन्तादृष्टानुश्रविकविषयभेदेन त्यागः। उक्तञ्च—"अनाश्रितः कर्मफलं कार्य्यं कर्म्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः" अतोऽत्रात्मज्ञानाशक्तस्य कर्मोपदेशं वदन्तः प्रत्युक्ताः। तस्मात्कर्माणि कुर्वन्नेव जिजीविषेत् न त्वालस्याश्वारूढो नैष्कर्म्यमापन्नो जिजीविषेदिति मन्त्राशयः ॥ २ ॥

(इह) इस संसार वा मनुष्यजन्ममें (कर्म्माणि) वेदादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यशास्त्रों में कहे अच्छे का विधान और बुरे का त्यागरूप नित्य-नैमित्तिक भेदसे दो प्रकारके करने योग्य धर्मयुक्त मुक्ति के हेतु कर्म्मों को (कुर्वन्नेव) करता हुआ ही (शतं, समाः) सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवनकी इच्छा करे। क्योंकि जीवेम शरदः शतम् इत्यादि वेदके प्रमाणों से मनुष्य की अवस्था सौवर्ष की ही सामान्य कर पाई जाती है। (एवम्) इस उक्त प्रकार संसारी फलभोग की इच्छा रहित कर्म, करते हुए (त्वयि) तुझ (नरे) मनुष्यमें (कर्म) उक्त वैदिक कर्म (न, लिप्यते) नहीं लिप्त होता अर्थात् असार संसाररूप सागर के जन्ममरणादिरूप प्रवाह में वहानेवाला नहीं होता। (इतः) इस उक्त प्रकार से भिन्न (अन्यथा) अन्य कोई प्रकार कर्म में लिप्त न होने के लिये (न) नहीं है। अर्थात् लौकिक फलभोग की अभिलाषा से कर्म करता हुआ तो लिप्त होता ही है किन्तु संसारी फलभोग से विरक्त हो कर कर्त्तव्य वैदिक कर्मों के करने से ही मुक्ति का अधिकारी हो सकता है। जैसे जन्मपर्यन्त भोजन आदि स्वभाविक कर्मों को ज्ञानी लोग भी करते ही हैं वैसे उन ज्ञानिजनों को योग्य है कि सामर्थ्य, देशकालकी अवस्था और वेद के अनुकूल कर्त्तव्य कर्मों को अवश्य किया करें। भगवद्गीता में कहा भी है कि "(कर्मण्येव०) तेरा सामर्थ्य कर्म करने में ही रहे किन्तु फलभोग की अभिलाषा न रहे" "क्योंकि राजा जनकादि भी कर्म करने से ही परमसिद्धि अर्थात् मुक्ति को प्राप्त हुए हैं।" संन्यासियों का भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संन्यास यही है कि इस लोक वा परलोक के सुखभोगों का त्याग अर्थात् उनसे विरक्त होना। कहा भी है कि कर्म-फल का आश्रय न कर के जो कर्त्तव्य वैदिक कर्म को करता है वही संन्यासी और योगी कहाने योग्य है किन्तु निकम्मा आलसी जन संन्यासी नहीं हो सकता। इस लिये जो लोग यह कहते हैं कि आत्मज्ञान में असमर्थों के लिये कर्मोपदेश है उनका उत्तर हो गया। इस से यह आया कि कर्मों को करता हुआ ही जीवन की इच्छा करे किन्तु आलस्यरूप घोड़े पर चढ़ा निकम्मा हो कर न रहे। यही इस मन्त्र का अभिप्राय है॥ २॥

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः।
तांस्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः॥३॥

इदानीमस्मात्स्त्यन्नपानैश्वर्य्ययौवनप्रभुत्वराज्यादिजन्यदृष्ट-सुखात्परं पारमार्थिकमात्मज्ञानानुभूतमव्याहतं सुखं न मन्यन्ते न वा जानन्ति तदर्थं वा न प्रयतन्ते तेषामनिष्टफलवादरूपा निन्दोच्यते। उक्तं च भगवद्गीतासु—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

ये के च (ये केचित्) आत्महनः (कामक्रोधादिवशानुगतयाऽविद्यादिदोषेण वा तिरस्करणात् सर्वाध्यक्षं पितृवदुत्पाद्य पालकं शुद्धं सनातनमात्मानं घ्नन्ति तद्विमुखा भवन्त्यत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एव कृतघ्नत्वादिदोषदूषिताः सन्तः) अन्धेन तमसाऽऽवृताः (अदर्शनात्मकेनाज्ञानेन तमसा ग्लानिकारकेणानन्दबाधकेनावृता आच्छादिताः) ते नाम (प्रसिद्धौ) जनाः असुर्य्याअसुषु प्राणेषु तत्पोषणादिव्यवहारे रममाणास्तेषामिमे स्वे सम्बन्धिनस्तदन्तर्गताः) लोकाः (कर्मफलानि लोकमानाः फलभोगोत्सुकाः) सन्ति । ते च प्रेत्य (शरीरं त्यक्त्वा) तान् (असुरसम्बन्धिनः स्थावरान्तान् देहान्) अपि गच्छन्ति (निश्चयेन प्राप्नुवन्ति सर्वासु योनिषु जन्ममरणादिप्रवाहेण भ्रमन्ति) आत्मज्ञानश्लवेनैकेनैव साधनेन सन्तरन्तीति मत्वाऽऽत्मज्ञानोपायः कर्त्तव्य इत्याशयः ॥ ३ ॥

अब तृतीय मन्त्र में जो इस स्त्री, अन्न, पान, ऐश्वर्यभोग, युवावस्था, और राज्यादि से होनेवाले प्रत्यक्ष सुख से परे आत्मज्ञान से अनुभव में आनेवाले परमार्थ सम्बन्धी अखण्डित आनन्द को नहीं मानते वा उसको नहीं जानते अथवा उसकी प्राप्ति के लिये प्रयत्न नहीं करते उनको अनिष्टफल रूप दुःख प्राप्त होता ही है यह दिखाते हैं । भगवद्गीता में कहा भी है कि जो भोग और ऐश्वर्य के मद में आसक्त हो रहे हैं और स्त्री आदि सम्बन्धी विषयों में जिनका चित्त अत्यन्त फंसा हुआ है अर्थात् विषय वा धनादि के भोग में जिनकी बुद्धि निश्चित हो रही है, वे समाधि के योग्य नहीं हो सकते। (ये, के, च) जो कोई (आत्महनः) कामक्रोधादि के वश में होने से वा अविद्यादि दोषों से पिता के तुल्य पालन करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले सबके स्वामी शुद्ध सनातन परमेश्वर को न माननारूप हिंसा करते अर्थात् उससे विमुख होते हैं, इसी से कृतघ्नता दोष से दूषित हुए (अन्धेन) जिसमें कुछ न जान पड़े ऐसे अज्ञानरूप (तमसा) आनन्द के नाशक ग्लानि के हेतु तमोगुण से (आवृताः) आच्छादित हुए (ते) वे (नाम) प्रसिद्ध (असुर्य्याः) प्राणों के पुष्ट करने आदि व्यवहार में रमनेवाले असुरों के सम्बन्धी वा असुरों में संख्यात (लोकाः) कर्मफल भोग को ही देखनेवाले (जनाः) मनुष्य हैं। (ते) वे भी (प्रेत्य) वर्त्तमान शरीर छोड़ कर (तान्) असुर संबन्धी योनियों को (अपि, गच्छन्ति) प्राप्त होते अर्थात् सब योनियों में जन्ममरणादि प्रवाह से निरन्तर भ्रमते हैं। और इस प्रवाह से निकलने के लिये आत्मज्ञानरूप एक ही नौका है ऐसा मान कर आत्मज्ञान का उपाय करना चाहिये यही मुख्य अभिप्राय है ॥ ३ ॥

अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन्पूर्वमर्षत्। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति ॥ ४ ॥

अतः पूर्वस्मिन् मन्त्रे ये के चात्महनो जना इत्युक्तम्। तदात्मतत्त्वं कीदृशमित्युच्यते। यद्ब्रह्म (मनसो जवीयः) भौतिकेन्द्रियाणामधिष्ठातृ: मनो विषयावधि गतिमत्—ब्रह्म तु विषयातिक्रान्तं यत्र मनसो गतिरपि नास्ति तत्रापि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यत एवेति भावः। कस्यचिद्विषयस्य सुस्मूर्षया सहस्रं क्रोशान् मनः सद्यस्तरां गच्छति यावता कालेन मनस्तत्र गच्छति ततः परमपि ब्रह्म पूर्वत एव स्थितं सर्वव्यापित्वा दिति मनसो जवीयस्त्वं ब्रह्मणः। तत् एकं (अद्वितीयम्) अतएवानेजत् (एजनं कम्पः स तु साकारस्य धर्मो यस्तु कम्प रहितो निराकारः स इति निश्चीयते। अथवानेजन्निर्भयम्। द्वितीयाद्वै भयं भवतीति श्रुतेर्न तादृशोऽन्यः कश्चिदस्तितस्यै-कत्वादिति लोके यदतिवेगवद्वस्तु तस्य क्रियावत्त्वादकम्पनं विरुद्धम्। ब्रह्म तु जवीयस्त्वेप्यकम्पं कूटस्थमिति। अनेजज्ज-वीयश्चेति विशेषणद्वयेन विरोधालङ्कारो भासत इति) एनत् (मनोगतिमतिक्रान्तमत एव)देवाः (विषयद्योतकानीन्द्रियाणि) नाप्नुवन् (न प्राप्नुवन्ति। स्वस्वविषयग्राहकत्वं तत्तदिन्द्रि यत्वं न कश्चिद्भौतिको विषय आत्मा यमिन्द्रियाण्याप्नुयु रिति) यद्यपि पूर्वमर्षत्—(इन्द्रियविषयादिषु पूर्वत एव व्योमवद्व्याप्त आत्मा तथापीन्द्रियाविषयोऽतः श्रोत्रेण रूपग्रह-णवत्तैर्न गृह्यते) तत् तिष्ठत् (गतिनिवृत्तम्) धावतोऽन्यान् (स्वस्वविषयान् प्रतिपततइन्द्रियादीन्) अत्येति (उल्लङ्घ्य परम्परं गच्छतीव न कश्चिदिन्द्रियादिसाधनैर्ब्रह्म प्राप्तुमर्हतीति भावः) अथवाऽनित्यैश्वर्य्यवत्सु जलस्थलादिजडपदार्थेषु ब्रह्मप्राप्त्यर्थं धावतोऽन्यान् विदुष इतरानविदुषोऽत्येति। यतो यतस्ते धावन्ति ततस्ततः प्राप्तेरसम्भवात्। कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्। इहैव निहितो गुहायामिति च प्रतिपाद-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नात्प्रत्यगात्मानं धावतः प्राप्तेः सम्भवः । तस्मिन्-(ब्रह्मणि सत्येव तस्य सत्तायामेव) मातरिश्वा (वायुः) अपः जलानि मेघादिरूपाणि दधाति-(धारयति-आत्मसत्ताबलीयसी) अथवा तस्मिन्सत्येव मातरिश्वा वायुर्देहेन्द्रियादिष्वपः कर्माणि दधाति । सूत्रात्मको वायुरपि ब्राह्मीं सत्तामन्तरेण चेष्टाहेतुर्भवितुमशक्त इति । अथवा तस्मिन्सत्येव मातरिश्वा प्राणो नाम वायुरपः कर्माणि—ऊर्ध्वगमनादीनि धारयति । 'स उ प्राणस्य प्राण' इति प्रामाण्यादात्मसत्तामन्तरा प्राणोऽपि स्वचेष्टां कर्त्तुमक्षम इति । अथवा तस्मिन्परमात्मनि सत्येव मातृस्थ उदरे गर्भाशये श्वयति वर्द्धते श्वसितीति वा मातरिश्वा जीवात्माऽपः कर्माणि दधाति । असति शुभाशुभकर्मफल दातरि ब्रह्मणि प्रयोजनाभावात्कर्म्मधारणमप्यसम्भवम् । ईश्वर व्यवस्थया कर्मफलं प्राप्स्याम इति मत्वैव जीवात्मभिः शुभं कर्म धियते क्रियते च । अशुभं तु शुभभ्रान्त्या कामक्रोधा द वशेन वा क्रियत इति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—इससे पूर्व तृतीय मन्त्रमें आत्मघाती जनों की दुर्दशा दिखायी है सो वह आत्मतत्त्व कैसा है, यह दिखाते हैं—जो ब्रह्म (मनसः) भौतिक इन्द्रियोंका राजा विषयों तक पहुँचनेवाला है उस मनसे भी (जवीयः) अत्यन्त वेगवाला अर्थात् जहाँ मनकी गति भी नहीं, वहां भी ब्रह्मविद्यमान है। किसी विषयके स्मरण की इच्छा से मन हजारों कोस पर अतिशीघ्र पहुँचता है। जब तक मन वहां पहुँचता है तिससे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी पहिले आत्मा आगे असंख्य कोसों तक व्यापक होने से, विद्यमान है इस कारण मन से भी आत्मा अति वेगवान् है। (एकम्) वह ब्रह्म एक अद्वितीय है (अनेजत्) काँपना, चलायमान होना साकार पदार्थों का धर्म है ब्रह्म उस कम्पन से रहित है इसलिये निरकार है अथवा एक होने से सर्वथा निर्भय है अपने सदृश दूसरे से भय होता है सो न तो कोई ईश्वर के समान है न उसके बराबर का और न उससे कोई बलवान् है, जिससे भय हो इसलिये निर्भय है। परमात्मा लौकिक पदार्थों से विलक्षण है। लोकमें जो अति वेगवान् वस्तु है वह क्रिया-गुण से युक्त होने के कारण कम्पन और विकारवाला होता है और ईश्वर अति वेगवान् होने पर भी कम्पन और विकार वाला नहीं होता। अति वेगवान् और कम्पन इन दो विशेषणों से विरोधालंकार प्रतीत होता है। (एनत्) मन की गति को उल्लंघन करनेवाला होने से उसको (देवाः) विषयों के ज्ञान कराने वाले ज्ञानेन्द्रिय (न, आप्नुवन्) नहीं प्राप्त होते। अपने २ गन्धादि विषयों को ग्रहण करना उस २ इन्द्रिय का इन्द्रियपन है। आत्मा किसी इन्द्रिय से ग्राह्य विषय नहीं है, जिसको इन्द्रिय प्राप्त होसकें। यद्यपि (पूर्वम्, अर्षत्) इन्द्रिय और विषयादिमें आत्मापहिले से ही आकाश के तुल्य व्यापक है तथापि इन्द्रियों का विषय न होने से कानसे रूप के समान इन्द्रियों से नहीं गृहीत होता! वह (तिष्ठत्) अचल ब्रह्म (धावतः) अपने २ विषयों की ओर भागती हुई (अन्यान्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियों को (अत्येति) उलंघ कर आगे २ चलता है अर्थात् इन्द्रियादि साधनों से कोई ब्रह्म को प्राप्त नहीं हो सकता। अथवा अनित्य ऐश्वर्य्यवाले जलस्थल आदि पदार्थों में बाहर २ ब्रह्मप्राप्ति के लिये भागनेवाले अविद्वानों को ईश्वर नहीं मिलता क्योंकि वे जिधर २ को भागते हैं उधर २ ईश्वर की प्राप्ति होना असम्भव है किन्तु "कोई शान्ति आदि गुण युक्त पुरुष इसी अपने अन्तःकरण में व्याप्त ईश्वर को ध्यान दृष्टि से देखता है" इससे यह आया कि जो अपने भीतर को भागते हैं उनको ईश्वर प्राप्त होता है (तस्मिन्) उस ब्रह्म की सत्ता में ही (मातरिश्वा) वायु (अपः) मेघादिरूप जलों को (दधाति) धारण करता है अर्थात् परमेश्वर की सत्ता सब से बलवती है। अथवा उस आत्मा की सत्ता में ही सूत्रात्मा वायु देह इन्द्रियादि में कर्मों को धारण करता है अर्थात् ईश्वर की सत्ता के बिना सूत्रात्मा वायु भी अपना चेष्टारूप कर्म करने में असमर्थ है। अथवा उस ईश्वर की सत्ता में ही प्राण वायु ऊपर को चलना आदि कर्मों को धारण करता है। "वह प्राण का भी प्राण है" ऐसा कहने से ईश्वर की सत्ताके विना प्राण भी अपना काम नहीं दे सकता अथवा उसकी सत्ता में ही माता के उदर में बढ़ने वा श्वास लेनेवाला जीवात्मा कर्मों को प्राप्त होता है। यदि कोई शुभा-शुभ कर्मफलों का दाता ईश्वर न हो तो निष्प्रयोजन कर्मों का धारण करना असम्भव है। "ईश्वर की व्यवस्था से कर्मफलों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्राप्त होंगे" ऐसा मान के ही जीवात्मा शुभ कर्मों को करता है। अशुभ कर्म तो शुभ कर्म को भ्रान्ति से वा काम क्रोधादि के वश हो कर करता है ॥ ४ ॥

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥५॥

तत् (प्रकृतत्वात्परमात्मरूपं ब्रह्म) एजति (चलतीव, एकत्र दृष्टस्य वस्त्वन्तरेपि स्थितिमतो दर्शनाद्विदुषां-मतेऽचलदपि चलतीव) स्वरूपतस्तु न एजति (नैव चलति। अनेजदिति विशेषणेन पूर्वमन्त्रे प्रतिपादनात्) तत् (ब्रह्म) दूरे (विषयासक्तैर्जन्मसहस्रेणाप्यप्राप्यम्) तत अन्तिके (दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णानां तन्निष्ठविदुषांभक्तवत्सलत्वे-नातिनिकटेऽस्ति) तद्ब्रह्म (अस्य सर्वस्य चराचरस्य जगतः) अन्तः (व्याप्तमस्ति) तदु अस्य सर्वस्य बाह्यतः (उ इति वितर्के यदान्तरीयां स्थितिमापन्नो भवति न तद्बाह्ये स्थिति-मुपलभत इति लोके दृष्टचरमेव ब्रह्मतु तद्विरुद्धमिति उशब्देन द्योत्यते। व्यापकत्वान्निरवयवत्वान्निराकारत्वात्सर्वस्य बाह्यम-भ्यन्तरं च व्याप्तमिति भावः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(तत्) वह पूर्वोक्त परमात्मा (एजति) एक पदार्थ में देख कर पदार्थान्तर में भी स्थित दीख पड़ने से अचल और एकरस भी ब्रह्म अविद्वानोंको चलायमान सा प्रतीत होता है। अर्थात् अविद्वान् लोग जानते और कहते भी हैं कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर जब सृष्टिरचना आदि करता है तो वह चलता फिरता होगा और वस्तुतः (न एजति) नहीं चलायमान होता सो पूर्व मन्त्रमें भी कहा है। (तत्) वह परमेश्वर (दूरे) विषयासक्त मनुष्यों से बहुत दूर है अर्थात् हजारों जन्म में भी वे ईश्वरको प्राप्त नहीं हो सकते। (तत्) वह (उ, अन्तिके) इस लोक वा परलोक के सुखभोगों की तृष्णा से रहित उसी में निष्ठा रखनेवाले विद्वानों के अतिनिकट है। क्योंकि वह भक्तों पर कृपा करता है। (तत्) वह (अस्य, सर्वस्य) इस सब चराचर जगत् के (अन्तः) बीच में व्याप्त है (उ) और (तत्) वह (अस्य, सर्वस्य) इस सब जगत् के बाहर भी है। लोक में यह प्रसिद्धि है कि जो पदार्थ किसी के भीतर है, वह बाहर नहीं रहता। ईश्वर इससे विलक्षण है। व्यापक निरवयव और निराकार होने से वह सब पदार्थों के बाहर-भीतर व्याप्त है॥ ५॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥६॥

पुनरात्मानं कीदृशं पश्येदित्युच्यते यः (शमदमादिसाधितसाधनः) सर्वाणि भूतानि (उद्भूतानि चराचराणि विश्वानि) आत्मनि एव (परमात्मन्येव) अनुपश्यति (अनुगतं पश्यति) सर्वभूतेषु च (अव्यक्तादिमहास्थूलावधेषु च) आत्मानमीश्वरमनुपश्यति (सर्वस्य द्रष्टा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षीत्यनुजानाति) ततः (आधारत्वेनेप्सिततमत्वेन वा स्वरक्षकस्य स्वामिनः सर्वत्र दर्शनात् (न विजुगुप्सते) निन्दितं न समाचरति । जुगुप्सनमित्युपलक्षणं पापानां तेन पापाचरणं न करोतीति । "सर्वं ह्यात्मनि सम्पश्यन्नाधर्मे कुरुते मनः" इति मनुवचनात् । स्वस्वस्वामिनो मान्यस्य वाग्रे न कोऽप्यधर्माचरणं कर्त्तुमुत्सहत इति लौकिका अपि जानन्ति ब्रुवन्ति च । एवं यः स्वस्वामिनं सर्वत्र व्योमवद्व्याप्तं सर्वस्य द्रष्टारं जानीयात् नैव स स्वामिनोऽग्रे निन्दितमाचरितुमर्हति । यस्य किमप्याचरणं कस्यचिद्भयाद्गुप्तं न भवति एतदेव सर्वत्रात्मानं पश्यतो लिङ्गम् । यश्च शुभाशुभकर्मफलदाता स तु सर्वत्र पश्यति सर्वं, पुनः कस्माच्चित्पुरुषात् किं गोप्यम् ।

यद्वा यो ब्रह्मज्ञानाभिलाषुकः सर्वाणि भूतानि आत्मन्येव स्वस्यान्तःकरण एवानुपश्यति--अनुकूलानि पश्यति परद्रव्येष्वभिध्यानादि दुराध्यानं न करोति न कञ्चिच्छत्रुभूतं वा पश्यति सर्वभूतेषु चात्मानं जीवात्मानं स्वात्मवदनुपश्यति तत एवं पश्यतो जानतो मनो न विजुगुप्सते घृणां न करोति स्वतो विपरीतं पश्यतो घृणा भवति । यथा स्वशरीरान्न हि घृणा जायते । एवं तद्वत्पश्यतोऽन्यतो न भविष्यति । विचिकित्सतीति पाठान्तरे संशयापन्नो न भवतीत्यर्थः ।

भाषार्थः—फिर परमेश्वर को कैसा जाने सो कहते हैं-(यः) जो मनुष्य शान्ति और जितेन्द्रियतादि गुणयुक्त (सर्वाणि) सब (भूतानि) उत्पन्न हुए चराचर को (आत्मनि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एव) परमेश्वरमें ही (अनु, पश्यति) अनुक्रमसे व्याप्त देखता है (च) और (सर्वभूतेषु) सूक्ष्म से स्थूलपर्य्यन्त सब पदार्थों में (आत्मानम्) ईश्वर को सबका साक्षी (अनु, पश्यति) जानता मानता है। (ततः) सब का आधार वा अपना अत्यन्त इष्टदेव होने से अपने रक्षक स्वामी को सर्वत्र देखता है। इस कारण (न, विगुजुप्सते) निन्दित आचरण अर्थात् पाप नहीं करता। मनुस्मृति में भी लिखा है कि "जो सब जगत् को ईश्वर में देखता है, वह अधर्ममें मन कभी नहीं चला सकता।" अपने स्वामी वा किसी मान्य पुरुषके सामने कोई अधर्माचरण करनेको प्रवृत्त नहीं होता यह लौकिक लोग भी जानते और कहते हैं। इसी प्रकार जो पुरुष अपने स्वामी को आकाश के तुल्य सर्वत्र व्याप्त, सब कार्यों को देखनेवाला जानें वह अपने स्वामी परमेश्वर के सामने निन्दित आचरण नहीं कर सकता और ईश्वर को सर्वत्र देखनेवाले का चिह्न यही है कि जिसका कुछ भी आचरण अन्तःकरण से विरुद्ध अर्थात् भीतरसे भिन्न और बाहरसे कुछ और न हो। क्योंकि वह मन की भी जानता है। जो ईश्वर शुभ अशुभ कर्मफलोंका देनेवाला है वह सबको सब जगह देखता है। फिर जब सब का राजा ही भीतरी हाल जानता है तो सेवकों से क्या छिपाना।

×अथवा मन्त्र का द्वितीयार्थ यह है कि—जो ब्रह्मज्ञान का अभिलाषी पुरुष सब प्राणियों को अपने अन्तःकरण में अन्त-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूल देखता है अर्थात् ईर्ष्या, द्वेष, वैर वा अन्याय से पर पदार्थ को हर लेनेकी बुद्धि से नहीं देखता और सब प्राणियों में अपने आत्मा के तुल्य आत्मा को देखता है अर्थात् जैसे अपना आत्मा चाहै कि मुझको दुःख कोई न देवे ऐसे सभीका आत्मा है। जैसे मुझको दुःख अनिष्ट है, वैसे सभी को अनिष्ट है, इस लिये किसी प्राणी को दुःख न देना चाहिये। इस प्रकार से जानते हुए पुरुष का मन घृणाको नहीं प्राप्त होता। जैसे अपने शरीरसे किसी को घृणा नहीं होती, ऐसे ही अपने तुल्य देखने से और से भी घृणा न होगी। कहीं २ मन्त्र में (विजुगुप्सते) की जगह (विचिकित्सति) पाठ आता है तो वहां यह अर्थ होगा कि उक्त प्रकार से आचरणकर्त्ता पुरुष संशययुक्त नहीं होता है ॥६॥

यस्मिन्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥

(यस्मिन्) भूतेभ्यो विरागे सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातसमाधिकाले (विजानतः) विशेषेण ज्ञानवतः पुरुषस्यैहिकसुखभोगात्प्राप्तवैराग्यस्य (सर्वाणि भूतानि) इष्टमित्रादिभेदभिन्नानि सुखदुःखहेतूनि (आत्मैवाभूत्) आत्मैव भवन्ति। बाह्येन्द्रियैर्भूतानि पश्यन्तपि न पश्यति मनस आत्मनि लग्नत्वात्। मनःसंयोगानपेक्षस्येन्द्रियार्थसन्निकर्षस्यापि ज्ञानकारणत्वाभावात्। यथा कस्यचिद्विषयस्य प्राप्त्यर्थमुत्सुकः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषस्तद्विषयमेव सर्वत्र पश्यति सर्वाणि वस्तून्यभीष्टविषय-रूपाण्येव पश्यति। तथैवात्मज्ञानोत्सुक आत्मरूपमेव सर्व-मनुपश्यति नान्यत्पश्यति प्रयोजनाभावात्। उक्तं च व्यासेन—"शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा स्वस्थः परिक्षी-णवितर्कजालः। संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्यमुक्तोऽ-मृतभोगभागी" एवमेकत्वमनुपश्यतो योगिनः (तत्र) समा धिकाले (को मोहः कः शोकः?) न कोपीत्यर्थः। शोकमोहौ त्वभीष्टविषयभोगायोत्करण्ठापूर्वकं धावतस्तदप्राप्तौ प्राप्तावपि क्षीणाभिलाषस्य जायेते न तु तत्त्यक्तवत इति शम्॥ ७॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस समय संसार से वैराग्य होकर सम्प्रज्ञात समाधि हो तब (विजानतः) इस लोक परलोक के सुखभोग से वैराग्य को प्राप्त हुए पुरुष की दृष्टि में (सर्वाणि) सब (भूतानि) इष्टमित्र, शत्रु, उदासीन आदि प्राणी (आत्मा, एव, अभूत्) आत्मा ही हो जाते हैं अर्थात् मन के आत्मज्ञान में लीन रहने से बाह्य इन्द्रियों से प्राणियों को देखता हुआ भी नहीं देखता क्योंकि मन के संयोग के विना बाह्य इन्द्रियों से कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। जैसे किसी विषयज्ञान की प्राप्ति के अर्थ उत्सुक हुआ पुरुष उसी विषय को सर्वत्र देखता है अर्थात् सब वस्तुओं को अभीष्ट विषयरूप ही देखता है। ऐसे ही आत्मज्ञान में लवलीन पुरुष सबको आत्मरूप ही देखता है क्योंकि अन्य पदार्थ से उसका कुछ भी प्रयोजन नहीं। व्यासजी ने योगभाष्य में कहा भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि "खटिया वा आसन पर बैठा वा लेटा हो वा मार्ग में चलता हुआ हो, सब समय में विषयभोगों से स्वस्थ होकर उसी ईश्वर में जिसका चित्त लगा है वह सब तर्क-वितर्कादि छोड़ के मुक्ति का भागी होता है" इस प्रकार (तत्र) उस समाधिसमय में (एकत्वम्) एक ही ईश्वर को सर्वत्र देखते हुए योगी जनको (कः मोहः) कौन अज्ञान और (कः शोकः) कौन शोक हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं। जो कोई अभीष्ट विषयभोग के लिये उत्कण्ठा पूर्वक भागता है और उसको वह विषयसुख प्राप्त न हो वा प्राप्त होने से अभिलाषा क्षीण हो जावे तब उसको शोक मोह होते हैं, किन्तु जिसने प्रथम से ही विषयसुखभोग की अभिलाषा त्याग दी उसको शोक-मोह होना सम्भव नहीं ॥७॥

स पर्य्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरꣳशुद्धम-पापविद्धम्। कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथात थ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।८॥

(सः) यस्मिन् पूर्वोक्त आत्मनि ज्ञाते सति शोक-मोहादयो विनिवर्त्तन्ते सः (पर्य्यगात्) परितो गतवान् व्यं मवद्व्याप्तः सर्वत्र, किम्भूत आत्मेति विशेषणानि-(शुक्रम्) शुक्रः। लिङ्गव्यत्ययः सर्वत्र। आशु करोत्युत्पत्त्यादिकमिति शुक्रः। अथवा शुक्रः शुक्लो दीप्तिमान् (अकायम्) स्थूलसू-क्ष्मलिङ्गशरीररहितः। अतएव (अव्रणम्) क्षतादिरहितः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकायत्वादेवाव्रण इति हेतुगर्भविशेषणम्। (अस्नाविरम्) नाड्यादिसम्बन्धवर्जितः। अकायत्वादेवेति हेतुगर्भविशेषणम्। अत एवाकायत्वात् (शुद्धम्) निर्मलम्। शरीरी तु द्वादशभिः शरीरमलैर्युक्तो भवति। उक्तं च व्यासेन योगे—

"स्थानाद्बीजादुपष्टम्भान्निस्यन्दान्निधनादपि।
कायमाधेयशौचत्वात्पण्डिता ह्यशुचिं विदुः॥"

उक्तकारणादेव (अपापविद्धम्) पापफलैः सर्वदा वर्जितः। शरीरेणैव पापानुष्ठानसम्भवात्। (कविः) सर्वदृक् (मनीषी) मनसो ज्ञातुर्जीवात्मनोपीशिताऽध्यक्षः (परिभूः) सर्वेषामुपरि भवतीति (स्वयम्भूः) स्वयमेव सत्तात्मको न कस्यचिदाश्रयेणेति। एवम्भूतो नित्यमुक्त ईश्वरः। (समाभ्यः (संवत्सरैः परिमितायुष्काभ्यः स्वदृष्टौ तुल्याभ्यो वा (शाश्वतीभ्यः) जातिरूपेण कल्पकल्पान्तरेषु प्रवाहरूपेण वा निरन्तरं वर्तमानाभ्यः प्रजाभ्यः (याथातथ्यतः) यादृशं यस्य कर्म तादृशान् (अर्थान्) फलरूपान् भोग्यान् पदार्थान् (व्यदधात्) विदधाति कर्मानुरूपं फलं सर्वस्मै प्रयच्छतीति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(सः) जिस पूर्वोक्त आत्मा के ज्ञान होने में शोक मोहादि निवृत्त होते हैं वह परमात्मा (परि, अगात्) आकाश के तुल्य सर्वत्र व्याप्त हो रहा है। वह परमेश्वर कैसा है कि (शुक्रम्) संसार को शीघ्र ही उत्पन्न करनेवाला वा प्रकाशवान् (अकायम्) स्थूल, सूक्ष्म और लिङ्ग शरीर रहित इसी लिये अर्थात् शरीर रहित होने से ही (अव्रणम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोद वा छेद फोड़ा-फुंसी रहित (अस्नाविरम्) नाड़ी नसों के बन्धन से रहित तथा शरीररहित होने से ही (शुद्धम्) निर्मल है। क्योंकि शरीरवाला बारह प्रकार के मलों से युक्त होता है। ये बारह प्रकार के मल मनुस्मृति के पञ्चमाध्याय में गिनाये हैं और योगशास्त्र में व्यासजी ने शरीर को ही अशुद्ध ठहराया है (स्थानात्) मलमूत्रादि सहित माता का उदर गर्भाशय इस शरीर की उत्पत्ति का स्थान है (बीजात्) इसका कारण उपादान माता-पिता का रुधिर (आर्त्तव) और वीर्य है (उपष्टम्भात्) खाये-पिये के रससे बढ़ता (निस्यन्दात्) शरीर के छिद्रों से नित्यप्रति मल झरता है (निधनात्) मर जाने पर मुर्दा को अशुद्ध मानते और शास्त्रकार शरीरकी नित्य शुद्धि करनेका विधान करते हैं। यदि शुद्ध होता तो उसकी नित्य शुद्धि क्यों कहते? इन सब कारणोंसे विद्वान् लोग शरीर को अशुद्ध कहते हैं इस प्रकार के अशुद्ध शरीर से ईश्वर सर्वथा रहित है। (अपापविद्धम्) पापफलों से सर्वदा रहित है क्योंकि शरीर से ही पाप होना सम्भव है (कविः) सबका देखनेवाला (मनीषी) ज्ञान गुणवाले जीवात्मा का भी अध्यक्ष स्वामी है (परिभूः) सर्वोपरि वर्त्तमान (स्वयम्भूः) अपनी स्थिति के लिये किसी का आश्रय न चाहनेवाला स्वयं सिद्ध इस प्रकार का नित्य मुक्त ईश्वर (समाभ्यः) परिमित वर्ष अवस्थावाली वा अपनी दृष्टि में तुल्य (शाश्वतीभ्यः) जातिरूप से वा कल्पकल्पान्तरों में प्रवाहरूप से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर वर्त्तमान प्रजाजनों के लिये (याथातथ्यतः) कर्मानुसार (अर्थान्) भोगने योग्य फलरूप पदार्थों को (व्यदधात्) विधान करता अर्थात् यथायोग्य फल देता है ॥ ८ ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूयइव ते तमो यउविद्यायाꣳ रताः ॥९॥

अ०—(ये) वेदतत्त्वार्थमजानन्तः (अविद्याम्) केवलं कर्मकाण्डमात्रम्—अनेन कर्मणा—इदं फलमाप्स्याम इति बुद्ध्या कर्मतत्फलेष्वेवाहर्निशं भ्रमन्तः (उपासते) तत्तत्कर्मवन्तस्सन्तो निरन्तरं सेवन्ते ते (अन्धन्तमः, प्रविशन्ति) आत्मज्ञानप्रकाशवर्जितं ब्रह्मादिस्थावरान्तं जन्ममरणप्रवाहमेव प्रविशन्ति नतु ततो मुच्यन्त इति (य उ) ये च (विद्यायां रताः) ब्रह्मचर्य्यादाश्रमत्रयेणानुष्ठेयं वैदिक कर्मापि त्यक्त्वा ज्ञानकाण्ड एव रमन्ते (ते, ततः) अविद्योपासनादपि (भूय इव) बहुतरमेव (तमः) अन्धकारम् (प्रविशन्ति) अयमाशयः यथैकचक्रं यानं यातुमनर्हं भवति । एवम्पूर्वाश्रमत्रयानुष्ठय-वैदिककर्मान्तरेण ज्ञानाय धावन्नपि न प्राप्नोति । चातुर्थाश्रमे त्यागः प्रधानं येन चाश्रमत्रये कर्मैव नानुष्ठितं स कस्य त्यागं करिष्यति ? अर्थात् ये लौकिकाः परमार्थविमुखा जना ज्ञानकाण्डं सर्वतो विहाय केवले कर्मणि रमन्ते तेऽन्धकारं प्राप्नुवन्ति । ये च केवले ज्ञाने रताः स्वमूलं गृहाश्रमादिकंच विनिन्दन्ति ते कर्मिभ्योऽप्यधिकतरमन्धकारमाप्नुवन्ति ॥ ९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो वेद के तत्त्वरूप अर्थ को न जाननेवाले (अविद्याम्) इस कर्म से इस फल को प्राप्त होंगे, इस बुद्धि से कर्म और कर्मफलों में रात-दिन लगे हुए केवल कर्मकाण्ड का (उपासते) उस २ कर्म के अभिमानी होकर सेवन करते हैं। (ते) वे (अन्धन्तमः) आत्मज्ञान के प्रकाश से रहित ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्य्यन्त योनियों में जन्म-मरण के प्रवाह को (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं, किन्तु उस प्रवाह से पार नहीं होते (य उ) और जो (विद्यायाम्) ब्रह्मचर्य्य आदि तीन आश्रमों में सेवने योग्य वैदिक कर्म को भी छोड़के केवल ज्ञानकाण्ड में ही (रताः) रमते हैं। (ते) वे (ततः) उस अविद्यारूप कर्म की उपासना करनेवाले से भी (भूय इव) अत्यन्त अधिक (तमः) अन्धकार को प्राप्त होते हैं। इन सब का अभिप्राय यह है कि जैसे एक पहियेकी गाड़ी नहीं चल सकती, वैसे ही ब्रह्मचर्य्यादि तीन आश्रमोंके सेवने योग्य वैदिककर्म किये विना आत्मज्ञानके लिये भागता हुआ भी प्राणी ज्ञानको प्राप्त नहीं होता। चतुर्थ सन्यास आश्रममें बाह्य कर्मकाण्ड का त्याग मुख्य है। जिसने तीन आश्रमों में कर्मका अनुष्ठान ही नहीं किया, वह किसका त्याग करेगा? प्राप्त पदार्थ का त्याग हो सकता है। अर्थात् जो परमार्थ से विमुख लौकिक मनुष्य सब ओर से ज्ञानकाण्ड को छोड़कर केवल कर्मों में लगे रहते हैं, वे अन्धकार में प्रवेश करते हैं और जो केवल ज्ञानकाण्ड में रत हैं और अपनी उत्पत्ति के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थान गृहस्थाश्रम की निन्दा करते हैं, वे कर्मकाण्डियों से भी अधिक अन्धकार में पड़ते हैं ॥ ९ ॥

अन्यदेवाहुर्विद्ययाऽन्यदाहुरविद्यया ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥ १० ॥

विद्यया (ज्ञानकाण्डानुष्ठानेन) अन्यदेव (ज्ञानसाध्यं शान्त्यादिफलम्) आहुः (वदन्ति) अविद्यया (लौकिक-काम्यकर्मानुष्ठानेन) अन्यदेव (स्त्रीपुत्रैश्वर्य्यादिरूपं फलम्) आहुः । इति (एवम्प्रकारेण) वयं धीराणाम् (धीमतां गुरु-जनानाम्) वचः शुश्रुम (शृणुमः) । ये (आचार्य्याः) नः (अस्म-भ्यम्) तत् (वचः) विचचक्षिरे (व्याचक्षते) ज्ञानिभिरा-चार्य्यैः शिष्येभ्यो विद्याऽविद्ययोः फले विभज्य श्रावणीये शिष्यैश्च गुरुसेवाशुश्रूषाभ्यां गुरुभ्यो विद्याऽविद्ययोः फले ज्ञात-व्ये इत्याशयः ॥ १० ॥

भाषार्थः—विद्वान् लोग (विद्यया) ज्ञानकाण्ड के अनु-ष्ठान से (अन्यदेव) ज्ञान से होनेवाले शान्ति आदिरूप फल को (आहुः) कहते हैं और (अविद्यया) कामना के योग्य लौ-किक कर्म के अनुष्ठान से (अन्यत्) स्त्री-पुत्र और धन-सम्पत् की प्राप्ति रूप फल (आहुः) कहते हैं (इति) इस प्रकार हम लोग (धीराणाम्) बुद्धिमान् गुरुजनों के वचन (शुश्रुम) सुनते हैं । (ये) जो आचार्य (नः) हमारे लिये (तत्) उन वचनों का (विचचक्षिरे) उपदेश करते हैं । ज्ञानी आचार्य्यों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को चाहियें कि वे शिष्यों को विद्या-अविद्या का पृथक् २ फल सुनावें और शिष्यों को चाहिये कि सेवा-शुश्रूषा करके गुरु लोगों से विद्या के फल को जानें ॥ १० ॥

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥११॥

अ०—विद्याऽविद्ययोः फलभेदस्तयोः पृथक् पृथगुपासनयाऽकल्याणप्राप्तिश्चोक्ता । इदानीं तयोः सहोपासनेन शुभफलप्राप्तिमाह । यः (वेदतत्त्वार्थवित्) पूर्वोक्तां विद्यां चाविद्यां च तदुभयं सह (एकेनैव पुरुषेणानुष्ठेयं) वेद (जानाति), सः अविद्यया (कर्मणा शुद्धान्तःकरणः सन्) मृत्युम् (पुनः पुनर्जन्ममरणप्रवाहम्) तीर्त्वा (पारमुत्तीर्य्य) विद्यया (ज्ञानकाण्डानुष्ठानेन) अमृतम् (मरणधर्मरहितं मोक्षम्) अश्नुते (प्राप्नोति) उक्तं च भगवद्गीतासु "कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः। स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृदिति॥

अर्थात् ज्ञाने कर्म कर्मणि च ज्ञानं पश्यत एव परमार्थः सिद्धयति न त्वेकारूढ एकचक्रेण रथेनेव कल्याणमवाप्नोतीत्यभिप्रायः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—पूर्व दो मन्त्रों में विद्या-अविद्यारूप ज्ञान और कर्मकाण्ड की उपासना से अशुभ फल की प्राप्ति और दोनों उपासनाओं का फलभेद कहा है । अब उन दोनों की एक साथ उपासना से शुभफल कहते हैं । अर्थात् भेदभाव में जो फल नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह संयोग में है। (यः) जो वेद के तत्त्व को जाननेवाले विद्वान् (विद्याम्, च, अविद्याम्, च) पूर्वोक्त ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्डरूप विद्या अविद्या (तदुभयम्, सह) दोनों को एक ही पुरुष से सेवने योग्य (वेद) जानता है (सः) वह (अविद्यया) कर्मकाण्ड के अनुष्ठान से शुद्ध अन्तःकरणवाला होता हुआ (मृत्युम्) बार २ जन्म-मरण के प्रवाहरूप नदी को (तीर्त्वा) पार होकर (विद्यया) ज्ञानकाण्ड के अनुष्ठान से (अमृतम्) मरणधर्मरहित मोक्षको (अश्नुते) प्राप्त होता है। भगवद्गीता में कहा भी है कि "कर्म के बीच ज्ञान और ज्ञान के बीच कर्म को जो देखता है, वही मनुष्य बुद्धिमान्, वही योगी और सब शुभ कर्म का कर्त्ता वही है अर्थात् ज्ञान में कर्म और कर्म में ज्ञान को देखने वाले का ही परमार्थ सिद्ध होता है, किन्तु एक पर आरूढ़ एक पहिये के रथ के समान कल्याण को प्राप्त नहीं होता ॥ ११ ॥

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽसम्भूतिमुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ सम्भूत्या ꣳ रताः ॥१२॥

अ०—(ये) अविद्वांसः (असम्भूतिम्) सम्भूयते या सा सम्भूतिः कार्यरूपं जगत् सा यत्र न विद्यते साऽसम्भूतिः कारणं प्रकृतिर्जडात्मिका ताम्-ईश्वरभावेन (उपासते) भजन्ते ते (अन्धन्तमः, प्रविशन्ति) अज्ञानात्मकमन्धकारं प्राप्नुवन्ति (ततः) तस्मात्प्रकृत्युपासनस्य प्रकृतिलीनत्वादिफलम् (भूय-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इव) बहुतरमेव (तमः) अन्धकारम् (ते) प्राप्नुवन्ति (य उ) ये च (सम्भूत्याम्) कार्य्ये जडे जगति (रताः) उपासनातत्पराः । अर्थात् ये प्रकृत्यादिकारणात्मकं जगत् ईश्वरभावेनोपासते ये च पृथिव्यादि पञ्चभूतात्मकं तद्विकारावयवभूतं वा पाषाणादि जडमुपासते ते सर्वेऽपिअज्ञानान्धकारमाप्नुवन्ति नैव कदाचित्कल्याणं लभन्ते किन्तु एकस्यैवाद्वितीयस्याव्याहतशक्तेर्ब्रह्मण उपासका सुखं लभन्ते ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(ये) जो अविद्वान् लोग (असम्भूतिम्) उत्पत्ति रहित जड़ स्वरूप कारण प्रकृति को ईश्वर मान कर (उपासते) उपासना करते हैं वे (अन्धम्, तमः) अज्ञानरूप अन्धकार को (प्रविशन्ति) प्राप्त होते हैं (ततः) उस प्रकृति की उपासना से प्रकृति में लीन होना आदि फल से (भूयइव) बहुत अधिक (तमः) अन्धकार को प्राप्त होते हैं (ये, उ) जो कोई (सम्भूत्याम्) जड़ कार्यजगत् में (रताः) रत हैं अर्थात् इस जगत् को अभीष्ट साधन समझ कर उपासना करते हैं । अर्थात् जो प्रकृति आदि नामवाले कारण-जगत्को ईश्वर मान कर उपासना करते और जो पृथिवी आदि पंच भूतों या पृथिवी आदि के विकार पाषाण आदि कार्य्य जगत् की ईश्वरभावना से उपासना करते हैं वे सभी अज्ञानरूप अन्धकार को प्राप्त होते हैं अर्थात् कभी कल्याण को नहीं प्राप्त होते किन्तु एक अद्वितीय सर्वोपरि शक्तिमान् ब्रह्म के उपासक ही सुख को प्राप्त होते हैं ॥ १२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भवात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे ॥१३॥

(सम्भवात्) कार्य्यजगत उपासनात् (अन्यदेव) आत्मज्ञानोद्भवं नित्यसुखरहितं मन्दबुद्ध्याद्यात्मकमसारसंसार सागरे निमज्जनरूपं फलम् (आहुः) कथयन्ति । (असम्भवात्) जडकारणोपासनात् (अन्यत्) प्रकृतिलीनत्वादिकं फलम् (आहुः) कथयन्ति । (इति) एवं प्रकारकम् (धीराणाम्) विदुषां वचो वयम् (शुश्रुम) शृणुमः (ये) विद्वांसः (नः) अस्मभ्यम् (तत्) उपदेशरूपं वचः (विचचक्षिरे) व्याचक्षते ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(सम्भवात्) कार्य जगत् की उपासना से (अन्यदेव) आत्मज्ञान से होनेवाले नित्यस्थायी सुख से रहित मन्दबुद्धि होकर असार संसारसागर में सदैव गोता खानेरूप फल को (आहुः) कहते हैं (असम्भवात्) जड़ कारण की उपासना से (अन्यत्) प्रकृति में लीन होना आदि फल को (आहुः) कहते हैं (इति) इस प्रकार (धीराणाम्) विद्वानों के वचन हम लोग (शुश्रुम) सुनते हैं । (ये) जो विद्वान् जन (नः) हमारे लिये (तत्) उस उपदेशरूप वचन को (विचचक्षिरे) व्याख्यान करते हैं । अर्थात् कार्य्य-कारण जगत् की उपासना से क्या २ फल होते हैं उनका पृथक् २ व्याख्यान जिज्ञासु लोग विद्वानों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से पूछें और विद्वज्जन इनका पृथक् २ फल यथार्थरूप से दर्शावें। जिससे मनुष्यों को कल्याण का मार्ग ज्ञात हो जावे ॥ १३ ॥

सम्भूतिञ्च विनाशं च यस्तद्वेदोभयꣳसह।
विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्याऽमृतमश्नुते॥१४॥

कार्यकारणयोः फलभेदस्तदुपासनेनाकल्याणप्राप्तिश्चोक्ता। इदानीं कल्याणप्राप्त्युपाय उच्यते (यः) पुरुषः (सम्भूतिम्) शरीरादि कार्य्यं जगत् (च) तन्नियमान् (विनाशम्) अदर्शनात्मकं शरीरादेर्जगत उत्पत्तिकारणम् (च) वासनादिरूपेण स्थितिनियमान् (तत् उभयम्) एतद्द्वयम् (सह) (वेद) जानाति सः (विनाशेन) अदृष्टकारणस्य तत्त्वविज्ञानेन (मृत्युम्) उपलक्षणमिदं जन्मनोपि तेनागामिनो ये जन्ममरणे तज्जं मृत्युसदृशं दुःखसागरं (तीर्त्वा) उत्तीर्य्य (सम्भूत्या) उत्पन्नेन शरीरादिना सहैव (अमृतम्) मरणादिशोकमोहरहितं शान्तिरूपं सुखम् (अश्नुते) प्राप्नोति। जीवन्मुक्तो भवतीत्याशयः। उक्तं च व्यासेन योगशास्त्रभाष्ये—"प्रज्ञाप्रासादमारुह्यअशोच्यः शोचतो जनान्। भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति" तथा च भगवद्गीतायामपि—"यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥" १४॥

भाषार्थः—कार्य्य-कारण की उपासना का फलभेद और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस की उपासना से कल्याण की प्राप्ति न होना पूर्व कहा अब कल्याणप्राप्ति का उपाय कहते हैं। (यः) जो पुरुष (सम्भूतिम्) शरीरादि कार्य्य जगत् (च) और रचना के नियमों को (विनाशम्) शरीरादि कार्य्य जगत् की उत्पत्ति के अदृश्य कारण को (च) और वासनादिरूप से स्थिति के नियमों को (तत्, उभयम्) इन दोनों के तत्त्वों को (सह, वेद) साथ जानता है अर्थात् जन्म-मरण के सम्बन्ध को यथावत् जान लेता है वह (विनाशेन) अदृष्ट कारण के तत्त्वज्ञान से (मृत्युम्) जन्म-मरण से होनेवाले मृत्यु तुल्य दुःखसागर को (तीर्त्वा) तर के (सम्भूत्या) उत्पन्न हुए कार्य्य शरीरादि के साथ ही (अमृतम्) मरणादि से होनेवाले शोक-मोह से रहित शान्तिरूप सुख को (अश्नुते) प्राप्त होता है अर्थात् जीवन्मुक्त हो जाता है, यही मुक्ति का द्वार है। इस विषय में यह अवश्य विचार रखना चाहिये कि यद्यपि यह मुक्ति नहीं तथापि जीवन्मुक्त हुए बिना विद्वान् भी शरीर छोड़के मुक्त नहीं होता किन्तु संचित वासनानुकूल जन्म पाता है फिर साधारण प्राणी क्यों कर मुक्त हो सकते हैं ? अर्थात् जीवन्मुक्त होने के पश्चात् ही शरीर छोड़ कर मुक्त हो सकते हैं इसलिये जीवन्मुक्ति का उपदेश भी मुक्ति का ही द्वार है। जीवन्मुक्त-दशाके विषय में व्यासजी ने योगभाष्य में कहा है कि (प्रज्ञा-प्रासाद०) मनुष्य [योगीजन] जब बुद्धि के शुद्ध, निर्मल सत्त्वगुणमय प्रसन्नतारूप प्रासाद (महल) पर चढ़ जाता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है तब वह सब शोकमोहादि रहित होकर जैसे कोई पहाड़ पर चढ़ कर नीचे के मनुष्यों को नीची दशा में छोटे २ देखे वैसे ही जीवन्मुक्त विद्वान् योगी शोकमोहादियुक्त सब मनुष्यों को नीची दशा में तुच्छतायुक्त देखता है । तथा (यच्च काम०) संसार में जो काम (स्त्रीप्रसङ्ग) भोग में सुख है और जो स्वर्गादि सम्बन्धी उत्तम सुख है वह तृष्णा के नाश समय जीवन्मुक्त-दशा में होने वाले सुख के सोलहवें अंश के बराबर भी नहीं हो सकता । और भगवद्गीता में भी कहा है कि (यंलब्ध्वा-चापरं०) जिस जीवन्मुक्त दशा के सुख को प्राप्त होकर उससे अधिक सुख फिर कहीं भी नहीं मानता अर्थात् वह विद्वान् जब निश्चय कर लेता है कि जिसकी प्राप्ति के लिये अनेक जन्मज-न्मान्तरों तक भटकते हैं, जिस को प्राप्त होना चाहिये वह मैंने पा लिया, अब और कुछ नहीं चाहिये, जिन क्लेशों को छोड़ना अभीष्ट था वे भी छूट गये । इस प्रकार के सुख में स्थित हुए योगी-जन को बड़े २ दुःख भी नहीं डिगा सकते अर्थात् दुःख उस से दूर २ ही रहते हैं इत्यादि जीवन्मुक्त की शास्त्रों में बहुत प्रशंसा है ॥ १४ ॥

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳ शरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर क्लिबे स्मर कृतꣳ स्मर॥१५॥

योगी प्रयाणकाल एवं प्रार्थयेत् । मम (वायुः) प्राणादिवायुः (अमृतम्) मरणधर्मरहितम् । (अनिलम्)

CC-0.Pànini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूत्रात्मानं व्यापकं वायुम्। प्राप्नोत्विति वाक्यशेषः। यद्वा नास्तीला पृथिवी तद्विकारः शरीरादिर्वा यत्र तममृतं मोक्षं मे वायुर्देहान्तरगमनशीलो जीवात्मा प्राप्नुयादित्यर्थः। (अथ) अनन्तरम् (इदम्) प्रत्यक्षम् (शरीरम्) (भस्मान्तम्) अन्ते भस्म यस्य तदेवंभूतम् भूयादिति शेषः। योगिनं प्रति वेदोपदेशः—हे (क्रतो) सङ्कल्पात्मकयोगिन्! त्वम् (ओ३म्) ओमित्युच्चार्य तद्वाच्यं परमात्मानम् (स्मर) तस्य ध्यानं कुरु। (क्लिबे) सामर्थ्याय इष्टाधिगमाय समर्थो भवेयमिति (स्मर)। (कृतम्) पूर्वाचरितं कर्मेदानीं सहायतार्थम् (स्मर) क्लिप् इति कृप् धातोः क्विबन्तं रूपं पृषादरादित्वादिष्टसिद्धिः। "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्। यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिमिति" भगवद्गीतासु। अतो मुमुक्षुणा योगिनावश्यमन्तकाले परमात्मनो ध्यानं कर्त्तव्यं तदाकारवृत्त्या शरीरं त्यक्तव्यमिति भावः॥ १५॥

भाषार्थः—योगी पुरुष मरण समय जैसी प्रार्थना ईश्वर की करे सो इस मन्त्र में कही है। मेरा (वायुः) प्राणादिरूप वायु इस शरीर से निकल कर (अमृतम्) मरणधर्मरहित (अनिलम्) सूत्रात्मा व्यापक वायु का प्राप्त हो अथवा (वायुः) जन्म-जन्मान्तरों में जाने-आने वाला मेरा जीवात्मा (अनिलम्) जिस में पृथिवी का विकार शरीरादि नहीं ऐसे (अमृतम्) मोक्ष को प्राप्त हो (अथ) इस के पश्चात् (इदम्) यह प्रत्यक्ष (शरीरम्) शरीर (भस्मान्तम्) भस्म हो जावे। योगी के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति वेद का उपदेश है कि हे (क्रतो) आत्मा में निश्चय करने-वाले योगिजन ! तू (ओ३म्) प्लुत ओंकार का उच्चारण करके उस ओंकार के वाच्यार्थ परमात्मा का (स्मर) स्मरण कर। (क्लिबे) इष्टप्राप्ति के लिये मैं समर्थ होऊं इस प्रकार (स्मर) स्मरण ध्यान कर (कृतम्) पहिले किये यम-नियमादि कर्म का इस समय सहायतार्थ (स्मर) स्मरण कर। भगवद्गीता में भी कहा है कि "ओ३म्" इस एकाक्षर को बोलता और उस के वाच्यार्थ ईश्वर का ध्यान करता हुआ जो प्राणी शरीर को छोड़ता है, वह परमगति—मोक्ष को प्राप्त होता है। इस लिये अन्त समय में मुमुक्षु योगी पुरुष को परमात्मा का ध्यान अवश्य करना चाहिये अर्थात् चित्त को ईश्वर में लवलीन कर शरीर छोड़ना चाहिये ॥ १५ ॥

अग्ने नय सुपथा रायेअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् । युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ १६ ॥

हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप (देव) कान्तियुक्तेश्वर ! त्वम् (विश्वानि) सर्वाणि (वयुनानि) कर्माणि (विद्वान्) जानन् (अस्मान्) (राये) ऐश्वर्य्याय तत्प्राप्तये (सुपथा) शोभनेन सरलेन मार्गेण (नय) चालय। भवदन्तर्यामि प्रेरणया सुमार्गेण गच्छेमेति भावः । (जुहुराणम्) कुटिलम् (एनः) पापम् (अस्मत्) अस्मत्तः (युयोधि) पृथक् कुरु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ते) तुभ्यम् (भूयिष्ठाम्) बहुतराम् (नमउक्तिम्) नमो-वचनानि वयम् (विधेम) कुर्य्याम । नमस्कारैस्त्वां परिचरेम त्वमस्मान् सुमार्गेण गमयेति प्रार्थयामहे ॥ १६ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप (देव) अद्भुतशोभायुक्त ईश्वर ! आप (विश्वानि) सब (वयुनानि) कर्मोंको (विद्वान्) जानते हुए (अस्मान्) हमको (राये) मोक्षरूप ऐश्वर्य प्राप्त होने के अर्थ (सुपथा) सुन्दर सरल मार्ग से (नय) चलाइये अर्थात् आप अन्तर्यामी की प्रेरणा से हम सुमार्ग में चलें और (जुहुराणम्) कुटिल (एनः) पाप को (अस्मत्) हमसे (युयोधि) पृथक् कीजिये । इस कारण (ते) आपके लिये हम लोग (नम उक्तिम्) नमस्कार (विधेम) विधान करें अर्थात् नमस्कारों से आप की सेवा करें आप हम को सुमार्ग से चलाइये ॥ १६ ॥

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् । ओ३म्
खम्ब्रह्म ॥ १७ ॥

(हिरण्मयेन) स्वर्णमयेन । उपलक्षणमेतद्रजतादीनाम् । (पात्रेण) दारिद्र्यजन्यदुःखाद्रक्षकेण (सत्यस्य) यथार्थस्वरूपस्य मोक्षस्य (मुखम्) द्वारम् (अपिहितम्) अन्तर्हितम् । अत्र जगति सुवर्णाद्यैश्वर्यं प्रायशो विषयभोगसाधनं विष-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

याश्च मुक्तेर्बाधका इत्यतः परम्परया हिरण्याद्यैश्वर्यं मोक्ष-द्वारस्य कपाटवदस्तीत्याशयः। तद्वैराग्येण मोक्षः प्राप्तुं शक्य इति। (यः) (असौ) व्यापकत्वादिन्द्रियागोचरः (आ-दित्ये) प्रकाशमये प्रलयावसरे सर्वस्यादातरि स्वस्वरूपे स्थिरः (पुरुषः) पूर्णः परमात्मास्ति। (सः, असौ) (अहम्) तदाकारवृत्तित्वात्तदभिन्नवृत्तिरहमपि भवेयमिति वाक्यशेषः। ओमिति नामवाच्यम् (खम्) निराकारम् (ब्रह्म) अस्ति 'त-देव ध्यायेदिति ॥ १७ ॥

भाषार्थः—(सत्यस्य) परमेश्वरके साक्षात्कार ज्ञान-रूप मोक्षका (मुखम्) द्वार (हिरण्मयेन) सुवर्ण आदि (पा-त्रेण) दरिद्रता से होने वाले दुःखसे रक्षक धन सम्पत्ति से (अपिहितम्) ढपा हुआ है। अर्थात् इस जगत् में सुवर्णादि ऐश्वर्य ही प्रायः विषयभोग का हेतु है और विषयभोग मुक्ति का बाधक है, इस परम्परा से सुवर्णादि ऐश्वर्य मोक्ष द्वार सम्बन्धी किवाड़ के तुल्य हैं उस ऐश्वर्य्य के साथ वैराग्य-करनेसे ही मोक्ष प्राप्त होता है। (यः) (असौ) जो वह व्यापक होने के कारण इन्द्रियों से अदृष्ट (आदित्ये) स्वयं प्रकाश अथवा प्रलय के समय सब जगत् को अपने में लेनेवाले अपने स्वरूप में स्थिर (पुरुषः) पूर्ण परमात्मा है। (सः, असौ) सो वह (अहम्) मैं होऊँ अर्थात् तदाकारवृत्तिवाला होने से उससे भिन्न बुद्धिवाला मैं न रहूँ किन्तु उसमें लवलीन हो कर अपने को भी भूल जाऊँ। [ओ३म्] इस ओङ्कार का वाच्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(खम्) निराकार (ब्रह्म) परमेश्वर है । उसीका सर्वदा और विशेष कर शरीर छोड़ते समय मनुष्य ध्यान करे ॥१७॥

अयं मन्त्रः शाङ्करभाष्ये सङ्ख्यया पञ्चदशोऽस्ति । अन्येपि मन्त्रास्तत्र विपर्य्यस्ता दृश्यन्ते । अस्य मन्त्रस्योत्तरार्द्धं च शाङ्करभाष्य इत्थमस्ति (तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये) अस्यायमर्थः—हे पूषन् ! सर्वेभ्यो वृद्धतरः तन्मुखद्वारं स्वम् । भवदुपासनादिः सत्यो धर्मो यस्य तस्मै सत्यधर्माय मह्यं दृष्टये दर्शनाय ज्ञानाय—अपावृणु उद्घाटय । योऽसावादित्ये० इत्याद्यस्योत्तरार्द्धं चान्यमन्त्रस्योत्तरार्द्धमस्ति तस्य पूर्वार्द्धं चेत्थमस्ति (पूषन्नेकर्षे यम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह । तेजो यत्ते कल्याणतमं रूपं तत्ते पश्यामि) हे (पूषन्) सर्वपोषक (एकर्षे) एकश्चासावृषिश्च मुख्यर्षे ऋषीणामृषे (यम) न्यायकर्त्तः (सूर्य) प्रेरकान्तर्यामिन् (प्राजापत्य) प्रजापतेः प्रजापालकस्यायं राजा राज्ञां राजन् (रश्मीन्) तापकानि स्वतेजांसि (व्यूह) अस्मत्तः पृथक् कुरु (तेजः) प्रकाशकं दर्शकं ज्ञानात्मकं ज्योतिः (समूह) सम्यक् प्रापय । यत् ते तव कल्याणतमं रूपं तत् ते पश्यामि पश्येयम् । लेट् प्रयोगः । एवमुत्तरार्द्धपूर्वार्द्धभेदेनैको मन्त्रः शाङ्करभाष्येऽधिकोस्ति । यजुर्वेदस्य वाजसनेय्याः संहितायाश्चत्वारिंशत्तमोध्यायः सप्तदशमन्त्रात्मकः सर्वेषु वेदपुस्तकेषूपलभ्यते । एतयैव सङ्ख्यया सर्वमन्त्रसङ्ख्या (१९७५ या चरणव्यूहे श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वतीभिश्च प्रतिपादिता) पूर्णा भवति । एकमन्त्रा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिक्ये नियता सङ्ख्या भिद्यते। अतो ज्ञायतेऽस्यां वाजसनेयोपनिषदि सप्तदशैव वेदमन्त्राः सन्तीति। अष्टदशसंख्या तु कथं कदा च जाता इति निर्णेतुमशक्यम्। श्रीमच्छङ्करस्वामिसमयात्पूर्वमेव संख्याधिक्यं कथञ्चिज्जातमिति तु तेषां भाष्यकरणादेव निश्चीयते।

यह सत्रहवां मन्त्र शङ्करस्वामी के भाष्य में पन्द्रहवां है तथा अन्य भी कई मन्त्र आगे-पीछे लौट पौट हैं और इस सत्रहवें मन्त्र का पिछला आधा भाग श्रीशङ्कर स्वामीजी के भाष्य में ऐसा है कि (तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये) इसका अर्थ—हे (पूषन) सब से बड़े परमात्मन्! (त्वम्) आप (तत्) उस ऐश्वर्य से आच्छादित मुक्ति के द्वार को (सत्यधर्माय) आपकी उपासना करना आदि सत्य जिसका धर्म है। ऐसे मेरे लिये (दृष्टये) ज्ञान होने के अर्थ (अपावृणु) खोलिये, आवरण न कीजिये। और [योऽसा०] इत्यादि सत्रहवें मन्त्र का जो उत्तरार्द्ध है वह शाङ्करभाष्य में सोलहवें मन्त्र का उत्तरार्द्ध है और वह सोलहवें का पूर्वार्द्ध इस प्रकार है (पूषन्नेकर्षेयम सूर्य प्राजापत्य व्यूह रश्मीन् समूह। तेजो यत्ते कल्याणतमं रूपं तत्ते पश्यामि) इसका अर्थ—हे (एकर्षे) ऋषियों में मुख्य ऋषि! (यम) न्यायकर्त्ता (सूर्य) सबके प्रेरक अन्तर्यामिन् (प्राजापत्य) प्रजापालक राजाओं के राजा (पूषन्) सबको पुष्ट करनेवाले ईश्वर! (रश्मीन्) दुःख देनेवाले अपने तेजों को (व्यूह) हम से पृथक् कीजिये (तेजः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशमय मार्ग दिखानेवाले ज्ञानरूप अपने तेज को (समूह) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये। (यत्) जो (ते) आपका (कल्याणतमम्) अतिकल्याणकारी (रूपम्) रूप है (तत् ते) उस आपके स्वरूप को (पश्यामि) ज्ञानदृष्टि से देखूं। इस प्रकार उत्तरार्द्ध पूर्वार्द्ध के भेद से शङ्कराचार्य्य जी के भाष्य में एक मन्त्र अधिक है। यजुर्वेदकी वासनेयी संहिता का चालीसवां अध्याय वेद की सब पुस्तकों में १७ सत्रह मन्त्रका मिलता है इसी संख्या से इस संहिता के सब मन्त्रों की संख्या (१९७५ जो चरणव्यूह में और श्री स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराजने लिखी है) पूरी हो जाती है यदि इस चालीसवें अध्याय में अठारह मन्त्र माने जावें तो संख्या बढ़ जावेगी। इससे यह ज्ञात होता है कि इस अध्याय में सत्रह ही मन्त्र वेद के हैं। अठारह मन्त्रसंख्या कब और कैसे हुई यह निश्चय करना दुस्तर है। परन्तु शङ्कराचार्य्यजी ने अठारह पर भाष्य किया है, इस कारण उनके होने से पहिले ही किसी प्रकार एक मन्त्र बढ़ने का अनुमान होता है।

इतिश्रीभीमसेनशर्मकृतंवाजसनेयोपनिषद्भाष्यंसंपूर्णम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् ।

अथ तलवकारोपनिषद्भाष्यारम्भः ।

सर्वा इमा उपनिषदो वेदमूलिका वेदानुकूलाश्चेति सर्वशिष्टसम्मतम् । तत्र वाजसनेयोपनिषन्मूलयजुर्वेदस्य चत्वारिंशत्तमाध्यायरूपा । अन्याः काश्चिद् ब्राह्मणान्तर्गताः काश्चिच्छाखान्तर्गताः सन्ति तेषु तेषु शाखाब्राह्मणेषु यो यो भागो वेदैकवेद्यब्रह्मणः स्वरूपनिरूपकः स स उपनिषच्छब्दवाच्योस्ति। तत्रेयं तलवकारोपनिषत्—सामवेदीयतलवकारशाखान्तर्गता । तत्राष्टभिरध्यायैः कर्मकाण्डं प्रतिपाद्य नवमेऽध्याये ब्रह्मपरोपनिषदुच्यते–तलवकारशाखा चेदानीमप्रचरिता ॥

अब वाजसनेयोपनिषत्के पश्चात् तलवकारोपनिषत्के भाष्य का आरम्भ किया जाता है। ये सब अर्थात् बारहों उपनिषद् वेदमूलक और वेदानुकूल हैं ऐसी सब शिष्टपुरुषों की सम्मति है। इन में वाजसनेयी उपनिषत् मूलयजुर्वेदकी वाजसनेयीसंहिता का चालीसवाँ अध्याय है। तथा अन्य उपनिषत् कोई ब्राह्मणभागोंके अन्तर्गत कोई शाखाओंके अन्तर्गत हैं उन २ वेदकी शाखा वा ब्राह्मणों में जो २ भाग वेदसे ही जानने योग्य परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाला है वह २ उपनिषद् कहाता है। उनमें यह उपनिषत् तलवकार शाखाके अन्तर्गत है। सामवेद की एक हजार शाखाओंमें से यह एक तलवकार शाखा है। इस शाखा में नव अध्याय हैं प्रथम आठअध्यायमें कर्मकाण्ड का वर्णन है यह नवां अध्याय ज्ञानकाण्डरूप तलवकारीयोपनिषद् कहलाता है, पर इस समय यह शाखा पूरी २ प्रचलित नहीं, बल्कि मिलना भी दुर्लभ सा है। श्रीशंकराचार्य्य स्वामी जी के समयतक प्रचरित थी ॥

केनेषितं पतति प्रेषितं मनः केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति ॥ १ ॥

अन्वितोऽर्थः—(केन) हेतुना (प्रेषितम्) प्रेरितम् (मनः) संकल्पविकल्पात्मकम् (ईषितम्) अभीप्सितं विषयम् (पतति) प्राप्नोति (केन) (युक्तः) स्वकर्मणि नियुक्तः (प्रथमः) स्वाधिकरणस्थानेषु विस्तृतः (प्राणः) शिरःस्थमार्गैर्निस्सरणशीलो वायुः (प्रैति) प्रतिक्षण स्वव्यापारं करोति। (केन ईषिताम्) नियताम् (इमाम्) श्रोत्रद्वारेण प्रत्यक्षीभूताम् (वाचम् वदन्ति) जना इति शेषः। (उ) (कः, देवः) द्योतनात्मकः (चक्षुः श्रोत्रम्) स्वस्वकार्ये (युनक्ति) सर्गकाले सर्वाणीन्द्रियाणि स्वस्वविषयग्राहकाणि केन नियम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्यन्ते। अर्थात् चक्षुषा रूपमेव गृह्यते शब्दः कथं न श्रूयत इति नियमः केन कृतोऽस्ति। प्राप्तसाधनो जीवात्मेन्द्रियैर्मनः संयोज्य कार्याणि करोति। यद्यपि व्यवहारदशायां मनआदीन्द्रियाणां प्रेरकत्वं जीवात्मन एवास्ति तथापि तत्तदिन्द्रियेण विषयग्रहणनियमः केन कृतोऽस्ति। अर्थात् चक्षू रूपग्रहणायैव केन प्रेर्य्यते चक्षुषा रसः किमर्थं न गृह्यते? इति प्रश्नः ॥ १ ॥

भा०—(केन) किससे (प्रेषितम्) प्रेरित किया हुआ (मनः) सङ्कल्पविकल्पवृत्तिवाला मन (इषितम्) अभीष्ट विषय को (पतति) प्राप्त होता और (प्रथमः) अपने स्थान आंख, नाक, कान, मुखादिमें फैला हुआ (प्राणः) छिद्रों द्वारा निकलनेवाला प्राण (केन) किससे (युक्त) अपने कर्म में नियत हुआ (प्रैति) सब समय अपना व्यापार करता है। (केन) किससे (इषिताम्) नियत की हुई (इमाम्) श्रोत्रसे प्रत्यक्ष होनेवाली (वाचम्) वाणी को मनुष्य (वदन्ति) कहते हैं और (कः उ) कौन (देवः) सबके अन्तःकरणों में प्रकाश करनेवाला (चक्षुः) नेत्र और (श्रोत्रम्) कान को अपने कार्य में (युनक्ति) युक्त करता है अर्थात् संसार के उत्पत्तिसमय में सब चक्षु आदि इन्द्रियों को अपने अपने विषय के ग्रहण में कौन नियुक्त करता है नेत्र से रूप ही दीखता है शब्द क्यों नहीं सुना जाता यह नियम किसने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया है ? अपने इन्द्रियादि साधनों को प्राप्त हुआ जीवात्मा इन्द्रियों के साथ मन को संयुक्त करके कार्य करता है। यद्यपि व्यवहार दशा में मन आदि इन्द्रियों का साक्षात् प्रेरक जीवात्मा ही है तथापि उस २ इन्द्रिय से विषय ग्रहण का नियम किसने किया है ? अर्थात् चक्षु को रूप ग्रहण करने के लिये ही कौन प्रेरणा करता है ? क्योंकि नेत्रहीन चाहना कर सकता है कि मुझको अन्य इन्द्रिय से भी रूप दीख पड़े तो सर्वोत्तम है पर ऐसा होना सर्वथा असम्भव क्यों है ? अथवा चक्षुसे रस का स्वाद क्यों नहीं मिल सकता इन सब का नियन्ता कौन है ? ये प्रश्न इस मन्त्र से किये गये हैं इनका उत्तर अगले द्वितीय मन्त्र में दिया है ॥ १ ॥

श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनो यद्वाचो ह वाचं स उ प्राणस्य प्राणः। चक्षुषश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ २ ॥

(यत्) यः (श्रोत्रस्य) श्रूयते शब्दोऽनेन तस्य शब्दग्राहकस्येन्द्रियस्य (श्रोत्रम्) श्रवणशक्तिदानेन तद्रक्षणेन च (मनसः) सुखदुःखादिज्ञानसाधनस्यान्तःकरणस्य (मनः) शक्तिदानरक्षणाभ्यां साधनं ब्रह्म (वाचः) तत् वागिन्द्रियस्य (ह) (वाचम्) वदन्तीति पूर्वेणान्वयः। तस्यैवानुग्रहेण वागिन्द्रियं प्रवर्त्ततेऽन्यथा मूकत्वादिसम्भवः। यथा सूर्यानु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहेण चक्षुः पश्यति सूर्यश्च यस्यानुग्रहेण तपति तदेवान्यकारणानामपि कारणम् । (सः, उ) स एव (प्राणस्य) हृत्स्थस्योद्ध्वंगामिनो वायोः (प्राणः) चालयिता (चक्षुषः) चष्टे रूपं पश्यत्यनेन तस्येन्द्रियस्य (चक्षुः) दर्शनशक्तिसाधनम् । एवं श्रोत्रादिकृत्यसाधकं यद्ब्रह्म तस्यैव प्रेरणया नियमेन वा मनआदीनीन्द्रियाणि स्वं स्वं कर्मातिवाहयन्ति तेन च यद्यत्पृथिव्यादिभूतमुपादाय यद्यद्घ्राणादीन्द्रियं निर्मितं तत्तदिन्द्रियं कार्यकारणसम्बन्धात्तस्यतस्यैव पृथिव्यादिभूतस्य गन्धादिगुणं गृह्णातीति नियमस्तेनैव कृतोऽस्ति तदेतत्पूर्वमन्त्रस्योत्तरम्। तस्य नियामकत्वेपि श्रोत्रादित्वं न भवति । अतएव शरीरेन्द्रियसंगं जीवन्त एव (अतिमुच्य) त्यक्त्वा (धीराः) ध्यानशीला योगिनो मनुष्याः (अस्मात्) प्रत्यक्षात् (लोकात्) दृश्याद्वस्तुनो देहादिभ्यश्च (प्रेत्य) मृत्वा (अमृताः) अमरणधर्माणो मुक्ता (भवन्ति) ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यत्) जो (श्रोत्रस्य) सुनने के साधन शब्दग्राहक श्रोत्र इन्द्रिय का (श्रोत्रम्) सुनने की शक्ति देने वा उस की रक्षा करने से श्रोत्र (मनसः) दुखादि ज्ञान के साधन अन्तःकरण का (मनः) मनन शक्ति देने वा उस की रक्षा करने से मन जो ब्रह्म उसको विद्वान् लोग (वाचः) वाणी का (वाचम्) वाणी कहते हैं अर्थात् उसी की कृपा से वाणी अपने काम में प्रवृत्त होती है अन्यथा मूक (गूंगा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना सम्भव है। (सः, उ) वही परमेश्वर (प्राणस्य) हृदय से ऊपर को निकलनेवाले प्राण वायु का (प्राणः) चलानेवाला (चक्षुषः) रूप देखने के साधन चक्षु इन्द्रिय का (चक्षुः) दिखानेवाला है। इस प्रकार इन्द्रियों को सिद्ध करनेवाला जो ब्रह्म उसी की प्रेरणा वा नियम से मन आदि इन्द्रिय गण अपने २ कर्म करने में समर्थ होते हैं। उस ईश्वर ने जिस २ पृथिव्यादि तत्त्व से जो २ नासिकादि इन्द्रिय बनाया है वह २ इन्द्रिय कार्य्य कारण सम्बन्ध से उसी २ पृथिवी आदि तत्त्व के गन्धआदि गुण को ग्रहण करता है यह नियम उसी सर्वनियन्ता ने किया है अर्थात् चक्षु (आंख) इन्द्रिय को अग्नितत्त्व से बनाया इसी कारण वह अग्नि के रूपगुण को ही ग्रहण कर सकता है अन्य को नहीं। यह पूर्व मंत्रोक्त प्रश्न का उत्तर हो गया। यद्यपि वह ईश्वर इन्द्रियों के विषयों का नियन्ता है तथापि वह इन्द्रियों में बद्ध नहीं होता। इसी लिये शरीर तथा श्रोत्रादि इन्द्रियों के संग को जीवित दशा में ही (अति मुच्य) छोड़ के (धीराः) असंग ईश्वर का ध्यान करनेवाले योगीजन वासनादि अन्तःकरण के बन्धन से पृथक् होने के कारण (अस्मात्) इस (लोकात्) प्रत्यक्ष धनादि वा देहादि से (प्रेत्य) मरकर (अमृताः) मरण धर्मरहित मुक्त (भवन्ति) हो जाते हैं ॥ २)

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न विद्मो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद्व्याचचक्षिरे ॥ ३ ॥

(तत्र) ब्रह्मणि (चक्षुः) रूपग्रहणाय (न,गच्छति) तस्यारूपत्वात् (वाक्) श्रोत्रद्वारमिव (न,गच्छति) (नो, मनः) न च मनस्तत्र गच्छति मनसोऽपि तस्यातिगतिमत्त्वात् । अत एवोक्तं वाजसनेय्यां मनसो जवीय इति । एवमन्यान्यपीन्द्रियाणि तत्र गन्तुमसमर्थानि चक्षुरादीनामुपलक्षणार्थत्वात् । अतएव वयम् (न, विद्मः) इन्द्रियमनोभ्यामेव वस्तु ज्ञातुं शक्यते (न, विजानीमः) विशेषतयापि ज्ञातुं न शक्नुमः । अवयवविभागज्ञानमन्तरेणाकृतिमात्रज्ञानं सामान्यज्ञानं, अवयवविभागज्ञानपूर्वकं विज्ञानं विशेषज्ञानम् । तस्यातीन्द्रियत्वादुभयथापि न जानीम इत्यर्थः । (यथा) येन प्रकारेण (अनुशिष्यात्) शिष्याद्यायोपदिशेत् । यथा ज्ञातं वस्तूपदेष्टुं शक्यते न तथेन्द्रियागोचरत्वेन विज्ञानाभावात्तस्यानुशासनं कर्तुं शक्यम् । (तत्) ब्रह्म (विदितात्) इन्द्रियज्ञातविषयात् (अन्यत्, एव) पृथगेवास्ति तर्हि न केनापि ज्ञातुं शक्यमिति प्राप्तम् । अत आह (अथो) अनन्तरम् (अविदितात्) विदिक्रियाया अविषयीभूतादव्याकृतादव्यक्तात् (अधि) उपरि वर्त्ततेऽन्यदस्तीत्यर्थः । अथवाऽविदितमव्याकृतं जगत्कारणं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणवाद्यतिसूक्ष्मं तस्मादन्यत् । विदितादन्यदित्युक्तया हेय-शून्यम् । इन्द्रियगोचरा नश्वरा विषया हेयास्तद्विलक्षणं ब्रह्मा-तएवाहेयम्। सर्वत्र व्याप्तत्वाद्धानं कर्त्तुमशक्यम्। तथा साकारं वस्तूपादीयते तस्य च निराकारत्वादुपादानमसम्भवम् । एवं विदिताविदिताभ्यां विलक्षणं ब्रह्म (इति) एवम् (पूर्वेषाम्) पूर्वाचार्याणां वचो वयम् (शुश्रुम) श्रुतवन्तः । (ये) आचा-र्य्याः (नः) अस्मभ्यम् (तत्) ब्रह्म (व्याचचक्षिरे) व्या-ख्यातवन्तः । इदमुक्तं भवति ब्रह्मस्वरूपनिरूपकेण ब्रह्म पृष्टेन गुरुणा शिष्या उपदेष्टव्यास्तद्ब्रह्म भौतिकेन्द्रियैर्ज्ञातुमशक्यं तदविषयीभूतत्वात् । किन्तु अन्तःकरणशुद्ध्या सूक्ष्मबुद्धि-ग्राह्यं महता कालेन श्रमेण वा केनचित्कदाचिदेव प्राप्यं न तु सर्वदा सर्वेणेति गुरुशिष्यपरम्पराताः पूर्वेषामाचार्याणां वचां स्यश्रौषमहमिति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(तत्र) उस ब्रह्म में रूपग्रहण करने के तुल्य (चक्षुः) नेत्र (न, गच्छति) नहीं जाता (वाक्) वाणी जैसे कान में जाती है, वैसे (न, गच्छति) नहीं जाती (नो, मनः) मन भी उस ब्रह्म में नहीं पहुँचता क्योंकि मन का स्वभाव चञ्चल है चञ्चलता में ईश्वर प्राप्त नहीं हो . सकता (वाजस-नेयी उपनिषद् में लिख चुके हैं कि वह ईश्वर मन से भी अधिक गतिवाला है जैसा जैसा मन दूर २ भागता है वैसा वह उस से दूर २ रहता है । तथा चक्षु आदि के उपलक्षणसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्य इन्द्रिय भी उसको प्राप्त नहीं हो सकते) इसी कारण हमलोग (न, विद्मः) उसको नहीं जानते मन और इन्द्रिय के संयोग से वस्तु जाना जाता है सो मन की गति का प्रथम ही निषेध कर दिया। (न, विजानीमः) विशेष करके भी हम नहीं जान सकते। अवयवज्ञान के बिना आकृतिमात्र का ज्ञान सामान्य ज्ञान है और अवयवों के विभाग-ज्ञान-पूर्वक उस वस्तु को जानना विशेष ज्ञान है। जैसे दूर से देख कर जान लिया कि कोई पशु है और जब समीप से देखा तो जाना कि यह अमुक पशु है इसमें पहिला सामान्य और दूसरा विशेष ज्ञान है सो उस ईश्वर के अतीन्द्रिय होने से हम सामान्य विशेष दोनों प्रकार नहीं जान सकते कि (यथा) जैसे (एतत्) इस उक्त ब्रह्मस्वरूप का पुत्र वा शिष्य के अर्थ (अनुशिष्यात्) उपदेश करे। यथावत् जाने हुए वस्तु का उपदेश करना बन सकता है कि अमुक पदार्थका स्वरूप ऐसा है ईश्वर में इन्द्रियों की पहुँच नहीं हो सकती तो उसके स्वरूप का उपदेश कैसे किया जा सकता है। (तत्) वह ब्रह्म (विदितात्) इन्द्रिय से जाने हुए विषय से (अन्यत् एव) भिन्न ही है (अथो) और (अविदितात्) जो कभी नहीं जाना जाता उस अव्याकृत (अर्थात् जिस का व्याकरण नहीं हो सकता कि ऐसा ऐसा है) अव्यक्त से (अधि) ऊपर अर्थात् भिन्न है अथवा प्रकृति अव्याकृत जो जगत् का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण परमाणु आदि अतिसूक्ष्म है उससे भी भिन्न है। विदित से भिन्न कहने से यह तात्पर्य है कि ईश्वर त्याज्य नहीं। क्योंकि इन्द्रियग्राह्य नाशवान् विषय त्याज्य होते हैं ईश्वर उस से विलक्षण है इस से त्याज्य नहीं सर्वव्यापक होने से ईश्वर से भिन्न कोई कभी नहीं हो सकता न उसको छोड़ सकता है और साकार वस्तु पकड़ने में आता है उसके निराकार होने से ग्रहण करना असम्भव है इस कारण ज्ञात अज्ञात से विलक्षण ईश्वर है (इति) इस प्रकार (पूर्वेषाम्) पूर्वज आचार्य्यों के वचन हमने (शुश्रुम) सुने हैं (ये) जो आचार्य गुरु लोग (नः) हमारे लिये (तत्) उस शुद्ध सनातन ब्रह्म का (व्याचचक्षिरे) उपदेश करते आये हैं ॥

अभिप्राय यह है कि जब ब्रह्मनिष्ठ गुरु से कोई शिष्य पूछे तो गुरु को उपदेश करना चाहिये कि वह ब्रह्म भौतिक इन्द्रियों से जानने योग्य नहीं है। क्योंकि वह रूपादि विषय में नहीं किन्तु अन्तःकरण की शुद्धि से सूक्ष्मबुद्धि करके ग्रहण करने योग्य है। बहुत काल में बड़े परिश्रम से कभी कोई उस को प्राप्त हो सकता है, किन्तु सब काल में सब कोई प्राप्त नहीं हो सकता। इस प्रकार गुरु शिष्य की परम्परा से पूर्वज आचार्यों के वचन हमने सुने हैं ॥ ३ ॥

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत्) ब्रह्म (वाचा) वागिन्द्रियेण (अनभ्युदितम्) अप्रकाशितम् वाचा शब्दः प्रकटीभवति, अशब्दं ब्रह्मातो वाग्-विषयो न भवतीत्यर्थः । (येन) ब्रह्मणा (वाक्) (अभ्युद्यते) प्रकाशिता भवति (अर्थाद्ब्रह्मकृतनियमेनैव वाचोच्चारितः शब्दोऽर्थं बोधयति। यद्यपि वेदादिशब्दप्रमाणमाश्रित्यैवमादि-प्रकारकं ब्रह्मेत्याचार्य्या वाचैव शिष्यानुपदिशन्ति तेन च यथा-संस्कारमन्तेवासिनोऽपि ब्रह्म बुध्यन्ते तथापि साऽऽचार्य्या-णां वाक् शब्दार्थसम्बन्धज्ञापनायैव प्रयुक्ता ब्रह्मज्ञानं प्रति कारणं न भवति । किन्तूच्चरिताया वाचः श्रवणं प्रतिकारणत्वं स्वसाधनसिद्धस्य ध्यानस्य न ब्रह्मज्ञानं प्रति साक्षात्कारणत्व-म्) (तत्, एव, त्वम्) वाचोह्वाचमित्यादिनोपदिष्टम् (ब्रह्म) (विद्धि) जानीहि । मनुष्याः (यदिदम्) कार्यं वागिन्द्रिय-गम्यं शब्दादिरूपम् (उपासते) सेवन्ते तत् (इदम्) (न) ब्रह्म नास्तीति शेषः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यत्) जो ब्रह्म (वाचा) वाणी से (अनभ्यु-दितम्) नहीं कहा जाता वा प्रकाशित नहीं होता। वाणी से शब्द प्रकट होता है शब्द से भिन्न होने से ब्रह्म वाणी का विषय नहीं होता। (येन) जिस ब्रह्म से (वाक्) वाणी (अभ्यु-द्यते) प्रकाशित होती है अर्थात् ईश्वरकृत नियम से ही वाणी करके उच्चारित शब्द अर्थ का बोध कराता है। यद्यपि वेदादि शास्त्र के प्रमाण के आश्रय से ही ब्रह्म ऐसा २ है इत्यादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार आचार्य लोग वाणी से ही शिष्यों को उपदेश करते हैं उससे बुद्धि के अनुसार शिष्य लोग भी ब्रह्म को जानते हैं तो भी गुरु लोगों की वह वाणी शब्द और अर्थ का सम्बन्ध जताने के लिये जैसे कारण होती है वैसे ब्रह्मज्ञान के लिये नहीं किन्तु उच्चारण की हुई वाणी सुनने में कारण होती और अपने साधनों सहित ध्यान ब्रह्मज्ञान का साक्षात् कारण होता है। (तत्, एव) उसी वाणी की वाणी इत्यादि प्रकार से कहे हुए को (त्वम्) तू (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान और मनुष्य लोग (यदिदम्) जिस वाणी से प्राप्त होने योग्य शब्दादिरूप कार्य को (उपासते) सेवन करते हैं (तदिदम्) वह यह (न) ब्रह्म नहीं है ॥ ४ ॥

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ५ ॥

(यत्) ब्रह्म (मनसा) मनुतेऽनेनेति मनोऽन्तःकरणं ज्ञातुर्जीवात्मनः सुखदुःखादिजन्यस्य ज्ञानस्य साधनं तेन (न, मनुते) न सङ्कल्पयति न निश्चिनोति किन्त्वकायत्वादन्तःकरणमन्तरेणैव ब्रह्म सर्वं वेत्ति। (येन) ब्रह्मणा (मनः) अन्तःकरणम् (मतम्) ज्ञातं विषयीकृतं व्यापकत्वात्प्राप्तं व्याप्तं वा (आहुः) वदन्ति ब्रह्मविद इति शेषः। (तत्, एव) मनसो मन इत्यादिना प्रतिपादितम् (त्वम्) जिज्ञासो! (ब्रह्म) (विद्धि) जानीहि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यदिदम्) मनोगम्यं सुखादिकम् (उपासते) जनाः सेवन्ते तदिदं ब्रह्म (न) नास्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(यत्) जो ब्रह्म (मनसा) जीवात्मा के सुख दुःखादि से होनेवाले ज्ञान के साधन अन्तःकरण से (न,मनुते) निश्चय नहीं करता किन्तु शरीर रहित होने से अन्तःकरण के विना ही ईश्वर सबको जानता है (येन) जिस ईश्वरसे (मनः) अन्तःकरण (मतम्) जाना गया (विषय किया गया) व्यापक होने से जो अन्तःकरण में मिल रहा है ऐसा (आहुः) ब्रह्म-वेत्ता महर्षि लोग कहते हैं (तदेव) उसी मन के मन आदि विशेषणों से कहेको (त्वम्) हे जिज्ञासु ! तू (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान(यदिदम्) जो यह मनसे जानने योग्य सुखादि हैं जिसको (उपासते) सर्वसाधारण लोग सेवन करते हैं (इदम्) वह यह ब्रह्म (न) नहीं है ॥ ५ ॥

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूंषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ६ ॥

(यत्) ब्रह्म (चक्षुषा) रूपज्ञानसाधनेन्द्रियेण (न, पश्यति) (येन) ब्रह्मणा (चक्षूंषि) बुद्धिवृत्तीरन्तःकरणभेदभिन्नाः (पश्यति) जीवात्मेति शेषः । (तत्, एव) चक्षुषश्चक्षुरित्यादिना प्रतिपादितम् (त्वम्) (ब्रह्म, विद्धि) (यदिदम्) चक्षुर्ग्राह्यं रूपान्वितं वस्तुजातं जनाः (उपासते) सेवन्ते तत् (इदम्) (न) ब्रह्म नास्तीति जानीहि ॥ ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थ—(यत्) जो ब्रह्म (चक्षुषा) रूपज्ञान के साधन इन्द्रिय से (न, पश्यति) नहीं देखता (येन) जिस ब्रह्म की कृपा वा सत्ता से जीवात्मा (चक्षूंषि) अन्तःकरण (दिल) की वृत्तियों [लहरों] को (पश्यति) देखता है (त्वम्) तू (तदेव) उसी चक्षुके चक्षुको (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (यदिदम्) इस नेत्र से देखने योग्य जिस वस्तु को मनुष्य (उपासते) सेवन करते हैं वह (इदम्) यह ब्रह्म (न) नहीं है ॥ ६ ॥

यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ७ ॥

(यत्) ब्रह्म (श्रोत्रेण) श्रवणसाधनेन (न, शृणोति) (येन) ब्रह्मणा (इदम्) श्रोत्रम् कर्णेन्द्रियम् (श्रुतम्) व्यापकत्वाद् विषयीकृतं ज्ञातम् श्रोत्रमपि ब्रह्मसत्तामन्तरेण स्वकार्य्यं दातुमसमर्थमित्यर्थः । (तदेवेत्यादि) पूर्ववत् ॥ ७ ॥

भा०—(यत्) जो ब्रह्म (श्रोत्रेण) सुनने के साधन कान इन्द्रिय से (न, शृणोति) नहीं सुनता (येन) जिस ब्रह्म से (इदम्) यह (श्रोत्रम्) कान इन्द्रिय (श्रुतम्) ब्रह्म के व्यापक होने से प्राप्त किया वा जाना गया अर्थात् कान भी जिस ईश्वर की सत्ता वा उसके निर्मित नियमों के बिना अपना काम नहीं दे सकता । हे मनुष्य ! (त्वम्) तू (तदेव) उसी को (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान । (यदिदम्) जिस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस श्रोत्र इन्द्रिय के शब्द आदि विषय का मनुष्य (उपासते) सेवन करते हैं (इदं, न) यह ब्रह्म नहीं है ॥ ७ ॥

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ ८ ॥

(यत्) ब्रह्म (प्राणेन) श्वासावृत्त्या (न, प्राणिति) पार्थिवनासिकापुटाभ्यां न श्वसिति (येन) कारणभूतेन ब्रह्मणा (प्राणः) (प्रणीयते) स्वस्य कर्मणि चेष्टते (तदेव) (त्वम्) जीवात्मन् ! (ब्रह्म) (विद्धि) जानीहि (यदिदम्) जनाः (उपासते) तत् (इदम्) न ब्रह्म नास्तीति ॥८॥

भाषार्थ—(यत्) जो ब्रह्म (प्राणेन) श्वास के आने जाने द्वारा (न, प्राणिति) पृथ्वी से बने नासिका के पुटों से श्वास नहीं लेता (येन) जिस कारणरूप ब्रह्म से (प्राणः) प्राण (प्रणीयते) अपना कर्म करता अर्थात् ईश्वर की सत्ता वा उसके नियम के बिना प्राण भी कुछ नहीं कर सकता। हे जीवात्मन् ! (त्वम्) तू (तदेव) उसीको (ब्रह्म) ब्रह्म (विद्धि) जान (यदिदम्) जिस जीवन मरणान्तर्गत प्राण वायुका मनुष्य (उपासते) सेवन करते हैं (इदम्, न) यह ब्रह्म नहीं है ॥ ८ ॥

इत्येवमस्मिन् प्रथमे खण्डे व्याप्यव्यापकसम्बन्धेनेन्द्रियेषु व्याप्तत्वात्संनिहितमपि विषयापेतं ब्रह्माकृतात्मभिर्दुर्ज्ञेयमिति प्रतिपादितम् । वाङ्मनश्चक्षुःश्रोत्रप्राणानां प्राधान्यादुपलक्षणा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्थं ग्रहणम्। तत्र कर्मेन्द्रियेषु वाचः प्राधान्यम्। ज्ञानेन्द्रियेषु चक्षुषः श्रोत्रस्य च, मन उभयात्मकम्। वायुभेदेषु प्राणस्य प्राधान्यम्। यत्कर्त्तुं प्रधानस्य सामर्थ्यं नास्ति तत्राप्रधानस्य काकथेति ध्वनितम्॥ इति प्रथमः खण्डः॥

इस प्रकार इस प्रथम खण्ड में व्याप्य व्यापक सम्बन्ध से इन्द्रियों में व्याप्त होने से समीप भी वर्त्तमान हुए विषयों से अलग ब्रह्म का साधारण मनुष्यों को ज्ञान होना कठिन है यह कहा। वाणी मन चक्षुः श्रोत्र और प्राण मुख्य होने से इनका उपलक्षणार्थ ग्रहण है। कर्मेन्द्रियों में वाणी प्रधान ज्ञानेन्द्रियों में चक्षु और श्रोत्र प्रधान, मन दोनों रूप, और वायु के भेदों में प्राण प्रधान है। जिसको प्रधान नहीं कर सकता उसमें अप्रधान की क्या कथा है॥

इति प्रथमः खण्डः॥

अस्यामुपनिषदि गुरुशिष्यसंवादेन ब्रह्म स्वरूपनिरूपणं पूर्वतः प्रारब्धम्। तत्र प्रथममन्त्रे जिज्ञासुना प्रश्नः कृतस्तस्योत्तरं गुरुणाष्टमन्त्रैः प्रतिपाद्येदानीं तेनैवोच्यते॥

इस उपनिषद् में गुरु शिष्य के संवाद पूर्वक ब्रह्म के स्वरूप का निरूपण करना पहिले से आरम्भ किया है। इसमें पहिले मन्त्र से जिज्ञासु ने प्रश्न किया है उसका उत्तर गुरु ने आठ मन्त्रों करके दिया। अब प्रकारान्तर से समझानेके लिये गुरु पुनः उपदेश करता है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् । यदस्य त्वं यदस्य देवेष्वथ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ॥ ६ ॥ १ ॥

हे शिष्य ! (यदि) (त्वम्) (अस्य) ब्रह्मणः (यत्) (दभ्रम्) सूक्ष्मम् (एव) (रूपम्) स्वरूपम् । रूपमिति नेन्द्रियग्राह्यमत्र कल्पनीयमपि तु येन धर्मेण यन्निरूप्यते तदेव तस्य रूपमिति विज्ञेयम् । (नूनम्) निश्चयेन तत् (सुवेद) सुष्ठु वेदाहम् (इति) (मन्यसे) (तर्हि) देवेषु (विद्वत्सु) विद्याप्रकाशेन (विदितम्) प्रकाशितम् (यत्) (अस्य) ब्रह्मणो रूपं तत्त्वम् (वेत्थ) जानासि इति नाहं मन्ये इति शेषः । (अथ, नु) अनन्तरं नु (ते) तव ब्रह्म (मीमांस्यमेव) उपपत्तिभिस्तर्कवितर्कैर्विचार्यमेवास्तीत्यहम् (मन्ये) साधु मन्ये । अर्थात् यो जानाति मया सम्यग्ब्रह्म ज्ञातमिति स न जानाति यदा साधारणावस्थायामप्यहङ्कारस्य तत्तत्कार्यविरोधित्वं तदा किमुत ब्रह्मज्ञानेऽहङ्कारः साधको भवेदिति सम्भवोऽस्ति ? अतो ज्ञात्वापि नैवमभिमन्तव्यं वक्तव्यं वाऽहं सुवेदेति नेयं विदुषां मर्य्यादा । यदि सुवेदाहं ब्रह्मेति त्वं मन्यसे तर्हि मैवं मंस्थाः । नैवं मन्यमानो वृद्धिमवाप्नोति । अतस्त्वया मीमांस्यमेव ब्रह्मेति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—हे शिष्य ! (यदि) जो (त्वम्) तू (अस्य) इस (ब्रह्मणः) ब्रह्म का (यत्) जो (दभ्रम्) सूक्ष्म (एव)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो (रूपम्) स्वरूप है [चक्षु इन्द्रिय से जिसका ग्रहण हो वही रूप शब्द का अर्थ लेना चाहिये यह नियम नहीं है, किन्तु जिस २ गुण-कर्म के स्वभाव से जिस वस्तु का निरूपण किया जाता वह उसका रूप जानना चाहिये] उसको मैं (सुवेद) अच्छे प्रकार जानता हूँ (इति) ऐसा तू (मन्यसे) मानता है तो (देवेषु) विद्वानों में विद्या के प्रकाश से (विदितम्) प्रकाशित (यत्) जो (अस्य) इस ब्रह्म का स्वरूप है उसको (त्वम्) तू (वेत्थ) जानता है ऐसा मैं [आचार्य] नहीं मानता। (अथ) इसके अनन्तर (नु) निश्चय करके (ते) तुझको (मीमांस्यमेव) तर्क-वितर्कों से ब्रह्म का विचार करना ही चाहिये इसीको मैं (मन्ये) अच्छा मानता हूँ अर्थात् जो जानता है कि मैंने अच्छे प्रकार ब्रह्म को जान लिया वह नहीं जानता। जब साधारण अवस्था में भी अहङ्कार उन २ कार्यों का विरोधी होता है तो क्या ब्रह्मज्ञान ऐसे बड़े विषय में अहङ्कार कार्य साधक हो यह सम्भव है ? कदापि नहीं। जानकर भी मनुष्य को अभिमान नहीं करना वा नहीं कहना चाहिये कि मैं अच्छे प्रकार जानता हूँ क्योंकि यह विद्वानों की मर्यादा नहीं है। यदि अच्छे प्रकार मैं ब्रह्म को जानता हूँ ऐसा तेरे चित्त में अभिमान हो तो उसको छोड़ दे क्योंकि ऐसा माननेवाला उन्नति को नहीं प्राप्त होता जो अपने को कृतकार्य मानता है। इसलिये तुझको ब्रह्मका विचार अवश्य करना चाहिये ॥६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाहं मन्ये सुवेदेति नो न वेदेति वेद च ।
यो नस्तद्वेद तद्वेद नो न वेदेति वेद च ॥१०॥ ॥२॥

(अहम्) ब्रह्म (सुवेद) (इति) (न, मन्ये) (न वेद) इति च (नो) न मन्ये (वेद, च) जानाम्यपि (नः) अस्माकं विद्यार्थिनां मध्ये (यः) कश्चित्सतीर्थ्यः (तत्) मदुक्तं वचः (वेद) जानाति सः (तत्) ब्रह्म (वेद) जानाति किन्तन्मदुक्तं वच इत्याह—नो न वेदेति वेद चेति । अहम्ब्रह्म सुवेद इति न मन्ये इति कथनेन पूर्वमन्त्रोक्ता शङ्का निराकृता य एवं साहङ्कारं ब्रूयादहं सुवेदेति न स जानाति । अहङ्कारस्यास्मिताक्लेशान्तर्गतत्वाज्ज्ञानस्य चेदं गुह्यं लक्षणं यदहङ्कारविरहं स्वरूपावस्थानम् । तर्हि त्वं न वेत्थेति प्राप्तम् । तत आह–न वेदेत्यपि नो मन्ये । अपि तु वेद । विदित्वापि सुवेद न वेद वा इति नो मन्ये । य एवं जानाति स ब्रह्म वेद । न वेद इत्येतयोर्निर्वचनं कर्त्तुमशक्यमनुभवमात्रग्राह्यत्वात् । ब्रह्म किमित्याशङ्कानिरासान्न वेदेति वक्तुं न शक्यते । प्रत्यक्षमिवाव्यपदेश्यं ब्रह्मेत्याशयः । यथेन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नमात्रस्य व्यपदेष्टुमनर्हस्य ज्ञानस्य प्रत्यक्षत्वमेवं व्यपदेशानर्हस्यैव ब्रह्मज्ञानत्वम् । अतएव न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मन इत्यादि सङ्गच्छते ॥ १० ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं ब्रह्म को (सुवेद) अच्छे प्रकार जानता हूँ (इति) ऐसा (न, मन्ये) नहीं मानता और (न,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद) नहीं जानता (इति) ऐसा भी (नो) नहीं मानता (वेद, च) पर जानता हूँ कि ब्रह्म है (नः) हम विद्यार्थियों में से (यः) जो कोई (तत्) मेरे उक्त वचन को (वेद) जानता है, वह (तत्) उस ब्रह्म को (वेद) जानता है। वह मेरा वचन क्या है ? (नो न वेदेति वेद च) जानता हूँ पर मैं नहीं जानता ऐसा नहीं मानता, मैं अच्छे प्रकार जानता हूँ ऐसा भी नहीं मानता। मैं ब्रह्म को अच्छे प्रकार जानता हूँ ऐसा नहीं मानता इस कथन से पूर्वमन्त्रोक्त अहङ्कार की निवृत्ति की है। जो अहङ्कार सहित ऐसा कहे कि मैं अच्छे प्रकार जानता हूँ वह नहीं जानता। क्योंकि अहङ्कार पांच अविद्यादि क्लेशों में अस्मिता नाम से प्रसिद्ध है और ज्ञान का अनुभव किया हुआ गुप्त लक्षण यही है कि अहङ्काररहित होकर स्वरूप में अवस्थित होना। यदि ऐसी शङ्का हो कि 'जब मैं जानता हूँ' ऐसा विचार रखना उचित नहीं तो तू नहीं जानता होगा इसलिये कहा कि मैं नहीं जानता। यह भी नहीं मानता किन्तु जानता भी हूँ। जानकर भी अच्छे प्रकार जानता वा नहीं जानता ऐसा नहीं मानता यही जानता हूँ। अर्थात् अच्छा जानता वा नहीं जानता इन दोनों का ठीक कहना नहीं बनता। ईश्वर विषयक ज्ञान केवल अनुभव ग्राह्य है ब्रह्मज्ञान के विषय में शङ्का न रहने से मैं नहीं जानता यह भी नहीं कह सकता। जैसे इन्द्रिय और विषय के संयोग से अक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थनीय ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं ऐसे ही ब्रह्मज्ञान भी कथन करने योग्य नहीं है। इसीलिये उस ब्रह्म में चक्षु, वाणी और मन नहीं पहुँचते इत्यादि पूर्वोक्त वचन सार्थक होता है ॥१०॥

यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः।
अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम् ॥ ११ ॥ ३ ॥

सम्प्रति पूर्वमन्त्रोक्तविषयस्यातिसूक्ष्मदृष्ट्या सारांशमाहः—(यस्य) प्रभूततत्त्वज्ञानस्य ब्रह्म (अमतम्) अज्ञातम् [मनसेति शेषः] चक्षुरादिसाधनासिद्धस्य ज्ञानस्य साधनं मनोरूपादीनां चक्षुरादीनीव। यथा चक्षुषा पश्यति तथा मनसा विजानाति, इति वात्स्यायनोक्तेः। इति मतं निश्चयः (तस्य) (मतम्) ज्ञातं ते न सम्यग्बुद्धं ब्रह्मेति (यस्य) मनआदिना मया (मतम्) ज्ञातं विदितं ब्रह्मेत्याशयः। (सः, न, वेद) स न तज्जानाति। अतएव (विजानताम्) ब्रह्मविज्ञानाभिमानिनाम् (अविज्ञातम्) न तैर्ज्ञायते ये च (अविजानताम्) तद्विज्ञानाभिमानं त्यक्तवन्तस्तेषाम् (विज्ञातम्) तैः सम्यग्ज्ञातमित्यर्थः ॥ ११ ॥

भा०—अब अतिसूक्ष्म दृष्टि से पूर्वोक्त मन्त्रका सारांश कहते हैं—(यस्य) जिस प्रबल तत्त्वज्ञान को प्राप्त विद्वान् का मत (सिद्धान्त) वा नियम ऐसा है कि ब्रह्म (अमतम्) मन से नहीं जाना जाता (तस्य) उसको ब्रह्म का (मतम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान है अर्थात् उसने ब्रह्म को ठीक जान लिया है। क्योंकि चक्षु आदि साधनों से सिद्ध न होनेवाले ज्ञान का साधन मन, रूपादि विषयज्ञान के साधन चक्षु आदि के तुल्य है। जैसे चक्षुसे देखता वैसे मन से जानता है और (यस्य) जिसका मत है कि मन आदि से ब्रह्म (मतम्) जाना जाता है (न, सः, वेद) वह उसको नहीं जानता। इसीलिये (विज्ञानताम्) ब्रह्मज्ञान के अभिमानियों को (अविज्ञातम्) ब्रह्म का ज्ञान ही नहीं होता और जो (अविज्ञानताम्) ब्रह्मज्ञान के अभिमान को छोड़ चुके हों, उन को (विज्ञातम्) अच्छे प्रकार ब्रह्म का ज्ञान है। इसका मुख्य अभिप्राय यही है कि जिसको लोग ब्रह्मज्ञानी मानते वा स्वयं जो अपने को ज्ञानी मानता है वह ज्ञानी नहीं। ब्रह्मज्ञानी को सर्व साधारण लोग नहीं जान सकते और वह भी सबको नहीं जता सकता कि मैं ऐसा हूँ उसको वे योगीजन ही जान सकते हैं (खग जाने खग ही की भाषा) ब्रह्मज्ञानी साधारण संसारी मनुष्यों से घृणा करता है। उसकी दशा अकथनीय तथा विलक्षण होती है॥११॥

प्रतिबोधविदितं मतममृतत्वं हि विन्दते।
आत्मना विन्दते वीर्य्यं विद्यया विन्दतेऽमृतम्॥१२॥

पूर्वं ब्रह्मज्ञानिनो वैलक्षण्यमुक्तं तत्र कथं ब्रह्म ज्ञातुं शक्नोतीति उच्यते—(प्रतिबोधविदितम्) इन्द्रियविषयग्रहणेन तदाकारा बुद्धिर्बोधः। इन्द्रियाणि विषयेभ्यो निरुध्य प्रत्यगा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मनि धारणाध्यानसमाधिसंयमद्वारा बुद्धिवृत्तिभिर्बुद्धिवृत्तीनां ग्रहणं प्रतिबोधस्तेन विदितं ज्ञातं ब्रह्म (मतम्) ज्ञातं भवति। अनेन ज्ञानेन पुरुषः (हि) निश्चितम् (अमृतत्वम्) अमरण-धर्मत्वम् (विन्दते) जीवन्मुक्तिं प्राप्नोति। जीवन्मुक्तो भूत्वैव-स्वोपात्तं देहं परिहाय सुखं विमुच्यते। (आत्मना) स्वरू-पेण (वीर्य्यम्) पराक्रमं योगबलम् (विन्दते) लभते [नास्ति योगसमं बलम्] इत्युक्तत्वात्। अणिमाद्यैश्वर्यं प्राप्नोतीत्यर्थः। आत्मना स्वेन जीवस्वरूपेण बलवत्त्वादेव हेतोः (विद्यया) ब्रह्मविषयया (अमृतम्) मरणादिदुःखरहितं परमात्मानम् (विन्दते) प्राप्नोति। नायमात्मा बलहीनेन लभ्य इत्युक्तत्वात्॥ १२॥

भाषार्थः—इस से पहिले ब्रह्मज्ञानी की विलक्षणता कही है। सो ब्रह्मको कैसे जान सकता है यह अब कहते हैं (प्रतिबोधविदितम्) इन्द्रियों से विषय का ग्रहण होकर तदाकार अर्थात् रूपादि विषय के स्वरूप को धारण करनेवाली बुद्धि 'बोध' कहाती है। इन्द्रियों को विषयों से हटा के अन्तःकरण में धारणा-ध्यान-समाधिरूप संयम के द्वारा बुद्धि में उत्पन्न होनेवाली तरङ्गों से उन्हीं बुद्धि की लहरों का ग्रहण करना 'प्रतिबोध' कहाता है। उस निर्मल शुद्धप्रवाह से जाना गया ब्रह्म (मतम्) जानलिया मानते हैं। इसी प्रकार सिद्ध किये आत्मज्ञान से मुमुक्षु पुरुष (हि) निश्चयकर (अमृतत्वम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मृत्युरहित जीवन्मुक्तदशा को (विन्दते) प्राप्त होता अर्थात् जीवन्मुक्त होकर ही वर्त्तमान शरीर को छोड़ सुखपूर्वक मुक्त होता है। (आत्मना) अपने आत्मस्वरूप से (वीर्यम्) योगबल को (विन्दते) प्राप्त होता है (योग के समान अन्य बल नहीं) ऐसे अनेक प्रमाण हैं अर्थात् अणिमादि सिद्धियों को प्राप्त होता है। अपने जीवात्मस्वरूप से बलवान् होने ही के कारण (विद्यया) ब्रह्म विषयक विद्या से (अमृतम्) जन्म-मरणादि में होनेवाले दुःखों से रहित परमात्मा को (विन्दते) प्राप्त होता है। क्योंकि (नायमात्मा०) इत्यादिक प्रमाण से सिद्ध है कि बलहीन पुरुष उस परमेश्वर को नहीं प्राप्त हो सकता। इसलिये पूर्वोक्त प्रकार आत्मज्ञान के उपायों से योग-बल और पश्चात् मुक्ति की प्राप्ति करनी चाहिये ॥ १२ ॥

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः। भूतेषु भूतेषु विचिन्त्य धीराः प्रेत्यास्माल्लोकादमृता भवन्ति ॥ १३ ॥ ५ ॥

(इह) वर्त्तमाने जन्मनि (चेत्) यदि (अवेदीत्) जानीयात् आत्मानमिति शेषः। (प्रायोऽत्रोपनिषत्सु छन्दोवत्कार्याणि दृश्यन्त इति सार्वकालिकश्छान्दसोऽत्र लुङ्वेदीदिति) (अथ) तदा (सत्यम्) सुफलम् [मनुष्यजन्म जन्तोः परिश्रमश्च] (अस्ति) (चेत्) यदि (इह) (न, अवेदीत्) न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानीयात् तदा (महती) महान् (विनष्टिः) सुखस्य विनाशो हिंस्यशरीरादेर्बन्धनच्छेदनविच्छेदलक्षणो देवमनुष्यतिर्य्यक्स्थावरादियोनिस्थजन्ममरणयोः संहननरूपो जायते । तस्मादेताः स्थावरान्तासु योनिषु दुःखबहुलाः प्राणिनां गतीः पश्यन्तो योगिनः (धीराः) ध्यानवन्तो विद्वांसः (भूतेषुभूतेषु) सर्वप्राण्यप्राणिषु चराचरेषु ध्यानयोगेन (विचिन्त्य) विशेष चिन्तया तन्निष्ठया निश्चित्यात्मानं साक्षात्कृत्य (अस्मात्) प्रत्यक्षादेषणात्रयरूपात् (लोकात्) दृश्यात्संसारात् (प्रेत्य) उपात्तं शरीरादिकं त्यक्त्वा मरणं प्राप्य परमात्मानमेव ध्यायन्तः [अमृताः] मुक्ता अविद्यादिजन्यदुःखेभ्यः पृथग्भूताः (भवन्ति) ॥ १३ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ।

भाषार्थः—(इह) इस वर्त्तमान ही जन्म में (यदि) यदि आत्मा को (अवेदीत् ; जान लेवे (अथ) तो मनुष्यजन्म और उसका परिश्रम (सत्यम्) सुफल (अस्ति) है। (चेत्) यदि (इह) इस वर्त्तमान जन्म में (न, अवेदीत्) न जान ले तो (महती) महान् बड़ा (विनष्टिः) ताड़नामें आनेवाले शरीर वा इन्द्रियों के बन्धन-छेदन का निरन्तर वर्त्तमानरूप, देव–उत्तम प्रकार के जन, मनुष्य, तिर्यक्–पश्वादि और स्थावर–वृक्षादि योनि में जन्म-मरण का बार २ होनारूप सुख का विनाश होता है। इसलिये स्थावर पर्यन्त योनियोंमें अनेक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखों से पूरित प्राणियों के आवागमन को देखते हुए योगी लोग (धीराः) ध्यानशील विद्वान् जन (भूतेषु-भूतेषु) ध्यान योग से सब चराचर जगत् में (विचित्य) ईश्वरविषयक विशेष चिन्ता से परमात्मा को साक्षात्कर (अस्मात्) इस अर्थात् पुत्र-धन और प्रतिष्ठा की इच्छारूप (लोकात्) प्रत्यक्ष संसार से (प्रेत्य) ग्रहण किये हुए शरीरादि को छोड़ कर अर्थात् मरण को प्राप्त होकर केवल परमात्मा ही का ध्यान करते हुए (अमृताः) अविद्यादि से होनेवाले दुःखों से पृथक् हुए मुक्त (भवन्ति) होजाते हैं ॥१३॥ यहाँ द्वितीय खण्ड समाप्त हुआ।

आद्ये खण्डे ब्रह्मज्ञानाय प्राणादीनामनुपयोगित्वं प्रदर्श्य द्वितीये ब्रह्मज्ञानाय वैलक्षण्यं दुष्प्राप्यत्वं चाभिधायेदानीं तत्पोषणार्थमलङ्कारपूर्वकमाख्यायिकयापि ब्रह्मणो महत्त्वं दुष्प्राप्यत्वं च द्रढयितुमाह। अत्र शब्दार्थे तात्पर्य्यं नास्त्यपि तु वाक्यार्थाभिप्राय एव ग्राह्यः।

पहिले खण्डमें ब्रह्मज्ञान के लिये प्राणादिका उपयोगी न होना दिखाकर द्वितीय खण्ड में ब्रह्मज्ञान की विलक्षणता और उस ज्ञान का दुःख से प्राप्त होना कहकर अब उस उक्त विषय की पुष्टि के अर्थ अलङ्कारपूर्वक आख्यायिका के साथ भी परमेश्वर का बड़प्पन और दुःख से प्राप्त होना दृढ़ करने को कहते हैं। इस अगले खण्ड में शब्दार्थ में तात्पर्य नहीं है, किन्तु वाक्यार्थ का अभिप्रायमात्र ग्रहण करना चाहिये ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म ह देवेभ्यो विजिग्ये तस्य ह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्त । त ऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति ॥ १४ ॥ १ ॥

(ह) किल (ब्रह्म) सर्वेभ्यो बृहत्तमम् (देवेभ्यः) पृथिव्यादिभूतेभ्यस्तत्कार्येभ्यश्चेतनाविशिष्टघ्राणादीन्द्रियेभ्यश्च (विजिग्ये) विजयं प्राप्तवान् इति तत्त्वार्थः ।(तस्य, ह, ब्रह्मणः) (विजये) जाते तेषु व्याप्तस्य ब्रह्मणस्तेजसा बलेन च तेजस्विनो बलवन्तश्च भूत्वा (देवाः) पृथिव्यादयो घ्राणादयश्च (अमहीयन्त) महत्त्वं प्राप्नुवन्तः सन्तः (ते) देवाः (ह) किल (ऐक्षन्त) मन्यन्ते (भित्तिः पिपतिषतीत्यादिवत्) किं मन्यन्ते (अस्माकमेवायं विजयोऽस्माकमेवायं महिमेति) यथा कश्चित् शिष्यादिजनो गुर्वादिसामर्थ्येन समर्थो भूत्वाऽहं स्वयं समर्थ इति मन्येत यथा वा कस्यचिद्राजादेरनुकम्पया कश्चिद्धन्यो भूत्वा स्वस्यैव धनं मन्येत । एवं ब्रह्मसामर्थ्येन समर्थानीन्द्रियाणि स्वस्यैव सामर्थ्यमिति दर्शयन्तोऽर्थात् ज्ञातारोऽपि देवेषु महत्त्वं दृष्ट्वैव तेषामेवेदं तेजो बलं वेत्यज्ञानतो जानन्ति ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(ह) निश्चय कर (ब्रह्म) सबसे बड़ा ईश्वर (देवेभ्यः) पृथिवी आदि भूत और उनसे उत्पन्न हुए चेतनात्मा से युक्त नासिकादि इन्द्रियों से (विजिग्ये) विजय को प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ यही मुख्यार्थ है (तस्य, ह ब्रह्मणः, विजये) उसी ब्रह्म के विजय होते समय उन पृथिव्यादि में व्याप्त जो ब्रह्म उसके तेज और बल से ही बलवान् होकर (देवाः) पृथिव्यादि और नासिकादि इन्द्रिय (अमहीयन्त) महत्त्वको प्राप्त होते हुए (ते) वे देव (ह) निश्चयकर (ऐक्षन्त) मानते हैं। यद्यपि पृथिव्यादि जड़ हैं तो भी जैसे (भीत गिरना चाहती है) इत्यादि गौण व्यवहार होते हैं वैसे यहाँ भी जड़ में चेतन के तुल्य व्यवहार है। वे देव क्या मानते हैं कि (अस्माकमेवायम्) हमारी हो यह (विजयः) जीत और (अस्माकमेवायं महिमेति) हमारी ही यह महिमा है। जैसे कोई शिष्य आदि मनुष्य गुरु आदि की सामर्थ्य से समर्थ होकर मैं स्वयं समर्थ हूँ ऐसा माने वा जैसे कोई राजादि श्रीमान् के प्रताप वा अनुग्रह से धनवान् होकर अपना ही धन समझे, इसी प्रकार परमात्मा के तेज बल रूप सामर्थ्य से समर्थ हुए इन्द्रिय वा पृथिव्यादि हमारा ही यह सामर्थ्य है, ऐसा मानते हैं अर्थात् ज्ञाता मनुष्य भी उन देवों में तेज बल रूप का महत्त्व देख कर अज्ञान से मान लेते हैं कि यह इन्हीं का है ॥ १४ ॥

तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्यो ह प्रादुर्बभूव । तन्न व्यजानन्त किमिदं यक्षमिति ॥ १५ ॥ २ ॥

(तत्) ब्रह्म (एषाम्) देवानां चेष्टितमिति शेषः। (विजज्ञौ) विज्ञातवान् सर्वज्ञत्वात् (पृथिव्यादिदेवान् मनुष्यास्तेजस्विनो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलवतो दृष्ट्वा तेषामेव महिमानं मंस्यन्ते इति सर्वज्ञत्वात् पूर्वमेव विज्ञाय) (तेभ्यः) देवेभ्यो देहिनां मिथ्याज्ञानं माभूदिति (ह) निश्चयेन (प्रादुर्बभूव) तेष्वेव देवेषु प्रकटमभूत् । ते देवाः (इदम्) अस्मत्तेजोऽभिभावुकं (किम्) (यक्षम्) पूजनीयतमं वस्त्विति । यक्षपूजायामित्यस्याजन्तः प्रयोगः (तत्, न, व्यजानन्त) परोक्षगुणकर्मस्वभावं ब्रह्म न हि विज्ञातवन्तः । इदमुक्तं भवति यदा ब्रह्मचर्याद्याश्रमधर्मानुष्ठानेन ब्रह्मध्यानादिना वा तेजस्वीनीन्द्रियाणि जायन्ते तदा तेषामेव महत्त्वमिति बोधो जायते तन्न सम्यक्तस्यैव ब्रह्मणस्तेजसा सूर्यादीनामपि तेजोवत्त्वात् । अतः सूर्यादिगतमिन्द्रियगतं च सर्वं तेजो ब्रह्मण एवास्ति ॥ १५ ॥

भा०—(तत्) वह ईश्वर (एषाम्) इन पृथिव्यादि देवों की चेष्टा को (विजज्ञौ) विशेषकर जानता हुआ कि इन पृथिव्यादि देवों को मनुष्य तेजस्वी बलवान् देखकर उन्हीं की महिमा मानेंगे ऐसा सर्वज्ञ होने से जानकर (तेभ्यः) उनके लिये अर्थात् उनमें मनुष्यों को मिथ्याज्ञान न हो इसलिये (ह) निश्चय से (प्रादुर्बभूव) उन्हीं देवों में प्रकट हुआ । वे देव (इदम्) यह हमारे तेज को दबानेवाला (यक्षम्) सबसे अधिक तेजस्वी पूजनीय (किम्) क्या वस्तु है यह (न) नहीं (तत्, व्यजानन्त) उस परोक्षगुणकर्म स्वभाव युक्त ब्रह्म को जान पाये । अर्थात् जब ब्रह्मचर्यादि आ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्रमों के धर्मों का निरन्तर ठीक २ अनुष्ठान होने वा ईश्वर के ध्यान-उपासनादि के अनुष्ठान से इन्द्रियों में एक प्रकार का अद्भुत तेज उत्पन्न होता है तब "यह इन्द्रियों का ही महत्त्व है" ऐसी बुद्धि होती है सो ठीक नहीं। क्योंकि उस ब्रह्म के ही तेज से सूर्यादिक भी तेजस्वी हैं इसलिये जो सूर्यादि और इन्द्रियों में तेज है वह ब्रह्म का ही मानना चाहिये ॥ १५ ॥

तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि किमेतद्य-क्षमिति तथेति ॥ १६ ॥ ३ ॥

(ते) चक्षुरादयो देवाः साश्चर्यम् (अग्निम्) कार्यकारण-शक्त्याभेदमापन्नं चक्षुरिन्द्रियमिदम् (अब्रुवन्) हे (जात-वेदः) जातं जायते वा वेदो ज्ञानं धनं वा यस्मात्तत्सम्बुद्धौ (एतत्, किम्) (यक्षम्) इत्येतत्त्वम् विजानीहि यथा कुत्र-चिद्विषये साश्चर्यो विचारः प्रवर्त्तते तस्मिन् समुदाये प्रधानमेवं वदन्ति भवानेतद्वदत्विति। एवमत्रापि सर्वेन्द्रियेषु चक्षुषः प्राधान्यं तैजसत्वात्। चाक्षुषं तेजश्चेतनाविशिष्टं रूपग्रहणन्निरु-द्धमन्तःकरणे बुद्धेः साहाय्येन परम्परयाऽऽत्मज्ञानस्य कथञ्चि-त्कारणं सम्भवेदिति मत्त्वा ब्रह्मज्ञानायादेशः। आवृत्तचक्षुर-मृतत्वमिच्छन्नित्युक्तत्वात्। यद्यपीन्द्रियेष्वयं व्यवहारो न सिद्ध्यति यदन्यान्यचेतनानीन्द्रियाण्येकं चक्षुरादिकमिन्द्रियं यक्षं ज्ञातुं प्रार्थ्येयुरिति। तथापि जीवात्मनः सर्वेन्द्रियविषये-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्वाविष्टत्वात्स एव चेतन इन्द्रियभेदभिन्नो व्यवहरतीति न कश्चिद्विरोधः ॥ १६ ॥

भा०—(ते) वे चक्षु आदि देव आश्चर्यपूर्वक (अग्निम्) कार्यकारणशक्तिका भेद जिसमें न हो अर्थात् अग्नि कारण और नेत्र कार्य दोनों की शक्तिके भेद पृथक् २ अपेक्षित जिसमें न हों ऐसे चक्षु इन्द्रियसे अन्य इन्द्रिय देव यह (अब्रुवन्) कहते हैं कि (हे जातवेदः !) वेदस् नाम–रूपज्ञान वा धन जिससे उत्पन्न होता है, ऐसे हेअग्ने!(एतत् किम्) यह प्रकट हुआ पूर्वोक्त सर्वोपरि पूजनीयतम कौन है? यह तू जान। तात्पर्य यह है कि जब मनुष्य योगाभ्यासादि परमार्थसिद्धि के साधनोंका निरन्तर अनुष्ठान करता है तब थोड़े काल पश्चात् उसके अन्तःकरण में एक प्रकार का अद्भुत प्रकाश उत्पन्न होता है कि जिसको देख जीवात्मा और सब इन्द्रिय चकित होते हैं कि यह कौन है ?तब जीवात्मा और इन्द्रियोंका उस तेजःस्वरूप ब्रह्म के साथ ऐसा व्यवहार मनुष्य की संसारी दशा से भिन्न स्वप्नावस्था के समान अवस्था में होता है, जो सब उपासकों को होता भी नहीं। जैसे किसी विषय में आश्चर्यपूर्वक विचार चले कि यह क्या है ? तो प्रधानता से कहा जाता है कि आप बताइये यह क्या है ? इसी प्रकार यहाँ भी सब इन्द्रियों में तैजस होने से चक्षुकी प्रधानता है। चेतनात्मा से युक्त चक्षुःसम्बन्धी तेज जब अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाह्यविषय (रूपग्रहण) से रोका जाता है तब अन्तःकरणमें बुद्धि की सहायता से परम्परा के साथ किसी प्रकार आत्मज्ञान का कारण हो सके सो ऐसा मानकर ब्रह्मज्ञान के लिये चक्षु समर्थ नहीं यह उपदेश है। यद्यपि इन्द्रियों में यह व्यवहार नहीं बनता कि जो अचेतन चक्षु आदि इन्द्रिय आपस में ऐसा कहें तो भी जीवात्मा सब इन्द्रिय और विषयों में व्याप्त होने से चेतनात्मा भिन्न २ इन्द्रियों के साथ भेद को प्राप्त उस २ इन्द्रिय वाच्य हुआ ऐसा व्यवहार करता है ऐसा मानने में कोई विरोध नहीं है। इसी आशयको अगले वायु आदि में भी लगा लेना चाहिये ॥ १६ ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोसीति । अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति ॥ १७ ॥ ४ ॥

(तत्) (वै) निश्चयेन उद्भूतं तेजोरूपं ब्रह्म—(कर्म) (अभ्यद्रवत्) अभिमुखं प्राप्तवान्—अग्निरिति शेषः (तम्) जातवेदसम् (अभ्यवदत्) अभिमुखमुक्तवत् ब्रह्म कर्तृ इति शेषः। त्वम् (कः) (असीति) तदुपरि (अहम्, अग्निरस्मीति) (अहं, जातवेदाः, अस्मीति) (अब्रवोत्) यद्यपि ब्रह्मणो निराकारत्वात्केनचित्तस्य संवादो रूपवत् इव न सम्भवति तथापि ब्रह्मविद्यास्तुत्यर्थं ब्रह्मणो दुर्विज्ञेयत्वज्ञापनार्थं चानुभूतः सम्प्रज्ञातसमाधिदशायां भाषितः संवादोऽनूद्यते ॥ १७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तत्) अग्नि उस प्रकट तेजःस्वरूप ब्रह्म के (अभ्यद्रवत्) सन्मुख प्राप्त हुआ। (तम्) उस पूर्वोक्त अग्निदेव से ब्रह्मदेव (अभ्यवदत्) बोले कि तू (कः, असि) कौन है ? इस पर अग्नि ने उत्तर दिया कि (अहं, अग्निः, अस्मि) मैं अग्नि हूँ तथा (वै) निश्चय कर (अहम्) मैं (जातवेदाः) सब स्वरूपवान् ऐश्वर्य जिस से उत्पन्न हुआ ऐसा (रूप गुण सर्वत्र अग्नि का है) (अस्मि) हूँ इस प्रकार (अब्रवीत्) कहा ॥

यद्यपि ब्रह्म के निराकार होने से किसी के साथ शरीर-धारीकासा संवाद होना सम्भव नहीं तो भी ब्रह्मविद्या की स्तुति के अर्थ और ब्रह्मज्ञान होना बहुत कठिन है यह जताने के लिये सम्प्रज्ञात समाधि वा सुषुप्तिदशा में भासित वा अनुभव किये संवाद का अनुवाद किया है ॥ १७ ॥

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ सर्वं दहेयम्। यदिदं पृथिव्यामिति ॥ १८ ॥ ५ ॥

तेजोमयं ब्रह्माब्रवीत् (तस्मिन्) उक्तनाग्नि (त्वयि) अग्नौ (किम्) (वीर्य्यम्) पराक्रमः सामर्थ्यम्। इत्येवमुक्तवदिवं सोऽग्निरब्रवीत् (अपीदं, सर्वं, दहेयम्) अत्र "अपि सम्भावनायाम्।" यदिदं पृथिव्यामिति ॥ १८ ॥

भाषार्थः—तेजोमय ब्रह्म पुनः बोला कि (तस्मिन्) उस तुझ अग्नि में (किम्) (वीर्यम्) क्या पराक्रम वा सामर्थ्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ? इस प्रकार पूछने पर अग्नि बोला कि (यत्, इदम्, पृथिव्याम्) जो यह पृथिवी पर चराचर जगत् दीख पड़ता है (इदम्, सर्वम्, अपि, दहेयम्) इन सबको क्षणमात्र में जला दूँ अर्थात् यह सम्भव है कि अग्नि का यदि पूरा २ तेज बढ़े तो वह सब जगत् को बहुत शीघ्र जला सकता है जब कभी अस्तित्व तक प्रलय होता है तब अग्नि सब पदार्थों को थोड़े काल में भस्म कर डालता है। परन्तु ईश्वर की इच्छा के बिना अग्नि आदि में वैसी शक्ति नहीं हो सकती ॥ १८ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाक दग्धुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ १९ ॥ ६ ॥

(तस्मै) अग्नये ब्रह्म (तृणम्) निदधौ (तदग्रे स्थापितवान्) संस्थाप्य च (एतत्) (दह) इत्यवोचदिव, अग्निः (तत्) तृणम् (सर्वजवेन) सर्वोत्साहेन वेगेन च (उपप्रेयाय) प्राप्य तृणसमीपं गत्वा (तत्) तृणम् (दग्धुम्) (न, शशाक) न समर्थोऽभूत्। (सः, ततः एव) तृणदहनकर्मण एव (निववृते) निवृत्य च देवानुक्तवान् (नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद् यक्षमिति) ब्रह्माग्रे तृणमात्रमपि सामर्थ्यमग्न्यादिषु नास्तीत्युक्तं भवति। एवमनन्तसामर्थ्यवद् ब्रह्मास्तीत्यभिप्रायः ॥१९॥

भा०—(तस्मै) उस अग्नि के लिये ब्रह्मने (तृणम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक तृण (निदधौ) धर दिया धरके (एतत्, दह) इसको जला दे ऐसा कहा । (तत्) उस तृण को तुच्छ समझकर अग्नि (सर्वजनेन) सम्पूर्ण उत्साह और वेग से (उपप्रेयाय) तृण के पास गया परन्तु (तत्) उस तृण को (दग्धुम्, न शशाक) जलाने को नहीं समर्थ हुआ—नहीं जला सका (सः, तत एव) वह उसी समय उस काम से ही (निववृते) हट गया और पृथक् होकर अन्य वायु आदि से कहने लगा कि (नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति) यह सर्वोपरि बलवान् सर्वपूज्य कौन है ! मैं इस को नहीं जान सकता । ब्रह्म के आगे अग्नि में तृणमात्र भी सामर्थ्य नहीं है । तात्पर्य यह निकलता है कि जो कुछ समर्थ्य है उतना भी कार्य अग्नि आदि ईश्वर की इच्छा के बिना नहीं कर सकते । इस प्रकार ब्रह्म अनन्त सामर्थ्यवान् है यह अभिप्राय हुआ ॥ १६ ॥

अथ वायुमब्रुवन्वायवे तद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति ॥ २० ॥ ७ ॥

(अथ) अग्निसामर्थ्यज्ञानानन्तरम् (वायुम्) अवशिष्ट-देवेषु समर्थं बलवन्तम् (अब्रुवन्) अग्न्यादयो देवा इति शेषः । (हे वायो !) त्वम् (एतत्, विजानीहि किमेतत्—यक्षमिति) शीतोष्णज्ञानं त्वगिन्द्रियस्य विषयः । प्रकृतिपुरुषविशिष्टस्यैवे-न्द्रियस्य ज्ञानशक्तिः सम्भवति । तत्र स्पर्शगुणो वायुस्तत उत्पन्नं त्वगिन्द्रियं तद्गुणभूतमिति प्रकृतिशक्तिः । आत्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनसा संयुज्यते मने इन्द्रियेणेन्द्रियमर्थेनेति पुरुषशक्तिमदिन्द्रियं चेतनवद्भाति ॥ २० ॥

भाषार्थः—(अथ) अग्नि के सामर्थ्य जानने के बाद (वायुम्) शेष रहे देवताओं में समर्थ एवं बलवान् वायु से अग्नि आदि (अब्रुवन्) कहने लगे कि हे वायो ! तू (एतत्) इसको (विजानीहि) विशेषकर जान कि (किमेतत्) (यक्षम्, इति) यह सर्वोपरि पूज्य बलवान् तेजस्वी कौन है ? शीत, उष्ण का ज्ञान आत्मा को त्वचा इन्द्रिय से होता है। यद्यपि इन्द्रिय स्वयं चेतन नहीं तो भी प्रकृति पुरुष की शक्ति से युक्त इन्द्रियज्ञान का सहकारी होता है। स्पर्श गुणवाला वायु है उस से उत्पन्न हुआ त्वक् इन्द्रिय वायु के गुण से युक्त होता और आत्मा मन के साथ मन इन्द्रिय के साथ और इन्द्रिय आत्मप्रेरित मन की शक्ति सहित विषयके ग्रहण में तत्पर होता है इसलिये त्वक् इन्द्रिय चेतन के समान प्रतीत होता है ॥ २० ॥

तदभ्यद्रवत्तमभ्यवदत् कोऽसीति वायुर्वा अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति ॥२१॥८॥

स वायुः (तत्) ब्रह्म (अभ्यद्रवत्) अभिमुखमाप्तवान् (तम्) वायुम् (त्वम्, कः, असि, इति) ब्रह्म (अभ्यवदत्) सः (वै) निश्चयेन (अहम्, वायुः, अस्मि, इति) (वै) निश्चयेन (अहम्, मातरिश्वा, अस्मि, इति) च (अब्रवीत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्र वायुशब्देन सर्वत्र त्वगिन्द्रियमुपलक्ष्यते । द्वयोः कार्य-कारणयोः सामर्थ्यस्य भेदविवक्षाया अभावात् ॥ २१ ॥

भाषार्थः—वह वायु (तत्) उस ब्रह्म के (अभ्यद्रवत्) सम्मुख प्राप्त हुआ । तब (तम्) उससे ब्रह्म ने तू (कः, असि इति) कौन है ? ऐसा (अभ्यवदत्) कहा । तब वह वायु (वै) निश्चयकर (अहम्, वायुः अस्मि, इति) मैं वायु हूँ इस प्रकार तथा (वै) निश्चय (अहम्, मातरिश्वा, अस्मि, इति) मैं अन्तरिक्ष में विचरनेवाला मातरिश्वा नामक हूं इस प्रकार (अब्रवीत्) कहा । इस प्रकरण में वायु शब्द से वायु देवाधिष्ठित त्वक इन्द्रिय समझना चाहिये । त्वगिन्द्रिय की उत्पत्ति वायुतत्त्व से होती है । इसलिये वायु और त्वक् इन्द्रिय के सामर्थ्य की पृथक् २ भेद विवक्षा नहीं है ॥ २१ ॥

तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदꣳ सर्वमाददीयं यदिदं पृथिव्यामिति ॥ २२ ॥ ६ ॥

वायुं प्रति ब्रह्माब्रवीत् (तस्मिन्, त्वयि) (किम्, वीर्यम्) किंभूतः पराक्रमोऽस्तीति । तदुपरि वायुराह—(यदिदम्) चराचरं जगत् (पृथिव्याम्) दृश्यते (इदम्, सर्वम्, अपि आददीयम्, इति) इत्थंभूता मयि शक्तिरस्तीति ॥ २२ ॥

भा०—वायु के प्रति ब्रह्म (इति) ऐसा कहने लगा कि (तस्मिन्, त्वयि) उस तुझ में (किम्, वीर्यम्) क्या पराक्रम वा शक्ति है ? इस पर वायु बोला कि (यदिदम्) जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह चराचर जगत् (पृथिव्याम्) पृथिवी पर दीख पड़ता है (इदम्, सर्वम्, अपि) इन सबको भी (आददीयम्) ग्रहण करलूं-उठाले जाऊँ वा उड़ादूँ, इस प्रकार की शक्ति मुझमें है ॥ २२ ॥

तस्मै तृणं निदधावेतदादत्स्वेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्न शशाकादातुं स तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति ॥ २३ ॥ १० ॥

ब्रह्म (तस्मै) वायवे (तृणम् निदधौ) निधाय च (एतत्, आदत्स्व, इति) आह (तत्) तृणम् आदातुं वायुः (सर्वजवेन) पूर्णवेगेन (उपप्रेयाय) तृणसमीपं गतवान् (तत्) तृणम् (आदातुं, न, शशाक) (सः) वायुः (तत एव) तृणसमीपात्तदानीमेव (निववृते) निवृत्तः । निवृत्य चाहम् (यत्) (एतत्, यक्षम्, इति) प्रत्यक्षं प्रवृद्धं किं किम्प्रकारकं वेत्येवम् (एतत्, विज्ञातुं, न अशकम्) न ह्येतद्विज्ञातुं शक्नोमीति। ब्रह्मापेक्षया वायावपि तृणमात्रं सामर्थ्यन्नास्तीत्याशयः २३

भाषार्थः—ब्रह्म ने (तस्मै) उस वायु के लिये (तृणम्, निदधौ) एक तृण यानी तिनका धर दिया और कहाकि (एतत्) (आदत्स्व, इति) इसको उठाले वा उड़ादे (तत्) उस तृण के उड़ा देने को वायु (सर्वजवेन) सब वेग से (उपप्रेयाय) तृण के समीप गया तो भी (तत्) उस तृण को (आदातुम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रहण करने वा उड़ाने को (न, शशाक) न समर्थ हुआ अर्थात् न उड़ा सका (सः) वह वायु (तत एव) उसी समय वहाँ तृण के समीप से (निववृते) लौट आया और लौटकर उसने अन्य अग्नि आदि से कहा कि (यत्, एतत्, यक्षम्, इति,) प्रत्यक्ष बढ़ा हुआ तेजःस्वरूप यह क्या वा किस प्रकार का है ऐसा (एतत् विज्ञातुम्, न, अशकम्) इसको मैं नहीं जान सका। ब्रह्म की अपेक्षा वायु में भी तृणमात्र सामर्थ्य नहीं, यह इसका मुख्य आशय है ॥ २३ ॥

अथेन्द्रमब्रुवन्मघवन्नेतद्विजानीहि किमेतद्यक्षमिति तथेति तदभ्यद्रवत्तस्मात्तिरोदधे ॥ २४ । ११ ॥

(अथ) वायोः सामर्थ्यज्ञानानन्तरं देवा भौतिकशक्तिधारीणीन्द्रियाणि (हे मघवन्) ऐश्वर्यवन्! त्वम् (एतत्) प्रत्यक्षमुद्भूतं वस्तु (विजानीहि) (एतत्) (किम्, यक्षम्, इति,) एवम्प्रकारेण विजानीहीति पूर्वेणान्वयः। (इन्द्रम्) जीवात्मानमिन्द्रियाधिष्ठातारम् (इन्द्रस्य जीवात्मनो लिङ्गं चिह्नमिन्द्रियमिति निर्वचनादिन्द्रो जीवात्मा इन्द्रियैर्विषयानुबुध्यमानस्यैव जीवात्मनोऽस्तित्वं प्रतीयतेऽन्यथा मृत इत्युच्यतेऽतइन्द्रियाणि जीवात्मनो लिङ्गानि) एतमुक्तप्रकारेण (अब्रुवन्) उक्तवन्तः। तदेन्द्रः (तथेति) स्वीकृत्य (तत्) ब्रह्म (कर्म) (अभ्यद्रवत्) अभिमुखं गतवान्। (तस्मात्) इन्द्रगमनकारणादेव (तिरः, दधे) अन्तर्हितमभूत्। न तत्र यक्षमदृश्यतेन्द्रेण।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इदमुक्तं भवति-अयं कथाश्चच्छुद्धान्तःकरणः सिद्धसाधनश्चेज्ज्ञातुं शक्नुयादिति मत्वाऽस्य जीवात्मनोऽप्यभिमाननिराकरणाय तद्गोचरीभूतमाश्चर्यजनकं वैद्युतमिव तेजस्तिरोभूतम् ॥ २४ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब वायु का सामर्थ्य जान लेने के पश्चात् भौतिक सामर्थ्य के धारण करनेवाले इन्द्रियदेव बोले कि (हे मघवन्) ऐश्वर्यवाले जीवात्मन् ! (एतत्, किम्, यक्षम्) यह कौन यक्ष पूज्य है ऐसा तू (एतत्) इस प्रत्यक्ष तेज को (विजानीहि) विशेषकर जान। इस उक्त प्रकार से (इन्द्रम्) अपने अध्यक्ष स्वामी जीवात्मा से (अब्रुवन्) कहने लगे। जीवात्मा के चिह्न इन्द्रिय इस लिये हैं कि जबतक इन्द्रियों से विषयों का ज्ञान होता है तभी तक मानते हैं कि इस शरीर में जीवात्मा है। यदि इन्द्रियों से ज्ञान न हो तो मरा मानते हैं कि अब जीव नहीं रहा। इस लिये इन्द्र नाम जीवात्मा के चिह्न इन्द्रिय हैं जिसके चिह्न इन्द्रिय हैं वह इन्द्र है इस अर्थ से जीवात्मा का नाम इन्द्र है। जब जीवात्मा ने (तथेति) यक्ष को जानने की प्रतिज्ञा स्वीकार की तब (तत्) ब्रह्म के (अभ्यद्रवत्) सम्मुख गया (तस्मात्) इन्द्र को आते देखने के कारण (तिरोदधे) ब्रह्म अन्तर्धान होगया वह यक्षरूप तेज इन्द्र को नहीं दीख पड़ा। अभिप्राय यह कि अपने साधन बुद्धि आदि के ठीक होते वा अन्तःकरण की शुद्धि से मुझे जान सके ऐसा मानकर उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा का अभिमान छुड़ाने के लिये आश्चर्यरूप बिजुली का सा तेज दिखाई देकर छिप गया ॥ २४ ॥

स तस्मिन्नेवाकाशे स्त्रियमाजगाम बहुशोभमानामुमां हैमवतीं ताꣳहोवाच किमेतद्यक्षमिति ॥२५॥१२॥

(सः) इन्द्रा जीवात्मा (तस्मिन्, एव) यत्रोद्भूतं तिरोभूतं च यक्षं तत्रैव (आकाशे) हृदयान्तरिक्षे (हैमवतीम्) सुवर्णालङ्कारयुक्तामिव बहुशोभमानाम् अत्यन्तशोभायुक्ताम् (उमाम्) ब्रह्मविद्यारूपां ब्रह्मज्ञानतत्परां सूक्ष्मां बुद्धिम् (स्त्रियम्) कामुकः स्त्रीमिव (आजगाम) प्राप्तवान् (उमा ब्रह्मविद्या) इति तैत्तिरीयोपनिषत् प्र० १ अ० ४८ । (दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः) इति कठोपनिषत्प्रमाणाच्च सूक्ष्मा बुद्धिर्ब्रह्म द्रष्टुं समर्था इति (मत्वा) इन्द्रः (ताम्, उमाम्) (उवाच) (ह) खेदेन (किम्, एतत्, यक्षम्,) इति ॥ २५ ॥

इति तृतीयः खण्डः ॥

भाषार्थः—(सः) वह जीवात्मा (तस्मिन्, एव) जहां ब्रह्म प्रकट और अन्तर्धान हुआ था, उसी (आकाशे) हृदयस्थ अवकाश में (हैमवतीम्) सुवर्ण के उत्तम २ आभूषणों से (बहुशोभमानाम्) अत्यन्त शोभित (स्त्रियम्) स्त्री को जैसे प्राप्त होकर कामी को प्रसन्नता होती है वैसे (उमाम्) ब्रह्मज्ञान में तत्पर ब्रह्मसम्बन्ध की शोभा से अत्यन्त शोभावती ब्रह्मविद्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप सूक्ष्मबुद्धि को (आजगाम) प्राप्त हुआ। तैत्तिरीय उपनिषद् में उमा नाम ब्रह्मविद्या का है और कठ में लिखा है कि ब्रह्म सूक्ष्मबुद्धि से जाना जा सकता है ऐसा मानकर इन्द्र जीवात्मा (ताम्) उस उमारूपक बुद्धि से (उवाच) (ह) कष्ट के साथ इस प्रकार कहता हुआ कि (किम्, एतत्) क्या यह (यक्षम्, इति) पूजनीय यक्ष है ? अर्थात् यक्ष के अन्तर्धान हो जाने में इन्द्र को बड़ा क्लेश हुआ कि मैं इसको न जान सका तो मेरी सर्वस्व हानि है इस कारण कष्टपूर्वक पूछा और ब्रह्म भी इस अभिप्राय से अन्तर्धान हुआ कि मैं बुद्धि द्वारा इसको अपना स्वरूप जताऊँ। इसी कारण ब्रह्म की प्रेरणा से बुद्धि जता सकी। इससे यह भी सूचित हुआ कि उत्तम बुद्धि के बिना आत्मज्ञान नहीं हो सकता ॥ २५ ॥

यह तीसरा खण्ड समाप्त हुआ ॥

सा ब्रह्मेति होवाच ब्रह्मणो वा एतद्विजये महीयध्वमिति ततो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २६ ॥ १ ॥

(सा) उमा (ह) प्रसिद्धौ तदुद्भूतं तेजोमयं यक्षम् (ब्रह्म) अस्ति इति (उवाच) (वै) निश्चयेन (विजये) स्वस्यैवाभिमते (ब्रह्मणः) ब्रह्मणो विजये (एतत्) (महीयध्वम्) महीयमानं प्राप्नुत ब्रह्मसेवया महान्तो भवत। अर्थादेतन्महत्त्वं ब्रह्मण एवास्ति (ततः) तस्मादुमाकृतोपदेशात् (ह, एव)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ब्रह्म, इति, विदाञ्चकार) यक्षं ब्रह्मैवास्तीति विज्ञातवान्। अव्ययद्वयं सर्वथा स्वातन्त्र्यनिवृत्त्यर्थम्। अर्थादिन्द्रोऽपि बुद्धिमन्तरा ब्रह्मात्मानं ज्ञातुमशक्त इत्युक्तं भवति। सर्वस्योपरि विजयो महत्त्वं च ब्रह्मण एवास्ति न तस्य कश्चिदध्यक्षः समो वा विद्यते इत्यपि सूच्यते ॥ २६ ॥

भा०—(सा) वह उमा ब्रह्मविद्यारूप बुद्धि (इति, उवाच) यह कहने लगी (ह) यक्षरूप जो तेज प्रकट हुआ था वह (ब्रह्म) ब्रह्म है। तुम लोग (वै) निश्चय कर (ब्रह्मणः) उसी ब्रह्म के (विजये) विजय वा महत्त्व में महत्त्व को प्राप्त होओ ईश्वर की भक्ति-सेवा से बड़े बनो जिसको तुम अपना समझते थे वह ब्रह्म का ही है। (ततः) उस बुद्धि के उपदेश से (ह, एव) ही ब्रह्म (इति, विदाञ्चकार) इन्द्र नामक जीवात्मा ने भी जाना कि वह यक्ष ब्रह्म ही है। "ह एव" इन दो एकार्थशब्दों के प्रयोग से प्रतीत होता है कि वह इन्द्र भी बुद्धि की सहायता विना स्वतन्त्र ब्रह्मको नहीं जान सकता। तथा सब संसार के ऊपर विजय और स्वामित्व परमेश्वर का ही है उसके ऊपर वा उसके तुल्य जगत् में कोई नहीं यह भी सूचित होता है ॥ २६ ॥

तस्माद्वा एते देवा अतितरामिवान्यान्देवान् यदग्निर्वायुरिन्द्रस्ते ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्शुस्ते ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २७ ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अग्निः वायुः) कारणशक्त्यभिन्ने त्वक्चक्षुषी देवौ (इन्द्रः) तृतीयो जीवात्मा (ते, हि) एते त्रयो हि (एनत्) पूर्वोक्तं यक्षरूपमुद्भूतं तेजः (नेदिष्ठम्) अत्यन्तसमीपम् (पस्पर्शुः) स्पृष्टवन्तः (ते, हि) अग्न्यादयः (एनत्) उक्तं यक्षम् (प्रथमः) अन्यापेक्षया पूर्वम् । क्रियाविशेषणमिदम् । लिङ्गव्यत्ययः । (विदाञ्चकार) विदांचक्रुः । इन्द्र उमाद्वारा चाग्निवायू इति शेषः । अत्र वचनव्यत्ययः । यत इमे पूर्वं ब्रह्म ज्ञातवन्तः (तस्मात्) अतएव कारणात् (एते) अग्न्यादयः (देवाः) व्यवहारसाधनानीन्द्रियाणि (अन्यान्, देवान्) श्रोत्रादीन् (अतितराम्) अतिक्रम्य प्रशस्ता बभूवुः । त्वक्चक्षुषोर्जीवात्मनश्च मुख्यत्व आदौ यक्षरूपब्रह्मसम्बन्ध एव कारणमित्यर्थः ॥ २७ ॥

भा०—(अग्निः, वायुः) कारण की शक्ति से संयुक्त, नेत्र और त्वचा, इन्द्रिय तथा (इन्द्रः) जीवात्मा (ते, हि) वे ही तीनों (एनत्) इस पूर्वोक्त प्रकट हुए यक्षरूप तेजको (नेदिष्ठम्) अत्यन्त समीप से (पस्पर्शुः) स्पर्श किये और (ते, हि) वे अग्न्यादि (एनत्) इस उक्त यक्षको सबसे पहिले (विदाञ्चकार) जान पाये अर्थात् इन्द्र ने उमा से और अग्नि-वायुने इन्द्र से जाना। जिस कारण इन्होंने पहिले ब्रह्मको जाना (तस्मात्) इसी कारण (एते) ये अग्नि आदि (देवाः) व्यवहार के सिद्ध करनेवाले इन्द्रिय (अन्यान्,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवान्) अन्य श्रोत्र आदिका उल्लंघन कर (अतितराम्) प्रशंसाको प्राप्त हुए अर्थात त्वचा, चक्षु और जीवात्माके मुख्य, श्रेष्ठ माने जाने में यक्षरूप ब्रह्म के साथ पहिले सम्बन्ध होना ही कारण है ॥ २७ ॥ २ ॥

तस्माद्वा इन्द्रोऽतितरामिवान्यान् देवान् स ह्येनन्नेदिष्ठं पस्पर्श स ह्येनत्प्रथमो विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ २८ ॥

यतः कारणात् (इन्द्रः) जीवात्मा (एनत्) आविर्भूतं यक्षस्वरूपं ब्रह्म (नेदिष्ठम्) अतिसमीपम् (पस्पर्श) (प्रथमः) पूर्वम् (सः, हि) इन्द्र एव इदं यक्षम् (ब्रह्मेति, विदाञ्चकार) विवेद (तस्मात्) कारणात् (अन्यान्) अग्न्यादीन् (देवान्) (वै) (निश्चयेन) (अतितराम्) अतिक्रान्तवान् अर्थात् सर्वदेवेषु पूज्यः श्रेष्ठो बहुमान्य आसीत् ॥ २८ ॥

भा०—जिस कारण (इन्द्रः) जीवात्मा (एनत्) इस प्रकट हुए यक्षरूप ब्रह्मको (नेदिष्ठम्) अति समीप से (प्रथमः) पहिले (पस्पर्श) स्पर्श किया (सः, हि) वही इन्द्र जीव यह यक्ष (ब्रह्म, इति) ब्रह्म है ऐसा (विदाञ्चकार) जाना। (तस्मात्) इसी कारण (अन्यान्, देवान्) अग्न्यादि नामक नेत्र आदि को (वै) निश्चय (अतितराम्) उल्लंघन किया अर्थात् सब देवताओं में श्रेष्ठ पूज्य तथा माननीय हुआ ॥२८॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्यैष आदेशो यदेतद्विद्युतो व्यद्युतदा३ इतीति न्यमीमिषदा३ इत्यधिदैवतम् ॥ २९ ॥ ४ ॥

उक्तार्थमेव द्रढयितुमाह (तस्य) उक्तस्याविर्भूतस्य तिरोभूतस्य च ब्रह्मणः (एषः) प्रत्यक्षः (आदेशः) उपमयोपदेशः (विद्युतः) तडितस्तेजःस्वरूपं ज्योतिः (व्यद्युतत्, आ) व्यद्योतिष्टेत्र । आ इत्युपमार्थे । (इति) इत्थम्भूत आदेशः (इति) एवं वदन्ति (न्यमीमिषत्, आ) अत्राप्याकार उपमार्थे । यथा चक्षुर्निमेषं करोति तथाऽयं प्रादुर्भावतिरोभावरूप आदेशः (इति) एवम्प्रकारकम् (अधिदैवतम्) देवताविषयं व्याख्यानं ब्रह्मणोऽस्ति । यथा विद्युत् क्षणमात्रं नेत्रतेजसोऽभिभवित्री दृश्या भूत्वाऽन्तर्हिता भवति यथा वा चक्षुष उन्मीलने निमेषमात्रं किञ्चिदल्पकालमाश्चर्यरूपं दृश्येत निमीलने च सद्यस्तिरोभवेत्तथैव नेत्रादीन्द्रियदेवतेजोभिभावुकस्य ब्रह्मणः प्रकाशतिरोभावाभ्यामुपदेशोऽस्तीति भावः ॥२९॥

भा०—पहिले मन्त्र में कहे विषय को दृढ़ करते हैं (तस्य) उस प्रकट वा अन्तर्धान हुए यक्षरूप ब्रह्म का (एषः) यह पूर्वोक्त प्रकारका (आदेशः) अलङ्कार से किया उपदेश प्रत्यक्ष ज्ञान है । (विद्युतः) बिजुली की तेजःस्वरूप कान्ति (व्यद्युतत्, आ) जैसे चमक जाती और छिपजाती है (इति) इसी प्रकारका यह उपदेश है (इति) ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं (न्यमीमिषत् आ) यहाँ भी आकार उपमार्थ है जैसे नेत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खुल और मिच जावे वैसे ब्रह्मका प्रकट होने वा छिपनेरूप उपदेश (इति) इस प्रकार का (अधिदैवतम्) देवताविषयक ब्रह्म का उपदेश है। जैसे नेत्रके तेज को दबानेवाली बिजुली क्षणमात्र दिखाई देकर अन्तर्धान हो जाती वा जैसे नेत्र के खालने में कोई वस्तु क्षणभर दीख पड़े और मीचते ही तत्काल अन्तर्धान होजावे वैसे ही नेत्रादि इन्द्रियरूप देवताओं के तेज को दबानेवाले ब्रह्म के प्रकाश और छिपने करके उपदेश है। यह इसका मुख्य अभिप्राय है ॥ २९ ॥

अथाध्यात्मं यदेतद्गच्छतीव च मनोऽनेन चैतदुपस्मरत्यभीक्ष्णं सङ्कल्पः ॥ ३० ॥ ५ ॥

(अथ) आधिदैविकोपदेशानन्तरम् (यत्, एतत्) उक्तगुणविशिष्टं ब्रह्म प्रति (मनः) कर्तृ (गच्छति, इव) इति ध्यायेदिति शेषः (च) समुच्चये (अनेन) मनसा ब्रह्म (उपस्मरति) समीपतः स्मरति लेट् स्मरेदित्यर्थः। (संकल्पः) अन्तःकरणस्य निश्चयात्मिका वृत्तिश्च (अभीक्ष्णम्) मुहुर्मुहुर्ब्रह्मविषया कार्या। एतत्सर्वम् (अध्यात्मम्) आत्मन्यन्तःकरणे विवेचनम्। ब्रह्म जिज्ञासुर्दुःखान् मुमुक्षुः पुरुष एवं ध्यायेत्–मदीयं मनो ज्योतीरूपं ब्रह्म प्रति गच्छतीव मम संकल्पः सदैव ब्रह्मप्राप्तय उद्युक्तः स्यादहं च तन्मनाः सन् नित्यं ब्रह्मैव स्मरेयमिति भावः ॥ ३० ॥

भा०—(अथ) अब देवतासम्बन्धी उपदेश के पश्चात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत्, एतत्) जिस इस उक्त गुणवाले ब्रह्म के प्रति (मनः) मेरा मन (गच्छति) चलता है। जैसा ध्यान मनुष्य करे (च) और (अनेन) इस मन से ब्रह्म का (उप, स्मरति) समीपवर्त्ती हो स्मरण करे और (सङ्कल्पः) अन्तःकरण को निश्चय रूप वृत्ति (तरङ्ग) (अभीक्ष्णम्) बार २ ब्रह्म के ज्ञान-ध्यान में लगावे। यह सब (अध्यात्मम्) शरीर के भीतर अन्तःकरण विषयक अध्यात्म उपदेश है। अर्थात् जिसको ब्रह्मके जानने और दुःख से छुटने की इच्छा हो वह पुरुष ऐसा ध्यान करे कि मेरा मन ज्योतिःस्वरूप ब्रह्मकी ओर चला जाता रहे, मेरा सङ्कल्प सदैव ब्रह्म की प्राप्ति के लिये उद्यत रहे और मैं उसी में चित्त लगाकर नित्य ब्रह्मका ही स्मरण करूँ ॥३०॥

तद्ध तद्वनं नाम तद्वनमित्युपासितव्यं स य एतदेवं वेदाऽभिहैनं सर्वाणि भूतानि संवाञ्छन्ति॥३१॥६॥

(तत्, ह) प्रसिद्धं पूर्वोक्तं ब्रह्म (तद्वनम्) तेषां तैर्वा विद्वद्भिर्दुःखान्मुमुक्षुभिः प्राणिभिर्वनं वननीयं भजनीयं सेवनीयमिति (नाम) प्रसिद्धम्। उक्तकारणात् (तद्वनम्) एतन्नामकं ब्रह्म (इति) एवम्प्रकारेण (उपासितव्यम्) मनुष्यैरिति शेषः। (सः, यः) मनुष्यः (एतत्) ब्रह्मणः (एवम्) उक्तप्रकारेणोपासनम् (वेद) (अभि) सर्वतो जानाति (एनम्) उक्तमुपासकम् (सर्वाणि) (भूतानि) संवाञ्छन्ति, ह निश्चयेनाभिलषन्ति ॥ ३१ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(तत्, ह) वह पूर्वोक्त ब्रह्म (तद्वनम्) उन दुःख से छूटने की इच्छावाले विद्वान् मनुष्यों को सेवन करने योग्य (नाम) प्रसिद्ध (तद्वनम्) पहिले कहे अर्थ से उनका नाम तद्वन है (इति) इस प्रकार मनुष्यों को (उपासितव्यम्) उपासना करनी चाहिये (सः, यः) सो जो मनुष्य (एतत्) इस ब्रह्म को (एवम्) उक्त प्रकार से उपासना करना (अभि वेद) सब प्रकार जानता है (एनम्) उस उपासक को (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणी (ह, संवाञ्छन्ति) निश्चय से चाहना करते हैं। अर्थात् विद्वान् लोग जिसकी भक्ति करते आये हैं वह भक्तवत्सल है ऐसी उपासना करनी चाहिये ॥ ३१ ॥

उपनिषदं भो ब्रूहीत्युक्ता त उपनिषद् ब्राह्मी वाव त उपनिषदमब्रूमेति ॥ ३२ ॥ ७ ॥

अस्यामुपनिषदि प्रारम्भाद्गुरुशिष्यसंवादः प्रवृत्तः स एवोपसंहारे पुनः प्रदर्श्यते। शिष्यः (इति) एवम् आह (भोः) आचार्य ! (उपनिषदं) ब्रह्मविद्याम् (ब्रूहि) वद। आचार्य आह (ते) तुभ्यम् (उपनिषद्) ब्रह्मविद्या (उक्ता) पूर्वं या ब्रह्मविद्योक्ता तत्र यदि किमप्यवशिष्टं तद्ददेति शिष्याभिप्रायः पूर्णतया मया ब्रह्मविद्योक्ता न तत्र किमप्यवशिष्टमित्याचार्यस्याशयः। तदेव द्रढयितुं पुनराह (वाव) निश्चयेन (ते) ब्राह्मीम् (ब्रह्मसम्बन्धिनीम्) उपनिषदम् (अब्रूम) उक्तवन्तः (इति) पूर्णम्। नात्र किमपि वक्तव्यमिति भावः ॥ ३२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—इस उपनिषद्में प्रारम्भसे गुरुशिष्य का संवाद चलाया गया है वही अब समाप्ति में पुनः दिखाया जाता है। शिष्य (इति) इस प्रकार बोला कि (भोः) हे पूज्य गुरो ! (उपनिषदम्) ब्रह्मविद्या को (ब्रूहि) कहिये। आचार्य बोला कि (ते) तेरे अर्थ (उपनिषद्) ब्रह्मविद्या (उक्ता) कहचुका। इस प्रसङ्ग में कुछ सारांश शेष रहा हो तो कहिये यह शिष्य के पूछने का अभिप्राय है। मैंने पूर्ण प्रकार से ब्रह्मविद्या कह दी उसका कुछ अंश शेष नहीं यह गुरुका आशय है। इसको और भी दृढ़ करते हैं (वाव) निश्चयकर (ते) तेरे लिये (ब्राह्मीम्) ब्रह्मसम्बन्धिनी (उपनिषदम्) विद्या को हम (अब्रूम) कह चुके हैं (इति) पूरा कहा गया अब यहां कुछ कथनीय नहीं है ॥ ३२ ॥

तस्यै तपो दमः कर्मेति प्रतिष्ठा वेदाः सर्वाङ्गानि सत्यमायतनम् ॥ ३३ ॥ ८ ॥

ब्रह्मविद्या तु पूर्णतयोक्ता तस्या विशिष्टं साधनमुच्यते (तस्यै) उपनिषदे ब्रह्मविद्याप्राप्त्यम् (तपः) द्वन्द्वसहनं चान्द्रायणादिव्रतानि वा (दमः) मनसो वशीकरणम् (कर्म) श्रौतमग्निहोत्रादिकं स्मार्त्तं च (इति) एतान्येव त्रीणि मुख्यसाधनानि। एषां च साधनान्याह (प्रतिष्ठा) सत्कर्मानुष्ठानेन पूजाप्राप्तिः शुद्धस्थाने शरीरेन्द्रियमनोबुद्धीनां चाञ्चल्यरहिता स्थितिर्वा (वेदाः) ऋगादिवेदाः (सर्वाङ्गानि) शिक्षादिषड-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ङ्गानि । एषां सर्वेषामध्ययनाध्यापने (सत्यम्) सर्वस्य (आयतनम्) स्थानम् । सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितमिति वचनात् । मनोवाक्कायकर्मभिः सत्यस्याचरणं ब्रह्मज्ञानस्य मुख्यं श्रेष्ठतमं साधनम् । अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेकं विशिष्यते इति वचनात् सत्यं सर्वोपरि स्थितम् ॥ ३३ ॥

भा०—इस उपनिषद् में पूर्णप्रकार ब्रह्मविद्या कह दी अब उसके विशेष साधन कहते हैं । (अस्यै) उस ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये वा ब्रह्मज्ञानरूप बुद्धि होने के लिये (तपः) मान अपमान, सुख-दुख, हानि लाभ, जीत हार, स्तुति निन्दा, शीत उष्ण, भूख प्यास इत्यादि परस्पर विरुद्ध दो २ विषयों को सहना अर्थात् मान होने से न विशेष आनन्द मानना और न अपमान से दुःख मानना किन्तु समदृष्टि रखना तथा चान्द्रायणादि व्रत जो यव मध्यचान्द्रायण पिपीलिकामध्यचान्द्रायण यतिचान्द्रायण शिशुचान्द्रायण आदि नामोंसे धर्मशास्त्रों में व्याख्यात हैं उनका विधिपूर्वक अनुष्ठान करनारूप तप करे । तप का यह अर्थ व्यास जी ने योगभाष्य में किया है । (दमः) मन को वश में करना (कर्म) वेदोक्त अग्निहोत्रादि वा धर्मशास्त्र में कहा सदाचरणादि कर्म (इति) ये ही तीनों मुख्य ब्रह्मज्ञान के साधन हैं और इन तप आदि के उपयोगी साधन ये हैं (प्रतिष्ठा) लोक में बुरे कर्मों से निन्दा न हो किन्तु शुभ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मों से प्रशंसा प्रतिष्ठा हो (निन्दा होजाने से चित्त ठीक नहीं रहता इससे तप आदि में बाधा पड़ती है) अथवा शुद्ध स्थान में शरीर इन्द्रिय मन और बुद्धि की चञ्चलतारहित स्थिति प्रतिष्ठा कहाती है। (वेदाः) ऋग्वेदादि चार (सर्वाङ्गानि) शिक्षादि छः अङ्ग अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्दःशास्त्र और ज्योतिःशास्त्र इन वेदवेदाङ्गों का पढ़ना-पढ़ाना सब के (आयतनम्) आधार (सत्यम्) सत्य का मन वचन कर्म से अनुष्ठान करना। सब का आधार सत्य इसलिये है कि सत्यके सर्वथा छूटने से किसी का विश्वास नहीं रहता किन्तु सत्य के आश्रय पर ही सब व्यवहार चल रहे हैं। सत्यका आचरण ब्रह्मज्ञानका सर्वोत्तम साधन है। इसीलिये धर्मात्मा लोगोंने ऐसी प्रशंसाकी है कि हजार अश्वमेधयज्ञ कर लेनेकी अपेक्षा सत्यका अनुष्ठान बड़ा फल देता है। इस कारण सत्य सर्वोपरि है ॥ ३३ ॥

यो वा एतामेवं वेदापहत्य पाप्मानमनन्ते स्वर्गे लोके ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति ॥ ३४ ॥ ९ ॥

(यः) पुरुषः (वै) निश्चयेन (एताम्) केनेषितमित्याद्युपनिषत्प्रतिपाद्यां ब्रह्मविद्याम् (एवम्) उक्तप्रकारेण (वेद) जानाति सः (पाप्मानम्) अनादिकालसंचितवासनावासितमन्तःकरणस्थकल्मषम् (अपहत्य) विनाश्य (अनन्ते) अविनाशिन्यपरिच्छिन्ने वा (स्वर्गे) आनन्दमये सुखस्वरूपे (लोके)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्मबुद्धया दर्शनीये ज्ञातव्ये (ज्येये) सर्वेभ्यः श्रेष्ठतमे परमात्मनि (प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति) अवश्यं प्रतिष्ठितो भवति अतिशयद्योतनार्थोऽभ्यासो ग्रन्थसमाप्तिद्योतनार्थो वा ॥ ३४ ॥

इति भीमसेनशर्मकृतं तलवकारोपनिषद्भाष्यं समाप्तम्॥

भा०—जो पुरुष (वै) निश्चयकर (एताम् केनेषितम्०) इत्यादि मन्त्रों से कही ब्रह्मविद्याको (एवम्) ऊपर कहे साधनों सहित (वेद) जानता है वह (पाप्मानम्) अनादि काल से सञ्चित अन्तःकरण की वासनारूप रस्सियों से बंधे हुए अज्ञानान्धकार पापको (अपहत्य) नष्टकर (अनन्ते) अविनाशी वा अपरिच्छिन्न (स्वर्गे) सुखस्वरूप (लोके) सूक्ष्मबुद्धि वा ज्ञानदृष्टिसे देखने जाननेयोग्य (ज्येये) सबसे श्रेष्ठ परमात्मा में (प्रतितिष्ठति, प्रतितिष्ठति) आनन्दपूर्वक सब बाधाओं से छूटकर अवश्य स्थित होता है। एक शब्द को दो वार कहने का प्रयोजन अतिशय कर स्थिति जताने तथा ग्रन्थ की समाप्ति जताने के लिये है ॥ ३४ ॥

यह तलवकार उपनिषद् का भाष्य पूरा हुआ ॥

ओ३म् शान्तिः ३ ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् ॥

अथ कठोपनिषत्प्रस्तावः ॥

इयं कठोपनिषद्यजुर्वेदीयकठशाखान्तर्गता । कठ इति ऋषिविशेषस्य नामधेयम् । तेन प्रोक्तमित्यर्थे समुत्पन्नस्य तद्धितप्रत्ययस्य कठचरकाल्लुगिति लुक् । कठेन प्रोक्ता कठा शाखा तदन्तर्गतोपनिषदपि कठा । अधुना पूर्णा कठशाखा त्वप्रचरिता तस्या उपनिषद्भागमात्रमुपलभ्यते । सर्वासामुपनिषदां प्रयोजनं दुःखबहुलः संसारो हेयोऽभयं निर्मलं निर्विकारं शुद्धशान्तमानन्दमयं ब्रह्म मुमुक्षभिःप्राप्यमिति सर्वतन्त्रसिद्धान्तः । तदेवात्रापि विज्ञेयम् । तत्राख्यायिकया ब्रह्मविद्योपदेशो जिज्ञासुदार्ढ्याय विद्यास्तुतये च । एतां ब्रह्मविद्यामुपास्यैव सिद्धा ब्रह्मर्षयोऽपि परं धाम जग्मुः । अस्यामुपनिषदि शिष्याचार्यसंवादः प्रारम्भात्प्रवृत्तः । पुरा वाजेनान्नदानेन श्रवः कीर्त्तिरस्य स वाजश्रवानाम कश्चिद्ऋषिरासीत् तस्यापत्यं पुत्रो वाजश्रवसस्तस्य वाजश्रवसस्य नचिकेताः पुत्र आसीत् स च पूर्वजन्मानुभूतसंस्कारवानात्मज्ञानोत्सुक आसीत् कथञ्चित्क्रुद्धेन तस्य नचिकेतसः पित्रा स परित्यक्तः कस्यचिद् यमनाम्नो ब्रह्मनिष्ठस्याचार्यस्य समीपं गतवान् यमेन चास्मै सुपात्राय ब्रह्मविद्योपदिष्टा । यद्वा वाजश्रवसोऽत्र प्राकृतः सूर्यो ,नचिकेता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा मृत्युश्च स एव प्राकृतो मुच्युः । प्रकृतिरेवोत्पादिका-द्यौष्पिता पृथिवी मातेति वेदे कथनात् । पितरं स्वर्गप्राप्तो जीवो मातुः समीपे पृथिव्यां मृत्युलोके आगच्छति यदा च पुनः पुनर्मृत्युं सन्निहितं पश्यति तदा मृत्युकारणादेव ब्रह्म-ज्ञानं तेनोपलभ्यते । तदा च मृत्युरेवोपदेष्टेति कल्पनमयुक्तं नास्ति । अस्मिन्पक्षे वाजश्रवसः पुरुषाकारेण कल्पनमेव प्रधानम् विशेषस्तत्र तत्र वक्ष्यते ॥ यथामति यथाशास्त्रं यथाबुद्धिबलोदयम् । अलेख्युपनिषदां भाष्यं मया विद्वन्निषेविणा ॥ १ ॥

यस्या नरा विभ्यति ब्रह्मबाह्यारतया सुयुक्तं शुभसेनया यत् । तन्नाम यस्यास्ति शुभार्थयुक्तं मोक्षार्थहेतुं स करोति भाष्यम् ॥ १ ॥

भा० यह कठोपनिषत् यजुर्वेद की कठशाखान्तर्गत मानी जाती है कठनाम ऋषि विशेष का है कठ ऋषि की कही उपनिषद् भी कठ कहाती है । आज कल कठशाखा संपूर्ण नहीं मिलती किन्तु उपनिषद्भागमात्र प्रचरित है सब उपनिषदों का मुख्य प्रयोजन यही है कि मुमुक्षु जन दुःखरूप संसार से वैराग्य को प्राप्त होके निर्भय निर्मल निर्विकार शुद्ध शान्त और आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त हों । यहां इतिहास के संग ब्रह्मविद्या का उपदेश इसलिये है कि ज्ञान की इच्छा रखनेवालों को दृढ़ ज्ञान हो और ब्रह्मविद्या की उत्तमता विदित हो जिससे ठीक २ रुचिहो क्योंकि पूर्वज नचिकेता आदि संस्का-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

री महात्माओं ने भी जिस ब्रह्मज्ञान के लिये संसार के बड़े २ राज्यादि सुखों को भी तृणवत् तुच्छ समझ के त्याग दिया और ब्रह्मज्ञान को सर्वोपरि समझ के उसीके लिये प्रयत्न किया। वाजश्रवस जो नचिकेता के पिता थे उन्होंने संसार को तुच्छ मानकर ही सर्ववेदस यज्ञ किया जिसमें सर्वस्व दक्षिणा में देकर संन्यासी हुए इससे ब्रह्मविद्या की प्रशंसा निकलती और जिज्ञासु के हृदय में ज्ञान की पुष्टि होती है इसी ब्रह्मविद्या का सेवन करके ब्रह्मर्षि लोग जो हमारे पूर्वज वृद्ध हुए वे परम धाम को प्राप्त होते आये हैं॥

इस उपनिषद् में आचार्य और शिष्य का संवाद प्रारम्भ से रक्खा है। पहिले समय में वाज नाम अन्न के अधिक दान करने से जिनकी विशेष कीर्ति हुई इससे उनका वाजश्रवा नाम हुआ उन वाजश्रवा ऋषिके पुत्र वाजश्रवस थे उनका पुत्र नचिकेता हुआ। वह नचिकेता पूर्वजन्म के शुद्धसंस्कार और वासनाओं के अनुसार आत्मज्ञान की विशेष उत्कण्ठा बाल्यावस्था से ही रखता था उसके पिता वाजश्रवस वक्ष्यमाण प्रकार से क्रुद्ध हो गये और पुत्र को त्याग दिया। नचिकेता ब्रह्मज्ञानी यमनामी आचार्य के पास पहुंच गया और गुरु यम राज के इस सुपात्र नचिकेता के लिये ब्रह्मविद्या का उपदेश किया यही विषय इस उपनिषद् में है। अथवा वाजश्रवस नाम प्राकृत सूर्य, नचिकेता जीवात्मा और मृत्यु वही वारुण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नामक मुच्यु है। और प्रकृति ही सबका उत्पादक पिता है। क्योंकि द्यौ पिता और पृथिवी माता वेद में मानी गई है। पिता नाम सूर्य स्वर्गको प्राप्त हुआ जीवात्मा माता रूप पृथिवी नाम मत्युलोक में आता है और पूर्व शुद्ध संस्कारों के बल से जब बार २ मृत्यु का निकट आता देखता है तब मृत्यु के कारण से ही वह ब्रह्मज्ञान को प्राप्त होता है। तब मृत्यु ही उसको उपदेश करती है यह कल्पना अयुक्त नहीं हैं। इस पक्ष में वाजश्रवस का पुरुष की आकृति में कल्पना करना उचित होगा। इसकी विशेष व्याख्या क्रम से की जाती है परन्तु इस द्वितीय पक्ष का अर्थ हम गौरव के कारण नहीं लिखेंगे।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

अथ कठोपनिषद्भाष्यारम्भः ॥

उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ । तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥ १ ॥

(ह, वै) भूतपूर्वस्य वृत्तस्य स्मरणार्थौ निपातौ अयमितिहासो जिज्ञासुभिः स्मर्त्तव्य इत्यर्थः (उशन्) मुक्तिफलं कामयमानः (वाजश्रवसः) वाजश्रवसोऽपत्यं वाजश्रवसः (सर्ववेदसम्) सर्वं च यद्वेदो धनमस्मिन्निति समासः । एवंभूतं धनम् (ददौ) दत्तवान् । सर्वमेधनामकयज्ञं कृतवान् । तस्मिन् सर्वं स्वस्य धनं दक्षिणायां दातव्यमिति विधीयते तथैव कृतवान् (तस्य) यजमानस्य वाजश्रवसस्य (ह प्रसिद्धः) (नचिकेताः) इति (नाम) नामकः (पुत्रः) आत्मजः (आस) बभूव ॥१॥

भा०—(ह, वै) ये दोनों अव्यय पहिले बीते हुए वृत्तान्त का स्मरण कराने के लिये हैं अर्थात् ज्ञानी लोगों को इस इतिहास का स्मरण करना चाहिये (उशन्) संसार की सब व्याधि वा उपद्रवों से छूटने की इच्छा रखता हुआ (वाजश्रवसः) वाजश्रवसनामक ऋषि (सर्ववेदसम्) अपने सर्वधनादि पदार्थ को (ददौ) दे डाला अर्थात् सर्वमेधनामक यज्ञ किया । जिस समय मनुष्य संन्यास धारण करे उस स-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मय सर्वमेधनामक यज्ञ करे इसी को संन्यास संस्कार भी कह सकते हैं। उस यज्ञमें सब पदार्थों को ऋत्विगादि सुपात्रों के अर्थ दे देना चाहिये। यदि पुत्रादि हों तो यथायोग्य उनको भी दे दिया जाय किन्तु शरीर से भिन्न संन्यास लेनेवाले का सम्बन्ध किसी पदार्थ से न रहे कि मेरा अमुक पदार्थ वह है वा वहां है और न अन्य कोई कहे कि यह पदार्थ अमुक संन्यासी का है इसी प्रकार नचिकेता के पिता ने सर्ववेदस यज्ञ किया। (तस्य) उस यज्ञकर्ता ऋषि का (ह) प्रसिद्ध तेजस्वी (नचिकेताः) इस (नाम) नामवाला (पुत्रः) पुत्र (आस) था ॥ १ ॥

तꣳह कुमारꣳह सन्तं दक्षिणासु नीयमानासु श्रद्धाऽऽविवेश सोऽमन्यत ॥ २ ॥

(कुमारम्) अप्राप्तयौवनं प्रथमवयसं बालम् (सन्तम्) (तम्) नचिकेतसम् (नीयामानासु) ऋत्विग्भ्यो वेदपाठिभ्यः सुपात्रेभ्यो यथाभागम् (दक्षिणासु) दक्षिणार्थासु गोषु विभज्यमानासु (श्रद्धा) आस्तिकी मतिः (आविवेश) किमिदं कम मम पित्रा क्रियत इति विचारवती बुद्धिरासीत्। (सः) नचिकेताः (अमन्यत) विचारितवान् किं तदाहाग्रे ॥ २ ॥

भा०—(कुमारम्) यौवनावस्थाको न प्राप्त हुए अर्थात् १५ वर्षके भीतर अवस्थावाले (सन्तम्) वर्त्तमान (तम्) उस नचिकेता को (नीयमानासु) विद्वान् वेदपाठी सुपात्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋत्विक् आदि ब्राह्मणोंके लिये यथायोग्य (दक्षिणासु) दक्षिणार्थ गौओंका विभाग करते समय (श्रद्धा) आस्तिकतारूप बुद्धि (आविवेश) मेरा पिता यह क्या कर्म करता है ऐसी विचारयुक्त बुद्धि हुई। (सः) वह नचिकेता (अमन्यत) विचारने लगा। जो विचारा सो आगे कहते हैं अर्थात् पिता अन्यपदार्थों का दान कर्त्ता २ जब गौओं का दान करने लगा तब पुत्र के चित्तमें विचार हुआ ॥ २ ॥

पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
आनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत्३

सदसि पित्रुद्देशेनाह नचिकेताः (पीतोदकाः) पूर्वस्मिन् मध्यमे वयसि पीतमुदकं याभिस्ताः पीतोदकाः, नेदानीं पातुं समर्था इत्यर्थः (जग्धतृणाः) जग्धानि भक्षितानि तृणानि याभिस्ता जग्धतृणा नेदानीं चर्वणसमर्था इत्यर्थः। (दुग्धदोहाः) दुग्धो दोहः क्षीरं यासां ताः (निरिन्द्रियाः) प्रजननासमर्था जीर्णा अतिवृद्धाः। ताः एवमुक्तप्रकारिका गा यो यजमानः (ददत्) अददत्-अडभावं आर्षः। ऋत्विग्भ्यो दक्षिणाबुद्ध्या ददाति (सः) ये (ते) (अनन्दाः) आनन्दरहिता असमृद्धाः सुखभोगसाधनहीना लोकाः स्थानविशेषाः (नाम) प्रसिद्धाः सन्ति तान् दुःखसाधनयुक्तान् (गच्छति) प्राप्नोति। अर्थादेवंभूतानां गवां दक्षिणार्थेन दानेन दाता सुखं न लभतेऽत एव मम पित्रापि न सुष्ठु कृतमिति ध्वनितोऽर्थः ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—सभा में जहां कि यज्ञके कर्त्ता वा देखनेवाले आदि उपस्थित थे वहां नचिकेता पिताकी ओर संकेत करके बोला कि (पीतोदकाः) पहिली दूसरी अवस्था में जिन्होंने जल पिया अब अतिवृद्ध होन से नहीं पी सकतीं (जग्धतृणाः) पहिले घास आदि खा चुकीं अब दांत आदि के न रहनेसे चारा भी नहीं खा सकतीं, (दुग्धदोहाः) जब दूध देने योग्य थीं तब दूध दुहागया अब दुध नहीं दे सकतीं (निरिन्द्रियाः) अब बच्चा देने की योग्यता वा शक्ति भी इन्द्रिय (उपस्थ) में नहीं (ताः) इस उक्त प्रकार की गौयें जो यजमान ऋत्विज् आदि सुपात्रों को दक्षिणा बुद्धिसे (ददत्) देता है (सः) वह (ते) जो वे (अनन्दाः) सुखभोग की सामग्री से रहित (लोकाः) स्थान विशेष (जहां सर्वोत्तम खान, पान, पुष्प, गन्धादि दर्शनीय मनोहारि शब्द, तथा सर्वोत्तम शय्या कामिनी आदि मनोरञ्जक सुखभोग हों वे सुखभोग सब पृथ्वी-आदि लोकों में स्थान विशेष स्वर्ग और सब इन्द्रियों द्वारा विशेष दुःख पहुँचाने के साधन जहां २ पृथिव्यादि में हों वे स्थान विशेष नरक मानने चाहिये। यही आशय स्वर्ग नरक का सर्वत्र जानो) (नाम)नरकादि नाम से प्रसिद्ध हैं (तान्) उन दुःखसाधनयुक्त लोकों को (गच्छति) प्राप्त होता है। अर्थात् ऐसी गौओं को दक्षिणार्थ देने से दाता सुख को नहीं प्राप्त होता इसीसे मेरे पिताने भी अच्छा न किया जो ऐसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गौयें दक्षिणा में दीं। दान दक्षिणा में दुग्धसे हरी भरी, ज्वान गौयें देना ही पुण्यकारक है यह अभिप्राय है॥ ३॥

स होवाच पितरं तत ! कस्मै मां दास्यसीति । द्वितीयं तृतीयथं होवाच । मृत्यवे त्वा ददामीति४

(सः, ह) स एव नचिकेताः पुनः (पितरम्) वाजश्रवसमभिमुखीकृत्य (उवाच) हे (तत !) तात पितः !। छान्दसं ह्रस्वत्वम्। (माम्) कस्मै (दास्यसि, इति) इत्येवमुवाच। एवमुक्तेऽपि पिता बालबुद्धिरयमज्ञ इति मत्वा किञ्चिदपि नोवाच। अतएव नचिकेताः (द्वितीयम्) द्विवारम् (तृतीयम्) त्रिवारम् (ह) (उवाच) कस्मै मां दास्यसि मां दास्यसीति ततः पिताऽपि नाऽयं बाल इति मत्वा क्रुद्धः सन् (इति) उवाच (त्वा) त्वाम् (मृत्यवे) मारकाय (ददामि) वर्त्तमानसामीप्ये भविष्यति लट्। दास्यामीत्यर्थः। मृत्यवे त्वा ददामीति वदत ऋषेर्नायमाशयस्तव मरणं यथा भवेत्तथा करिष्यामीति। प्रायश्चित्ते राजनीतौ च बालसञ्ज्ञत्वाद्दण्डार्हः स न भवति कथञ्चद्भवेत्तदपि तादृशोऽपराधो नचिकेतसो नास्ति येन प्राणान्तो दण्डः स्यात्। अन्यच्च प्राणवियोगानुकूलो व्यापारो मरणं तत्र भौतिकं शरीरमत्रैव भूतेषु प्रलीयते केवलस्यात्मनो नचिकेता नामैव नास्ति। नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसक इत्यादिना शरीरधर्माणामात्मनि प्रतिषेधात्। अतस्तस्य मृत्यवे दानमपि न सम्भवति। न चापत्यसमः स्नेह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति वचनादपि स्वपुत्रस्य कश्चित्साधारणपुरुषोऽपि मृत्युं नाकाङ्क्षति तदा किमेवम्भूतो विद्वानृषिरन्याय्यं ब्रूयादिति कश्चिदप्यनुमातुमर्हति ? अत ऋषेर्नायमाशयः किन्तु उपरिष्टाद्भयं दातुं मृत्युशब्दप्रयोगं कृतवान् । यथा बालान् भर्त्सयितुं ब्रुवन्ति यदि त्वमित्थं करिष्यसि न वा करिष्यसि तर्हि एवं दण्डं दास्यामि । एवमत्राप्युपरिष्टाद्भर्त्सनमात्रं कृतमित्यभिप्रायः । एवमेव करिष्यामि न करिष्यमीति नालोचितम् । यदालोचितं किमिदमुक्तं मयेति तदा चिन्तातुर आसीत् ॥ ७ ॥

भा०—(सः, ह) वही नचिकेता फिर (पितरम्) अपने पिता वाजश्रवस ऋषिसे (उवाच) बोला कि हे (तत !) तात ! पिता ! (माम्) मुझे (कस्मै) किस ऋत्विज आदिको (दास्यसि) दोगे अर्थात् गौ आदि सर्वस्व दे दिया केवल मैं एक शेष रहा हूँ । इस प्रकार कहने पर भी पिता ने जाना कि यह अज्ञानी बालक है यों ही बकता है इस कारण कुछ उत्तर न दिया तब नचिकेता (द्वितीयम्) दोबार (तृतीयम्) तीन बार (ह, उवाच) बोला कि मुझे किस को दोगे मुझे किसको दोगे इत्यादि । तब पिता भी यह समझ के कि यह बालक नहीं है, क्रोधपूर्वक बोला (मृत्यवे) मृत्यु के लिये (त्वा) तुझे (ददामि) दूँगा । इस प्रकार कहते हुए ऋषिका यह अभिप्राय नहीं था कि जिस से तेरा मरण होजावै वैसा मैं वास्तव में करूँगा क्योंकि बालकके अज्ञानी होने से प्रथम तो प्रायश्चि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त बा राजनीतिकी व्यवस्था के अनुसार वह दण्ड के योग्य नहीं था कदाचित् होता भी तो वैसा अपराध नचिकेताका नहीं था जिससे प्राणान्त दण्ड दिया जावे और एक यह भी विचारने योग्य है कि प्राणवियोगानुकूल व्यापार का नाम मरना है सो भौतिक शरीर तो यहीं अपने २ कारण भूतों में लीन हो जाता है और केवल आत्मा का नाम नचिकेता नहीं जो मृत्यु को दिया जाय "क्योंकि न स्त्री न पुरुष और नपुंसक आत्मा है" इत्यादि प्रकारसे आत्मा में शरीरके गुणोंका निषेध किया है। इस कारण मृत्युको देना भी नहीं बनता। सन्तानके तुल्य किसी में प्रीति नहीं इस प्रमाण के अनुसार कोई साधारण पुरुष भी अपने पुत्र की मृत्यु होना नहीं चाहता तो क्या ऐसा विद्वान् ऋषि न्यायविरुद्ध कहे वा चाहे यह कोई अनुमान कर सकता है? अर्थात् कदापि नहीं। इसलिये ऋषि का यह आशय नहीं किन्तु ऊपर से भय दिखाने के लिये मृत्युशब्द का प्रयोग किया। जैसे बालकों को धमकाने के लिये लोग कहते हैं कि तुम ऐसा अनुचित करोगे वा इस प्रकार उचित न करोगे तो ऐसा दण्ड देंगे। इसी प्रकार यहां भी ऊपर से धमकाना मात्र किया यह आशय है। पिताने यह नहीं बिचारा कि मैं ऐसा करूंगा वा नहीं जब पीछे विचार किया कि यह मैंने क्या कहा तब चिन्ता करने लगा ॥ ४ ॥

बहूनामेमि प्रथमो बहूनामेमि मध्यमः। किꣳ स्विद्यमस्य कर्त्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पितुर्वचो निशम्य नचिकेता मनस्याह अहम् (बहूनाम्) शिष्याणां मध्ये (प्रथमः) मुख्य उत्तमकक्षाम् (एमि) प्राप्नोमि (बहुनाम) बालानां मध्ये (मध्यमः) मध्यमां कक्षाम् (एमि) प्राप्नोमि । न केषांचिदपेक्षयाऽधमोऽस्मीति तदेवमुत्कृष्टगुणमपि पुत्रं कथं जनक उक्तवान् मृत्यवे त्वा ददामीति रहसि क्लेशाविष्टश्चिन्तयामास (यमस्य) मृत्योः (किंस्वित्) (कर्त्तव्यम्) कार्यमस्ति (यत्) (मया) साधनभूतेन (करिष्यति) साधयिष्यति मम पितेति शेषः (अद्य) मम पित्रा प्रयोजनमनालोच्यैव क्रोधाविष्टेनोक्तम् । नचिकेतसा त्र पूर्वतः श्रुतानुकूलं ज्ञातं यस्य मृत्युर्यमो वा नामास्ति तस्मै मां पिता दास्यति पितुः सन्निधौ न स्थास्यामीति शोकः । न तु मां कश्चिन्मारयिष्यतीति भीत्या शोकः कृतः । यतः पित्रा क्रुद्धेन शैघ्र्याद्भर्त्सयितुमुक्तमत एव पुत्रवियोगदुःखेन आकुलोऽभूत् । कथमपि प्रतिज्ञां मिथ्याकर्त्तुं न शक्नोमि किं कर्त्तव्यमिति चिन्तातुर आसीत् ॥ ५ ॥

भा०–पिता का वचन सुनकर नचिकेता ने मन में कहा कि मैं (बहूनाम्) बहुत शिष्यों में (प्रथमः) मुख्य उत्तम कक्षा को (एमि) प्राप्त हूँ (बहूनाम्) बहुत बालकों में (मध्यमः) मध्यम कक्षा को (एमि) प्राप्त हूँ किन्तु किन्हीं की अपेक्षा मैं निकृष्ट नहीं हूँ फिर ऐसे उत्तम गुणयुक्त पुत्र से पिता ने ऐसा क्यों कहा कि मैं तुझे मृत्युको दूंगा । इस प्रकार एकान्तमें क्लेश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक चिन्ता करने लगा (यमस्य) जिसको मृत्यु भी कहते हैं उसका (किंस्वित्) क्या (कर्त्तव्यम्) करने योग्य काम मेरे बिना पड़ा है (यत्) जो (मया) मुझसे पिता (करिष्यति) करावेगा (अद्य) आज मेरे पिता ने कुछ प्रयोजन न विचार के शीघ्रता में क्रोधपूर्वक कह दिया। नचिकेता ने भी पूर्व से सुने जाने के अनुसार जाना कि जिसका मृत्यु या यम नाम है पिता उसको मुझे देगा पिता के समीप न रहूँगा पिता से वियोग होगा यह शोक था, किन्तु मुझे कोई मार डालेगा इस भय से शोक नहीं हुआ। उसने क्रोधपूर्वक शीघ्रता से धमकाने के अर्थ कहा था इसी से पिता भी पुत्र के वियोग से होनेवाले दुःख से व्याकुल हुआ। प्रतिज्ञा छोड़ नहीं सकता अब क्या करें ऐसी चिन्ता में व्याकुल हो गया ॥ ५ ॥

अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे । सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥ ६ ॥

उक्तप्रकारेण शोकाविष्टं जनकमालोक्य नचिकेता आह न हि भवादृशो धर्मज्ञः शोकं कर्त्तुमर्हति (पूर्वे) पूर्वं जाताः पितृपितामहादयो वृद्धा धर्मज्ञाः (यथा) येन प्रकारेणाचरणं कृतवन्तस्तथा त्वम् (अनुपश्य) तेषामनुकूलमाचरणं विचारय (तथा) तथैव (परे) वर्त्तमाना धर्मात्मानः सज्जनाः (प्रतिपश्य) प्रतिज्ञापालनं कुर्वन्ति तथैव त्वमपि कुरु नैव तेषु सत्यवादिषु स्वमुखान्निस्सृतस्य वचसो मृषाकरणमासीदस्ति वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततो विरुद्धकरणमधर्मात्मनां कृत्यम्। न हि प्रतिज्ञां विहाय कश्चिदमरो भवति कुतः (मर्त्यः) मरणधर्मा प्राणी (सस्यमिव) क्षेत्रोत्पन्नो यवादिरिव (पच्यते) जीर्णो भवति वृद्धत्वमापन्नः प्राणान् जहाति (पुनः) मृत्वा (सस्यमिव) (आजायते) प्रादुर्भवति। अनित्यानि शरीराणि मुहुर्मुहुरुत्पद्यन्ते विनश्यन्ति च तदर्थमपि प्रतिज्ञापालनरूपो नित्यो धर्मः सत्याचरणलक्षणो मनुष्येण न हातव्योऽतो मां प्रेषय मृत्यवे इति तात्पर्य्यम् ॥ ६ ॥

भा०—उक्त प्रकारसे पिता को शोकातुर देखकर नचिकेता बोला कि आप जैसे धर्मज्ञ लोग शोक नहीं करते (पूर्वे) पहिले हुये पिता पितामहादि धर्मात्मा वृद्धलोग (यथा) जिस प्रकार से आचरण करते आये हैं (तथा) वैसा आप भी (अनुपश्य) उनके अनुसार विचार करो। वैसेही (परे) वर्त्तमान धर्मात्मा सज्जन (प्रतिपश्य) प्रतिज्ञा का पालन करते हैं वैसे आप भी करो उन सत्यवादी लोगों में मुखसे निकले वचनों को कोई मिथ्या नहीं करता था वा करता है। प्रतिज्ञा से विरुद्ध कर वा प्रतिज्ञा को छोड़कर कोई अमर नहीं होता क्योंकि (मर्त्यः) मनुष्य (सस्यमिव) खेत में उत्पन्न हुए जौ आदिके समान (पच्यते) जीर्ण होता अर्थात् वृद्धावस्था को प्राप्त होकर मरता है (पुनः) मर कर (सस्यमिव) खेती के समान (आजायते) उत्पन्न होता अर्थात् अनित्य शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बारम्बार उत्पन्न और नष्ट होते हैं उस शरीर के लिये भी प्रतिज्ञा पालनरूप सत्याचरण युक्त नित्य धर्म का मनुष्य को त्याग न करना चाहिये। इससे मुझे मृत्यु के पास भेजो अपनी प्रतिज्ञा सत्य करो यह अभिप्राय है ॥ ६ ॥

वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणो गृहान्। तस्यै-ताꣳशान्तिं कुर्वन्ति। हर वैवस्वतोदकम् ॥ ७ ॥

एवं नचिकेतसोक्तः पिता सद्वृत्तमनुसृत्य नचिकेतसं मृत्युगृहं प्रेषयामास मृत्युश्चात्र न प्राणवियोक्ता किन्तु ब्रह्मज्ञान-तत्परो ब्रह्मविद्याचार्यः कश्चिद् विद्वान् यस्य कथञ्चिन्मृत्युरपि गौणं नामासीत् पितुः प्रतिज्ञापि सत्या जाता। तस्य सद्म प्राप्य नचिकेतास्तिस्रो रात्रीरवात्सीत् तदानीमेव यमाचार्यश्च कार्या-र्थं प्रदेशान्तरं गतवान् यमाचार्यस्य भार्यादिभिः सत्कारायो-क्तोपि नचिकेता न किमपि भोजनादि सत्कारं लब्धवान् पित्राहं मृत्यवे प्रेषितः। स चेदानीं गृहे नास्ति यदा तं प्राप्स्या-मि तदा यत्स वक्ष्यति तत्करिष्यामीत्येवं पितुर्वचः सत्यं भवि-ष्यति। इत्यालोच्य नचिकेता निराहार एव त्रीणि दिनानि यमसद्मन्यवास। ततस्तृतीयदिवस आगते यमाचार्ये भार्या-दय ऊचुः—हे (वैवस्वत!) विवस्वतः पुत्र!— (नात्र विव-स्वान् मनुर्ग्राह्यः किन्तु यमाचार्यस्य पितुर्नाम विवस्वाना-सीत्) तव (गृहान्) (वैश्वानरः) अग्निरिव तेजस्वी ब्रह्म-वर्चस्वी (अतिथिः) सत्कारार्हः (ब्राह्मणः) ब्रह्मवंशजः (प्रवि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शति) प्रविष्टोऽस्ति (तस्य) पत्रम्भूतस्यातिथेः (एताम्) सत्काररूपां (शान्तिम्) प्रसन्नताम् (कुर्वन्ति) धर्मज्ञाः सज्जना इति शेषः । अतस्त्वं (उदकम्) उपलक्षणमेतदन्यपूजासामग्र्यः (हर) प्रापय । तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता । एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ इति मनुवचनादपि सिद्धाऽतिथिपूजा ॥ ७ ॥

भा०—इस पूर्वोक्त प्रकार नचिकेता के कहने पर श्रेष्ठ लोगोंके वर्त्तावके अनुसार पिताने अपने पुत्रका मृत्युके घरपर भेजा । भृत्यु करके यहां मारनेवाले का नहीं समझना चाहिये किन्तु ब्रह्मज्ञानी वेदान्तविद्या का आचार्य कोई विद्वान् था जिसका नाम मृत्यु भी किसी प्रकार पड़ गया ऐसे मृत्यु नामक आचार्यको सौंपनेसे भी पिताकी प्रतिज्ञा सत्य हो गई । आचार्य के घरमें नचिकेता जाकर तीन दिन पड़ा रहा यमाचार्य कहीं देशान्तर को चले गये थे यमाचार्य की स्त्री आदि के कहने पर भी नचिकेताने भोजनादि कुछ नहीं किया न जल ही पिया किन्तु यह विचार किया कि मुझको पिता ने मृत्युके पास भेजा है वे इस समय घर पर नहीं हैं, जब उनसे मेल होगा तब जो कुछ वे कहेंगे सो करूंगा । इस प्रकार करनेसे ही पिता का वचन सत्य होगा ऐसा विचार करके वह नचिकेता तीन दिन लंघन कर यमराज के घर में रहा । इसके पश्चात् जब यमाचार्य आये तब उनकी स्त्री आदि बोलीं कि हे (वैवस्वत)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवस्वान्के पुत्र (यहां विवस्वान् मनुका ग्रहण नहीं है किन्तु यमाचार्य के पिताका नाम विवस्वान् था) आप के (गृहान्) घरों में (वैश्वानरः) अग्नि के समान कान्तियुक्त ब्रह्मतेजोधारी (अतिथिः) सत्कार करने योग्य अभ्यागत (ब्राह्मणः) विद्या तप से युक्त ब्राह्मण वंशमें उत्पन्नब्रह्मचारी मनुष्य (प्रविशति) आया हुआ है (तस्य) इस उक्त प्रकारके अभ्यागतकी धर्मात्मा सज्जन (एताम्) सत्कारपूर्वक इस (शान्तिम्) शान्ति को (कुर्वन्ति) करते हैं। इस लिये आप (उदकम्) जल आदि सत्कार की सामग्री को (हर) प्राप्त कीजिये अर्थात् जल आदि से नचिकेता की पूजा कीजिये। धर्मशास्त्र (मनुस्मृति) में भी कहा है कि आसन, जल और प्रियवाणी बोलना यह सत्कार की सामग्री अभ्यागत के लिये सदा सज्जनों के घरमें उपस्थित रहती हैं। इस वचन से भी अतिथि की पूजा सिद्ध होती है ॥ ७ ॥

आशाप्रतीक्षे सङ्गतꣳ सूनृताञ्चेष्टापूर्त्तं पुत्रपशूꣳश्च सर्वान्। एतद्वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति ब्राह्मणो गृहे ॥ ८ ॥

भार्यादयो यमाचार्यमन्यदप्यूचुः (आशाप्रतीक्षे) इष्टस्य विषयस्योत्कण्ठापूर्वकं प्रार्थनाऽऽशा, अविज्ञातस्य वस्तुनः प्राप्त्यर्थं प्रतीक्षणं प्रतीक्षा ते (सङ्गतम्) सत्सङ्गतिजं फलम् (सूनृताम्) सकरुणां वाचम् (च) तस्या वाचो निमित्तम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इष्टापूर्त्तं) इष्टं यज्ञादिश्रौतकर्मजन्यं फलं, पूर्त्तं-वापीकूपतडागारामानाथपालनधर्मप्रचारादिस्मार्तकर्मजन्यं फलम् (सर्वान्) (पुत्रपशूंश्च) पुत्रांश्च पशूंश्च (अल्पमेधसः) अल्पमतेः (यस्य) (पुरुषस्य) (गृहे) (अनश्नन्) अभुञ्जानः (ब्राह्मणः) ब्रह्मधर्मस्थोऽतिथिः (वसति) तस्य पुरुषस्य (एतत्) पूर्वोक्तं सर्वमाशादिजन्यं फलम् (वृङ्क्ते) वर्जयति नाशयति त्यक्तं नष्टं वा भवति । अतोऽतिथिसत्कारोऽवश्यं करणीय इति ॥८॥

भाषार्थः—स्त्री आदि यमाचार्य से और भी बोले कि (यस्य) जिस (पुरुषस्य) पुरुष के (गृहे) घर में (अनश्नन्) भोजनादि सत्कार को न प्राप्त हुआ (ब्राह्मणः) ब्रह्मधर्म में स्थित अभ्यागत (वसति) वास करता है उस (अल्पमेधसः) निर्बुद्धि के (आशाप्रतीक्षे) अभीष्ट विषय की प्रार्थनापूर्वक प्राप्ति की उत्कण्ठारूप आशा और अज्ञात वस्तु की प्राप्ति की प्रतीक्षा (सङ्गतम्) सत्सङ्गति से होनेवाला फल (सूनृताम्) दयापूर्वक वाणी (च) और उस वाणी का निमित्त श्रद्धादि (इष्टापूर्त्ते) यज्ञादि वैदिक कर्म का फल और वापी कूप तड़ाग (ताल) बाग बगीचा अनाथोंका पालन और धर्म का प्रचार आदि धर्मशास्त्रसम्बन्धी कर्मका फल (पुत्रपशूंश्च) पुत्र और पशुओं को (सर्वान्) (एतत्) इस पूर्वोक्त आशादि के सब फल को सत्कार न किया हुआ अतिथि (वृङ्क्ते) नष्ट करता है अर्थात् श्रेष्ठ अतिथि गृहस्थ के घर से सत्कार न पावे तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस गृहस्थ को पाप होता है। इसलिये श्रेष्ठ अतिथिका सत्कार अवश्य करना चाहिये ॥ ८ ॥

तिस्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मेऽनश्नन्ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः। नमस्तेऽस्तु ब्रह्मन्स्वस्ति मेऽस्तु तस्मात्प्रति त्रीन् वरान् वृणीष्व ॥ ९ ॥

यमाचार्यो भार्यादीनां वचः श्रुत्वा नचिकेतसमभिमुखीकृत्योवाच (हे ब्रह्मन्!) ब्रह्मधर्मस्थ! त्वम् (अतिथिः) अनियतागमनमतिथिः सत्कारार्होऽतएव (नमस्यः) नमस्कर्त्तुं योग्यः (ते) तुभ्यम् नमः (अस्तु) (मे) मम तव कृपातः (स्वस्ति) कल्याणम् (अस्तु) प्रसीद ममापराधं क्षमस्वेति भावः। प्रार्थनानन्तरमधिकप्रसादनायान्यदाह। (हे ब्रह्मन्!) (यत्) यतस्त्वम् (मे) मम (गृहे) (तिस्रः) (रात्रीः) (अनश्नन्) अभुञ्जानः (अवात्सीः) (तस्मात्) कारणात् (प्रति) प्रतिदिवसम् (त्रीन्) (वरान्) मनोऽभिलषितान् कामान् (वृणीष्व) याचस्व ॥ ९ ॥

भाषार्थः-यमाचार्य स्त्री आदिके कथनको सुनकर नचिकेता के पास जाकर बोले कि हे (ब्रह्मन्) ब्रह्मधर्म में स्थित नचिकेतः! तुम (अतिथिः) जिसके आगमन की कोई तिथि नियत नहीं थी ऐसे सत्कार के योग्य अभ्यागत हो इसी से (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य हो (ते) तुम्हारे लिये मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) प्राप्त हो (मे) मेरा (स्वस्ति) तुम्हारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृपा से कल्याण हो अर्थात् प्रसन्न होकर मेरा अपराध क्षमा करो प्रार्थना करनेके पश्चात् अधिक प्रसन्न करनेके लिये और बोले कि हे (ब्रह्मन्) शुद्ध ब्राह्मण कुलोत्पन्न पुरुष ! (यत्) जिस कारण (मे) मेरे (गृहे) घर में (तिस्रः) तीन (रात्रीः) दिनरात (अनश्नन्) विना भोजनादि किये (अवात्सीः) तुम रहे (तस्मात्) इसलिये (प्रति) प्रत्येक रात्रि के (त्रीन्) तीन (वरान्) अभीष्ट विषयों की कामनाओं को (वृणीष्व) मांगो जिससे मैं अनृण हो जाऊँ ॥ ९ ॥

शान्तसङ्कल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौतमो माभि मृत्यो ! । त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत् त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे ॥ १० ॥

नचिकेता आह–हे (मृत्यो !) एतन्नामकाचार्य ! (गौतमः) गोतमवंशस्थो मम पिता (शान्तसङ्कल्पः) शान्तः सङ्कल्पो मानसव्यापारो यस्य (सुमनाः) प्रसन्नचित्तः (वीतमन्युः) वीतो विगतो मन्युः क्रोधोऽस्य सः (मा, अभि) मां प्रति (स्यात्) भवेत् अर्थात् भवतैवं प्रयत्नः सन्देशादिद्वारा कार्यो येन मम पिता मध्ये जातां क्रोधवृत्तिं विहाय भूतपूर्वया प्रेमवृत्या मया सह वर्त्तेत (त्वत्प्रसृष्टम) त्वया प्रेषितम् (मा) माम् (अभि) अभिलक्ष्य (प्रतीतः) स एवायं नचिकेता इति प्रत्यभिजानन् प्रसन्नो वा भूत्वा (वदेत्) कुशलादिकं पृच्छेदपि न तु मौन्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रसन्नो वा स्यात् (एतत्) (त्रयाणाम्) मध्ये (प्रथमम्) मुख्यम् (वरम्) अभीष्टम् (वृणे) याचे ॥ १० ॥

भाषार्थः—नचिकेता यमराज से बोला कि हे (मृत्यो !) मृत्युनामक गुरो! (गौतमः) गोतमवंशी मेरा पिता (शान्तसङ्कल्पः) मानस विचार जिसका शुद्ध औरशान्त होजावे (सुमनाः) ऊपरी आकृति से भी प्रसन्नचित्त (वीतमन्युः) जिसका क्रोध जाता रहा हो ऐसा (मा, अभि) मेरे प्रति (स्यात्) होजावे अर्थात् आप सन्देशादिद्वारा ऐसा प्रयत्न कीजिये कि जिससे मेरा पिता बीच के किये हुए क्रोधादिको छोड़ पहिले समय के तुल्य प्रेम से मेरे साथ बर्त्ते (त्वत्प्रसृष्टम्) आपके भेजे हुये (माम्) मुझको (अभि) देखकर (प्रतीतः) यह वही मेरा पुत्र नचिकेता है ऐसा जानता हुआ वा प्रसन्न हाकर (वदेत्) कुशलक्षेमादि पूछे किन्तु मुझे देखकर मौनी वा अप्रसन्न न हो जावे (एतत्) यह (त्रयाणाम्) तीन मेंसे (प्रथमम्) मुख्य (वरम्) अभीष्ट वर (वृणे) माँगता हूँ। इस एक वर में नचिकेता ने कई बातें मांग लीं यह बुद्धि की तीव्रता है। मैं अपने पिता के पास फिर पहुँच जाऊँ इत्यादि ॥ १० ॥

यथा पुरस्ताद्भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः । सुखꣳरात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां ददृशिवान् मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ ११ ॥

आद्यवरयाचने नचिकेतोवचः श्रुत्वा यम उवाच (औद्दा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लकिः) उद्दालकः-स्वार्थे तद्धितः (आरुणिः) अरुणस्यापत्यम्-वाजश्रवसः (यथा) प्रेमान्वितः (पुरस्तात्) पूर्वमासीत् तथैव (मत्प्रसृष्टः) मयानुज्ञातः प्रज्ञापितो वा (प्रतीतः) स एवार्यं नचिकेता इति प्रत्यभिजानन् प्रसन्नो वा भवन् शान्तः (भविता) भविष्यति । मत्सन्देशं प्राप्य शेषा अपि (रात्रीः) (सुखम्) सुखपूर्वकं प्रसन्नचेताः (शयिता) शयनं करिष्यति (वीतमन्युः) विगतक्रोधः (मृत्युमुखात्) मरणभयात् (प्रमुक्तम्) पृथग्भूतम् (त्वाम्) नचिकेतसम्पुत्रम् (ददृशिवान्) द्रक्ष्यति । भविष्यत्यत्र क्वसुः ॥

इदमुक्तं भवति—यदा कश्चिद्बालो मातृपितृविहीनः प्रवसति तदा पित्रादयो जानन्ति ममात्मजः कथं मेलिष्यति न वा मेलिष्यति पुनरागतं च मृत्युमुखादागतं जानन्ति वाजश्रवसेन च ज्ञातं सत्यप्रतिज्ञो ममात्मजो मद्वचनान्मरणमवाप्स्यति नास्ति सम्भवो यत्पुनरागच्छेदिति । यमाचार्येण च सर्वथा सन्देशादिना विश्वासित इत्याशयो वरदानस्य ॥ ११ ॥

भाषार्थः—पहिले वर मांगने के विषय में नचिकेता का वचन सुनकर यमराज बोले कि (औद्दालकिः) उद्दालक (आरुणिः) अरुणनाम वाजश्रवा के पुत्र वाजश्रवस तेरे पिता (यथा) जिस प्रकार प्रेम-प्रीति से वर्ताव करनेवाले (पुरस्तात्) पहिले थे वैसे ही (मत्प्रसृष्टः) मेरे कहने वा विदित करा देनेसे (भविता) होंगे । मेरे भेजे सन्देशको पाकर तुम्हारे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचने में शेष (रात्रीः) रात्रियों में भी (सुखम्) सुख-पूर्वक प्रसन्न चित्त से (शयिता) सोवेंगे (वीतमन्युः) क्रोध-रहित हुए (मृत्युमुखात्) मरण भय से (प्रमुक्तम्) पृथक् हुए (त्वाम्) तुझ नचिकेता नामक पुत्रको (ददृशिवान्) देखेंगे।

अभिप्राय यह है कि जब कोई माता पिता से वियुक्त हुआ बालक परदेश जाता है तब अतिस्नेही पिता आदि सोचते हैं कि हमारा पुत्र किसी प्रकार मिलेगा वा नहीं और फिर मिलने पर उसे मृत्यु के मुख से छूटा जानते हैं। वाजश्रवस ऋषि ने भी सोचा कि मेरा पुत्र प्रतिज्ञा को सत्य करनेवाला है मेरे वचन से कि 'तुझे मृत्युको दूंगा' शरीर त्याग देगा मेरे पास फिर आवे यह सम्भव नहीं। यमाचार्य ने सब प्रकार सन्देशादि भेजकर विश्वास कराया कि तुम्हारा पुत्र विद्यमान है तुम्हारे पास शीघ्र आवेगा ॥ ११ ॥

स्वर्गे लोके भयं किञ्चन नास्ति न तत्र च न जरया बिभेति। उभे तीर्त्वाऽशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥ १२ ॥

द्वितीयं वरं याचमाना नचिकेता आह—हे (मृत्यो !) मृत्युनामकाचार्य ! (स्वर्गे) सर्वोत्तमसुखप्रापके (लोके) दर्शनीये यज्ञादिवैदिककर्मानुष्ठानेन प्राप्तव्ये स्थानविशेषे (किञ्चन) किमपि (भयम्) (न, अस्ति) (न, तत्र) भयसाधनाः चौरवृकादिजन्तवो बाधन्ते (न) न च (जरया) जरां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दृष्ट्वा नैर्बल्यदुःखेन कश्चित् प्राणी (बिभेति) न हि सबलान् जरा बाधते किन्तु (अशनायापिपासे) उपलक्षणमेतन्मानाप-मानशीतोष्णादिद्वन्द्वानाम् । बुभुक्षापिपासादिद्वन्द्वदुःखे (उभे) (तीर्त्वा)अतिक्रम्य (शोकातिगः) शोकमतीत्य गच्छतीति शोकातिगो मनुजः (स्वर्गलोके) (मोदते) ब्रह्माण्डे ये लोकाः सुखभोगस्य पूर्णसामग्रीसाधनसिद्धा यतः परं सुखभोगासम्भ-वस्त एव स्वर्गलोकास्तेषु प्राणिनः क्षिप्रंक्षिप्रं जन्ममरणे नाप्नुव-न्ति वृद्धावस्थाजन्यं च दुःखं न जायते तत्त्वज्ञाः सन्तो मरणा-दपि न बिभ्यति साधारणापेक्षया तेषामुत्कृष्टत्वं न तु मोक्षापे-क्षयेति मया श्रुतं तत्र किन्तत्त्वमिति (त्वम्) वदेति शेषः ॥१२॥

भा०—द्वितीय वर को मांगने की इच्छा से नचिकेता बोला कि हे (मृत्यो !) मृत्यु नामक आचार्य ! (स्वर्गे) सर्वोत्तम सुखप्राप्ति के हेतु (लोके) यज्ञादि वैदिक कर्म के अनुष्ठान से प्राप्त होने वा देखने योग्य स्थानविशेष [जिस में दुःख की सामग्री का प्रायः अभाव तथा सुखसामग्रीकी अधि-कता हो ऐसे विशेष स्थान सब पृथिव्यादि में हो सकते हैं] में (किञ्चन) कुछ भी (भयम्) डर (न) नहीं (अस्ति) है (न, तत्र) न वहां स्वर्गलोक में भय के हेतु चोर वृक (भेड़िया) आदि जन्तु दुःख पहुँचाते (न) और न कोई प्राणी निर्बलता के दुःख से (जरया) वृद्धावस्था को देखकर (बिभेति) डरता है अर्थात् वृद्धावस्था में भी बलवान् बने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहते हैं (अशनायापिपासे) भूख-प्यास, शीत-उष्ण, मान-अपमान आदि (उभे) दो २ द्वन्द्व दुःखों को (तीर्त्वा) छुड़ा के (शोकातिगः) शोक से पार हुआ मनुष्य (स्वर्गलोके) स्वर्गलोक में (मोदते) आनन्द करता है। ब्रह्माण्ड में जो लोग सुखभोग की पूर्ण सम्भव सामग्रीरूप साधनों से सम्पन्न हैं जिनसे परे सुखका भोग होना असम्भव है वे ही स्वर्गलोक हैं उनमें प्राणी शीघ्र २ जन्म-मरण को नहीं प्राप्त होते और वृद्धावस्था का दुःख भी वहां नहीं होता। तत्त्वज्ञ हुए मरण से वे स्वर्गीय जन नहीं डरते। साधारण मनुष्यादि की अपेक्षा उनका सुख अधिक है, किन्तु मुक्ति की अपेक्षा से नहीं। यह मैंने सुना है इसमें तत्त्व क्या है? सो (त्वम्) तुम कहो ॥१२॥

स त्वमग्निꣳस्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो! प्रब्रूहि तꣳ श्रद्दधानाय मह्यम्। स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण ॥ १३ ॥

नचिकेताः पुनराह—(हे मृत्यो!) (सः, त्वम्) (स्वर्ग्यम्) स्वर्गप्राप्तेः साधनभूतम् (अग्निम्) अग्निप्रधानमग्निहोत्रादिकं श्रौतं कर्म (अध्येषि) स्मरसि जानासि (तम्) अग्निहोत्रादियज्ञम् (श्रद्दधानाय) (मह्यम्) (प्रब्रूहि) येन (स्वर्गलोकाः) स्वर्गो लोको येषां ते यज्ञानुष्ठातारः (अमृतत्वम्) दीर्घकालजीवनमपि सद्यःसद्योमृतजातापेक्षयाऽमृतं भवति तत् (भजन्ते) सेवन्ते-[पक्ष्यन्तरापेक्षयाधिकजीवनं का-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मापि लौकिका अमरं वदन्ति] एतदहं (द्वितीयेन) (वरेण) (वृणे) याचे। नचिकेतसा प्रथमेन वरेण सर्वधर्मेषु प्रधानं पितृसेवनं तत्प्रसादश्चास्ति तदेव याचितं स च मृत्युलोकीयो वरः। अनेन द्वितीयेन जन्मान्तरीयोत्तमस्वर्गलोकप्राप्तिसाधनज्ञानं याचितम्। नातः परमनयोर्लोकयोरुत्कृष्टमस्ति यदिच्छेन्नचिकेताः। अनेन नचिकेतसो बुद्धेरतितरां प्राशस्त्यं ज्ञाप्यते ॥१३॥

भा०—नचिकेता फिर बोला कि हे (मृत्यो!) मृत्यु आचार्य! (सः,त्वम्) सो आप (स्वर्ग्यम्) स्वर्गप्राप्ति के साधन (अग्निम्) अग्नि जिसमें प्रधान है उस अग्निहोत्रादि श्रौत कर्मको (अध्येषि) जानते हैं (तम्) उस अग्निहोत्रादि यज्ञके विधान को (श्रद्दधानाय) श्रद्धा रखते हुए (मह्यम्) मेरे लिये (प्रब्रूहि) कहिये (स्वर्गलोकाः) स्वर्ग में जिनका निवास होना न्यायानुकूल है वे यज्ञ के सेवनकर्त्ता (अमृतत्वम्) बहुत काल तक सुखपूर्वक निर्विघ्न जीवन को (भजन्ते) भोगते हैं। बहुत कालके जीवन को भी अमृत कहते हैं जैसे अन्य पक्षियों की अपेक्षा अधिक जीने के कारण कौए को लोक में अमर कहते हैं (एतत्) यह मैं (द्वितीयेन) द्वितीय (वरेण) वरदान से (वृणे) मांगता हूँ। नचिकेता ने प्रथम वरदानसे सब सांसारिक धर्मों में मुख्य पिता की सेवा और प्रसन्नता मांगी यह मृत्युलोकसम्बन्धी वर है और इस द्वितीय वरदान से जन्मान्तर सम्बन्धी उत्तम स्वर्ग लोक की प्राप्ति के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनों का ज्ञान मांगा क्योंकि इन दोनों लोक में इससे बड़ा कोई मांगने योग्य और विषय नहीं था जिसको नचिकेता मांगता इससे नचिकेता की बुद्धि की अत्यन्त प्रशंसा ज्ञात होती है ॥ १३ ॥

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निबोध स्वर्ग्यमग्निन्नचिकेतः प्रजानन् । अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेनन्निहितं गुहायाम् ॥ १४ ॥

यमाचार्य आह-हे (नचिकेतः !) (स्वर्ग्यम्) स्वर्गाय हितम् (अग्निम्) (प्रजानन्) अहम् (ते) तुभ्यम् (तत्) यत्तत्र ज्ञातुमभीष्टं तत् (प्रब्रवीमि) (उ) (मे) मम वचः सावधानतया (निबोध) बुध्यस्व (त्वम्) (अनन्तलोकाप्तिम्) विस्तृतपर्यायोऽत्रानन्तशब्दः । बधिकजीवने न विस्तृतदर्शनस्य प्रापकम् (अथो) अनन्तरम् (प्रतिष्ठाम्) सर्वस्य जगतः स्थिति साधनम्, सूर्यादिरूपेण वा (एनम्) उक्तप्रकारमग्निम् (गुहायाम्) बुद्धौ (निहितम्) जीवात्मनः शक्तिरूपं रुधिरादिनिर्मापकं सूर्यादिरूपेण व्यापकं संस्कारजन्यवासनारूपासु बुद्धिवृत्तिषु स्थितम् विद्धि) जानीहि। अग्निः सर्वस्य जगत उत्पत्तिस्थितिविनाशहेतुः स एव यज्ञस्य मुख्यसाधनभूत इत्यर्थः॥१४॥

भा०—यमाचार्य बोले कि—हे (नचिकेतः !) नचिकेता (स्वर्ग्यम्) स्वर्ग के हितकारी (अग्निम्) अग्निहोत्रादि कर्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (प्रजानन्) जानता हुआ मैं (ते) तेरे लिये (तत्) जिस को तू जानना चाहता है, उसी को (प्रब्रवीमि) कहता हूँ (उ) और तू (मे) मेरे वचन को सावधान होकर (निबोध) सुन वा जान (स्वम्) तू (अनन्तलोकाप्तिम्) अधिक जीवन से विस्तृत दर्शन को प्राप्त करानेवाले (अथो) इस के अनन्तर (प्रतिष्ठाम्) सूर्यादि रूप वा जाठरादिरूप से सब जगत् की स्थिति के साधन (एनम्) इस उक्तगुणयुक्त (गुहायाम्) बुद्धि में (निहितम्) जीवात्मा की शक्तिरूप रुधिर आदि बनानेवाले वा सूर्यादि रूप से व्यापक वा संस्कारों से हुई बुद्धि की वृत्तियों में स्थित अग्नि को (विद्धि) जान। जिस के आश्रय अग्निहोत्रादि यज्ञ होने से स्वर्ग मिलता है वही अग्नि सब जगत् की उत्पत्ति स्थिति विनाश का हेतु है वही यज्ञ का मुख्य साधन है ॥ १४ ॥

लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा। स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः ॥ १५ ॥

कठ उवाच। यमः (तस्मै) नचिकतसे (लोकादिम्) लोकस्य दर्शनस्यादिकारणभूतम्। लोकनं लोको भावे घञ्। अथवा कर्मण्येव घञ् लोक्यते जनैर्यः स लोक उत्पत्तेरादिभूतम्। प्रादुरासीत्तमोनुद इति वचनात्सर्गारम्भे प्रकाशात्मामाग्निरुत्पन्नः स च व्याप्तः सूक्ष्मः। चक्षुरिन्द्रियं चाग्निकार-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सादेवोत्पन्नम्। अतोऽग्निर्लोकादिः (तम्) प्रकृतम् (अग्निम्) (उवाच) सर्वप्रकारेण व्याख्यातवान्। अग्निसाध्येऽग्निहोत्रादियज्ञे (याः) यादृश्यः (वा) (यावतीः) यावत्सङ्ख्याका (वा) (यथा) येन प्रकारेण (इष्टकाः) चेतव्या येन विधिनाग्निहोत्रादियज्ञोऽनुष्ठेय इत्येतत्सर्वं फलाख्यानादिसहितमुवाच (सः, चापि) नचिकेता अपि (यथा) येन प्रकारेण मृत्युना विधानम् (उक्तम्) (अथ) अनन्तरम् (अस्य) यमस्य वचः (प्रत्यवदत्) प्रत्यक्षरमनुवादं कृतवान्। एतन्नचिकेतसो बुद्धिवैचित्र्यं दृष्ट्वा (मृत्युः) यमः (तुष्टः) अधिकं प्रसन्नो याचितादन्यदपि वरं दातुम् (पुनः, एव, आह) आवश्यकं तोषप्रेरित आहेति एवार्थः ॥ १५ ॥

भा०—कठ ऋषि कहते हैं कि यमराज ने (तस्मै) उस नचिकेता के लिये (लोकादिकम्) देखने के आदि कारण वा सृष्टिके आरम्भमें सबसे पहिले प्रकाशरूपसे उत्पन्न होनेवाले (तम्) उस पूर्वोक्त (अग्निम्) अग्निका (उवाच) सब प्रकार व्याख्यान किया। अग्निसे सिद्ध होनेवाले अग्निहोत्रादि यज्ञ-में (या) जैसी (वा) वा (यावतीः) जितनी (वा) वा (यथा) जिस विधान से वेदी में (इष्टकाः) ईंटें चुननी चाहिये अर्थात् वेदी बनाकर जिस विधिसे यज्ञ करना चाहिये सो सब फलसहित यमराज ने कहा (सः, चापि) वह नचिकेता भी (यथा) जिस क्रमसे यमराज ने यज्ञका विधान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(उक्तम्) कहा (अथ) इसके पश्चात् (अस्य) यमराज के वचन को (प्रत्यवदत्) प्रत्यक्षर अनुवाद कर सुनाया नचिकेता की बुद्धिकी ऐसी विचित्रता देखकर (मृत्युः) यमराज को (तुष्टः) अधिक प्रसन्न होकर माँगे हुए से अन्य वर देने के लिये (पुनरेवाह) प्रसन्नता से प्रेरित होकर फिर भी अवश्य बोलना पड़ा ॥ १५ ॥

तमब्रवीत्प्रीयमाणो महात्मा वरन्तवेहाद्य ददामि भूयः । तवैव नाम्ना भविताऽयमग्निः सृङ्कां चेमामनेकरूपां गृहाण ॥ १६ ॥

शिष्ययोग्यतां दृष्ट्वा (प्रीयमाणः) प्रीतिमापन्नः (महात्मा) महती आत्मा व्याप्ताऽव्याहता बुद्धिरस्य स यमः (तम्) नचिकेतसम् (अब्रवीत्) (भूयः) पुनरपि (इह) अस्मिन् द्वितीयवरप्रसङ्गे (तव) तुभ्यम् । चतुर्थ्यर्थे षष्ठी । (अद्य) इदानीम् (वरम्) (ददामि) (अयम्) मदुक्तविधानः (अग्निः) (तवैव) (नाम्ना) तव नाम्ना साकं प्रसिद्धः (भविता) भविष्यति (इमाम्, च) (अनेकरूपाम्) चित्रविचित्राम् (सृङ्काम्) मालां प्रतिष्ठासूचकं चिह्नम् । यद्वा । संसारस्थसुखभोगसूतिं स्वर्गनाम्नीम् (गृहाण) स्वीकुरु । येन दीर्घकालं जीवनसुखमवाप्नुहि । न ह्येदं वरान्तरदानमपि तु यावद्याचितं तस्मिन्नेव विषये प्रीतिविशेषकारणात्ततोऽधिकं दीयते ॥१६॥

भा०—शिष्य की योग्यता देखकर (प्रीयमाणः) प्रसन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्रुप (महात्मा) व्याप्तबुद्धिवाले यमराज (तम्) उस नचिकेता से (अब्रवीत्) बोले कि (भूयः) फिर भी (इह) द्वितीय वर के साथ (तव) तुम्हारे लिये (अद्य) इस समय (वरम्) वर को (ददामि) देता हूँ (अयम्) जिसका विधान कहा गया वह (अग्निः) अग्नि (तव, एव) तुम्हारे ही (नाम्ना) नाम से प्रसिद्ध (भविता) होगा (इमाम् , च) और इस (अनेकरूपाम्) चित्र-विचित्र (सृङ्काम्) माला वा प्रतिष्ठासूचक चिन्ह को अथवा संसार में विशेष सुखभोगरूप स्वर्गप्राप्ति को (गृहाण) स्वीकार करो जिस से बहुत काल तक जीवनसुख प्राप्त हो। यह तीन से पृथक् वरदान नहीं किन्तु जितना माँगा था उसी विषयमें प्रीति विशेष होनेके कारण उस से अधिक दिया है ॥ १६ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत्तरति-जन्ममृत्यू । ब्रह्मयज्ञन्देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमा शं शान्तिमत्यन्तमेति ॥ १७ ॥

इदानीं प्रसङ्गप्राप्तं कर्मस्तवमाह (त्रिणाचिकेतः) यस्य विधानं नचिकेतसे प्रोक्तं स नचिकेतोनाम्ना प्रसिद्धो नाचिकेतोग्निः स त्रिवारं येन चीयते स त्रिणाचिकेतः (त्रिभिः) मातापित्राचार्य्यैः (सन्धिम्) सत्सङ्गं शिक्षां वा (एत्य) प्राप्य (त्रिकर्मकृत्) त्रीणि यज्ञाध्ययनदानानि करोति सः। "यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिता"। इतिभगवद्गी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तासूक्तम्। फलाकाङ्क्षाराहित्येन कार्यं कर्म करोति सः (जन्म मृत्यू) जन्ममरणे (तरति) जहाति तज्जन्यदुःखान्मुक्तो भवति (ब्रह्मयज्ञम्) ब्रह्म वेदोजो जातो यस्मात्स ब्रह्मजः, जानातीति ज्ञः ब्रह्मजश्चासौ ज्ञश्च तं सर्वज्ञम् (ईड्यम्) स्तोतुमर्हम् (देवम्) दीप्यमानं परमात्मानम् (विदित्वा) ज्ञात्वा (निचाय्य) शास्त्रतो निश्चित्य (अत्यन्तम्) क्रियाविशेषणम् (शान्तिम्) निरुपद्रवरूपाम् (एति) प्राप्नोति। त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति छान्दोग्ये। इदमुक्तं भवति ये ब्रह्मचर्यादिषु त्रिष्वाश्रमेषु त्रिविध आहवनीयादिनाम्न्यग्नौ यथाविधि यज्ञादिकर्म कृत्वाऽऽत्मज्ञानाय प्रयतन्ते त एव शान्तिसुखभाजो भवन्ति ॥ १७ ॥

भा०—अब प्रसङ्ग से प्राप्त कर्म की महिमा कहते हैं। (त्रिणाचिकेतः) नचिकेता के लिये जिसका विधान कहा है वह नचिकेताके नामसहित प्रसिद्ध नाचिकेत अग्नि कहाता है। उसको जो ब्रह्मचर्यादि तीन आश्रमों में आहवनीयादि नाम से संचित करे वह त्रिणाचिकेत पुरुष (त्रिभिः) माता पिता और आचार्य से (सन्धिम्) सत्संग वा शिक्षा को (एत्य) प्राप्त होकर (त्रिकर्मकृत्) गृहस्थ वा वाणप्रस्थ आश्रममें अग्निहोत्रादि यज्ञ ब्रह्मचर्य वेदवेदाङ्गादि पढ़ने आदि के नियम तथा संन्यास आश्रम में सर्वस्वदान करता है। ये ही तीन धर्मरूप वृक्ष के मुख्य अवयव (गुहे) हैं जो फलभोग की अभिलाषा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को छोड़कर इन उक्त तीन प्रकार के धर्मों को करता है वह (जन्ममृत्यू) जन्ममरणरूप समुद्रों के पार हो दुःखों से छूट जाता है अर्थात् जीवन्मुक्त होजाता है (ब्रह्मयज्ञम् जिससे वेद उत्पन्न हुआ तथा जो ज्ञानस्वरूप है उस (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (देवम्) प्रकाशमान परमात्मा को (विदित्वा) जानकर और (निचाय्य) शास्त्र से निश्चय करके (अत्यन्तम्) अत्यन्त (शान्तिम्) सब उपद्रवों से रहित शान्ति को (एति) प्राप्त होता है। अभिप्राय यह है कि जो ब्रह्मचर्यादि तीनों आश्रमों में तीन प्रकारके आहवनीयादि नामक अग्निमें विधिपूर्वक यज्ञादि कर्म करके आत्मज्ञान के लिये प्रयत्न करते हैं वे ही शान्तिरूप सुख के भागी होते हैं॥ १७॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम्। स मृत्युपाशान् पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥ १८॥

(त्रिणाचिकेतः) नाचिकेतमग्निं त्रिवारं तिसृष्ववस्थासु चितवान् जनः (एतत्) पूर्वोक्तम् (त्रयम्) त्रिवारं चयनं मात्रादिभिः शिक्षणं त्रिकर्मकत्वं च। यद्वाया इष्टका यावतीर्वा यथा वेति त्रयम् (विदित्वा) (एवम्) मदुक्तविधिना (यः, विद्वान्) (नाचिकेतम्) नचिकेतोनाम्ना प्रसिद्धाग्निसम्बन्ध्यग्निहोत्रादिकर्मणः फलम् (चिनुते) सञ्चितं करोति (सः) (मृत्युपाशान्) नैष्कर्म्याधर्मरागद्वेषादिलक्षणानि बन्धनानि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पुरतः) शरीरवियोगात्पूर्वमेव (प्रणोद्य) विहायोपात्तं देहं त्यक्त्वा (शोकातिगः) शोकरहितः (स्वर्गलोके (मोदते) हर्षमाप्नोति ॥ १८ ॥

भा०—(त्रिणाचिकेतः) ब्रह्मचर्यादि तीन अवस्थाओं में नाचिकेत अग्निको तीनबार जिसने सञ्चित किया ऐसा मनुष्य (एतत्) पूर्वोक्त (त्रयम्) तीन बार अग्निका चयन, माता आदि तीनसे शिक्षा और तीन यज्ञादि कर्मके करने को (विदित्वा) जानके (एवम्) हमारे कहे विधानके अनुसार (यः, विद्वान्) जो विद्वान् पुरुष (नाचिकेतम्) नचिकेता नाम से प्रसिद्ध अग्निसम्बन्धी अग्निहोत्रादि कर्मके फल को (चिनुते) सञ्चित करता है (सः) वह (मृत्युपाशान्) कर्मत्याग, अधर्म, राग-द्वेषादिरूप मरणके बन्धनोंको (पुरतः) शरीर छूटने से पहिले ही (प्रणोद्य) छोड़कर मरणके पश्चात् (शोकातिगः) शोकरहित हुआ (स्वर्गलोके) स्वर्गलोकमें (मोदते) आनन्द को प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

एष तेऽग्निर्नचिकेतः । स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण । एतमग्निन्तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनास-स्तृतीयं वरं नचिकेतो वृणीष्व ॥ १९ ॥

हे (नचिकेतः !) (एषः) पूर्वोक्तः (अग्निः) तत्सहचरितोऽग्निहोत्रादिधर्मः (स्वर्ग्यः) स्वर्गाय हितः (ते) तुभ्यमुक्त इति शेषः (यम्) त्वम् (द्वितीयेन, वरेण) (अवृणीथाः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एतम्) (अग्निम्) (तव, एव) नाम्ना (जनासः) जनाः। छन्दोवन्मत्वाऽऽज्जसेरसुक् । (प्रवक्ष्यन्ति) " यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः " इति गीतावचनान्महात्मना यमेन यथोक्तं तथैव नचिकेतोनाम्नाग्निरितरैराख्यायते । इदानीं द्वितीयवरस्य प्रसङ्गः समाप्तः। हे (नचिकेतः !) त्वम् (तृतीयम्) (वरम्) (वृणीष्व) याचस्व ॥ १९ ॥

भाषार्थः—हे (नचिकेतः !) नचिकेता ! (एषः) यह पूर्वोक्त (अग्निः) अग्निसम्बन्धी अग्निहोत्रादि धर्म (स्वर्ग्यः) स्वर्गका उपयोगी साधन (ते) तुम्हारे लिये कहा गया (यम्) जिसको तुमने (द्वितीयेन, वरेण) दूसरे वरसे (अवृणीथाः) माँगा था (एतम्) इस (अग्निम्) अग्निको (तव, एव) तुम्हारे ही नाम से (जनासः) मनुष्य (प्रवक्ष्यन्ति) कहेंगे। 'जैसा आचरण श्रेष्ठ पुरुष करते हैं वैसा अन्य सामान्य भी' इस प्रमाण के अनुसार महात्मा यमराज ने जैसा कहा वैसा-ही नचिकेता के नाम से अन्य लोग अग्नि को कहते आये। अब यहां तक द्वितीय वरका प्रकरण समाप्त होगया (हे नचिकेतः !) हे नचिकेता ! तुम (तृतीयम्) तीसरा (वरम्) वर (वृणीष्व) माँगो ॥ १९ ॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके । एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥ २० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वरद्वयसमाप्तौ तृतीयं वरं याचमानो नचिकेता आह-हे यमाचार्य ! (प्रेते) मृते (मनुष्ये) (अयम्) नित्यः शरीरस्थः कश्चिच्चेतनो जीवात्मा परमात्मा वा (अस्ति, इति, एके) मन्यन्त इति शेषः । (न, अस्ति, इति, च, एके) केचिन्मन्यन्ते । इति (या, इयम्) (विचिकित्सा) संशयः । (त्वया) गुरुणा (अनुशिष्टः) उपदिष्टः (अहम्) (एतत्) आत्मविद्यानिश्चयमूलम् (विद्याम्) जानीयाम् । (वराणाम्) मध्ये (एषः) (तृतीयः) ममाभीष्टः(वरः) अस्ति स त्वया देय इति भावः॥२०॥

आत्मद्वयमस्मिन्नेव शरीरेऽस्ति । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति इत्यादिना वेदेषु प्रतिपादितम् । तत्र मृते शरीरे पूर्ववदेव कश्चित्तिष्ठति न वेति ब्रह्मविषयः जीवः कश्चिद्देहादूर्ध्वं देहान्तरं याति वा तत्रैवास्य ध्वंस इति जीवब्रह्मात्मद्वयसामान्यज्ञानाय प्रश्नः पूर्वो वरो लौकिको, द्वितीयः पारमार्थिकस्वर्गादिविषयकः । तृतीयश्चात्मज्ञानेन मोक्षविषयकः । आत्मद्वयज्ञानमन्तरेण कश्चिदपि मुक्तो भवितुं नार्हति ॥ २० ॥

भाषार्थः—पहिले दो वरों की समाप्ति में तीसरा वर माँगता हुआ नचिकेता बोला कि हे यमाचार्य ! (प्रेते) (मनुष्ये) मनुष्य के मर जाने पर (अयम्) यह शरीरस्थ चेतन जीवात्मा वा परमात्मा कोई नित्य (अस्ति, इति, एके) है ऐसा कोई लोग मानते (च) और (न, अस्ति, इति, एके) नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ऐसा कोई लोग मानते हैं। इस प्रकार (या, इयम्) जो यह (विचिकित्सा) संशय है। सो (त्वया) आप गुरुसे (अनुशिष्टः) उपदेश पाया हुआ (अहम्) मैं (एतत्) इस आत्मविद्या के निश्चित कारण को (विद्याम) जानूं (वराणाम्) वरोंमें (एषः) यह (तृतीयः) तीसरा मेरा अभीष्ट (वरः) वर है सो आप को देना चाहिये ॥

भावार्थः—वेदों में कहा है कि इसी शरीर में दो आत्मा जीव और ब्रह्म रहते हैं सो शरीर के मरने पर पहिले के समान कोई आत्मा इसमें रहता है वा नहीं यह ब्रह्मविषयक प्रश्न तथा शरीर के नष्ट होने के पश्चात् कोई जीवात्मा शरीरान्तर में जाता है वा शरीर के साथ उसका भी नाश होता है इस प्रकार जीव और ब्रह्म दो आत्माओं के विषय में सामान्य प्रश्न है। पहिला वर लौकिक, दूसरा परमार्थसम्बन्धी स्वर्गादिविषयक और तीसरा आत्मज्ञान से मोक्षविषयक है। क्योंकि दोनों आत्माओं के ज्ञान हुए बिना किसी की मुक्ति नहीं हो सकती ॥ २० ॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः। अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥ २१ ॥

आत्मज्ञानाधिकारी नचिकेता अस्ति न वेति परीक्षां कर्तुं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमाचार्य आह—(पुरा) पूर्वस्मिन् काले (अत्र) अस्मिन्नात्मज्ञानविषये (देवैः) विद्यया द्योतमानैर्विद्वद्भिर्विबुधैः (अपि) (विचिकित्सितम्) संशयितम्। कोऽयमात्मा अस्ति न वेति कथं विज्ञातव्य इत्यादिप्रकारेण सन्देहः कृतः। यतः (एषः) आत्मज्ञानरूपः (धर्मः) (अणुः) अतिसूक्ष्मोऽस्ति । अतः (न हि) (सुविज्ञेयम्) एतदात्मतत्त्वं न हि सर्वैर्ज्ञातुं शक्यम्। आत्मज्ञानाय प्रयतमानः सर्वः फलभाक् स्यादित्यपि सन्दिग्धम्। हे (नचिकेतः !) अतोऽसन्दिग्धफलम् । (अन्यम्) भिन्नम् (वरम्) (वृणीष्व) याचस्व (मा) मामधमर्णमिवोत्तमर्णः (मा, उपरोत्सीः) उपरोधमृणधारिणं मा कुरु (मा) माम् (अति) प्रति (एनम्) वरम् (सृज) त्यज। एतादृशं कठिनं वरं विहाय सुगमं किमपि याचस्वेति भावः ॥ २१ ॥

भाषार्थः—नचिकेता आत्मज्ञानाधिकारी है वा नहीं ? इस बात की परीक्षा करने के लिये यमाचार्य बोले (पुरा) पहिले समय में (अत्र) इस आत्मज्ञान विषय पर (देवैः) विद्या-से प्रकाशमान विद्वान् देवों ने (अपि) भी (विचिकित्सितम्) आत्मा कोई वस्तु है वा नहीं ? है तो कैसा किस प्रकार जानने योग्य है?इत्यादि प्रकार से सन्देह किये थे इस कारण(एषः) यह आत्मज्ञानरूप (धर्मः) गुण वा विषय (अणुः) अतिसूक्ष्म है। इस कारण (सुविज्ञेयम्) सब को सुगमता से जानने योग्य (न हि) नहीं है। अर्थात् आत्मज्ञान के लिये उद्योग करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले सब फल को प्राप्त ही हों यह सन्दिग्ध है। इससे हे (नचिकेतः!) नचिकेता! तुम जिसके फल मिलने में सन्देह न हो ऐसे (अन्यम्) अन्य (वरम्) वर को (वृणीष्व) मांगो (मा) मुझको ऋणी के तुल्य (मा, उपरोत्सीः) मत और दबाओ में तुम्हारा ऋणी हूँ सो ऐसा मत कहो कि मैं यही लूंगा छोड़ देने से मैं ऋणी बना रहूँगा (मा) मेरे (अति) प्रति (एनम्) इस वर को (सृज) त्यागो। ऐसे कठिन वर को छोड़कर कुछ सुगम वर मांगो॥ २१॥

देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वञ्च मृत्यो! यन्न सुविज्ञेयमात्थ। वक्ता चास्य त्वादृगन्यो न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित्॥ २२॥

पुनर्नचिकेता आह—हे (मृत्यो!) यमाचार्य्य! (अत्र) अस्मिन्नात्मज्ञानविषये (देवैः, अपि) उक्तरीत्या (विचिकित्सितम्) (किल, त्वञ्च) (यत्, सुविज्ञेयम्) (न) इति (आत्थ) ब्रवीषि। अतएवानुमीयतेऽतिकठिनोऽयं वरः (अस्य) वरस्य (त्वादृक्) त्वत्सदृशः (वक्ता) (अन्यः) मया (न, लभ्यः) (न, च) (एतस्य) (तुल्यः, अन्यः, कश्चित्, वरः) अस्ति। अस्य निःश्रेयसफलहेतुत्वादयमेव सर्वोपरिस्थमेः॥२२॥

भा०—फिर नचिकेता बोला कि हे (मृत्यो!) यमाचार्य! (अत्र) इस आत्मज्ञान विषय पर (देवैः अपि) विद्वान् देवों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने भी उक्त रीति से (विचिकित्सितम्) संशय किया (त्वं, च, किल) और आप भी (यत्, सुविज्ञेयम्, न) जिस कारण सुगमता से जानने योग्य नहीं ऐसा (आत्थ) कहते हैं इसी से मैं अनुमान करता हूं कि यह वर अति कठिन है (अस्य) इस वर का (वक्ता) उपदेश करनेवाला मुझको (त्वादृक्) आपके तुल्य (न, लभ्यः) नहीं मिल सकता (च) और (न) (एतस्य) इसके (तुल्यः, अन्यः, कश्चित्, वरः) तुल्य अन्य कोई वर है अर्थात् आत्मज्ञान मुक्तिसुखका कारण होनेसे यह सर्वोपरि है। इसलिये मैं इसको छोड़कर अन्य क्या माँगूं ॥२२॥

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्ति-हिरण्यमश्वान् । भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ॥ २३ ॥

पुनर्यम आह—हे नचिकेतस्त्वम् (शतायुषः) शत वर्षाणि यावदायुर्येषां तान् (पुत्रपौत्रान्) पुत्रांश्च पौत्रांश्च (वृणीष्व) (बहून्) (पशून्) गवादीन् (हस्तिहिरण्यम्) हस्तिनश्च हिरण्यं चेति समाहारद्वन्द्वः (अश्वान्) (भूमेः) पृथिव्याः (महत्) (आयतनम्) स्थानमाश्रयं माण्डलिकं राज्यम् (वृणीष्व) (स्वयम्, च) स्वयमपि (यावत्) यावतः (शरदः) संवत्सरान् जीवितुम् (इच्छसि) तावत् पुत्रपौत्रादिसुखसामग्र्या सह (जीव) प्राणान् धारय । लौकिकसुखसम्पत्तौ प्र-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धानकारणानि पुत्राद्य इत्यपि सूच्यते। मनुष्यस्य यावदायुः सम्भवति तावदेव जीवेति संयोज्यम्। न ह्युत्पत्तिधर्मकं किमपि शरीरादि नित्यं भवितुमर्हति दृष्टविरोधात्। यावदिच्छसि तावज्जीवेति वचनं प्रलोभनपरम्। न हि नियतजीवनात्कश्चिदधिकं जीवयितुं समर्थः। माण्डलिकराज्यं याचस्वेति कथनात्प्रतीयते जनकादिवद् यमःकश्चित्सार्वभौमो विद्वान् राजासीत्। चक्रवर्तिनमन्तरेण नान्यः कश्चिन्मण्डलराज्यं दातुं शक्तः। निर्धनो धनदानायेव। तदिदं शास्त्रतो युक्तमेव यदनूचाना विद्वांस एव सर्वोत्कृष्टराज्याधिकारिणः स्युरिति ॥२३॥

भा०—फिर यमराज बोले कि हे नचिकेतः! तुम (शतायुषः) सौ वर्षकी अवस्थावाले (पुत्रपौत्रान्) पुत्र पौत्रोंको (वृणीष्व) माँग तथा (बहून्) बहुत (पशून्) गौआदि पशुओं (हस्तिहिरण्यम्) हाथी, सुवर्ण और (अश्वान्) घोड़ों को माँगो और (भूमेः) पृथिवी के (महत्) बड़े भाग (आयतनम्) माण्डलिक राज्यको (वृणीष्व) मांगो (च) और (स्वयम्) आप भी (यावत्) जितने (शरदः) वर्षों जीवन की इच्छा करते हो उतने काल पर्यन्त पुत्र पौत्रादि सुखकी सामग्रीसहित (जीव) जीवो। ऐसा उपाय हम बता दें। इस प्रसंग में यह भी सूचित होता है कि लौकिक सुखकी सिद्धि में मुख्य कारण पुत्रादि हैं। मनुष्यकी जितनी अवस्था होना सम्भव है उतना ही जीवन समझना चाहिये। उत्पन्न होने-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काला शरीरादि कोई पदार्थ नित्य नहीं हो सकता। क्योंकि यह प्रत्यक्षसे विरुद्ध है "जितना चाहो उतना जीवो" यह कथन प्रलोभ दिखाने के लिये है, जितना जीवन हो सकता है उससे अधिक कोई किसीको नहीं जिला सकता। "माण्डलिक राज्यको माँग" इस कहने से प्रतीत होता है कि राजा जनकादिके तुल्य यम कोई सर्वोपरि विद्वान् तथा सब पृथिवी के राजा थे। क्योंकि जैसे निर्धन किसीको धनदान नहीं दे सकता वैसे ही चक्रवर्त्ती को छोड़ अन्य कोई मण्डलराज्य किसी को नहीं दे सकता सो यह शास्त्र के अनुकूल है कि सर्वोत्तम विद्वान् ही राज्य के अधिकारी हों ॥ २३ ॥

एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च। महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानान्त्वा कामभाजं करोमि ॥ २४ ॥

(यदि) (एतत्तुल्यम्) एतेन पूर्वोक्तेन तुल्यं सदृशं सुखभोगसाधनम् (मन्यसे) तर्हि तमपि (वरम्) (वृणीष्व) (वित्तम्) सुवर्णरत्नादिभोगसाधनमैश्वर्यम् (च) (चिरजीविकाम्) नियतागममपि वृणीष्व। हे (नचिकेतः!) (त्वम्) (महाभूमौ) महत्यां मेदिन्यां प्रतापवान् राजा (एधि) भव। अहम् (त्वा) त्वाम् (कामानाम्) अभिलषितविषयाणाम् (कामभाजम्) इष्टसुखसेविनम् (करोमि) अर्थात् सर्वाणि लौकिकसुखानि तुभ्यं दद्यां तानि भुङ्क्ष्व ॥ २४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—यमराज फिर बोलेकि (यदि) जो (एतत्तुल्यम्) इस पूर्वोक्तवरके तुल्य सुख भोग के साधन और भी (मन्यसे) मानते हो तो उस (वरम्) वर को भी (वृणीष्व) मांगो (वित्तम्) सुवर्णरत्नादिभोग का साधन ऐश्वर्य (च) और (चिरजीविकाम्) नियत सदा का मासिक लाभ भी मांगो । हे (नचिकेतः !) नचिकेता ! (त्वम्) तुम (महाभूमौ) बहुत अधिक पृथिवी पर प्रतापी राजा (एधि) हो । मैं (त्वा) तुझको (कामानाम्) अभीष्ट विषयों की (कामभाजम्) इच्छा को प्राप्त होनेवाला (करोमि) करता हूँ अर्थात् सब लौकिक सुख तुम्हें देता हूँ उनको भोगो ॥ २४ ॥

ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाꣳश्छन्दतः प्रार्थयस्व । इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः । आभिर्मत्प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो ! मरणं मानुप्राक्षीः ॥ २५ ॥

(मर्त्यलोके) मनुष्यसृष्टौ जनसमुदाये (ये, ये) (दुर्लभाः) (कामाः) सन्ति तान् (सर्वान्) (कामान्) (छन्दतः) यथेष्टम् (प्रार्थयस्व) (इमाः) (सरथाः) रथैःरमणसाधनैर्यानैः सह वर्त्तमाना रथारूढाः (सतूर्याः) वादित्रादिवादनसहिताः (रामाः) रमयन्ति हावभावैः प्रसीदयन्ति पुरुषानिति रामाः सुरूपवत्यः कान्ता मया तुभ्यं दीयन्ते (ईदृशाः) (मनुष्यैः) साधारणैः (न हि) (लम्भनीयाः) प्राप्या (मत्प्रत्ताभिः) मया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दत्ताभिः (आभिः) युवतिभिः (परिचारयस्व) हे (नचिकेतः!) (मरणम्) मरणसम्बन्धिजीवात्मज्ञानपरमात्मज्ञानविषयम् (मानुप्राक्षीः) मा पृच्छ ॥ २५ ॥

भाषार्थः—(मर्त्यलोके) मनुष्यों में (ये, ये) जो २ (कामाः) कामना प्राप्त होनी (दुर्लभाः) दुर्लभ हैं उन (सर्वान्) सब (कामान्) कामनाओं को (छन्दतः) स्वतन्त्रता से यथेष्ट (प्रार्थयस्व) मागो (इमाः) ये (रथाः) सुख के साधन यानों सहित रथों पर चढ़ी हुई (सतूर्याः) जिनके साथ बाजे आदि बजते हैं ऐसी (रामाः) हावभावों से पुरुषों को प्रसन्न करनेवाली सुरूपवती स्त्रियाँ मैं तुमको देता हूँ । (ईदृशाः) ऐसी आज्ञाकारिणी सर्वोत्तम सुन्दरी स्त्रियां (मनुष्यैः) साधारण मनुष्यों को (न हि) नहीं (लम्भनीयाः) प्राप्त हो सकतीं । (आभिः) इन पति की सेवा में तन मन धन से तत्पर आज्ञाकारिणी (मत्प्रत्ताभिः) मुझसे दी हुई युवतियों से (परिचारयस्व) अपनी सेवा सुश्रुषा कराओ । हे (नचिकेतः !) नचिकेता ! (मरणम्) मरणसम्बन्धी आत्माके ज्ञान विषय का (मानुप्राक्षीः) मत पूछो ॥ २५ ॥

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः । अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥ २६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमुक्तप्रकारेण बहुविधं प्रलोभितोऽपि नचिकेताः सर्वे लौकिकसुखभोगा अनित्या दुःखपरिणामास्तुच्छा इति मत्वा न प्रलुब्धः पुनश्चतुर्भिर्मन्त्रैः स्वाभीष्टमाह—हे (अन्तक !) दुष्टकर्मकारिणामन्तकृन्नाशक यमराज ! (श्वोभावाः) श्व आगामिनि दिवसे भविष्यन्ति न वा भविष्यन्तीत्यागमापायवन्तोऽनित्याः सर्वे संसारस्थस्त्र्यादिसम्बन्धिसुखभोगाः (मर्त्यस्य) (सर्वेन्द्रियाणाम्) चक्षुरादीनाम् (तेजः) (जरयन्ति) यच्च तत्रभवान् चिरजीविकां दातुमिच्छति तत् (सर्वम्) (अपि) (जीवितम्) (अल्पमेव) यच्चोक्तं रथादिसहिता रामा दीयन्ते तत्रापि शृणु (वाहाः) रथादिवाहनानि (तवैव) सन्तु (नृत्यगीते) तूर्यशब्दसूचिते च (तव) भवेताम् ॥२६॥

भा०—इस प्रकार अनेक विध लुभाया हुआ भी नचिकेता सब लौकिक सुखभोग अनित्य,परिणाम में दुखदायी और तुच्छ हैं ऐसा मान के लोभ को प्राप्त नहीं हुआ फिर अपने अभीष्ट को चार मन्त्रों से कहता है। हे (अन्तक !) दुष्टकर्मकारियों का नाश करनेवाले यमराज ! (श्वोभावाः) जो भोग इस समय हैं वे कल रहेंगे वा नहीं इस प्रकार उत्पत्ति नाशवाले स्त्री आदि के साथ होनेवाले सब सुखभोग अनित्य हुये (मर्त्यस्य) मनुष्य के (सर्वेन्द्रियाणाम्) सब इन्द्रियों के (तेजः) प्रताप बल वा शोभा को (जरयन्ति) नाश करदेते हैं और जो आप बहुत काल जीवन देनेको कहते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं सो (सर्वम्) सब (अपि) भी (जीवितम्) जीवन (अल्पम्, एव) थोड़ा ही है अर्थात् मुक्ति के नित्य अविनाशी सुख की अपेक्षा सौ दो सौ वर्ष जीवन भी तुच्छ है। और जो रथादि सहित सेवन करनेवाली सुन्दरी स्त्रियां आप देना चाहते हैं सो वे (वाहाः) रथ आदि वाहनों सहित स्त्रियां (तवैव) आपकी ही रहें और (नृत्यगीते) नाचना गाना बजाना भी (तवैव) आपका ही रहे मैं नहीं चाहता ॥ २६ ॥

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्त्वा। जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥ २७ ॥

(मनुष्यः) (वित्तेन) भोगेन। वित्तो भोगप्रत्ययययोरिति निपातनम् (न, तर्पणीयः) तृप्तो भवितुन्नार्हः। अतो मयाधिकं वित्तं न याचनीयम् (चेत्) यदि (त्वा) त्वाम् (अद्राक्ष्म) दृष्टवन्तस्तर्हि (वित्तम्) भोगम् (लप्स्यामहे) प्राप्स्याम एव भवत्कृपातः (यावत्) कालम् (त्वम्) (ईशिष्यसि) ममेश्वरः प्रभुरध्यक्षः स्वामी रक्षको भविष्यसि तावत् (जीविष्यामः) प्राणान् यापयिष्यामः। अतो मया चिरजीवकापि वरपक्षे न याचनीया। एतद्द्वयं कर्मानुकूलमन्यैरपि लभ्यम्। यस्योपरि भवादृशानां दयास्ति स यावत्प्रयोजनं सुवर्णाद्यैश्वर्यभोगप्राप्त्यत्येव ममोपरि तु भवदीया विशिष्टा दयास्ति तस्याः साधारण-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वित्तादियाचनं फलमनुचितम्। अतः (मे) मम (वरस्तु) (स एव) (वरणीयः) प्रार्थनीयो नान्यः ॥

भा०—(वित्तेन) ऐश्वर्य के भोग से (मनुष्यः) मनुष्य (न, तर्पणीयः) तृप्त नहीं होसकता इसलिये मैं अधिक ऐश्वर्य भोग नहीं मांगता (चेत्, त्वा) जो आपका (अद्राक्ष्म) दर्शन हुआ है तो (वित्तम्) ऐश्वर्यभोग आपकी कृपा से (लप्स्यामहे) प्राप्त होंहोगे (यावत्) जब तक (त्वम्) आप (ईशिष्यसि) मेरे स्वामी रक्षक बने रहोगे तब तक (जीविष्यामः) प्राणयात्रा चलेगी। इस कारण मैं चिरजीवन भी वरपक्षमें नहीं माँगता। ऐश्वर्य्य भोग और जीवन इन दोनोंको अन्य भी प्राणी कर्मानुसार पाते हो हैं अर्थात् जिस पर आप जैसे महात्मा सर्वाध्यक्ष की दया है वह अपने निर्वाहानुकूल ऐश्वर्य अवश्य पावेगा। मेरे ऊपर तो आपकी विशेष दया है उसका फल साधारण धनादि मांगना अनुचित है इस कारण (मे) मुझको (वरस्तु) वर तो (स एव) वही (वरणीयः) मांगना है जो पहिले मांग चुका अन्य नहीं ॥ २७ ॥

अजीर्यतामृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् । अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ॥ २८ ॥

(वर्णरतिप्रमोदान्) वर्णस्य गौरसौन्दर्यादेः रतेः प्रमदासम्बन्धस्य च प्रमोदान् हर्षान् (अभिध्यायन्) तत्त्वतो दुःख-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूलान विचारयन् (अजीर्यताम्) वयोहानिमप्राप्नुवताम् (अ-मृतानाम्) मुक्तानां योग्यताम् (उपेत्य) प्राप्य (क्वधःस्थः) कौ पृथिव्यामधः परमार्थसुखापेक्षया निकृष्टदशायां तिष्ठतीति सः (जीर्यन्) शरीरादेः क्षीणतामनुभवन् (कः) (प्रजानन्) प्रज्ञावान् सदसद्विवेकी जनः (अतिदीर्घे) (जीविते) जीवने (रमेत) न कांपीत्यर्थः । क्वधःस्थ इत्यस्य स्थाने क्वलदास्थ इति पाठान्तरे तेषु पुत्रधनादिष्वास्था यस्य स तादृशः क्व भवति न क्वापीत्यर्थः ॥

भा०—यथा बुद्धिमतः कस्यचिदुत्तमाधिकारसुखमुपस्थितं नैव स उत्कृष्टं विहाय निकृष्टमाशु मनो धत्ते तथैव यः पारमार्थिकमात्मज्ञानजन्यमनुत्तमं सुखमाशुमुत्सुकः शक्तश्च महदाश्रयेणोपस्थितेच सुखेऽनेकविघ्नोपद्रुतं दुःखबहुलमनित्यं सुखभोगं को विद्वान् प्रार्थयेत ? अतो नाहं प्रलोभ्यः संसारसुखैरिति नचिकेतस आशयः ॥ २८ ॥

भाषार्थः—(वर्णरतिप्रमोदान्) गोरे सुन्दर आदि वर्ण और सुन्दर स्त्रीके संयोगसे हुये सुखों को (अभिध्यायन्) तत्त्व से दुःख के मूल समझते हुये तथा (अजीर्यताम्) जीर्ण वृद्धावस्था रहित (अमृतानाम्) मुक्तपुरुषों की योग्यताको (उपेत्य) पाकर (क्वधःस्थः) परमार्थ सुखकी अपेक्षा पृथिवी पर निकृष्ट दशामें स्थित (जीर्यन्) शरीर तथा इन्द्रियों के नाश का अनुभव करता हुआ (कः) कौन (प्रजानन्) विचारशील

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत् असत् का विवेकी मनुष्य (अतिदीर्घे) बहुत (जीविते) जीवनमें (रमेत) रमे ? अर्थात् कोई नहीं (क्वधःस्थः) इस के बदले किसी२ पुस्तक में (क्वतदास्थः) ऐसा भी पाठ मिलता है तब यह अर्थ होगा कि उन धन पुत्रादि अनित्य पदार्थों में कौन चित्त दे ? अर्थात् कोई नहीं ॥

भा०—जैसे उत्तम अधिकार का सुख भोग उपस्थित हो तो कोई बुद्धिमान् उसको छोड़कर नीच को नहीं पकड़ता वैसे ही जो आत्मज्ञान से होनेवाले सर्वोत्तम परमार्थ सुख को प्राप्ति का अभिलाषी और उसको प्राप्त करने में समर्थ है और महात्मा गुरु के आश्रय से परमार्थ सुख मिलना उपस्थित भी है तो अनेक विघ्नों से युक्त दुःखप्राय संसारी अनित्य सुखभोग को कौन विद्वान् चाहेगा ? इसलिये मैं संसारी सुख भोगोंसे लुभाने योग्य नहीं हूँ। यह नचिकेता का आशय है ॥२८॥

यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो ! यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्। योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यन्तस्मान्नचिकेता वृणीते ॥ २९ ॥

हे मृत्यो ! आचार्य ! (यस्मिन्) आत्मज्ञानविषये (इदम्) अस्ति नास्ति वाऽस्ति चेत्कीदृशं क्वास्ति वेत्यादिप्रकारेण (विचिकित्सन्ति) सन्देहान्कुर्वन्ति (यत्) (महति) अनन्ते (साम्पराये) मोक्षदशायां विचारोऽस्ति (तत्) विवेचनम् (नः) अस्मभ्यम् (ब्रूहि) उपदिश (यः अयम्) प्रसङ्गप्राप्तः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गूढम्) गूढत्वङ्गोपनमनिर्वाच्यत्वम् (अनुप्रविष्टः) आत्मज्ञानानुकूलः (वरः) अस्ति (तस्मात्) (अन्यम्) वरम् (नचिकेताः) (न) (वृणीते) न हीच्छति तमेवेच्छामीत्यर्थः॥

भा०—हे ब्रह्मनिष्ठाचार्य ! मरणकाले कश्चिदात्मावशिष्यते न वा जन्मान्तरं कश्चिदाप्नोति न वा कः कथं कदा वा विमुक्तो भवतीति ज्ञानं वरो देय इत्यर्थः ॥ २९ ॥

इति कठोपनिषदि प्रथमा वल्ली समाप्ता ॥

भा०—हे (मृत्यो !) आचार्य ! (यस्मिन्) जिस आत्मज्ञानके विषय में (इदम्) आत्मा कोई है ? वा नहीं, है तो कहां है ! वा कैसा है इत्यादि प्रकार से (विचिकित्सन्ति) लोग सन्देह करते हैं (यत्) जो (महति) अनन्त (साम्पराये) मोक्षदशा में विचार वा ज्ञान है (तत्) उस विवेक को (नः) हमारे लिये (ब्रूहि) कहिये (यः) जो (अयम्) यह प्रसंग से प्राप्त अर्थात् जिसका विचार चल रहा है (गूढम्) छिपने वा अकथनीय दशाको (अनुप्रविष्टः) पहुँचा (वरः) वर है (तस्मात्) उससे (अन्यम्) भिन्न वरको (नचिकेताः) नचिकेता (न, वृणीते) नहीं चाहता अर्थात् उसी वर की इच्छा मैं करता हूँ ॥

भा०—हे ब्रह्मनिष्ठ आचार्य ! मरणसमय में कोई आत्मा शेष रह जाता है वा नहीं ? जिसको जन्म मरण हो ही नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा जन्मान्तर को कोई धारण करता है वा नहीं कौन किस प्रकार वा कब मुक्त होता है ? इस प्रकार का ज्ञानरूप बल मुझको दीजिये ॥ २९ ॥

यह प्रथम वल्ली समाप्त हुई ॥

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभेनानार्थे पुरुषꣳ सिनीतः । तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥ १ ॥

बहुप्रकारं यमेन लोभ्यमानोऽपि नचिकेता यदा न लुलुभे तदा शिष्ययोग्यतां बुद्ध्वा शिष्यप्रशंसापूर्वकं ज्ञानमुपदेष्टुमाह (श्रेयः) अतिशयितं प्रशस्यङ्कल्याणकरं मोक्षप्राप्तिसाधनं कर्म (अन्यत्) यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् । संसारि कृत्यापेक्षयातिविलक्षणमरोचकं नीरसम् । (उत) (प्रेयः) अत्यन्तं प्रियं स्त्रीधनैश्वर्यादिभोगप्रापणम् (अन्यत्, एव) प्रारम्भे सुखबलदं परिणामेऽपरिमितदुःखहेतुकमहोरात्रवद्भिन्नं (ते) श्रेयः प्रेयसी (उभे) (नानार्थे) नाना अर्थाः प्रयोजनानि ययोस्ते भिन्ननिमित्ते भिन्नफलके सति (पुरुषम्) (सिनीतः) कर्मफलानुमोदनवासनारज्जुभिर्बध्नीतः (तयोः) श्रेयःप्रेयसोर्मध्ये (श्रेयः) (आददानस्य) उपादातुः (साधु) कल्याणम् (भवति) (यः, उ) (प्रेयः) (वृणीते) स्वीकरोति सः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अर्थात्) नित्यसुखप्राप्तिरूपात्परमार्थप्रयोजनात् (हीयते) हीनो भवति ।

भा०—यथा निम्बादिकटुवस्तूनि प्रायोऽप्रियाणि भवन्ति परिणामे च तेषामौषधत्वान्महत्सुखम्, शर्करादि मिष्टप्रायः प्रियं तत्सेवने प्रायः कल्याणं न जायते तथैव पारमार्थिकसुखसम्पत्ति-तपश्चरणादि श्रेयो विषकुम्भपयोमुखवत्संसारिविषयभोगप्रेय-सोऽतिदूरतरम् । तत्र यो मनुष्यजन्म प्राप्य मुक्तये प्रयतते स कल्याणमाप्नोति नेतरः शकृत्कृमिर्भोगासक्तः ॥ १ ॥

भा०—यमराजने बहुत कुछ लुभाया भी नचिकेता जब प्रलोभित न हुआ तब शिष्यकी योग्यता जान शिष्यकी प्रशंसा-पूर्वक ज्ञानका उपदेश करनेका प्रारम्भ किया—(श्रेयः) अत्य-न्त प्रशंसित कल्याणकारी मोक्ष प्राप्तिका साधनरूप कर्म (अन्यत्) अन्य है अर्थात् सांसारिक कृत्यकी अपेक्षा अति-विलक्षण अरोचक नीरस और (प्रेयः) क्षोधनैश्वर्यादि भोग मिलना अत्यन्त प्रिय (अन्यत्, एव) प्रारम्भमें नाममात्र थोड़ा सुखदेने और परिणाम में अतुल दुःखदायी दिन रातके तुल्य भिन्न ही है (ते) वे कल्याण अकल्याण (उभे) दोनों (नानार्थे) भिन्न २ प्रयोजनवाले हुए (पुरुषम्) मनुष्यको (सिनीतः) कर्मफलके अनुमोदन की वासनारूप रस्सियों से बाँधते हैं (तयोः) उन दोनों में से (श्रेयः) श्रेयको (आददानस्य) ग्रहण करनेवाले का (साधु) अच्छा भला (भवति) होता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र (यः, उ) और जो (प्रेयः) प्रेयको (वृणीते) चाहता है वह (अर्थात्) नित्यसुखप्राप्तिरूप परमार्थप्रयोजनसे (हीयते) भ्रष्ट हो जाता है॥

भा०—जैसे निम्ब आदि कडुआ वस्तु प्रायः प्रिय नहीं लगता और अन्त में उसके सेवन से अनेक रोगोंका नाश होकर बड़ा सुख होता है तथा शक्कर आदि मीठा प्रायः प्रिय होता है उसके सेवनमें कल्याण होना कम सम्भव है। वैसेही परमार्थ सुखका साधक तपश्चरण आदि, संसारी विषयभोग (भीतर विष ऊपर दूध से भरे घड़ेके तुल्य) से अत्यन्त विलक्षण है। इसमें जो मनुष्य जन्म पाकर मुक्त होने के लिये प्रयत्न करता है वह कल्याण को प्राप्त होता है। अन्य भोगमें आसक्त विष्ठा का कीड़ा सद्गति को नहीं पा सकता॥ १॥

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः। श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद्वृणीते॥ २॥

(मनुष्यम्) (श्रेयः, च) (प्रेयः, च) पूर्वोक्ते उभे अपि (एतः) प्राप्नुतः। संसारान्तर्गतत्वाद्द्वयमपि सर्वस्य समीप उपस्थितं भवति तत्र साधारणो जनो नावधारयितुं शक्तः किं श्रेयः प्रेयो वाऽस्तीति किन्तु (तौ) विषयौ (सम्परीत्य) प्राप्य संस्कृतया मनीषयाऽऽलोच्य (धीरः) विद्वान् (विविनक्ति) तयोस्तारतम्यं कल्याणाकल्याणकरत्वं विवेचयति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(धीरः) (प्रेयसः) प्रियतमाच्छ्रेष्ठम् (श्रेयः, हि) श्रेय एव (अभिवृणीते) उभयतः स्वीकरोति (मन्दः) मन्दमतिः (योगक्षेमात्) धनादीनामुपार्जनरक्षणाभ्यां स्वसुखमालक्ष्य (प्रेयः) विषयभोगम् (वृणीते) याचतेऽभिलषति। विषयभोगमेव प्रार्थयते ॥

संसारे कल्याणहेतुमकल्याणहेतुकं चोभयं वर्त्तते केचिद्विषयाः कल्याणाभासा मन्दमतिभिः कल्याणत्वेनोरीक्रियन्ते तदर्थं मनुष्येण विदुषा भवितव्यम्। येन सदसद्विवेकसुलभः स्यात्। विद्वान् हि कल्याणभाग्भवितुमर्हति नेतरो मूढः। त्वया नचिकेतसा च श्रेय एव वृतमतस्त्वं विवेकी ॥ २॥

भा०—(मनुष्यम्) मनुष्यको (श्रेयः) कल्याण (च) और (प्रेयः) रोचक प्रिय अकल्याणमार्ग (च) भी उक्त दोनों (एतः) प्राप्त होते अर्थात् संसारके अन्तर्गत होनेसे दोनों सबके निकट उपस्थित होते हैं उसमें साधारण मनुष्य निश्चय नहीं कर सकता कि इसमें कल्याण का मार्ग यही है किन्तु अविद्या के प्रताप से अकल्याण को कल्याण मानकर चलता है। (धीरः) विद्वान् पुरुष (तौ) उन अच्छे बुरे दोनों विषयों को (सम्परीत्य) शास्त्र से शुद्ध हुई बुद्धिसे निश्चय कर (विविनक्ति) विवेक करता है और (धीरः) विद्वान् ही (प्रेयसः) अतिप्रिय रोचक विषय से श्रेष्ठ (श्रेयः) (हि) कल्याण को ही (अभि, वृणीते) चाहता है तथा (मन्दः) मन्दबुद्धि मनु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्य (योगक्षेमात्) विषय सुखभोग के साधन धनादिके उपार्जन और रक्षणसे अपना सुख स्थिर रहना समझ कर (प्रेयः) प्रियतर विषय भोग को ही (वृणीते) मांगता है ॥

भा०—संसार में कल्याण अकल्याण दोनोंके साधन वर्त्तमान हैं कोई विषय ऊपर से देखनेमें कल्याणकारी होते किन्तु वास्तवमें नहीं। उनको मन्दबुद्धि लोग कल्याण का हेतु समझ के स्वीकार करते हैं। इसलिये मनुष्य को विद्वान् होना चाहिये जिस से सत् असत् का विवेक सुगम होजावे। विद्वान् पुरुष कल्याण का भागी हो सकता है किन्तु मूर्ख नहीं और हे नचिकेता ! तूने ठीक कल्याण को जानकर माँगा इस कारण तू विवेकी और अधिकारी है ॥ २ ॥

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः । नैताꣳसृङ्कां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥ ३॥

इदानीं नचिकेतसमभिमुखीकृत्य यम आह-हे (नचिकेतः!) (सः, त्वम्) मया बहुविधं प्रलोभ्यमानोऽपि (प्रियान्) पुत्रपौत्रादीन् (प्रियरूपान्) अप्सरःप्रभृतीन् (कामान्) कामभोगाननित्यत्वासारत्वदुःखबहुलत्वादिदोषदुष्टान् (अभिध्यायन्) सर्वतश्चिन्तयन् (अत्यस्राक्षीः) त्यक्तवान्। त्वम् (एतम्) (वित्तमयीम्) भोगैश्वर्यरूपां लोहमयीमिव (सृङ्काम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृङ्कलाम् (न, अवाप्तः) (यस्याम्) (बहवः) (मनुष्याः) (मज्जन्ति) बद्धा भवन्ति तामेतां नावाप्त इति पूर्वेणान्वयः ॥

भा०–अहो ! नचिकेतस्तव बुद्धिवैभवम् । भवादृक् एव वेदान्तज्ञानाधिकारो भवति योऽखिलभूगोलराज्यमपि प्राप्तं तृणीकृत्य संसारान्निर्विण्णः परमार्थसाधने प्रयतेत ॥ ३ ॥

भाषार्थः–अब नचिकेता की ओर साक्षात् यमराज ही कहते हैं कि हे (नचिकेतः !) नचिकेता (सः,त्वम्) मैंने बहुत प्रकार लुभाये फिर भी, तूने (प्रियान्) पुत्र पौत्र आदि (प्रियरूपान्) अप्सरा (अतिसुन्दरस्त्री) आदि (कामान्) अनित्य असार और अधिक दुःख होनारूप दोषों से युक्त कामभोगों को (अभिध्यायन्) सब ओर से विचार कर (अत्यस्राक्षीः) छोड़ दिया और तू (एताम्) इस ऐश्वर्यरूप भोग लोहे की सी (सृङ्काम्) सांकर को (न) (अवाप्तः) नहीं प्राप्त हुआ अर्थात् उस में नहीं फंसा कि (यस्याम्) जिस में (बहवः) बहुत (मनुष्याः) मनुष्य (मज्जन्ति) बँधे रहते हैं उसमें तू न फंसा किन्तु विचारपूर्वक निकल गया ॥

भा०–अहो नचिकेता ! तेरी बुद्धि के प्रताप को धन्य है । ऐसा ही पुरुष वेदान्तज्ञान का अधिकारी होता है जो समस्त पृथिवी के राज्य की प्राप्ति को भी तृणमात्र समझ कर संसार से उदासीन हो परमार्थ साधन में प्रयत्न करे ॥३॥

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञाता। विद्याऽभीप्सिनन्नचिकेतसं मन्ये मत्वा कामा बहवो लोलुपन्त ॥४॥

(एते) श्रेयःप्रेयसी (विषूची) विलक्षणगतिनी विरुद्धार्थसूचके वा (विपरीते) परस्परं विरुद्धे ते के इत्याकाङ्क्षायामाह (अविद्या) प्रेयोलक्षणा (या, च) (विद्या) श्रयोलक्षणा (इति) एवम्प्रकारेण (ज्ञाता) विद्वद्भिरिति शेषः। अहम् (विद्याभीप्सिनम्) अतस्मिंस्तद्बुद्धिधर्जितां यथार्थज्ञानलक्षणां विद्यामभीप्सितुं शीलमस्य तादृशम् (नचिकेतसम्) त्वाम् (मन्ये) जाने यतः कारणात् (त्वा) त्वाम् (बहवः) (कामाः) सुखभोगाभिलाषाः (न) (लोलुपन्त) न लोभयन्ति न विषयजाले बध्नन्ति ॥

भा०-विद्याऽविद्ययोर्गतौ महान् भेदस्तमःप्रकाशवत्तयोर्विरोधः। सर्वबाधाविमुक्तिज्ञानं विद्या संसारस्थसुखभोगानुभवज्ञानमविद्या संसारस्थसुखभोगेषु वितृष्ण एव जनो विद्यामभीप्सति ॥ ॥

भा०—(एते) उक्त दोनों अच्छे बुरे विषय (विषूची) परस्पर विरुद्धप्रयोजनके सूचक (विपरीते) एक दूसरी से विलक्षण रात दिन के समान भिन्न (अविद्या) विषयभोगरूप (च) और (या) जो (विद्या) कल्याणरूप (इति) इस प्रकार विद्वानों ने (ज्ञाता) निश्चय की है। मैं (नचिकेतसम्) नचिकेता को (विद्याभीप्सिनम्) अन्य में अन्यबुद्धि होनारूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिथ्याज्ञान को छोड़के यथार्थज्ञानरूप विद्याका चाहनेवाला (मन्ये) मानता हूँ। जिस कारण (त्वा) तुझको (बहवः कामाः) सुखकी बहुत अभिलाषा (न, लोलुपन्त) लोभित नहीं करतीं विषयजाल में नहीं बाँधती ॥

भा०—विद्या अविद्याकी गतिमें बड़ा भेद है प्रकाश अन्धकारके तुल्य उनका विरोध है। सब बाधाओं से छूटनेका ज्ञान होना विद्या और संसारके सुखभोगके अनुभव का ज्ञान अविद्या कहाती है। संसारस्थ सुखभोगों में तृष्णारहित ही मनुष्य विद्या को चाहता है ॥ ४ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयन्धीराः पण्डितम्मन्यमानाः । दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥ ५ ॥

विद्याभीप्सिनः पुरुषाद्भिन्नाः कीदृशा जना भवन्ति तदुच्यते (अविद्यायाम्) (अन्तरे) मध्ये महत्यज्ञानान्धकारे (वर्त्तमानाः) (स्वयन्धीराः) वयं पण्डिताः शास्त्रज्ञा इत्यात्मानम् (पण्डितम्) (मन्यमानाः) (दन्द्रम्यमाणाः) कुटिलपथगामिना भृशमितस्ततो धावन्तो वा (मूढाः) विक्षिप्ता अस्थिरचेतसो मोहं प्राप्ताः (अन्धेन, एव) अबोधोपहतचक्षुषैव (नीयमानाः) (यथा) (अन्धाः) गच्छन्ति तथा (परियन्ति) परितो गच्छन्ति ॥

भा०—यथा नौर्नाविं बद्धा नेतरत्राणाय भवति तथाऽन्ध-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ह्यमपीतरेतराश्रितमधोगतिं लभते नैव तयोरन्यतरस्त्राता भवितुमर्हति यथा च पङ्कोपदिग्धौ हस्तौ पङ्केनैव न शुध्यतस्तथैव यः स्वयं संसारार्णवैकदेशविषयपङ्के निमग्नः स नान्यं तादृशपङ्कादुद्धर्त्तुं शक्तोऽपि तु द्वावपि निमज्जतः ॥५॥

भावार्थः-विद्याभिलाषी पुरुष से भिन्न मनुष्य कैसे होते हैं सो कहते हैं—(अविद्यायाम्) अन्य को अन्य समझनारूप विपरीत ज्ञान अविद्या के (अन्तरे) बीच बड़े अज्ञानान्धकार में (वर्तमानाः) वर्त्तमान (स्वयन्धीराः) हम शास्त्रज्ञ विचारशील हैं इस प्रकार अपने को (पण्डितम्) पण्डित (मन्यमानाः) मानते हुए (दन्द्रम्यमाणाः) उलटे मार्ग में चलनेवाले वा इधर उधर शीघ्र २ भागते हुए (मूढ़ाः) विक्षिप्त चञ्चल चित्त मोह में फंसे (अन्धेन; एव) अज्ञान से जिसके नेत्र नष्ट होगये उसके साथही (नीयमानाः) चलनेवाले (यथा) जैसे (अन्धाः) अन्धे नेत्रहीन चलते हैं वैसे (परियन्ति) सब ओर से चलते हैं ॥

भा०-जैसे नौका नौका में बांध देने से एक दूसरी को पार नहीं पहुंचा सकती वैसे दो अन्धे भी एक दूसरे के आश्रय हो कर गढ़े में गिरते हैं उन में एक दूसरे की रक्षा नहीं कर सकता और जैसे कींच में सने हुये हाथ कीच से शुद्ध नहीं होते वैसे ही जो स्वयं संसारसागर के किसी विषयरूप कीच में फंसा है वह दूसरे को उसी प्रकार की कीचरूप अ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्या से नहीं उबार सकता किन्तु वे दोनों डूबते हैं इसलिये उनका उद्धार करनेवाला तीसरा पूर्ण ज्ञानी मल्लाह होना चाहिये ॥ ५ ॥

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् । अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ ६ ॥

(वित्तमोहेन) धनैश्वर्यादिवस्तुवियोगशोकग्रस्तज्ञानेन (मूढम्) तमसावृतम् (प्रमाद्यन्तम्) कल्याणाचरणे प्रमादं कुर्वन्तम् (बालम्) विवेकरहितं पुरुषम् (साम्परायः) परमार्थसाधनविशेषोऽपरिग्रहेश्वरप्रणिधानतपश्चरणादिः (न, प्रतिभाति) स्मृतिस्थो न भवति (अयम्) (लोकः) प्रत्यक्षतया दृश्यमानः स्त्र्यन्नपानैश्वर्यादिरस्ति इतः (परः) अन्यः कश्चित्परमार्थः (नास्ति) (इति) (मानी) मननशीलो जन्मान्तरीयपुण्यपापफलभोगेष्वविश्वासेन पापासक्तत्वात् (मे) मम न्यायाधीशस्य दण्डमास्तुम् (वशम्) शरणम् (पुनः पुनः) (आपद्यते) प्राप्नोति ॥

भा०—भोगासक्तोऽविवेकी परमार्थं नैव स्मरति । धर्माधर्मौ च न विवेचयति सुखभोगानुकूलमधर्ममप्याचरति तेन न्यायाधीशराजाज्ञया पुनःपुनर्दण्डभाग्भवति ॥ ६ ॥

भा०-(वित्तमोहेन) हा ! मेरा धन ऐश्वर्यादि पदार्थ शरीर छूटते समय सब यहीं रह जायगा वा जीवन समय में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चोर आदि ले जावेंगे तो क्या करूंगा इत्यादि अज्ञान रूप (मूढम्) अन्धकारसे जिसका आत्मा ढपा है उस (प्रमाद्यन्तम्) कल्याणमार्ग से प्रमाद करते हुए (बालम्) विवेक रहित पुरुष को (साम्परायः) अपरिग्रह-लौकिक सुखभोगसे उदासीनता, ओंकारका जप ईश्वर का ध्यान और द्वन्द्वसहनरूप तप करना आदि परमार्थ साधन (न,प्रतिभाति) अच्छा नहीं लगता वा उसका स्मरण नहीं होता (अयम्) प्रत्यक्ष (लोक) दीखता हुआ स्त्री अन्न पान ऐश्वर्य आदि का भोगरूप यह लोक है। इससे (परः) अन्य कोई परमार्थ (नास्ति) नहीं है वह अज्ञानी (इति) ऐसा (मानी) माननेवाला होता है क्योंकि जन्मान्तर में होनेवाले पुण्य पाप के फलभोग में अविश्वास होने से पाप करने में फंसता है। और (मे) दण्ड पाने के लिये मेरे तुल्य न्यायाधीशके (वशम्) शरण को (पुनः पुन) बार२ (आपद्यते) प्राप्त होता है।

भा०-भोग में फंसा हुआ अज्ञानी परमार्थ का स्मरण नहीं करता तथा धर्म अधर्म का भी विवेक नहीं करता सुखभोग के आश्रय से अधर्म भी करता है। इससे न्यायाधीश राजा की आज्ञा वा ईश्वरके नियमसे बार२ दण्डभागी होता है ॥६॥

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यन्न विद्युः। आश्चर्योऽस्य वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालादितरो विवेकी श्रेयोर्थी कश्चिदेव भवतीत्याह-यतः (बहुभिः) जनैः (यः) परमात्मा (श्रवणाय, अपि) श्रवणार्थमपि (न,लभ्यः) समाजादिषु यस्य व्याख्यानश्रवणमपि बहवः कार्यासक्ता न लभन्ते समाजादिषु गताश्च (बहवः) जनाः (शृण्वन्तः, अपि) (यत्) ब्रह्म (न,विद्युः) न जानीयुः। आश्चर्यस्वरूपत्वाच्चस्य (अस्य) ब्रह्मणः (वक्ता) यथार्थगुणानां प्रतिपादकः (आश्चयः) अद्भुतस्वरूपोऽसङ्ख्येषु कश्चिदेव समाजादिषु श्रोतृष्वपि (अस्य) (कुशलः) प्रवीणः (लब्धा) प्रापकः कश्चिदेव भवति। (कुशलानुशिष्टः) कुशलेन ब्रह्मज्ञाने प्रवीणेनाचार्येणानुशिष्ट उपदिष्टः (ज्ञाता) (आश्चर्यः) कश्चिदेव जायते न सर्वः।

भा०-मानुषे लोके ब्रह्मज्ञानी पुरुषो दुर्लभः कश्चिदेवानेकजन्मानुष्ठिततपश्चरणादिसिद्धो जायते स चाश्चर्यरूपः। ब्रह्मण उपदेष्टा च दुर्लभो महाप्रयत्नसाध्यः ॥७॥

भाषार्थः-बालबुद्धि से भिन्न मुमुक्षु विचारशील कोई ही विद्वान् होता है सो कहते हैं-जिस कारण (बहुभिः) बहुत मनुष्यों को (यः) जो परमात्मा (श्रवणाय-अपि) सुनने को भी (न, लभ्यः) नहीं मिलता अर्थात् अपने संसारी कामोंमें आसक्त बहुत लोग समाज आदि में जिसका व्याख्यान सुननेको भी नहीं पहुँचते। समाजादि में गये (शृण्वन्तः) (अपि) सुनते हुए भी (बहवः) बहुत लोग (यत्) जिस ब्रह्म को (न, विद्युः) नहीं जानते क्योंकि वह आश्चर्यस्वरूप है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्य) इस ब्रह्मका (वक्ता) यथार्थरूप से कहनेवाला (आश्चर्य्यः) असंख्यों में कोई अद्भुतस्वरूप होता तथा समाजादि के नेताओं में भी (अस्य) इस परेश का (लब्धा) प्राप्त होने वाला कोई (कुशलः) प्रवीण होता है (कुशलानुशिष्टः) ब्रह्मज्ञान में प्रवीण आचार्य से उपदेश को प्राप्त (ज्ञाता) ज्ञानी (आश्चर्यः) कोई ही होता है सब नहीं ॥

भा०—मनुष्य सृष्टि में ब्रह्मज्ञानी पुरुष दुर्लभ है कोई ही अनेक जन्मों में किये तप आदि से सिद्ध होता है वह आश्चर्यरूप है और ब्रह्म का उपदेश करनेवाला भी दुर्लभ है बड़े प्रयत्नसे मिल सकता है ॥ ७ ॥

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः । अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्त्यणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥ ८ ॥

(अवरेण) पारमार्थिकादितरेणैहिकेन संसारिणा (नरेण) मनुष्येण (प्रोक्तः) उपदिष्टः (बहुधा) बहुप्रकारं योगिभिर्विरक्तैः (चिन्त्यमानः) विचार्यमाणः (एषः) आत्मा (न, सुविज्ञेयः) न हि सुष्ठतया ज्ञातुंयोग्यः (अत्र) अस्मिन्नात्मनि (अनन्यप्रोक्ते) परमार्थज्ञाननिष्ठेनाचार्येण प्रोक्त उपदिष्टे (गतिः) जिज्ञासोश्चाञ्चल्यम् (नास्ति) (अणुप्रमाणात्) अतिसूक्ष्मात् (अणीयान्) अतिसूक्ष्मः (हि, अतर्क्यम्) निश्चयेन तर्कयितुमयोग्यः । अत्र लिङ्व्यत्ययः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—योगिनो यमात्मानं बहुधा चिन्तयन्ति तथापि दुःखेनोपलभन्ते संसारिणा बुद्धिमताप्युपदेष्टुमयोग्यः। ब्रह्मज्ञानस्नातेनाचार्येण कुतो ज्ञानोपदेशो जिज्ञासोर्बुद्धिं स्थिरीकरोति। अतिसूक्ष्मे ब्रह्मणि बुद्धिरभिनिविशते किन्तु तर्काश्वं नावरोहति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(अवरेण) परमार्थीसे भिन्न संसारी (नरेण) मनुष्य से (प्रोक्तः) उपदेश किया (बहुधा) बहुत प्रकार योगी विरक्तों ने जिसका चिन्तन किया है (एषः) यह आत्मा (न, सुविज्ञेयः) सुगमता से जानने योग्य नहीं (अत्र) इस (अनन्यप्रोक्ते) परमार्थज्ञाननिष्ठ आचार्यके उपदेश किये आत्मा में (गतिः) जिज्ञासुकी चञ्चलता (नास्ति) नहीं होती वह ब्रह्म (अणुप्रमाणात्) सूक्ष्मसे भी (अणीयान्) अतिसूक्ष्म है (हि, अतर्क्यम्) निश्चयकर तर्क करने योग्य नहीं है ॥

भा०—योगीजन जिस आत्माका बहुधाः चिन्तन करते हैं तो भी दुःखसे प्राप्त होते हैं वह परमात्मा संसारी बुद्धिमान् से भी उपदेश करने योग्य नहीं है। ब्रह्मज्ञानमें गोता लगानेवाले आचार्यका किया ज्ञानोपदेश जिज्ञासुकी बुद्धिको स्थिर करता है इसीसे अतिसूक्ष्म ब्रह्म में बुद्धि प्रविष्ट होती है किन्तु तर्करूप घोड़े पर नहीं चढ़ती ॥ ८ ॥

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञाना-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थ प्रेष्ठ ! । यान्त्वमापः सत्यधृतिर्वतासि त्वादृङ्नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ॥ ९ ॥

हे (नचिकेतः) !) (एषा) मया दत्ता (मतिः) बुद्धिः (न) (आ, अपनेया) ईषदपि (तर्केण) नो त्याज्या न विनाश्या वा । हे (प्रेष्ठ !) प्रियतम ! (अन्येन, एव) तार्किकाद् भिन्नेनैव वेदत्रिदाऽऽचार्येण (प्रोक्ता) उपदिष्टा मतिः (सुज्ञानाय) भवति (सत्यधृतिः) सत्या धृतिर्यस्य स निश्चलधैर्यः (त्वम्) (यम्) मतिम् (आपः) प्राप्तवान् (असि) (वत) अनुकम्पित आचार्य आह (नः) अस्मान् (प्रष्टा) (त्वादृक्) त्वत्सदृशोऽन्यः शिष्योऽपि (भूयात्) इति परमात्मानं प्रार्थये ॥

धर्मादिविषयनिर्णये तर्कः साधनं भवति किन्त्वात्मादिसूक्ष्मेऽतीन्द्रिये ब्रह्मनिष्ठाचार्येणैवोपदेश्ये वेदैकवेद्ये विषये न हि तर्कः कृतकारी भवति । सर्वोपद्रवाणां शान्तिः सर्वसन्देहानां समाधानं ब्रह्मज्ञानस्यादिमं लक्ष्म यदि तत्र तर्कः प्रविशेत्तर्हि शान्तिभङ्गश्चाञ्चल्यं च सम्भवति । ब्रह्मविषयिणी सात्त्विकी मतिस्तर्केण नश्यति । आत्मज्ञानसम्बन्धेऽप्यनात्मवादिनस्तर्ककण्टकेन निवारणीयाः । यथा कण्टकेनाङ्कुरो रक्ष्यते पश्वादयो भक्षका निवार्यन्ते तथैवेहापि योज्यम् ॥ ९ ॥

भाषार्थः—हे (नचिकेतः !) नचिकेता ! तुझको (एषा) यह मेरे द्वारा दी (मतिः) बुद्धि (तर्केण) तर्कसे कुछ भी (न, आ, अपनेया) न त्यागनी वा विगाड़नी चाहिये । हे (प्रेष्ठ !)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त प्रिय शिष्य ! (अन्येन, एव) कुतर्की से भिन्न वेद-वेत्ता आचार्य के (प्रोक्ता) उपदेश की बुद्धि :(सुज्ञानाय) उत्तम ज्ञानकी उपयोगिनी होती है किन्तु (सत्यधृतिः) निश्चल सत्य धैर्यवाले (त्वम्) तुम (याम्) जिस बुद्धि को (आपः) प्राप्त हुये हो। (वत) कृपा से पूर्ण हो पुनः आचार्य बोले कि (नः) हम को (प्रष्टा) पूछनेवाला (त्वादृक्) तुम्हारे समान अन्य भी कोई शिष्य (भूयात्) हो यह परमात्मासे प्रार्थना है ॥

भा०—धर्मादि अनेक विषयों के निश्चय करने में तर्क साधन होता है किन्तु ब्रह्मनिष्ठ आचार्य से ही उपदेश होने और केवल वेद से ही जानने योग्य आत्मादि सूक्ष्म अतीन्द्रिय [इन्द्रियों से न जानने योग्य] विषय में तर्क से कुछ निश्चय नहीं होता। सब उपद्रवों की शान्ति सब शङ्काओं का समाधान होना ब्रह्मज्ञान का पहिला चिह्न है। यदि वहां तर्क का प्रवेश हो तो शान्ति और निश्चय में खलबल पड़ना सम्भव है अर्थात् ब्रह्मज्ञान को विषय करनेवाली सत्त्वगुणरूप बुद्धि तर्क से नष्ट हो जाती है और आत्मज्ञानके विषयमें भी अनात्मवादी जन तर्करूप कांटे से निवारण किये जाते हैं यह तर्क का उपयोग है। जैसे भक्षक पशु आदिको रोककर आम आदिके पौदों को कांटोंसे रक्षाकी जाती है वैसही यहां भी जानो ॥६॥

जानाम्यहꣳ शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवन्तत्। ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निरनि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ॥ १० ॥

यम आह-(शेवधिः) धनैश्वर्यम् (अनित्यम्) (इति) (अहम्) (जानामि) (अध्रुवैः) अस्थिरैरनित्यैर्धनादिभिः (हि) निश्चयेन (तत्) (ध्रुवम्) अचलं नित्यं ब्रह्म (न हि) (प्राप्यते) मनुष्येणेति शेषः। कर्मफलवासनारहितेन (मया) (नचिकेतः) यस्य विधानमिदानीं तुभ्यमुपदिष्टं सः (अग्निः) (चितः) तदग्न्युपलक्षितो यज्ञो विहितः (ततः) फलाकाङ्क्षाराहित्येन सततं वैदिकाग्निहोत्रादिकर्मानुष्ठानात् (अनित्यैः) शरीरेन्द्रियघृतादिभिः (द्रव्यैः) साधनभूतैरनुष्ठितेन कर्मणा शुद्धान्तःकरणः सन् (नित्यम्) ब्रह्म (प्राप्तवान्) (अस्मि) ॥

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ इति भगवद्गीतासु। यद्यप्यनित्यैः शरीरेन्द्रियघृतादिभिरात्मप्राप्तिर्दुर्लभा तथापि फलमनाश्रित्य श्रद्धया क्रियमाणं ब्रह्मार्पितं वैदिकं कर्मान्तःकरणशोधनद्वारा परम्परया ब्रह्मज्ञानहेतुकं सम्पद्यते कर्त्तव्यमेव कर्मत्यागवाक्यानां च तत्फलत्यागे तात्पर्यं व्याख्येयमिति धीमद्भिर्ध्येयम् ॥ १० ॥

भाषार्थः—यमराज फिर बोले कि (शेवधिः) धन ऐश्वर्य (अनित्यम्) सब अनित्य है (इति) यह (अहम्) मैं (जानामि) जानता हूँ (अध्रुवैः) स्थिरतारहित अनित्य धनादि वस्तुओं से (हि) निश्चय कर (तत्) वह (ध्रुवम्) अचल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्य ब्रह्म मनुष्य को (नहि) नहीं (प्राप्यते) प्राप्त होता। कर्मफल की वासना से रहित (मया) मैंने (नाचिकेतः) जिसका विधान मैंने अभी तुमसे कहा है वह (अग्निः, चितः) अर्थात् उस अग्निसम्बन्धि यज्ञ को किया (ततः) उस फल की आकाङ्क्षा से रहित होके निरन्तर अग्निहोत्रादि वैदिक-कर्म के अनुष्ठान से (अनित्यैः) अनित्य शरीर इन्द्रिय और घृत आदि (द्रव्यैः) पदार्थों करके निरन्तर सिद्ध किये कर्मसे शुद्धान्तःकरण हुआ (नित्यम्) नित्य ब्रह्मको (प्राप्तवान्) प्राप्त हुआ (अस्मि) हूँ ॥

भा०—भगवद्गीता में लिखा है कि चारों वेद का जाननेवाला विद्वान् वेद में कहे बहुत हविष्य पदार्थों से फल की इच्छा छोड़ के वैदिक आहवनीयादि अग्निमें अग्निहोत्रादि यज्ञ ब्रह्मार्पण करता है वह ईश्वराज्ञारूप वेदोक्त कर्म में तत्पर रहने से अन्त में ब्रह्मको ही प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्त होजाता है। यद्यपि अनित्य शरीर इन्द्रियादि से आत्मज्ञान होना दुर्लभ है तो भी फल को छोड़के श्रद्धापूर्वक ब्रह्मार्पित किया वैदिक कर्म अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा परम्परा से ब्रह्मज्ञानका कारण होता है इसलिये मुमुक्षु पुरुष को कर्म भी अवश्य करना चाहिये और वेदादि शास्त्रों में जो ज्ञानी को कर्म का त्याग दिखाया है वहां कर्म का फल छोड़ने से तात्पर्य जानो ॥ १० ॥

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरनन्त्यमभयस्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पारम् । स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥ ११ ॥

हे (नचिकेतः !) (धीरः) ध्यानशीलस्त्वम् (धृत्या) धैर्येण (दृष्ट्वा) ज्ञानचक्षुषा शुभाशुभमालोच्य (कामस्य) कामभोगस्य (आप्तिम्) प्राप्तिम् (जगतः) जङ्गमस्य प्राणिमात्रस्य (प्रतिष्ठाम् स्थितिं कामभोगात्स्त्रीपुरुषसंयोगा देव सर्वे प्राणिन उत्पद्यन्ते (क्रतोः) राजसूयाश्वमेधादियज्ञस्य (अनन्त्यम्) भूमेरन्ते भवमन्त्यं नान्त्यमनन्त्यमखण्डं भूगोल-राज्यम् । किम्भतम् (अभयस्य) निर्भयतायाः (पारम्) लेशमात्रमपि यत्र कस्यचिद्भयं नास्त्येवम्भूतं चक्रवर्त्तिराज्यम् (स्तोममहत्) स्तोतुं योग्यं महत्त्वं सर्वमान्यताम् (उरुगायम्) बहुभिर्गानम् स्वकीर्त्तनम् (प्रतिष्ठाम्) (अत्यस्राक्षीः) इत्येतत्पूर्वोक्तं सर्वमत्यन्तं त्यक्तवान् ॥

भा०—परमार्थसुखप्राप्तिहेतोर्नचिकेतसा विवेकिना प्राणिनामुत्पत्तिस्थित्योः कारणं स्त्रीसम्बन्धः साम्राज्यप्राप्त्या राजसूयादियज्ञानुष्ठानेन सर्वोपरिकीर्तिर्निर्भयताप्राप्तिरनेकैः क्रियमाणं स्तुत्यादिकं चैतत्सर्वं परिणामे दुःखप्रदमेवेत्यालोच्य त्यक्तमतो नचिकेताः सर्वतोऽधिकतरं मतिमानित्याशयः ॥११॥

भा०—हे (नचिकेतः !) (धीरः) ध्यानशील तुमने (कामस्य) कामदेवके स्त्रीसम्बन्धी सुखभोगकी (जगतः) मनुष्यादि प्राणियोंकी (प्रतिष्ठाम्) स्थिति का कारण (स्त्रीपुरु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पके संयोगसे सब प्राणियोंकी उत्पत्ति स्थिति होती है) रूप (आप्तिम्) प्राप्ति (अभयस्य) निर्भयताकी (पारम्) परा-काष्ठा जहां किञ्चित् भी भय नहीं ऐसे (क्रतोः) राजसूय अश्व मेध आदि यज्ञके सम्बन्धसे प्रसिद्ध (अनन्त्यम्) अखंड च-क्रवर्त्ती राज्य (स्तोममहत्) स्तुति करने योग्य महिमा (उ-रुगायम्) बहुत मनुष्यादि जिस कीर्त्ति का गान करते उस और (प्रतिष्ठाम्) प्रतिष्ठाप्राप्ति इत्यादि सब संसारी विषयों को (धृत्या) धैर्यके साथ (दृष्ट्वा) ज्ञानरूपी नेत्रोंसे परिणा-ममें दुःखदायी देखकर (अत्यस्राक्षीः) त्याग दिया है ॥

भा०—परमार्थसुखप्राप्ति के कारण विवेकशील नचिकेता ने प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति का कारण स्त्रीका सम्बन्ध, चक्रवर्त्ती राज्य पाकर राजसूयादियज्ञोंके अनुष्ठानसे सर्वोपरि कीर्त्ति वा निर्भयतादि की प्राप्ति और अनेक मनुष्यों से होने वाली स्तुति आदि इन सबको परिणाम में दुःखदायी समझ के त्याग दिया इस कारण नचिकेता सर्वोपरि बुद्धिमान् था ११

तन्दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठम्पुराणम् अध्यात्मयोगाधिगमेन देवम्मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥ १२ ॥

(धीरः) ध्यानशीलो विद्वान् (अध्यात्मयोगाधिगमेन) ज्ञानेन्द्रियाणि विषयेभ्यः सन्निरुध्यान्तःकरणे चित्तस्य स्थितेः सम्पादनमध्यात्मयोगस्तस्याधिगमेन (तम्) श्रवणायापि ब-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुर्भियों न लभ्य इत्यादिना पूर्वतः प्रतिपाद्यमानम् (देवम्) द्योतनशीलमात्मानम् (मत्वा) ज्ञात्वा (हर्षशोकौ) इष्टानिष्टोपलब्धौ सुखदुःखे (जहाति) त्यजति । समुद्र इव गम्भीरस्तिष्ठति । किम्भूतं देवम् (दुर्दर्शम्) दुखेन द्रष्टुं ज्ञातुं योग्यम् (गूढम्) गुप्तमप्रसिद्धमतीन्द्रियत्वात् (अनुप्रविष्टम्) जीवात्मन्यन्तःकरणे च जीवात्मप्रवेशानन्तरं प्रविष्टम् (गुहाहितम्) गुहायां बुद्धौ स्थितम् (गह्वरेष्ठम्) गह्वरे दुर्गमे प्रदेशे तिष्ठतीति (पुराणम्) पुरातनं सनातनं देवमिति पूर्वेणान्वयः ॥

भा०—अदृश्यं सर्वत्र व्याप्तं ध्यानयोगेनास्मिन्नेव कलेवरे दुर्गे प्रदेशे योगिभिरुपलभ्यमानं सनातनं ज्ञानप्रकाशात्मकमात्मानं ज्ञात्वा धैर्यसम्पन्नो विद्वान् सुखदुःखे परित्यजति । सुखं लौकिकं दुःखसहयोग्येव जहाति न चात्मनि भवम् । आगमापायिनी सुखदुःखे इतरेतरं कार्यकारणभावं सम्पद्यमाने जहातीति भावः ॥ १२ ॥

भा०—(धीरः) ध्यान करनेवाला विद्वान् (अध्यात्मयोगाधिगमेन) कान आदि ज्ञानेन्द्रियों को शब्द आदि विषयोंसे रोककर अन्तःकरणमें चित्तको स्थिरकरनेरूप अध्यात्मयोगकी प्राप्तिसे (तम्) उस पूर्वोक्त (दुर्दर्शम्) दुःखसे जानने योग्य (गूढम्) इन्द्रियों से न जानने योग्य होने से गुप्त (अनुप्रविष्टम्) अन्तःकरण और जीवात्मामें भी व्याप्त (गुहाहितम्) बुद्धिमें स्थिर (गह्वरेष्ठम्) अतिकठिन (जहां बुद्धिका पहुं-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चना दुस्तर है ऐसे) शरीर प्रदेश में स्थित (पुराणम्) सनातन (देवम्) ज्ञानप्रकाशशील आत्माको जानकर (हर्षशोकौ) इष्ट अनिष्ट की प्राप्ति में सुखदुःखोंको (जहाति) त्यागता है अर्थात् समुद्र के तुल्य गम्भीर रहता है ॥

भा०—अदृश्य सर्वत्र व्याप्त ध्यानयोग से इसी शरीर में कठिन स्थलमें योगियोंसे प्राप्त होने योग्य सनातन ज्ञानप्रकाशस्वरूप आत्मा को जान के धैर्ययुक्त विद्वान् पुरुष सुख दुःख में व्याकुल नहीं होता। दुःख के सहयोगी लौकिक सुख को ही छोड़ता है, किन्तु आत्मामें होनेवाला सुख नही छूटता अर्थात् आपस में एक दूसरे के कार्यकारणभाव को प्राप्त होनेवाले नाशवान् सुखदुःखों को छोड़ देता है ॥ १२ ॥

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य। स मोदते मोदनीयं हि लब्ध्वा विवृतं सदम नचिकेतसम्मन्ये ॥ १३ ॥

(मर्त्यः) मरणधर्मा प्राणी (एतत्) वक्ष्यमाणं ब्रह्म (श्रुत्वा) आचार्योपदेशाच्छ्रोत्रेण निशम्य मनसा (सम्परिगृह्य) सम्यग्विज्ञाय (धर्म्यम्) स्वधर्मादनुगुणात्सर्वथा सर्वदाऽनपेतमचलं नियमेनैव जगदुत्पत्त्यादिस्वकर्मणां विधातारं परमात्मानम् (प्रवृह्य) वर्धयित्वा तदनुगुणानुभवं श्रुतानुकूलं स्वात्मनि कृत्वा। एवम् (एतम् अणुम्) सूक्ष्ममात्मानम् (आप्य) प्राप्य (सः) मर्त्यः (मोदनीयम्) मोदितुं हर्षितुं योग्यं तदात्मानु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कूलाचरणेन प्रसादनीयम् (लब्ध्वा) (हि) एव (मोदते) नान्यथेत्यर्थः। त्वं तु ब्रह्माप्तुं योग्योऽतस्त्वाम् (विवृतम्) विस्तृतम् (सदम) सीदन्त्यस्मिन्निति सदम ब्रह्मज्ञानस्य महत्-गृहं ब्रह्मज्ञानागारं त्वाम् (मन्ये) ॥

भा०—यो मनुष्यो यथोक्तया श्रवणमननिदिध्यासनप्रक्रियया सर्वधर्मनियन्तारं स्वनियमादनपेतं परमात्मानं प्राप्तुं प्रयतते स एवानन्दैकसागरं तं प्राप्यैव सुखी भवति। नास्ति ततोऽन्यः कश्चिदानन्दमयस्तस्मात्तमेव प्राप्यानन्दमयो भवितुमर्हति। अतद्धर्माणं प्राप्य तद्धर्मास्यादिति चन्यायविरुद्धम्। त्वं नचिकेता आनन्दमयो भवितुं योग्यः ॥ १३ ॥

भा०—(मर्त्यः) मनुष्य (एतत्) इस [आगे जिस का वर्णन करेंगे] ब्रह्मको (श्रुत्वा) आचार्यके उपदेश से कान द्वारा सुनके मन से (सम्परिगृह्य) स्वीकार कर वा जान के (धर्म्यम्) नियमपूर्वक ही अर्थात् अपने नियमसे कभी चलायमान न होकर जगत्की उत्पत्ति आदि अपने कर्मोंको करने वाले परमात्मा के (प्रवृह्य) गुणोंको सुनं हुएके अनुसार अपने आत्मा में अनुभव करके इस उक्त प्रकार (एतम् अणुम्) इस सूक्ष्म आत्मा को (आप्य) प्राप्त होके (सः) वह मनुष्य (मोदनीयम्) आज्ञानुकूल आचरणसे प्रसन्न करने योग्य परमात्माको (लब्ध्वा) प्राप्त हो के (हि) ही (मोदते) आनन्दित होता है अन्यथा नहीं। तुम ब्रह्म को प्राप्त होने योग्य हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे तुम (नचिकेतसम्) नचिकेता को (विवृतम्) विस्तृत (सदम) घर अर्थात् ब्रह्मज्ञान का बड़ा घर ब्रह्मज्ञान के लिये तुम ठीक सुपात्र हो ऐसा मैं (मन्ये) मानता हूँ ॥

भा०—जो मनुष्य यथोक्त श्रवण मनन निदिध्यासनके क्रम से सब धर्मों के नियन्ता अपने नियमसे अचल परमात्मा को प्राप्त होनेका प्रयत्न करता है वही आनन्द के एक समुद्र का प्राप्त होके सुखी होता है क्यों कि उससे भिन्न अन्य कोई आनन्दमय नहीं है इससे उसीको प्राप्त होके मनुष्य आनन्दित होता है जो उस गुणवाला न हो उसको वह गुण मिले यह न्यायसे विरुद्ध है तू नचिकेता आनन्दित होने योग्य है ॥ १३ ॥

अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥१४॥

एतदाचार्योपदिष्टं वचः श्रुत्वा नचिकेताः पुनराह—हे गुरो ! त्वम् (धर्मात्) इति कर्त्तव्यतारूपाद्वैदिकादनुष्ठेयात्तत्फलात्साधनेभ्यश्च (अन्यत्र) पृथग्भूतम् (अधर्मात्) अकर्त्तव्याद्दुःखफलात् (अन्यत्र) (अस्मात्) प्रत्यक्षात् (कृताकृतात्) कृतं कार्यमकृतं कारणं तयोःसमाहारस्तस्मात्स्थूलसूक्ष्मरूपात्संसारात् (अन्यत्र (भूतात्) अतीतात् (च) (भव्यात्) अनागतात् (च) चद्वयेनसापेक्षवर्त्तमानात् (अन्यत्र) (पश्यसि) जानासि (तत्) सर्वेन्द्रियविषयातीतं वस्तु (वद) ॥

भा —शुभाशुभफलैर्धर्माधर्मैर्यो न निबध्यतेऽविद्यादिक्लेशै-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तद्विपाकैश्च न परामृश्यते स्थूलसूक्ष्मचराचरजगता च न लिप्यते योऽतीतानागतभावाभावः सर्वदैकरस आत्मा भवता गुरुणा ज्ञातोस्ति स मह्यमप्युपदेश्य इति भावः ॥ १४ ॥

भा०—इस आचार्य के उक्त वचन को सुनकर नचिकेता फिर बोला कि हे गुरो ! आप (यत्) जिसको (धर्मात्) ऐसा करना वा न करना चाहिये इत्यादि प्रकार के वैदिकधर्म उसके फल और साधनों से (अन्यत्र) पृथक् (अधर्मात्) दुःखफलवाले अकर्त्तव्य से (अन्यत्र) पृथक् (अस्मात्) इस (कृताकृतात्) स्थूल सूक्ष्मरूप कार्य कारण प्रत्यक्ष संसार से (अन्यत्र) पृथक् (भूतात्) भूत (भव्यात्) भविष्यात् (च च) और इन दोनों की अपेक्षा रखनेवाले वर्त्तमान इन तीनों काल की गतिसे (अन्यत्र) पृथक् (पश्यसि) देखते वा जानते हैं (तत्) उस सब इन्द्रियों के विषय से भिन्न वस्तु को (वद) कहिये ॥

भा०—शुभ अशुभ फलवाले धर्म अधर्म से जो बन्धन में में नहीं आता, अविद्यादि क्लेश कर्म और उनके फलों से जिसका संग नहीं होता स्थूल सूक्ष्म चराचर जगत् से जो लिप्त नहीं होता और भूत भविष्यत् वर्तमान भावसे पृथक् एकरस आत्म को आप ने जाना है उसका उपदेश मेरे लिये भी कीजिये ॥ १४ ॥

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्वदन्ति । यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्य्यं चरन्ति तत्ते पद-
ꣳसङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥ १५ ॥

इदानीं यमाचार्य आत्मापदेशप्रतिज्ञानमाह (यत्) (ओम्) (इति) (पदम्) सुबन्तं ब्रह्मणो वाचकं शब्दरूपम्, पदं पदनीयं प्राप्यं वाच्यं ब्रह्म च (सर्वे) ऋगादिनाम्ना प्रसिद्धाश्चत्वारः (वेदाः) (आमनन्ति) मुहुर्मुहुः कथयन्ति वेदेषु ब्रह्मण एव विशेषतो वर्णनमस्तीत्यर्थः (सर्वाणि , तपांसि) (च) (यत्) ओमिति पदम् (वदन्ति) तपश्चरणमपि ब्रह्मप्राप्त्यर्थमिति विद्वांस आहुः (यत्) ओमिति पदम् (इच्छन्तः) विद्वांसः (ब्रह्मचर्य्यम्) पूर्वाश्रमनियमान् (चरन्ति) अनुतिष्ठन्ति (तत् , एतत्) (पदम्) वाच्यवाचकत्वाभ्यामभिन्नम् (ते) तुभ्यं नचिकेतसे (सङ्ग्रहेण) सङ्क्षेपेण (ब्रवीमि) कथयामीति ॥

भा०—वेदेषु कुत्रचित्साक्षात्कुत्रचित्परम्परया च परब्रह्मण एव प्रतिपादनमस्ति ब्रह्मचर्यगार्हस्थ्यसंन्यासाश्रमेषु वेदाध्ययनतपश्चरणयोगाभ्यासानुष्ठानादिनियमा विद्वद्भिर्ब्रह्मप्राप्त्यर्था एव सेव्यन्ते तस्य ब्रह्मण ओमित्यनन्यभक्तं नामास्ति । अनेनैव नाम्ना शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासेन योगिभिर्नित्यमुपासितव्य इत्यर्थः ॥ १५ ॥

भाषार्थः—अब यमाचार्य आत्मज्ञान के उपदेश की प्रतिज्ञा करते हैं कि (यत्) जिस (ओम्, इति, पदम्) ओम् इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचक शब्दरूप सुबन्तपद वा प्राप्त होने योग्य वाच्य ब्रह्मको (सर्वे) सब (वेदाः) ऋग्वेदादि चारोंवेद (आमनन्ति) कहते अर्थात् सब वेदोंमें विशेषकर ब्रह्म का ही वर्णन है (सर्वाणि) सब (तपांसि) तपोनुष्ठान (च) भी (यत्) जिस ब्रह्म की प्राप्ति के लिये किये जाते हैं ऐसा (वदन्ति) विद्वान् लोग कहते हैं (यत्) जिस ओम् पद की (इच्छन्तः) इच्छा करते हुए विद्वान् (ब्रह्मचर्य्यम्) ब्रह्मचर्य्य आश्रम के नियमों का (चरन्ति) अनुष्ठान सेवन करते हैं (तत्, एतत्, पदम्) उस इस वाच्य वाचकरूप एक ओम् पद को मैं (ते) तुम नचिकेता के लिये (संग्रहेण) संक्षेप से (ब्रवीमि) कहता हूँ॥

भा०—वेदों में कहीं साक्षात् और कहीं परम्परा से एक ब्रह्म का ही प्रतिपादन है। ब्रह्मचर्य्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रमों में वेद का पढ़ना तप करना और योगाभ्यास आदि नियमों को विद्वान् लोग ब्रह्मज्ञान होनेके लिये ही सेवन करते हैं। उस ब्रह्म का ओम् यह निज नाम है ईश्वर आदि नाम राजादि के भी होते हैं ओम् पद अन्य किसी का नाम नहीं होता। इसी नाम से शब्द अर्थ और ज्ञान का परस्पर मेल कर के योगियों को नित्य उपासना करनी चाहिये अर्थात् ओम्-यह जो शब्द है इसका वाच्य अर्थ में लय और ओम् शब्द ओम् अर्थ इन दोनों का ओ३म् इत्याकारक ज्ञान में लय और ओम् शब्द ओम् अर्थ इन दोनों का ओ३म् इत्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारक ज्ञान में लय होने से ठीक २ संयम होता और इसी प्रकार के ध्यान से आत्मज्ञान हो जाता है ॥ १५ ॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरं परम् । एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥१६॥

(एतत्) ओम् (हि, एव) अवधारणवाचक पदद्वयेनान्यस्य सर्वथा प्रतिषेधः साध्यते (अक्षरम्) न रक्षति, अश्नुते व्याप्नोति वेत्यक्षरं वाच्यं ब्रह्म वाचकमोमिति शब्दरूपं वा इतरेतराध्यासेन द्वयमप्येकमेव (ब्रह्म) अस्तीति शेषः। (एतत्, एव, अक्षरम्) (परम्) उत्तमम्। नातोन्यत् किमप्युत्तममस्ति (एतत्, हि, एव) (अक्षरम्) वाच्यवाचकरूपम् (ज्ञात्वा) (यः) पुरुषः (यत्) सांसारिकं पारमार्थिकं वा सुखम् (इच्छति) (तस्य) (तत्) सुखं सद्याऽवश्यं प्राप्तं भवति ॥

भा०—ओमिति शब्दोऽक्षरमोमिति वाच्यं ब्रह्म, ओमिति ज्ञानम्। अत्र शब्दार्थप्रत्ययेषु सर्वत्र ओमिति सम्बद्धमेकमेव। ओमित्येकं शब्दोऽर्थो ज्ञानं च यः शब्दः स एवार्थः, योर्थः तदेव ज्ञानं, यज्ज्ञानं स एवार्थः शब्दश्चेत्येकाकारचिन्तनमितरेतराध्यासः। एवमोमिति त्रयाणामध्यासेन यो ब्रह्मोपास्ते स संसारे दुष्प्रापं चक्रवर्त्तिराज्यादिकमपि परमार्थे मुक्तिं च यदभीप्सति तत्प्राप्तुमर्हति ॥ १६ ॥

भाषार्थः—(एतत्) ओम् यह (हि, एव) ही (अक्षरम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अविनाशी नित्य व्यापक वाच्य ब्रह्म वा वाचकशब्द ओम् (इन का एक दूसरे में लय करने से दोनों एक ही हैं यहां 'हि, एव' ये दो निश्चयबोधक पद कहने से ओम् से भिन्न ब्रह्म नहीं इसका सर्वथा निषेध किया) (ब्रह्म) ब्रह्म है (एतत् एव, अक्षरम्, परम्) यही ओम् वाच्यवाचकरूप सबसे उत्तम अक्षर है इससे उत्तम कोई नहीं (एतत्, हि, एव) (अक्षरम्) इसी वाच्यवाचकरूप अविनाशी ब्रह्मको (ज्ञात्वा) जानके (यः) जो पुरुष (यत्) जिस संसार वा परमार्थसम्बन्धी सुखको (इच्छति) चाहता है (तस्य, तत्) उसको वह सुख शीघ्र ही अवश्य प्राप्त होता है ॥

भा०—ओम् यह शब्दरूप अक्षर ओम् यह वाच्य अर्थ ब्रह्म तथा ओम् यह ज्ञान। यहाँ तीनों शब्द अर्थ और ज्ञान के साथ एक ही रूप ओम् लगा है इसलिये ओम् यह शब्द अर्थ और ज्ञान तीनों रूप एक ही हुआ जो शब्द वही अर्थ जो अर्थ वही ज्ञान जो ज्ञान है वही अर्थ और शब्द है इस प्रकार तीनों का एकाकार चिन्तन करना इतरेतराध्यास कहाता है। इस प्रकार तीनों के एकत्वचिन्तनसे जो ब्रह्मकी उपासना करता है वह संसार में अखिल चक्रवर्ती राज्यादि और परमार्थ में मुक्तिसुख इनमें जिसको चाहता है उसको प्राप्त हो सकता है।

एतदालम्बनश्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मज्ञानालम्बनेषु (एतत्) पूर्वोक्तप्रकारकमुपासनरूपम् (आलम्बनम्) (श्रेष्ठम्) अत्यन्तं प्रशस्यम् (एतत्) (आलम्बनम्) (परम्) परमार्थसुखसाधकम् (एतत्) (आलम्बनम्) इतरेतराध्यासेनोक्तप्रकारकमुपासनम् (ज्ञात्वा) (ब्रह्मलोके) ब्रह्मैव लोको लोक्यो दर्शनीयो ज्ञातव्य इति ब्रह्मलोकस्तस्मिन् (महीयते) उपासनादिसंस्कृतवासनाभिः शान्तरूपः सुखी निरुपद्रवः पूजितः सत्कृतो भवति ॥

भा०-कर्मोपासनाज्ञानानामवान्तरभेदभिन्नान्यनेकानि ब्रह्मज्ञानस्य साधनान्यालम्बनानि सन्ति तेषु-ओमिति नाम्ना शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासेनोपासनं सर्वोत्तमं परमार्थसाधकमस्ति तत्तत्त्वतो विज्ञाय विद्वान् मुक्तो भवितुमर्हति ॥१७॥

भाषार्थः—ब्रह्मज्ञानके साधनोंमें (एतत्) यह पूर्वोक्त प्रकार की उपासनारूप (आलम्बनम्) साधन (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) परमार्थ सुख का सिद्ध करनेवाला है (एतत्, आलम्बनम्) इस उक्त उपासना से ब्रह्म को (ज्ञात्वा) जानके (ब्रह्मलोके) जानने योग्य व्यापक ब्रह्म के बीच (महीयते) सब बाधाओं से छूटकर शान्तिरूप सुखसे पूजित होता है ॥

भा०—कर्म उपासना और ज्ञानोंको भीतरी भेदों सहित ब्रह्म ज्ञानके अनेक साधन हैं। उनमें ओ३म् नामसे पूर्वोक्त प्रकार अध्यास के साथ उपासना करनी सर्वोत्तम और परमा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्थको सिद्ध करनेवाली है। उस उपासनासे तत्त्वज्ञान होकर ही विद्वान् पुरुष मुक्तिका अधिकारी हो सकता है ॥ १७ ॥

न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्। अजो नित्यः शाश्वतोऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥

येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येक इति सामान्येनात्मद्वयज्ञानं वरो याचितः पुनश्च यमेन ब्रह्मात्मनि प्रतिपाद्यमाने नचिकेतसा सुखदुःखानित्यत्वादिधर्मवर्जितं ब्रह्मात्मानं पृष्टेन यमेन त्रिभिर्मन्त्रैर्ब्रह्मणः स्वरूपं निरूपितमधुना द्वाभ्यां जीवात्मपरमात्मानौ सामान्येन निरूप्येते ॥

(अयम्) (विपश्चित्) मेधावी ज्ञानस्वरूपः सर्वज्ञो वा, शरीर उत्पद्यमाने (न, जायते) नोत्पद्यते (वा) नकारसमुच्चयार्थम् (म्रियते) शरीरे म्रियमाणे न म्रियते (कुतश्चित्) कस्मादपि कारणादुपादानात् (न, बभूव) नोत्पन्नः। अस्मादात्मन उपादानात् (कश्चित्) पुत्रादिः संसारो वा न बभूव। अतोऽयमात्मा (अजः) अजन्मा प्रादुर्भाववर्जितः (नित्यः) परिणामविकारादिरहितः (शाश्वतः) सनातनः (पुराणः) इदानीमिव पुरापि नवोऽप्राप्तजीर्णावस्थः शरीरस्थोऽपि (शरीरे) (हन्यमाने) (न, हयन्ते) ॥

भा०—परमात्मा जीवात्मा द्वावप्यस्मिन्नेव कार्यशरीरादि जगति व्यापकव्याप्यौ तिष्ठतस्तथापि कार्योत्पत्तौ नोत्पद्येते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विनाशे च न विनश्यतः । आत्मनः किमप्युपादानं कारणं न विद्यते कश्चिदस्य जनकः पिता न भवति न चायं कस्यचिदुपादानकारणं जनकः पिता वा भवति कार्यकारणधर्माभ्यां पृथग्भूतः । एवं च ब्रह्मैव जगत उपादानमिति वदन्तः प्रत्युक्ता भवन्ति ॥ १८ ॥

भा०—पहिले तृतीय वर मांगते समय नचिकेता ने कहा था कि मनुष्य के मरने पर कोई आत्मा शेष रहता है वा नहीं तब जीव ब्रह्म दोनों आत्मा को पूछा था पीछे यमराज ने ब्रह्मका प्रतिपादन किया तब नचिकेताने सुख दुःखादि से विशेष कर पृथक् ब्रह्मको पूछा तब यमराज तीन मन्त्रों से ब्रह्म का स्वरूप कह कर दो मन्त्रों से दोनों आत्मा का स्वरूप कहते हैं ॥

(अयम्) यह (विपश्चित्) ज्ञानस्वरूप वा सर्वज्ञ आत्मा शरीर के उत्पन्न होने पर (न, जायते) उत्पन्न नहीं होता (वा) और (म्रियते) शरीर के मरने प्राण छूटने से नहीं मरता (कुतश्चित्) किसी उपादान कारण से (न, बभूव) उत्पन्न नहीं हुआ और इस उपादान आत्मा से (कश्चित्) कोई पुत्रादि वा संसार नहीं उत्पन्न होता इस कारण (अयम्) यह आत्मा (अजः) अजन्मा है (नित्यः) परिणाम (जैसे दूध से दही विकार) घटना बढ़ना इसका नहीं होता (शाश्वतः) सनातन (पुराणः) अब के तुल्य पहिले सदा नवीन एक रस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। शरीर में रहने पर भी (शरीरे) शरीर के (हन्यमाने) नष्ट होने पर भी (न, हन्यते) नष्ट नहीं होता ॥

भा०-जीवात्मा परमात्मा दोनों इस शरीरादि कार्य जगत् में व्याप्य हुए स्थिर हैं तो भी कार्यवस्तु के साथ न उत्पन्न होते और न उसके विनाश से नष्ट होते हैं। आत्मा का कोई उपादान कारण नहीं अर्थात् कोई इसका उत्पादक पिता नहीं है और न आत्मा किसी प्राणी वा वस्तु का पिता वा उपादान कारण होता है किन्तु कार्य कारण के धर्मों वा गुणों से पृथक् है। ऐसा सिद्धान्त होनेसे जो लोग ब्रह्मको जगत्का उत्पादन कारण मानते हैं उनका मत खण्डित हो जाता है ॥ १८ ॥

हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते १९॥

(हन्ता) पुरुषस्ताडनधर्माभिमानी (चेत्) यदि (हन्तुम्) आत्मानं ताडयितुं नाशयितुं वाहं शक्त इति (मन्यते) (हतः) ताडितः प्राणभृत् (चेत्) यदि (हन्तुम्) ताडितं विनष्टमात्मानम् (मन्यते) (तौ, उभौ) आत्मतत्त्वम् (न, विजानीतः) (अयम्) आत्मा कंचिदपि (न, हन्ति) हननस्य कर्त्ता न भवति (न, हन्यते) हननस्य कर्मापि नास्ति। अच्छेद्यत्वादिधर्मवत्त्वात् ॥

भावार्थः—यदा कश्चिन्म्रियते केनचिद्धन्यते वा तदा लौकिका वदन्ति परमात्मना हत इति। अमुकपुरुषेण वा ताडि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो मारितो वा तदज्ञानं स्वकर्मानुसारं सर्वे म्रियन्ते हन्यन्ते वा। तथा परमेश्वरस्यावतारस्य जन्मापि कैश्चिदङ्गीक्रियते तन्मते मरणमपि स्यात्। यतो हननं मरणं वा तस्य नास्त्यतएव जन्मापि न भवतीति न्याय्यम्। तथा जीवोऽप्यतिसूक्ष्मतमो न तं कश्चिद्धन्तुं ताडयितुं वा योग्यः किन्तु जीवात्मेच्छया शरीरेण शरीरमेव हन्यते। अतएव जीवस्य सुखाभिलाषदुःखविद्वियोगवासनारज्जुभिर्ग्रस्तत्वात्सुखदुःखभाक् भवत्येव। छेदनभेदनादिक्रियायाः कर्त्ता कर्म वा जीवात्मा परमात्मा चोभावपि न भवतःअनेनात्मद्वयस्य नित्यत्वमतिसूक्ष्मत्वं च प्रतिपादितं भवति ॥ १९ ॥

भाषार्थः—(हन्ता) ताड़न करने का अभिमानी पुरुष (चेत्) यदि (हन्तुम्) कि मैं आत्माको मार सकता हूँ ऐसा (मन्यते) मानता है और (हतः) ताड़न किया गया प्राणी (चेत्) यदि (हतम्) आत्मा ताड़ना का वा विनाश को प्राप्त हुआ ऐसा (मन्यते) मानता है। तो (तौ, उभौ) वे दोनों मारने मरनेवाले आत्मा के तत्त्वस्वरूप को (न, विजानीतः) नहीं जानते क्योंकि (अयम्) यह आत्मा किसी को (न, हन्ति) न मारता और (न, हन्यते) अच्छेद्यत्व अभेद्यत्व आदि गुणयुक्त होने से न किसी से मारा जाता है ॥

भा०—जो कोई मारता वा किसी से मारा जाता है तब संसारी लोग कहा करते हैं कि ईश्वर ने मारा वा उस को ई-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च्छा से मरा वा अमुक पुरुष ने मारा वा मार डाला सो यह अज्ञान है अपने २ कर्मों के अनुसार सब मरते वा मारे जाते हैं और परमेश्वर का अवतार (जन्म) होना भी कोई मानते हैं उनके मत में उसका मरण भी होना युक्त है जिस कारण उसका नाश वा मरण नहीं इसी से जन्म भी नहीं होता यह सिद्ध है। तथा जीवात्मा भी अत्यन्त सूक्ष्म है उसको मारने वा नाश करनेवाला कोई नहीं। किन्तु जीवात्मा की इच्छानुसार ही शरीरसे शरीर मारा जाता है इसी कारण जीव के सुख की अभिलाषा और दुःख के वियोग की वासनारूप रस्सियों से बँधे होने के कारण जीव सुख-दुःख का माननेवाला अवश्य होता है। छेदन भेदन आदि क्रिया के कर्त्ता वा कर्म जीव ब्रह्म दोनों नहीं होते। इस से दोनों आत्मा का नित्यत्व और अतिसूक्ष्म होना सिद्ध किया गया है ॥ १९ ॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्। तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥ २० ॥

इदानीमेकः परमात्मैवोच्यते। अयं शरीरस्थ एव परमात्मा (अणोः) सूक्ष्मात् (अणीयान्) अत्यन्तसूक्ष्मोऽतीन्द्रियः (महतः) आकाशपृथिव्यादेरपि (महीयान्) सर्वत्र व्यापकत्वादनन्तः। एवम्भूतः (आत्मा) (अस्य, जन्तोः) चैतन्यविशिष्टस्य शरीरस्य मध्ये (गुहायाम्) हृदयैकदेशे (निहितः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थितः (तम्) एवम्भूतम् परमात्मानम् (अक्रतुः) लौकिक-फलाकाङ्क्षया कर्माण्यकुर्वन्, इत्थं कृत्वेमं भोगं प्राप्स्यामो-त्यादितृष्णया वियुक्तः शान्तो विषयेष्वलिप्तः कृतप्रत्यगात्मदृष्टिरत एव (वीतशोकः) विगतशोकः प्राणी विजानाति (धातुप्रसादात्) धातोः सर्वविषयधारिकाया बुद्धेः प्रसादात् शुद्धत्वात् ॥

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥
भ० गी० ॥

(आत्मनः) (महिमानम्) महत्त्वम् (पश्यति) संस्कृतया मनीषया सर्वमात्मनो वृत्तं विजानातीत्यर्थः ॥

भा०—परमात्मा सर्ववस्तुभ्योऽतिसूक्ष्मः । नास्ति ततः सूक्ष्मा प्रकृतिर्जीवो वा॥ अव्यक्तात्तु परः पुरुषः इति कथनात् । न च तत्सममधिकं वा किमपि वृहदस्ति । अतएव साम्यातिशयविनिर्मुक्त ईश्वरः । एवम्भूतमात्मानं शान्तलौकिककर्मा सर्वेन्द्रियाणि विजित्य प्रज्ञाप्रासादमारुह्य ध्यायति परमोत्तमसुखभाक् च भवति ॥ २० ॥

भाषार्थः—अब केवल परमात्मा का ही वर्णन करते हैं। यह शरीर में स्थित ही ब्रह्म (अणोः) सूक्ष्म से भी (अणीयान्) इन्द्रियगोचर नहीं होने से अत्यन्त सूक्ष्म है (महतः) आकाश पृथिवी आदि बड़े २ पदार्थों से भी (महीयान्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र व्यापक होने से बड़ा अनन्त है। ऐसा (आत्मा) परमेश्वर (अस्य, जन्तोः) इस चेतन शरीर के बीच (गुहायाम्) हृदय के एक प्रान्त में (निहितः) स्थित है (तम्) ऐसे परब्रह्म को (अक्रतुः) लौकिक फलभोग की आशा से कर्म न करता हुआ अर्थात् इस कर्म को करके इस भोग को प्राप्त होऊंगा इत्यादि प्रकार की तृष्णा से वियुक्त शान्तिशील विषयों में न लिप्त हुआ भीतर को दृष्टि रखनेवाला इसी से (वीतशोकः) शोकरहित विद्वान् पुरुष जानता है (धातुप्रसादात्) सब विषयों को धारण करनेवाली बुद्धि के शुद्ध—प्रसन्न होने से (आत्मनः) आत्मा के (महिमानम्) महत्त्वरूप (पश्यति) वृत्तान्त को जानता है। भगवद्गीता में लिखा है कि रागद्वेष रहित इन्द्रियों से जब विषयों का सेवन करता है तब मनुष्य के इन्द्रिय वश में होने से बुद्धि प्रसन्न होजाती है॥

भा०—परमेश्वर सब वस्तुओं से अतिसूक्ष्म है उससे सूक्ष्म प्रकृति वा जीव भी नहीं। प्रकृतिसे वह पर है ऐसा आगे कहा है और न उसके तुल्य वा अधिक कोई बड़ा है इसी कारण वह समता वा वृद्धि से रहित है। इस प्रकार के परमेश्वर को लौकिककर्म जिसके शान्त होगये वह पुरुष सब इन्द्रियों को जीत और बुद्धि की प्रसन्नतारूप महल पर चढ़ के ध्यान करता और सर्वोत्तम सुख का भागी होता है॥२०॥

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः। क-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तं मदामदन्देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥ २१ ॥

इदानीं यमाचार्यः स्वस्य ज्ञातृत्वमाह । य आत्मा (आसीनः) व्यापकत्वादचलोऽपि (दूरम्) दूरतरं वा (व्रजति) यत्र कश्चिद्गमनेन गच्छेत्तत्र पूर्वमेव गतोऽस्ति । अनेजदेकं मनसो जवीय इत्यस्यैवाशयः । यश्च (शयानः) तमोऽभिभूते ऽन्तःकरणे विषयेभ्य इन्द्रियाणां विरामावसरे स्वस्मिन्नेवावस्थितो जीवात्मा (सर्वतः) सर्वप्रदेशेषु (याति) मनःप्रेरणया शरीरेऽवस्थितोपि संस्कारवशाद्यातीवेति वक्ष्यते (तम्) (देवम्) चैतन्यद्युतिमन्तम् (मदामदम्) आनन्दस्वरूपं मदं लौकिकानन्दात्पृथग्भूतममदं परमात्मानम् । इष्टानिष्टोपलब्धौ हर्षाहर्षकरं जीवात्मानं च (मदन्यः) मत्तोऽन्यः (कः) ज्ञातुमर्हति । मत्सदृशः कश्चिदेव ज्ञातुं शक्त इत्यर्थः । यदि यमादन्यो ज्ञातुमशक्तः स्यात्तर्हि नचिकेतस उपदेशस्यानर्थक्यप्रसङ्गः अतो मामनन्यज्ञातारं मत्वा श्रद्धया मदुपदेशं नचिकेताः शृणुयादिति यमाशयः ॥

भा०—व्यापकत्वादूदूरादूदूरतरं पूर्वत एव ब्रह्मस्थितम् । अनुभूतविषयाणां संस्कारवशात्स्वप्नावस्थायां यो जीवात्मा मनःप्रेरणयः सर्वविषयान् प्राप्नोति । एवम्भूतमात्मद्वयं कश्चिदेवानेकजन्मसंसिद्धो ज्ञातुं शक्तस्तत्सकाशादेव जिज्ञासुना बोद्धव्यम् ॥ २१ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—अब यमाचार्य अपने को ज्ञानी होना कहते हैं। (आसीनः) व्यापक होने से अचल भी (दूरम्) दूर वा अत्यन्त दूर तक (व्रजति) पहुँचता है। जहाँ कोई चल कर जावे वहां पहिले ही प्राप्त है यही बात वाजसनेय के (अनेजदेकं०) इस मन्त्र में कही है और जो (शयानः) विषयों से इन्द्रियों का विराग तथा तमोगुण अन्तःकरण के आच्छादित होनेके समय में अपने स्वरूपमें अवस्थित जीवात्मा (सर्वतः) सब प्रदेशों में (याति) प्राप्त होता है अर्थात् मनको प्रेरणा से संस्कारों के वशीभूत होकर शरीर में स्थित भी बाहर जाता जैसा प्रतीत होता है (तम्) उस (देवम्) चेतनारूप प्रकाश से युक्त (मदामदम्) आनन्द का स्वरूप वा लौकिक आनन्द के भोग से पृथक् माननेवाले जीवात्मा को (मदन्यः) मुझ से भिन्न (कः) कौन (ज्ञातुमर्हति) जान सकता है? अर्थात् मेरे तुल्य कोई ही जान सकता है। यदि यमराजसे भिन्न कोई न जान सके तो नचिकेता के लिये उपदेश करना भी व्यर्थ है। इससे मुझको मुख्य ज्ञाता मानकर नचिकेता श्रद्धापूर्वक मेरे उपदेश को सुने यह यमराज का अभिप्राय है।

भा०—व्यापक होने से दूरसे दूर तक प्रथम ही ब्रह्म स्थिर है अनुभव किये विषयों के संस्कार से जीवात्मा स्वप्नावस्था में मन को प्रेरणा कर सब विषयों को प्राप्त होता है। इस प्रकार के दोनों आत्माओं को कोई अनेक जन्मों का शुद्ध सं-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्कारो पुरुष जान सकता है। जिज्ञासु पुरुष को उसीसे ज्ञान लेना चाहिये ॥ २१ ॥

अशरीरꣳ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्। महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥ २२ ॥

अथ परब्रह्मैवोच्यते (अनवस्थेषु) अवस्थितिरहितेषु मनुष्यपश्वादीनाम् (शरीरेषु) हिंस्यमानेषु प्राणिनिकायेषु (अशरीरम्) लिङ्गादिशरीरावर्जितमेव (अवस्थितम्) अचलमेकरसं नित्यम् (महान्तम्) महापरिमाणविशिष्टम् (विभुम्) व्यापकम् (आत्मानम्) परमात्मानम् (मत्वा) ज्ञात्वा (धीरः) मनीषी विद्वान् (न, शोचति) शोकाकुलो न भवति ॥

भा०—परमात्माऽनित्येषूत्पत्तिविनाशवत्सु शरीरेषु तिष्ठन्नपि तद्ध्वंसे न ध्वस्यते यद्यपि परमात्मा सर्वस्मिन् जगति व्यापकत्वेनावस्थितस्तथापि चेतनाधिष्ठिते शरीरे प्राप्यते दर्पणे मुखच्छायेवेति कृत्वा शरीरेष्ववस्थित इत्युच्यते मनुष्यस्तद्व्यापकं ब्रह्म विदित्वैव श्रेयः प्राप्तमर्हति नान्यथा ॥ २२ ॥

भा०—अब इस मन्त्र में परब्रह्म का ही उपदेश है (अनवस्थेषु) जिनकी स्थिरता नहीं ऐसे मनुष्य पशु आदि प्राणियों के (शरीरेषु) नाशवान् शरीरों में (अशरीरम्) लिङ्ग शरीरादि के विना ही (अवस्थितम्) अचल एक रस रहता है उस (महान्तम्) सब से बड़े अनन्त (विभुम्) व्यापक (आ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानम्) परमात्मा को (मत्वा) जानकर (धीरः) पण्डित विद्वान् पुरुष (न, शोचति) शोक नहीं करता ॥

भा०—परमात्मा उत्पत्ति विनाश धर्मवाले अनित्य शरीरों में स्थित हुआ भी उन शरीरों के नाश होने में आप नष्ट नहीं होता। यद्यपि परमात्मा व्यापक होने से सब जगत् में अवस्थित है तो भी शुद्धान्तःकरण मनुष्यों के चेतनशरीरों में ही प्राप्त हो सकता है जैसे दर्पणमें मुख की छाया दीखती है और सर्वत्र वैसी शुद्धि न होने से नहीं दीखती ऐसे ही जब अन्तःकरण ठीक शुद्ध हो जाता है तभी उस में परमात्मा का स्वरूप भासित होता है जड़ पदार्थों में कभी ईश्वर प्राप्त नहीं होता इस कारण शरीरों में अवस्थित है ऐसा कहा। मनुष्य उस व्यापक ब्रह्म को जान के ही कल्याण पासकता है अन्यथा नहीं ॥ २२ ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूꣳ स्वाम् ॥ २३ ॥

(अयम्) (आत्मा) (प्रवचनेन) अध्यापनेनोपदेशेन वा (न) (लभ्यः) (न, मेधया) न शास्त्रार्थधारणावत्या बुद्ध्या (न) न च (बहुना, श्रुतेन) बहूनां शास्त्राणां पठनेन श्रवणेन लभ्यः कथन्तर्हि लभ्यस्तदाह (एषः) मनुष्यः (यम्, एव) परमात्मानमेव मनसा वाचा कर्मणाऽलम्बनेनाः (वृणुते)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकरोति प्रार्थयते स्तौत्युपास्ते नान्यं कंचिदुपास्यबुद्ध्या मनुते (तेन) मनुष्येण (लभ्यः) (एष, आत्मा) परमात्मा (तस्य) तस्मै । चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (स्वाम्) (तनुम्) स्वस्य यथार्थं रूपम् (वृणुते) प्रकाशयति ज्ञापयति ॥

भा०—वेदादिशास्त्रेषु प्रवीणाः स्मृतिमन्तो वेदानामध्यापने तदाशयोपदेशे वा कुशला बहुश्रुताश्च लोक एव प्रतिष्ठिता भवन्ति । न हि वेदशास्त्रादीनां ज्ञानमात्रं ब्रह्मप्राप्तिहेतुकं भवितुमर्हति किन्तु शास्त्राण्यधीत्य तल्लेखानुसारमनन्यचेता यदा ब्रह्मात्मानमुपास्ते तदाऽयं प्राण्यात्मज्ञानजन्यसुखभाग् भवति । ब्रह्म च प्रसन्नं सत्तस्मै स्वस्वरूपं प्रकाशयति ॥ २३ ॥

भा०—(अयम्) यह (आत्मा) परमेश्वर (प्रवचनेन) पढ़ाने वा उपदेश करने की शक्तिसे (न, लभ्यः) प्राप्त होने योग्य नहीं (न, मेधया) शास्त्र के सिद्धान्त को धारण करनेवाली बुद्धि से नहीं प्राप्त होता और (बहुना, श्रुतेन) बहुत शास्त्रोंके पढ़ने वा बहुत से शास्त्रादि सम्बन्धी उपदेश सुननेसे भी (न) नहीं प्राप्त होता तो कैसे प्राप्त होता है ? सो भी कहते हैं (एषः) यह मनुष्य (यम्, एव) जिस कारण परमात्माकी ही मन वचन कर्म से एकाग्रचित्त होके (वृणुते) स्तुति प्रार्थना करता तथा सब समय उसी का विचार वा ध्यान करता है अन्य किसी को उपास्य नहीं मानता (तेन) उस मनुष्य से (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है (एषः) (आत्मा) यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा (तस्य) उस मनुष्यके लिये (स्वाम्) अपने (तनुम्) यथार्थ स्वरूपको प्रकाशित कर देता अर्थात् जता देता है ॥

भा०—वेदादिशास्त्रों में प्रवीण स्मरण रखनेवाले वेदोंके पढ़ानेवा उन के अभिप्राय का उपदेश करने में कुशल और बहुश्रुत लोग संसारमें ही प्रतिष्ठित होते हैं वेद शास्त्रोंके जाननेमात्रसे ब्रह्म ज्ञान नहीं हो सकता किन्तु शास्त्रोंको पढ़के उन में लिखे अनुसार अनन्यचित्त होके जब ब्रह्म की उपासना करता है तब यह प्राणी आत्मज्ञान से होनेवाले सुखका भागी होता और प्रसन्न हुआ ब्रह्म भी उस को अपने स्वरूप का प्रकाश कर देता है ॥ २३ ॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ॥२४॥

(दुश्चरितात्) वेदस्मृतिषु प्रतिषिद्धाच्चौर्य्यानृतमायादिपापकर्मणः (अविरतः) नोपरतो न विरक्तः पुरुषः (एनम्) परमात्मानम् (न) न प्राप्नोति । (न) (अशान्तः) विषयभोगोसक्तमनाश्चञ्चलचेताः (न) (असमाहितः) समाधानवर्जितः संशयात्मा विक्षिप्तचित्तो वा (वा) क्रियासमुच्चये (न) (अशान्तमानसः) बाह्येन्द्रियशैथिल्येनैकाग्रचित्तोऽपि कर्मफलासक्तमनाः (अपि) प्राप्तुमर्हति कथन्तर्हि (प्रज्ञानेन) सर्वविषयवासनासु दुःखदर्शनेन कृतपरवैराग्याभ्यासेन मोक्षज्ञानेनात्मानम् (आप्नुयात्) प्राप्तुमर्हति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—मनुष्यः शास्त्राण्यधीत्यान्येभ्यश्च ब्रह्मोपदेशं श्रुत्वापि यावद्दुराचाराद्व्यभिचारचौर्यादिकर्मणो न विरक्तो भवति यावच्च विषयभोगवासनारज्जुषु बद्धान्तःकरणो न तावत्परमात्मानं प्राप्तुं योग्यो भवति किन्तु "शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन् वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः। संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागी" । इति योगभाष्यधृतव्यासवचनमनुसृत्य प्रतिक्षणतत्त्वज्ञानचित्तेन विदुषा प्राप्तं शक्यः ॥२४॥

भाषार्थः—जो पुरुष (दुश्चरितात्) वेद वा धर्मशास्त्रों में निषेध किये चोरी मिथ्याभाषण और छल कपटादि पापकर्म से (न, अविरतः) विरक्त नहीं हुआ वह (एनम्) इस परमात्मा को (न) नहीं प्राप्त होता (अशान्तः) इन्द्रियों के लम्पट होने से जिस का मन विषयभोग में आसक्त है वह चञ्चल चित्त (न) नहीं प्राप्त होता (असमाहितः) जिसको किसी का विश्वास नहीं सब में संशय है वा जो विक्षिप्त है वह भी (न) नहीं प्राप्त होता (वा) और (अशान्तमानसः) वाह्य इन्द्रियों की शिथिलता से एकाग्रचित्त होने पर भी कर्मों के फल वा धनादि की तृष्णा में जिसका मन फँसा है वह (अपि) भी (न) नहीं प्राप्त हो सकता। तो कैसे प्राप्त हो सकता है ? (प्रज्ञानेन) सब विषय को वासनाओं में दुःखदृष्टि करके परवैराग्य के अभ्यासरूप मोक्ष के ज्ञानसे परमात्मा को (आप्नुयात्) प्राप्त हो सकता है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—मनुष्य सब शास्त्रों को पढ़के और अन्य विद्वानों से ब्रह्मज्ञान का उपदेश सुन के भी जब तक व्यभिचार चोरी मिथ्याभाषणादि दुष्ट कर्मों से विरक्त नहीं होता और जब तक विषयभोग की वासनारूप रस्सियों से उसका अन्तःकरण बँधा है तब तक परमात्माको वह नहीं प्राप्त हो सकता किन्तु "शय्या पर लेटा, आसन पर बैठा और मार्ग में चलता हुआ सब समय कुतर्क छोड़ स्वस्थचित्त संसार से छूटने का ध्यान करता हुआ नित्यमुक्त और ईश्वर सम्बन्धी सुख का भागी होता है" इस योग भाष्य में लिखे व्यासजी के वचन के अनुसार प्रतिक्षण तत्त्वज्ञान में चित्त रखनेवाला विद्वान् उसको प्राप्त हो सकता है ॥ २४ ॥

यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनम् ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ॥ २५ ॥

(यस्य) परमात्मनः (ब्रह्म) ब्राह्मणः (च) अपि (क्षत्रम्) राजन्यः (च) अपि (उभे) द्वावपि (ओदनम्) प्रलयावसरे भक्ष्ये उदरेऽन्नमिवान्तर्गते लीने (भवतः) (यस्य) (उपसेचनम्) ओदनस्योपरि घृतमिव (मृत्युः) भवति (सः) परमात्मा (यत्र) यस्यां दशायां यादृशो वाऽस्ति (इत्था) इत्थमेवम्भूत एवेति (कः, वेद) सर्वदुःखपरित्यक्तः सुखैकरूपो जीवन्मुक्त एव जानाति यद्वा को वेद रूपगुणरहितत्वादेवम्प्रकारक एवास्तीति न कोऽपि जानाति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—ब्रह्मक्षत्रशब्दावुपलक्षणार्थावुभौ। ब्रह्मक्षत्रधर्मयोर्याथातथ्येन प्रचारे सर्वप्रजानां शान्तिः सुखं च जायते। इमावेव पूर्वौ वर्णौ सर्वव्यवहारसुखहेतू स्तः। यदा तावपि यस्य भक्ष्यौ भवतः। यश्च मृत्युः सर्वप्राणहारको जीवननाशकः सर्वमारकः सोऽपि ब्रह्मक्षत्रादिभक्ष्येण साकमुपसिक्तो यस्य भक्ष्या भवति तर्हीतरस्य साधारणस्य वैश्यादेः प्राणिनः का कथा! अर्थात्सर्वं ब्रह्मक्षत्रादि जगद्यत्र लीयते या मृत्योरपि मारकस्तं कश्चिदेव मुमुक्षुः सर्वदुःखविमुक्तो याथातथ्येन जानाति न तु सर्वः कोऽपि ज्ञातुं शक्तः ॥ २५ ॥

भाषार्थः—(यस्य) जिस परमात्मा के (ब्रह्म) ब्राह्मण (च) तथा (क्षत्रिय) (च) भी (उभे) दोनों (ओदनम्) पेट में भक्ष्यान्नके तुल्य प्रलयसमय में लीन (भवतः) होते हैं। (यस्य) जिसका (उपसेचनम्) भात पर घी के तुल्य ब्राह्मणादि के साथ (मृत्युः) भी भक्ष्य हो जाता है (सः) वह परमात्मा (यत्र) जिस दशा में वा जैसा है (इत्था) इसी प्रकार का है ऐसा (कः, वेद) सब दुःखों से पृथक् सुखस्वरूप एक जीवन्मुक्त पुरुष ही जानता है। अथवा (कः, वेद) रूपगुण से रहित होने से ऐसा ही है यह कौन जान सकता है? अर्थात् कोई नहीं जानता ॥

भा०—इस मन्त्र में ब्रह्म क्षत्र दोनों शब्द उपलक्षणार्थ हैं। ब्राह्मणधर्म और क्षत्रियधर्म के यथावत् प्रचार होने से ही सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रजा में शान्ति और सुख होता है ये ही पहिले दोनों ब्राह्मण क्षत्रिय वर्ण सब व्यवहार सम्बन्धी सुख के हेतु हैं जब वे दोनों भी जिसके भक्ष्य होते हैं और जो मृत्यु सबको मारने वाला सबके जीवन का नाशक है वह भी ब्राह्मणादि जगत् के प्रलय में जिसका भक्ष्य होता है तो इतर साधारण वैश्यादि की क्या दशा है ? अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रियादि सब जगत् जिस में लीन होता है जो मृत्य को भी मारनेवाला है, उसको सब दुःखों से छूटा हुआ कोई मुमुक्षु पुरुष यथार्थ जानता है किन्तु सब कोई नहीं जान सकता ॥ २५ ॥

इति द्वितीया वल्ली समाप्ता ॥

ऋतं पिबन्तौ स्वकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे । छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेतः ॥ १ ॥

जीवात्मपरमात्मानौ द्वावेवोच्येते। व्यतीतायां वल्ल्यां कश्चिदेव सिद्धसाधनो ब्रह्म ज्ञातुं शक्त इत्युक्तम्। तदिदानीं वल्ल्यां वक्ष्यमाणसाधनेन प्राप्यं साध्यं तद्देशं च दर्शयति । (परमे) श्रेष्ठे (परार्द्धे) बाह्यावकाशापेक्षया परब्रह्मणः प्राप्तिहेतुत्वाद्-र्द्धमृद्धियुक्तं तस्मिन्हृदयाकाशे (गुहाम्) गुहायां गुप्तप्रदेशे (प्रविष्टौ) स्थितौ (स्वकृतस्य) एकेन स्वकर्मणा प्राप्तमितरेण तत्कर्मानुसृत्य स्वकर्मणा प्रापितमिति द्वयोः कर्मणः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पन्ने (लोके) लोक्ये दर्शनीये शरीरे (ऋतम्) सत्यं यद्वा कर्मफलम् (पिबन्तौ) सेवमानौ भुञ्जानौ वा जीवात्मपरमात्मानौ जीवात्मा स्वकृतकर्मणः फलं भुंक्ते परमात्मा भोजयति फलं प्रापयतीति द्वयोर्भोगेन सम्बन्धः (ब्रह्मविदः) (छायातपौ) अल्पज्ञत्वसर्वज्ञत्वाभ्यां तमःप्रकाशाविव विलक्षणौ भिन्नाविति (वदन्ति) (ये, च) (त्रिणाचिकेताः) त्रिःकृत्वो नाचिकेतोऽग्निश्चितो यैस्ते गृहस्थाः । (पञ्चाग्नयः) पञ्चविधो ग्रीष्मेऽग्नितापो येषां ते वानप्रस्थाः । यद्वा "पञ्चाग्नयो मनुष्येण परिचर्य्याः प्रयत्नतः । माताऽतिथिः पिता चैव गुरुरात्मा च पञ्चमः ।" इति महाभारत उद्योगपर्वणि । इमे सेव्या यैस्ते । एवं सम्भवितेऽर्थे गृहस्थविशेषणमपि भवितुमर्हति तत्र पूर्वः पक्षः सम्यक् । अनेकैरुच्यमानं पुष्टं भवति ॥

भा०—अस्मिन् कलेवरे जीवब्रह्मभेदेन द्वावात्मानौ वर्त्तेते तयोरेको जीवात्मा पुण्यापुण्यफले सुखदुःखे भुङ्क्तेऽन्यः परमात्मा सुखदुःखवर्जितः साक्षिरूपो जीवात्मने कर्मफलानि ददाति । एकः करोति द्वितीयः कारयति द्वयोरेवोपयोगेन सर्वा लोकयात्रा सम्पद्यते ब्रह्मात्मानं प्राप्यैव जीवात्मा सुखी भवति लोकेऽपि सुखहेतुमेव सर्वं आश्रयति यदि जीवात्मा ब्रह्मणोऽन्यः स्वतन्त्रो नित्योऽल्पज्ञो दुःखभाक्कश्चिन्न स्यात्तर्हि तमःप्रकाशवत्तयोर्भेदकथनन्नोपपद्येत । उपास्योपासकभेदाभावे च सर्वाण्युपासनाप्रतिपादकानि वचांसि विप्रतिपद्येरन् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतदर्थमस्मिन् मन्त्रे यमाचार्य्येण जीवब्रह्मणोर्महान् भेदः प्रदर्शितः। एवं सत्येव वक्ष्यमाणरथकल्पनया जीवस्य ब्रह्मप्राप्तेरुपायः सम्भवति। एतेनात्मैक्यं वदन्तः परास्ता भवन्ति। रथी रथमारुह्य यं प्राप्तमिच्छति स इहैव गुप्तस्थले शुद्धे शरीरप्रदेशे स्थितोऽस्ति न हि तत्प्राप्त्यर्थं प्रदेशान्तरे गन्तव्यमित्युक्तं भवति ॥ १ ॥

भा०—अब जीवात्मा और परमात्मा दोनों को कहते हैं। दूसरी गत वल्लीमें यह कहा था कि कोई जितेन्द्रिय विद्वान् ब्रह्म को प्राप्त हो सकता है सो अब इस तृतीयवल्ली में आगे कहे साधनों से प्राप्त होने योग्य ब्रह्म और उसका स्थान दिखाते हैं (परमे) सर्वोत्तम (परार्द्धे) ब्रह्मप्राप्ति का हेतु होने से शोभाशान्ति युक्त बाहर के अवकाश की अपेक्षा पर हृदयाकाश में (गुहाम्) गुप्त स्थल बुद्धि में (प्रविष्टौ) स्थित (स्वकृतस्य) जीवात्मा ने अपने कर्म से प्राप्त किये और परमात्माने जीव के कर्मानुसार अपने कर्म से प्राप्त कराये इस प्रकार दोनों के कर्म से सिद्ध हुए (लोके) दृष्टिगोचर होनेवाले शरीर में (ऋतम्) सत्यविचार वा कर्मफलका (पिबन्तौ) सेवन वा भोग करते हुए जीवात्मा और परमात्मा जीवात्मा अपने किये कर्मका फल भोगता और परमात्मा भुगाता है। इस कारण भोग के साथ दोनों का सम्बन्ध है (छायातपौ) छाया और घाम के तुल्य अर्थात् अन्धकार प्रकाशके तुल्य अल्पज्ञ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वज्ञ भेद होने से विलक्षण है ऐसा (ब्रह्मविदः) ब्रह्मवेत्ता विद्वान् लोग (वदन्ति) कहते वा कहते आये हैं (च) और (ये) जो (त्रिणाचिकेताः) तीन बार जिन्होंने नाचिकेतनामक अग्निका चयन अर्थात् यज्ञ किया वे गृहस्थ (पञ्चाग्नयः) पञ्चाग्नि तापनेवाले वानप्रस्थ वा माता पिता आचार्य अतिथि और परमात्मा इन तेजस्वी अग्निरूप पाँचोंका सेवन करनेवाले गृहस्थ वा जिन्होंने पहिले इनका सेवन किया है वे वानप्रस्थ भी जीव-ब्रह्म को भिन्न २ कहते हैं ॥

भा०—इस शरीर में जीवब्रह्मनामक दो आत्मा विद्यमान हैं उनमें जीवात्मा पुण्यपाप के फल सुख दुःखों को भोगता और परमात्मा सुखदुःख से रहित साक्षिरूप हुआ जीवात्मा को कर्मफल भुगाता है। एक करता दूसरा कराता है दोनों के उपयोग से संसार का सब व्यवहार चल रहा है। ब्रह्म को प्राप्त होके ही जीव सुखी होता है। लोक में सुख देनेवाले के पास सब जाते हैं। यदि जीवात्मा ब्रह्मसे भिन्न स्वतन्त्र नित्य अल्पज्ञ दुःख भोगनेवाला कोई न हो तो अन्धकार प्रकाश के तुल्य उनका भेद कहना नहीं बने, तथा उपास्य उपासक भेद न रहने से उपासना के प्रतिपादक सब वेदवाक्य व्यर्थ हो जावें। इसलिये इस मन्त्र में यमाचार्य ने जीव ब्रह्मका बड़ा भेद दिखाया है ऐसा होने पर ही वक्ष्यमाण रथकी कल्पनासे जीव के लिये ब्रह्मप्राप्ति का उपाय भी कहना बन सकता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे जीवब्रह्म की एकता कहनेवालों का मत खण्डित हो जाता है। शरीररूप रथ पर चढ़ा रथी जीवात्मा जिसको प्राप्त होना चाहता है वह यहीं गुप्तस्थल शरीर के एक शुद्ध प्रदेश में स्थित है किन्तु उसकी प्राप्ति के लिये कहीं प्रदेशान्तर जाने की आवश्यकता नहीं है॥ १॥

यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतꣳ शकेमहि॥२॥

(यः) जीवात्मा (ईजानानाम्) यज्ञशीलानां विधियज्ञं ज्ञानयज्ञं योगयज्ञं वानुतिष्ठतां प्राणिनाम्। लिटः कानच्। (सेतुः) 'पुल' इवास्ति तम् (नाचिकेतम्) चिकेतं ज्ञानं तद्रहितं वस्तु-अचिकेतं जडम्। तद्विरुद्धं नाचिकेतं ज्ञानस्वरूपं जीवात्मानं वयं ज्ञातुम् (शकेमहि) (यत्) यच्च दुःखात् (पारम्) (तितीर्षताम्) तर्त्तुमिच्छतां विदुषाम् (अभयम्) नास्ति भयमस्मिन्नस्य वा तत् (अक्षरम्) अविनश्वरम् (परम्) प्रकृष्टम् (ब्रह्म) अस्ति तद्वयं ज्ञातुं शकेमहि॥

भा०—यथा जलाशयस्यावारापारगमनाय सेतुर्भवति तथैव सांसारिकदुःखेभ्यः पारं तर्त्तुमिच्छद्भिर्जनैरिन्द्रियाणि वशीकृत्य स्वात्मानुकूलमाचरितव्यम्। यः कामक्रोधलोभमोहादिवशानुग आत्मविरुद्धमाचरति न स जगति कल्याणभाग्भवितुमर्हति। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरित्युक्तत्वात्। सर्वदुःख-

CC-0.Panini Kanya Maha-Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दलनार्थं परमात्मज्ञानायोद्योगः कार्यः । ऐहिकपारमार्थिकसुख-साधनायेन्द्रियवशीकरणपूर्वकं जीवात्मापरमात्मनोर्ज्ञानसम्बन्धि सामर्थ्यं सदा सर्वैर्वर्द्धनीयम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यः) जो (ईजानानाम्) विधियज्ञ अग्निहोत्रादि ज्ञानयज्ञ वा योगयज्ञ का सेवन करनेवाले प्राणियों को (सेतुः) पुल के समान है उस (नाचिकेतम्) सदा जड़ के धर्म से रहित ज्ञानस्वरूप जीवात्मा को हम लोग (शकेमहि) जान सकें और (यत्) जो दुःख से (पारम्) पार (तितीर्षताम्) पहुँचने की इच्छावाले विद्वानों का प्रिय (अभयम्) निर्भय (अक्षरम्) अविनाशी (परम्) सर्वोत्तम (ब्रह्म) सर्वोत्तम (ह्म) ब्रह्म है उसका हम लोग जानें वा जान सकने का सामर्थ्य धारण करें ॥

भा०—जैसे नदी आदि जलाशयके पार जानेको पुल बनाया जाता है वैसे ही संसारी दुःखोंसे पार होने की इच्छा करते हुए पुरुषोंको उचित है कि इन्द्रियोंको वश में करके अपने आत्मा के अनुकूल आचरण करें । जो कामक्रोधलोभमोहादि के वशीभूत हुआ आत्मा से विरुद्ध आचरण करता है वह संसार में कल्याणभागी नहीं हो सकता । क्योंकि आत्मा का बन्धु आत्मा ही है यह भगवद्गीता में कहा है सब दुःखोंका नाश होनेके लिये परमात्मा के ज्ञान का उद्योग करना चाहिये । संसारी वा परमार्थ के सुखकी सिद्धि के लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियों का वश में करके जीवात्मा परमात्मा के ज्ञान-सम्बन्धी सामर्थ्य को सदा बढ़ाना चाहिये ॥ २ ॥

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥३॥

इदानीं परब्रह्मप्राप्तये शरीरं ससाधनं रथं कल्पयति—हे नचिकेतस्त्वम् (आत्मानम्) जीवात्मानम् (रथिनम्) रथ-स्वामिनम् । रथोऽस्यास्तीति स्वस्वामिसम्बन्धे मतुबर्थ इनिः । (विद्धि) जानीहि (शरीरम्) (एव) (तु) (रथम्) विद्धि (बुद्धिम्) अध्यवसायलक्षणामन्तःकरणवृत्तिम् (तु) (सार-थिम्) (विद्धि) (मनः) सङ्कल्पविकल्पात्मकम् (एव, च) (प्रग्रहम्) नियन्त्रीं रशनां विद्धि ॥

भा०—यथा लोकेऽश्वै रथ आकृष्यत एवं शरीरमिन्द्रियै-र्विषयेष्वाकृष्यते । सारथिना रशनाबद्धैरश्वै रथो नीयते तथैव मनोजुष्टैरिन्द्रियैर्बुद्ध्या शरीरं नीयते व्यवहारे चाल्यते ॥ ३ ॥

भाषार्थः—अब ब्रह्मप्राप्ति के लिये इन्द्रियादि साधनोंसहित शरीरको रथरूपसे वर्णन करते हैं—हे नचिकेतः ! तुम (आत्मा-नम्) जीवात्मा को (रथिनम्) रथ का स्वामी (विद्धि) जानो (तु) और (शरीरम्) शरीर को (एव) ही (रथम्) रथ जानो (तु) और (बुद्धिम्) निश्चयात्मक अन्तःकरण की वृत्ति बुद्धि को (सारथिम्) रथ का चलाने वा घोड़ों रूप इन्द्रियों का हांकनेवाला (विद्धि) जानो (च) और (मनः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकल्प विकल्प करनेवाले मन को (एव) ही (प्रग्रहम्) लगाम की रस्सी जानो॥

भा०—जैसे लोक में घोड़ों से रथ खींचा जाता है वैसे ही इन्द्रियों से विषयरूप मार्ग में शरीर खींचा जाता है और जैसे सारथी लगाम लगे हुए घोड़ों से रथ को चलाता है वैसे ही मन रूप लगाम से नथे हुए इन्द्रियों से बुद्धिरूप सारथी व्यवहार में शरीर को चलाता है॥ ३॥

इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयांस्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥ ४॥

(मनीषिणः) मनस ईषिणो वशीकृतमानसाः विद्वांसः पुरुषाः (इन्द्रियाणि) श्रोत्रादीनि (हयान्) रथवाहकान् (आहुः) ब्रुवन्ति (तेषु) इन्द्रियेषु (गोचरान्) मार्गान् (विषयान्) आहुः (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्) शरीरेन्द्रियमनोयुक्तमात्मानं जीवात्मानम् (भोक्ता) (इति, आहुः)॥

भा०—हयरूपैरिन्द्रियैर्विषयेषु रथो भ्राम्यते। शरीरं भोगायतनं तस्मिन्सेन्द्रिये समनस्के सत्येव रथस्वामी जीवात्मा रथचालनफलेन सुखदुःखेन युज्यते। नाशरीरस्यात्मनो भोगः कश्चिदस्तीति न्यायः। आधारमन्तरेणाधेयकार्यं न सम्पद्यत इति यावत्॥ ४॥

भावार्थः—पुरुष (मनीषिणः) मन को वश में करनेवाले विद्वान् (इन्द्रियाणि) कान आदि इन्द्रियों को (हयान्) शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप रथ खेंचनेवाले घोड़े (आहुः) कहते हैं (तेषु) उन इन्द्रियों में (विषयान्) विषयों को (गोचरान्) मार्ग कहते हैं तथा (आत्मेन्द्रियमनोयुक्तम्) शरीर इन्द्रिय और मन करके युक्त जीवात्मा (भोक्ता) भोक्ता है (इति, आहुः) ऐसा कहते हैं॥

भा०—घोड़े रूप इन्द्रियों से विषयों में शरीररूप रथ भ्रमाया जाता है। सुख दुःख भोगका स्थान शरीर है उस शरीर के इन्द्रियों वा मन सहित होने पर ही रथ का स्वामी जीवात्मा रथ चलाने से हुए सुख दुःखरूप फल से युक्त होता है। क्योंकि न्यायशास्त्र में वात्स्यायन ऋषि ने लिखा है कि "शरीर रहित आत्मा को सुख दुःख का भोग नहीं होता" अर्थात् आधार के बिना आधेय का काम सिद्ध नहीं होता॥४॥

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥ ५॥

(यः) पुरुषः (तु) अविज्ञानवान्) विज्ञानरहितोऽविवेकी विषयेष्वेव लम्पटः (अयुक्तेन) अनिगृहीतसमाहितेन नियमविरुद्धेन चलेन (मनसा) (सदा) युक्तः (भवति) (तस्य) (सारथेः) (दुष्टाश्वा इव) (इन्द्रियाणि) (अवश्यानि) स्वेच्छाचारीणि सरथं रथिनं दुःखगर्त्ते पातयितुं समर्थानि भवन्ति॥

भा०—"इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते। तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥ १॥" इन्द्रियाणां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविकेन विषयग्राहकस्वधर्मेण साकं यदा पुरुषेण मनः संयोज्यते तदा सारथिरूपा बुद्धिरपि बहिर्भवति । एवमन्तःकरणस्थाया विवेकशक्तेर्बहिर्मुखत्वात्पुरुषोऽविज्ञानवान् जायते । विषयमार्गे विचरत्स्विन्द्रियेषु मनसः संयोजनाद् दुष्टाश्वा इवेन्द्रियाणि दुःखदानि भवन्ति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (तु) तो (अविज्ञानवान्) विषयों में लिप्त अज्ञानी (अयुक्तेन) संशययुक्त न रोके नियमविरुद्ध चलायमान (मनसा) मन से (सदा) युक्त (भवति) रहता है (सारथेः) सारथि के (दुष्टश्वा इव) घोड़ों के तुल्य (तस्य) उसके (इन्द्रियाणि) इन्द्रियां (अवश्यानि) स्वाधीन विचरने वाले शरीररूप रथ सहित आत्मा को दुःखरूप गढ़े में गिराने को समर्थ होते हैं ।

भा०—भगवद्गीता में लिखा है कि "जब विषयों में विचरते इन्द्रियों के साथ मन लगाया जाता है तब वे नौका को वायुके तुल्य मनुष्य की बुद्धिका हर ले जाते हैं ।" विषय का ग्रहण करना रूप इन्द्रियोंके स्वाभाविक सामर्थ्यके साथ जब पुरुष मनका संयुक्त करता है तब सारथीरूप बुद्धि भी मन के साथ लगती है इस प्रकार अन्तःकरण में रहनेवाली विचारशक्तिके बहिर्मुख हो जाने से मनुष्य अज्ञानी हो जाता है और विचरते हुए इन्द्रियों में मन के संयुक्त करने से दुष्ट घोड़ों के तुल्य" इन्द्रिय दुःखदायी होते हैं ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥६॥

(यः) सदसद्विवेकी विद्वान् (युक्तेन) अभ्यासवैराग्याभ्यां वशीकृतेन समाहितेन (मनसा) सह (सदा) (विज्ञानवान्) विवेकशीलः (भवति) (सारथेः) (सदश्वा इव) (तस्य) (इन्द्रियाणि) (वश्यानि) भवन्ति ॥

भा०—यदा पुरुषेण रशनारूपं मनो वशे स्थाप्यते तदा रागद्वेषवियुक्तैरिन्द्रियैर्विषयान् गृह्णन्नपि रश्मिरूपस्य मनसो निगृहीतत्वादिन्द्रियाण्यपि वशीभवन्ति । एवमन्तःकरणशक्तेः प्रत्यगात्ममुखत्वाद्विवेकशीलो जायते । विषयमार्गे विचरत्स्वपीन्द्रियेषु मनसो निगृहीतत्वादिन्द्रियाणि सदश्वाइव सुखप्रदानि भवन्ति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यः) जो युक्तेन अभ्यास और वैराग्यसे वश में किये समाहित (मनसा) मन (सदा) प्रतिक्षण युक्त सत् असत् का विवेक करनेवाला विद्वान् (विज्ञानवान्) विचारशील (भवति) होता है (सारथेः) सारथीके (सदश्वा इव) श्रेष्ठ घोड़ोंके समान (तस्य) उसके (इन्द्रियाणि) इन्द्रिय (वश्यानि) वशीभूत होजाते हैं ॥

भा०—जब पुरुष लगामरूप मन को वशमें करता है तब रागद्वेष रहित इन्द्रियों से रूपादि विषयों का ग्रहण करता हुआ भी लगामकी रस्सीके तुल्य मनके पकड़े होने से इन्द्रि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

य भी वश में हो जाते हैं। इस प्रकार अन्तःकरण को शक्ति के भीतर रुकने से ज्ञानी विचारशील होजाता है। विषयरूप मार्ग में विचरते हुए भी इन्द्रियों में मन के वशीभूत होने से श्रेष्ठ घोड़ों के तुल्य इन्द्रिय सुख देनेवाले हो जाते हैं ॥ ६ ॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति ॥७॥

पञ्चमषष्ठमन्त्राभ्यां यदुक्तं तस्येदानीं द्वाभ्यां फलमभिधत्ते—(यः, तु) (सदा) (अशुचिः) छलकपटादिदोषमलैर्लिप्तः (अमनस्कः) अनिगृहीतमनस्कोऽधृतरशनः सारथिरिवाकुलचेताः (अविज्ञानवान्) विवेकरहितः (भवति) स रथी जीवात्मा तेनेन्द्रियाधानेन सारथिना (तत्, पदम्) अतीन्द्रियं प्रापणीयमक्षरं ब्रह्म (न, आप्नोति) (च) अपि तु (संसारम्) जन्ममरणप्रवाहमागमापायिशाश्वतदुःखालयम् (अधिगच्छति) प्राप्नोति ॥

भा०—यथा यस्य रथिनः सारथेर्वशेऽश्वा न भवन्ति स स्वामी अभीष्टं स्थानं नैव लभतेऽपि तु यत्राश्वा नयन्ति तत्रैव गर्तादौ पतति तथैव यस्याश्वरूपाणीन्द्रियाणि वशीभूतानि न भवन्ति स आत्मपराङ्मुखो विषयासक्तोऽखिलोपद्रवविरहं शान्तिसुखमयं ब्रह्म न प्राप्नोति किंच मुहुर्मुहुर्दुःखालयमेवाप्नोति ॥ ७ ॥

भाषार्थः—पांचवें छठें मन्त्र से जो विषय कहा था उसका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फल अब दो मन्त्रोंसे कहते हैं। (यः, तु) जो मनुष्य तो (सदा) सदा (अशुचिः) छल कपटादि दोषरूप मलों से युक्त अशुद्ध (अमनस्कः) जिसने लगाम की रस्सी को ठीक नहीं पकड़ा उस सारथी के तुल्य मन को वश में न करने से व्याकुलचित्त (अविज्ञानवान्) विवेकरहित (भवति) होता है (सः) वह रथ का स्वामी जीवात्मा इन्द्रियों के आधीन हुए बुद्धिरूप सा रथी से (तत्) उस (पदम्) परोक्षमें प्राप्त होने योग्य अविनाशी ब्रह्मको न, आप्नोति नहीं प्राप्त होता (च) किन्तु (संसारम्) अनित्य सनातन दुःखों के भण्डार जन्म मरण के प्रवाह को (अधिगच्छति) प्राप्त होता है॥

भा०—जैसे जिस रथस्वामी के सारथी के वश में घाड़े नहीं होते वह अपने अभीष्ट स्थान को नहीं प्राप्त होता किन्तु जहां घोड़े लेजाते हैं वहीं गढ़े आदिमें गिराते हैं वैसे ही जिस पुरुष के घोड़े रूप इन्द्रिय वश में नहीं हैं वह आत्मा से विमुख विषयों में आसक्त पुरुष सब उपद्रवों से रहित शान्ति और सुखस्वरूप ब्रह्म को नहीं प्राप्त होता किन्तु बार २ दुःखसागर में डूबता है॥ ७॥

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते॥८॥

(यः, तु) (सदा) (शुचिः) परित्यक्तछलकपटादिदोषमलः शुद्धान्तःकरणः (समनस्कः) निगृहीतमानसः (विज्ञान-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वान्) विवेकशीलः (भवति) (सः, तु) (तत्, पदम्) परोक्षं प्राप्तुमर्हं ब्रह्म (आप्नोति) तेन सर्वदुःखविमुक्तो भवति (यस्मात्) सुखप्राप्तिहेतोः (भूयः) पुनर्दुःखं (न) जायते) ॥

भा०—यथा यस्य रथाध्यक्षस्य सारथिरश्वचालने कुशलः सन्नद्धो निगृहीतदृढ़रश्मिर्वशीकृताश्वो गन्तव्यस्थानैकलग्नमनानिर्दिष्टं स्थानं सुखेनाप्नोति तथैवाप्रमादी परिक्षीणवितर्कजालः शुद्धशरीरेन्द्रियान्तःकरणो निगृहीतमानसो ब्रह्मप्राप्त्येकचेताः शाश्वतसुखस्वरूपं ब्रह्माप्नोति यतः पुनर्दुःखसागरं नाविशति। मुक्तेः पुनर्जन्मनि सत्यपि शुद्धसंस्कारसङ्कल्पत्वाद्ब्रह्मोपासनादिशुभकर्मैवाचरति येन शान्तिसुखमेवाप्नोति न हि रागद्वेषादिदोषैर्दूषितो भवति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(यः, तु) जो पुरुष तो (सदा) सदा (शुचिः) छल कपटादि दोष जिसने छोड़ दिये इससे शुद्धान्तःकरण (समनस्कः) मन को वश में रखनेवाला (विज्ञानवान्) विवेकशील (भवति) होता है (सः, तु) वह तो (तत्, पदम्) उस प्राप्त होने योग्य परोक्ष ब्रह्मको (आप्नोति) प्राप्त होता है जिससे सब दुःखों से छूट जाता है (यस्मात्) जिस सुख प्राप्ति के हेतु ब्रह्म से (भूयः) फिर दुःख (न, जायते) नहीं होता ॥

भा०—जैसे रथके अध्यक्ष का भृत्य रथ चलाने में कुशल सन्नद्ध लगाम की रस्सी को ठीक २ पकड़े हुए घोड़ों को वश;

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रखनेवाला पहुँचने के अभीष्ट स्थान हीमें जिसका चित्त लगा हुआ है वह सारथी विचार किये स्थान में सुखपूर्वक शीघ्र पहुँचता है। वैसे ही प्रमादरहित जिसका कुतर्करूपी जाल नष्ट होगया शरीर इन्द्रिय और अन्तःकरण जिसके शुद्ध तथा शान्त हैं मन को जिसने वश में किया है एक ब्रह्म में ही जिस का चित्त लगा है वह पुरुष सनातन सुखस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है जिससे फिर दुःखसागरमें नहीं गिरता। अर्थात् मुक्ति से लौट के फिर जन्म होने पर भी संस्कार वा संकल्पोंके शुद्ध होने से ब्रह्म के उपासनादि शुभकर्म का ही आचरण करता है जिससे शान्तिरूप सुख ही मिलता है किन्तु राग द्वेषादि-दोषों से दूषित और दुःखी नहीं होता॥ ८॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः परमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥९॥

(यः, तु) (नरः) मनुष्यः (विज्ञानसारथिः) तपसा शोधिता विवेकशालिनी परमार्थसाधनेषु तत्परा बुद्धिरेव सारथिरूपा यस्य (मनःप्रग्रहवान्) प्रगृहीतमना वशीकृतान्तःकरणः (सः) (अध्वनः) गमनागमनाधिकरणजन्ममरणरूपमार्गस्य (पारम्) (विष्णोः) व्यापकस्य ब्रह्मणः (परमम्) प्रकृष्टम् (तत्) अतीन्द्रियम् (पदम्) प्राप्यं स्वरूपम् (आप्नोति) प्राप्नोति जानातीति यावत्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यथाऽर्जुनस्य श्रीकृष्ण इव यस्य रथस्वामिनो विदुः स्वामिकार्यसाधनैकचेताः सारथिर्भवति स दुर्गमपि पन्थानं सुखेन गच्छति स्वेष्टं स्थानं चाप्नोति तथैव यस्य परमार्थविवेकशीला प्रज्ञा सारथिर्ग्राह्यं रशनारूपं मनो यस्य वशेऽस्ति स संसाररूपमसंख्योपद्रवयुतं दुर्गं पन्थानं तीर्त्वा सर्वोपद्रवविर्जितं शान्तमानन्दमयं ब्रह्माप्नोति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यः, तु) जो (नरः) मनुष्य (विज्ञानसारथिः) तप करके शुद्ध हुई सत् असत् के विवेक से युक्त परमार्थ के साधनों में तत्पर बुद्धि ही जिसका सारथी है (मनःप्रग्रहवान्) अन्तः करण रूप मनको जिसने वशमें किया (सः) वह पुरुष (अध्वनः) जाने आने के अधिकरण जन्म मरणरूप मार्ग के (पारम्) पार (विष्णोः) व्यापक ब्रह्म के (परमम्) सर्वोत्तम (तत्) उन इन्द्रियों से अगम्य परोक्ष (पदम्) प्राप्त होने योग्य स्वरूप को (आप्नोति) प्राप्त होता वा जानता है ॥

भा०—अर्जुन के सारथी श्रीकृष्ण के तुल्य जिस रथ के स्वामी का विचारशील, स्वामी के कार्य में चित्त को लगानेवाला सारथी होता है वह कठिन मार्ग को भी सुखपूर्वक व्यतीत करता और अभीष्टस्थान वा वस्तु को प्राप्त होता है वैसे ही जिस पुरुष की परमार्थमें विवेकशील बुद्धि तथा सारथी रूप बुद्धि के आधीन लगाम की रस्सी के समान मन जिस के वश में है वह असंख्य उपद्रवों से युक्त संसाररूप कठिन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्ग के भी पार होकर सब उपद्रवों से रहित शान्त तथा आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ १० ॥

इदानीं भौतिकेन्द्रियाण्यारभ्य सूक्ष्मसूक्ष्मतरक्रमेणाधिगन्तव्यस्य ब्रह्मणः प्राप्तेरुपाय उच्यते (इन्द्रियेभ्यः) भौतिकेभ्यः (अर्थाः) तन्मात्ररूपा विषयाः (पराः) सूक्ष्माः (च) (अर्थेभ्यः) विषयेभ्यः (मनः) (परम्) सूक्ष्मतरम् (च) (मनसः) (बुद्धिः) निश्चयात्मको बोधः (परः) सूक्ष्मतरः (बुद्धेः) (महान्, आत्मा) महत्तत्त्वाख्यः (परः) सूक्ष्मः ॥

भा०—स्थूलानीन्द्रियाणि भूतसूक्ष्मेभ्य उत्पद्यन्ते तद्यथा पृथिवीतन्मात्राद्घ्राणं जलतन्मात्राद्रसनमग्नितन्मात्राच्चक्षुर्वायुतन्मात्रात्स्पर्शनमाकाशतन्मात्राच्छ्रोत्रम् । कार्यात्कारणं परं सूक्ष्ममेव भवतीत्यत इन्द्रियेभ्योऽर्थाः सूक्ष्माः । तन्मात्रभूतसूक्ष्माणां कारणत्वादहङ्काररूपं मनः सूक्ष्मं ततश्चाध्यवसायलक्षणा बुद्धिः परा ततोऽपि महत्तत्त्वं सूक्ष्मतरम् । एवं मुमुक्षुणा सूक्ष्मात्सूक्ष्मे विचारः प्रवर्त्तनीयः ॥ १० ॥

भाषार्थः—अब भौतिक इन्द्रियों से लेकर सूक्ष्म से अतिसूक्ष्मक्रम से प्राप्त होने योग्य ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय कहते हैं (इन्द्रियेभ्यः) पृथिव्यादि सूक्ष्म तत्त्वों से बने इन्द्रियों से (अर्थाः) गन्ध तन्मात्र आदि विषय (पराः) सूक्ष्म (च)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (अर्थेभ्यः) विषयों से (मनः) मन (परम्) अतिसूक्ष्म है (च) और (मनसः) मन से (बुद्धिः) निश्चयात्मक ज्ञान रूप बुद्धि (परा) सूक्ष्म है (बुद्धेः) बुद्धि से (महान्) (आत्मा) महत्तत्त्व (परः) सूक्ष्म है ॥

भा०—स्थूल इन्द्रियों के गोलक तथा विषयग्राहकशक्ति सूक्ष्म भूतों से उत्पन्न होते हैं। जैसे पृथिवीसे नासिका, जलसे जिह्वा, अग्नि से नेत्र, वायु से त्वचा और आकाश से श्रोत्र उत्पन्न होते हैं। इन भूतों से उत्पन्न होने के कारण ही वह २ इन्द्रिय उसी २ तत्त्व के गुण को ग्रहण करता है अर्थात् चक्षु से अग्नि के गुणरूप का ही ग्रहण होता है रस गन्धादि का नहीं। इस नियम का कारण उस २ भूत से उत्पन्न होना ही है अन्यथा कान से गन्धका ग्रहण न होने में कोई बाधक नहीं। कार्य से कारण सूक्ष्म होता है इसी कारण इन्द्रियों से विषय सूक्ष्म कहे गये। विषयों का कारण होनेसे मन उनसे भी सूक्ष्म है मन से निश्चयात्मक बुद्धि पर है और महत्तत्त्व उससे भी सूक्ष्म है। मुमुक्षु पुरुष को चाहिये कि इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म में विचार को प्रवृत्त करे ॥ १० ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥११॥

(महतः) महत्तत्त्वात् (अव्यक्तम्) इत्थमिति व्यापारवर्जितं प्रकृत्याख्यं जगतः कारणम् (परम्) तस्मात् (अव्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्तात) पुरुषः पुरि शरीरे ब्रह्माण्डे वा शेते स जीवात्मा पूर्णः परमात्मा च (परः) सूक्ष्मतमः (पुरुषात्) (परम्) सूक्ष्मम् (किञ्चित्) किमपि (न) नास्ति किन्तु (सा) (काष्ठा) स्थिति पर्यवसानम् (सा) (परा, गतिः) यतः परा कस्यापि गतिर्नास्ति ॥

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिस्तस्याः प्रथमः परिणामो महत्तत्त्वं तस्मादव्यक्तादपरिणतान्महत्तत्त्वं स्थूलं प्रकृतिश्च सर्ववस्तुभ्यः सूक्ष्मतमा ततश्च पुरि देहे ब्रह्माण्डे वा शयान इव शान्तः स्थितः सूक्ष्मतमो जीवःपरमात्मास्ति । जगति यावद्वस्तुजातं सूक्ष्मत्वे महत्त्वे च सावधिकं भवितुमर्हति । तेनैवानवस्थापत्तिरूपं दूषणं शास्त्रकृद्भिर्निवार्य्यते यथा घटपटादिसर्ववस्तूनामधिकरणं पृथिवी तस्या वायुर्वायोराकाशस्तस्यापि ब्रह्माधिकरणम् । तत्र चाधाराधेयभावः परिसमाप्यते नास्ति ब्रह्मणः किमप्यधिकरणम् । यदि स्यात्तर्हि तस्याप्यधिकरणकल्पनेऽनवस्थापत्तिरेव । अतो यः सर्वाधिकरणानामप्यधिकरणं स परमात्मास्ति तथैव यः सर्वसूक्ष्मवस्तुष्वपि सूक्ष्मतमो यस्मात्परं सूक्ष्मं किमपि नास्ति सूक्ष्मत्वमहत्वकर्मगत्यादीनां यत्रावधिः स परमात्मा प्रत्यगात्मदृष्ट्या द्रष्टव्य इत्याशयः ॥११॥

भाषार्थः—(महतः) महत्तत्त्व से (अव्यक्तम्) इत्थम्भूत कथन से रहित प्रकृतिनामक जगत् का कारण (परम्) पर है उस (अव्यक्तात्) अव्यक्तप्रकृति से (पुरुषः) जीव वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा (परः) अत्यन्त सूक्ष्म है और (पुरुषात्) परमात्मा से (परम्) सूक्ष्म (किञ्चित्) कुछ भी (न) नहीं है किन्तु (सा) वही (काष्ठा) स्थितिका अवधि (हद्द) तथा (सा) वही (परा, गतिः) पहुँचने की अवधि-हद्द है उससे आगे किसी की गति वा सूक्ष्मता नहीं है ॥

भा०—सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण की साम्यावस्था जो प्रकृति है वह अपने परिणाम महत्तत्त्व से सूक्ष्म है और प्रकृति सब वस्तुओं से सूक्ष्म है और उस कारणावस्था प्रकृति से ब्रह्माण्डरूप शरीर में सोते हुये के तुल्य शान्तिपूर्वक स्थित परमात्मा है। जगत् में सब पदार्थों के छोटे बड़े होने की हद्द होती है कि यहां तक छोटे से छोटा वा बड़े से बड़ा हो सकता है। इसी नियम से शास्त्रकार लोग अनवस्था दोष को हटाते हैं। जैसे घटपट आदि सब वस्तुओं का आधार पृथिवी उसका वायु, वायु का आकाश और आकाश का आधार ब्रह्म है। वहीं आधाराधेयभाव सम्बन्ध समाप्त हो जाता है अर्थात् ब्रह्म का आधार कोई नहीं है। यदि ब्रह्म का भी आधार मानें तो उस आधार का भी अन्य आधार मानने में अनवस्थापत्तिदोष आता है इसलिये आधारों का आधार परमात्मा है वैसे ही जो सब सूक्ष्म वस्तुओं में अत्यन्त सूक्ष्म जिससे परे कोई सूक्ष्म नहीं किन्तु सूक्ष्मता बड़प्पन और कर्मगतियों की जहां अवधि है वह परमात्मा इन्द्रियों की शक्ति अन्तःकरण की ओर झुका के देखने योग्य है ॥ ११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एषु सर्वेषु भूतेषु गूढ़ात्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥

(एषः) सर्वनियन्ता योगिभिः कृतप्रत्यक्षः (सर्वेषु, भूतेषु) (गूढ़ात्मा) गूढ़ो गुप्तश्चासावात्मा चालभ्यः । बहुभिरध्येषणातत्परैः सूक्ष्मत्वादतीन्द्रियत्वाच्चालभ्यो गूढः । न तु केनचिद्वस्त्वन्तरेण छन्न एव गूढो भवति । एवं सत्यविद्यामायादिभिः संवृतश्छन्न इति शाङ्करं कथनं नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावे ब्रह्मणि विरुद्धमन्याय्यं च (न, प्रकाशते) विषयासक्तेन्द्रियाधीनप्रज्ञया न ज्ञायते । (तु) अपि तु (अग्रयया) कुशाग्रेणेव प्रवेशनशीलया (सूक्ष्मया) "इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था" इत्युक्तक्रमेण सूक्ष्मविचारापन्नास्पदया (बुद्धया) (सूक्ष्मदर्शिभिः) सूक्ष्मविचारतत्परैः (दृश्यते) ॥

भा०—इन्द्रियाधीनमना बहिर्मुखः कश्चित्सर्वस्मिञ्जगत्यन्वेषणतत्परोऽपि परमात्मानं ज्ञातुं नार्हति किन्तु न इन्द्रियशक्तिं बाह्यान्निरुध्य सर्वप्राणिनिकायेषु व्याप्तं परमात्मानं मन्यते स शान्तेन्द्रियमनाः प्रत्यगात्मनि परिवर्त्तितया सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरइन्द्रियार्थमनोबुद्धिमहत्तत्वादिविचारे लब्धास्पदया सूक्ष्मबुद्धया परमात्मानं पश्यति ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(एषः) सबको नियम में रखनेवाला योगियों ने जिसको प्रत्यक्ष किया ऐसा (सर्वेषु) सब (भूतेषु) प्राणीमात्र में (गूढ़ात्मा) गुप्त अलभ्य परमात्मा [बहुत लोग उसके

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोजने में लगे रहते हैं तो भी इन्द्रियों से अग्राह्य अत्यन्त सूक्ष्म होनेसे प्राप्त नहीं होता इससे गुप्त कहाजाता है किन्तु जैसे वस्त्र आदि से कोई वस्तु ढांक दिया जाय वैसे वह कहीं छिपा नहीं है किन्तु सर्वत्र व्याप्त निर्मल सूर्यवत्प्रकाशमान है। ऐसा होने पर अविद्या मायादि से ढंपा है ऐसा कथन शङ्करस्वामी करते हैं सो नित्य शुद्ध चेतन मुक्तस्वभाव ब्रह्म के बीच विरुद्ध और अन्याय्य होता है] (न, प्रकाशते) विषयासक्त इन्द्रियों के साथ फंसी बुद्धि से नहीं जाना जाता (तु) किन्तु (अग्रयया) कुश की नोक के तुल्य सूक्ष्म विषय में प्रवेश करनेवाली (सूक्ष्मया) पूर्वोक्त क्रम से (इन्द्रियों से, अर्थ, अर्थ से मन में) सूक्ष्म से सूक्ष्म में प्रवेश करनेवाली (बुद्ध्या) बुद्धि करके (सूक्ष्मदर्शिभिः) सूक्ष्मदर्शी जनों से (दृश्यते) देखा जाता है ॥

भा०—जिसका मन इन्द्रियोंके अधीन हैजिसकी विचार-शक्ति बाह्य विषयों में फैली है ऐसा कोई पुरुष सब जगत् में खोजता हुआ भी परमात्मा को नहीं प्राप्त हो सकता। किन्तु जो इन्द्रियों की शक्ति को बाहर से रोक के सब प्राणियों के शरीर में व्याप्त परमात्मा को मानता है तथा जिसके इन्द्रिय या मन शान्ति को प्राप्त हुये वह भीतरी विचार में फेरी हुई इन्द्रिय, अर्थ, मन, बुद्धि और महत्तत्वादि सम्बन्धी सूक्ष्मसे सूक्ष्मविचारमें प्रवृत्त सूक्ष्मबुद्धिसे परमात्माको देखता है ॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि । ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥ १३ ॥

सूक्ष्मया बुद्ध्या स कथं द्रष्टव्य इत्युच्यते (प्राज्ञः) प्रशस्तातिशयप्रज्ञावान्नरः (मनसी) मनसि । सुपां सुलुगिति विभक्तरीकारः (वाक्) वाचम् । अत्र विभक्तेर्लुक् । उभयत्र छन्दोवत्कार्यम् । वागित्युपलक्षणमिन्द्रियाणाम् । (यच्छेत्) विषयेभ्यो निरुध्योपरमयेत् (तत्) मनः (ज्ञाने) ज्ञानप्रकाशस्वरूपायाम् (आत्मनि) अतति सततं मन आदिनीन्द्रियाणि प्राप्नोतीत्यात्मा बुद्धिस्तस्याम् (यच्छेत्) उपरमयेत् (ज्ञानम्) बुद्धिम् (महति, आत्मनि) स्वकार्येषु व्याप्तिमति महत्तत्वे (नियच्छेत्) शमयेत् (तत्) महत्तत्त्वम् (शान्ते) शान्तस्वरूपे (आत्मनि) परमात्मनि (यच्छेत्) नियतं कुर्यात् ॥

भा०—परमार्थज्ञानतत्परेण विदुषा सर्वेन्द्रियाणि मनआधीनानि मनश्च सारथिरूपबुद्धेर्वशे स्थापनीयम् । बुद्धिर्वसुप्रकृतिसमुदाये परिगणिता सा ततः सूक्ष्मे महत्तत्त्वे निवेशनीया महत्तत्वं च सर्वबाधाविमुक्ते शान्ते परमात्मनि प्रवेशनीयं एवं सति सूक्ष्मतरा बुद्धिरन्तर्यामिनमात्मानं द्रष्टुं समर्था भवति ॥ १३ ॥

भाषार्थः—वह परमात्मा सूक्ष्म बुद्धि से कैसे देखने योग्य है सो कहते हैं-(प्राज्ञः) अत्यन्त उत्तम बुद्धियुक्त पुरुष (म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नसी) मन में (वाक्) वाणी आदि इन्द्रियों को (यच्छेत्) विषयों से रोक कर ठहरावे (तत्) उस मन को (आत्मनि) मन आदि को निरन्तर प्राप्त होनेवाली (ज्ञाने) ज्ञानप्रकाश स्वरूप बुद्धि में (यच्छेत्) ठहरावे (ज्ञानम्) बुद्धि को (महति, आत्मनि) अपने कार्यमें व्याप्त महत्त्व में (नियच्छेत्) शान्त करे (तत्) उस महतत्त्व को (शान्ते) शान्तस्वरूप (आत्मनि) परमात्मा में (यच्छेत्) नियत करे ॥

भा०—परमार्थ सम्बन्धी ज्ञानमें तत्पर विद्वान् को उचित है कि सब इन्द्रियोंको मन के आधीन और सारथिरूप बुद्धि के आधीन मन को स्थिर करे। आठ प्रकृतियों में गिनाई हुई बुद्धिको महत्तत्त्व में प्रवेश करे और महत्तत्व को सब दुःखोंसे छूटे शान्त स्वरूप परमात्मा में लगावे इस प्रकार अतिसूक्ष्म बुद्धि अन्तर्यामी परमात्मा के देखने को समर्थ होती है ॥१३॥

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत। क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गम्पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥ १४ ॥

हे मनुष्या! एवमुक्तप्रकारेण परमात्मानं ज्ञातुम् (उत्तिष्ठत) अविद्यानिद्रातः (जाग्रत) (वरान्) श्रेष्ठान् गुरुत्वेन स्वीकर्त्तव्यानाचार्यानुपदेशकान् वा गुरून् (प्राप्य) (निबोधत) सर्वान्तर्यामिणं परमात्मानं विजानीत। न ह्यं सुगमो मार्गः किन्तु यथा (निशिता) शिलिपना तीक्ष्णीकृता (क्षुरस्य, धा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रा) (दुरत्यया) पद्भ्यां दुःखेनात्येतुं योग्या भवति तथैव (कवयः) क्रान्तदर्शिनो विद्वांसः (तत्) तत्त्वज्ञानलक्षणम् (पथः) पन्थानम् (दुर्गम्) दुःखेन गन्तुं योग्यम् (वदन्ति) कथयन्ति ॥

बहवो जना अभ्यस्तान्यनेकानि कार्य्याण्युपलभ्य जानन्ति किमिदं कार्यम् ? यदाऽऽरप्स्यामहे तदा सुगमतया सद्यो निष्पादयिष्यामः । एतदर्थं विशिष्टप्रयासो न कार्य इति तद्वदत्र न बोधव्यम् । एष दुर्गो मार्ग एकगम्यः । यथा क्षुरस्य तीक्ष्णीकृतधाराया उपरि पद्भ्यां गमनं क्लिष्टतरं भवति तथैव परमात्मज्ञानोपायः क्लिष्टतरस्तदर्थं मनुष्येण महान् प्रयासः कार्यः । निद्रालस्यप्रमादाविद्यादीन् विहाय ज्ञानिगुरुसत्सङ्गसेवाभ्यां परमात्मज्ञानस्योपायः सेवनीयः नात्र स्वस्थता कार्या॥१४॥

भाषार्थः—हे मनुष्यो ! इस उक्त प्रकार से परमात्मा के जानने को (उत्तिष्ठत) उठो अविद्यारूप निद्रा को छोड़ो (जाग्रत) जागो (वरान्) गुरुभाव से स्वीकार करने योग्य श्रेष्ठ विद्वान् आचार्य्यों वा उपदेशकों को (प्राप्य) प्राप्त होके सर्वान्तर्यामी परमात्मा को वा सत्याऽसत्य को (निबोधत) जानो यह मार्ग सुगम नहीं है जो आलस्य में पड़े रहनेपर भी सहज में प्राप्त होजावे । किन्तु जैसे (निशिता) बाढ़ कराई हुई (क्षुरस्य) छुरा की (धारा) धार (दुरत्यया) पगों से चलने में अतिकठिन होती है वैसेही (कवयः) दीर्घदर्शी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् लोग (तत्) उस तत्त्वज्ञानरूप(पथः) मार्ग को(दुर्गम्) दुःखसे प्राप्त होने योग्य (वदन्ति) कहते हैं ॥

बहुत मनुष्य अभ्यास किये अनेक कामों को प्राप्त होकर जानते हैं कि यह काम हो क्या है ? जब चाहेंगे कर डालेंगे शीघ्र सिद्ध होजायगा कठिन ही क्या है इसके लिये हमें विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं है । वैसा विचार इस प्रसंग में न करना चाहिये । यह परमार्थसाधक धर्मसम्बन्धी अतिकठिन मार्ग है इसको पूर्णविवेकी पुरुष ही प्राप्त हो सकता है इस मार्ग में ज्ञानी अज्ञानी और अज्ञानी ज्ञानी माना जाता वा जान पड़ता है । जैसे छुराकी तीखी धार पर पगों से चलना अति कठिन होता है वैसे ही आत्मज्ञान का उपाय वा धर्मानुष्ठान अति कठिन है । कभी धर्म करते २ प्राणी अधर्मरूप कीच में फंस जाता है इसलिये मनुष्य को उचित है कि बड़ा परिश्रम करे । निद्रा, आलस्य, प्रमाद और अविद्यादि को छोड़कर ज्ञानी गुरु का सत्संग तथा सेवन करके परमात्मज्ञान के उपाय का सेवन करे किन्तु स्वस्थ न बैठा रहे ॥ १४ ॥

अशब्दमस्पर्शरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् । अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तं मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ १५ ॥

(यत्) ब्रह्म (अशब्दम्) शब्दगुण आकाशस्तस्माद्भिन्नमशून्यम् (अस्पर्शम्) स्पर्शगुणो वायुस्तद्गुणाद्रहितम् (अरूपम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह्ने रूपगुणाद्भिन्नम् (तथा, अरसम्) रसगुणाद्विरहम् (च) (अगन्धवत्) गन्धवती पृथिवी तस्याः पृथग्भूतम्। अतएव (अव्ययम्) न व्येति (नित्यम्) सदैकरसम् (अनादि) न विद्यत आदिः कारणमस्य तत्कारणस्यापि कारणम् (अनन्तम्) न विद्यतेऽन्तः कार्यमस्य न हि तस्मादुपादानात्किमपि कार्यं जायते (महतः) महत्तत्त्वात् (परम्) सूक्ष्मतरम् (ध्रुवम्) अचलम् (तत्) (निचाय्य) विज्ञाय मनुष्यः (मृत्युमुखात्) जन्ममरणप्रवाहाद्दुःखसागरात् (प्रमुच्यते) ॥

भा०—तस्मान्निमित्तभूतात्परमात्मन आकाशादि सर्वमुत्पन्नं सकारणं कार्यं स्वरूपाद्व्येति स्वस्योपादाने प्रलीयतेऽनित्यं भवति। न तथाऽऽत्मा कस्यचित्कार्यमतएव न व्येति न च क्वापि लीयते तस्मान्नित्यम्। तमेवं भूतमात्मानं याथात्म्येन यो विजानाति स एव दुःखाद्विमुक्तो भवितुमर्हति ॥१५॥

भाषार्थः—(यत्) जो ब्रह्म (अशब्दम्) शब्द गुण आकाश का है उस शून्य आकाश से विलक्षण है (अस्पर्शम्) स्पर्शगुणसे वायु जाना जाता है ब्रह्म नहीं (अरूपम्) रूप गुण अग्नि का है उससे भिन्न (तथा, अरसम्) जलके रस गुण से रहित (च) और (अगन्धवत्) पृथिवी के गन्धगुण से पृथक् वर्त्तमान है शब्दादि गुण उस में वा उसके नहीं इसी से वह (अव्ययम्) अविनाशी (नित्यम्) सदा एकरस (अनादि) उसका कोई आदि कारण नहीं (अनन्तम्) और न वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी का उपादान कारण है (महतः) महत्तत्त्वसे भी (परम्) अत्यन्त सूक्ष्म (तत्) उस ब्रह्म को जान के मनुष्य (मृत्यु-मुखात्) जन्ममरण के प्रवाहरूप दुःखसागर से (प्रमुच्यते) छूट जाता है ॥

भा०—उस निमित्तकारणरूप परमात्मा से आकाशादि सब जगत् उत्पन्न होता और कारणवाला कार्य अपने स्वरूप से च्युत होता ही है अर्थात् अपने उपादान कारण में लीन हो जाता है इससे अनित्य है वैसे ही परमात्मा किसीका कार्य नहीं किन्तु सबका कारण है इसीसे न स्वरूप से च्युत हो न किसी में लीन हो इस कारण नित्य है। उस ऐसे परमात्मा को जो यथार्थरूप से जानता है वही दुःख से छूट सकता है ॥ १५ ॥

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तं सनातनम्। उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते ॥ १६ ॥

वल्लीत्रयेण प्रतिपादितं विषयं स्तुवन्फलं दर्शयति (नाचिकेतम्) नचिकेतसा प्राप्तम् (मृत्युप्रोक्तम्) मृत्युनाम्ना यमाचार्य्येण प्रोक्तम् (सनातनम्) वेदमूलकत्वात्समूलं परम्परयोपदिश्यमानम् (उपाख्यानम्) गुरुशिष्यसम्बन्धि व्याख्यानम् (उक्त्वा) अधिकारिणे भक्तायोपदिश्य ब्रह्मनिष्ठादाचार्याच्च (श्रुत्वा) मेधावी विवेकी विद्वान् पुरुषः (ब्रह्मलोके) ब्रह्मैव लोको लोक्यस्तस्मिन् (महीयते) उपासनादिफलेन पूजितो भवति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—श्रद्धामन्तरेण मनुष्यः सम्यक्कार्य्यं नानुतिष्ठति फलाख्यानञ्च सर्वत्र श्रद्धाविवृद्ध्यर्थं क्रियते सा हि कल्याणकारिणी जननीव योगिनं पाति। अतो यः परमात्मानं जिज्ञासते स एतदुपाख्यानं श्रद्धया गुरुभ्यः शृणुयाच्छिष्येभ्य उपदिशेत्। यथोक्तोपायांश्च सततं सेवेत तेन ब्रह्मज्ञानं सुलभं भवति॥ १६॥

भाषार्थः—अब तीन वल्लियों में कहे विषय को फलस्तुति दिखाते हैं (मृत्युप्रोक्तम्) यमाचार्य जी ने कहे और (नाचिकेतम्) नचिकेता ने ग्रहण किये (सनातनम्) परम्परा से उपदेश किये गये वेदमूलक होनेसे सनातन (उपाख्यानम्) गुरु शिष्य संवाद से कथन किये गये विषय को (उक्त्वा) अधिकारी भक्त शिष्य को उपदेश कर और ब्रह्मवेत्ता आचार्य से (श्रुत्वा) सुनकर (मेधावी) विवेकी विद्वान् पुरुष (ब्रह्मलोके) ज्ञानदृष्टि से देखने योग्य ब्रह्म के बीच (महीयते) उपासनादि से हुए फल से सन्तुष्ट सत्कारको प्राप्त होता है॥

भा०—श्रद्धा के बिना मनुष्य ठीक २ कार्य का सेवन नहीं कर सकता और श्रद्धा बढ़ाने के लिये फल का कथन किया जाता है वह श्रद्धा कल्याणकारिणी माता के तुल्य योगी की रक्षा करती है। इससे जो परमेश्वर को जानने की इच्छा करे वह इस संवाद को श्रद्धापूर्वक गुरुजनों से सुने और शिष्यों के लिये उपदेश करे और इस प्रसङ्ग में कहे उपायों का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर सेवन करे जिससे ब्रह्मज्ञान सुगम होजाता है ॥ १६ ॥

य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि । प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते तदानन्त्याय कल्पत इति ॥ १७ ॥

(यः) पुरुषः (प्रयतः) शुद्धशान्तशरीरेन्द्रियमना भूत्वा (इमम्) (परमम्) (गुह्यम्) अधिकारिणे रहसि वक्तव्यं ब्रह्मज्ञानोपदेशम् (ब्रह्मसंसदि) ब्राह्मणसदसि वैदिकसमाजे वा (वा) अथवा (श्राद्धकाले) यदा विद्वत्समुदायस्य भोजनादिना श्रद्धया सत्कारः क्रियते स श्राद्धकालस्तस्मिन् (श्रावयेत्) तात्पर्यमुपदिशेत् (तत्) श्रावणम् । बहुकर्णगतत्वात्संस्कारवासनारूपेण (आनन्त्याय) अनन्तभावाय (कल्पते) समर्थं भवति ॥

भा०—यथाऽनेकयोग्यक्षेत्रेषूप्तं बीजं कुत्रचिद्विशिष्टफलप्रदं जायते तथैवानेकाधिकारिशिष्यसमुदाये विदुषां सत्कारसमये वा कृतो ब्रह्मज्ञानोपदेशः कस्मिंश्चिद्विशेषोपकारी भवति यावता प्रयत्नेनैकः श्राव्यस्तावतैव बहवस्तस्माच्छिष्यसमुदाये कृतो ज्ञानोपदेशो लाघवेन विशिष्टफलसाधकः । यस्य विषयस्य यस्तत्त्वं ज्ञातुं शक्तः स तस्याधिकारी । अनधिकारिणे कृत उपदेशोऽन्यथा प्रतिपन्नोऽनर्थाय स्यादिति सम्भवोऽतः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वस्मै सर्वं नोपदेश्यम् । 'न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनां' मिति गीतासु ॥ १७ ॥

इति भीमसेनशर्मकृते कठोपनिषद्भाष्ये तृतीया वल्ली प्रथमोऽध्यायश्च समाप्तः ॥

भाषार्थः—(यः) जो पुरुष (प्रयतः) जिसके शरीर इन्द्रिय और मन शुद्ध तथा शान्त हों ऐसा होके (इमम्) इस (परमम्) उत्तम (गुह्यम्) अधिकारी पुरुषके लिये एकान्त में कहने योग्य ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी उपदेश को (ब्रह्मसंसदि) ब्राह्मणों की सभा वा वैदिक समाज में (वा) अथवा (श्राद्धकाल) जब अनेक विद्वानों का भोजनादि से श्रद्धापूर्वक सत्कार किया जावे (श्रावयेत्) अभिप्रायका उपदेश करे (तत्) वह उपदेश बहुत कानों में पहुँचने से संस्कार वासनारूप से (आनन्त्याय) अनन्त होने को (कल्पते) समर्थ होता है ॥

भा०—जैसे अनेक खेतों में बोया बीज किसी में विशेष फल देता है वैसे ही अनेक अधिकारी शिष्यों के समुदाय वा विद्वानों के सत्कार के समय किया ब्रह्मज्ञान का उपदेश कहीं विशेष उपकारी होता है। जितने परिश्रम वा समय में एक को उपदेश किया जावे उतने में ही बहुतों को हो सकता है इसलिये अनेकके समुदाय में उपदेश करना विशेष फलदायक है। जिस विषय के तत्त्व को जो जान सकता है वही उसका अधिकारी है। अनधिकारी के लिये किया ज्ञानोपदेश उलटा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पड़के अनर्थ करानेवाला होजाय यह सम्भव है। इस कारण सब के लिये सब विषयका उपदेश नहीं करना चाहिये ॥१७॥

यह तृतीय वल्ली और प्रथमाध्याय समाप्त हुआ ॥

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भस्तस्मात्पराङ्प-श्यति नान्तरात्मन्। कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्ष-दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥ १ ॥

गतवल्ल्यां सूक्ष्मप्रज्ञयात्मा दृश्यत इत्युक्तम्। तत्र निरोध-कारणमस्यां वल्ल्यां वक्तुमारभते (स्वयम्भूः) स्वयं सत्तात्मकः स्वतन्त्रः परमेश्वरः (खानि) इन्द्रियाणि (पराञ्चि) परान् शब्दादिविषयानञ्चन्ति गच्छन्ति पतन्ति तद्धर्मकाणि (व्य तृणत्) व्यरचयत्। धातूनामनेकार्थत्वात्तृहधातार्निर्माणार्थ-प्रतिपत्तिः। (तस्मात्) कारणात् मनुष्यः (पराङ्) बाह्य विषयम् (पश्यति) किन्तु (न, अन्तरात्मन्) अन्तरात्मनि न पश्यति। छन्दोवन्मत्वा विभक्तेर्लुक् (कश्चित्) (धीरः) ध्यानशीलः (आवृत्तचक्षुः) आवृत्ते आच्छादिते सम्मीलिते चक्षुषी यस्य स पुरुषः (अमृतत्वम्) मोक्षभावम् (इच्छन्) (प्रत्यगात्मानम्) अन्तःकरणे व्याप्तं परमात्मानम् (ऐक्षत्) ईक्षते ध्यानेन पश्यति ॥

भा०—परमेश्वरेण मनुष्यस्येन्द्रियाणि विषयग्राहकाणि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयोन्मुखानि निर्मितानि तस्मात्स विषयानेव पश्यति । आत्ममनःसंयोगमन्तरेणेन्द्रियैर्विषया ग्रहीतुमशक्याः । आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेणेन्द्रियं विषयेणेति तदा विषयं विजानाति । अतो ब्रह्मज्ञानस्येन्द्रियैर्विषयग्रहणमेव निरोधकम् । यः कोऽपि मुमुक्षुर्भवेत्तेन चक्षुरादीनां विषयपतनशक्तिः शनैः शिथिलीकार्या । अन्तःकरणस्था बुद्धिवृत्तयो या इन्द्रियच्छिद्रद्वारा बहिर्निस्सरन्ति तासामन्तर्मुखत्वेन निरोधे ज्ञानवर्धनाद्ध्यानतत्परः परमात्मानं ज्ञातुं शक्नोति । प्रज्ञाचक्षुषां बुद्धेस्तीव्रताया एतदेव कारणम् प्रज्ञायां बुद्धौ चक्षुषी यस्य स प्रज्ञाचक्षुः । इदं च सर्वसाधारणैरप्यनुभूतं यत्प्रज्ञाचक्षुषां बुद्धिरितरेभ्यो विशिष्टा जायते । न ह्येतेन प्रमाणेन चक्षुरोधर्गतः सम्यगपितु विषयग्रहणाभ्यासो मुमुक्षुणा शिथिलीकार्यः ॥ १ ॥

भाषार्थः—गत तृतीय वल्ली में सूक्ष्मबुद्धि से परमेश्वर देखा जाता है ऐसा कहा है सो सूक्ष्मबुद्धि के बिना न दीख पड़ने के कारण को इस वल्ली में कहने का प्रारम्भ करते हैं । (स्वयम्भूः) जिस की स्थिति बिना किसी आधार वा कारण के रहती है उस स्वतन्त्र परमेश्वर ने (खानि) कान आदि इन्द्रियों को (पराञ्चि) शब्द आदि विषयों पर गिरने रूप स्वभाव से युक्त (व्यतृणत्) बनाया है (तस्मात्) तिसी कारण मनुष्य (पराङ्) बाह्य विषय को (पश्यति) देखता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है किन्तु (न, अन्तरात्मन्) अपने भीतर की ओर लौटकर नहीं देखता। यथा (कश्चित्) कोई (आवृत्तचक्षुः) जिसने अपने नेत्र वस्त्रादि से ढांपे वा मीचे हैं ऐसा (धीरः) ध्यान-शील पुरुष (अमृतत्वम्) मोक्ष होने की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (प्रत्यगात्मानम्) अन्तःकरण में व्याप्त परमात्मा को (ऐक्षत्) ध्यानदृष्टि से देखता है ॥

भा०—परमेश्वर ने मनुष्यके इन्द्रियों को विषयों के ग्रहण करनेवाले अर्थात् विषयों की ओर झुकनेवाले बनाये हैं। इस लिये वह विषयों को ही देखता है। आत्मा और मन का संयोग हुए बिना इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण नहीं होसकता। जीवात्मा मन के साथ और मन इन्द्रिय के साथ संयुक्त हो तभी शब्दादि विषय का ज्ञान होता है। इससे इन्द्रियों से विषय का ज्ञान होना ही ब्रह्मज्ञान के न होने में कारण है। जो कोई पुरुष मुमुक्षु हो उस को चक्षु आदि इन्द्रियों की विषयों पर गिरनारूप शक्ति धीरे २ शिथिल करनी चाहिये। अन्तः-करण में स्थित जो बुद्धि की लहरें इन्द्रियों के छिद्रों द्वारा बाहर निकलती हैं उनको भीतरी ओर फेर कर रोकने में ज्ञान के बढ़ने से ध्यान में तत्पर पुरुष परमात्मा को जान सकता है। प्रज्ञाचक्षु लोगों की बुद्धि के तीव्र होने का यही कारण है अर्थात् नेत्रों की बाहर फैलनेवाली शक्ति जिस की बुद्धि में पहुँच गई वह प्रज्ञाचक्षु वा अन्धा कहाता है और यह सर्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधारण लोगों ने निश्चित अनुभव किया है कि अन्य को अपेक्षा प्रज्ञाचक्षु की बुद्धि विशेष हो जाती है। इससे यह प्रयोजन नहीं है कि नेत्र फोड़ डालने चाहिये किन्तु मुमुक्षु पुरुष को विषय ग्रहण का अभ्यास शिथिल कर देना चाहिये॥१॥

पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्। अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥ २ ॥

ये (बालाः) अज्ञाः। अज्ञो भवति वै बाल इति मनुवचनात् (पराचः) स्वशरीराद्बहिर्भूतानेव (कामान्) चन्द्रमुखीदर्शनादिविषयभोगसङ्कल्पान् (अनुयन्ति) अनुगच्छन्ति (ते) (विततस्य) प्राणिमात्रे व्याप्तस्य (मृत्योः) (पाशम्) बन्धनहेतुं देहेन्द्रियमनोबुद्धिवेदनासंघातं संयोगवियोगरूपम् (यन्ति) प्राप्नुवन्ति (अथ) ये (धीराः) विषयभोगाच्छान्ता धैर्यमापन्नाः (ध्रुवम्, अमृतत्वम्) मुक्तिदशायाः सुखं स्थालीपुलाकन्यायेन (विदित्वा) (अध्रुवेषु) अनित्यविषयसुखभोगेषु किञ्चित्सुखम् (न, प्रार्थयन्ते) सांसारिकं सुखं किमपि न याचन्ते ॥

भा०—ये मनुष्या विषयानन्द एवासक्तास्ते विषयसुखापेक्षया मोक्षसम्बन्धिबहुतरसुखाज्ञानादज्ञाः सदा दुःखबहुले जगत्येव भ्रमन्ति ये च विद्वांसस्ते मोक्षदशाया दृढं महत्सुखमनुभूय विषयभोगान्नेच्छन्ति ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(ये) जो (बालाः) अज्ञानी पुरुष (पराचः) शरीर से भिन्न वस्तुओं से होनेवाले (कामान्) चन्द्रमा के सदृश मुखवाली स्त्री को देखना आदि विषय भोग के संकल्पों के (अनुयन्ति) पीछे भागते हैं (ते) वे (विततस्य) प्राणि-मात्र में फैले हुए (मृत्योः) मृत्यु की (पाशम्) शरीर इन्द्रिय मन बुद्धि आदि के अनित्य समुदाय बन्धन के हेतु फांसी को (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अथ) इनके अनन्तर जो (धीराः) विषय भोग से शान्त धैर्य को प्राप्त विद्वान् लोग (ध्रुवम्) निश्चल (अमृतत्वम्) मुक्तिदशा के सुख को (विदित्वा) स्थालीपुलाकन्याय से जान के (अध्रुवेषु) अनित्य विषय सुख के भोगों में से किसी सुख की (न, प्रार्थयन्ते) याचना नहीं करते अर्थात् किसी प्रकार संसारके किसी सुखको नहीं चाहते॥

भा०—जो मनुष्य विषयों के आनन्द में ही आसक्त हैं उनको विषय सुख की अपेक्षा मोक्षसम्बन्धी बहुत बड़े सुख का ज्ञान न होने से अज्ञानी कहाते हैं। वे सदा बृहद्दुःखवाले जगत् में ही भ्रमा करते हैं। और जो विद्वान् लोग हैं वे मोक्षदशा के दृढ़ महत्सुख का अनुभव कर विषय भोग को नहीं चाहते ॥ २ ॥

येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शांश्च मैथुनान्।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत् ॥ ३॥

(येन) सूर्यवत्सर्वचैतन्यप्रकाशकेन सर्ववस्तुज्ञानस्य नि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्तभूतेन विज्ञानस्वरूपेण परमात्मना (एतेन, एव) सतैव मनुष्यः (रूपम्, रसम्, गन्धम्, शब्दान्, स्पर्शान्) (च) मैथुननिमित्तान् सुखप्रत्ययान् (विजानाति) (किमत्र, परिशिष्यते) न किमपि सर्वं ज्ञेयमात्मसत्तयैव विजानातीति भावः। (वै) (एतत्) सत्तात्मकं सर्वज्ञेयहेतुभूतं ब्रह्म (तत्) यत्त्वया नचिकेतसा पृष्टं यत्र देवैरपि विचिकित्सितम्। यद्धर्मादिभ्योऽन्यद्विष्णोः परमं पदं चास्ति तदिदमेव ॥

भा०—यद्यपि रूपस्य दर्शनेऽदर्शनेऽन्यथादर्शने वा चक्षुः स्वतन्त्रं तथापि तत्सूर्यादेः प्रकाशसाहाय्यमन्तरेण रूपं द्रष्टुमसमर्थं भवति। एवमत्रापि जीवात्मा पुण्यपापे कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथा कर्त्तुं वा स्वतन्त्रस्तथापि परमात्मसत्तामन्तरेण किमपि कर्त्तुं न शक्नोति। यद्यप्ययस्कान्तमन्तरेण लोहः प्रचलितुमशक्तो यथा वा रविमन्तरेण चक्षूरूपं द्रष्टुमशक्तं तथापि सूर्यायस्कान्तयोरप्रयोजकत्वादित्थं कुर्यादित्तीच्छाभावाच्च तौ फलभागिनौ न भवतस्तथैव परमेश्वरः सर्वचैतन्यजन्यक्रियाणां निमित्तोऽप्यविकारित्वहेतुना न क्वापि लिप्यते। रूपादयो विषया जगदीश्वरेणैव निर्मितास्तेषामुत्पत्तिस्थित्योः कारणं स एव। तेन विना तेषां स्थितेरभावाद्रूपादीनां ज्ञानमपि कस्यचिन्न स्यात् किमपि तद्वस्तु नास्ति यत्तत्सत्तया विना जीवात्मन उपकारि स्यात् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(येन) जैसे सूर्य जगत् के सब पदार्थों का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशक है वैसे चेतनमात्र का प्रकाशक, सब पदार्थों के ज्ञान होने में जो निमित्त उस विज्ञानस्वरूप (एतेन, एव) परमात्मा के विद्यमान रहने ही से मनुष्य (शब्दान्, स्पर्शान्, रूपम्, रसम्, गन्धम्) शब्द स्पर्श रूप रस गन्धों (च) और (मैथुनान्) मैथुन जिनका निमित्त है ऐसे सुखानुभवों को (विजानाति) जानता है तो (किमत्र, परिशिष्यते) इस जगत् में क्या जानना बाकी रहा ? क्योंकि इन्हीं शब्दादि में सब ज्ञातव्य विषय का ग्रहण हो जाता है अर्थात् जानने योग्य सब विषय को आत्मा की सत्ता से ही जान सकता है। (वै) निश्चय कर (एतत्) यह सर्वदा विद्यमान सब वस्तुओं के ज्ञान का हेतु (तत्) वही ब्रह्म है जिसको तुझ नचिकेता ने पूछा था जिसमें विद्वानों ने भी सन्देह किये जो धर्माऽधर्म से भिन्न व्यापकस्वरूप है यही ब्रह्म है ॥

भा०—यद्यपि रूप के देखने न देखने वा अन्यथा देखने में आंख स्वतन्त्र है तो भी सूर्यादि के प्रकाश की सहायता के बिना रूपको नहीं देख सकती। इसी प्रकार यहां भी जीवात्मा पुण्यपाप के करने न करने वा अन्यथा करने में स्वतन्त्र है तो भी परमात्मा की सत्ताके बिना कुछ नहीं कर सकता। यद्यपि चुम्बक के बिना लोहा चलने को समर्थ नहीं तथा सूर्य के बिना आंख रूप को नहीं देख सकती तो भी चुम्बक वा सूर्य प्रेरणा नहीं करता और न चाहता है कि यह ऐसा करे वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखे इससे वे दोनों लोहे वा नेत्र के साथ फलभागी नहीं होते वैसे ही परमेश्वर, चेतन जीव से होनेवाली सब क्रियाओं का निमित्त भी है पर विकारी न होने से कहीं लिप्त नहीं होता। रूपादि विषय परमेश्वर ने ही बनाये हैं उनकी उत्पत्ति स्थिति का वही कारण है उसके बिना उनकी स्थिति नहीं रह सकती तो उन रूपादि का ज्ञान भी किसी को नहीं हो सकता अर्थात् जगत् में कोई वस्तु ऐसी नहीं जो उसकी सत्ता के बिना जीवात्मा का उपकारी हो ॥ ३ ॥

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥४॥

उक्तार्थमेव द्रढयन्नाह-यो मनुष्यः (स्वप्नान्तम्) स्वप्नसमाप्तिं जागरितावस्थां स्वप्ननाशं वा (जागरितान्तम्) जागरितस्य समाप्तिं स्वप्नावस्थाम् (च) (उभौ) (येन) सत्तात्मकेन सह (अनुपश्यति) अनुकूलं पश्यति सः (धीरः) ध्यानशीलो विद्वान् (आत्मानम्) (महान्तम्, विभुम्) (मत्वा) ज्ञात्वा (न, शोचति) शोकाकुलो न भवति ॥

भा०—यः स्वप्नजागरितादिसर्वावस्थासु प्रकृतं ज्ञेयं परमात्मध्यानेन सहैव विजानाति। स्वप्नान्ते स्वप्नारम्भे च नियमेन तमेव ध्यायति। तस्य ध्यानशीलस्य विकृतो भयानकोऽपि दृष्टः स्वप्नः सद्यो विस्मृतो विनष्टो वा जायते प्रायस्तु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वप्नमेव न पश्यति कदाचित्पश्यति स हृत्तापको न भवति। मुख्यतो द्वे एवावस्थे स्वप्नजागरितरूपे तयोः प्रतिक्षणं यः सत्तात्मकं सर्वकृत्यसाक्षिणं सर्वावस्थास्वेकरसस्थितमात्मानं सर्वोत्कृष्टं विभुं च मनुते स शोकाकुलो न जायते ॥ ४ ॥

भाषार्थः—पूर्व कहे विषय को दृढ़ करते हैं—जो मनुष्य (स्वप्नान्तम्) स्वप्नकी समाप्ति जागरित अवस्था वा स्वप्न के नाश (च) तथा (जागरितान्तम्) जागने की समाप्ति स्वप्नावस्था (उभौ) इन दोनों को (येन) जिस विद्यमान स्वरूप परमेश्वर के साथ (अनुपश्यति) अनुकूल यथार्थ धर्मपूर्वक देखता है वह (धीरः) ध्यानशील विद्वान् (आत्मानम्) ईश्वर को (महान्तम्) सर्वोत्कृष्ट (विभुम्) व्यापक (मत्वा) जानके (न, शोचति) शोकसे व्याकुल नहीं होता ॥

भा०—जो स्वप्न जागरितादि सब अवस्थाओं में प्रसंग प्राप्त जानने योग्य विषय को परमात्मा के ध्यान के साथ ही जानता तथा सोने के आरम्भ में नियम से उसी का ध्यान करता है उस ध्यानशील पुरुष का बुरा भयानक देखा हुआ स्वप्न भी शीघ्र नष्ट होता अर्थात् भूल जाता है. ध्यानी पुरुष प्रायः स्वप्न ही नहीं देखता यदि कभी देखे तो उससे दुःख नहीं होता। मुख्यकर स्वप्न जागरित दो ही अवस्थायें हैं उनमें जो प्रतिक्षण विद्यमान सर्व कर्मसाक्षी सब अवस्थाओं में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकरस स्थित परमात्माको सर्वोत्तम व्यापक मानता है वह शोक से दुःखी नहीं होता ॥ ४ ॥

य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् । ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥ ५ ॥

(यः) पुरुषः (मध्वदम्) मधु मिष्टं कर्मफलमत्ति स मध्वत् तम् (जीवम्) प्राणधारिणम् (इमम्) देहाभिमानिनम् (आत्मानम्) (वेद) तस्य जीवस्य (अन्तिकात्) चेतनत्वेन समीपवर्तिनम् (भूतभव्यस्य) अतीतानागतयोः (ईशानम्) स्वामिनमधिष्ठातारम्परमात्मानं च वेद स विवेकी (ततः) ज्ञानात् (न, विजुगुप्सते) न ग्लायति न च कुत्सितो भवति (एतद्वै, तत्) एतदेव तज्ज्ञानफलं यत्त्वया नचिकेतसा पृष्टम् ॥

भा०—केवलेन जीवात्मज्ञानेन परमात्मज्ञानेन वा मनुष्यः कृतकृत्यो न भवत्यपि तु यदा स्वात्मविज्ञानपुरस्सरं स्वोपकारिणं पितरं सर्वसुखहेतुं सर्वसाक्षिणं क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टं सर्वदा सर्वाधीशं स्वामिनं विजानाति तदा नाधोगमनमर्हति । एतदेव शान्तेः परमं स्थानम् ॥ ५ ॥

भावार्थः—(यः) जो पुरुष (मध्वदम्) रोचक कर्मफलों के भोगनेवाले (जीवम्) प्राणों के धारक (इमम्) इस देह के अभिमानी (आत्मानम्) जीवात्मा को (वेद) जानता और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस जीव के (अन्तिकात्) चेतन होने से निकटवर्त्ती (भूत-भव्यस्य) भूत में हुए भविष्यत् में होनेवाले जगत् के (ईशानम्) स्वामी अधिष्ठाता परमात्मा को जानता है वह विज्ञानी पुरुष (ततः) उस ज्ञान के होने से फिर (न, विजुगुप्सते) ग्लानि वा निन्दा को प्राप्त नहीं होता। (एतद्वैतत्) यही उसके ज्ञान का फल है जो तुझ नचिकेता ने पूछा था ॥

भा०—केवल जीवात्मा वा परमात्मा के ज्ञान से मनुष्य कृतकृत्य नहीं हो सकता किन्तु जब अपने आत्मस्वरूप को जान के अपने उपकारी, रक्षक, पिता, सब सुखों के हेतु, सब के साक्षी अविद्यादि क्लेश और कर्मफलों की वासना से न लिप्त हुए सब काल में सबके स्वामी परमेश्वर को जानता है तब अधोगति के योग्य नहीं होता यही शान्ति की मुख्य स्थिति (हद्द) है ॥ ५ ॥

यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत। गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत। एतद्वैतत्॥६॥

(यः) सदसद्विवेकी मुमुक्षुः पुरुषो जीवात्मा (अद्भ्यः) प्राणेभ्यः। आपो वै प्राणा इति शतपथब्राह्मणे (पूर्वम्) (अजायत) प्रलयान्धकारादुत्थितः प्रादुर्बभूव सः (तपसः) तैजसप्रकाशात् (पूर्वम्, जातम्) जगत्सर्जनाय प्रकटम् (व्यपश्यत) विशेषतया पश्यति जानाति (यः) यश्च (गुहाम्) बुद्धावन्तःकरणे (प्रविश्य) (तिष्ठन्तम्) (भूतेभिः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चभूतैः सह व्याप्तं परमेश्वरं विपश्यति तदाकारचेतास्तमेव प्रतिक्षणं ध्यायति। (एतद्वै तत्) तदुब्रह्मैतदेव यद्विद्वांस एव जानन्ति ॥

भा०—सर्गारम्भे परमात्मा सर्वं निर्मातुमादावीक्षत इत्येतत्सर्वस्मात्पूर्वं तस्य प्राकट्यम्। ततः पश्चात्तमोनुदः प्रकाशो जायते तस्यैवाकाश इति नाम तस्मात्पूर्वमेव परमेश्वरो व्यज्यते ततोऽखिलं जगन्निर्माय तस्मिन्नन्तर्यामितया प्रविश्य तिष्ठति तं प्राणात्परः सूक्ष्मः प्राणाभावेपि सत्तात्मको जीवात्मा सर्वभूतैः सहावस्थितं स्वान्तःकरणे पश्यति। एतदेव तस्य ज्ञानं विदुषा कार्यमिति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यः) सत्यासत्य का विवेक करनेवाला मुमुक्षु जीवात्मा (अद्भ्यः) प्राणों से (पूर्वम्) पहिले ही (अजायत) प्रलयरूप अन्धकार से प्रकट हुआ वह (तपसः) तेजः स्वरूप प्रकाश से (पूर्वम्) पहिले (जातम्) जगत् को उत्पन्न प्रकट करने के अर्थ हुए परमेश्वर को (व्यपश्यत) विशेष कर देखता है अर्थात् जानता है और (यः) जो विद्वान् (गुहाम्) बुद्धि में (प्रविश्य) प्रवेश कर (तिष्ठन्तम्) स्थित हुए परमात्मा को (भूतेभिः) पञ्चभूतमय शरीर वा संसार के साथ व्याप्त जानता है अर्थात् एकाग्रचित्त होकर प्रतिक्षण उसी का ध्यान करता है (एतद्वै तत्) वह ब्रह्म यही है जिसको विद्वान् लोग ही जानते हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा सबको रचने के अर्थ पहिले अनुसन्धान करता है यह सबसे पहिले उसकी प्रकटता है। तिस पीछे अन्धकारनाशक प्रकाश उत्पन्न होता है उसीका नाम आकाश है उससे पहिले परमेश्वर प्रकट होता है तिस पीछे सब जगत् को बना उसमें अन्तर्यामी रूप से प्रवेश कर स्थित है। उसको प्राण से सूक्ष्म प्राण के अभाव में भी विद्यमान जोवात्मा सब भूत पृथिव्यादि के साथ स्थित अपने अन्तःकरण में देखता है यही उसका ज्ञान विद्वान् को करना चाहिये ॥ ६ ॥

या प्राणेन सम्भवत्यदितिर्देवतामयी । गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत । एतद्वैतत् ॥७॥

(या) (देवतामयी) दिव्यज्ञानप्रकाशस्वरूपा ब्रह्म ज्ञातुं शक्ता सूक्ष्मा (अदितिः) स्थायिन्यखण्डिता मातेव कल्याणप्रदा श्रद्धात्मिका बुद्धिः (प्राणेन) प्राणायामाभ्यासेन (सम्भवति) (या) (भूतेभिः) भौतिकशरीरेण साकमेव (व्यजायत) उत्पद्यते स्वयं च पुरुषात्परमेश्वराद्विलक्षणा प्रकृतिरूपा ताम् (गुहाम्) अन्तःकरणे (प्रविश्य) (तिष्ठन्तीम्) यो विद्वान् सेवते (एतद्वैतत्) स एव तदेतद्ब्रह्म ज्ञातुं शक्त इति ॥

भा०—प्राणायामाभ्यासेनेन्द्रियाणां दोषदाहाद्बुद्धिःसूक्ष्मा सत्त्वगुणात्मिका ब्रह्मज्ञानाभिमुखा मातेव कल्याणप्रदा प्रका-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरूपा जायते । एवंभूतामन्तःकरणवृत्तिं निष्पादयितुं यो विद्वान् प्रयतते स एव तद्ब्रह्म ज्ञातुं शक्तः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(या) जो (देवतामयी) उत्तमज्ञान प्रकाशरूप ब्रह्म के जानने को समर्थ (अदितिः) स्थित रहनेवाली माता के तुल्य कल्याणकारिणी अखण्डित श्रद्धारूप सूक्ष्म बुद्धि (प्राणेन) प्राणायाम के अभ्यास से (सम्भवति) उत्पन्न होती (या) जो बुद्धि (भूतेभिः) भौतिक शरीर के साथ में ही (व्यजायत) प्रकट होती और वह परमेश्वर से विलक्षण प्रकृतिरूप है उस (गुहाम्) अन्तःकरण में (प्रविश्य) प्रवेश कर (तिष्ठन्तीम्) स्थित हुई बुद्धि को जो विद्वान् सेवन करता है (एतद्वैतत्) वही उस ब्रह्म को जान सकता है ॥

भा०—प्राणायामके अभ्याससे इन्द्रियोंके दोष नष्ट होते हैं, इससे सत्त्वगुण में स्थित ब्रह्मज्ञान की ओर झुकनेवाली माता के तुल्य कल्याणकारिणी प्रकाशरूप सूक्ष्मबुद्धि उत्पन्न होती है। अन्तःकरणस्थ बुद्धि को इस प्रकार सुधारने के लिये जो विद्वान् प्रयत्न करता है वही ब्रह्म को जान सकता है ॥ ७ ॥

अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः । दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः । एतद्वैतत् ॥ ८ ॥

(अरण्योः) द्वयोः काष्ठयोर्मध्ये (निहितः) अन्तर्व्याप्तो यथा मन्थनेन (अग्निः) निस्सरति तथा (जागृवद्भिः) स-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्त्वगुणस्थैः । सत्त्वं जागरणकारणमिति श्रुतेः (हविष्मद्भिः) ध्यानभावनातत्परैः (मनुष्येभिः) मनुष्यैः (जातवेदाः) जातं वेदो वेदरूपं ज्ञानमस्मात्स परमेश्वरो ध्याननिर्मथनाभ्यासेन द्रष्टव्यः (गर्भिणीभिः) (सुभृतः) सुष्ठु धृतः (गर्भ इव) धारणीयः (दिवेदिवे) प्रतिदिनं वेदमन्त्रपाठेन तदर्थानुसन्धानेन च (ईड्यः) स्तोतव्यः । (एतद्वैतत्) एतदेव ब्रह्मज्ञानस्य साधनं विज्ञेयम् ॥

भा०—यथा काष्ठद्वये व्याप्तोऽप्यग्निर्मन्थनमन्तरेण न निस्सरति तथैवान्तःकरणे व्याप्तोऽपि जगदीश्वरो योगाभ्यासेन विना न प्रकटो भवति । यथा नार्य्यो गर्भाशये गर्भं विज्ञाय प्रतिदिनं तद्गतमानसा गर्भं धरन्ति पुष्णन्ति च तथैव जिज्ञासुभिर्ध्यानयुक्तैः सत्त्वगुणप्रधानचेतोभिर्भूत्वाऽस्मद्धृदि व्याप्तोऽवस्थित ईश्वर इति मत्वा विस्मृतिं विहाय धारणीयः । अहर्निशं स्तोतव्य उपास्यश्च ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जैसे (अरण्योः) दो लकड़ियों के बीच (निहितः) भीतर व्याप्त भी (अग्निः) अग्नि मथने से निकलता है वैसे (जागृवद्भिः) तमोगुण के कार्य निद्रा आलस्य प्रमाद से रहित सत्त्वगुण में स्थित (हविष्मद्भिः) ध्यान की भावना में तत्पर (मनुष्येभिः) मनुष्यों को (जातवेदाः) वेद रूप ज्ञान जिससे उत्पन्न हुआ वह परमेश्वर बार २ ध्यान के अभ्यास से देखने योग्य है (गर्भिणीभिः) गर्भवती स्त्रियां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे (सुभृतः) अपने गर्भ को अच्छे प्रकार स्मरण रख के धारण करतीं वैसे धारण करने योग्य और (दिवेदिवे) प्रति दिन वेदमन्त्रों के पाठ वा अर्थविचार से (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है (एतद्वैतत्) इसी को ब्रह्मज्ञान का बड़ा साधन जानना चाहिये ॥

भा०—जैसे दो लकड़ियों में व्याप्त भी अग्नि बिना मथे नहीं निकलता वैसे ही अन्तःकरण में व्याप्त भी परमेश्वर योगाभ्यास किये बिना प्रकट नहीं होता। जैसे स्त्रियां गर्भाशय में गर्भ को जान के प्रतिदिन उसमें चित्त रखतीं और यत्न से धारण पोषण करती हैं वैसे ही जिज्ञासु ध्यानयुक्त सत्त्वगुण में ही जिनका चित्त स्थिर है उन पुरुषों को उचित है कि हमारे हृदय में अवस्थित ईश्वर है ऐसा मान सदा स्मरण रक्खें कि हमारा हृदय ईश्वर के बिना शून्य नहीं ऐसे दिन रात धारण कर स्तुति वा उपासना करें ॥८॥

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति । तन्देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन । एतद्वैतत् ॥९॥

(सूर्यः) (यतः) यत्कृतनियमात्, यद्दत्तप्रकाशाद्वा (च) (उदेति) (यत्र, च) प्रलयावसरे (अस्तम्) (गच्छति) (तम्) ईश्वरम् (सर्वे) (देवाः) सदसद्विवेकशीला विद्वांसः प्रकाशादिदिव्यगुणयुक्ताः सूर्यादयः पदार्था वा (अर्पिताः) प्राप्ता-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तदाधारास्तिष्ठन्तीति यावत्। स्वार्थे णिच् (उ) (तत्) ब्रह्म (कश्चन) कश्चिदपि (न) (अत्येति) तन्नियमविरुद्धं कर्त्तुं न शक्नोति (एतद्वै, तत्) ॥

भा०—यः सूर्यादिलोकलोकान्तराणामुदयास्तादिनियतक्रियाणां नियामकः कारणम्। तदाश्रयेणैव चराचरं जगत्स्वस्वनियमान्न विचलति तदेतदेव ब्रह्म विज्ञातव्यं यत्त्वया पृष्टमिति॥

भाषार्थः—(सूर्यः) सूर्यलोक (यतः) जिसके नियम वा जिसके दिये प्रकाश से (च) ही (उदेति) उदय को प्राप्त होता (यत्र, च) और प्रलय समय में जिसमें (अस्तम्) लीन (गच्छति) हो जाता है (तम्) उस ईश्वर को (सर्वे) सब (देवाः) सत् असत् के विवेकी विद्वान् लोग वा प्रकाशादि दिव्यगुणों से युक्त सूर्यादि पदार्थ (अर्पिताः) प्राप्त हैं अर्थात् उसके आधार में स्थित हैं (उ) और (तत्) उस ब्रह्म का (कश्चन) कोई (न, अत्येति) उल्लंघन नहीं करता अर्थात् उसके नियम से विरुद्ध कोई नहीं चल सकता (एतद्वै तत्) इसी ब्रह्म को जानो ॥

भा०—जो सूर्यादि लोक लोकान्तरों के उदय अस्त आदि नियत कामों का नियन्ता कारण है उसी के आश्रय से जड़ चेतन सब जगत् अपने २ नियम से चलायमान नहीं होता उसी ब्रह्म को जानना चाहिये जिस को तुझ नचिकेता ने पूछा था ॥ ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह । मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥ १० ॥

(यत्, एव) ब्रह्म (इह) अस्मिन् जन्मनि सर्वस्य पालकं धारकं प्रकाशकं चास्ति (तत्, अमुत्र) (यत्, अमुत्र) (तत्, अनु, इह) यस्यास्मिञ्जन्मन्यनुकूलं ब्रह्मास्ति तस्य जन्मान्तरेऽपि तादृगेव भवति (यः) पुरुषः (इह) ब्रह्मणि (नानेव) भिन्नत्वमिव (पश्यति) (सः) (मृत्योः) (मृत्युम्) (आप्नोति) मुहुर्मुहुर्जन्ममरणे एवाप्नोति ॥

भावार्थः—यथा प्राणिनिकायस्थजीवस्यावस्थाभेदेन तस्मिन्नेव कलेवरे जन्मान्तरस्य जात्यन्तरस्य वा प्राप्तौ गुणकर्मस्वभावा भिद्यन्ते न तथा परमात्मनः स तु सदैकरसः कूटस्थः सन् मित्रारिभेदराहित्येन स्वाभाविकशक्त्या सर्वान् पालयति धारयति च जिज्ञासुना च सदैकरसं ब्रह्मेत्यनुसन्धेयम् । मोक्षाय घटमानोऽपि यः कश्चित्सदेकरसे ब्रह्मणि परिणामवादादिना नानात्वं स्वीकरोति यद्वाऽस्माकमुपास्यं शुद्धं ब्रह्मान्यमतवादिनां द्वीपान्तरस्थलोकान्तरस्थानामुपास्यमतो विलक्षणमिति भेदमनुसन्धत्ते यद्वा शरीरं धृत्वाऽवस्थादिभेदेनान्यद्भवतीति ध्यायति न स मुक्तो भवितुमर्हत्यपि तु मुहुर्मुहुर्जन्ममरणे एवाप्नोति । अत्रैवपदेन सूच्यते य उपाधिभेदेन कल्पितमपि नानात्वं ब्रह्मणि पश्यति सोऽप्यविद्याग्रस्त एव । तेन जीवाभिन्नं ब्रह्म ब्रह्माभिन्नो जीव इति वदन्तः परास्ताः ॥ १० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्, एव) जो ही ब्रह्म (इह) इस जन्म में सबका धारण पालन वा प्रकाश करनेवाला है (तत्, अमुत्र) वही जन्मान्तर में तथा (यत्, अमुत्र) जो जन्मान्तर में है (तत्) वह (अनु, इह) यहां है अर्थात् इस जन्म में जिसके अनुकूल ब्रह्म है उस के लिये जन्मान्तर में भी वैसा ही रहता है (यः) जो पुरुष (इह) इस ब्रह्म में (नानेव) भिन्न भाव कीसी (पश्यति) दृष्टि करता है (सः) वह (मृत्योः) मृत्यु से (मृत्युम्) मृत्यु को (आप्नोति) बार २ पाता है ॥

भा०—जैसे चेतन शरीर में रहनेवाले जीव के अवस्था-भेद से उसी शरीर में वा अन्य जन्म तथा अन्ययोनि की प्राप्ति में गुणकर्म स्वभाव बदल जाते हैं वैसे परमेश्वरके नहीं बदलते। वह तो सदा एकरस रहता हुआ शत्रु मित्र भेद से रहित है। न उस का कोई शत्रु वा मित्र न वह किसी का शत्रु वा मित्र होता है किन्तु सदा अपनी स्वाभाविक शक्ति से सब का धारण वा पालन करता है। जिज्ञासु पुरुष को चाहिये कि ब्रह्म एकरस है ऐसा ध्यान करे। जो कोई मोक्षके लिये यत्न करता हुआ भी पुरुष परमेश्वर में परिणामवाद (कारण से कार्य के समान अन्य २ रूप बनने) आदि से विलक्षण दो होना मानता है अथवा यह हमारा उपास्य ब्रह्म शुद्ध है तथा अन्य मतवादी वा अन्यद्वीप वा लोकके निवासियों का उससे विलक्षण है ऐसा भेद जानता है। यद्वा शरीर धारण कर अव-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थादि के भेद से ब्रह्म अन्य २ होता ऐसा ध्यान करता है वह मुक्त नहीं हो सकता किन्तु बार २ जन्ममरण को ही प्राप्त होता रहता है इस मन्त्र में इव पद से यह प्रतीत होता है कि जो उपाधि भेद से कल्पना किये भेद को भी ब्रह्म में देखता है वह भी अविद्या से युक्त ही है। इससे सिद्ध हुआ कि जो लोग जीव से अभिन्न ब्रह्म वा ब्रह्म से अभिन्न जीव है ऐसा मानते हैं उनका मत निर्मूल है ॥ १० ॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किञ्चन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥११॥

(इदम्) ब्रह्म (मनसैव) शास्त्रसंस्कारेण शुद्धया सूक्ष्मप्रज्ञयैव [मनोऽत्र बुद्धिरित्यभिप्रेतम् । न सङ्कल्पविकल्पात्मिका वृत्तिः] (आप्तव्यम्) (इह) ब्रह्मणि (किञ्चन) किमपि (नाना) भेदभावो भिन्नं भिन्नं दर्शनं (नास्ति) (यः) (इह) (नानेव) (पश्यति) (सः, मृत्योः, मृत्युम्, गच्छति) ॥

भा०—ब्रह्मज्ञानस्यानेके उपाया न सन्ति किन्तु शास्त्रसिद्धान्तसंस्कृतध्यानसमाधिसम्पन्नशुद्धमनीषयैव कश्चित्सदैकरसं ब्रह्म ज्ञातुं शक्तः । अन्ये चोपाया बुद्धिशोधनहेतवः । यश्च नानोपायान् ब्रह्मणि भेदं च पश्यति तैश्च ब्रह्मज्ञानासम्भवात्तज्ज्ञानमन्तरेण मुक्तावसत्यां पुनः पुनर्जन्ममरणप्रवाह एव स पतति ॥ ११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(इदम्) इस ब्रह्म को (मनसैव) शास्त्राभ्यास से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ही (आप्तव्यम्) प्राप्त होना चाहिये (इह) इस ब्रह्मज्ञान विषय में (किञ्चन) कुछ भी (नाना) भेदभाव अर्थात् भिन्न २ अवयवादि दीखना (नास्ति) नहीं है (यः) जो पुरुष (इह) इस विषय में (नानेव) अनेकता है (पश्यति) ऐसा देखता जानता है (सः, मृत्योः मृत्युम्, गच्छति) वह मृत्यु से फिर मृत्यु को प्राप्त होता है ।

भा०—ब्रह्मज्ञान के अनेक उपाय नहीं हैं किन्तु शास्त्रीय सिद्धान्त से संस्कृत तथा ध्यान समाधि में लगी शुद्ध बुद्धि से ही कोई जन एक रस ब्रह्म को जान सकता है। अन्य उपाय बुद्धि शोधने के हैं। जो पुरुष अनेक प्रकार के उपायों तथा ब्रह्म में भेद को देखता है उसको ज्ञान होना असम्भव है। ज्ञान के विना मुक्ति न होने से बार २ जन्ममरण के प्रवाह में पड़ा रहता है ॥ ११ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति । ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते । एतद्वै तत् ॥ १२ ॥

निर्मलदर्पणे रूपमिवास्मिन्नेव शरीरस्थान्तःकरणे परमात्मोपलभ्यत इत्युक्तम् स कस्मिन् प्रदेशे तिष्ठतीत्युच्यते (मध्ये) (आत्मनि) शरीरे (अङ्गुष्ठमात्रः) अङ्गुष्ठपरिमाणं हृदयरूपं वेश्म यत्र लिङ्गशरीरेण सार्कं जीवस्तिष्ठति तत्रैव ध्यानेन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मोपलभ्यतेऽतोऽङ्गुष्ठमात्रस्थानोपलभ्यत्वादङ्गुष्ठमात्र इत्युच्यते (पुरुषः) सर्वत्र पूर्णो व्याप्तः (तिष्ठति) (भूतभव्यस्य) अतीतानागतसर्ववस्तुजातस्य (ईशानः) अध्यक्षोस्ति (ततः) तस्मादात्मनः कोऽपि (न, विजुगुप्सते) न ग्लायति दौर्मनस्यं वा कस्यापि न भवति यदि तदनुकूलमाचरति (एतद्वै, तत्) यत्त्वया पृष्टं तदेतदेव ब्रह्मास्तीति विजानीहि ॥

भा०—प्रत्यगात्मदृष्ट्या ध्यानशीलेन परमात्मा ज्ञातुं शक्य इति बहुश उक्तम् । यद्यपि कालत्रयस्थस्य जगतः स्वामी सर्वत्र व्याप्तः परमात्मास्ति तथापि दर्पणे रूपमिव शुद्धान्तःकरणे जिज्ञासुना ध्यानेन द्रष्टुं शक्यः । यदा कश्चिन्निषिद्धं कर्म कर्तुं मनः कुरुते तदा स भयमुत्पादयति यदा च शुभकर्माराब्धुमिच्छति तदा चेतः प्रसादयति। स एव हृदयान्तर्यामी परमात्मास्ति यदा मनुष्यस्तदनुकूलमाचरति तदा तस्य विषादो नैव जायते किन्तु सदानन्दो भवति ॥ १२ ॥

भावार्थः—निर्मल दर्पण में जैसे रूप दीखता है वैसे इसी शरीरस्थ शुद्ध अन्तःकरण में परमात्मा का ज्ञान होता है यह पहिले कई बार कहा है सो वह शरीर के किस स्थल में रहता है सो कहते हैं—(आत्मनि) शरीर में (अङ्गुष्ठमात्रः) हृदय में स्थित [अंगूठे के बराबर हृदयरूप घर में जहां लिङ्ग शरीर सहित जीवात्मा रहता है वहीं ध्यान करनेसे परमात्मा प्राप्त होता है इसलिये अंगुष्ठमात्र स्थानमें प्राप्त होनेसे अंगुष्ठ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र कहा गया] (पुरुषः) सर्वत्र परिपूर्ण व्याप्त परमात्मा (आत्मनि) शरीर के (मध्ये) बीच में (तिष्ठति) विराजमान है वह (भूतभव्यस्य) भूत भविष्यत् में होनेवाले सब पदार्थों का (ईशानः) स्वामी है (ततः) उसके अनुकूल आचरण करनेवाला (न, विजुगुप्सते) ग्लानि को प्राप्त नहीं होता अर्थात् उसका चित्त नहीं बिगड़ता (एतद्वै तत्) जिस को तुझ नचिकेता ने पूछा था वह यही ब्रह्म है ऐसा तू जान ॥

भा०—भीतर को दृष्टि करके ध्यानशील पुरुष परमेश्वर को जान सकता है यह कई बार पहिले कहा है। यद्यपि तीनों काल में होनेवाले जगत् का स्वामी सर्वत्र व्याप्त परमात्मा है तो भी दर्पण में रूप के तुल्य जिज्ञासु को ध्यान के साथ शुद्धान्तः करण में देखने योग्य है। जब कोई निषिद्ध बुरा कर्म करना चाहता है तब वह भय उत्पन्न करता और जब शुभ कर्मका आरम्भ करना चाहता है तब चित्तको प्रसन्न करता वही हृदय का अन्तर्यामी परमात्मा है। जब मनुष्य उसके अनुकूल आचरण करता है तब उस मनुष्य को किसी प्रकार का खेद नहीं होता किन्तु सदा आनन्द युक्त रहता है॥ १२ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः। ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः। एतद्वै तत्॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अङ्गुष्ठमात्रः) स एषांगुष्ठमात्रस्थानो यः (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे विशेषण शरीरैकदेशे हृदये वा शयानो व्याप्तः परमेश्वरः (अधूमकः) अधूमकं धूमरहितं निर्मलम्। लिंग-व्यत्ययः। ज्योतिरिव ज्ञानप्रकाशमयः (भूतभव्यस्य) ईशानः (स एव) (अद्य) सर्वाध्यक्षः (स, उ, श्वः) स एवागामिनि दिवसेऽपि सर्वस्वामी भविता (एतद्वै तत्) तदेतदेव ब्रह्मास्ति॥

भा०—यथा लोके राज्याद्यधिकारिणां स्थितिरनित्यास्ति कश्चिन्म्रियते तदाऽन्याध्यक्षस्तत्र तिष्ठति निर्बलं पराजित्य बलवान् वाधिकारी भवति। एवं सर्वाधिकारिणां तारतम्यानुगतो व्यत्ययो दृश्यते। तथा ज्ञानप्रकाशस्वरूपस्य सदैकरसस्यासाम्यातिशयैश्वर्यवतस्सर्वोपरिबलवतः परमेश्वरस्याधिकारे न कश्चित्कदाचित्तिष्ठति स्थातुमर्हति वा स्वकार्यस्य सर्वदा स्वयमेवाध्यक्षः सोऽस्ति॥ १३॥

भाषार्थः—(अङ्गुष्ठमात्रः) वही अंगूठाभर स्थान में प्राप्त होने योग्य (पुरुषः) ब्रह्माण्ड वा विशेष कर शरीरस्थ हृदय में व्याप्त परमेश्वर (अधूमकः) धूमरहित निर्मल (ज्योतिरिव) ज्योति के समान ज्ञानप्रकाशस्वरूप (भूतभव्यस्य) भूतभविष्यत् का (ईशानः) स्वामी (स, एव) (अद्य) वही आज सबका अध्यक्ष है (स, उ, श्वः) और वही कल रहेगा (एतद्वै, तत्) वह यही ब्रह्म है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०-जैसे लोक में राज्याधिकारियों की स्थिरता अनित्य है कोई मर जाता है तो उसके अधिकार पर दूसरा नियत किया जाता अथवा निर्बल राजा को बलवान् हरा के अधिकारी बन बैठता है इसी प्रकार संसार में सब अधिकारों की बदली होती रहती है वैसे ही ज्ञानप्रकाशस्वरूप सदा एकरस सर्वोपरि ऐश्वर्यवान् तथा बलवान् परमेश्वर के अधिकार पर कभी कोई स्थित न होता तथा न होने योग्य है अर्थात् वह एक ही स्वयं सदा अपने काम में का अधिष्ठाता है ॥१३॥

यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति । एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥ १४ ॥

(यथा) (दुर्गे) विषमप्रदेशे (वृष्टम्) (उदकम्) (पर्वतेषु) निम्नप्रदेशेषु (विधावति) (एवम्) (धर्मान्) धर्मितः (पृथक्) (पश्यन्) (तानेव) धर्मानेव (अनुविधावति) पश्चाद्गच्छति ॥

भा०-धर्मधर्मिणोः समवायः सम्बन्धः । नित्यस्य धर्मिणो धर्मा अपि नित्या भवितुमर्हन्ति । अतो यो वदेन्नाहं किमपि करोमि शरीरमेव सर्वं करोति तन्मतमशास्त्रीयम् । चेतनधर्मास्तमन्तरेण क्वापि न भवितुमर्हन्ति किन्तु स धर्मी तानेव धर्मानुनुगच्छति । अतः पृथक् न पश्येत् । किन्तु चेतनस्य के धर्माः स्वाभाविकाः के च सांसर्गिका इति विवेचना कार्या॥१४॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (दुर्गे) विषय ऊँचे नीचे स्थल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में (वृष्टम्) वर्षा (उदकम्) जल (पर्वतेषु) नीचे स्थलों में (विधावति) भागता है (एवम्) इसी प्रकार (धर्मान्) गुणों को गुणी से (पृथक्) भिन्न (पश्यन्) देखता हुआ (तानेव) उन्हीं गुणों का (अनुविधावति) अनुगामी होता है ॥

भा०—धर्म धर्मी का समवाय (नित्य) सम्बन्ध है। नित्य धर्मी के धर्म भी नित्य ही होते हैं इस लिये जो कहे कि मैं कुछ नहीं करता किन्तु शरीर ही सब करता है उसका मत शास्त्रविरुद्ध है क्योंकि चेतन के गुण उसके बिना शरीरादि में नहीं रह सकते किन्तु वह धर्मी उन धर्मों का अनुगामी रहता है इसलिये धर्मों को पृथक् न देखे। किन्तु चेतन के कौन २ स्वाभाविक और कौन २ संयोगी धर्म हैं इसकी विवेचना अवश्य करनी चाहिये ॥ १४ ॥

यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥ १५ ॥

हे (गौतम) गोतमवंशोत्पन्न नचिकेतः ! (यथा) शुद्धे समे प्रदेशे (शुद्धम्) (आसिक्तम्) समन्तात्सिक्तम् (उदकम्) (तादृगेव) तदाकारं शुद्धमेव (भवति) (एवम्, विजानतः, मुनेः) विजानतोऽल्पभाषिणो ज्ञानिनः (आत्मा) (भवति)।

भा०—यश्च धर्मिंत आत्मनो धर्मान् पृथक् न पश्यति किन्तु संसर्गदोषान् विहाय स्वात्मनो निर्मलत्वादिरूपान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविकधर्मानन्तःकरणेऽनुसन्धत्ते तस्य शुद्धे सिक्तं जलमिव ज्ञानरूपे शुद्धवारिण्यन्तःकरणे ध्यानेन निमज्ज्यात्मापि शुद्ध एव भवति। न त्वशुभमाचरन्नपि न मां कर्माणि लिम्पन्ति नाहं कर्त्तेति मत्वा कश्चिच्छुद्धो भवितुं नार्हति ॥ १५ ॥

इति भीमसेनशर्मकृते कठोपनिषद्भाष्ये चतुर्थी वल्ली समाप्ता ॥

भाषार्थः—हे (गौतम) हे गोतम वंशी नचिकेता ! (यथा) जैसे (शुद्धे) सम चौरस प्रदेश में (शुद्धम्) शुद्ध निर्मल (आसिक्तम्) अच्छे प्रकार सींचा हुआ (उदकम्) जल (तादृगेव) प्रदेशाकार शुद्ध ही (भवति) होता है (एवम्) इसी प्रकार (विजानतः) विज्ञानवान् (मुनेः) अल्पभाषी ज्ञानी पुरुष का (आत्मा) आत्मा शुद्ध ही (भवति) होता है ॥

भा०—जो पुरुष धर्मी आत्मासे धर्मोंको पृथक् नहीं देखता किन्तु संयोगी दोषों को छोड़कर अपने आत्मा के निर्मल पन आदि स्वाभाविक धर्मों को अन्तःकरण में अनुसन्धान करता है उसके शुद्धस्थल में सींचे जल के तुल्य अन्तःकरणके ज्ञानरूप शुद्ध जल में ध्यान से बुड़की लगाके शुद्ध ही होजाता है। कोई पुरुष बुरे कर्म का आचरण करता हुआ भी 'मुझको कर्म नहीं लगते' 'मैं कर्त्ता नहीं' ऐसा मान कर शुद्ध नहीं हो सकता है ॥ १५ ॥

यह चौथी वल्ली समाप्त हुई ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमी वल्ली प्रारभ्यते ॥

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः । अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते । एतद्वै तत् ॥१॥

एतस्यां वल्ल्यामादितोऽन्तरात्मविज्ञानं वक्तुं प्रक्रमते— (अवक्रचेतसः) अवक्रमकुटिलं चेतो विज्ञानमस्य तथाभूतस्य (अजस्य) कुतश्चित्कारणादनुत्पन्नस्यानादेर्नित्यस्य जीवात्मनः (एकादशद्वारम्) शिरसि सप्त पायूपस्थनाभयस्त्रीण्यधस्थानि मूर्द्धन्येकमित्येकादशछिद्रसम्पन्नम् (पुरम्) पत्तनमिव राजस्थानीयं भोगसाधनं शरीरम् (अनुष्ठाय) वर्णाश्रमधर्मकृत्यपूर्वकं संसेव्य, सर्वं कर्त्तव्यं कर्म मया कृतमिति ध्यायन् (न, शोचति) ऋणत्रयात् (विमुक्तश्च) शरीरादपि (विमुच्यते) पुनर्न जायते (एतत्, वै, तत्) एतदेव तद्विज्ञानस्य फलम् ॥

भा०—यथा यस्मिन् परितः कृतप्राकारे पत्तने गमनागमनाय द्वाराणि भवन्ति तत्सम्यग्विज्ञानसम्पन्नः पुरस्वामी राजा राजधर्मपुरस्सरं संसेवते धर्मानुकूलवर्त्ती सन् शोकाकुलो न जायते तथैव परित्यक्तमिथ्याज्ञानः सम्यग्दर्शनसम्पन्नः कार्यसाधकैकादशच्छिद्रसहितं नगरस्थानीयं शरीरमाश्रमत्रये धर्मानुकूलं संसेव्य चतुर्थाश्रमस्थः पुरुषो न शोचति शरीरं विहाय मुक्तश्च भवत्येतदेव ब्रह्मज्ञानस्य फलम् ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—अब पाँचवीं वल्ली का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रारम्भ से अन्तरात्मा जीवके जानने का उपाय कहते हैं (अवक्रचेतसः) जिसका कुटिल वा उलटा ज्ञान नहीं उस (अजस्य) किसी कारण से न उत्पन्न होने वाले अनादि नित्य जीवात्मा राजा के (एकादशद्वारम्) ग्यारह दरवाज़े (आँख के दो, नाक के दो, कान के दो, एक मुख का, गुदा, लिङ्ग दो नीचे, एक नाभि, एक मस्तक में ये ग्यारह छिद्ररूप शरीर में द्वार हैं) वाले (पुरम्) शरीररूप नगरको (अनुष्ठाय) वर्णाश्रम धर्म को व्यवस्था वा नियम सहित सेवन करके (अपना कर्त्तव्य मैंने कर लिया ऐसा ध्यान करता हुआ) (न, शोचति) शोच नहीं करता और ऋषि, देव और पितृसम्बन्धी तीनों ऋणों से (विमुक्तश्च) छूटा अर्थात् तीन आश्रम धर्मोंके सेवन से तीनों ऋण चुका के शरीर से भी (विमुच्यते) छूट जाता है (एतद्वै, तत्) सो यही ब्रह्मज्ञान का फल है ॥

भा०—जैसे जिस नगर में सब ओर से परकोटा खिंचा हो और आने जानेके लिये कई दरवाज़े नियत कर दिये जावें उस को सम्यग् ज्ञानशील नगराधीश राजा राजधर्म के अनुकूल सेवन करे वह राजा धर्मानुकूल वर्त्ताव करने से शोकातुर नहीं होता वैसे ही जिसने मिथ्याज्ञान छोड़ दिया वह तत्त्वज्ञानी कार्योंके सिद्ध करने वाले ११ छिद्रोंवाले (सात शिरमें दो नीचे इसमें ९ छिद्र तो प्रसिद्ध ही हैं ! नाभि जिसके द्वारा रस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँच कर गर्भ का शरीर बनता है। १ छिद्र मूर्द्धा में होता है वहाँ गर्भावस्थामें सूक्ष्म त्वचा पुर जाती है। डेढ़ दो वर्ष तकके बच्चों का वही स्थल मूर्द्धामें धड़कता रहता है वही द्वार है। ये ११ छिद्र हैं। स्त्री के उपस्थ में दो छिद्र होते हैं। १ मूत्रका १ जनने का इस कारण स्त्री के शरीरमें १२ छिद्र होंगे यहां पुरुष के ११ छिद्र कहे हैं) नगरस्थानी शरीर का तीन आश्रमों में धर्मानुकूल सेवन कर पुरुष चौथे सन्यास आश्रम में शोकातुर नहीं होता और शरीर को छोड़ के मुक्त हो जाता है यही ब्रह्मज्ञान का फल है॥ १॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्। नृषद्वरसदृव्योमसदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतम्बृहत्॥ २॥

(हंसः) हन्ति शरीराच्छरीरान्तरं गच्छतीति हंसः। औणादिकः सः प्रत्ययः (शुचिषत्) शुचाववकाशे परमात्मनि वा सीदति (वसुः) वसति मनुष्यादिशरीरेषु सः (अन्तरिक्षसत्) मध्यवर्त्तिनि हृदयावकाशे सीदति (होता) योगयज्ञानुष्ठाता। वाग्येके जुह्वति प्राणं प्राणे वाचं च सर्वदेति वचनात् (वेदिषत्) वेद्यां पृथिव्यां सीदति शरीरधारित्वात्। इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या इति वेदमन्त्रप्रामाण्याद्वेदिशब्देन पृथिवी गृह्यते। (अतिथिः) शरीरस्थितावनियततिथिर्विरक्तत्वाद्वा (दुरोणसत्) दुरोणे स्वाश्रमे कुट्यादौ सीदति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नृषत्) मनुष्यशरीरे सीदति (वरसत्) वरे श्रेष्ठे ब्रह्मर्ष्यादिशरीरे सीदति (ऋतसत्) ऋते यज्ञे सत्ये ब्रह्मणि वा सीदति (व्योमसत्) व्योम्नि आकाशे धृतसूक्ष्मशरीरः सीदति (अब्जाः) अप्सु जलजन्तुमकरादिरूपेण जायते (गोजाः) गवि पृथिव्यां स्थावररूपेण जायते (ऋतजाः) ऋतादुदकाज् जायत उत्पद्यते (अद्रिजाः) अद्रिषु पर्वतेषु तत्रस्थजन्तुरूपेण जायते (ऋतम्) स्वयमपि सत्यस्वरूपम् (वृहत्) महाशयः ॥

भा०—स्वरूपस्थः शुद्धो जीवात्मा शुद्धे परमात्मनि कृतनिष्ठो नानायोनिसहस्रेषु बहुविधा बाधा विचिन्त्य संसेवितयथोक्तसाधनो महान्तं विभुं परमात्मनं ज्ञातुं शक्नोति ॥२॥

भाषार्थः—(हंसः) एक शरीरसे दूसरे शरीर में जाने (शुचिषत्) पवित्र स्थल हृदयरूप में वा परमात्मा में स्थित होने (वसुः) मनुष्यादि योनियों में वसने (अन्तरिक्षसत्) शरीर के मध्यवर्त्ती हृदय प्राणरूप अवकाश में रहने (होता) योग यज्ञ का सेवन कर्त्ता [वाणी में प्राण का और प्राण में वाणी का लय करना योगयज्ञ कहाता है] (वेदिषत्) शरीरधारी होने से पृथिवीमें रहने (इयं वेदिः)—इस मन्त्रमें वेदि शब्द पृथिवी का वाचक है इसलिये वेदि शब्द से पृथिवी ली गई (अतिथिः) जिसके आने जाने वा मरने जीने की तिथि का नियम नहीं (दुरोणसत्) अपने आश्रम कुटी आदि में ठहरने (नृषत्) मनुष्य शरीर धारण करने (वरसत्) श्रेष्ठ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मर्षि आदि के शरीर में रहने (ऋतसत्) यज्ञ वा सत्य ब्रह्म में स्थिर होने (व्योमसत्) सूक्ष्म शरीर धारण कर आकाश में ठहरने (अब्जाः) मगर आदि रूपसे जल जन्तुओं में उत्पन्न होने (गोजाः) वृक्ष वनस्पत्यादि रूप से पृथिवी में उत्पन्न होने और (ऋतजाः) ऋत नाम जलका भी है उससे उत्पन्न (अद्रिजाः) पर्वतों में पर्वतीय जल जन्तुओं के रूप से उत्पन्न होने वाला (ऋतम्) सत्यस्वरूप (बृहत्) गम्भीर विचार वाला है ॥

भा०—सर्वदा शुद्ध परमात्मा में जिसकी निष्ठा है अनेक प्रकार की सहस्रों योनियों में बहुत प्रकार की बाधाओं का चिन्तनकर सम्यक् सेवन किये हैं यथोक्त साधन जिसने ऐसा अपने स्वरूपमें अवस्थित शुद्ध हुआ जीवात्मा महत्परिमाण विशिष्ट सर्वव्यापक परमात्मा को जान सकता है ॥ २ ॥

ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति ।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥३॥

यो जीवात्मा योगाभ्यासावसरे (प्राणम्) हृदि स्थितं प्राणवायुम् (ऊर्ध्वम्) (उन्नयति) (अपानम्) गुदेन्द्रियसञ्चारिणं वायुम् (प्रत्यक्) उदरे (अस्यति) क्षिपति तम् (मध्ये) नाभिकण्ठयोर्मध्ये (आसीनम्) (वामनम्) वामं नित्यप्रशस्तं शुद्धं ज्योतिःस्वरूपं विद्यतेऽस्य स वामनः । पामादित्वान्नस्तद्धितः । एवं भूतं जीवात्मानं प्रजा राजानमिव (विश्वे) सर्वाणि (देवाः) इन्द्रियाणि (उपासते) सेवन्ते ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—जीवात्मा यदा योगाङ्गानुष्ठानेन स्वरूपेऽवतिष्ठते तदा प्रत्यगात्मभूता इन्द्रियशक्तय आसनमध्यासीनं राजानमिव तं जीवात्मानमन्तः करणरूपे सदस्युपासते ॥ ३ ॥

भाषार्थः—जो जीवात्मा योगाभ्यास के समय (प्राणम्) हृदय में रहने वाले प्राण वायु को (ऊर्ध्वम्) ऊपर ब्रह्माण्ड में (उन्नयति) आकर्षण करता (अपानम्) गुदद्वारा चलने वाले वायु को (प्रत्यक्) उदर में (अस्यति) फेंकता उस (मध्ये) नाभि और कण्ठ के बीच अन्तःकरण में (आसीनम्) स्थित (वामनम्) प्रशस्त नित्य शुद्ध प्रकाशस्वरूपयुक्त जीवात्मा को [जैसे प्रजाजन राजा को वैसे] (विश्वे) सब (देवाः) व्यवहार साधक इन्द्रिय (उपासते) सेवन करते हैं ॥

भा०—जीवात्मा जब यम, नियम, आसन प्राणायामादि योग के अवयवों के सेवन से अपने स्वरूप में स्थित होता तब भीतर अन्तःकरण की ओर फिरी हुई इन्द्रियों की शक्तियाँ राजगद्दी पर बैठे राजा के तुल्य उस जीवात्मा को अन्तःकरण रूप सभा में सेवन करती (अरदली में हाज़िर रहते) हैं ॥३॥

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः । देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते । एतद्वै तत् ॥४॥

(अस्य) (शरीरस्थस्य) (देहिनः) देहः शरीरमस्यास्तीति सम्बन्ध इनिः (विस्रंसमानस्य) भ्रश्यमानस्यार्थात् (देहात्) कलेवरात् विमुच्य मानस्य (किम्) लक्ष्म (अत्र)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(परिशिष्यते) न किमपीत्यर्थः । यस्य च भ्रंशो देहाद्विमोचनं वा न भवति (एतद्वै, तत्) एतदेव ब्रह्मास्तीति बोध्यम् ॥

भा०—यदा जीवोऽस्माच्छरीरान्निस्सरतितदा तस्य सर्वा इन्द्रियप्राणशक्तयस्तेन साकमेव वहिर्निस्सरन्ति न किमप्यत्र परिशिष्यते यच्च विस्रंसनविमोचनाभ्यां पृथगवशिष्यते तदेव ब्रह्मास्तीति ज्ञेयम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अस्य) इस (शरीरस्थस्य) शरीर में रहने वाले (देहिनः) शरीर के स्वामी के (विस्रंसमानस्य) पृथक् होते अर्थात् (देहात्) शरीर को (विमुच्यमानस्य) छोड़ते हुए जीवात्मा का (किम्) क्या चिन्ह (अत्र) इस शरीर में (परिशिष्यते) शेष रह जाता है ? अर्थात् कोई नहीं और जिसको दुःख में गिरना वा शरीर से पृथक् होना नहीं होता (एतद्वै, तत्) वह यही ब्रह्म है सो जानना चाहिये ॥

भा०—जब मरण समय जीवात्मा इस शरीर से निकलता है तब उसके इन्द्रिय और प्राणों की सब शक्तियाँ उसके साथ ही निकल जाती हैं किन्तु शरीर में चेतन का कोई चिन्ह शेष नहीं रह जाता और जिसको शरीर के संयोग वियोग से दुःख नहीं पहुँचता वही ब्रह्म जानने योग्य है ॥ ४ ॥

न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन । इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—(कश्चन) (मर्त्यः) मरणधर्मा आत्मदेहेन्द्रियसङ्घातो मनुष्यः (न, प्राणेन) (न, अपानेन) (जीवति) किन्तु (यस्मिन्) अन्तरात्मनि (एतौ) प्राणापानौ (उपाश्रितौ) तेन (इतरेण) प्राणापानाभ्यां भिन्नेन जीवात्मना (जीवन्ति) आत्मदेहेन्द्रियमनः सङ्घाता इति शेषः ॥

भा०—लौकिका जानन्ति वदन्ति च प्राणापाननिरोध एव देहिनां मरणमिति । अतएव ते निर्बीजसमाधिस्थान् योगिनोऽपि मृतान् जानन्ति तच्च मिथ्याज्ञानमिति । प्राणापाननिरोधेऽपि प्राणापानाधिकरणेन विद्यमानेन जीवात्मना मर्त्यो जीवत्येव ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(कश्चन) कोई (मर्त्यः) मनुष्य (न, प्राणेन) न प्राण से और (न, अपानेन) न अपान से (जीवति) जीता है किन्तु (यस्मिन्) जिस अन्तरात्मा में (एतौ) ये दोनों प्राण अपान (उपाश्रितौ) आश्रित हैं (इतरेण) प्राण अपान से भिन्न वर्त्तमान उस जीवात्मा के होने से जड़ चेतन के संयोग से बने शरीर समुदाय (जीवन्ति) जीते हैं ॥

भा०—संसारी मनुष्य जानते वा कहते हैं कि प्राण अपान का बन्द होना ही मनुष्य का मरना है । इसी लिये वे निर्बीज समाधिस्थ योगियों को भी मरे जान लेते हैं सो यह मिथ्या ज्ञान है क्योंकि प्राणापान के बन्द होने पर भी उनके आधार विद्यमान जीवात्मा से मनुष्य जीता ही है ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम् ।
यथ च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ! ॥ ६ ॥

हे (गौतम) गोतमवंशावतंस नचिकेतः ! (हन्त) अनुकम्पायाम् (ते) तुभ्यम् (इदम्) प्रस्तुतम् (सनातनम्) (गुह्यम्) अधिकारिणएव त्वादृशे कस्मैचिदेकान्त उपदेश्यम् (ब्रह्म) (प्रवक्ष्यामि) उपदेक्ष्यामि त्वमेकाग्रमनाः शृणु (यथा, च) (मरणम्) (प्राप्य) (आत्मा) निरन्तरं देहाद्देहान्तरं गन्ता (भवति) तदपि त्वं शृण्विति वाक्यशेषः ॥

भा०—यद्यपि ब्रह्मज्ञानोपदेशं कर्त्तुं पूर्वत एवाचार्यः प्रवृत्तस्तथाप्यनुकम्पायुक्तः पुनराह-इदानीं सनातनस्य ब्रह्मणो ज्ञानमेव प्राधान्येन वक्ष्यामि यदविज्ञाय मनुष्यः संसारचक्रेऽनिशं भ्रमति तदपि वक्ष्यामि त्वं शृणु ॥ ६ ॥

भाषार्थः—हे (गौतम) गोतम कुलके दीपक (हन्त) कृपा करने योग्य नचिकेतः (ते) तेरे लिये (इदम्) इस (सनातनम्) सनातन (गुह्यम्) तेरे तुल्य किसी अधिकारी को ही उपदेश करने योग्य (ब्रह्म) ब्रह्म का (प्रवक्ष्यामि) उपदेश करूँगा तू एकाग्रचित्त होकर सुन (च) और मनुष्य (यथा) जैसे (मरणम्) मरण को (प्राप्य) प्राप्त होकर (आत्मा) शरीर से शरीरान्तर को जानेवाला (भवति) होता है सो भी कहूँगा तू सुन ॥

भा०—यद्यपि ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने को आचार्य प-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिले से ही प्रवृत्त हैं तो भी कृपायुक्त होकर फिर बोले कि अब मुख्य कर सनातन ब्रह्म का ज्ञान ही कहूँगा जिसको न जानकर संसारचक्र में मनुष्य प्रतिदिन भ्रमता है उसको भी कहूँगा तू सुन ॥ ६ ॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः । स्थाणु मन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ७ ॥

(अन्ये) ब्रह्मज्ञानविमुखाः (देहिनः) मनुष्याः (यथाकर्म) यादृशं यस्य कर्म यावच्च (यथाश्रुतम्) यादृशं यावच्च शास्त्र-विज्ञानं लब्धं तादृशसंस्कारजन्यवासनारज्जुभिराकृष्यमाणाः केचित् (शरीरत्वाय) मनुष्यादिशरीरभावाय शरीरग्रहणार्थम् (योनिम्) शुक्रशोणितसंयुतं योनिद्वारम् (प्रपद्यन्ते) प्राप्नुवन्ति (अन्ये) केचित्—मानसपापकारिणः । मानसैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः । मनु० अ० १२ । (स्थाणुम्) वृक्षादिस्थावरभावम् (अनुसंयन्ति) अनुगच्छन्ति ॥

भा०-ये ब्रह्मज्ञानाय न प्रयतन्ते ते मूढा जन्मान्तरे पूर्वसञ्चित-कर्मानुसारमुत्तममध्यमनिकृष्टयोनीः प्राप्य दुःखान्येव भुञ्जते ॥७॥

भाषार्थः—(अन्ये) ब्रह्मज्ञानी से अन्य (देहिनः) मनुष्य (यथाकर्म) जैसा वा जितना जिसका कर्म है वा (यथाश्रुतम्) जैसा वा जितना शास्त्रज्ञान जिसको प्राप्त हुआ है वैसे संस्कारों से हुई वासनारूप रस्सियों से बँधे खिंचे हुए (शरीरत्वाय) मनुष्यादि का शरीर धारण करनेके लिये (योनिम्) वीर्य और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुधिर संयुक्त योनि के मुखको (प्रपद्यन्ते, प्राप्त होते हैं (अन्ये) और कोई अतिनिकृष्ट मन से पाप करनेवाले (स्थाणुम्) वृक्षादि स्थावर योनियों को (अनुसंयन्ति) मरणान्तर प्राप्त होते हैं ॥

भा०—जो लोग ब्रह्मज्ञान होने के लिये प्रयत्न नहीं करते वे मूर्ख पूर्व जन्मान्तरों में किये कर्मों के अनुसार उत्तम मध्यम् निकृष्ट योनियों को प्राप्त होके दुःख ही भोगते हैं ॥

य एष सुप्तेषु जागर्त्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः । तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते । तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन । एतद्वै तत् ॥ ८ ॥

(यः, एषः) अन्तर्यामी (पुरुषः) पुरिब्रह्माण्डे शयानो व्याप्तः (कामंकामम्) प्रत्येक कामनापूर्त्यर्थम् । वीप्सायां द्विर्वचनम् (निर्मिमाणः) सर्वान्पदार्थानिति शेषः (सुप्तेषु) प्रमादालस्यनिद्रानिमग्नेषु जीवात्मसु सत्सु (जागर्त्ति) याथातथ्येन सर्वं जानाति (तत्, एव) (शुक्रम्) शुद्धम् (तद्ब्रह्म) सर्वस्माद्वृहद्वृगुह्यं ब्रह्म (तदेव) (अमृतम्) अविनश्वरम् (उच्यते) शास्त्रेषु—इति शेषः (तस्मिन्) ब्रह्मणि (सर्वे) (लोकाः) पृथिव्यादयः (श्रिताः) (तत्) ब्रह्म (उ) (कश्चन) लोकः (नात्येति) तत्कृतनियमान्नोल्लङ्घयति (एतद्वै, तत्) एतदेव तद्ब्रह्मास्ति यत्त्वया पृष्टम् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यो जीवेषु भ्रान्तेषु न कदाचिद् भ्राम्यति जगदुपकाराय सर्वं वस्तु यथासमयं निर्मिमीते तन्नित्यशुद्धं सर्वाधारमचलनियमं नित्यमुक्तं साम्यातिशयविनिर्मुक्तस्वरूपं ब्रह्म कल्याणेप्सुना विज्ञातव्यम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(यः, एषः) जो यह अन्तर्यामी (पुरुषः) सब ब्रह्माण्ड में व्याप्त (कामंकामम्) प्रत्येक कामना की पूर्त्ति के लिये (निर्मिमाणः) सब पदार्थों का निर्माण करता हुआ (सुप्तेषु) प्रमाद आलस्य और निद्रा में सोते अर्थात् फँसे हुए जीवों में (जागर्त्ति) जागता यथावत् सबको जानता है (तदेव) वही (शुक्रम्) शुद्ध (तत्, ब्रह्म) वही सबसे बड़ा गुह्य ब्रह्म (तदेव) वही (अमृतम्) (शास्त्रों में) अविनाशी (उच्यते) कहा जाता है (तस्मिन्) उस ब्रह्म में (सर्वे) सब (लोकाः) पृथिवी आदि लोक (श्रिताः) ठहरे हुए हैं (तत्, उ) उसका ही (कश्चन) कोई लोक वा मनुष्य (न, अत्येति) उल्लङ्घन नहीं कर सकता अर्थात् उसके नियमों को नहीं तोड़ सकता (एतद्वै, तत्) यही वह ब्रह्म है जो तूने पूछा था ॥

भा०—जो जीवों के भ्रमयुक्त होने पर भी भ्रमयुक्त नहीं होता जगत् के उपकार के लिये यथा समय सब वस्तुओं को रचता है वह नित्य शुद्ध सबका आधार जिसका नियम अचल है नित्यमुक्त और जिसके तुल्य वा जिससे अधिक किसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का स्वरूप नहीं वह ब्रह्म कल्याण की इच्छा वाले को जानने योग्य है ॥ ८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ ९ ॥

(यथा) (एकः, अग्निः) विद्युत्स्वरूपः (भुवनम्) भवन्ति भूतानि यस्मिन्स्वयं वा भवत्युत्पद्यते कार्यरूपेण जायत इति भुवनम् [लोकः] तत् (प्रविष्टः प्रतिवस्तुव्याप्तः) (रूपं रूपम्) यावद्वस्तुरूपम् (प्रतिरूपः) तत्तद्वस्तुरूपः (बभूव) (तथा) (एकः) (सर्वभूतान्तरात्मा) (रूपंरूपम्) (प्रतिरूपः) बभूव (च) सर्वस्थूलवस्तुभ्यः (बहिः) पृथगपि व्योमवद्व्याप्तः ॥

भा०—यथाऽग्निर्विद्युद्रूपेण सर्वस्थूलपदार्थेषु व्याप्तस्तत्तद्वस्तुरूपाद्भिन्नो न लक्ष्यतेऽपितु तत्तत्पदार्थरूपेणैव तत्र तत्रावस्थितोऽतिसूक्ष्मत्वात्पृथङ् न ज्ञायते तथैव परमात्मापि सर्वकार्यकारणवस्तुषु व्याप्तोऽतिसूक्ष्मत्वान्न दृश्यते तत्तत्पदार्थस्वरूपेणैव तस्मिंस्तस्मिन्नवतिष्ठते यत्र पदार्था न सन्ति तत्रापि परमात्मा व्याप्त आकाशवदनन्तत्वात् ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (एकः) एक ही (अग्निः) (भुवनम्) सब प्राणियों के आधार वा स्वयं कार्यरूप से उत्पन्न होनेवाले संसार में (प्रविष्टः) व्याप्त (रूपंरूपम् प्र-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्येक रूपवान् वस्तु के (प्रतिरूपः) तुल्य रूपवाला (बभूव) हो रहा है (तथा) वैसे (एकः) एक (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी परमात्मा (रूपंरूपम्) प्रत्येक रूपवान् पदार्थ के (प्रतिरूपः) उसी के जैसे रूपवाला (बभूव) हो रहा है (च) और सब स्थूल पदार्थों से (बहिः) पृथक् भी आकाश के तुल्य व्याप्त है ॥

भा०—जैसे अग्नि विद्युत् रूप से सब स्थूल पदार्थों में व्याप्त उस २ वस्तु के रूप से भिन्न नहीं दीखता किन्तु उस२ पदार्थ के रूप से ही उस २ में स्थित अतिसूक्ष्म होनेसे पृथक् नहीं जाना जाता वैसे ही परमात्मा भी सब कार्य कारण वस्तुओं में व्याप्त अतिसूक्ष्म होनेसे नहीं दीखता किन्तु उस२ पदार्थ के रूप से उस २ में अवस्थित है और जहाँ पदार्थ नहीं वहाँ भी आकाश के तुल्य अनन्त होने से परमात्मा व्याप्त है ॥ ९ ॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥ १० ॥

(यथा, एकः, वायुः) (भुवनम्, प्रविष्टः) (रूपंरूपम्) (प्रतिरूपः) (बभूव) (तथा, एकः) (सर्वभूतान्तरात्मा) (रूपंरूपम्) (प्रतिरूपः) (च) (बहिः) सर्वस्मिन् ब्रह्माण्डे सूत्रात्मना व्याप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यथा वायुः सूक्ष्मरूपेण सर्ववस्तुषु व्याप्तस्तत्तद्वस्तु स्वरूपाद्विलक्षणो नोपलभ्यते तथैव सर्वस्मिन् चराचरे जगति व्याप्तः परमात्मापि तत्तद्वस्तुस्वरूपात्पृथङ् नोपलभ्यते ॥ १० ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (एकः) एक (वायुः) वायु (भुवनम्) संसार में (प्रविष्टः) व्याप्त (रूपंरूपम्) प्रत्येक वस्तु के रूप के (प्रतिरूपः) तुल्य रूपवाला (बभूव) हो रहा है (तथा) वैसे (एकः) एक (सर्वभूतान्तरात्मा) सब भूतों का अन्तर्यामी (रूपंरूपम्) परमात्मा प्रत्येक वस्तु के रूप के तुल्य (प्रतिरूपः) रूपवाला हो रहा है (च) और (बहिः) सब ब्रह्माण्ड में सूत्रात्मा रूप से व्याप्त है ॥

भा०—जैसे वायु सूक्ष्म रूप से सब वस्तुओं में व्याप्त उस २ वस्तु के स्वरूप से विलक्षण नहीं प्रतीत होता वैसे ही सब चराचर जगत् में व्याप्त परमात्मा भी उस २ वस्तु के स्वरूप से पृथक् नहीं प्राप्त होता ॥ १० ॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः । एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ११ ॥

(यथा) (सर्वलोकस्य) कर्मणि षष्ठी (चक्षुः) दर्शन-हेतुः । करण औणादिक उसिः प्रत्ययः । (सूर्यः) सन्नपि (चाक्षुषैः) भ्रमान्मिथ्यादर्शनैरशुच्यादिदर्शनैर्वा (बाह्यदोषैः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसर्गदोषैः (न, लिप्यते) (तथा) (सर्वभूतान्तरात्मा) सर्वप्राणिनामन्तर्यामी (एकः) (बाह्यः) सर्ववस्तुनि व्याप्तोऽपि तद्दोषेणालिप्तः परमेश्वरः (लोकदुःखेन) संसारोत्पन्नदोषेण (न, लिप्यते) नानुसज्यते ॥

भा०—यथा यतः सूर्यप्रकाशमन्तरेण कश्चित्किञ्चिदपि न पश्यति रजन्यामपि चन्द्रादयः सूर्यप्रकाशानुग्रहेणैव किञ्चिद्दर्शयन्ति तस्मात्सूर्यएव रूपज्ञानमात्रस्य कारणम्। एवं सत्यपि भ्रमादन्यथा दर्शनादिजन्यविपरीतफलभाक् सूर्यो न भवति तथैव सर्वजनहृद्देशस्थः परमेश्वरः सूर्यवत्स्वाभाविकशक्त्या सर्वजीवकृत्यं प्रकाशयन्नपि जीवकृतशुभाऽशुभकर्म फलेन न सम्बध्यते ॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (सर्वलोकस्य) सब संसार को (चक्षुः) देखने का हेतु (सूर्यः) हुआ भी सूर्य (चाक्षुषैः) भ्रम से अन्य का अन्य देखने वा मलिन देखने आदि (बाह्यदोषैः) सम्बन्धी दोषों से (न, लिप्यते) लिप्त नहीं होता (तथा) वैसे (सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी (एकः) एक (बाह्यः) सब वस्तुओं में व्याप्त भी उस वस्तु के दोष से युक्त न होने वाला परमेश्वर (लोकदुःखेन) संसारी दुःख से (न, लिप्यते) दुःखित नहीं होता।

भा०—जैसे जिस कारण सूर्य के प्रकाश बिना कोई कुछ भी नहीं देखता रात्रि में भी चन्द्रमा आदि सूर्य के प्रकाश को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहायता से ही कुछ २ प्रकाश करते हैं इस कारण सूर्य ही सब रूप अज्ञान का कारण है ऐसा होने पर भी अन्यथा देखने वा प्रतिकूल देखने आदि से हुए विपरीत फल का भागी सूर्य नहीं होता वैसे ही सब मनुष्यादि के हृदय में स्थित परमेश्वर सूर्य के तुल्य स्वाभाविक शक्ति से सब जीवों के कृत्य का प्रकाश करता हुआ भी जीव के किये शुभ अशुभ कर्मफल से सम्बद्ध नहीं होता ॥ ११ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा, एकं रूपं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा-स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

(सर्वभूतान्तरात्मा) (एकः) (वशी) सर्वं स्थावरजङ्गमं वशे तिष्ठति यस्य सः (यः) (एकम्) प्रलयावसरेऽतिसूक्ष्मत्वाद्भेदविज्ञानविरहमेकीभूतम् (रूपम्) प्रकृतिरूपं कारणम् (बहुधा) बहुप्रकारकं बहुरूपं कार्यं स्थूलम् (करोति) उत्पादयति (ये) (धीराः) ध्यानशीला विद्वांसः (तम्) (आत्मस्थम्) स्वात्मन्यन्तर्यामिरूपेण व्याप्तं ध्याननिर्मथनाभ्यासेन (अनुपश्यन्ति) आचार्योपदेशानन्तरं पश्यन्ति (तेषाम्) (शाश्वतम्) सनातनं मुक्त्याख्यम् (सुखम्) भवति (न, इतरेषाम्) ॥

भा०—ये सर्वस्रष्टारं सर्वनियन्तारं सर्वस्व हृदि संस्थितं जगदीश्वरमेव स्वात्मन्यवस्थितं योगाभ्यासेन ध्यायन्ति त एव सनातनसुखभागिनो जायन्ते नेतरे मूढाः ॥ १२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(सर्वभूतान्तरात्मा) सब प्राणियों का अन्तर्यामी (एकः) एक (वशी) सब चराचर जगत् जिसके वश में है वह तथा (यः) जो (एकम्) प्रलयावस्था में अतिसूक्ष्म होने से पृथक् २ भेद जिसका नहीं जाना जाता ऐसे एक (रूपम्) प्रकृति नामी कारण को (बहुधा) बहुत प्रकार का कार्यरूप स्थूल (करोति) उत्पन्न करता (ये) जो (धीराः) ध्यानशील विद्वान् लोग (तम्) उस (आत्मस्थम्) अपने आत्मा में अन्तर्यामी रूपसे व्याप्त परमात्मा को ध्यान के अभ्यास से (अनुपश्यन्ति) गुरुसे उपदेश पाकर देखते हैं (तेषाम्) उनको (शाश्वतम्) सनातन मुक्ति का (सुखम्) सुख होता है (न, इतरेषाम्) अन्यों को नहीं ॥

भा०—जो लोग सब के स्रष्टा सब के नियन्ता और सबके हृदय में स्थित परमात्मा जगदीश्वर का ही अपने आत्मा में योगाभ्यास से ध्यान करते हैं वे ही सनातन नित्य सुख के भागी होते हैं अन्य मूर्ख नहीं ॥ १२ ॥

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ १३ ॥

(अनित्यानाम्) उत्पत्तिधर्मकाणां विनाशवतां घटपटादिकार्यपदार्थानां मध्ये (नित्यः) अविनाशी (चेतनानाम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मनां नित्यानामपि मध्ये (चेतनः) सदैव चैतन्यस्वरूप एव। चेतनानामपि चेतयिता (बहूनाम्) परिच्छिन्नानां चराचर-वस्तूनां मध्येऽपरिच्छिन्नोऽतएव (एकः) एवंभूतः (यः) (कामान्) कर्मफलानि (विदधाति) यथायोग्यं ददाति (ये, धीराः) विद्वांसः (तम्, आत्मस्थम्, अनुपश्यन्ति) श्रवणमननान्तरं ध्यायन्ति (तेषाम्) (शाश्वती शान्तिः) भवति (न, इतरेषाम्) नैवाज्ञानानाम् ॥

भा०—यच्चैतन्यमाश्रित्य चेतना जीवा अपि स्वकार्यं कर्त्तुं प्रभवन्ति तमेकं नित्यं कर्मफलप्रदमात्मन्यवस्थितं जगदीश्वरं ये ध्यायन्ति तएव निरन्तरं शान्ता भवन्ति नाऽतो भिन्ना बहिर्मुखा विषयानन्दलिप्साः ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(अनित्यानाम्) उत्पत्तिधर्मक होने से विनष्ट होने वाले कार्यरूप घटपटादि पदार्थों के बीच (नित्यः) अविनाशी (चेतनानाम्) चेतन, नित्य, जीवात्माओं के बीच भी (चेतनः) सदा चेतनारूप ही अर्थात् चेतनों को भी चेतन करने वाला (बहूनाम्) परिच्छिन्न चराचर वस्तुओं में (एकः) एक अपरिच्छिन्न परमेश्वर है (यः) जो जीवों के लिये (कामान्) यथायोग्य कर्मों का फल (विदधाति) देता है (ये) जो (धीराः) विद्वान् लोग (तम्) उस (आत्मस्थम्) अपने आत्मा में स्थित परमात्मा को (अनुपश्यन्ति) गुरु आदि से सुने विचार के अनुकूल ध्यान करते (तेषाम्) उनको (शाश्वती)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सदा निरन्तर ठहरने वाली (शान्तिः) शान्ति प्राप्त होती है (न, इतरेषाम्) किन्तु अन्य अज्ञानियों को नहीं ॥

भा०—जिसकी चेतनता का आश्रय लेकर चेतन जीवात्मा भी अपने कार्य करनेको समर्थ होते हैं उस कर्मफलदाता अपने आत्मा में अवस्थित एक नित्य वर्त्तमान जगदीश्वर का जो लोग ध्यान करते हैं वे ही निरन्तर शान्त होते हैं इससे विपरीत विषयों के आनन्द भोगने में लिप्त बाह्य वृत्ति रखनेवाले लम्पट पुरुष शान्त नहीं होते ॥ १३ ॥

तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम् । कथन्नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥ १४ ॥

नचिकेता आह-(तत्, एतत्, इति) एवं प्रकारेण (अनिर्देश्यम्) अंगुल्यादिसङ्केतेन निर्देष्टुमशक्यम् (परमम्, सुखम्) सर्वोत्तमसुखमयं ब्रह्म भवादृशा विद्वांसः (मन्यन्ते) (तत्) ब्रह्म (किमु) (भाति) प्रकाशहेतुर्भवति (वा) आहोस्वित् (विभाति) स्वयं प्रदीपवत् प्रकाशकं भवति । एतदहम् । (कथन्नु) (विजानीयाम्) तथा ब्रूहीति शेषः ॥

भा —उपदेशका गुरवोऽपि तदेतद्ब्रह्मेत्यादिशब्दैरेव व्याचक्षते न कश्चिन्निर्देशेन दर्शयतीत्थंभूतमेव ब्रह्मास्ति तदहं कथं बुध्येयं किं तत्सूर्यादिवत्प्रकाशकमाहोस्विन्न ॥ १४ ॥

भाषार्थः—नचिकेता फिर बोला कि-(तत्, एतत्,) वह यह है (इति) इस प्रकार (अनिर्देश्यम्) अंगुलि आदि उठा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर जिसका बताना नहीं हो सकता (परमम्, सुखम्) सर्वोत्तम सुखस्वरूप ब्रह्म को आप जैसे विद्वान् लोग (मन्यन्ते) मानते हैं (तत्) वह ब्रह्म (किमु) क्या (भाति) प्रकाश का हेतु कारण होता (वा) अथवा (विभाति) प्रदीप के तुल्य स्वयं प्रकाशक होता है यह मैं (कथन्नु) कैसे (विजानीयाम्) जानूं वैसा आप कहिये ॥

भा०—उपदेशक गुरु लोग भी वह यह ब्रह्म है इत्यादि शब्दों से ही व्याख्यान करते हैं किन्तु कोई प्रत्यक्ष नहीं दिखाता कि ऐसा वा यही ब्रह्म है। सो मैं कैसे जानूँ क्या वह सूर्यादि के तुल्य कोई तैजस प्रकाशक है वा नहीं ? ॥ १४ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः । तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १५ ॥

(तत्र) तस्मिन् ब्रह्मणि (न) (सूर्यः) (न) (चन्द्रतारकम्) चन्द्रश्च तारकाश्चेति द्वन्द्व एकवत् (भाति) (इमाः) प्रत्यक्षाः (विद्युतः) चाक्षुषतेजोऽभिभावुका अपि (न, भान्ति) तर्हि (अयम्) भौतिकः पार्थिवः (अग्निः) (कुतः) भायात् किन्तु (तमेव) (भान्तम्) प्रकाशयन्तम् (सर्वम्) सूर्यादिकम् (अनुभाति) तदुदत्तप्रकाशमाप्यैव प्रकाशते (तस्य) परमेश्वरस्य (भासा) दीप्त्या (इदम्) (सर्वम्) सूर्यादि (विभाति विस्पष्टं प्रकाशते ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यदिदं सूर्यादिप्रकाशकं जगत्प्रत्यक्षतयोपलभ्यते तद्विभाति तेषु च स्वतः प्रकाशो नास्ति किन्तु परमात्मा तान् सूर्यादीन् भाति स्वदत्तेन तेजसा प्रकाशयति सूर्यादयश्च तं प्रकाशयितुमशक्ताः। तस्य ततोऽधिकतेजस्कत्वात्। अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सूर्यादेः प्रकाशस्योपयोगो नापेक्ष्यतेऽपितु बाधको भवति ॥ १५ ॥

इति भीमसेनशर्मकृते कठोपनिषद्भाष्ये पञ्चमी वल्ली समाप्ता ॥

भाषार्थः—(तत्र) उस ब्रह्म में (न) न (सूर्य (न) न (चन्द्रतारकम्) चन्द्रमा और तारे (भाति) प्रकाश करते तथा (इमाः) ये प्रत्यक्ष चमकने और (विद्युतः) नेत्रसम्बन्धी तेज को दबाने वाली बिजुली भी (न, भान्ति) प्रकाश नहीं करतीं तो (अयम्) यह पृथिवी पर प्रसिद्ध भौतिक (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहां से प्रकाश करे क्योंकि सूर्य का प्रकाश अग्निसे प्रबल है और भौतिक अग्नि का कारणभी सूर्य है जब कारण का उसमें प्रकाश नहीं पहुँचता तो कार्य का क्या पहुँचेगा ?। किन्तु (तमेव) उसी (भान्तम्) स्वयं प्रकाशमान हुएके पीछे (सर्वम्) सब सूर्यादि (अनुभाति) उसके दिये प्रकाश को पाकर ही प्रकाशित होते हैं (तस्य) उस परमेश्वर की (भासा) दीप्ति से (इदम्) यह (सर्वम्) सब सूर्यादि (विभाति) स्पष्टतापूर्वक प्रत्यक्ष प्रकाश करते हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—जो यह सूर्यादि प्रकाशक जगत् प्रत्यक्षता से प्राप्त होता वही प्रकाशित है उनमें अपना स्वतः प्रकाश नहीं किन्तु परमात्मा उन सूर्यादिको अपने दिये तेजसे प्रकाशित करता है और सूर्यादि उसको प्रकाशित नहीं कर सकते क्योंकि परमेश्वर उनसे अधिक तेज वाला है इसीसे ब्रह्मज्ञान के उपायों में सूर्यादि से प्रकाश का उपयोग नहीं किन्तु नेत्रद्वारा देखने से ध्यान बँटकर उल्टी बाधा होती है ॥ १५ ॥

यह पांचवीं वल्ली समाप्त हुई ॥

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्मतदेवामृतमुच्यते । तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वै तत् ॥१॥

(ऊर्ध्वमूलः) ऊर्ध्वमुपरिष्टान्मूलमस्य सः (अवाक्शाखः) अवागधस्ताच्छाखा यस्य सः (एषः) प्रत्यक्षो मनुष्यदेहः (प्रवाहेण) (सनातन.) (अश्वत्थः) श्वः स्थास्यति न वेति संशयापन्नोऽश्वत्थवृक्षवत्स्वरूपेणानित्यः । यदस्य मूलस्यापि कारणम् (तदेव) (शुक्रम्) शुक्लं निर्मलं निष्कलङ्कम् (तत्) (ब्रह्म) बृहत् (तदेव) (अमृतम्) अविनश्वरम् (शास्त्रेषु विद्वद्भिः) (उच्यते) (तस्मिन्) ब्रह्मणि (सर्वे) (लोकाः) पृथिव्यादयः (श्रिताः) धृताः (तत्, उ) ब्रह्म (कश्चन)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकः पुरुषो वा (न, अत्येति) नोल्लङ्घयति (एतद्वै, तत्) तदेतदेव ब्रह्मास्ति ॥

भावार्थः—यथाऽश्वत्थादिवृक्षविशेषाणामुपरिष्टाच्छाखा अधस्ताच्च मूलं भवति तस्माद्विपरीतोऽयं देहवृक्षो यस्य मूलमुपरि शाखा अधः स्वरूपेणाऽयमनित्यः सृष्टिप्रवाहेण नित्यश्च। अस्य सर्वस्य स्रष्टारमस्मिन्नेव देहेऽवस्थितं शुद्धमविनाशिनं सर्वाधारं सर्वोपरि विराजमानं ज्ञातुं यः प्रयतते सपत्र दुःखसागरं तरति ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ऊर्ध्वमूलः) जिसकी जड़ ऊपर को और (अवाक्शाखः) नीचे को डाली हैं ऐसा (एषः) यह प्रत्यक्ष मनुष्य शरीर (प्रवाहसे) (सनातनः) सनातन अनादि (अश्वत्थः) कल ठहरेगा वा नहीं इस प्रकार जिसका जीवन अनित्य है अर्थात् पीपल वृक्ष के समान स्वरूप से अनित्य है। जो इस के मूल शिर वा प्रकृति आदि का भी कारण है (तदेव) वही (शुक्रम्) शुद्ध निष्कलङ्क निर्मल (तत्, उ) वह (ब्रह्म) बड़ा (तदेव) वही (अमृतम्) अविनाशी है (ऐसा विद्वान् लोगों ने शास्त्रों में) (उच्यते) कहा है (तस्मिन्) उस ब्रह्म में (सर्वे) सब (लोकाः) पृथिव्यादि लोक (श्रिताः) धारण किये हुए हैं (तत्) उस ब्रह्म को (कश्चन) कोई लोक वा पुरुष (न, अत्येति) उल्लङ्घन नहीं करता (एतद्वै, तत्) वह यही ब्रह्म है ॥

भा०—जैसे पीपल आदि वृक्षोंमें ऊपरकी ओर शाखा नीचे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जड़ होती है उससे विपरीत यह शरीररूप वृक्ष है जिसकी शिररूप जड़ ऊपर और बाहु अँगुली गोड़ आदि शाखा (डाली) नीचे को बनी हैं यदि शिर नीचे कर के उलटा खड़ा किया जाय तो ठीक वृक्षाकार जान पड़ता है। सो देहरूप वृक्ष स्वरूपसे अनित्य और सृष्टि प्रवाह से नित्य है। इस विलक्षण कार्य्य के रचने वाले इसी देह में व्याप्त शुद्ध अविनाशी सब के आधार सर्वोपरि विराजमान परमेश्वर के जानने का जो प्रयत्न करता है वही दुःखसागर के पार हो जाता है॥ १॥

यदिदं किञ्च जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति॥ २॥

प्रलयानन्तरम् परमेश्वरादेव (निःसृतम्) उत्पन्नम् (यत्, इदम्) (किञ्च) अनन्तपरमात्मापेक्षयाल्पं तुच्छं च (जगत्) अस्ति तत् (सर्वम्) (प्राणे) प्रकृष्टतयानिति जीवयति सर्वान् प्राणिन इति सर्वस्य जीवनहेतौ परमात्मनि सत्येव (एजति) कम्पते स्वस्वकर्मणि प्रवर्त्तते किम्भूतं जगत् (महद्भयम्) विवेकिनो महद्भयहेतुकम् (वज्रम्) वज्रवद्घातकम् (उद्यतम्) जन्ममरणप्रवृत्तिहेतुकम्। यद्वा महद्भयमित्यादिशब्दत्रयं ब्रह्मण एव विशेषणं तदित्थं उद्यतं वज्रमिव महद्भयहेतुकम्। यथा खड्गोद्यतकरं स्वामिनं दृष्ट्वा भृत्याः स्वस्वकर्मणि नि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेन प्रवर्त्तन्ते तथैव सूर्यादि सकलं जगत्तस्य भयादिव यथाव-न्नियमेनास्तोदयादौ प्रवर्त्तते (ये) जनाः (एतत्) ब्रह्म (विदुः) जानन्ति (ते) (अमृताः) मुक्ताः (भवन्ति)

भा०—परमेश्वरः सर्वस्य जीवनहेतुत्वात्प्राणस्तस्मिन्सर्व-सत्ताहेतुके सत्येव सर्वं चराचरं जगत्स्वस्वकर्मणि नियमेन चेष्टते तमेव ज्ञात्वा दुःखाद्विमुच्यते ॥ २ ॥

भाषार्थः—प्रलय की समाप्ति में परमेश्वर से ही (निस्सृ-तम्) उत्पन्न हुआ (यत्, इदम्) जो यह (किञ्च) कुछ (अ-नन्त परमेश्वर की अपेक्षा) छोटा वा तुच्छ (जगत्) जगत् है वह (सर्वम्) सब (प्राणे) सब प्राणियों के जीवन के हेतु परमात्मा की विद्यमानता में ही (एजति) अपने २ कर्म में प्रवृत्त होता है वह जगत् कैसा है कि (महद्भयम्) विवेकी जन को बड़े भय वा दुःख का हेतु (जैसे आँख में पड़ा तिनका अधिक दुःख देता वही तृण अन्यत्र शरीर पर दुःख नहीं देता वैसे ही संसारी छोटे २ दुःख भी विवेकी पुरुष को बड़े २ प्रतीत होते हैं) (वज्रम्) वज्र के तुल्य पीड़ा देनेवाला (उ-द्यतम्) जन्ममरण के प्रवाह को बढ़ाने वाला जगत् है अथवा (महद्भयम्) इत्यादि तीन पद ब्रह्म के ही विशेषण माने जावें तो अनुचित नहीं जैसे—उठाये हुए शस्त्र के तुल्य ब्रह्म बड़े भय का हेतु है। जैसे खड्ग हाथमें लिये हुए स्वामी को देखकर भृत्यलोग नियमपूर्वक अपना २ काम करते हैं वैसे सूर्यादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब जगत् उस परमेश्वर के भय से उदय अस्त आदि काम मे नियमपूर्वक यथावत् प्रवृत्त रहता है (ये) जो मनुष्य (एतत्) इस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) मुक्त (भवन्ति) होते हैं ॥

भा०—परमेश्वर सबके जीवन का हेतु होने से प्राणनामक है सबकी विद्यमानता के तुल्य उसके विद्यमान होने से ही सब चराचर जगत् अपने २ काम में नियमपूर्वक चेष्टा करता है उसी को जान के दुःख से छूट सकते हैं ॥ २ ॥

भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः । भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥ ३ ॥

कथं भयहेतुकं ब्रह्म तदेव स्पष्टयति—(अस्य) ब्रह्मणः (भयात्) (अग्निः) (तपति) (भयात्) (सूर्यः) (तपति) (भयात्) (इन्द्रः) विद्युत् विद्योतते सर्वाध्यक्षो राजा वा (च) (वायुः) भयाद् वाति (च) (पञ्चमः) (मृत्युः) (धावति) इतस्ततो धावनेन प्राणिनो नियमानुकूलं मारयति। यद्वा यत्र ब्रह्म मृत्युं नेच्छति ततः पृथग् धावति न तं मारयितुं शक्तः ॥

भा०—यथोद्यतवज्रहस्तं स्वामिनमभिमुखीभूतमायान्तमालोक्य प्रेष्याः स्वस्वकर्मणि नियमेन धावन्ति तथैव परब्रह्मणो भयादिव सूर्यचन्द्रनक्षत्रादिकमखिलं जगत्प्रतिक्षणमविश्रान्तं नियमाकूलं धावति तज्ज्ञानादेव मुक्तिर्भवितुमर्हति ॥३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—भय का हेतु ब्रह्म कैसे है सो स्पष्ट कहते हैं—(अस्य) इस ब्रह्म के (भयात्) भय से (अग्निः) अग्नि (तपति) दाह करने के गुण से विरुद्ध नहीं होता (भयात्) उसी के भय से (सूर्यः) सूर्य (तपति) ताप करता (भयात्) उसके भय से (च) ही (इन्द्रः) बिजुली चमकती वा सब का अधिष्ठाता चक्रवर्त्ती राजा अपना ठीक २ काम करता (च) और (वायुः) वायु उसी के भय से चलता है तथा (पञ्चमः) पाँचवां (मृत्युः) मृत्यु भी (धावति) उसी के भय से इधर उधर भागकर नियमानुकूल प्राणियों को मारता है अथवा जिसका मरना ब्रह्म की इच्छा से विपरीत है उससे पृथक् भागता है उसको मार नहीं सकता ॥

भा०—जैसे हाथ में शस्त्र उठाये हुए स्वामी को सम्मुख आते देखकर भृत्य लोग अपने २ काम पर नियम से भागते हैं वैसे ही परब्रह्म के भय से सूर्य चन्द्र और तारा आदि सब जगत् प्रतिक्षण विश्राम न लेता हुआ नियमानुकूल भागता है। उसको जान के ही मुक्ति हो सकती है ॥ ३ ॥

इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥ ४ ॥

(चेत्) यदि मनुष्यः (शरीरस्य) (विस्रसः) विध्वंसनात् (प्राक्) पूर्वमेव (इह) अस्मिञ्जन्मनि लोके वा (बोद्धुम्) (अशकत्) ब्रह्मणो भयादेव सर्वं जगत्स्वस्वकर्मणि चेष्टत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति ज्ञातुं शक्नोति तर्हि वर्त्तमाने जन्मन्येव कल्याणभाग् भवति। चेद्यदि बोद्धुमिह न शक्नोति (ततः) तस्मादबोधात् (सर्गेषु) सृज्यन्ते स्रष्टुं योग्या मनुष्यादिप्राणिनो येषु तेषु (लोकेषु) पृथिव्यादिषु (शरीरत्वाय) शरीरभावाय शरीरमुपादातुम् (कल्पते) समर्थो भवति॥

मनुष्येण शरीरपतनात्पूर्वमेवात्मज्ञानाय प्रयत्नोऽनुष्ठेयः। यस्मादिहैव ब्रह्मज्ञानप्रकाशेनाज्ञानान्धकारनिवृत्तौ सर्वोपद्रवा निवर्त्तेरन् जन्मान्तरे पशुतिरश्चादियोनिषु विहरन् कदा प्रसङ्गः स्यात्। नहि सदा मनुष्ययोनावुत्तमविवेकप्रसङ्गे च जन्म स्यादिति सम्भवः॥ ४॥

भाषार्थः—(चेत्) यदि मनुष्य (शरीरस्य) शरीर के (विस्रसः) विध्वंस होने अर्थात् छूटने से (प्राक्) पहिले ही (इह) इस जन्म वा लोकमें (बोद्धुम्) जानने को (अशकत्) ब्रह्म के भय से ही सब जगत् अपने २ काम में चल रहा है इस प्रकार गुण कर्मों सहित ब्रह्म को जान सकता है तो उसी जन्म में कल्याण भागी होता है। यदि नहीं जान सकता तो (ततः) उस अज्ञान के होने से (सर्गेषु) रचना में आने वाले मनुष्यादि प्राणी जिन में रचे जाते उन (लोकेषु) पृथिव्यादि लोकों में (शरीरत्वाय) शरीर ग्रहण करने के लिये (कल्पते) समर्थ होता है॥

भा०—मनुष्य को योग्य है कि शरीर छूटने से पहिले ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मज्ञान के लिये प्रयत्न करे जिससे इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान रूप प्रकाश से अज्ञानरूप अन्धकार की निवृत्ति होने पर सब उपद्रव शान्त होवें जिससे अन्त समय पश्चात्ताप न करना पड़े कि हमने कुछ न कर पाया जंजाल में ही जन्म बीत गया। जन्मान्तर में पशु पक्षी आदि योनियों में भ्रमता हुआ कब मनुष्य योनि में आने का अवसर मिलेगा? सदा मनुष्य योनि में और वहाँ भी उत्तम ज्ञानी लोगों में जन्म हो यह सम्भव नहीं ॥ ४ ॥

यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके। यथाप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥ ५ ॥

(यथा) (आदर्शे) (स्वमुखादिदृश्यते) (तथा) तेनैव प्रकारेण (आत्मनि) शुद्धे निर्मले बुद्धिरूपेऽन्तःकरणे ध्यानयोगेनात्मतत्त्वं दृश्यते (यथा) (स्वप्ने) स्वप्नावस्थायामिन्द्रियार्थाभावेऽपि पदार्थाः प्रत्यक्षा इव दृश्यन्ते श्रूयन्ते च(तथा) (पितृलोके) ज्ञानिकृतोपदेशे बद्धेन ध्यानेनात्मा दृश्यते (यथा) (अप्सु) उदके (परीव, ददृशे) परिदृश्यत इवाविस्पष्टावयवं शरीरं दृश्यते (तथा) (गन्धर्वलोके) गाथकैः कृते विज्ञानसम्बन्धिनि गाने कृतेन ध्यानेनात्मा दृश्यते (छायातपयोरिव) तथा छायातपयोः स्पष्टं भेदो लक्ष्यते तथा (ब्रह्मलोके) ब्रह्मा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुडे मूर्द्धनि कृतेन निर्बीजसमाधिना बुद्धिपुरुषयोर्भेदो विस्पष्टं लक्ष्यते ॥

भा०—सर्वेषु ध्यानेषु मूर्धनि कृतं ध्यानमेवोत्तमम् । तत्र समाधाय ब्रह्मात्मतत्त्वं विस्पष्टं ज्ञात्वा मनुष्यो मुक्तो भवति॥५॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (आदर्शे) दर्पण में अपना मुख आदि दीखता (तथा) वैसे ही (आत्मनि) शुद्ध निर्मल बुद्धि-रूपी अन्तः-करण में ध्यानयोग से आत्मा दीखता है (यथा) जैसे (स्वप्न) स्वप्नावस्थामें इन्द्रियों और वस्तुका सम्बन्ध न होनेपर भी पदार्थ प्रत्यक्ष जैसे दीखते वा सुन पड़ते हैं (तथा) वैसे (पितृलोके) ज्ञानी जनों ने किये उपदेशमें बँधेहुए ध्यान से आत्मा दीखता (यथा) जैसे (अप्सु) जल में (परीव, ददृशे) सब ओर से गोलाकार स्पष्ट अवयवों की प्रतीति के विना शरीर दीखता (तथा) वैसे (गन्धर्वलोके) गाने वालों ने किये विज्ञानसम्बन्धी गान में किये ध्यानसे आत्मा दीखता (छायातपयोरिव) जैसे छाया और घाममें स्पष्ट भेद प्रतीत होता वैसे (ब्रह्मलोके) ब्रह्मरण्ड मूर्द्धा मस्तक में किये निर्बीज वा निर्विकल्प समाधि से बुद्धि और पुरुष का स्पष्ट भेद दीख पड़ता है।

भा०—सब ध्यानों में मूर्द्धा में किया ध्यान ही सबसे उ-त्तम है वहाँ समाधि जमा ब्रह्मरूप आत्मा को स्पष्ट जान के मनुष्य मुक्त हो सकता है ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥ ६ ॥

(पृथगुत्पद्यमानानाम्) स्वस्वविषयशब्दादिग्रहणप्रयोजनाय स्वस्वकारणादाकाशादेः पृथक् पृथगुत्पन्नानाम् (इन्द्रियाणाम्) श्रोत्रादीनाम् नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावात्सच्चिदानन्दस्वरूपात्परमात्मनः (पृथग्भावम्) (च) (यत्) यौ (उदयास्तमयौ) उत्पत्तिविनाशावाविर्भावतिरोभावौ तावपीन्द्रियाणां शरीरस्य वा स्त इति (मत्वा) ज्ञात्वा (धीरः) धीमान् विवेकी जनः (न, शोचति) न शोकाकुलो भवति ॥

भा०—परमात्मा शरीरेन्द्रियैः कदाचिदपि न संयुज्यते जीवस्तु संयुज्यते । अतः परमेश्वरस्यैवेन्द्रियेभ्यः पृथग्भाव उच्यते । आविर्भावतिरोभावौ चेन्द्रियाणां जीवस्य वा जन्ममरणप्राप्तौ भवतो न परस्य । स तु सदैकरसो नित्य एकः शुद्ध उत्पत्तिविनाशधर्मात्पृथग्वर्त्तमान इति ज्ञात्वा ज्ञानी शोकातिगो मोदते ॥ ६ ॥

भावार्थः—(पृथगुत्पद्यमानानाम्) अपने २ शब्दादि विषय के ग्रहण करने के लिये अपने २ आकाशादि कारण से पृथक् २ उत्पन्न हुए (इन्द्रियाणाम्) श्रोत्रादि इन्द्रियां नित्य शुद्ध मुक्तस्वभाव सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मासे (पृथग्भावम्) पृथक् हैं (च) और (यत्) जो (उदयास्तमयौ) उत्पत्ति विनाश वा प्रकट अप्रकट होना है वे भी इन्द्रियों तथा शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ही धर्म हैं इस प्रकार सब से पृथक् शुद्ध सनातन परमात्मा को (मत्वा) जानके (धीरः) बुद्धिमान् सत् असत् का विवेक करने वाला पुरुष (न, शोचति) शोकयुक्त नहीं होता ॥

भा०—परमेश्वर शरीर और इन्द्रियों के साथ कभी संयुक्त नहीं होता किन्तु जीव संयुक्त होता है। इस कारण परमेश्वर का ही इन्द्रियों से पृथक् होना कहा है। जन्म मरण की प्राप्ति में इन्द्रियों वा जीव का प्रकट अप्रकट होना होता है किन्तु परमात्मा के नहीं वह तो सदा एकरस, नित्य एक, शुद्ध और सनातन उत्पत्ति विनाश से सदा पृथक् है ऐसा जानकर ज्ञानी शोक से रहित सदा आनन्द भोगता है ॥ ६ ॥

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्त्वमुत्तमम् ।
सत्त्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥ ७ ॥

(इन्द्रियेभ्यः) ग्राहकाणीन्द्रियाणि ग्राह्या विषयास्तद्द्वयमपीन्द्रियशब्देन गृह्यते विषयेन्द्रियेभ्यः (मनः) (परम्) सूक्ष्मम् (मनसः) (सत्त्वम्) सत्त्वगुणात्मिका बुद्धिः (उत्तमम्) शुद्धा सूक्ष्मा च (सत्त्वात् अधि) उपरि शुद्धं सूक्ष्मम् (महान्, आत्मा) महत्तत्त्वमुत्तमम् (महतः) महतत्त्वात् (अव्यक्तम्) प्राकृतिनामकं कारणम् (उत्तमम्) ॥

भा०—इन्द्रियादिभ्यः परेषां शुद्धत्वमुत्तमत्वं सूक्ष्मत्वं च प्रत्यगात्मवृत्तिकरणाय प्रतिपाद्यते ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—(इन्द्रियेभ्यः) इन्द्रिय और उनके शब्दादि विषयों से (मनः) मन (परम्) सूक्ष्म और निर्मल (मनसः) मनसे (सत्त्वम्) सत्त्वगुण रूप बुद्धि (उत्तमम्) उत्तम निर्मल वा सूक्ष्म (सत्त्वात्) बुद्धि से (अधि) ऊपर शुद्ध सूक्ष्म (महान्, आत्मा) महत्तत्त्व उत्तम (महतः) महत्तत्त्व से (अव्यक्तम्) प्रकृतिनामी कारण (उत्तमम्) उत्तम वा सूक्ष्म निर्मल है ॥

भा०—इन्द्रियादि से पर २ मन आदि का शुद्ध उत्तम और सूक्ष्म होना इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म में चित्त ठहराने के लिये कहा गया है ॥ ७ ॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥८॥

(अव्यक्तात्) सर्वोपादानकारणात् (पुरुषः) पुरि ब्रह्माण्डे शयानः (व्यापकः) (च) (अलिङ्गः) अचिह्नः (एव) परमेश्वरः (परः) सूक्ष्मः शुद्धश्च (यत्) यम् (ज्ञात्वा) (जन्तुः) मनुष्यः (मुच्यते) दुःखादिति शेषः (च) (अमृतत्वम्) मुक्तभावम् (गच्छति) प्राप्नोति ॥

भा०—यः सर्वस्मात्सूक्ष्मः शुद्धोऽकृतचिह्नसङ्केतः सर्वत्र चराचरे जगति व्याप्तः परमात्मास्ति तमेव धीरो विज्ञाय मुक्तिसुखाधिकारी भवति ॥ ८ ॥

भाषार्थः-(अव्यक्तात्) सब वस्तुके उपादान कारण प्रकृतिसे (पुरुषः) सब ब्रह्माण्डमें शान्तिपूर्वक स्थित (व्यापकः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापक (च) और (अलिङ्गः) जिसमें किसी प्रकार का चिह्न नहीं होता वह परमेश्वर (परः) सूक्ष्म तथा शुद्ध (एव) ही है (यत्) जिसको (ज्ञात्वा) जान के (जन्तुः) मनुष्य दुःख से (मुच्यते) छूट जाता है (च) और (अमृतत्वम्) मुक्ति सुखको (गच्छति) प्राप्त होता है ॥

भा०—जो सब से सूक्ष्म वा शुद्ध जिसमें किसी प्रकार का चिह्न नहीं जो सब चराचर जगत् में व्याप्त परमात्मा है उसी को जानके विद्वान् पुरुष मुक्ति सुखका अधिकारी होता है ॥ ८ ॥

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् । हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ ९ ॥

अलिङ्गस्तर्हि कथं दृश्यत इत्युच्यते (अस्य) अचिन्त्याव्यक्तस्य (सन्दृशे) समक्षे किमपि (रूपम्) (न, तिष्ठति) (एनम्) परमात्मानम् (चक्षुषा) नेत्रेणापि । उपलक्षणमेतदिन्द्रियमात्रस्य सर्वेन्द्रियैरपि (कश्चन, न, पश्यति) न विजानाति कथं तर्हि विजानाति (हृदा) हृत्स्थेन (मनीषा) सङ्कल्पविकल्पात्मवृत्तिमनस्तस्याभिभावकेन निश्चयात्मकबुद्धिरूपेण (मनसा) मननसामर्थ्येन (अभिक्लृप्तः) अभितः प्रकाशितो दृष्टः परमात्मा ज्ञातुं शक्यः (ये) विद्वांसः (ए-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्) ब्रह्म (विदुः) (ते) (अमृताः) जन्ममरण रहिता मुक्ताः (भवन्ति) ॥

भा०—यद्यप्यस्य परमेश्वरस्येन्द्रियग्राह्यं किमपि स्वरूपं न विद्यते तथापि प्रत्यगात्मनि प्रवृत्तया व्यवसायात्मिकसूक्ष्मप्रज्ञया प्रकाशितो द्रष्टुं शक्यः। एवं ज्ञाने कृतश्रमा जना मुक्ता भवन्ति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—यदि उसमें कोई चिह्न नहीं तो कैसे देखा जा सकता है सो कहते हैं—(अस्य) इस अचिन्त्य और अव्यक्त स्वरूप परमेश्वर का (सन्दृशे) सामने (रूपम्) कोई रूप (न, तिष्ठति) स्थित नहीं (एनम्) इस ईश्वर को (कश्चन) कोई (चक्षुषा) आँख आदि इन्द्रिय से (न, पश्यति) देख वा जान नहीं सकता तो कैसे जान सकता है:—(हृदा) हृदयस्थ (मनीषा) मन के संकल्प विकल्परूप वृत्ति को जानने वाले निश्चयात्मक बुद्धिरूप (मनसा) मनन सामर्थ्य से (अभिक्लृप्तः) सब ओर से प्रकाशित वा प्रत्यक्ष हुआ परमात्मा जाना जा सकता है (ये) जो विद्वान् लोग (एतत्) इस ब्रह्म को (विदुः) जानते हैं (ते) वे (अमृताः) जन्ममरणरहित हुए मुक्त (भवन्ति) होते हैं ॥

भा०—यद्यपि इस परमेश्वर का इन्द्रियों से ग्रहण करने योग्य कुछ स्वरूप नहीं है तो भी भीतरी विचार में प्रवृत्त हुई निश्चयात्मक सूक्ष्म बुद्धि से प्रकाशित हुआ देखने वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानने योग्य होता है इस प्रकार ज्ञान में परिश्रम करनेवाले मनुष्य मुक्त होते हैं ॥ ९ ॥

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह । बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥ १० ॥

पुनः कथं ब्रह्म ज्ञायत इत्युच्यते (यदा) (पञ्च) (ज्ञानानि) योगाभ्यासेन स्वस्वविषयान्निवर्त्तितानि श्रोत्रादीनि ज्ञानेन्द्रियाणि (मनसा, सह) (अवतिष्ठन्ते) यदा (च) (बुद्धिः) सत्त्वगुणानुरक्ता सती बुद्धिः (न, विचेष्टते) कार्येषु विरुद्धा न प्रवर्त्तते (ताम्) विद्वांसः (परमाम्) सर्वोत्तमाम् (गतिम्) जीवन्मुक्तिदशाम् (आहुः) कथयन्ति ॥

भा०—यदा मनुष्यस्येन्द्रियच्छिद्रद्वारा निःसरणशीला बाह्याभ्यन्तरस्था बुद्धिरूपा च वृत्तिः शान्ता निरुपद्रवा तिष्ठति कथमपि स्वभावाद्विरुद्धा न भवति तदा जीवन्मुक्तिदशामापन्नस्य तस्य ज्ञानिनो मुक्तिद्वारमपावृतं विज्ञेयम् ॥ १० ॥

भाषार्थः—फिर, किस प्रकार ब्रह्म जाना जाता है सो कहते हैं-(यदा) जब (पञ्च) पाँच (ज्ञानानि) योगाभ्यास द्वारा अपने २ विषयों से हटाये गये श्रोत्र आदि ज्ञानेन्द्रिय (मनसा, सह) मन के साथ (अवतिष्ठन्ते) चञ्चलतारहित स्थित होते हैं (च) और जब (बुद्धिः) सत्त्वगुण में रँगी हुई बुद्धि (न, विचेष्टते) कार्य्यों में विरुद्ध नहीं चलती, विद्वान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग (ताम्) उस (परमाम्) सर्वोत्तम (गतिम्) अवस्था को जीवन्मुक्तिदशा (आहुः) कहते हैं ॥

भा०—जब मनुष्य के इन्द्रियरूप, छिद्रों द्वारा निकलने वाली बाह्यवृत्ति और भीतर अन्तःकरणमें ठहरनेवाली बुद्धि-रूप वृत्ति सब उपद्रवों से रहित शान्त स्थित होती है किसी प्रकार अपने नियत स्वभाव से विरुद्ध नहीं होती तब जीवन्मुक्ति दशा को प्राप्त हुए ज्ञानी जीवात्मा के लिये मुक्ति का द्वार खुला समझना चाहिये ॥ १० ॥

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥११॥

(ताम्) (स्थिराम्) अचलाम् (इन्द्रियधारणाम्) (योगम्, इति) योगसिद्धिर्योगफलमिदमेवास्तीति ज्ञानिनः (मन्यन्ते) (तदा) योगी (अप्रमत्तः) प्रमादरहित उदासीनो निर्विण्णः (भवति) (हि) यतः कारणात् (योगः) योगसिद्धौ सत्याम् (प्रभवाप्ययौ) आद्यदुष्टसंस्काराणांविनाशः शुद्धनूतनसत्वगुणवर्द्धककल्याणकारिसंस्काराणामुत्पत्तिश्च भवति ॥

भा०—यदा योगाभ्यासेन सर्वेन्द्रियाणि दृढत्वेन स्थिराणि जितानि भवन्ति तदा योगः सिद्धो भविष्यतीत्यनुमीयते । योगे प्रवृत्ते नवीनशुद्धसंस्काराणामाविर्भावः पूर्वेषां दुष्टसंस्का-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राणां च तिरोभावो जायते तदा स्वरूपेऽवस्थितो द्रष्टा प्रमादरहितो जीवात्मा याथातथ्येन सर्वं विजानाति ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(ताम्) उस (स्थिराम्) अचल (इन्द्रियधारणाम्) इन्द्रियों की धारणारूप दशा को ज्ञानी लोग (योगम्, इति) योगसिद्धि वा योग का फल है ऐसा (मन्यन्ते) मानते हैं (तदा) तब योगी (अप्रमत्तः) प्रमाद रहित उदासीन (भवति) होता है (हि) जिस कारण (योगः) योगसिद्धि होने पर (प्रभवाप्ययौ) पहिले दुष्ट संस्कारों का विनाश और सत्त्वगुण को बढ़ाने वाले कल्याणकारी शुद्ध नवीन संस्कारों की उत्पत्ति होती है ॥

भा०—जब योगाभ्यास से सब इन्द्रिय दृढ़रूप से स्थिर हुए जीत लिये जाते हैं तब योगसिद्धि होने का अनुमान निश्चित हो जाता है योग की प्रवृत्ति में नवीन शुद्ध संस्कारों की प्रकटता और पहिले दुष्ट संस्कारों का अन्तर्धान हो जाता है तब स्वरूप में स्थित प्रमादरहित द्रष्टा जीवात्मा यथार्थरूप से सबको जानता है ॥ ११ ॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥ १२ ॥

इन्द्रियाणां विषयेभ्यो निरोधमन्तरेण ब्रह्मणस्तद्विषयत्वाभावान्न केनचिदिन्द्रियेणोपलभ्यत इत्युच्यते-(नैव, वाचा, न, मनसा, न, चक्षुषा) न चान्यैरिन्द्रियैरपि ब्रह्म (प्राप्तुम्, शक्यः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किन्तु (अस्तीति) (ब्रुवतः) पुरुषात् (अन्यत्र) (तत्) (कथम्, उपलभ्यते) न कथमपीत्यर्थः । अर्थादस्ति कश्चित्सर्वनियन्ता सर्वरचयिता सर्वाधारः सर्वाध्यक्षश्च नहीमानि कार्याणि कर्त्तारमन्तरेण सम्भवन्तीत्येवं प्रकारेण तस्य सत्त्वं निश्चित्य ध्यानेन प्राप्तुं शक्यः ॥

भा०—शब्दादिविषया इन्द्रियैर्गृह्यन्ते । परमेश्वरश्च शब्दादिष्वन्यतमो नास्ति य इन्द्रियग्राह्यः स्यात् । आस्तिका आहुः-अस्ति परोक्षः परमात्मा कश्चित् । सर्ववस्तुषु बहुविधं तारतम्यमुपलभ्यते न कुत्रचिन्निष्ठा पर्यवसानं दृश्यते निष्ठया चावश्यं भवितव्यम् । एकस्मादपरोऽधिको विद्वानैश्वर्यवानस्ति यतः परोऽन्यो विद्वानैश्वर्यवान् वा न विद्यते यत्र सर्वतारतम्यस्य निष्ठा पर्यवसानं वास्ति स एव परमेश्वरः । सकर्त्तृकमिदं जगत्कार्य्यत्वात्, घटादिवत्, यथा घटादिकार्याणि कुलालादिकर्त्तारमन्तरेण न सम्पद्यन्ते तथैवेदं जगदपि तस्मात्कार्यत्वादीश्वरकर्तृकं जगत् । नह्यनन्तशिल्पं नानारचनोपपन्नमिदमल्पज्ञेन केनचिन्निर्मातुं शक्यम् । तस्मादस्ति कश्चिदस्य सर्वस्य निर्माताऽनन्तविद्यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिमान् स एवेश्वरः ॥ १२ ॥

भाषार्थः—इन्द्रियोंको विषयोंसे रोके बिना ब्रह्म इन्द्रिय का विषय न होने से किसी इन्द्रियसे नहीं प्राप्त होता सो कहते हैं—(नैव, वाचा) न तो वाणीसे (न, मनसा) न मन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (न, चक्षुषा) न आँखसे तथा न अन्य इन्द्रियोंसे ब्रह्म (प्राप्तुम्) प्राप्त (शक्यः) हो सकता है किन्तु (अस्तीति) ब्रह्म है ऐसा (ब्रुवतः) कहते, हुए से (अन्यत्र) अन्य प्रसंग में (तत्) वह (कथम्) किस प्रकार (उपलभ्यते) प्राप्त होता है ? अर्थात् किसी प्रकार नहीं। अर्थात् कोई सबका नियन्ता सबका उत्पादक सबका आधार सबका स्वामी है जिसका अध्यक्ष [मालिक] कोई न हो क्योंकि ये काम बिना किसी कर्त्ताके नहीं हो सकते इस प्रकार उसकी विद्यमानता का निश्चय कर ध्यानसे वह ईश्वर प्राप्त हो सकता है ॥

भा०—शब्दादि विषय इन्द्रियोंसे गृहीत होते हैं और परमेश्वर शब्दादि विषयोंमेंसे कोई एक नहीं है जो इन्द्रियोंसे ग्रहण किया जाय। आस्तिक लोग कहते हैं कि परोक्ष परमात्मा कोई अवश्य है क्योंकि सब वस्तुओंमें बहुत प्रकारका न्यूनाधिक भाव मिलता है न्यूनाधिक होनेकी कहीं अवधि (हद्द) वा समाप्ति नहीं दीखती और अवधि अवश्य होनी चाहिये संसार में एकसे अधिक दूसरा विद्वान् वा धनवान् दीख पड़ता है जिससे अधिक विद्वान् वा ऐश्वर्यवान् कोई नहीं जहाँ सब न्यूनाधिक भावोंकी अवधि वा समाप्ति हो जाती है वही परमेश्वर है। इस जगत् का कोई कर्त्ता अवश्य है क्योंकि जगत् एक प्रकारकी बनावट है घड़े आदिके तुल्य जैसे घट आदि बनावटी पदार्थ कुम्हार आदि कर्त्ता के बिना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं बनते इससे कार्य होनेसे इस जगत्का कर्त्ता ईश्वर है क्योंकि अनन्त कारीगरी और नाना प्रकारकी रचनासे युक्त इस जगत् का बनाना किसी अल्पज्ञ मनुष्यका काम नहीं है इससे इस सब प्रत्यक्ष जगत्का रचने वाला अनन्त विद्यावान् सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् जो कोई है वही परमेश्वर है ॥ १२ ॥

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्त्वभावेन चोभयोः । अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्त्वभावः प्रसीदति ॥ १३ ॥

(उभयोः) अस्ति नास्तीत्येतयोर्मध्ये (तत्त्वभावेन) आकाशादिपञ्चतत्त्वानां सत्तया (च) सत्त्वगुणात्मिकया सूक्ष्मप्रज्ञया चास्य सर्वस्य नियन्ता परोक्षः कश्चित् (अस्ति) (इत्येव)(उपलब्धव्यः) यदि न स्यात्तर्हि तत्त्वानि नियन्तारमन्तरेण कथं निरवलम्बानि नियतान्यवतिष्ठेरन् (अस्तीत्येव, उपलब्धस्य) अस्तीति विश्वासाद् ध्यानेनोपलब्धस्य पुरुषस्य (तत्त्वभावः) सात्मकः शरीरेन्द्रियसमुदायः (प्रसीदति) प्रसन्नः शोकमोहादिरहितो भवति ॥

भा०—आस्तिकस्य परमात्मध्याननिष्ठस्यैव पुरुषस्य चेतः प्रसीदति-प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते । प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठत इति भगवद्गीतासु ॥ एवं सति सुखमेवोपलभ्यते नहीदृशं सुखं नास्तिकेन प्राप्तुं शक्यमत उभयोर्मध्येऽस्तीत्येव मन्यमानः श्रेयो भाग्भवति ॥१३॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(उभयोः) होने न होने में (तत्त्वभावेन) आकाशादि पञ्चतत्त्वसम्बन्धी कार्य वस्तुओं की विद्यमानता (च) और सत्त्वगुणरूप सूक्ष्मबुद्धि से इस सबका नियन्ता परोक्ष कोई ईश्वर (अस्ति) है (इत्येव) इसी प्रकार (उपलब्धव्यः) प्राप्त होने योग्य है यदि न हो तो पञ्चतत्त्व किसी नियन्ता के विना निरालम्ब नियमपूर्वक कैसे ठहरें ? (अस्तीत्येव) है ऐसे ही विश्वाससे (उपलब्धस्य) ध्यान द्वारा ब्रह्म को प्राप्त होनेवाले मनुष्य का '(तत्त्वभावः) चेतन शरीर इन्द्रियों का समुदाय (प्रसीदति) शोकरहित प्रसन्न होता है

भा०—परमात्मा के ध्यान में निष्ठ आस्तिक पुरुष का ही चित्त प्रसन्न होता है। भगवद्गीता में कहा है कि चित्त के शुद्ध प्रसन्न होनेसे सब दुःखोंकी हानि हो जाती और जिसका चित्त प्रसन्न वा निर्मल निष्कलङ्क है उसी की बुद्धि शीघ्र स्थिर हो जाती है। ऐसा होने से नास्तिक को सुख कदापि नहीं मिल सकता इस अस्ति नास्ति दोनों में से अस्ति को मानता हुआ ही कल्याण का भागी होता है ॥ १३ ॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥ १४ ॥

(ये) (अस्य) जीवात्मनः (हृदि) अन्तःकरणे (श्रिताः) वासनावासिताः (कामाः) प्रमदासङ्गादिजन्यविषयभोगाभिलाषाः (सर्वे) सर्वे ते (यदा) (प्रमुच्यन्ते) परवैराग्याभ्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ससेवनेन दूरीभवन्ति (अथ) तदानीम् (मर्त्यः) (अमृतः) मुक्तः (भवति) (अत्र) मुक्तिदशायाम् (ब्रह्म) (समश्नुते) सम्यगाप्नोति व्याप्नोति वा ॥

भा०—यावद्विषयभोगेषु रागस्तद्विरुद्धेषु द्वेषश्च न निवर्त्तते तावन्मुक्तिर्भवितुमशक्या । यदाऽनादिकालसञ्चितविषयभोगोत्कण्ठा योगाभ्यासेन हृदयाद्दूरीभवति तदा विवेकी जन्ममरणप्रवाहग्राहाद्विमुक्तो ब्रह्माप्नोति ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(ये) जो अस्य इस जीवात्मा के (हृदि) अन्तःकरण में (श्रिताः) वासनाओं से बसाई हुई (कामाः) स्त्रीप्रसङ्गादिसे होनेवाली विषयभोगों की अभिलाषा (सर्वे) सब हैं वे (यदा) जब (प्रमुच्यन्ते) परवैराग्य के सेवन से दूर हो जाती हैं (अथ) तब (मर्त्यः) मनुष्य (अमृतः) मुक्त (भवति) होता और (अत्र) इस मुक्ति दशा में (ब्रह्म) ब्रह्म को (समश्नुते) सम्यक् प्राप्त होता है ॥

भा०—जब तक विषयभोगों में राग और उससे विरुद्धोंमें द्वेष की निवृत्ति नहीं होती तब तक मुक्ति नहीं हो सकती । जब अनादि काल से सञ्चित विषय भोग की उत्कण्ठा योगाभ्यास द्वारा हृदयसे दूर हो जाती है तब विवेकी पुरुष जन्ममरणके प्रवाहरूप ग्राहसे छूटकर ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥१४॥

यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥ १५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्तमेव द्रढयति-(यदा) (इह) अस्मिञ्ज गति (हृदयस्य) अन्तःकरणस्य (सर्वे)(ग्रन्थयः) अहं बालो युवा वृद्धः काणः खञ्जः. पुरुषः स्त्री क्लीवो वास्मि सुखसाधनमिदं सम्पन्नमिदं च सम्पत्स्यते दुःखसाधनमिदमित्थं हास्यामि जातोऽहं मरिष्यामि हनिष्यामीत्यादिवासनारूपरश्मिषु दृढबन्धनानि सन्ति तानि (प्रभिद्यन्ते) द्विधा भवन्ति। शरीरस्येमे धर्मा अहं जीवात्मा शुद्धो नित्यश्चास्मि नाहं स्वरूपतो विकारापन्न इति ज्ञानं ग्रन्थिनिर्मोकः (अथ) तदा (मर्त्यः) (अमृतः) मुक्तः (भवति) (एतावत्) (अनुशासनम्) शास्त्रोपदेशः। एवं कृत्वैवेष्टमाप्नोत्यनिष्टं जहाति.नान्यथा ॥

भा०—यदा मनुष्यस्य हृदयबन्धनानि मुच्यन्ते तदा स मुक्तो भवति। अतोऽन्तःकरणस्थबन्धनानां निर्मोके परमः प्रयत्नो विधेयो नातः परं कर्त्तव्यमुपदेशो वास्ति ॥ १५ ॥

भाषार्थः—फिर उसी बात को दृढ़ करते हैं (यदा) जब (इह) इसी जन्म में (हृदयस्य) अन्तःकरण को (सर्वे) सब (ग्रन्थयः) गाँठें [कि मैं बालक, ज्वान, वृद्ध, काणा, खञ्जा, स्त्री, पुरुष वा नपुंसक हूँ मेरे सुख का अमुक साधन सिद्ध हो गया और अमुक सिद्ध होगा तथा दुःख के इस २ हेतु को इस प्रकार छोड़ दूंगा। मैं उत्पन्न हुआ मरूँगा वा किसी को मार डालूँगा इत्यादि वासनारूप रस्सियों में दृढ़तापूर्वक लगी हुई] (प्रभिद्यन्ते) छूट जाती हैं तो विचारता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि ये बाल्यादि शरीर के धर्म हैं मैं जीवात्मा शुद्ध नित्य हूँ मैं स्वरूपसे विकारी नहीं होता ऐसा ज्ञान गाँठों का छूटना है (अथ) तब (मर्त्यः) मनुष्य (अमृतः) मुक्त (भवति) होता है (एतावत्) इतना ही (अनुशासनम्) शास्त्र की शिक्षा वा उपदेश है ऐसा करने से ही मनुष्य अनिष्ट को छोड़ इष्ट को प्राप्त होता है ॥

भा०—जब मनुष्य के हृदय के बन्धन छूट जाते हैं तब वह मुक्त होता है इससे हृदय के बन्धन छूटने के लिये बड़ा प्रयत्न करना चाहिये इससे परे ज्ञानी को कुछ कर्त्तव्य वा उपदेश नहीं है ॥ १५ ॥

शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासाम्मूर्द्धानमभिनिःसृतैका। तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङन्या उत्क्रमेण भवन्ति ॥ १६ ॥

प्रयाणकाले योगी किं कुर्यादित्युच्यते—(हृदयस्य) हृदयसम्बन्धिन्योऽन्तःकरणस्थाः (शतम्) (च, एका, च) (नाड्यः) सन्ति (तासाम्) मध्ये (एका) सुषुम्णा नाडी हृदयात् (मूर्द्धानम्) (अभिनिःसृता) (तया) नाड्या (ऊर्ध्वम्) उत्क्रम्याण्डच्छिद्रद्वारा (आयन्) निस्सरन् म्रियमाणो जीवात्मा (अमृतत्वम्) अमरणधर्मतां मुक्तिभावम् (एति) प्राप्नोति। तामेकां विहाय (अन्याः) शतं नाड्यः (उत्क्रमेण)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथक्क्रमेण (विष्वङ्) नानाशरीरधारणहेतुकाः (भवन्ति) अर्थादन्यनाडीद्वारा म्रियमाणः संसारप्रवाहमेवावाप्नोति ॥

भा०—स्वस्य मरणावसरं योगी पूर्वतएव जानाति। शरीराद्बहिर्निस्सरणकालात्पूर्वमेव योगी स्वात्मानं वशीकृत्य सुषुम्णया सार्द्धं योजयेत। तया नाड्या शरीरान्निस्सरन् मुक्तिमाप्नोति। सर्वे नाडीभिर्निस्सरन्ति। अविद्याग्रस्ता नहि जानन्ति के वयं कदा कथं निस्सरामः। अकृतयोगाभ्यासः पुरुषः प्रयाणकाले यथेष्टं निस्सर्त्तुं नार्हति। अतः प्रयाणकालात्पूर्वमेव योगाभ्यासः कार्यः ॥१६॥

भा०—मरणान्त समय योगी क्या करे सो कहते हैं:—(हृदयस्य) हृदय में ठहरने वाली (शतम्) सौ (च) और (एका) एक (नाड्यः) नाड़ी हैं (तासाम्) उनके बीच (एका) सुषुम्णा नाड़ी हृदय से चल के (मूर्द्धानम्) मस्तक में (अभिनिस्सृता) जा निकली है (तया) उस नाड़ी के साथ (ऊर्ध्वम्) ग्यारह द्वारों में जो ब्रह्माण्ड का छिद्र कहा है उसके द्वारा (आयन्) शरीर से निकलता-मरता हुआ जीवात्मा (अमृतत्वम्) मुक्ति को (एति) प्राप्त होता है। उस नाड़ी को छोड़ (अन्याः) अन्य सौ नाड़ी (उत्क्रमेण) विपरीत फल देनेवाली (विष्वङ्) नानाप्रकार के शरीरधारण के हेतुओं से (भवन्ति) होती हैं अर्थात् अन्य नाड़ी द्वारा मरा हुआ प्राणी संसार के प्रवाह को प्राप्त होता है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—अपने मरण का समय योगी पूर्व से ही जान लेता है। शरीर से निकलने का समय आने से पूर्व ही योगी अपने आत्मा को वश में करके सुषुम्णा नाड़ी के साथ युक्त करे उस नाड़ी द्वारा शरीर से निकला हुआ जीवात्मा मुक्ति को प्राप्त होता है जीव नाड़ियों के द्वारा ही निकलते हैं। अविद्या में फँसे होने से नहीं जानते कि हम कौन हैं कब और कैसे निकल जाते हैं। जिसने योगाभ्यास नहीं किया वह मरण समय ब्रह्माण्ड द्वारा नहीं मर सकता इस लिये पहिले ही योगाभ्यास करना चाहिये ॥ १६ ॥

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः । तंस्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण । तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृत-मिति ॥ १७ ॥

यः (अङ्गुष्ठमात्रः) उक्तप्रकारेणाङ्गुष्ठमात्रस्थानीयः (जनानाम्) उत्पन्नानां प्राणिनां सम्बन्धिनि (हृदये) (सदा) (सन्निविष्टः) अवस्थितः (अन्तरात्मा) (पुरुषः) शरीरेन्द्रियसङ्घातस्य पालको जीवात्मास्ति (तम्) प्रयाण-काले (मुञ्जादिव इषीकाम् धैर्येण) प्रमादं विहाय शनैः शनैः (प्रवृहेत्) पृथक् कुर्यात् (तम्) वास्तवस्वरूपेण (अमृ-तम्) अमरणधर्मकम् । स्वभावाद्रागद्वेषादिदोषरहितम् (शु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम्) शुद्धम् पवित्रं निर्मलम् (विद्यात्) जानीयात् । द्विर्वचनं ग्रन्थसमाप्तिद्योतनार्थम् ॥

भा०—जीवात्मनः सर्वस्मादधिकप्रियं स्वस्यैवशरीरमनादि कालात्तस्मिन् सुखानि भुक्तानि भुङ्क्ते चातस्तस्मिन्रागः । इद-मेवबन्धनमयमेव ग्रन्थिः । अविद्याग्रस्तोऽयं शरीरान्निस्सर्त्तुं नेच्छति निस्सरणमवशं भविष्यतीति ज्ञात्वा महत्कष्टं मन्यते तमेवंभूतं हृदयान्तर्वर्त्तिन्यङ्गुष्ठमात्रस्थानेऽवस्थितं जीवा-त्मानं योगाभ्यासादिसाधनैः शरीरबन्धनान्मोचयेत् । येन पुनः शरीरधारणं नेच्छेत् शरीराद् ग्लायेच्च । इयमुपनिषदत्रैव समाप्तेति द्विर्वचनेन सूच्यते ॥ १७ ॥

भाषार्थः—जो (अङ्गुष्ठमात्रः) उक्त प्रकार से अङ्गुष्ठमात्र स्थान में ठहरने वाला (जनानाम्) प्राणियों के (हृदये) हृदय में (सदा) सदा (सन्निविष्टः) अवस्थित (पुरुषः) शरीर इन्द्रियों के समुदाय का रक्षक (अन्तरात्मा) जीवा-त्मा है (तम्) उसको (मुञ्जादिव) मूंज से जैसे (इषीकाम्) सींक वा सिरकी को खींच लेते हैं वैसे (धैर्येण) प्रमादरहित होके धीरे २ (प्रवृहेत्) प्रथक् करे (तम्) उस जीवात्माको वास्तव स्वरूप से (अमृतम्) अविनाशी स्वभाव से राग द्वेषादि दोषरहित (शुक्रम्) पवित्र निर्मल (विद्यात्) जाने यहाँ दो बार पाठ ग्रन्थ समाप्ति जताने के लिये है ॥

भा०—जीवात्मा को सबसे अधिक प्रिय अपना ही शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अनादिकाल से उस शरीर में सुख भोगे हैं और भोगता है इससे उसमें राग है यही बन्धन और यही ग्रन्थि है। अविद्या में फँसा यह जीव शरीर से पृथक् होना नहीं चाहता। और शरीर विवश छोड़ना पड़ेगा ऐसा जान के बड़ा कष्ट मानता है उस ऐसे हृदयान्तर्वर्त्ती अङ्गुष्ठमात्रस्थान में स्थित जीवात्मा को योगाभ्यासादि साधनों द्वारा शरीर के बन्धनों से छुड़ावे जिससे फिर शरीरधारण की इच्छा न करे किन्तु ग्लानि करे। यह उपनिषद् यहीं समाप्त होगई यह दो बार पढ़ने से सूचित होता है ॥ १७ ॥

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिञ्च कृत्स्नम् । ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥ १८ ॥

(अथ) एतदुपनिषत्प्रतिपादिताया ब्रह्मविद्यायाः फलमाह (मृत्युप्रोक्ताम्) मृत्युनायमाचार्येण प्रतिपादिताम् (एताम्, विद्याम्) (कृत्स्नम्) (योगविधिम्) (च) मृत्युप्रोक्तमेव (नचिकेताः) (लब्ध्वा) (ब्रह्म, प्राप्तः) (विरजः) विरक्तः (विमृत्युः) विगतो मृत्युरस्य सः (अभूत्) (अन्यः, अपि) (यः, एवंवित्) (अध्यात्ममेव) प्राप्तः स्यात्स विरजो विमृत्युश्च भवितुमर्हति ॥

भा०—नचिकेतसा गुरूपदेशाद् ब्रह्मविद्यायोगाभ्यासवि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धार्यं च सकलं सफलं प्राप्तम्। अन्योऽपि यो ब्रह्मज्ञानमिच्छेत्तेन गुरुशुश्रूषयाऽन्यैश्च यथोक्तसाधनैर्ब्रह्मज्ञानं प्राप्य सर्वबाधाभ्यो विमुक्तेन भवितव्यम् ॥ १८ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब इस उपनिषद् में कही ब्रह्मविद्या का फल कहते हैं-(मृत्युप्रोक्ताम्) यमाचार्य ने कही (एताम्) इस (विद्याम्) ब्रह्मविद्या (च) और (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण साङ्गोपाङ्ग (योगविधिम्) योग के विधान को (नचिकेतः) नचिकेता आचार्य से (लब्ध्वा) प्राप्त होके (ब्रह्म, प्राप्तः) ब्रह्म को प्राप्त हुआ (विरजः) विरक्त और (विमृत्युः) मृत्युरहित जीवन्मुक्त (अभूत्) हुआ (अन्यः) और (अपि) भी (यः एवंवित्) जो इस उक्त प्रकार गुरु की सेवा से ऐसा जानने वाला (अध्यात्ममेव) अध्यात्मविद्या को ही प्राप्त अर्थात् उक्त प्रकार इन्द्रियों की बाह्यशक्ति को रोक के भीतरी ध्यान में ही प्रवृत्त हो वह विरक्त हुआ मुक्त होने योग्य है ॥

भा०—नचिकेता गुरु के उपदेश से ब्रह्मविद्या और फलसहित सम्पूर्ण योगाभ्यास के विधान को प्राप्त हुआ। अन्य भी जो ब्रह्म ज्ञान की इच्छा करे उसको चाहिये कि गुरु की शुश्रूषा से और अन्य यथोक्त शम दम तितिक्षा उपरति आदि साधनों से ब्रह्मज्ञान को प्राप्त हो के सब दुःखों से छूटे ॥१८॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १६ ॥

अथान्ते प्रार्थनाशान्तिश्चाभिधीयते (नौ) आवाम् (सह) सहैव परमेश्वरः (अवतु) तर्पयतु (नौ) सह (भुनक्तु) पालयतु । आवाम् (वीर्यम्) ब्रह्मविद्यातो निष्पन्नं सामर्थ्यम् (सह) (करवावहै) साधयावहै (नौ) आवयोः शिष्याचार्य्ययोः (अधीतम्) अध्ययनमध्यापनं च (तेजस्वि) ब्रह्मतेजोऽन्वितमस्तु । शिष्याचार्य्यावावाम् (मा, विद्विषावहै) द्वेषं मा कुर्याव । ओ३म्शान्तिः ३ त्रिविधशान्तिविधानेनाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकाख्यं तापत्रयं शान्तं निरुपद्रवं भवतु ॥

भा०—सर्वस्मिन्कर्मणि परमेश्वर आदावन्ते च प्रार्थनीयः । उपद्रवा दुःखानि च न भवेयुरेतदर्थं शान्तिश्चाभिधेया । गुरुशिष्ययोर्लेशमात्रोऽपि भेदो न भवेत् । द्वयोरन्तःकरणं शुद्धं सेव्यसेवकप्रीतिवर्द्धकं प्रार्थनातत्परं मृदु भवेत्तदा विद्या सफला भवति । येनाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकदुःखानां शान्तिः स्यात् । अत्र द्विर्वचननिर्देशाच्छिष्याचार्य्याभ्यां स्त्रीपुंसाभ्यां वा प्रार्थना शान्तिश्च वक्तव्या ॥ १९ ॥

इति षष्ठी वल्ली समाप्ता ॥

भावार्थः—अब समाप्ति में प्रार्थना और शान्ति कहते हैं (नौ) हम दोनों (गुरुशिष्यों) को (सह) साथही परमेश्वर (अवतु) तृष्णा को छुड़ा के तृप्त (सन्तुष्ट) करे (नौ) हम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों की (सह) साथ (भुनक्तु) रक्षा करे। हे परमेश्वर! आपकी कृपा से हम दोनों (वीर्यम्) ब्रह्मविद्या के अभ्यास से हुए सुख दुःखादि द्वन्द्व के सहनादि रूप सामर्थ्य को (सह) साथ (करवावहै) सिद्ध करें (नौ) हम दोनों का (अधीतम्) पढ़ना पढ़ाना (तेजस्वि) ब्रह्म के तेज से युक्त हो। हम दोनों (मा, विद्विषावहै) आपस में कभी द्वेष न करें (ओ३म्) हे परमात्मन्! आप ऐसी कृपा करें जिस से हमारे आध्यात्मिक मानस, आधिदैविक-वाचिक वा शाब्दिकादि तथा आधिभौतिक—शारीरिक उपद्रव वा दुःख शान्त हो जावें॥

भा०—सब कर्मों के आदि अन्त में परमेश्वर की प्रार्थना और उपद्रव वा दुःखों के हटाने के लिये शान्ति कहनी चाहिये। जब गुरु शिष्य के अन्तःकरण में लेशमात्र भी भेद न हो किन्तु दोनों का अन्तःकरण शुद्ध परस्पर प्रीति बढ़ानेवाला प्रार्थना में रंगा कोमल हो तब विद्या सफल होती है जिससे आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक दुःखों की शान्ति होकर पूर्णसुख मिलता है। इस मन्त्र में कर्त्ता क्रिया के द्विवचन पढ़ने से गुरु शिष्य वा स्त्री पुरुषादि दो २ को मिल के ईश्वर की प्रार्थना और शान्ति कहनी चाहिये॥ १९॥

इति भीमसेनशर्म्मकृतं कठोपनिषद्भाष्यं समाप्तम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

अथाथर्ववेदीयप्रश्नोप-

निषत्प्रारम्भः

इयं प्रश्नोपनिषदन्वर्थनामाऽस्ति। अस्यां षट् प्रश्नास्तेषामुत्तराणि च तत्र तत्र वर्णितानि। आद्यकण्डिकायां षड्ऋषयः प्रष्टारः परिगणितास्तेभ्यैकैकेन पृष्टेन षड्विधान्युत्तराणि पिप्पलादेन प्रतिपादितानि विशेषस्तत्र तत्र वक्ष्यते॥

भाषार्थः—यह उपनिषद् अथर्ववेद सम्बन्धी है इसमें छः प्रश्न और उनके उत्तर वहाँ २ कहे हैं इसलिये इसका प्रश्न नाम सार्थक है। पहिली कण्डिका में भारद्वाजादि छः ऋषि पूछनेवाले उद्यत हुए गिनाये हैं उनमें से एक २ के पूछने पर पिप्पलादि महर्षिने छः प्रकार के उत्तर कहे हैं यही इसमें विषय है विशेष व्याख्यान वहाँ २ किया जायगा॥

सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्य्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

(भारद्वाजः) भरद्वाजस्यापत्यम् । ऋष्यण् (सुकेशा) (च) इति नामकः (शैब्यः) शिवेरपत्यमिति क्षत्रियगोत्राद्वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्, इति सूत्रेण ञ्यङ् (सत्यकामः, च) इति नामकः (सौर्यायणी) सौर्यस्य युवापत्यमिति फिञ् । सौर्यायणिः छन्दोवत्त्वाद्दीर्घः (गार्ग्यः) (च) इति नामको गर्गगोत्रीयः (आश्वलायनः) अश्वलस्यापत्यम् । (कौशल्यः) (च) इति नामकः (भार्गवः) भृगुगोत्रस्थः (वैदर्भिः) विदर्भेः पुत्रः (च) एतन्नामकः (कात्यायनः) कत्यस्यापत्यम् (कबन्धी) एतन्नामकः (ते, ह) प्रसिद्धास्तपस्विनः (एते) षट् (ब्रह्मपराः) ब्रह्मैव परं येषाम् (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्मप्राप्तौ निष्ठोत्कण्ठा येषाम् (परम्) इन्द्रियादिभ्यो दूरम् (ब्रह्म) (बृहद्व्याप्तमात्मतत्त्वम् अन्वेषमाणाः) (एषः, ह) प्रसिद्धोऽयमाचार्यः (वै) निश्चयेन (तत्, सर्वम्) आत्मस्वरूपमस्मभ्यम् (वक्ष्यति, इति) मत्वा (समित्पाणयः) समिधः पाणिषु येषाम् (ते) सुकेशादयः (भगवन्तम्) पूज्यं गुरुम् (पिप्पलादम्) (उपसन्नाः) प्रष्टुं समीपं जग्मुः ॥

भावार्थः—सगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमिति श्रुत्यन्तरादवगम्यते नैत्यकाग्निहोत्रार्थं समिधां प्रयोजनमवगम्य तासां समर्पणमस्ति न तु नियमोऽस्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिध एव समर्पणीया इति किन्तु महाजनसमागमाय गच्छता तादृशं वस्तु गृहीत्वा गन्तव्यं यत्तस्य मान्यस्येप्सिततमं स्यात् । यथोक्तगुरुसम्बन्धादेवाधिकारी शिष्यो ब्रह्म ज्ञातुं शक्तोऽतएव ब्रह्मज्ञं पिप्पलादं ब्रह्मज्ञानप्राप्तये सुकेशादयो गतवन्त इति ॥ १ ॥

भाषार्थः—(भारद्वाजः) भरद्वाजगोत्री (सुकेशा) १ सुकेशा (शैव्यः) क्षत्रियगोत्री शिवि का पुत्र (सत्यकामः) २ सत्यकाम (सौर्यायणी) सौर्य का पुत्र (गार्ग्यः) ३ गार्ग्य गर्गगोत्री (आश्वलायनः) अश्वलका पुत्र (कौशल्यः) ४ कौशल्यनामी (भार्गवः) भृगुगोत्री (वैदर्भिः) विदर्भि का पुत्र ५ वैदर्भि (कात्यायनः) कत्य का पुत्र (कबन्धी) ६ कबन्धी (ते, ह) प्रसिद्ध तपस्वी (एते) ये छः (ब्रह्मपराः) सबसे परे ब्रह्मको मानने और (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्मकी प्राप्तिमें उत्कण्ठा रखने वाले (परम्) इन्द्रियादिसे परे (ब्रह्म) सर्वव्यापक आत्मतत्त्व का (अन्वेषमाणाः) खोज करते हुए (एषः, ह) यह प्रसिद्ध आचार्य (वै) निश्चयकर (तत्, सर्वम्) उस सब आत्मस्वरूप को हमारे लिये (वक्ष्यति, इति) कहेगा ऐसा मानकर (समित्पाणयः) हाथों में समिधा लिये हुए (ते) वे सुकेशादि छः ऋषि (भगवन्तम्) पूज्य गुरु (पिप्पलादम्) पिप्पलाद के पास (उपसन्नाः) पूछने को गये ॥

भा०—एक श्रुतिमें आज्ञा है कि जिसको ब्रह्मज्ञानकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कण्ठा हो वह हाथमें समिधा लेकर वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी आचार्य गुरु के पास जावे क्योंकि वैदिकधर्मनिष्ठ ऋषियों को नित्य के अग्निहोत्र में समिधाओं का काम अधिक पड़ता था इस कारण समिधों का समर्पण लिखा है किन्तु नियम नहीं है कि बड़ोंके पास समिधाही लेकर जावे किन्तु यह नियम अवश्य है कि किसी मान्यपुरुष से मिलने को जावे तब कोई ऐसा पदार्थ लेता जावे जो उसको अधिक सुखदायक वा प्रिय हो । ऐसे गुरु के सम्बन्ध से अधिकारी शिष्य ब्रह्मको जान सकता है इसी कारण ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति के लिये सुकेशादि छः ऋषिजन ब्रह्मज्ञानी पिप्पलाद गुरु के समीप ब्रह्मज्ञान का उपदेश सुनने को गये ॥ १ ॥

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥२॥

पिप्पलादस्तेषां हार्दं बुद्ध्वा पात्रत्वे न्यूनत्वमालोक्येदमाह—(तान्) सुकेशादीन् (ह) (सः) पिप्पलादः (ऋषिः उवाच) यूयम् (भूयः, एव) पुनरपि (तपसा) (श्रद्धया, ब्रह्मचर्येण) च सार्द्धम् (संवत्सरम्) (संवत्स्यथ) तावन्मन्निकटं निवत्स्यथ तदनन्तरम् । (यथाकामम्) यथाभिलाषम् (प्रश्नान्) (पृच्छथ) (यदि) वयम् (विज्ञास्यामः) (सर्वम्, ह) (वः) युष्मभ्यम् (वक्ष्यामः) उपदेक्ष्यामः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यद्यपि कृततपसोऽनुष्ठितब्रह्मचर्याश्रमाः सुकेशादयस्तथापि पिप्पलादेन स्वसामीप्ये श्रद्धया गुरुं शुश्रूषितुं तपोऽनुष्ठातुं चाज्ञप्ता येन तेषां पूर्णाधिकारित्वं ब्रह्मज्ञानाय श्रद्धा च परीक्षिता स्यादिति। यदि शब्दोऽत्रात्मश्लाघादोषनिवृत्त्यर्थो नतु ज्ञानसन्देहार्थः। यथाकाममिति शब्देन यो यत्स्वाभीष्टं प्रष्टुमिच्छति तस्मै तदुपदेक्ष्याम इति तात्पर्यम् ॥२॥

भाषार्थः—पिप्पलाद ऋषि उनका अभिप्राय जान के पूर्ण अधिकारी होने में कुछ न्यूनता देखकर यह बोलेः—(तान्,ह) उन सुकेशादि ऋषियों से (ह, सः) वे प्रसिद्ध ज्ञानी पिप्पलाद (ऋषिः) ऋषि (उवाच) बोले कि तुम (भूयः, एव) फिर भी (तपसा) तप (श्रद्धया) श्रद्धा (ब्रह्मचर्येण) और ब्रह्मचर्य आश्रम के साथ (संवत्सरम्) एक वर्ष भर (संवत्स्यथ) मेरे समीप निवास करो पीछे (यथाकाम्) अपनी २ इच्छा के अनुसार (प्रश्नान्) प्रश्नों को (पृच्छथ) पूछो (यदि) जो हम (विज्ञास्यामः) जानते होंगे तो (सर्वेह) सभी (वः) तुमसे (वक्ष्यामः) उपदेश करेंगे ॥

भावार्थः—यद्यपि सुकेशादि ऋषि ब्रह्मचर्य आश्रम और तपका अनुष्ठान किये हुए थे तो भी पिप्पलाद महर्षि ने अपने समीप श्रद्धा से गुरु की शुश्रूषा और तपका अनुष्ठान करने के लिये आज्ञा दी जिससे उनका पूर्ण अधिकारी होना और ब्रह्मज्ञान के लिये श्रद्धा की परीक्षा हो जावे। यदि जानते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे इस कथन का अभिप्राय अपनी प्रशंसा न समझा जाना है किन्तु जानने में सन्देह नहीं। यथाकाम इस लिये कहा कि जो जिसको पूछना अभीष्ट हो वैसा पूछना सो कहेंगे ॥ २ ॥

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ ।
भगवन् ! कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥३॥

(अथ) संवत्सरानन्तरम् (कबन्धी) कबन्धोनामकः (कात्यायनः) कत्यस्यापत्यम् (उपेत्य) पिप्पलादसमीपमागत्य (पप्रच्छ) (ह, वै) पूर्ववृत्तस्मरणार्थौ निपातौ (इमाः प्रजाः) ब्राह्मणाद्याः (कुतः) (प्रजायन्ते) उत्पद्यन्ते ॥

भा०—यस्मादिदं जगदुत्पद्यते तन्निमित्तकारणं भवता वक्तव्यमेतेन यदि किमप्यस्ति तर्हि तदेव सर्वकर्तृ सर्वमूलमात्मतत्त्वं विज्ञास्याम इति कात्यायनस्याशयः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब एक वर्ष आज्ञानुसार श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य के साथ ऋषियों ने तप और गुरु की सेवा करके पश्चात् उन छः में से (कात्यायनः) कत्यके सन्तान (कबन्धी) कम्बन्धी ने (उपत्य) पिप्पलाद के समीप जाकर (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवन्) पूजनीय गुरो ! (ह, वै) पहिली सृष्टि होने के समय का वृत्तान्त स्मरण करके कहिये कि (इमाः) ये प्रत्यक्ष वर्त्तमान (प्रजाः) ब्राह्मणादि प्रजा (कुतः) किससे (प्रजायन्ते) उत्पन्न हुई हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—जिससे यह जगत् हुआ है उस निमित्त कारणको आप कहिये इस कथन से यदि कोई सृष्टिकर्त्ता है तो उसीको सबका मूल आत्मतत्त्व जानेंगे यह कात्यायनका अभिप्राय है॥३॥

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते रयिञ्च प्राणंचेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥४॥

(तस्मै) एवम्पृच्छते कात्यायनाय (सः) पिप्पलादः (ह, उवाच) प्रकटमुक्तवान् (वै) यदा (प्रजाकामः) प्रजाः सृजेयेति स्वाभाविकाभिलाषायुक्तः (प्रजापतिः) चराचरस्य स्वामी तदा (सः) (तपः) (अतप्यत) कथमिमाः प्रजाः सृजेयेत्यन्वीक्षणतत्परः समाधिस्थइव सर्वं रचनप्रकारमालोचितवान् (सः) (मिथुनम्) द्वन्द्वम् (उत्पादयते) उत्पादितवान्। किन्तन्मिथुनम् (रयिम्, च) भोग्यम् (प्राणम्, च) भोक्तारम् (मे) मम सृष्टौ (इत्येतौ) भोग्यभोक्तारौ (बहुधा) (प्रजाः), (करिष्यतः) (इति) ॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मन्यस्मदादिवदिच्छागुणो नास्ति तथापि सर्गारम्भे स्वाभाविकी सिसृक्षोत्पद्यते एव तदानीं स स्वात्मन्येवेक्षते। तस्मादीक्षणापूर्विकेयं सृष्टिरिति विद्वद्भिर्निश्चीयते। पूर्वं स्वसृष्टौ स द्वौ भेदावुत्पादयति शक्तिद्वयं भिनत्ति। भोग्यं भोक्ता स्त्री पुरुषः प्रकृतिः पुरुषो जडं चेतनं सूर्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्चन्द्रमा इत्यादि नामकं द्वन्द्वमादौ करोति तस्मादेव सर्वा विविधा सृष्टिः सुगमतयोत्पद्यते ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस पूछनेवाले कबन्धी कात्यायन के लिये (सः) वे पिप्पलाद (ह) प्रकट (उवाच) बोले कि (वै) जब (प्रजापतिः) चराचर जगत् का स्वामी (प्रजाकामः) मैं प्रजा को रचूँ ऐसी स्वाभाविक इच्छा से युक्त होता तब (सः) वह (तपः) आन्तर्य विचार से (अ-तप्यत) किस प्रकार इस प्रजा को रचूँ जिससे ठीक २ नियमपूर्वक सब काम चले ऐसा ध्यान करता है (सः) वह (तपः) (तप्त्वा) ध्यान करके (सः) वह (मिथुनम्) दो सहयोगी वस्तुओं को (उत्पादयते) रचता है (रयिञ्च) भोग्य और (प्राणम्, च) भोक्ता (इत्येतौ) ये दोनों (मे) मेरी सृष्टि में (बहुधा) बहुत प्रकार की (प्रजाः) प्रजा को (करिष्यतः) बढ़ावेंगे (इति) ऐसा विचार कर ॥

भा०—यद्यपि परमात्मा हम लोगों के तुल्य इच्छा गुण वाला नहीं है तो भी सृष्टि के आरम्भ में रचना की इच्छा स्वाभाविक प्रकट होती उस समय वह अपने स्वरूप में विचार करता है इसलिये विचारपूर्वक सृष्टि हुई ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं। पहिले अपनी सृष्टि में उसने दो भेद किये जैसे—भोग्य, भोक्ता। स्त्री, पुरुष। जड़, चेतन इत्यादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वाले दो भेद किये कि इनसे विविध प्रकार की सृष्टि सुगमता से उत्पन्न होगी ॥ ४ ॥

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः। रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तं चामूर्त्तं च तस्मान्मूर्त्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥

अथ तयोर्भोग्यभोक्त्रोः साधर्म्यवैधर्म्यदर्शनपुरस्सरं सकारणौ व्याख्यातुमारभते (ह, वै) प्रसिद्धो हि (आदित्यः) कालविभागेन सर्ववस्तुन आयुराददानो याति स सूर्यः (प्राणः) प्राणरक्षानिमित्तत्वात्प्राणशब्दवाच्यः (रयिः, एव) धनाद्यैश्वर्यस्य निमित्तत्वाद्रयिशब्दवाच्यः (चन्द्रमाः) मनस आह्लादकः। भोक्तृभोग्यशक्त्योः प्राधान्येनोत्तेजकौ प्रधानौ निमित्ताख्यौ तावन्तरेण तयोः शक्त्योरसत्त्वात्तावेव प्राणरयिशब्दवाच्याविति भेदो दर्शितः। अथवा (एतत्, सर्वम्) (यत्) (मूर्त्तम्, च) स्थूलम्(अमूर्त्तम्, च) सूक्ष्मम्। भोक्तृभोग्यरूपं तत् (रयिर्वै) भोग्यमेवास्ति। भोक्ताऽपि भोग्यत्वमापद्यते (तस्मात्) शक्तिद्वयस्य चैकात्म्यात् (रयिः) भोग्यम् (मूर्त्तिरेव) स्थूलमेव। अर्थादमूर्त्तं सूक्ष्ममपि भोग्यं स्थूलत्वमापद्यते यद्वा कार्यस्थूलजगदपेक्षया तद्भोग्यं सूक्ष्मं भोक्तृपुरुषापेक्षया तु स्थूलमेव यतो हि भोक्तृपुरुषात्परमन्यत्सूक्ष्ममेव नास्ति। अतः स्थूलं सर्वं भोग्यम्। अमूर्त्तं भोक्त्रित्यर्थादापन्नं भवति॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततःप्रजा इतिमनु-प्रामाण्यात्परम्परया भोक्तृणां स्थितावादित्यएवपरमं निमित्तम्। भोक्तृचेष्टायाः प्रवर्द्धकः सूर्योऽतएवरात्रौ तस्याः शैथिल्यम्। स्त्री भोग्यप्रधाना भोग्यशक्तिवर्द्धकश्चन्द्रमाः। अतएव प्रमदानां कामो रात्रौ चन्द्रसङ्गाद्विवर्द्धते चन्द्रेण च ता उपमीयन्ते। भोक्तृपुरुषशक्तिप्रधानो वर्द्धकश्च सूर्यः। प्रकृति स्त्री भोग्यशक्तिप्रधानास्तस्याः शक्तेर्वर्द्धकश्च चन्द्रमाः। अतएव चन्द्रमरीचिप्रसारात्प्रायो भोग्यौषध्यादीनि वर्द्धन्ते तानि च सूर्यमरीचिप्रसाराच्छुष्यन्ति भोग्यं स्थूलं सूक्ष्मं चोभयरूपं भवति भोक्ताऽपि भोग्यत्वमापद्यते शरीरमन्तरेणात्मापि भोक्तुमनर्हः। शरीरं कस्यचिद्भोक्तुर्भोग्यं कस्यचित्तदेव भोक्तृ भवति। अतएव-चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः॥ इति पञ्चमाध्याये मनुः। [सिद्धानुवादोऽयं नतु विधिवाक्यम्-सहस्तैरहस्ता भक्षणीया इति। अप्राप्तौ लिङादिक्रियासत्वे च विधिः प्रतीयते तदुभयमत्र नास्ति॥

आत्मा भोक्ता प्राधान्येनामूर्त्तः सूक्ष्मो न कदाचित्स्वरूपेण स्थूलत्वमापद्यते भोग्यं प्राधान्येन मूर्तं स्थूलं सामान्येनोभयरूपं भवितुमर्हति। इत्थं भेदद्वयेनैव सर्वा सृष्टिर्नानारूपत्वमापद्यतेइदमेव सृष्टिकर्त्तुर्विद्याविचित्रत्वं ज्ञानिनाऽनुसन्धेयम्॥५॥

भावार्थः—अब कारणसहित भोक्ता और भोग्य के सा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म्य वैधर्म्य दिखाने पूर्वक व्याख्यान का प्रारम्भ करते हैं (ह, वै) निश्चय कर प्रत्यक्ष प्रसिद्ध (आदित्यः) दिन रात्रि आदि-काल के विभाग से सब पदार्थों का नया पुराना करता हुआ सूर्य (प्राणः) प्राण अर्थात् मनुष्यादि के जीवन का मुख्य निमित्त होने से प्राण कहाता है (रयिः) (एव) धनादि भोग्य ऐश्वर्य का मुख्य निमित्त होने से (चन्द्रमाः) मन को प्रसन्न करने वाले चन्द्रमा का नाम रयि है। अर्थात् भागने वाली और भोग में आनेवाली शक्तियों के मुख्यता से उत्तेजक और निमित्त सूर्य चन्द्रमा हैं इन दोनों के विना भोक्तृ भोग्य शक्ति नहीं ठहर सक्ती इससे वे सूर्य चन्द्रमा हो दोनों प्राण और रयि शब्द के वाच्य हैं यह भेद दिखाया गया है। अथवा (एतत्, सर्वम्) यह सब प्रत्यक्ष दीखता (यत्) जो (मूर्त्तं च) स्थूल और (अमूर्त्तम्, च) सूक्ष्म भोक्ता भोग्य रूप जगत् है वह (रयिर्वै) भोग्य ही है क्योंकि भोक्ता भी कहीं किसी का भोग्य हो जाता है (तस्मात्) इस कारण दोनों शक्ति के एक रूप होने से (रयिः) भोग्य वस्तु (मूर्त्तिरेव) स्थूल ही है अर्थात् सूक्ष्म भोग्य भी स्थूल हो जाता वा स्थूलकार्य जगत् की अपेक्षा वह सूक्ष्म कहाता और भोक्ता पुरुष की अपेक्षा स्थूल माना जाता है क्योंकि भोक्तृशक्ति भोग्यसे सदा सूक्ष्म ही रहती है इसलिये स्थूल सब भोग्य है और भोक्ता सूक्ष्म है यह अर्थापत्ति से आ गया ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०-मनुस्मृति में लिखा है कि सूर्य से वर्षा, वर्षा से अन्न, और अन्न से वीर्यादि होकर मनुष्यादि प्राणियों की उत्पत्ति होती है इस प्रकार परम्परा से भोक्ता प्राणियों की स्थिति में सूर्य ही मुख्य निमित्त कारण है। भोगने वाली क्रियाका बढ़ाने वाला सूर्य है इसी से रात्रि में भूख आदि कम लगती जठराग्नि सूर्य की सहायता विना मन्द रहता है! स्त्री भोग्य वस्तुओं के अन्तर्गत है भोग्यशक्ति को बढ़ाने वाला चन्द्रमा है इसी से स्त्रियों का कामदेव रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश से बढ़ता है और चन्द्रमा की उपमा भी स्त्रियों के मुख से इसी कारण दी जाती है। भोक्ता पुरुषरूपशक्ति मुख्य कर सूर्य में है और चेतन प्राणियों में भोक्तृशक्तिका बढ़ाने वाला सूर्य ही है स्त्रीरूप भोग्य प्रकृति शक्ति चन्द्रमा में मुख्य है क्योंकि वह उस शक्ति का बढ़ाने वालाहै। इसीलिये चन्द्रमा के किरण फैलने से प्रायः भोग्य ओषधि आदि पदार्थ बढ़ते हैं। और वे ही ओषधि आदि सूर्य की किरणों के प्रताप से सूखते हैं। भोग्य वस्तु स्थूल सूक्ष्म दोनों रूप हैं क्योंकि भोक्ता भी भोग्य हो जाता है शरीर के विना आत्मा भी कोई भोग नहीं कर सकता मनुष्यादि का शरीर भी किसी भोक्ता का भोग्य और किसी का भोक्ता हो जाता है इसलिये मनुस्मृति में कहा है कि—चेतन का जड़, दांत वालों का विना दांत वाले, हाथ वालों का विना हाथ वाले और हिंसक प्राणियों का अन्न डरपाक प्राणी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं अर्थात् प्राणी भोक्ता और प्राणी ही उन भोक्ता सिंहादि के भोग्य हैं [यह विधि वा आज्ञावाक्य नहीं है कि "हाथ वाले बिना हाथवालों को खा जावे" दो रीति से विधिवाक्य समझे जाते हैं। एक तो जिस काम का होना बिना आज्ञा दिये प्राप्त नहीं उसके लिये विधान किया जाता है। सो हिंसक बलवान् प्राणी निर्बलोंको स्वयमेव खा रहे हैं। इसलिये विधान की आवश्यकता नहीं। द्वितीय लिङादि क्रिया के होने से विधिवाक्य होते हैं सो भी यहां नहीं हैं)। भोक्ता जीवात्मा सूक्ष्म है स्वरूप से कभी स्थूल नहीं होता। भोग्य वस्तु मुख्य स्थूल हैं और सामान्य से दोनों रूप हैं इस प्रकार दो भेद होने से ही सब सृष्टि अनेक रूप हो जाती है। सृष्टिकर्ता परमात्मा की विद्या की इसी विचित्रता का अनुसन्धान ज्ञानी को करना चाहिये ॥

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते । यद्दक्षिणां यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरा दिशो यत्सर्वं प्रकाशयति तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ॥ ६ ॥

अथ भोक्तृशक्तिं व्याचष्टे-(अथ) रात्रिविनाशे (आदित्यः) सूर्यः (उदयन्) (यत्) यस्मात् (प्राचीम्) पूर्वाम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दिशम्) (प्रविशति) स्वतेजसा व्याप्नोति (तेन) कारणेन (प्राच्यान्) पूर्वदिक्स्थान् (प्राणान्) भोक्तृशक्तीः (रश्मिषु) स्वावभासेषु (सन्निधत्ते) संयोजयति (यत्, दक्षिणाम्) (यत्, प्रतीचीम्) (यत्, उदीचीम्) (यत्, अधः, यत्, ऊर्ध्वम्) (यत्, अन्तराः, दिशः) प्रदिशः प्रविशति (यत्) यस्माच्चान्यत् (सर्वम्) (प्रकाशयति) (तेन, सर्वान्, प्राणान्) सर्वत्रस्थान् (रश्मिषु) (सन्निधत्ते) ॥

अत्र प्रसंगे प्राणशब्देन वायुभेदो हृदयचारी न ग्राह्यः किन्तु प्रकृष्टतयानिति जीवयति सर्वानिति जाठरादितेजोरूपा भोक्तृशक्तिर्विज्ञेया। सूर्यश्च सर्वतैजसवस्तूनां कारणं तदाश्रयेणैव सर्वा भोक्तृशक्तिः प्रवर्द्धते स्वस्वकर्मणि प्रवर्त्तते च। अतएव जाठराग्निरूपा भोक्तृशक्तिस्तमिस्रायां मन्दत्वमापद्यते सूर्योदयात्सजातीयतद्रश्मिसाहाय्यमुपलभ्योद्दीपिता जायते। यत्र यत्र प्रदेशे सूर्यरश्मयः प्रसरन्ति तत्र तत्रस्था भोक्तृशक्तयस्तन्मया भवन्ति। यथौषध्यादिषु प्रविष्टा रश्मयः शोषणे नोदकापेक्षां जनयन्ति । इत्थं सूर्यः कारणत्वेन सर्वभोक्तृमयः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—अब भोक्तृशक्तिका व्याख्यान करते हैं- (अथ) रात्रि की समाप्ति होते समय (आदित्यः) सूर्य (उदयन्) उदित होता हुआ (यत्) जिस कारण (प्राचीम्) पूर्व (दिशम्) दिशा में (प्रविशति) प्रवेश करता अर्थात् अपने तेज

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से व्याप्त होता है (तेन) इसी कारण (प्राच्यान्) पूर्वदिशामें स्थित (प्राणान्) भोक्तृशक्तियों को (रश्मिषु) अपने प्रकाशमय किरणों में (सन्निधत्ते) संयुक्त करता (यत्, दक्षिणाम्) जिससे दक्षिण दिशा (यत्, प्रतीचीम्) जिससे पश्चिम (यत् उदीचीम्) जिससे उत्तर (यत्, अधः) जिससे नीचे (यत्, ऊर्ध्वम्) जिससे ऊपर और (यत्, अन्तरा, दिशः) बीच की कोण दिशा ईशान आदि में प्रवेश करता अर्थात् अपने किरणरूप प्रकाश को फैलाता है (यत्) और जिस कारण अन्य (सर्वम्) सब वस्तुमात्र को (प्रकाशयति) प्रकाशित करता है (तेन) तिस से (सर्वान्) सब (प्राणान्) भोक्तृशक्तियों को (रश्मिषु) अपने किरणों में (सन्निधते) संयुक्त करता है ॥

भा०—इस प्रकरण में प्राण शब्द से हृदय में ठहरने वाला वायु का भेद न लेना चाहिये। किन्तु अच्छे प्रकार सब जन्तुओंके जीवन का हेतु जाठराग्नि आदि तेजोमय [जिससे भूख लगती वा पदार्थों के सूखने से जल की अपेक्षा होती ऐसी] भोग करने कराने वाली शक्ति प्राणशब्द से लेनी चाहिये और सब तैजस वस्तुओं का कारण सूर्य है उसी के आश्रय से सब भोग करने वाली शक्ति बढ़ती और अपने अपने काम में प्रवृत्त होती है। इसी कारण सूर्य की सहायता न मिलने से जाठराग्नि रूप भोक्तृशक्ति रात्रि में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्द रहती है और सूर्योदय होने से अपने जातीय सूर्य की किरणों की सहायता को प्राप्त होके उत्तेजित होजाती है। जिस २ प्रदेश में सूर्यकी किरणें पसरती जाती हैं वहाँ २ की भोक्तृशक्तियाँ सूर्य की किरणरूप होती जाती हैं। जैसे ओषधि वृक्ष बनस्पति आदि में प्रविष्ट हुई सूर्य की किरणें सुखाना गुण प्रकट करके जल की अपेक्षा उत्पन्न करती हैं। इस प्रकार सूर्य कारणरूप होने से सब भोक्तृशक्तिस्वरूप माना जाता है ॥ ६ ॥

स एषवैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते। तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥ ७ ॥

पुनस्तदेवाह—(सः) पूर्वोक्त आदित्यः (एषः) प्रत्यक्षः (वैश्वानरः) विश्वेषां सर्वेषां प्राणिनां नरो नायकः स्वस्वकर्मणि स्वस्योदयेन प्रकाशदानेन च प्रेरको विश्वानरः। विश्वानर एव वैश्वानर इति (स्वार्थेऽण्) (विश्वरूपः) स्वतेजसा सर्वभोक्तृशक्तिस्वरूपः (प्राणः) अन्नाद्युत्पादनेन सर्वजन्तूनां जीवनस्य हेतुः (अग्निः) दाहकः सूर्यः (उदयते) उदितो भवति (तत्, एतत्) तत्पूर्वोक्तमेतन्मन्त्रोक्तं च व्याख्यानम् (ऋचा) जगत्या श्रुत्या मन्त्रेण (उक्तम्) प्रतिपादितम् ॥

भा०—सूर्योदयादेव सर्वे स्वस्वकर्मणि प्रवर्त्तन्ते स एव सर्वान् बुभुक्षितान् कृत्वान्नाद्यमुत्पाद्य जीवयति तस्य सवितुर्व्याख्यानं वक्ष्यमाणेन मूलवेदमन्त्रेण दर्शयति। अनेनाप्युप-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निषदामृकृत्वं नास्तीति प्रतीयते । अतएव स्वत उत्कृष्टस्य वेदमन्त्रस्य स्वोक्तविषयपुष्ट्यर्थं प्रमाणं दीयते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—फिर उसी भोक्तृशक्ति की व्याख्या करते हैं:— (सः) वह पूर्वोक्त (एषः) प्रत्यक्ष सूर्य (वैश्वानरः) अपने उदय होने और प्रकाश दे करके सब प्राणियों को अपने २ कर्म में प्रेरणा देनेवाला (विश्वरूपः) अपने तेज करके सब भोक्तृशक्तिरूप बना (प्राणः) अन्नादि पदार्थ उत्पन्न करके जीवन का हेतु (अग्निः) दाह करने वाला सूर्य (उदयते) उदित होता है (तत्, एतत्) वह पूर्वोक्त और इस मन्त्र में कहा तात्पर्य (ऋचा) ऋग्वेदस्थ वक्ष्यमाण जगती मन्त्र से (उक्तम्) कहा है अर्थात् इस विषय में ऋग्वेद के अगले मन्त्र का प्रमाण है ॥

भा०—सूर्य के उदय होनेसे ही सब प्राणी अपने २ काम में लगते हैं वही सूर्य सबको भूख की इच्छा और खाने योग्य अन्नादि उत्पन्न कर जिलाता है। उस सूर्य का व्याख्यान आगे कहे वेद मन्त्र से दिखाते हैं। इस कथन से भी प्रतीत होता है कि उपनिषद् वेद नहीं इसीसे अपने विषय की पुष्टि के लिये अपने से उत्तम मूल वेद मन्त्र का प्रमाण दिया है ॥७॥

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः ॥ ८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः (सहस्ररश्मिः) सहस्रमसंख्याता रश्मयो यस्य सः (शतधा) असंख्यप्रकारैर्भोक्तृ शक्तिषु स्वतेजसा (वर्त्तमानः) (प्रजानाम्) प्रजातानां प्राणिनाम् (प्राणः) जीवनहेतुः (एषः) प्रत्यक्षः (सूर्यः) (उदयति) तम् (विश्वरूपम्) सर्वभोक्तृ-शक्तिमयम् (हरिणम्) किरणवन्तम् (जातवेदसम्) जातं वेदो रूपं शोभा वा यस्मात्तम् (परायणम्) परं च तदयनं च प्राणिनां महाश्रयम् (तपन्तम्) तातप्यमानम् (एकम्) (ज्योतिः) ज्योतिःस्वरूपं प्रकाशमयम्। एवम्भूतं सूर्यं विद्वांस एव तत्त्वतो जानन्ति ॥

भा०—उक्तप्रकारकसूर्यस्य महत्त्वकार्यसाधकत्वविज्ञानेन सृष्टिकर्त्तुस्तद्रचकस्य सर्वज्ञत्वमनन्तशक्तिमत्त्वं च विज्ञातव्यम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—जो (सहस्ररश्मिः) असंख्यों किरणों वाला (शतधा) असंख्य प्रकारों से भोक्तृशक्तियों में अपने तेज से (वर्त्तमानः) व्याप्त (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए प्राणियों के (प्राणः) जीवन का हेतु (एषः) यह प्रत्यक्ष (सूर्यः) सूर्य (उदयति) उदय को प्राप्त होता है उस (विश्वरूपम्) सब भोगने वाली शक्तिस्वरूप (हरिणम्) किरण वाले (जातवेदसम्) शोभा वा रूप जिससे उत्पन्न हुआ ऐसे प्राणियों की स्थिति में सर्वोत्तम आश्रय (तपन्तम्) दाहगुण-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त (एकम्) एक (ज्योतिः) ज्योतिः प्रकाशस्वरूप सूर्य को विद्वान् लोग ही ठीक २ जानते हैं ॥

भा०—उक्त प्रकार के सूर्य का बड़प्पन और कार्य्यसाधक जानने से उसके रचने वाले सृष्टिकर्त्ता परमात्मा का सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होना सिद्ध होता है ऐसा जानना चाहिये ॥ ८ ॥

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणं चोत्तरं च । तद्ये ह वै तदिष्टापूर्त्ते कृतमित्युपासते । ते चान्द्रमसमेव लोकमभिजयन्ते । त एव पुनरावर्त्तन्ते तस्मादेते ऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते । एष ह वै रयिर्यः पितृयाणः ॥ ९ ॥

अथ भोग्यकृत्यं व्याचष्टे—(संवत्सरः) कालविभागः (वै) (प्रजापतिः) प्रजातायाः सृष्टेः पालकः कालेन हि सर्वस्य रक्षणं जायते (तस्य) वर्षमितकालस्य (दक्षिणम्, च) (उत्तरम्, च) द्वे (अयने) भवतः (तत्) तयोर्मध्ये (ये, ह, वै,) (तत्) ते (इष्टापूर्त्ते) वैदिकं यज्ञादिकर्मेष्टिं वापीकूपनिपानतडागानाथालयादिनिर्माणं पूर्त्तस्मार्त्तं कर्म ते द्वे अपिश्रौतस्मार्त्ते कर्मणी (कृतम्) अस्य सर्वस्यानुष्ठितस्य सिद्धं फलमस्माकं प्राप्नुयादिति बुद्ध्या (उपासते) सेवन्ते (ते) (चान्द्रमसमेव) भोग्यशक्तिप्रधानमेव (लोकम्) दर्शनीयं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थानशरीरादिकम् (अभिजयन्ते) बहूनां भोग्यवस्तूनामधिष्ठातारो भवन्ति (त एव) भोग्यासक्तमनस एव (पुनरावर्तन्ते) जगति मुहुर्जन्ममरणे आप्नुवन्ति (तस्मात् (एते) (ऋषयः) उक्त प्रकारेण श्रौतस्मार्त्तकर्मानुष्ठातारः (प्रजाकामाः) प्रजाः पुत्रादयोऽस्माकं स्युरिति कामयमानाः (दक्षिणम्) परमार्थापेक्षया निकृष्टं मार्गम् (प्रतिपद्यन्ते) (यः) पितृयाणः पितृमार्गः सः (एषः, ह, वै, रयिः) भोग्यम् ॥

भा०—सर्वविषयेषूत्तमनिकृष्टौ द्वौ भेदौ प्रधानौ स्तस्तयोरुत्तमशब्दवाच्य उत्तरशब्दो निकृष्टपर्यायश्च दक्षिणशब्दः । अतएव संवत्सरस्य द्वौ भेदौ दक्षिणायनमुत्तरायणं च षट्षण्मासपरिमिते । प्रवृत्तिपरं भोग्यप्रधानं दक्षिणायनं निवृत्तिमार्गपरं भोक्तृशक्तितैजसप्रधानमुत्तरायणम् । उत्तरायणापेक्षया भोग्यानां स्थूलवस्तूनां प्राण्यप्राणिनामुत्पत्तिविनाशावधिकतरं दक्षिणायने भवतः । अतएव भोग्यप्रधानं मेघादिजन्यतमः परं दक्षिणायनं भोक्तृप्रधानं सूर्यादिप्रकाशपरमुत्तरायणम् । एवं भोक्तृभोग्यशक्त्योः प्राधान्याप्राधान्याभ्यां संवत्सरः प्रजानां रक्षकः । ये श्रौतस्मार्त्ते कर्मणी अपि फलाकाङ्क्षयानुतिष्ठन्ति ते जन्ममरणचक्र एव भ्रमन्ति तेषां दक्षिणः पितृयाणसञ्ज्ञो मार्गः परमपदप्राप्त्यपेक्षया निकृष्टस्तमेव प्राप्नुवन्ति ॥६॥

भाषार्थः-अब भोग्यशक्ति का कृत्य कहते हैं—(संवत्सरः) काल का आग वर्ष (वै) निश्चय कर (प्रजापतिः) उत्पन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुई सृष्टि का रक्षक (काल से ही सृष्टि की रक्षा होती है) (तस्य) उस एक वर्ष काल के (दक्षिणम्) दक्षिणायन (च) और (उत्तरम्, च) उत्तरायण भी दो (अयने) भाग वा पक्ष होते हैं उनमें से (ये, ह, वै,) जो प्रसिद्ध लौकिक धर्मात्मा लोग (तत्) उन (इष्टापूर्त्ते) यज्ञादि वैदिक कर्म इष्ट और बाउली, कुआ, प्याऊ, तालाब, बाग, बगीचा और अनाथालयादि का बनाना धर्मशास्त्रसम्बन्धी पूर्त्त कर्म का कि (कृतम्) इस कर्म का सिद्ध उत्तम सुख भोगरूप फल हमको मिले (इति) ऐसी बुद्धि से (उपासते) सेवन करते हैं वे (चान्द्रमसम्, एव) भोग्यशक्ति से युक्त (लोकम्) अच्छे दर्शनीयरूप सहित स्थान वा शरीरादि भोगाधिष्ठान को (अभिजयन्ते) जीत लेते हैं अर्थात् बहुत से भोग्य वस्तु उनके अधिकार में हो जाते हैं (तएव) वे ही भोग्य वस्तुओं में आसक्त चित्त वाले पुरुष (पुनरावर्त्तन्ते) बार २ जन्म मरण को प्राप्त होते हैं (तस्मात्) तिससे (एते) ये (ऋषयः) उक्त प्रकार से श्रौतस्मार्त्त कर्मों का सेवन करने वाले वेदपाठी ऋषिजन (प्रजाकामाः) पुत्रपौत्रादि सन्तान हमारे हों ऐसी कामना रखते हुए (दक्षिणम्) मुक्ति की अपेक्षा निकृष्ट मार्ग को (प्रतिपद्यन्ते) प्राप्त होते हैं (यः) जो (पितृयाणः) संसार चक्र में घूमना पिता आदि का मार्ग है (एषः, ह, वै, रयिः) यही भोग्यशक्ति प्रधान है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—सब विषयों में उत्तम निकृष्ट दो भेद मुख्य हैं उनमें उत्तम शब्दवाच्य उत्तर और निकृष्ट का पर्यायवाची दक्षिण शब्द है। इसी लिये वर्ष के छः २ मास के दो भेद उत्तरायण और दक्षिणायन किये गये। प्रवृत्ति बढ़ाने वाला भोग्य जिसमें अधिक होता ऐसा दक्षिणायन और निवृत्तिमार्ग प्रधान भोक्तृशक्तिरूप तेज का बढ़ाने वाला उत्तरायण है। उत्तरायण की अपेक्षा से प्राणी वा अप्राणीरूप स्थूल भोग्य वस्तुओं के उत्पत्ति और नाश अधिकतर दक्षिणायन में होते हैं इसी कारण भोग्य प्रधान मेघादि से हुए अन्धकार परक दक्षिणायन और भोक्तृशक्तिप्रधान सूर्यादि प्रकाश परक उत्तरायण होता है। इस प्रकार भोक्तृ और भोग्यशक्तियों के प्रधान और अप्रधान होने से संवत्सर प्रजा का रक्षक है इसलिये जो लोग श्रौतस्मार्त्त कर्मों को फल की अभिलाषा से सेवन करते हैं वे संसार में जन्ममरणरूप चक्र पर चढ़े घूमते हैं उनका पितृयाणसंज्ञक दक्षिण मार्ग है। वे परमपद प्राप्ति की अपेक्षा उसी निकृष्ट मार्ग को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते। एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्न पुनरावर्त्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अथ) उक्तानन्तरं भोक्तृकृत्यमाचष्टे (उत्तरेण) उत्तमेनोत्कृष्टेनोत्तरायणेन सह (तपसा) द्वन्द्वसहनचान्द्रायणादिव्रतनियमानुष्ठानेन (ब्रह्मचर्येण) उपस्थेन्द्रियनिग्रहेण (श्रद्धया) (विद्यया) वेदज्ञानेन च (आत्मानम्) परमात्मानम् (अन्विष्य) विदित्वा (आदित्यम्) प्रकाशमयं भोक्तृस्वरूपं स्वात्मानम् (अभिजयन्ते) वशीकुर्वन्ति (एतद्वै) भोक्तृस्वरूपमात्मतत्त्वमेव (प्राणानाम्) (आयतनम्) अधिष्ठानम् । अस्यैवाश्रयेण प्राणाः प्रतिष्ठन्ते (एतत्) (अमृतम्) अविनश्वरम् (अभयम्) नास्ति भयमस्मिन्नस्माद्वा (एतत्) (परायणम्) परं च तदयनं ज्ञानिनां पराकाष्ठा (एतस्मात्) सतआत्मज्ञानात् (न, पुनः, आवर्त्तन्ते) न प्राकृतजनवज्ज्ञानिनो मुहुर्मुहुर्जन्ममरणे प्राप्नुवन्ति (इति, एषः) भोक्तृशक्तिप्रधानः प्रकाशमयः स्वात्माऽज्ञानिनाम् (निरोधः) ज्ञानस्य निरोधहेतुः । नहि लौकिको मनुष्यः स्वात्मज्ञानमन्तरेण परमात्मानं ज्ञातुं शक्तः (तत्) तस्य भोक्तृ शक्तेरेव प्रतिपादकः (एषः) वक्ष्यमाणः (श्लोकः) अस्ति ॥

भा०—उत्तरायणे भोक्तुरात्मनो ज्ञानादिशक्तिर्वर्द्धते तदानीं ये ज्ञानोत्सुका भोग्याच्चिवृत्तचित्ता योगिनस्तपोब्रह्मचर्यश्रद्धाविद्याद्युपायैरात्मज्ञानाय प्रयतन्ते ते निर्भयं निर्मलं निर्विकारं नित्यं शुद्धं सनातनं सर्वस्य जीवनहेतुं ज्ञानाख्यात्मतत्त्वं विज्ञाय मुक्ता भवन्ति किन्तु प्राकृतवत्संसारचक्रे न भ्रम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्ति । अन्ये भोग्यासक्तमनसो विषयेषु लिप्ताः स्वात्मज्ञान एव निरुध्यन्ते स्वात्मानमेव यदा ज्ञातुमशक्तास्तर्हि परमात्मज्ञानस्य का कथा ? । अर्थाज्जीवात्मज्ञानमन्तरेण कश्चिदपि परमात्मानं न ज्ञातुमर्हति । अतो जीवात्मज्ञानाभाव एव परमात्मज्ञानस्य निरोधकः । भोक्तृरूपं जीवात्मानं ज्ञात्वा सुगमतया परमात्मज्ञानं भवति । अस्या भोक्तृशक्तेरेव प्रतिपादको वक्ष्यमाणः श्लोकः ॥ १० ॥

भाषार्थः—(अथ) अब भोग्य की व्याख्या के पश्चात् भोक्ता की कर्त्तव्यता कहते हैं—(उत्तरेण उत्तरायण नामक उत्तम समय के साथ (तपसा) मान अपमान आदि द्वन्द्व के सहन तथा चान्द्रायणादि व्रतरूप तप (ब्रह्मचर्येण) अष्टविध मैथुन के त्याग और (श्रद्धया) श्रद्धापूर्वक (विद्यया) वेद विद्या के ज्ञान वा अभ्यास से (आत्मानम्) परमात्मा को (अन्विष्य) खोजने पूर्वक जान के (आदित्यम्) भोक्तृरूप प्रकाशमय अपने आत्मा को (अभिजयन्ते) वश में करते हैं (तत् वै) यही भोक्ता स्वरूप जीवात्मा (प्राणानाम्) प्राणों का (आयतनम्) आधार है इसी के आश्रय से शरीर के बीच प्राणोंकी स्थिति रहती है (एतत्) यह (अमृतम्) अपने वास्तविक रूप से अविनाशी (अभयम्) जिस से वा जिसमें कदापि भय नहीं अर्थात् उसके स्वरूप से किसी प्रकार का दुःख किसी को नहीं होता दुःख के हेतु का ही नाम भय है (एतत्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह आत्मा (परायणम्) ज्ञान का अवधि है इसका ज्ञान होते ही परमात्मज्ञान भी हो जाता है आगे जानना कुछ शेष नहीं रह जाता (एतस्मात्) इस आत्मज्ञान के होने से (न, पुनः, आवर्त्तन्ते) सर्व साधारण मनुष्यों के तुल्य ज्ञानी लोग वारः जन्म मरण के प्रवाह को नहीं प्राप्त होते (इति, एषः) इस उक्त प्रकार का भोक्ता आत्मज्ञानियों को (निरोधः) ब्रह्मज्ञान से रोकने का हेतु किवाड़ के तुल्य है अर्थात् लौकिक मनुष्य अपने भोक्ता आत्मा को जाने विना परमात्मा को नहीं जान सकता (तत्) उस भोक्तृशक्ति का प्रतिपादन करनेवाला (एषः) यह आगे कहा ग्यारहवाँ (श्लोकः) श्लोक वा मन्त्र है अर्थात् अगला श्लोक अन्य ग्रन्थ का है सो प्रमाणार्थ रक्खा गया है ॥

भा०—उत्तरायण में भोक्ता आत्मा को ज्ञानादि शक्ति बढ़ती है। तब जो ज्ञान चाहने वाले भोग से जिनका चित्त हट गया ऐसे योगी लोग तप ब्रह्मचर्य्य और श्रद्धापूर्वक विद्याभ्यासादि से आत्मज्ञान होने का प्रयत्न करते हैं वे निर्भय, निर्मल, निर्विकार, नित्य, शुद्ध, सनातन सबके जीवन हेतु और ज्ञानकी अवधिरूप आत्मा को जान के मुक्त होते हैं किन्तु साधारण मनुष्य के तुल्य संसाररूप चाकपर नहीं भ्रमते। और अन्य भोग्य वस्तुओं में जिनका मन लगा है वे विषयों में लिप्त हुए अपने आत्मा के ज्ञान में ही रुक जाते हैं। अर्थात्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब अपने आत्मा को ही नहीं जान सकते तो ब्रह्मज्ञान की क्या कथा है ? अर्थात् जीवात्मा का ज्ञान हुए बिना परमात्मा को कोई नहीं जान सकता यह पहिली सीढ़ी है। इसलिये जीवात्मा का ज्ञान न होना ही परमात्मा के ज्ञान में रुकावट है और भोक्तृरूप जीवात्मा को जान के सुगमता से परमात्मा का ज्ञान होता है-कपाट खुल जाते हैं। इस भोक्तृशक्ति का ही प्रतिपादक अगला श्लोक भी है ॥ १० ॥

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिवआहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम्। अथेमे अन्य उ परे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥ ११ ॥

संवत्सरो वै प्रजापतिरित्यतः संवत्सरव्याख्यानं प्रकृतम्। तदिदानीं संवत्सरादिकालविभागहेतुत्वाद्भोक्तृशक्तिप्रधानस्य सूर्यस्य संवत्सररूपेण व्याख्यानं क्रियते—(पञ्चपादम्) पञ्चर्त्तवः पादा इवास्य तम् (हेमन्तेऽत्र शिशिरस्यान्तर्भावं मत्वा पञ्चत्वमुच्यते) (द्वादशाकृतिम्) द्वादश मासा आकृतयोऽवयवा अङ्गानीव यस्य (पुरीषिणम्) पुरीषमुदकं सम्बद्धमस्मिन्। जन्यजनकभावेन जलसूर्ययोः सम्बन्धः । आदित्यादुज्जायते वृष्टिरिति सूर्यादेवोदकमुत्पद्यते (दिवः) अन्तरिक्षलोकादुपरि द्युलोकस्य (परे) परस्मिन् (अर्द्धे) अर्द्धभागे वर्त्तमानं सूर्यात्मकं संवत्सरम् (पितरम्) जनकमिवोत्पादकं पा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लक्षं च विद्वांसः (आहुः) कथयन्ति (अथ, उ) (इमे, अन्ये) विद्वांसः (षडरे) षड्तुरूपे (सप्तचक्रे) भूरादिसप्तव्याहृतिरूपाः लोका एव चक्राणीव भ्रमणशीला यस्य तस्मिन् (अरे) उत्तमे संवत्सरात्मके काले (विचक्षणम्) विशेषेण चक्षयति दर्शयति सर्वं रूपमिति विचक्षणः सूर्यस्तम् (अर्पितम्) रथनाभावराइव संलग्नम् (आहुः) कथयन्ति । इतिकरणं श्लोकस्य ग्रन्थान्तरस्थत्वसूचनार्थम् ॥

भा०—यमन्तरेण यस्य स्वरूपं नोपलभ्यते तस्य तदात्मकत्वं लोकवच्छास्त्रेऽपि व्याप्रियते सूर्यमन्तरेण च संवत्सरादिकालविभागस्य सत्त्वं नास्ति तस्मात् संवत्सरस्वरूपः सूर्य एव । भोक्तृशक्तिमयस्य तेजोरूपस्य कालविभागनिमित्तत्वात्संवत्सरादेरपि भोक्तृशक्तिप्रधानत्वमर्थात् सिद्धम् । स्त्रीपुरुषभोग्यभोक्तृरूपदक्षिणायनोत्तरायणयोर्मैथुन्येनेव सम्मिलितादेकीभूतात्संवत्सरात्मकसूर्यात्प्रत्यहं विविधं जगदुत्पद्यते इत्थं मे बहुधाः प्रजाः करिष्यत इत्याशयः सम्पन्नः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(संवत्सरो वै) इस नवें मन्त्र से संवत्सर के व्याख्यान का प्रकरण चला आता है सो अब संवत्सरादि काल विभाग का हेतु होने से भोक्तृशक्तिस्वरूप सूर्य का संवत्सर रूप से व्याख्यान करते हैं (पञ्चपादम्) पांच ऋतु जिसके पग हैं [शिशिर ऋतु को हेमन्त के अन्तर्गत मान लेने से पाँच ऋतु कहे गये अन्यथा छः हैं । शिशिरमें शीत विशेष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहने से हेमन्त में गिन लिया गया अर्थात् शिशिर ऋतु का पृथक् मानना प्रधान वा सर्वसम्मत नहीं है] (द्वादशाकृतिम्) बारह महीने जिसके हाथ, पांव आदि अङ्गों के तुल्य हैं अर्थात् १२ महीने मिलकरही संवत्सर बनता है (पुरीषिणम्) पुरीषनाम जल जिसके सम्बन्ध में रहता है [सूर्य से जल की उत्पत्ति होती है इसलिये सूर्य और जल का जन्यजनकभाव सम्बन्ध है। मनुस्मृति में लिखा है कि सूर्य से ही जल की वर्षा होती है] (दिवः) अन्तरिक्ष लोक से ऊपर द्युलोक के (परे) परले (अर्द्धे) अर्द्धभाग में वर्तमान सूर्यरूप संवत्सर को (पितरम्) पिता के तुल्य उत्पत्ति और रक्षा करने वाला [जैसे पिता से वीर्य आकर गर्भ होता वैसे सूर्य से वीर्यरूप जल बरसकर पृथिवी रूप स्त्री में अन्न, ओषधि आदि उत्पन्न होते और उसके तेजसे बढ़ते पकते हैं] विद्वान् लोग (आहुः) कहते हैं (अथ, उ) अब और (इमे अन्ये) ये अन्य विद्वान् लोग (षडरे) छः ऋतुरूप जिसमें आरा लगे (सप्तचक्रे) सात भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यम् ये सात व्याहृति नामक लोक ही जिसमें पहियों के तुल्य घूमने वाले हैं उस (परे) उत्तम संवत्सररूप काल में (विचक्षणम्) विशेष कर सब के रूप को दिखानेवाले सूर्य्य को (अर्पितम्) रथ की नाभि में आराओं के तुल्य लगा (आहुः) कहते हैं (इति) यह विषय इस श्लोक में कहा गया है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—जिसके बिना जिसका स्वरूप कुछ नहीं प्राप्त होता उसको उसीके रूप से जैसे लोक में वैसे शास्त्र में भी वर्णन करते हैं सो सूर्य के बिना संवत्सरादि काल विभाग कोई वस्तु नहीं ठहरता इससे संवत्सरस्वरूप सूर्य ही माना गया है। भोक्तृशक्तिमय तेजःस्वरूप सूर्य कालविभाग का मुख्य कारण है इससे संवत्सर आदि कालका भी भोक्तृ-शक्ति-प्रधान होना स्वयमेव सिद्ध होगया। जैसे भोग्य भोक्तृरूप स्त्री पुरुष के संयोग से सन्तान उत्पन्न होते वैसे भोग्य भोक्तृरूप उत्तरायण दक्षिणायन एक रूप मिले संवत्सर नामक सूर्य से प्रतिदिन अनेक प्रकार का जगत् उत्पन्न होता है इस प्रकार (मे बहुधा०) ये भोग्य भोक्ता दोनों मेरी इच्छानुसार बहुत प्रकार की प्रजा रचेंगे यह आशय सिद्ध हो गया ॥ ११ ॥

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥ १२ ॥

अवयवेषु समुदायस्य समाप्तिं द्वाभ्यां दर्शयति-(वै) (मासः) (प्रजापतिः) उक्तप्रकारेण सूर्यात्मना जगतः स्थितिहेतुः (तस्य) मासस्य (कृष्णपक्षः, एव) (रयिः) निर्बलो भोग्यशक्तिप्रधानस्तमोमयः (शुक्लः) शुक्लपक्षः (प्राणः) सबलो भोक्तृशक्तिप्रधानः प्रकाशमयो जीवनहेतुः (तस्मात्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोक्तृपुरुषशक्तिवृद्धिकारणात् (एते) (ऋषयः) वेदानामध्येतारो वेत्तारश्च (शुक्ले) (इष्टिम्) यागम् विधियज्ञं योगयज्ञादिकं वा कुर्वन्ति (इतरे) अनृषयो वेदाध्ययनज्ञानविरहाः (इतरस्मिन्) कृष्णपक्षे यजन्तीति ॥

भावार्थः—द्वादशमाससमुदायस्यैव संवत्सरत्वम् । अवयवशक्त्यैव समुदायः शक्तिमानिति न्यायान्मासात्मकोऽपि सूर्यः प्रजास्थितिहेतुः । यथाऽन्धानां सूर्यादिप्रकाशे सत्यप्यन्धकार एव ज्ञायते तथैवाज्ञानां शुक्लपक्षोऽन्तःकरणशक्तेरुत्तेजकोऽपि ज्ञानाभावात्कृष्ण एव) एवं ज्ञानिनां कृष्णोपि ज्ञानाश्रयाच्छुक्लत्वमित्यनुसन्धेयं धीमद्भिः ॥ १२ ॥

भाषार्थः—अवयवों में समुदाय की समाप्ति होती है यह बात अब दो मन्त्रों से दिखाते हैं—(मासः, वै) महीना भी (प्रजापतिः) उक्त प्रकार सूर्यरूप से जगत की स्थिति वा उत्पत्ति का कारण है (तस्य) उस महीने का (कृष्णपक्षः, एव) कृष्णपक्ष ही (रयिः) अन्धकाररूप निर्बल भोग्यशक्ति का बढ़ाने वाला है (शुक्लः) और शुक्ल पक्ष (प्राणः) बलवान् जीवन का हेतु प्रकाशस्वरूप भोक्तृशक्ति का बढ़ाने वाला है (तस्मात्) इस भोक्ता पुरुष की शक्ति की वृद्धि होने से (एते) ये (ऋषयः) वेदों के पढ़ने जानने वाले ऋषिलोग (शुक्ले) शुक्लपक्ष में (इष्टिम्) विधियज्ञ वा योगयज्ञादि सत्कर्म का अनुष्ठान् (कुर्वन्ति) करते हैं (इतरे) और इन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियों से भिन्न वेद के पढ़ने जानने से रहित लोग (इतरस्मिन्) कृष्णपक्ष में यज्ञ करते हैं ॥

भा०—बारह महीनों का समुदाय ही संवत्सर है अवयवों के सामर्थ्य से समुदाय सामर्थ्यवान् होता इस न्याय से मास रूप सूर्य भी प्रजा की स्थिति का हेतु है। जैसे अन्धे लोगों को सूर्य के प्रकाश में भी अन्धकार ही जान पड़ता है वैसे अज्ञानियों को अन्तःकरण की शक्ति का उत्तेजक भी शुक्ल पक्ष ज्ञान के न होने से कृष्ण ही जान पड़ता है। इस प्रकार ज्ञानियों को कृष्णपक्ष में भी ज्ञान के आश्रय से शुक्लपक्ष रहता है यह विचारशीलों को ध्यान देने योग्य है ॥ १२ ॥

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः । प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते । ब्रह्मचर्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १३ ॥

(वै) (अहोरात्रः) (प्रजापतिः) उक्तप्रकारेण प्रजारक्षकः (तस्य) अहोरात्रस्य (अहः, एव) (प्राणः) भोक्तृशक्तिवर्द्धकः (रात्रिः, एव) (रयिः) भोग्यशक्तिप्रधानाऽतएव (ये, दिवा) (रत्या) रम्यतेऽनया सा रतिस्तया स्त्रिया (संयुज्यन्ते) संयोगं कुर्वन्ति (वै) निश्चयेन (एते) (प्राणम्) (प्रस्कन्दन्ति) निर्गमयन्ति शोषयन्ति वा (यत्) (रात्रौ,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रत्या) (संयुज्यन्ते) (तत्) (ब्रह्मचर्यमेव) अतोऽहनि मैथुनं न कार्यम् ॥

भा०—दिवसस्य तैजसप्रधानत्वादुष्णाधिक्यान्मैथुनं प्रतिषिध्यते मैथुने कृतेऽन्यदपि शरीरादुष्णत्वं प्रजायते तेनोष्णद्वयेन प्राणानां शोषणं निस्सरणं वा सम्भवति। अतएव रात्रावपि दीपं प्रज्वाल्य मैथुनं न कार्यम्। अस्मादेव दिवसे मैथुनं प्रतिषिध्यते, रात्रौ च मैथुनं विहितमेवविहितस्यानुष्ठातारः शास्त्रानुकूलमाचरन्तो ब्रह्मचारिण एव। प्रासङ्गिकोऽयं दिवा मैथुनप्रतिषेधः । अहोरात्ररूपः कालविभागात्मकोऽपि सूर्यः सृष्टिस्थितिहेतुः ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(अहोरात्रः) एक दिन रात (वै) भी (प्रजापतिः) उक्त प्रकार से प्रजा का रक्षक है (तस्य) उसके दो भागों में (अहः, एव, प्राणः) दिन ही भोक्तृशक्ति का बढ़ाने वाला जीवन का हेतु है (रात्रिः, एव) रातही (रयिः) भोग्यशक्ति को बढ़ाने वाली प्रलय रूप है इसी कारण अर्थात् भोग्यशक्ति युक्त कामदेव के रात्रि में उत्तेजित होने और दिन में शुष्क होने से (ये, दिवा) जो लोग दिन में (रत्या) कामातुर स्त्री के साथ (संयुज्यन्ते) संयोग करते हैं (वै, एते) वे निश्चय कर अपने (प्राणम्) प्राण को (प्रस्कन्दन्ति) निकालने वा सुखाने का उपाय करते हैं और (यत्) जो (रात्रौ) रात्रि में (रत्या) स्त्री से (संयुज्यन्ते) संयोग करते हैं (तत्) वह (ब्रह्मचर्यमेव) बल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थान बने रहने से ब्रह्मचर्य ही है। इसलिये दिन में मैथुन न करना चाहिये ॥

भा०—दिन में प्रकाश तेज और गर्मीके बढ़ने से मैथुनका निषेध है मैथुन करते समय शरीर से और भी गरमी निकलती है इस दो प्रकार की उष्णता से प्राणों का निकल जाना वा सूखना सम्भव है इसीलिये रात्रि में भी दीपक जला के मैथुन न करे। इसी कारण दिन में मैथुन का निषेध है। रात्रि में मैथुन का विधान है शास्त्र की आज्ञा के अनुसार विहित का अनुष्ठान करने वाले ब्रह्मचारी ही कहाते हैं यहाँ दिन के मैथुन का निषेध प्रसंग से कर दिया गया। कालविभाग दिनरात रूपसूर्य उत्पत्ति और स्थिति का हेतु है ॥ १३ ॥

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ १४ ॥

(वै) (अन्नम्) गोधूमयवाद्योषधीनां पक्वं फलम् (प्रजापतिः) प्रजायाः प्रादुर्भूतायाः सृष्टेरक्षकम्। अन्नं वै प्राणिनः प्राणाइति श्रुत्यन्तरादन्नमन्तरेण प्राणस्थितिर्भवितुमशक्या। अतएवानावृष्टिजन्यदुर्भिक्षेऽन्नमन्तरेण प्राणिनां महान् क्षयो जायते (ततः, ह, वै) तस्मात्प्रसिद्धादन्नादेव (तत्) उत्पत्तिकारणम् (रेतः) वीर्यम् (तस्मात्) योषिति सिक्ताद्वीर्यात् (इमाः) प्रत्यक्षाः सर्वाः (प्रजाः) मनुष्याद्याः (प्रजायन्ते) उत्पद्यन्ते ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—तस्माद्वापतस्मादात्मन आकाशस्संभूत आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः । अग्नेरापः । अद्भ्यः पृथिवी । पृथिव्या ओषधयः। ओषधिभ्योऽन्नमन्नाद्रेतो रेतसः पुरुषः । इत्यादि क्रमेण प्राणिसृष्टिकारणानामपि कारणं परं ब्रह्म तदेवं कुतो हवा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इत्यस्योत्तरं दत्तम् । प्राणिभिर्भुक्तादन्नात्परिणतं रसाद्यात्मकं भूत्वा चत्वारिंशत्तमेऽहनि सप्तमो वीर्य धातुः परिणम्यते स्त्रीपुरुषसंयोगेन तस्मादेव वीर्यादपत्यानि जायन्ते ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(वै) (अन्नम्) गेहूँ आदि औषधियों का फलरूप अन्न भी (प्रजापतिः) उत्पन्न हुई सृष्टि का रक्षक है। एक श्रुति में कहा है कि प्राणी के प्राण अन्न ही हैं क्योंकि अन्न के विना प्राणों का ठहरना दुस्तर है। इसी कारण अनावृष्टि से हुए दुर्भिक्ष समय में प्राणियों का बड़ा नाश प्रलयरूप हो जाता है (ततः, ह, वै,) उस प्रसिद्ध अन्नसे ही (तत्) उत्पत्ति का कारण (रेतः) वीर्य होता (तस्मात्) स्त्री के गर्भाशय में पहुँचाये उस वीर्य से (इमाः) ये प्रत्यक्ष (प्रजाः) मनुष्यादि प्राणी (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं ॥

भा०—तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है कि सब के कारण परमेश्वर से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि अग्नि से जल, जल से पृथिवी, पृथिवी से शाखारूप औषधि और औषधियों से दानारूप अन्न उत्पन्न होता और अन्न से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वीर्य तथा वीर्य से शरीर बनते हैं इस क्रम से सृष्टि के कारणों का भी कारण परब्रह्म है, इत्यादि कथन से [कहाँ से ये प्रजा उत्पन्न होती हैं] इस पहिले किये हुए प्रश्न का उत्तर दिया गया। प्राणियों के खाये हुए अन्न से विकारी हुआ अर्थात् पचा रसादिरूप होकर चालीसवें दिन सातवां धातु वीर्य बनता है स्त्री पुरुष का संयोग होने से उसी वीर्य से सन्तान होती है ॥ १४ ॥

तद्ध ह प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादयन्ते तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

(तत्) पूर्वोक्तं ब्रह्मचर्यादिकम् (ह) प्रसिद्धाः (ये) जितेन्द्रियाः स्वदारनिरता जनाः (प्रजापतिव्रतम्) प्रजारक्षकं धर्मशास्त्रोक्तमृतौ पर्ववर्जं भार्यागमनरूपं नियमम् (चरन्ति) सेवन्ते (ते) पुरुषाः (मिथुनम्) पुत्रपुत्रीरूपं सन्तानद्वयमपि (उत्पादयन्ते) नहि ते निर्वंशा भवन्ति। प्रायः सन्तानाभाव एतन्नियमविरुद्धानामेव भवति (येषाम्) मनसि कायेवाचिच (तपः) (ब्रह्मचर्यम्) उपस्थेन्द्रियनिग्रहपूर्वकं तपश्चरणमेव परमं कर्त्तव्यम् (येषु) च (सत्यम्, प्रतिष्ठितम्) दृढं न कदाचित्किञ्चिदपि सत्यव्रताद्ये चलन्ति (तेषाम्, एव) (एषः) (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मणो ज्ञानं दर्शनं च भवति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—ये प्रजोत्पादनाय दिवामैथुनमनृतौ पर्वसु च स्त्री-गमनं न कुर्वन्ति तेऽवश्यं पुत्रवन्तो भवन्ति तदनुकूलमाचरन्त इतरेऽपि ससन्ताना भवन्तु ये च सत्यव्रता बाल्याद्ब्रह्मचारिण एव तपस्यन्ति तेषामिहैव ब्रह्मज्ञानं सम्पद्यते तेन निःशङ्का आनन्दमया भवन्ति ॥ १५ ॥

भाषार्थः—(ये, ह) जो अपनी ही स्त्री से नियम रखने वाले प्रसिद्ध जितेन्द्रिय पुरुष (तत्) उस पूर्वोक्त (प्रजापति-व्रतम्) धर्मशास्त्रों में कहे पर्वों को छोड़कर ऋतु समय में अपनी स्त्री से संयोग करने रूप, प्रजारक्षक नियम का (चरन्ति) सेवन करते हैं (ते) वे पुरुष (मिथुनम्) कन्या पुत्र दोनों प्रकार के सन्तानों को (उत्पादयन्ते) उत्पन्न करते हैं वे कभी निर्वंश नहीं होते अर्थात् इस नियम से विरुद्ध चलने वाले पुरुषों के प्रायः सन्तान नहीं होते (येषाम्) जिनके मन वाणी और शरीर में (तपः) (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्य धारण-पूर्वक तप करना ही परम सर्वोत्तम कर्त्तव्य है और (येषु) जिन में (सत्यम्) सत्य (प्रतिष्ठितम्) प्रतिष्ठित है जो सत्य वर्त्ताव से कभी किञ्चित् भी चलायमान नहीं होते (तेषाम्, एव) उन्हीं के लिये (एषः) यह प्रत्यक्ष वर्त्तमान शरीर में ही (ब्रह्मलोकः) ब्रह्म का ज्ञान वा दर्शन होता है अर्थात् जीवन्मुक्त हुए ब्रह्मज्ञान का आनन्द भोगते हैं ॥

भा०—जो लोग सन्तानों की उत्पत्ति की इच्छा से दिन,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋतु भिन्न काल और पौर्णमासी आदि पर्व दिनों में स्त्री से समागम करना छोड़ देते हैं वे अवश्य पुत्रों वाले होते हैं उन्हीं श्रेष्ठ पुरुषों के अनुकूल आचरण करते हुए अन्य लोग भी सन्तान वाले हों। और जो सत्याचरण के नियम में बन्धे बाल्यावस्था से ब्रह्मचारी ही रह कर तपस्या करते हैं उनको इसी जन्म में ब्रह्मज्ञान हो जाता है जिससे निःशङ्क आनन्द भोगते हैं ॥१५॥

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥ १६ ॥

(येषु) (जिह्मम्) कौटिल्यमभिमानेर्ष्यामात्सर्यादिजन्यम् (अनृतम्) निषिद्धाचरणमगम्यागमनादिकम् (न) नास्ति (च, माया) अन्तःकरणाद्विरुद्धाचरणमपि (न) न विद्यते (तेषाम्) (असौ) शरीरपातानन्तरं प्राप्यं परोक्षम् (विरजः) शुद्धं निर्मलम् (ब्रह्मलोकः) ब्रह्मणो दर्शनं ज्ञानं च भवति येन ते मुक्ता इत्युच्यन्ते (इति) प्रथमप्रश्नसमाप्तिसूचकः ॥

भा०—इतः पूर्वपद्येन सरजसि शरीरे सत्यप्यन्तःकरण-शुद्धिद्वारा जीवन्मुक्तिदशायां ब्रह्मज्ञानं तदानन्दश्च सम्पद्यत इत्युक्तम्। अनेन च देहनाशादूर्ध्वं विरज आत्मा विरजं ब्रह्मा-प्नोति मुक्तो भवतीत्युच्यते ॥ १६ ॥

भाषार्थः—(येषु) जिन पुरुषों में (जिह्मम्) अभिमान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईर्ष्या और मत्सरतादि से हुई कुटिलता तथा (अनृतम्) शास्त्र-विरुद्ध अगम्या स्त्री से गमन करना आदि (न) नहीं है (च) और (माया) अन्तःकरण आत्मा से विरुद्ध आचरण भी (न) नहीं रहा (तेषाम्) उनके लिये (असौ) शरीर छूटने पश्चात् प्राप्त होने योग्य परोक्ष (विरजः) शुद्ध निर्मल (ब्रह्म-लोकः) ब्रह्म का ज्ञान और दर्शन होता है जिससे वे मुक्त कहाते हैं (इति) यह प्रथम प्रश्न समाप्त हुआ इसका सूचक इति शब्द है ॥

भा०—इस से पूर्व श्लोक से मलिन शरीर के होने पर भी अन्तःकरण की शुद्धि के द्वारा जीवन्मुक्त दशा में ब्रह्मज्ञान और उसके आनन्द भोग की सिद्धि होना कहा है और इस मन्त्र से शरीर छूटने पश्चात् निर्मल ब्रह्म को प्राप्त हुआ मुक्त होता है यह आशय कहा है ॥ १६ ॥

इति प्रथमः प्रश्नः समाप्तः ॥

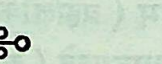

अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ भगवन् ! कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत्प्रकाश-यन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ ॥

(अथ) कात्यायनप्रश्नस्योत्तरश्रवणानन्तरम् (भार्गवः) भृगुगोत्रस्थः (वैदर्भिः) विदर्भेः पुत्रो वैदर्भिनामा (एनम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिप्पलादम् (पप्रच्छ) पृष्टवान् । हे (भगवन् !) (कति, एव) (देवाः) व्यवहारसाधका इन्द्रियादयः (प्रजाम्) शरीररूपामुत्पन्नां सृष्टिम् (विधारयन्ते) विशेषेण धारयन्ते (कतरे) बुद्धीन्द्रियकर्मेन्द्रिययोर्मध्ये कस्मिन्नेकतरे (एतत्) क्रियाविशेषणम् (प्रकाशयन्ते) प्रकाशं कुर्वन्ति (पुनः) (एषाम्) इन्द्रियादीनां मध्ये (कः) (वरिष्ठः) अतिशयेन वरः सर्वोत्तमः (इति) एवं पृष्टवान् ॥

भा०—आद्यप्रश्ने भोक्तृशक्तिप्रधानस्य प्राणस्य महत्त्वमनेकरूपत्वं चोक्तमिदानीं तदेव द्रढयितुं प्रश्नान्तरमारभते । शरीराणां स्थितिरेव सृष्टिस्थितिः कस्तत्र मुख्यो हेतुरिति श्रोतुं प्रश्नः । इन्द्रियादिषु प्रत्यगात्मविचारेण ज्ञातेष्वात्मदर्शनयोग्यतोपजायते ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब कात्यायन के प्रश्नका उत्तर सुनने के पश्चात् (भार्गवः) भृगुगोत्री (वैदर्भिः) विदर्भि ऋषि का पुत्र वैदर्भि नामक ऋषि (एनम्) इन पिप्पलाद ऋषि से (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवन्) भगवन् ज्ञानरूप ऐश्वर्य युक्त (कति) कितने (एव) ही (देवाः) व्यवहारके सिद्ध करनेवाले इन्द्रियादि (प्रजाम्) शरीररूप सृष्टि को (विधारयन्ते) विशेष कर धारण करते हैं (कतरे) ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों में से किस एकमें (एतत्) इस प्रकार (प्रकाशयन्ते) वस्तु ज्ञान का प्रकाश होता अर्थात् मुख्य कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर यात्रा किन के आधीन है (पुनः) और (एषाम्) इन इन्द्रियादि के बीच (कः) कौन (वरिष्ठः) सर्वोत्तम है (इति) इस प्रकार पूँछा ॥

भा०—पहिले प्रश्न में भोक्तृशक्तिप्रधान प्राण का महत्त्व और अनेक रूप होना कहा अब उसी को दृढ़ करने के लिये प्रश्नोन्तर का प्रारम्भ करते हैं-शरीरों की स्थिति ही सृष्टि की स्थिति है उस स्थिति का मुख्य हेतु कौन है यह सुनने के लिये द्वितीय प्रश्न है। भीतरी विचार से इन्द्रियादि के कृत्य को ठीक २ जान लेने से आत्मदर्शन की योग्यता होती है ॥१॥

तस्मै स होवाचाकाशो ह्येष देवो वायुरग्नि रापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रकाश्या-भिवदन्ति वयमेतद्राणमवष्टभ्य विधारयामः ॥ २॥

(तस्मै) वैदर्भये (सः) पिप्पलादः (ह, उवाच) प्रकट-मिदमाह (हवै) (आकाशः) (एषः) (देवः) द्युतिमान् (वायुः) (अग्निः) (आपः) (पृथिवी) एतानि पञ्चमहा-भूतानि शरीरस्योपादानकारणानि (वाक्) उपलक्षणमेत-दन्यकर्मेन्द्रियाणाम् (मनः, चक्षुः, श्रोत्रम् च) चादन्यान्यपि ज्ञानेन्द्रियाणि बोध्यानि सर्वाणीमानि प्राणिनिकायस्य स्त-म्भाइव धारकाणि सन्ति सर्वेषां च व्यवहारसाधकत्वाद्देव-त्वम् (ते) तेष्विन्द्रियरूपा देवाः (प्रकाश्य) स्पर्द्धया मनुष्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इव स्वस्य महिमानं प्रख्याप्य (वयम्) (एतत्) (वाणम्) वा विकल्पेन आनो जीवनमस्य, यस्य जीवनमनियतं तदेतच्छरीरम्। छादनं स्थूणाइव (अवष्टभ्य) (विधारयामः) इति (अभिवदन्ति) प्रत्यक्षं जल्पन्तीव ॥

भा०—यद्यपीन्द्रियाणि प्राणाश्चाचेतनाश्चेतनवद्वक्तुमशक्तास्तथापि वक्ता चेतनः स प्राणेन्द्रियसंवादप्रदर्शनपुरस्सरं प्राणस्य महत्कृत्यं व्याचष्टे। ज्ञानकर्मेन्द्रियेभ्यः प्राणस्योत्कृष्टत्वप्रतिपादनं संवादस्य तात्पर्यम्। भौतिकानीन्द्रियाण्यहङ्कारवन्ति सन्ति स्वाभिमानं प्रख्याप्य वदन्ति। वयमेवेदं शरीरं चालयामः। अस्मद्धारणमन्तरेण स्थूणानिस्सारणेन छादनमिवेदमनाधारं सद्यएव पतेत् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस वैदर्भि ऋषि के लिये (सः) वे पिप्पलाद ऋषि (ह, उवाच) प्रकट बोले कि (हवै) निश्चय कर प्रसिद्ध (एषः, देवः) यह प्रकाशमान (आकाशः) आकाशतत्त्व (वायुः) वायु (अग्निः) अग्नि (आपः) जल (पृथिवी) पृथिवी शरीरके उपादान कारण ये पञ्चमहाभूत (वाक्) वाणी आदि कर्मेन्द्रिय (मनः, चक्षुः, श्रोत्रम्, च) मन नेत्र और कान आदि ज्ञानेन्द्रिय ये सब चेतन शरीर को खम्भा के तुल्य धारण करने वाले हैं और सब व्यवहारों के चलानेवाले होने से देव कहाते हैं उनमें (ते) वे इन्द्रियरूप देव (प्रकाश्य) मनुष्यों के तुल्य अपनी महिमा को प्रकट करके ईर्ष्यापूर्वक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोले कि (वयम्) हम लोग (एतत्) इस (वाणम्) जिसके जीवन वा स्थिर रहने में सन्देह हो कि ठहरेगा वा नहीं उस शरीर को जैसे थूनी छप्पर को वैसे (अवष्टभ्य) रोककर (विधारयामः) विशेषता से धारण करते हैं ऐसा (अभिवदन्ति) प्रत्यक्ष कहते जैसे जान पड़ते हैं ॥ २ ॥

भा०—यद्यपि इन्द्रियाँ और प्राण जड़ हैं वे चेतन के तुल्य नहीं बोल सकते तो भी वक्ता पुरुष चेतन है वह प्राण और इन्द्रियों का संवाद प्रदर्शन पूर्वक प्राण के बड़े कृत्यकी व्याख्या करता है। ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से प्राण की श्रेष्ठता दिखाना संवाद का अभिप्राय है भौतिक इन्द्रिय अभिमान युक्त हुए अपने अभिमान को प्रकट करके बोलते हैं कि हमी इस शरीर को चलाते हैं। हमारे धारण किये विना थूनी न रहने से वा निकाल लेने से छप्पर के तुल्य अनाधार हुआ यह शरीर शीघ्र गिर जावे ॥ २ ॥

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । मा मोहमापद्यथाहमेवैतत्पञ्चधात्मानं विभज्यैतद्वाणमवष्टभ्य विधारयामीति ॥ ३ ॥

(तान्) इन्द्रियरूपान् देवान् (वरिष्ठः) अतिशयेन वरः श्रेष्ठो वास्तवेन सर्वेषूत्तमः (प्राणः) (मोहम्) (मा, आपद्यथ) आपद्यध्वम् । अनुदात्तेरवलक्षणस्यात्मनेपदस्यानित्यत्वा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्परस्मैपदम् (अहम् , एव) (आत्मानम्) स्वस्वरूपम् (पञ्चधा प्राणापानव्यानोदानसमानभेदप्रकारैः (विभज्य) (एतत् , वाणम्) शरीरम् (अवष्टभ्य) उत्थाप्य (एतत्) क्रियाविशेषणम् (विधारयामि) विशेषेण पतनादवरुध्य व्यापारे प्रवर्त्तयामि (इति) इत्थम् (उवाच) ॥

भा०—प्राण एवास्मिन्कलेवरे सर्वोत्तमः स एवेदं शरीरं जीवयति प्राणमन्तरेण जीवनं कदापि न भवति । बधिरान्धादयस्तु जीवन्त्येव सुषुप्तिदशायां सर्वाणीन्द्रियाणि तमोगुणरूपेऽन्धकारसागरे निमज्जन्ति । अतएव देही न किमपि पश्यति न शृणोति न वदति न च शीतोष्णे सुखदुःखे वाऽनु भवति मनसोऽपि तदानीं तमसि लीनत्वात् । तदापि प्राण एवैको जागर्त्ति स एवान्यान्बोधयति जीवत्ययमिति । यदि प्राणोऽपि लीनः स्यात्तर्हि मरणे कः सन्देहः ? । अतः प्राण एव मुख्यो जीवनहेतुरिति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(वरिष्ठः) अतिश्रेष्ठ वास्तव स्वरूप से सर्वोत्तम (प्राणः) प्राण (तान्) उन इन्द्रियनामक देवताओंसे (इति, उवाच) ऐसे बोला कि तुम (मोहम्) अज्ञानाऽन्धकार को (मा, आपद्यथ) मत प्राप्त होओ (अहम् , एव) मैं ही (आत्मानम्) अपने स्वरूप के (पञ्चधा) प्राण, अपान, व्यान, उदान समान, इन पाँच प्रकार के नामों से (विभज्य) विभाग कर सब अवयवों में स्थित हुआ (एतत् , वाणम्) इस शरीर को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अवष्टभ्य) गिरने से रोक कर (एतत्, विधारयामि) ऐसा धारण करता हूँ जो सब काम ठीक २ चला जावे ॥

भा०—इस शरीर में प्राण ही सबसे उत्तम है वही इस प्राणी को जीवित रखता है प्राण के बिना किसी का कदापि जीवन नहीं रह सकता। और कान आदि इन्द्रियों के विना बहिरे अन्धे आदि तो जीते ही रहते हैं। सुषुप्तिदशा [जब सोते समय किसी प्रकारका स्वप्न भी नहीं होता पहरों तक समय पलोंके समान कट जाता है कुछ खबर नहीं रहती वह सुषुप्तिदशा है] में सब इन्द्रिय तमोगुणरूप अन्धकार समुद्र में डूब जाते हैं इसी कारण शरीरका स्वामी जीवात्मा न देखता न सुनता न बोलता और न गरमी सरदी वा सुख दुःखों का अनुभव करता है क्योंकि उस समय मन भी तमोगुणरूप अन्धकार में लीन हो जाता है तब भी एक प्राण ही जागा करता है। वह चलता हुआ प्राण ही अन्य मनुष्यादि को जताता है कि यह जीता है यदि प्राण भी तमोगुण में लीन होजावे तो मरने में क्या सन्देह रहे? इससे प्राण ही मुख्य जीवन का हेतु है ॥ ३ ॥

तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादुत्क्रमतइव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्व एव प्रतिष्ठन्ते। तद्यथा मक्षिका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिंश्च प्रतिष्ठमाने सर्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रं च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥ ४ ॥

(ते) इन्द्रियदेवाः प्राणस्य महत्त्वं निशम्याभिमानेर्ष्यायुक्ताइव (अश्रद्दधानाः) श्रद्धाविरहाः शिथिला निस्सत्त्वा- (बभवुः) येनेदं शरीरं न चलेदिति तेन च शरीरं न पतित प्राणे सति जीवदेवासीत् । (सः) प्राणश्चैतद्दृष्ट्वा (अभिमानात्) (उत्क्रमत, इव) देहान्निस्सृत इव शिथिलीबभूव (तस्मिन्) प्राणे (उत्क्रामति) देहान्निःसृते (सर्वे, एव) इन्द्रियदेवाः (उत्क्रामन्ते) (तस्मिंश्च,प्रतिष्ठमाने) (सर्वे, एव) (प्रतिष्ठन्ते) (तद्यथा) दृष्टान्तमत्राह (मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्वा, एव, मक्षिका, उत्क्रामन्ते) (तस्मिंश्च) मधुकरराजे (प्रतिष्ठमाने, सर्वा, एव) मक्षिकाः (प्रातिष्ठन्ते) (एवम्) प्रकारेण (वाक्, मनः, चक्षुः, श्रोत्रम् , च, प्रीताः, ते) स्वस्यापि जीवनहेतुम् (प्राणम्) ज्ञात्वा प्रसन्नाः सन्तो वक्ष्यमाणप्रकारेण प्राणम् (स्तुवन्ति) स्तुवन्ति ॥

भा०—चलति प्राणे मनुष्यो जीवति तदेन्द्रियाण्यपि स्वस्वकृत्यं कर्त्तुं शक्तानि भवन्ति निस्सृते च प्राणे सर्वेन्द्रियशक्तयस्तेन साकमेव देहान्निस्सरन्ति । एवं प्राणे सति मर्त्यो जीवति निस्सृते च म्रियते । एतेन सर्वोपरिमहत्त्वं प्राणस्यैवं विज्ञातव्यम् ॥४॥

भाषार्थः—(ते) वे इन्द्रियरूप देव प्राण की महिमा को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुन के ईर्षायुक्त मनुष्य के तुल्य (अश्रद्दधानाः) श्रद्धारहित शिथिल (बभूवुः) हो गये कि हमारे शिथिल-मृतप्राय हो जाने से यह शरीर न चले। पर वैसा करने से शरीर गिरा नहीं किन्तु प्राण की सत्ता से जीवित बना रहा (सः) वह प्राण भी इन्द्रियों के कृत्य को देखकर (अभिमानात्) अभिमान से (उत्क्रमत, इव) देह से निकल गया जैसा शिथिल होगया (तस्मिन्ः) उस प्राण के (उत्क्रामति) निकलते समय (सर्व, एव) सब इन्द्रियां (उत्क्रामन्ते) निकल जाती (च) और (तस्मिन्) उसके (प्रतिष्ठमाने) बने रहने में (सर्वे, एव) सब इन्द्रियां (प्रातिष्ठन्ते) ठहर जाते हैं (तद्यथा) दृष्टान्त कहते हैं कि जैसे (मधुकरराजानम्) शहद की मक्खियों में एक मक्खी राजा मानी जाती है उसके (उत्क्रामन्तम्) उड़ने पर (.सर्वा, एव, मक्षिका, उत्क्रामन्ते) अन्य सभी मक्खियाँ उड़ जाती हैं (च) और (तस्मिन्) उसके (प्रतिष्ठमाने) कहीं बैठ जाने पर (सर्वा एव) सभी मक्खियाँ (प्रातिष्ठन्ते) बैठ जाती हैं (एवम्) इसी प्रकार (वाक्, मनः चक्षुः, श्रोत्रम् , च) वाणी मन नेत्र और कान आदि इन्द्रिय प्राण को अपने भी जीवन का हेतु राजा मान के कि इसके निकलते ही हमारा निकलना साथ है इस प्रकार (प्रीताः) प्रसन्न हुए (ते) वे इन्द्रिय आगे कहे अनुसार (प्राणम्) प्राण की (स्तुन्वन्ति) स्तुति करते हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—प्राण के चलते २ मनुष्य जीता है तब इन्द्रियां भी अपना २ काम दे सकती हैं और प्राण के निकलते ही सब इन्द्रियों की शक्ति उसके साथ ही शरीर से निकल जाती हैं। इस प्रकार प्राण के रहते मनुष्य जीता और निकलते ही मर जाता है इससे प्राण का सर्वोपरि महत्त्व जानना चाहिये ॥४॥

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतं च यत् ॥५॥

अ०—अथ प्राणस्तुतिप्रमुखत्वेन भोक्तृशक्तेर्महत्त्वं प्रधानत्वं सर्वरूपत्वं च व्याचष्टे (एषः) भोक्तृशक्तिप्रधानः प्राणः (अग्निः) तैजसो भूत्वा (तपति) वायुमन्तरेणाग्निः प्रज्वलितुं तप्तुं वाऽशक्तः। अतएव पिहिते घटादौ प्रदीपादिर्न प्रज्वलति। इत्थमेव (एषः, सूर्यः) सूर्यस्य तपनेऽपि वायुरेव मुख्यो हेतुः (एषः, पर्जन्यः) वायुना सङ्घृष्ट एव मेघो जायते (एषः, मघवान्) धनवान्। मघमिति धननामास्ति निघण्टौ। भोक्तुरेव सर्वं धनं भोग्यरूपमिति (एषः, वायुः) वायुरूप एव प्राणः (एषः, पृथिवी) पृथिवीव सर्व शरीराणां धारकः (रयिः, देवः) चन्द्रमा इव सर्वस्य पोषको दिव्यस्वरूपः (सत्) मूर्त्तः स्थूलः (असत्, च) अमूर्त्तः सूक्ष्मः (अमृतम्) अविनाशी कारणरूपेण विनाशरहितः (च, यत्) स एतन्मूतो भोक्ता प्राणोऽस्ति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यमन्तरेण यस्य कार्यसाधकत्वं न सम्भवति तस्य तदात्मकत्वं लोके शास्त्रे च प्रायो जना वदन्ति, मन्यन्ते च। एवमग्न्यादयः प्राणमन्तरा कार्यं साद्धुमशक्ता इति प्राणस्याग्न्यादित्वमुक्तम्। प्राणः सर्ववस्तुषु प्रधानस्तमन्तरेण किमपि कार्यं न चलति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—अब प्राण की स्तुति का प्रस्ताव पूर्वक भोक्तृशक्ति की महिमा, प्रधानता और सर्वरूप होने का व्याख्यान करते हैं—(एषः) यह भोक्तृशक्तिप्रधान प्राण (अग्निः) तैजस होकर (तपति) तपता है। वायुरूप प्राण के बिना अग्नि का जलना और तपना नहीं हो सकता, इसी कारण ढाँपे हुए घट आदि में दीपक आदि नहीं जलता। इसी प्रकार (एषः) यह प्राण (सूर्यः) सूर्यरूप है क्योंकि सूर्यके तपने में भी वायुही मुख्य हेतु है (एषः, पर्जन्यः) यह प्राण मेघरूप है वायु के संघर्ष से ही मेघ उत्पन्न होता है इसी लिये मेघ का नाम वायुदल (बदल) है (एषः) यह प्राण ही (मघवान्) धनवान् है क्योंकि भोक्ता का ही सब भोग्यधन होता है प्राण भोक्ता है (एषः, वायुः) यह प्राण वायुरूप (एषः, पृथिवी) यह प्राण पृथिवी के तुल्य सब शरीरों का धारक (रयिः, देवः) आनन्ददायक चन्द्रमाके तुल्य सबकी पुष्टि करनेवाला (सत्) स्थूलरूप (असत्, च) और सूक्ष्म (अमृतम्) कारणरूप से विनाशरहित (च, यत्) यह इस प्रकार का भोक्ता प्राण है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—जिसके बिना जो कार्य साधक नहीं होता उसका तद्रूप होना लोक और शास्त्र में प्रायः मनुष्य कहते और मानते हैं। इस प्रकार अग्नि आदि प्राण के बिना कार्य सिद्ध नहीं कर सकते इसलिये प्राण को अग्नि आदिरूप कहा। प्राण सबमें प्रधान है उसके बिना कोई काम नहीं चलती ॥ ५ ॥

अराइव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।
ऋचो यजूंषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥६॥

(रथनाभौ, अराइव) (सर्वम्) जगत् (प्राणे) (प्रतिष्ठितम्) तथा (ऋचः) ऋग्वेदः (यजूंषि) यजुर्वेदः (सामानि) सामवेदः (यज्ञः) (क्षत्रम्) क्षत्रियः (ब्रह्म) ब्राह्मणः (च) चाद्वैश्यादयोऽपि सर्वे प्राणे प्रतिष्ठिताः ॥

भा०—यथा नाभिमन्तरेणाराणां स्थितिर्भवितुमशक्या तथैव ब्राह्मणक्षत्रियादिजगतः स्थितिः प्राणमन्तरेण न भवति प्राणाभावे च देहिनां ब्राह्मणादीनामभावाद्ऋग्वेदादीनामध्ययनाध्यापनप्रचाराणामसत्त्वाद्वेदानां स्थितिरपि न भविष्यति। एवं प्राणे सत्येव सर्वे स्वस्वकर्मणि प्रतिष्ठन्ते ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(रथनाभौ, अराइव) पुट्ठी वा पहिये की हाल में जैसे चारों ओरको अरा लकड़ी लगी होती हैं वैसे (सर्वम्) सब जगत् (प्राणे) प्राण में (प्रतिष्ठितम्) स्थित है और (ऋचः) (यजूंषि ऋग्वेद) यजुर्वेद (सामानि) सामवेद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यज्ञः) यज्ञ (क्षत्रम्) क्षत्रिय (ब्रह्म) ब्राह्मण (च) और वैश्यादि भी सब प्राण के बीच में स्थित हैं ॥

भा०—जैसे रथ के पहिये की हाल के बिना उसमें लगी हुई अरा नामक लकड़ियां नहीं ठहर सकतीं वैसेही ब्राह्मण क्षत्रियादि जगत् की स्थिति भी प्राण के बिना नहीं होती। प्राण के न होने पर शरीरधारी ब्राह्मणादि नहीं, ब्राह्मणादि के न रहने से ऋग्वेदादि के पढ़ने पढ़ाने के प्रचार का अभाव, प्रचार के न हो सकने से वेदों की स्थिति भी न होगी इस प्रकार प्राण के होते ही सब अपने २ कर्ममें स्थित होते हैं ॥६॥

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे। तुभ्यं प्राण! प्रजास्त्विमा बलिं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥ ७ ॥

हे (प्राण) (त्वमेव) (प्रजापतिः) प्रजातायाः सृष्टेः पालकः सन् (गर्भे) मातुर्गर्भाशयस्थेवाले (चरसि) गर्भस्थमपि त्वमेवजीवयसि त्वमेव च (प्रतिजायसे) पितृरूपेण पुत्ररूपेण चोत्पद्यसे वायुप्रेरणयैव बालः प्रसूयते (इमाः, प्रजाः) मनुष्याद्याः (तुभ्यम्, तु) त्वद्रक्षार्थमेव (बलिम्) ग्रासम् (हरन्ति) निगिरन्ति (यः) यस्त्वम् (प्राणैः) प्राणापानादिनामभेदैरस्मिन् कलेवरे जीवनं धरन् (प्रतितिष्ठसि) प्रतिष्ठितो भवसि ॥

भा०—देहे सर्वचेतनक्रियानिमित्तः प्राणएव प्राणे सबले कर्मणां प्राबल्यं निर्बले च नैर्बल्यं प्रजायते सर्वस्य निर्गमप्रदेशौ च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायुनिमित्तावेव स्तः । गर्भाशये शुक्रप्रवेशः प्रसूतिकाले गर्भनिस्सरणं च प्राणभेदाभ्यां प्राणापानाभ्यामेव जायते । इत्थमुत्पत्तिविनाशहेतुः प्राण एवास्ति तस्य रक्षायै भोज्यमन्नादिभुज्यते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—हे (प्राण) प्राण (त्वमेव) तू ही (प्रजापतिः) उत्पन्न हुई सृष्टि का रक्षक हुआ (गर्भे) माता के गर्भाशयस्थ बालक में (चरसि) विचरता अर्थात् गर्भ को भी तू ही जिलाता है और तू ही पितारूप वा पुत्ररूप से (प्रतिजायसे) उत्पन्न होता अर्थात् वायु की प्रेरणा से ही बालक उत्पन्न होता है (इमाः, प्रजाः) ये मनुष्यादि प्राणी (तुभ्यम्, तु) तेरी ही रक्षा के लिये (बलिम्) अन्न (हरन्ति) खाते हैं (यः) जो तू (प्राणः) प्राण, अपान आदि भेदों से इस शरीरका जीवन, धारण करता हुआ (प्रतितिष्ठसि) प्रतिष्ठित रहता है ॥

भा०—शरीर में चेतन से होने वाली सब क्रियाओं का निमित्त प्राण ही है प्राण के बलवान् रहने से सब कर्मों की प्रबलता और निर्बल रहने में निर्बलता होती है। सबके निकलने पैठने का निमित्त वायु ही है इस कारण गर्भाशय में वीर्य का प्रवेश और उत्पत्ति समय में गर्भ का निकलना प्राणके भेद प्राण वा अपान से ही होता है इस प्रकार उत्पत्ति विनाश का हेतु प्राण ही है उसकी रक्षा के लिये भोग्य अन्नादि खाया जाता है ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा।
ऋषीणां चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामसि ॥ ८ ॥

हे प्राण! त्वम् (देवानाम्) वसुरुद्रादित्यानां मध्ये (वह्नितमः) अतिशयेन वह्निर्वोढा कार्यनिर्वाहकः। (पितॄणाम्) जनकानाम् (प्रथमा) (स्वधा) सन्तानोत्पत्तिकाल एव कल्याणसूचकस्त्वमेव भवसि। (अथर्वाङ्गिरसाम्) थर्वतिश्चरतिकर्मा निरुक्ते। चरसंशये। असन्दिग्धा व्यवसायात्मका अथर्वाणः। अङ्गिरसस्तपस्विनस्तेषाम् (ऋषीणाम्) (सत्यम्, चरितम्) त्वमेव (असि) तपोधना ऋषयः प्राणायामादिप्राणचेष्टयैव सत्यमुपलभन्ते ॥

भा०—शरीरेषु सर्वचेष्टानिमित्तः प्राणः सर्वव्यापारसाधने मुख्यो हेतुः। स प्राणे जाते पुत्रे पितरः सन्तुष्यन्ति जीवन्मे पुत्रो जात इति मत्वा। "अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं च सर्वदा" इत्यादि प्रकारेण योगाभ्यासमनुष्ठायैवर्षयः कृतकृत्या भवन्ति। अतः प्राणो देवर्षिपितृषु प्रधानतया कार्यनिर्वाहक इति ध्वनितम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—हे प्राण! तू(देवानाम्) पृथिव्यादि वसु प्राणादि रुद्र और चैत्रादि मासरूप आदित्यनामक देवोंके बीच (वह्नितमः) विशेष कर कार्य्य चलाने वाला (पितॄणाम्) पिताओं को (प्रथमा, स्वधा) सन्तान की उत्पत्ति होते समय ही आनन्द का कारण होता है अर्थात् प्राणचेष्टा से जीवित पुत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को देखकर पिता प्रसन्न होते हैं (अथर्वाङ्गिरसाम्) निश्चयात्मक तपस्वी (ऋषीणाम्) ऋषियों का (सत्यम्, चरितम्) सत्य आचरण तू ही (असि) है अर्थात् तपस्वी ऋषिलोग भी प्रणायामादि प्राणचेष्टा से ही सत्य को प्राप्त होते हैं ॥

भा०—शरीरों में सब चेष्टा का निमित्त प्राण सब क्रियाओं के सिद्ध होने में मुख्य हेतु है। प्राण सहित पुत्र के उत्पन्न होने में पिता लोग सन्तुष्ट होते हैं कि हमारा पुत्र जीवित पैदा हुआ। भगद्गीता में लिखा है कि अपान में प्राण का और प्राण में अपान का होम करने अर्थात् एक को दूसरे में लय करने से मन वा इन्द्रिय वश में हो जाते हैं। इस प्रकार योगाभ्यास करके ही ऋषि लोग कृतकृत्य होते हैं इससे प्राण ही देव ऋषि और पितरों में मुख्य कर कार्य चलाने वाला है ॥ ८ ॥

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषाम्पति ॥ ९ ॥

हे (प्राण, त्वम्) (इन्द्रः) वायुरूपेण वृष्टिद्वाराऽन्नस्य दाता (तेजसा) तीक्ष्णतया (रुद्रः) स्वनिस्सरणसमये सम्बन्धिनो रोदयिता (असि) स्थितिकाले त्वमेव मनुष्यादिजन्तूनाम् (परिरक्षिता) सर्वतो रक्षकस्त्वयि तिष्ठति न कथञ्चिन्म्रियते (त्वम्) (अन्तरिक्षे) हृदयाकाशे प्रतिक्षणम् (चरसि) (त्वम् ज्योतिषाम्) चन्द्रनक्षत्रादीनाम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पतिः) स्वप्रकाशदानेन रक्षको भोक्तृशक्तिप्रधानः (सूर्यः) सूर्यरूपोऽसि ॥

भा०—उत्पत्तिस्थितिविनाशकाले प्राण एव सर्वस्य रक्षितास्ति । वायुरूपेणान्तरिक्षे प्राणरूपेण च हृदये सदा विचरति सूर्योऽपि वायुरूपप्राणेनैव प्रकाशमापद्यते ॥ ६ ॥

भाषार्थः—हे (प्राण, त्वम्) प्राण तू (इन्द्रः) वायुरूप से वृष्टि कर अन्न का दाता (तेजसा) तीक्ष्णता से (रुद्रः) अपने निकलते समय सम्बन्धियों को रुलाने वाला (असि) है संसार की स्थिति समय में तू ही मनुष्यादि जीवों का (परिरक्षिता) रक्षक अर्थात् तेरे स्थित रहते कोई नहीं मर सकता (त्वम्) तू (अन्तरिक्षे) हृदयरूप आकाश में प्रतिक्षण (चरसि) विचरता (त्वम्) तू (ज्योतिषाम्) चन्द्रमा नक्षत्रादि ज्योतियों का (पतिः) अपने प्रकाश से रक्षा करने वाला भोक्ता रूप होने से (सूर्यः) सूर्यरूप तू ही है ॥

भा०—उत्पत्ति स्थिति और प्रलय समय में प्राण ही सब का रक्षक है वायुरूप से आकाश में और प्राण रूप से सदा हृदय में विचरता है और सूर्य भी वायुरूप प्राण से ही प्रकाशित होता है ॥ ६ ॥

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राण ते प्रजाः । आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ॥ १० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे (प्राण !) (यदा, त्वम्) वायुरूपेण पर्जन्यं सङ्घर्ष्य (अभिवर्षसि) मेघजलं भूमौ निपातयसि.(अथ) तदानीम् (इमाः) मनुष्याद्याः (ते) तव (प्रजाः) (कामाय) अस्माकं) कामनापूर्त्यर्थम् (अन्नम्) अस्माद्वर्षणात् (भविष्यतिइात) मत्वा (आनन्दरूपाः) (तिष्ठन्ति) निराकुलाः सुखं प्राप्ता भवन्ति ॥

भा०—सर्वस्य गमनागमननिमित्तो वायुरेवेत्युक्तम् । वायोः सङ्घर्षादेव वृष्टिर्जायते । वृष्टौ सत्यामेवौषध्यन्नाद्युत्पत्त्या प्राणिमात्रस्य सुखं जायतेऽतो वायुरूपः प्राण एव सर्वेषां सुखस्य मूलम् ॥ १० ॥

भाषार्थः—हे (प्राण) प्राण (यदा, त्वम्) जब तू वायुरूप से मेघका संघर्ष कर (अभिवर्षसि) जलको पृथिवी पर गिराता=वर्षाता है (अथ) तब (इमाः) ये मनुष्यादि (ते) तेरी (प्रजाः) प्रजा (कामाय) हमारी कामना पूरी होने के लिये इस वर्षासे (अन्नम्, भविष्यति) अन्न उत्पन्न होगा (इति) ऐसा मान के (आनन्दरूपाः) आनन्द में मग्न व्याकुलतारहित सुखपूर्वक (तिष्ठन्ति) स्थित होती हैं ॥

भा०—सब के जाने आने का निमित्त वायु ही है यह कहा है, वायु के संघर्ष से ही वृष्टि होती है। वृष्टि के होने से ही औषधि वा अन्नादि की उत्पत्ति से प्राणिमात्र को सुख होता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ।
वयमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ॥ ११ ॥

हे (प्राण !) (त्वम्, व्रात्यः) असंस्कार्यो नित्यशुद्धः (एकः) अनेकप्राणिष्वेकरूपः (ऋषिः) प्रतिक्षणं गन्ता (अत्ता) भोक्तान्नादेः (विश्वस्य) (सत्पतिः) सर्वोत्तमो रक्षकः (वयम्) (आद्यस्य) तव भक्ष्यस्यान्नादेः (दातारः) (त्वम्) मातरिश्वनः) वायोः (पिता) जनकः । यस्य वातः प्राणापानावित्यादिवेदमन्त्रैर्ज्ञायत ईश्वरस्य प्राणरूपसामर्थ्यादेव वायुर्जायत इति ॥

भा०—अनेकप्राणिष्वेकरूपाय वायोः कारणाय प्राणायेन्द्रियाण्यन्नमादाय ददति तेन प्राणस्य रक्षणं जायते प्राणाश्चान्नं निगलति ॥ ११ ॥

भाषार्थः—हे (प्राण) प्राण (त्वं, व्रात्यः) तू संस्कार करने योग्य न होने से नित्य शुद्ध (एकः) अनेक प्राणियों में एकरूप (ऋषिः) प्रतिक्षण चलने वाला (अत्ता) अन्नादि का भोक्ता (विश्वस्य) संसार का (सत्पतिः) सर्वोत्तम रक्षक है (वयम्) हम लोग (आद्यस्य) तेरे खाने योग्य अन्नादि के (दातारः) देने वाले हैं (त्वम्) तू (मातरिश्वनः) वायु का (पिता) पिता है । परमेश्वर के प्राण अपानरूप सामर्थ्य से वायु उत्पन्न होता इत्यादि वेदमन्त्रों के प्रमाण से जाना गया कि वायु का कारण प्राण है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—अनेक प्राणियों में एक रूप वायु के कारण प्राण के लिये इन्द्रिय अन्न लेकर देते हैं तिस से प्राण की रक्षा होती है और प्राण अन्न को कण्ठ से नीचे उतारता है ॥११॥

यात ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या च चक्षुषि । या च मनसि सन्तता शिवां तां कुरु मोत्क्रमीः ॥ १२ ॥

हे प्राण ! (ते) तव (या) अपानरूपा (वाचि, प्रतिष्ठिता) (या) व्यानरूपा (श्रोत्रे) (या, च) प्राणरूपा (चक्षुषि) (या, च) समानरूपा (मनसि) (सन्तता) मनोवृत्तिषु विस्तृता (तनूः) स्वरूपम् (ताम्) (शिवाम्) शान्तां स्थिरां कल्याणकारिणीम् (कुरु) (मा, उत्क्रमीः) उत्क्रमणं मा कुरु। तवोत्क्रमणेन सर्वासामुत्थानादस्माकमिन्द्रियाणामप्यकल्याणमेव ॥

भा०—यया नाड्याऽधस्तादपानवायुर्निस्सरति तयैवोपरिष्टाद्वाक् च। अतएव प्रवृत्तायां वाच्यपानवायुर्न निस्सरति। अतएवोक्तं गुदेऽपान इति। व्यानः श्रोत्रसञ्चारी येन शब्दः श्रूयते। नेत्ररश्मिप्रसारकः प्राणः। समानवायुरिन्द्रियेषु मनश्चालयति। एवं प्राणस्यावान्तरभेदेष्वपानादिषु विकलेषु वागादीन्द्रियाणि स्वस्वकर्मणि न प्रवर्त्तन्ते निस्सृते चापानादाविन्द्रियाण्यपि सहैव निस्सरन्ति स्वस्थेषु चावतिष्ठन्ते॥१२॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—हे प्राण! (ते) तेरा (या) जो अपानरूप (वाचि) वाणी में (प्रतिष्ठिता) स्थित है (या) जो व्यान नामक (श्रोत्रे) कान में (च) और (या) जो प्राणनामक (चक्षुषि) नेत्र में (च, या) और जो समानरूप (मनसि-सन्तता) मन की वृत्तियों में विस्तृत (तनूः) स्वरूप है (ताम्) उसको (शिवाम्) स्थिर वा कल्याणकारी (कुरु) करो (मा उत्क्रमीः) शरीर से मत निकलो। तुम्हारे निकलने में सब अपनादि के निकलने से हम इन्द्रियों का भी अकल्याण ही है फिर जीवित नहीं रह सकते॥

भा०—जिस नाड़ी से नीचे को अपानवायु निकलता है उसी नाड़ी से ऊपर को वाणी निकलती है। इसी लिये कहा है कि गुदेन्द्रिय में अपान रहता है इसी कारण बोलते समय अपान वायु नहीं निकलता। जिससे शब्द सुन पड़ता वह कानों में विचरने वाला व्यान कहाता है। नेत्र की किरणों का चलाने वाला प्राण और समानवायु मनको इन्द्रियों के साथ चलाता है इस प्राण के अवान्तर भेद अपानादि के विकल होने में वाणी आदि इन्द्रिय अपने २ कर्मों में प्रवृत्त नहीं होते और अपानादि के निकलने में इन्द्रिय भी साथ ही निकल जाते हैं। और स्वस्थ रहनेमें इन्द्रिय भी स्वस्थ हो जाते हैं१२

प्राणस्येदं वशे सर्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम्।
मातेव पुत्रान् रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञां च विधेहि न इति१३

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(त्रिदिवे) प्रकाश्यप्रकाशकरूपेष्वैहिकपारमार्थिकव्यवहार-साधनाधारेषु त्रिषु लोकेषु (यत्) स्थावरजङ्गमम् (प्रतिष्ठितम्) अवस्थितम्। तत् (इदम्, सर्वम्) (प्राणस्य, वशे) वर्त्तते वायुरूपःप्राणएव लोकत्रयस्याधारश्चालकश्चास्ति। तदर्थं हे प्राण! (माता, पुत्रानिव) अस्मान् (रक्षस्व) (नः) अस्मभ्यम् (श्रीः, च) राज्यादिक्षत्रधर्मशोभाम् (प्रज्ञाम्) वेदादि-शास्त्रज्ञानं ब्रह्मधर्मवृद्धिम् (च) (विधेहि) (इति) प्रश्नसमाप्तिसूचकः ॥

भा०—सर्वः स्थावरजङ्गमः संसारः प्राणरूपस्य वायोरेवाधारे तिष्ठति वायुनैव सर्वं चेष्टते विद्यमानः प्राण एव सर्वं रक्षति निस्सृते तस्मिन् सर्वं विनष्टमिति। ब्रह्मक्षत्रादिजगतः समृद्धिहेतुर्मुख्यः प्राण एवास्ति ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(त्रिदिवे) प्रकाश्य और प्रकाशकरूप लौकिक पारलौकिक व्यवहार के साधक तीनों लोक में (यत्) जो चराचर जगत् (प्रतिष्ठितम्) अवस्थित है वह (इदम्, सर्वम्) यह सब (प्राणस्य, वशे) प्राण के वश में वर्त्तमान अर्थात् वायुरूप प्राण ही तीनों लोकका धारण करने वा चलाने वाला है। इसलिये हे प्राण! (माता, पुत्रानिव) पुत्रों को माता के तुल्य हमारी (रक्षस्व) रक्षा करो (नः) हमारे लिये (श्रीः, च) राज्यादि क्षत्रधर्म की शोभा (च) और (प्रज्ञाम्) वेदादि शास्त्र के ज्ञानरूप ब्राह्मण धर्मकी वृद्धि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को (विधेहि) कीजिये (इति) इस से द्वितीय प्रश्न की समाप्ति सूचित होती है ॥

भा०—चर अचर सब संसार प्राणरूप वायु के ही आधार में स्थित है, वायु के द्वारा ही सब क्रिया करता है विद्यमान प्राण ही सब की रक्षा करता है, उसके निकलने पर सब का नाश हो जाताहै और ब्राह्मण क्षत्रियादि जगत् की वृद्धि का मुख्य हेतु प्राण ही है ॥ १३ ॥

इति द्वितीयः प्रश्नः समाप्तः ।

अथ हैन कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ । भगवन्! कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्छरीर आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥ १ ॥

(अथ) वैदर्भिकृतप्रश्नस्योत्तरश्रवणानन्तरम् (आश्वलायनः, कौसल्यः) कौसल्याभिधोऽश्वलस्य गोत्रापत्यम् (एनम्) पिप्पलादं वक्ष्यमाणप्रकारेण (पप्रच्छ) हे (भगवन्!) (एषः, प्राणः) (कुतः) कस्मात् (जायते) (अस्मिन्, शरीरे, कथम् आयाति) (आत्मानम्) स्वस्वरूपम् (प्रविभज्य) (कथम्) केन प्रकारेण (प्रातिष्ठते) शरीरेऽवस्थितः (केन) कारणेन (उत्क्रमते) (कथम्) (बाह्यम्) विषयसम्बन्धिज्ञानम् (कथम्) च (अध्यात्मम्) सुखदुःखादिकम् (अभिधत्ते) धारयति । इत्येवं मे प्रश्नाः सन्तीति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—द्वितीयप्रश्ने प्राणस्य भोक्तृप्रधानस्य महत्त्वमनेकरूपत्वं चोक्तमिदानीं तस्य शरीरे यथावस्थितिस्तथा व्याख्यायते

भाषार्थः—(अथ) अब वैदर्भिकृत प्रश्न का उत्तर सुनने पश्चात् (आश्वलायनः, कौसल्यः) अश्वल ऋषि के गोत्रापत्य कौसल्य ने (एनम्) इन पिप्पलाद ऋषि से (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवन् !) उत्तम ज्ञानी (एषः) यह (प्राणः) प्राण (कुतः) किससे (जायते) उत्पन्न होता और (अस्मिन्, शरीरे, कथम्, आयाति) इस शरीर में कैसे आता है तथा (आत्मानम्) अपने स्वरूप का (प्रविभज्य) विभाग कर (कथम्) किस प्रकार (प्रातिष्ठते) शरीर में अवस्थित होता और (केन) किस कारण (उत्क्रमते) शरीर से निकलता तथा (कथम्) कैसे (बाह्यम्) बाहिरी विषय सम्बन्धी ज्ञान को और (कथम्) कैसे (अध्यात्मम्) मानस सुख दुःखों को (अभिधत्ते) धारण करता (इति) इस प्रकार मेरे प्रश्न हैं ॥

भा०—द्वितीय प्रश्न में मुख्य भोक्ता प्राण का महत्व और अनेक रूप होना कहा है। अब इस तृतीय प्रश्न में जिस प्रकार उस प्राण के शरीर में स्थिति रहती है वैसी व्याख्या करते हैं ॥ १ ॥

तस्मै स होवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसीति तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि ॥ २ ॥

(तस्मै) कौसल्याय (स, ह) पिप्पलादः (ह, उवाच)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकटमुवाच (अति, प्रश्नान्) कठिनान् प्रश्नान् (पृच्छसि) नहि साधारण एवं प्रष्टुमर्हति तेनाहं जाने त्वम् (ब्रह्मिष्ठः) अतिशयेन ब्रह्मज्ञः (असि) (इति) (तस्मात्) (ते) तुभ्यम् (अहम्) (ब्रवीमि) ज्ञानमुपदिशामि ॥

भा०—भाषणेनैव सर्वस्य बुद्धिमत्वं निर्बुद्धित्वं च परीक्ष्यते कौसल्येन च यत्पृष्टं तेन तस्य ज्ञानार्हत्वं बुद्धिमत्वं च प्रतीयते ॥ २ ॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस कौसल्य ऋषि से (सः) वे पिप्पलाद (ह, उवाच) प्रकट बोले कि तुम (अतिप्रश्नान्) अति कठिन प्रश्न (पृच्छसि) पूँछते हो साधारण मनुष्य ऐसा प्रश्न नहीं कर सकता (इति) तिससे मैं जानता हूँ कि तुम (ब्रह्मिष्ठः) विशेष कर ब्रह्मज्ञान की योग्यता रखते (असि) हो (तस्मात्) इस कारण (ते) तुमसे (अहम्) मैं (ब्रवीमि) ज्ञान का उपदेश करता हूँ ॥

भा०—बोलने से ही सबकी बुद्धिमत्ता वा निर्बुद्धिता की परीक्षा हो जाती है। कौसल्य ऋषि ने जो पूंछा उससे उसके ज्ञान की योग्यता और बुद्धिमत्ता प्रतीत होती है ॥ २ ॥

आत्मन एष प्राणो जायते। यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ॥ ३ ॥

(आत्मनः) परमात्मनः परमेश्वरात् (एषः) प्रत्यक्षं चेष्टमानः (प्राणः) (जायते) उत्पद्यते (एतस्माज्जायते प्राणो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनः सर्वेन्द्रियाणि चेति श्रुत्यन्तरादवगन्तव्यम्) दृष्टान्तमाह (यथा) (पुरुषे) शरीरे सति (छाया) जायते नासति तथैवात्मनि सति प्राणो जायते (एतस्मिन्) प्राणे (एतत्) आत्मतत्वम् (आततम्) व्याप्तम् न तु प्राणो ब्रह्मणि व्याप्तुमर्हः (अस्मिन्) (शरीरे) (मनोकृतेन) मनसः शुभाशुभवासनारज्जुभिराकृष्यमाणः प्राणः (आयाति) शरीरेण सम्बध्यते ॥

भा०—परमात्मसत्तयैव प्राणादिसर्वमुत्पद्यते तिष्ठति च परमात्मा च सर्वस्मिन् व्याप्तो न तु परमात्मनि कश्चिद्व्याप्तुमर्हति । सञ्चिते कर्मणि सति शुभाऽशुभफलभोगाय शरीरमुत्पद्यते तच्चसप्राणमेव फलं भोक्तुं शक्तमतः प्राणस्य शरीरेण भोगार्थमेव सम्बन्ध इति युज्यते ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(आत्मनः) सर्वान्तर्यामी परमेश्वर से (एषः) यह (प्राणः) प्राण (जायते) उत्पन्न होता है । एक अन्य श्रुति में लिखा है कि इस परमेश्वर से प्राण मन, और इन्द्रिय होते हैं । इसमें दृष्टान्त कहते हैं कि (यथा) जैसे (पुरुषे) शरीर के होने पर (छाया) छाया होती किन्तु न होने से नहीं होती वैसे ही आत्मा के होते प्राण होता है (एतस्मिन्) इस प्राण में (एतत्) यह आत्मस्वरूप (आततम्) व्याप्त है अर्थात् ब्रह्म में कोई व्याप्त नहीं हो सकता (अस्मिन् शरीरे) इस शरीर में (मनोकृतेन) मन की शुभाऽशुभ वासनारूप रस्सियों से बँधा हुआ प्राण (आयाति) शरीरके साथ सम्बद्ध होता है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—परमात्मा की सत्ता से ही प्राणादि सब उत्पन्न और स्थित होते हैं और परमेश्वर सबमें व्यापक है परन्तु परमात्मा में कोई व्यापक नहीं हो सकता। सञ्चित कर्म के होते ही शुभ अशुभ फल भोग के लिये शरीर उत्पन्न होता है वह शरीर प्राण सहित रहने पर ही फल भोग सकता है इस कारण शरीर के साथ प्राण का सम्बन्ध भोग के लिये ही होता है ॥ ३ ॥

यथा सम्राडेवाधिकृतान् विनियुङ्क्ते। एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राण इतरान् प्राणान् पृथक्पृथगेव सन्निधत्ते ॥ ४ ॥

आत्मानं प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठत इत्युक्तं तस्यानेनोत्तरं सदृष्टान्तमुपपादयति-(यथा, सम्राट्) (अधिकृतानेव) अधिकारिण एव स्वस्वकर्मणि (एतान्, ग्रामान्) (एतान्, ग्रामान्,) (अधितिष्ठस्व) एतेषां ग्रामाणां त्वमधिपतिर्भवेत्येषां च त्वम् (इति) एवं प्रकारेण (विनियुङ्क्ते) नियोजयति (एवम्) तथैव (एषः, प्राणः) (इतरान्, प्राणान्) जीवनहेतून् चक्षुरादीन् (पृथक्पृथगेव) स्वस्वकर्मणि स्थाने च (सन्निधत्ते) नियोजयति ॥

भा०—सर्वेषु मुख्यः प्राण इति पूर्वमेवोक्तं मुख्य एव तस्मिन् समुदाये राजा भवति। अस्मिन् कलेवरे प्राण एवेन्द्रियाणां राजा स तत्तदिन्द्रियं तस्य तस्य कर्मणि स्थाने च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वशक्त्या विनियोजयति । अर्थात् प्राण एव चक्षुरादिभेदेना-वस्थायेदं चालयति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—प्राण अपना भेद कर कैसे शरीर में स्थित रहता है यह कह चुके हैं उसका उत्तर इस मन्त्र से दृष्टान्त-पूर्वक कहा जाता है (यथा, सम्राट्) जैसे बड़ा राजा (अधि-कृतानेव) अधिकारियों को ही उन उन के काम में (एतान्, ग्रामान्, एतान्, ग्रामान्, अधितिष्ठस्व) इन ग्रामों के तुम और इन ग्रामों के तुम अधिपति [कोट पाल आदि] होओ (इति) इस प्रकार (विनियुङ्क्ते) नियुक्त करता है (एवम्) वैसे ही (एषः प्राणः) यह मुख्य प्राण (इतरान्, प्राणान्) अन्य अपानादि वा जीवन के हेतु नेत्र आदि को (पृथक् पृथगेव) अलग २ अपने २ कर्म वा स्थान में (सन्निधत्ते) नियुक्त करता है ॥

भा०—सब इन्द्रिय आदि में प्राण मुख्य है यह पहिले ही कह चुके हैं और समुदाय में मुख्य तथा बलवान् ही राजा होता है । इस शरीर में भी प्राण इन्द्रियों का राजा है । वह उन २ इन्द्रियों को उन २ के कर्म और स्थान में अपनी शक्ति से नियत करता अर्थात् प्राण ही नेत्र आदि भेद से शरीर में स्थित होके इस शरीर को चला रहा है ॥ ४ ॥

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्ये तु समानः । एष ह्येत-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुधुतमन्नं समन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥ ५ ॥

(पायूपस्थे) पायुश्चोपस्थश्च तस्मिन् (अपानम्) अपानम्) अपानवायुर्विण्मूत्रे उत्सृजँस्तिष्ठति (चक्षुःश्रोत्रे) चक्षुश्च श्रोत्रं च चक्षुःश्रोत्रं तस्मिन्। [उभयत्र प्राण्यङ्गत्वादेकवद्भावः] (मुखनासिकाभ्याम्) निस्सरन् (प्राणः, स्वयम्) (प्रातिष्ठते) अवस्थितो भवति (तु) (मध्ये) पायूपस्थचक्षुःश्रोत्रयोरन्तराले हृदयप्रदेशे (समानः) तिष्ठति (एषः, हि) समानएव (एतत्) (हुतम्) भुक्तम् (अन्नम्) (समम्) रसादिनिस्सारणेन यथास्थानम् (नयति) (तस्मात्) समं नीताद्भुक्तादन्नाद्रसाद्यात्मकाद्धातुरूपात् (एताः) (सप्त, अर्चिषः) दर्शनादिविषयप्रकाशिका दीप्तयः [चक्षुरादीनीन्द्रियाणि] (भवन्ति) प्रभवन्ति ॥

भा०—अनेन प्राणापानसमानानां स्थितिः शरीरे यत्र यथा च भवति तद्दर्शयति। चक्षुषि श्रोत्रे च मुखनासिकाभ्यां निस्सरन् प्राणस्तिष्ठति पायावुपस्थे च विण्मूत्रार्त्तवशुक्रादिकं विमुञ्चन्नपानस्तिष्ठति। एतद्द्वयोर्मापेन मध्ये भुक्तान्नं पचन्समानस्तिष्ठति। यथा शैलात्सप्त स्रोतांसि प्रभवन्ति तथैव हृदयस्थसमानवायुकृतव्यापाराच्छिरःस्थानि सप्तस्रोतांसि स्वस्वविषयग्राहकाणि चक्षुरादीनीन्द्रियाणि प्रभवन्ति ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(पायूपस्थे) गुदा और उपस्थ [लिङ्ग, भग दोनों का नाम है] में (अपानम्) विष्ठा मूत्र का त्याग करता हुआ अपान वायु स्थित रहता (मुखनासिकाभ्याम्) मुख और नाक द्वारा निकलता हुआ (चक्षुःश्रोत्रे) आँख और कान में (स्वयम्, प्राणः) प्राण स्वयं (प्रातिष्ठते) स्थित रहता (तु) और (मध्ये) गुदा और मुख के बीच हृदय में (समानः) समानवायु स्थित होता है (एषः, हि) यह समान ही (एतत्) इस (हुतम्) खाये हुये (अन्नम्) अन्न को (समम्) पचाता हुआ रसादि निकाल कर सब धातुओं को ठीक २ (नयति) अवस्थित करता है (तस्मात्) उस पचे हुए रसादि धातुरूप अन्न से (एताः) ये (सप्त) सात (अर्चिषः) देखना आदि विषय के प्रकाशक दीप्ति अर्थात् इन्द्रियरूप मुख के सात द्वार (भवन्ति) समर्थ होते हैं ॥

भा०—इस मन्त्र में प्राण अपान समान की स्थिति शरीर में जहाँ और जैसे होती है सो दिखाते हैं। आँख कान में मुख नासिका द्वारा निकलता हुआ प्राण ठहरता है। गुदा लिङ्ग भग में विष्ठा, मूत्र, रक्त, वीर्यको निकालता हुआ अपान रहता है। इन दोनों के बीच हृदय में खाये हुए अन्न को पचाता हुआ समान ठहरता है। जैसे पर्वत से सात सोता निकलें वैसे हृदय के समान वायु के व्यापार से सात इन्द्रिय-रूप सोता (आँख, नाक कान, के दो २ और एक मुख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का ये सात द्वार हैं) अपना २ विषय ग्रहण करने वाले होते हैं ॥ ५ ॥

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतंशतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ ६ ॥

इदानीं व्यानकृत्यमाचष्टे (हृदि) कमलाकारमांसपिण्डपरिच्छिन्ने हृदयावकाशे (हि) एव (एषः) शरीराभिमानी (आत्मा) जीवात्मा शरीररूपस्य रथस्य स्वामी तिष्ठति (अत्र) हृदये (नाडीनाम्) मूलभूतानाम् (एतत्) (एकशतम्) सङ्ख्यानमस्ति (तासाम्) मूलनाडीनां मध्ये (शतं शतम्) भेदा भवन्ति (एकैकस्याम्) देहलीदीपकन्यायेन शाखाप्रतिशाखाभ्यामुभाभ्यामिदं सम्बध्यते (द्वासप्ततिः, द्वासप्ततिः, प्रतिशाखानाडीसहस्राणि) (भवन्ति) (आसु) मूलशाखाप्रतिशाखारूपासु सर्वासु नाडीष (व्यानः) सर्वस्मिन् व्याप्तत्वाद्व्यानः (चरति) गच्छति व्याप्नोति ॥

भा०—यथा कश्चिद् राजा नियते स्थाने कुत्रचिद्दुर्गे तिष्ठति तेन नियुक्तो राजकार्याध्यक्षः सर्वराज्ये भ्रान्त्वा प्रजा रक्षति तथैव पुण्डरीकसदृशे हृदयदुर्गेऽवस्थितो देहराजो जीवात्मा तेन नियुक्तो व्याननामको वायुर्मूलशाखाप्रतिशाखारूपासु सर्वशरीरगासु नाडीषु विशेषतः सन्धिस्कन्धमर्मप्रदे-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान् रक्षन् विचरति । अन्यत्राप्युक्तं व्यानः सर्वशरीरग इति । उक्तप्रकारेण संख्याताः सर्वा नाड्यो मिलित्वा द्वासप्ततिकोट्यो द्वासप्ततिलक्षाणि दशसहस्राणि द्वेशते एका चेति भवन्ति। अत्रानन्दगिरिणा दशसहस्राणां स्थाने षट्सहस्रं चेत्युक्तम्। तदुक्तप्रकारेण कथमपि नायात्यतो भ्रममूलकमिति प्रतिभाति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—अब व्यान नामक प्राणका व्याख्यान करते हैं (हृदि) कमलके तुल्य आकार वाले (सुश्रुतके शारीर स्थान में लिखा है कि नीचे मुख वाला कमल के तुल्य हृदय है वह जागते समय खुला रहता और सोते समय कमल के तुल्य बन्द हो जाता है) मांसपिण्डरूप हृदय में (हि) ही (एषः) यह रथरूप शरीर का स्वामी वा अभिमानी (कि यह मेरा शरीर है) (आत्मा) जीवात्मा रहता है (अत्र) इसी हृदय में (नाडीनाम्, एतत्, एकशतम्) एक सौ एक नाड़ी हैं। यह बात कठोपनिषद् में भी कह चुके हैं (तासाम्) उन एक सौ एक नाड़ियों में से एक एक की (शतंशतम्) सौ २ शाखा नाड़ी फूटती हैं अर्थात् जैसे मूलरूप वृक्ष की जड़में से स्कन्ध गुद्दे निकलते वैसे मूल एक सौ एक नाड़ियों में एक २ में सौ २ शाखा निकलती हैं अर्थात् १०१ के साथ १०० का गुणा करने से १०१०० दश हजार एक सौ शाखा नाड़ी होती हैं उन शाखा नाड़ियों में से (एकैकस्याम्) एक २ के (द्वास-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तिर्द्वासप्ततिः, प्रतिशाखानाडीसहस्राणि) (भवन्ति) बहत्तर २ हजार प्रतिशाखा नाड़ियां होती हैं। (आसु) इन मूल शाखा और प्रतिशाखारूप सब नाड़ियों में (व्यानः) व्यापक व्याननामी प्राण (चरति) विचरता है ॥

भा०—जैसे कोई राजा नियत प्रदेश और किसी उत्तम महल वा किले में रहता है उसके द्वारा नियत किया राजकार्य का मुख्य अधिकारी सब राज्यमें भ्रमणकर प्रजाकी रक्षा करता है वैसे ही कमलाकार हृदय रूप किला में स्थित शरीर का राजा जीवात्मा है उससे नियुक्त व्याननामक वायु मूल शाखा और प्रतिशाखारूप सब शरीर में व्याप्त नाड़ियों में सन्धि, स्कन्ध और मर्मस्थलों की रक्षा करता हुआ विचरता है और सब शरीर में रस रुधिरादि को चलाकर फैलाता है अन्यत्र भी लिखा है कि सब शरीर में रहने वाले वायु का नाम व्यान है। उक्त प्रकार से गिनी गई मूल शाखा और प्रतिशाखा रूप सब नाड़ी मिलकर बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दश हजार दो सौ एक होती हैं। रीति यह है कि प्रथम एक सौ एक (१०१) मूल नाड़ी हैं उनमें निकली शाखा १०१०० और इन शाखारूप मूल में निकली प्रतिशाखा अर्थात् शाखा की शाखा ७२७२००००० बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख हुईं। इन तीनों संख्या का जोड़ ७२७२१०२०१ बहत्तर करोड़ बहत्तर लाख दश हजार दो सौ एक होता है। यहां आनन्दगिरि टीकाकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने दश हजार के स्थान में छः हज़ार ही लिखा है सो इस उक्त नियमानुसार भ्रम प्रतीत होता है अन्य कोई ऐसा नियम नहीं दीखता कि जिससे दश हज़ार के छः हज़ार रह जावें ॥ ६ ॥

अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति । पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ७ ॥

(अथ) इदानीमुदानकृत्यमाचष्टे (उदानः) कण्ठप्रदेशसंचारी वायुः (एकया) शतादूर्ध्वं वर्त्तमानया नाड्या सुषुम्णानामिकया (ऊर्ध्वः) नाभितलादुपरिष्टाच्चेष्टमानः (पुण्येन) कर्मणा जीवात्मानम् (पुण्यम्) सुखभोगसामग्रीसहितम् (लोकम्) दृश्यं स्थानविशेषं देवादियोनिम् (नयति) (पापेन, पापम्) नयति (उभाभ्याम्) शुभाऽशभकर्मभ्याम् (मनुष्यलोकम्, एव) मनुष्ययोनिमेव नयति ॥

भा०—कठवल्लीपूक्तम्—शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्द्धानमभिनिस्सृतैका । एतस्यामेव सुषुम्णानाड्यामुदानो विचरति ॥ इयं नाडीमूर्द्धानमारभ्यापादतलमस्मिञ्छरीर आयता । अस्यामेव हृदिस्थायां जीवात्मा तिष्ठति । अनयैव मनो युञ्जानाः समाहिता योगिन आत्मज्ञानं लभन्ते । उदाननामा प्राण एव लिङ्गशरीरेण सार्द्धं जीवात्मानं शरीरान्निस्सारयति कर्मानुकूलौ योनिभोगौ च प्रापयति ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब उदान वायुका कृत्य कहते हैं (उदानः) कण्ठ में विचरने वाला उदाननामक प्राण (एकया)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०१ जो नाड़ी कही हैं उनमें सौ से ऊपर जो एक सुषुम्णा नामक नाड़ी है उसके साथ (ऊर्ध्वः) नाभि से ऊपर की ओर उठता हुआ (पुण्येन) पुण्य कर्म से जीवात्मा को (पुण्यम्) सुख भोग की उत्तम सामग्री से युक्त पवित्र (लोकम्) दर्शनीय स्थान और देवादि उत्तम योनि को (नयति) प्राप्त कराता है और (पापेन) पाप कर्म के सञ्चित होने से (पापम्) दुःख की सामग्री और तिर्यगादि योनि को प्राप्त कराता तथा (उभाभ्याम्) पुण्य पाप दोनों के सम होनेसे (मनुष्यलोकम्, एव) मनुष्य योनि को ही प्राप्त कराता है ॥

भा०—कठवल्ली में कहा है कि-हृदय में १०१ नाड़ियाँ हैं उनमें एक नाड़ी सीधी मस्तक मूर्द्धा को चली गई है इसी सुषुम्ना नाड़ी में उदान वायु विचरता है। यह नाड़ी मस्तक से लेकर पग के तलवा तक सीधी विस्तृत है इसी हृदयस्थ नाड़ी के एक प्रदेश में जीवात्मा रहता है । इसी नाड़ी के साथ मन को युक्त करते हुए समाधिनिष्ठ योगीजन आत्मज्ञान को प्राप्त होते हैं। उदाननामक प्राण ही लिङ्ग शरीर के सहित जीवात्मा को शरीर से निकालता है तथा कर्मों के अनुसार योनि और भोग को प्राप्त कराता है ॥ ७ ॥

आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः । पृथिव्यां या देवता सैषा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ८ ॥

(आदित्यः, ह) (बाह्यः, प्राणः) शरीराद्बहिर्वर्त्तमानः प्राणस्यापि प्राणः (एषः) सूर्यः (चाक्षुषम्) चक्षुषि स्थितम् (प्राणम्, अनुगृह्णानः) सूर्यप्रकाशसाहाय्यमुपलभ्यैव चक्षुःस्था प्राणशक्तिर्द्रष्टुं समर्था भवति। अयं सूर्यो द्युस्थाना देवता (या) (पृथिव्याम्) (देवता) भौतिकाग्निरूपास्ति (सा, एषा) (पुरुषस्य) सात्मकदेहस्य (अपानम्) (अवष्टभ्य) आलम्ब्याकृष्य शरीरस्थितिहेतुर्जायते। द्यावापृथिव्योः (अन्तरा) मध्ये (यत्) (आकाशः) अवकाशः प्राणापानयोर्मध्ये हृदयमिवास्ति (सः, समानः) सामान्येनाकाशस्थः समान आकाश इत्युच्यते। आकाश एव समानस्य मुख्यः सहायः। (व्यानः, वायुः) सर्वत्र सामान्येन वस्तुष्ववकाशे च व्याप्तो वायुर्व्यानस्य नाडीषु सम्बद्धस्य सहायकोऽस्ति ॥

भा०—इतः पूर्वं प्राणादीनामाभ्यन्तरत्वमुक्तम्। त आभ्यन्तरस्थाः प्राणादयो बाह्यसहायकमन्तरेण स्वकार्यं चालयितुमशक्ताः। चाक्षुषप्राणस्य सूर्येण मुख्यः सम्बन्धस्तैजसत्वादुभयोः। अतएव शरीरस्योर्ध्वभागे चक्षुषो निर्मिते परमात्मना सूर्योदयादेव चक्षुषोः शक्तिर्वर्द्धते। अपानस्याधोमुखी प्रवृत्तिः पार्थिवाग्निना सम्बन्धादस्ति जाठराग्निरपि पार्थिव एव तस्य समत्वेऽपानस्य साम्यमन्यथा वैषम्यमतएवापानजन्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोगा वर्द्धन्ते। अन्तरिक्षस्थो वायुः समानस्य सहायः। सृष्टौ व्याप्तश्च व्यानस्येति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(आदित्यः, ह) प्रसिद्ध सूर्य (बाह्यः, प्राणः) शरीर से बाहर रहने वाला प्राण अर्थात् प्राण का भी प्राण (एषः) यह सूर्य (चाक्षुषम्) आँख में स्थित (प्राणम्) प्राण का (अनुगृह्णानः) अनुग्रह सहायता करता हुआ अपनी परिधि में घूमता है अर्थात् सूर्य के प्रकाश की सहायता पाकरके ही नेत्र में रहने वाली प्राण की शक्ति वस्तु को देख सकती है। यह सूर्य स्वर्लोकसम्बन्धी देवता है और (या) जो (पृथिव्याम्) पृथिवी पर भौतिक अग्निरूप (देवता) देवता है (सा, एषा) वह यह (पुरुषस्य) आत्मसहित चेतन शरीरके (अपानम्) अपान नामी प्राणको (अवष्टभ्य) खींचकर शरीरको स्थित रखती है अर्थात् पार्थिव अग्नि अपान का आकर्षण पृथिवीकी ओर नीचे को किये रहता है इसी कारण शरीर इधर उधर को नहीं गिर सकता। स्वर्लोक और पृथिवी के (अन्तरा) बीच (यत्) जो (आकाशः) अवकाश प्राण अपानके बीच हृदयाकाश के तुल्य है (सः, समानः) वह समान वायुका सहायक और (व्यानः) (वायुः) सब वस्तु और अवकाशमें व्याप्त वायनाड़ियों में स्थित व्यानका सहायक है ॥

भाषा-इस मन्त्र से पूर्व शरीरके भीतर प्राणादि का कृत्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहा। वे शरीर में रहने वाले प्राणादि बाहिरी सूर्यादि की सहायताके बिना अपना कार्य नहीं चला सकते। नेत्रसम्बन्धी प्राणके साथ सूर्य का मुख्य सम्बन्ध है क्योंकि दोनों तैजस हैं। इसी कारण परमेश्वर ने शरीरके ऊपरले भाग में नेत्रोंको बनाया है और इसी सम्बन्ध से सूर्योदय होने पर नेत्रोंकी शक्ति बढ़ती है पार्थिव अग्नि के सम्बन्ध से अपान की चाल नीचे को है जाठराग्नि भी पार्थिव ही है उसके ठीक रहने से अपान वायु की समता और अन्यथा होने से विषमता हो जाती है इसी से अपान वायुके बिगड़ने कुपित होनेसे बड़े २ रोग होजाते हैं। अन्तरिक्ष में रहने वाला वायु समानका और सब सृष्टि में व्याप्त वायु व्यान नामक प्राण का सहायक है॥८॥

तेजो ह वै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजाः। पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः॥ ९॥

सामान्येन सर्वव्यापि (तेजः ह, वै) (उदानः) उदानस्यानुग्राहकम्। यत उत्क्रान्तिं जीवात्मनः करोति तस्मादुदान इत्यच्यते (तस्मात्) तेजसः शान्तत्वात् (उपशान्ततेजाः) उपशान्तं स्वाभाविकं तेजोऽस्य स पुरुषो गतासुः सन् म्रियते (मनसि) (सम्पद्यमानैः) निविशमानैः (इन्द्रियैः) चक्षुरादिभिः सह (पुनर्भवम्) जन्मान्तरे पुनरुत्पाद्यमानं शरीरान्तरं प्राप्नोति॥

भा०—उदानस्य मुख्यं सहायकं सर्वव्यापि तेजस्तेन तेज-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सानुगृहीत उदानः कण्ठदेशस्थो देहिनं जीवयति। रोगादि-कारणैस्स्वाभाविके तेजसि हृते सहायमन्तरेण स्थातुमशक्त उदानस्तं जीवात्मानं शरीरान्निस्सारयति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—सामान्य कर सर्वव्यापी (तेजः, ह, वै) तेजही (उदानः) उदाननामक प्राण का सहायक है। जिस कारण जीवात्माको शरीरसे निकालता इसलिये इसका नाम उदान है (तस्मात्) तिससे (उपशान्ततेजाः) स्वाभाविक तेज जिसका शान्त हो गया वह पुरुष मर जाता है अर्थात् (मनसि) मानस शक्तिमें (सम्पद्यमानैः) प्रवेश किये (इन्द्रियैः) नेत्र आदि इन्द्रियोंके साथ (पुनर्भवम्) जन्मान्तर में होने वाले शरीरान्तर को प्राप्त होता है ॥

भा०—उदान नामी प्राणका मुख्य सहायक सर्वव्यापी तेज है उस तेजकी सहायतासे कण्ठ देशमें स्थित उदान प्राणियोंको जीवित रखता है। रोगादि कारणों से जब स्वाभाविक शरीर का तेज नष्ट होता तब सहायकके विना ठहरनेमें अशक्त उदान उस जीवात्माको साथ लेकर शरीरसे निकलता है ॥ ९ ॥

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः।
सहात्मना यथासङ्कल्पितं लोकं नयति ॥ १० ॥

शरीरान्निष्क्रमणात्प्रसरे जीवात्मा (यच्चित्तः) यस्मिन्नभ्यस्तेऽनुभूते भोग्यादिवस्तुनि वासनारज्जुभिराकृष्टं चित्तमस्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है अनादिकाल से उस शरीर में सुख भोगे हैं और भोगता है इससे उसमें राग है यही बन्धन और यही ग्रन्थि है। अविद्या में फँसा यह जीव शरीर से पृथक् होना नहीं चाहता। और शरीर विवश छोड़ना पड़ेगा ऐसा जान के बड़ा कष्ट मानता है उस ऐसे हृदयान्तर्वर्त्ती अङ्गुष्ठमात्रस्थान में स्थित जीवात्मा को योगाभ्यासादि साधनों द्वारा शरीर के बन्धनों से छुड़ावे जिससे फिर शरीरधारण की इच्छा न करे किन्तु ग्लानि करे। यह उपनिषद् यहीं समाप्त होगई यह दो बार पढ़ने से सूचित होता है ॥ १७ ॥

मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिञ्च कृत्स्नम् । ब्रह्म प्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥ १८ ॥

(अथ) एतदुपनिषत्प्रतिपादिताया ब्रह्मविद्यायाः फलमाह (मृत्युप्रोक्ताम्) मृत्युनायमाचार्येण प्रतिपादिताम् (एताम्, विद्याम्) (कृत्स्नम्) (योगविधिम्) (च) मृत्युप्रोक्तमेव (नचिकेताः) (लब्ध्वा) (ब्रह्म, प्राप्तः) (विरजः) विरक्तः (विमृत्युः) विगतो मृत्युरस्य सः (अभूत्) (अन्यः, अपि) (यः, एवंवित्) (अध्यात्ममेव) प्राप्तः स्यात्स विरजो विमृत्युश्च भवितुमर्हति ॥

भा०—नचिकेतसा गुरूपदेशाद् ब्रह्मविद्यायोगाभ्यासवि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धान्यं च सकलं सफलं प्राप्तम्। अन्योऽपि यो ब्रह्मज्ञानमिच्छेत्तेन गुरुशुश्रूषयाऽन्यैश्च यथोक्तसाधनैर्ब्रह्मज्ञानं प्राप्य सर्वबाधाभ्यो विमुक्तेन भवितव्यम् ॥ १८ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब इस उपनिषद् में कही ब्रह्मविद्या का फल कहते हैं-(मृत्युप्रोक्ताम्) यमाचार्य ने कही (एताम्) इस (विद्याम्) ब्रह्मविद्या (च) और (कृत्स्नम्) सम्पूर्ण साङ्गोपाङ्ग (योगविधिम्) योग के विधान को (नचिकेतः) नचिकेता आचार्य से (लब्ध्वा) प्राप्त होके (ब्रह्म, प्राप्तः) ब्रह्म को प्राप्त हुआ (विरजः) विरक्त और (विमृत्युः) मृत्युरहित जीवन्मुक्त (अभूत्) हुआ (अन्यः) और (अपि) भी (यः एवंवित्) जो इस उक्त प्रकार गुरु की सेवा से ऐसा जानने वाला (अध्यात्ममेव) अध्यात्मविद्या को ही प्राप्त अर्थात् उक्त प्रकार इन्द्रियों की बाह्यशक्ति को रोक के भीतरी ध्यान में ही प्रवृत्त हो वह विरक्त हुआ मुक्त होने योग्य है ॥

भा०—नचिकेता गुरु के उपदेश से ब्रह्मविद्या और फलसहित सम्पूर्ण योगाभ्यास के विधान को प्राप्त हुआ। अन्य भी जो ब्रह्म ज्ञान की इच्छा करे उसको चाहिये कि गुरु की शुश्रूषा से और अन्य यथोक्त शम दम तितिक्षा उपरति आदि साधनों से ब्रह्मज्ञान को प्राप्त हो के सब दुःखों से छूटे ॥१८॥

सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १९ ॥

अथान्ते प्रार्थनाशान्तिश्चाभिधीयते (नौ) आवाम् (सह) सहैव परमेश्वरः (अवतु) तर्पयतु (नौ) सह (भुनक्तु) पालयतु । आवाम् (वीर्यम्) ब्रह्मविद्यातो निष्पन्नं सामर्थ्यम् (सह) (करवावहै) साधयावहै (नौ) आवयोः शिष्याचार्य्ययोः (अधीतम्) अध्ययनमध्यापनं च (तेजस्वि) ब्रह्मतेजोऽन्वितमस्तु । शिष्याचार्य्यावावाम् (मा, विद्विषावहै) द्वेषं मा कुर्याव । ओ३म्शान्तिः ३ त्रिविधशान्तिविधानेनाध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकाख्यं तापत्रयं शान्तं निरुपद्रवं भवतु ॥

भा०—सर्वस्मिन्कर्मणि परमेश्वर आदावन्ते च प्रार्थनीयः । उपद्रवा दुःखानि च न भवेयुरेतदर्थं शान्तिश्चाभिधेया । गुरुशिष्ययोर्लेशमात्रोऽपि भेदो न भवेत् । द्वयोरन्तःकरणं शुद्धं सेव्यसेवकप्रीतिवर्द्धकं प्रार्थनातत्परं मृदु भवेत्तदा विद्या सफला भवति । येनाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकदुःखानां शान्तिः स्यात् । अत्र द्विर्वचननिर्देशाच्छिष्याचार्य्याभ्यां स्त्रीपुंसाभ्यां वा प्रार्थना शान्तिश्च वक्तव्या ॥ १९ ॥

इति षष्ठी वल्ली समाप्ता ॥

भाषार्थः—अब समाप्ति में प्रार्थना और शान्ति कहते हैं (नौ) हम दोनों (गुरुशिष्यों) को (सह) साथही परमेश्वर (अवतु) तृप्ति को छुड़ा के तृप्त (सन्तुष्ट) करे (नौ) हम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दोनों की (सह) साथ (भुनक्तु) रक्षा करे। हे परमेश्वर! आपकी कृपा से हम दोनों (वीर्यम्) ब्रह्मविद्या के अभ्यास से हुए सुख दुःखादि द्वन्द्व के सहनादि रूप सामर्थ्य को (सह) साथ (करवावहै) सिद्ध करें (नौ) हम दोनों का (अधीतम्) पढ़ना पढ़ाना (तेजस्वि) ब्रह्म के तेज से युक्त हो। हम दोनों (मा, विद्विषाव है) आपस में कभी द्वेष न करें (ओ३म्) हे परमात्मन्! आप ऐसी कृपा करें जिस से हमारे आध्यात्मिक मानस, आधिदैविक-वाचिक वा शाब्दिकादि तथा आधिभौतिक—शारीरिक उपद्रव वा दुःख शान्त हो जावें॥

भा०—सब कर्मों के आदि अन्त में परमेश्वर की प्रार्थना और उपद्रव वा दुःखों के हटाने के लिये शान्ति कहनी चाहिये। जब गुरु शिष्य के अन्तःकरण में लेशमात्र भी भेद न हो किन्तु दोनों का अन्तःकरण शुद्ध परस्पर प्रीति बढ़ानेवाला प्रार्थना में रंगा कोमल हो तब विद्या सफल होती है जिससे आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक दुःखों की शान्ति होकर पूर्णसुख मिलता है। इस मन्त्र में कर्त्ता क्रिया के द्विवचन पढ़ने से गुरु शिष्य वा स्त्री पुरुषादि दो २ को मिल के ईश्वर की प्रार्थना और शान्ति कहनी चाहिये॥ १९॥

इति भीमसेनशर्म्मकृतं कठोपनिषद्भाष्यं समाप्तम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

अथाथर्ववेदीयप्रश्नोप-निषत्प्रारम्भः

इयं प्रश्नोपनिषदन्वर्थनामाऽस्ति। अस्यां षट् प्रश्नास्तेषामुत्तराणि च तत्र तत्र वर्णितानि। आद्यकण्डिकायां षड्ऋषयः प्रष्टारः परिगणितास्तेष्वेकैकेन पृष्टेन षड्विधान्युत्तराणि पिप्पलादेन प्रतिपादितानि विशेषस्तत्र तत्र वक्ष्यते॥

भाषार्थः—यह उपनिषद् अथर्ववेद सम्बन्धी है इसमें छः प्रश्न और उनके उत्तर वहाँ २ कहे हैं इसलिये इसका प्रश्न नाम सार्थक है। पहिली कण्डिका में भारद्वाजादि छः ऋषि पूछनेवाले उद्यत हुए गिनाये हैं उनमें से एक २ के पूछने पर पिप्पलादि महर्षिने छः प्रकार के उत्तर कहे हैं यही इसमें विषय है विशेष व्याख्यान वहाँ २ किया जायगा॥

सुकेशा च भारद्वाजः शैब्यश्च सत्यकामः सौर्य्यायणी च गार्ग्यः कौशल्यश्चाश्वलायनो भार्गवो वैदर्भिः कबन्धी कात्यायनस्ते हैते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

(भारद्वाजः) भरद्वाजस्यापत्यम् । ऋष्यण् (सुकेशा) (च) इति नामकः (शैब्यः) शिवेरपत्यमिति क्षत्रियगोत्राद्वृद्धेत्कोसलाजादाञ्ञ्यङ्, इति सूत्रेण ञ्यङ् (सत्यकामः, च) इति नामकः (सौर्यायणी) सौर्यस्य युवापत्यमिति फिञ् । सौर्यायणिः छन्दोवत्त्वाद्दीर्घः (गार्ग्यः) (च) इति नामको गर्गगोत्रीयः (आश्वलायनः) अश्वलस्यापत्यम् । (कौशल्यः) (च) इति नामकः (भार्गवः) भृगुगोत्रस्थः (वैदर्भिः) विदर्भेः पुत्रः (च) एतन्नामकः (कात्यायनः) कत्यस्यापत्यम् (कबन्धी) एतन्नामकः (ते, ह) प्रसिद्धास्तपस्विनः (एते) षट् (ब्रह्मपराः) ब्रह्मैव परं येषाम् (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्मप्राप्तौ निष्ठोत्कण्ठा येषाम् (परम्) इन्द्रियादिभ्यो दूरम् (ब्रह्म) (बृहद्व्याप्तमात्मतत्त्वम् अन्वेषमाणाः) (एषः, ह) प्रसिद्धोऽयमाचार्यः (वै) निश्चयेन (तत्, सर्वम्) आत्मस्वरूपमस्मभ्यम् (वक्ष्यति, इति) मत्वा (समित्पाणयः) समिधः पाणिषु येषाम् (ते) सुकेशादयः (भगवन्तम्) पूज्यं गुरुम् (पिप्पलादम्) (उपसन्नाः) प्रष्टुं समीपं जग्मुः ॥

भावार्थः—सगुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमिति श्रुत्यन्तरादवगम्यते नैत्यकाग्निहोत्रार्थं समिधां प्रयोजनमवगम्य तासां समर्पणमस्ति न तु नियमोऽस्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिध एव समर्पणीया इति किन्तु महाजनसमागमाय गच्छता तादृशं वस्तु गृहीत्वा गन्तव्यं यत्तस्य मान्यस्येप्सिततमं स्यात् । यथोक्तगुरुसम्बन्धादेवाधिकारी शिष्यो ब्रह्म ज्ञातुं शक्तोऽतएव ब्रह्मज्ञं पिप्पलादं ब्रह्मज्ञानप्राप्तये सुकेशादयो गतवन्त इति ॥ १ ॥

भाषार्थः—(भारद्वाजः) भरद्वाजगोत्री (सुकेशा) १ सुकेशा (शैव्यः) क्षत्रियगोत्री शिवि का पुत्र (सत्यकामः) २ सत्यकाम (सौर्यायणी) सौर्य का पुत्र (गार्ग्यः) ३ गार्ग्य गर्गगोत्री (आश्वलायनः) अश्वलका पुत्र (कौशल्यः) ४ कौशल्यनामी (भार्गवः) भृगुगोत्री (वैदर्भिः) विदर्भि का पुत्र ५ वैदर्भि (कात्यायनः) कत्य का पुत्र (कबन्धी) ६ कबन्धी (ते, ह) प्रसिद्ध तपस्वी (एते) ये छः (ब्रह्मपराः) सबसे परे ब्रह्मको मानने और (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्मकी प्राप्तिमें उत्कण्ठा रखने वाले (परम्) इन्द्रियादिसे परे (ब्रह्म) सर्वव्यापक आत्मतत्त्व का (अन्वेषमाणाः) खोज करते हुए (एषः, ह) यह प्रसिद्ध आचार्य (वै) निश्चयकर (तत्, सर्वम्) उस सब आत्मस्वरूप को हमारे लिये (वक्ष्यति, इति) कहेगा ऐसा मानकर (समित्पाणयः) हाथों में समिधा लिये हुए (ते) वे सुकेशादि छः ऋषि (भगवन्तम्) पूज्य गुरु (पिप्पलादम्) पिप्पलाद के पास (उपसन्नाः) पूछने को गये ॥

भा०—एक श्रुतिमें आज्ञा है कि जिसको ब्रह्मज्ञानकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्कण्ठा हो वह हाथमें समिधा लेकर वेदवेत्ता ब्रह्मज्ञानी आचार्य गुरु के पास जावे क्योंकि वैदिकधर्मनिष्ठ ऋषियों को नित्य के अग्निहोत्र में समिधाओं का काम अधिक पड़ता था इस कारण समिधों का समर्पण लिखा है किन्तु नियम नहीं है कि बड़ोंके पास समिधाही लेकर जावे किन्तु यह नियम अवश्य है कि किसी मान्यपुरुष से मिलने को जावे तब कोई ऐसा पदार्थ लेता जावे जो उसको अधिक सुखदायक वा प्रिय हो । ऐसे गुरु के सम्बन्ध से अधिकारी शिष्य ब्रह्मको जान सकता है इसी कारण ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति के लिये सुकेशादि छः ऋषिजन ब्रह्मज्ञानी पिप्पलाद गुरु के समीप ब्रह्मज्ञान का उपदेश सुनने को गये ॥ १ ॥

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥२॥

पिप्पलादस्तेषां हार्दं बुद्ध्वा पात्रत्वे न्यूनत्वमालोक्येदमाह—(तान्) सुकेशादीन् (ह) (सः) पिप्पलादः (ऋषिः उवाच) यूयम् (भूयः, एव) पुनरपि (तपसा) (श्रद्धया, ब्रह्मचर्येण) च सार्द्धम् (संवत्सरम्) (संवत्स्यथ) तावन्मन्निकटं निवत्स्यथ तदनन्तरम् । (यथाकामम्) यथाभिलाषम् (प्रश्नान्) (पृच्छथ) (यदि) वयम् (विज्ञास्यामः) (सर्वम्, ह) (वः) युष्मभ्यम् (वक्ष्यामः) उपदेक्ष्यामः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यद्यपि कृततपसोऽनुष्ठितब्रह्मचर्याश्रमाः सुकेशादयस्तथापि पिप्पलादेन स्वसामीप्ये श्रद्धया गुरुं शुश्रूषितुं तपोऽनुष्ठातुं चाज्ञप्ता येन तेषां पूर्णाधिकारित्वं ब्रह्मज्ञानाय श्रद्धा च परीक्षिता स्यादिति। यदि शब्दोऽत्रात्मश्लाघादोषनिवृत्त्यर्थो नतु ज्ञानसन्देहार्थः। यथाकाममिति शब्देन यो यत्स्वाभीष्टं प्रष्टुमिच्छति तस्मै तदुपदेक्ष्याम इति तात्पर्यम् ॥२॥

भाषार्थः—पिप्पलाद ऋषि उनका अभिप्राय जान के पूर्ण अधिकारी होने में कुछ न्यूनता देखकर यह बोलेः—(तान्,ह) उन सुकेशादि ऋषियों से (ह, सः) वे प्रसिद्ध ज्ञानी पिप्पलाद (ऋषिः) ऋषि (उवाच) बोले कि तुम (भूयः, एव) फिर भी (तपसा) तप (श्रद्धया) श्रद्धा (ब्रह्मचर्येण) और ब्रह्मचर्य आश्रम के साथ (संवत्सरम्) एक वर्ष भर (संवत्स्यथ) मेरे समीप निवास करो पीछे (यथाकाम्) अपनी २ इच्छा के अनुसार (प्रश्नान्) प्रश्नों को (पृच्छथ) पूछो (यदि) जो हम (विज्ञास्यामः) जानते होंगे तो (सर्वेह) सभी (वः) तुमसे (वक्ष्यामः) उपदेश करेंगे ॥

भावार्थः—यद्यपि सुकेशादि ऋषि ब्रह्मचर्य आश्रम और तपका अनुष्ठान किये हुए थे तो भी पिप्पलाद महर्षि ने अपने समीप श्रद्धा से गुरु को शुश्रूषा और तपका अनुष्ठान करने के लिये आज्ञा दी जिससे उनका पूर्ण अधिकारी होना और ब्रह्मज्ञान के लिये श्रद्धा की परीक्षा हो जावे। यदि जानते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होंगे इस कथन का अभिप्राय अपनी प्रशंसा न समझा जाना है किन्तु जानने में सन्देह नहीं। यथाकाम इस लिये कहा कि जो जिसको पूछना अभीष्ट हो वैसा पूछना सो कहेंगे ॥ २ ॥

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ ।
भगवन् ! कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥३॥

(अथ) संवत्सरानन्तरम् (कबन्धी) कबन्धोनामकः (कात्यायनः) कत्यस्यापत्यम् (उपेत्य) पिप्पलादसमीपमागत्य (पप्रच्छ) (ह, वै) पूर्ववृत्तस्मरणार्थौ निपातौ (इमाः प्रजाः) ब्राह्मणाद्याः (कुतः) (प्रजायन्ते) उत्पद्यन्ते ॥

भा०—यस्मादिदं जगदुत्पद्यते तन्निमित्तकारणं भवता वक्तव्यमेतेन यदि किमप्यस्ति तर्हि तदेव सर्वकर्तृ सर्वमूलमात्मतत्त्वं विज्ञास्याम इति कात्यायनस्याशयः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब एक वर्ष आज्ञानुसार श्रद्धापूर्वक ब्रह्मचर्य के साथ ऋषियों ने तप और गुरु की सेवा करके पश्चात् उन छः में से (कात्यायनः) कत्यके सन्तान (कबन्धी) कम्बन्धी ने (उपत्य) पिप्पलाद के समीप जाकर (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवन्) पूजनीय गुरो ! (ह, वै) पहिली सृष्टि होने के समय का वृत्तान्त स्मरण करके कहिये कि (इमाः) ये प्रत्यक्ष वर्त्तमान (प्रजाः) ब्राह्मणादि प्रजा (कुतः) किससे (प्रजायन्ते) उत्पन्न हुई हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—जिससे यह जगत् हुआ है उस निमित्त कारणको आप कहिये इस कथन से यदि कोई सृष्टिकर्त्ता है तो उसीको सबका मूल आत्मतत्त्व जानेंगे यह कात्यायनका अभिप्राय है॥३॥

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते रयिञ्च प्राणंचेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ॥४॥

(तस्मै) एवम्पृच्छते कात्यायनाय (सः) पिप्पलादः (ह, उवाच) प्रकटमुक्तवान् (वै) यदा (प्रजाकामः) प्रजाः सृजेयेति स्वाभाविकाभिलाषायुक्तः (प्रजापतिः) चराचरस्य स्वामी तदा (सः) (तपः) (अतप्यत) कथमिमाः प्रजाः सृजेयेत्यन्वीक्षणतत्परः समाधिस्थइव सर्वं रचनप्रकारमालोचितवान् (सः) (मिथुनम्) द्वन्द्वम् (उत्पादयते) उत्पादितवान्। किन्तन्मिथुनम् (रयिम्, च) भोग्यम् (प्राणम्, च) भोक्तारम् (मे) मम सृष्टौ (इत्येतौ) भोग्यभोक्तारौ (बहुधा) (प्रजाः), (करिष्यतः) (इति) ॥

भावार्थः—यद्यपि परमात्मन्यस्मदादिवदिच्छागुणो नास्ति तथापि सर्गारम्भे स्वाभाविकी सिसृक्षोत्पद्यते एव तदानीं स स्वात्मन्येवेक्षते। तस्मादीक्षणापूर्विकेयं सृष्टिरिति विद्वद्भिर्निश्चीयते। पूर्वं स्वसृष्टौ स द्वौ भेदावुत्पादयति शक्तिद्वयं भिनत्ति। भोग्यं भोक्ता स्त्री पुरुषः प्रकृतिः पुरुषो जडं चेतनं सूर्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्चन्द्रमा इत्यादि नामकं द्वन्द्वमादौ करोति तस्मादेव सर्वा विविधा सृष्टिः सुगमतयोत्पद्यते ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस पूछनेवाले कबन्धी कात्यायन के लिये (सः) वे पिप्पलाद (ह) प्रकट (उवाच) बोले कि (वै) जब (प्रजापतिः) चराचर जगत् का स्वामी (प्रजाकामः) मैं प्रजा को रचूँ ऐसी स्वाभाविक इच्छा से युक्त होता तब (सः) वह (तपः) आन्तर्य विचार से (अतप्यत) किस प्रकार इस प्रजा को रचूँ जिससे ठीक २ नियमपूर्वक सब काम चले ऐसा ध्यान करता है (सः) वह (तपः) (तप्त्वा) ध्यान करके (सः) वह (मिथुनम्) दो सहयोगी वस्तुओं को (उत्पादयते) रचता है (रयिञ्च) भोग्य और (प्राणम्, च) भोक्ता (इत्येतौ) ये दोनों (मे) मेरी सृष्टि में (बहुधा) बहुत प्रकार की (प्रजाः) प्रजा को (करिष्यतः) बढ़ावेंगे (इति) ऐसा विचार कर ॥

भा०—यद्यपि परमात्मा हम लोगों के तुल्य इच्छा गुण वाला नहीं है तो भी सृष्टि के आरम्भ में रचना की इच्छा स्वाभाविक प्रकट होती उस समय वह अपने स्वरूप में विचार करता है इसलिये विचारपूर्वक सृष्टि हुई ऐसा विद्वान् लोग मानते हैं। पहिले अपनी सृष्टि में उसने दो भेद किये जैसे—भोग्य, भोक्ता। स्त्री, पुरुष। जड़, चेतन इत्यादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम वाले दो भेद किये कि इनसे विविध प्रकार की सृष्टि सुगमता से उत्पन्न होगी ॥ ४ ॥

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमाः । रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्त्तं चामूर्त्तं च तस्मान्मूर्त्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥

अथ तयोर्भोग्यभोक्त्रोः साधर्म्यवैधर्म्यदर्शनपुरस्सरं सकारणौ व्याख्यातुमारभते (ह, वै) प्रसिद्धो हि (आदित्यः) कालविभागेन सर्ववस्तुन आयुराददानो याति स सूर्यः (प्राणः) प्राणरक्षानिमित्तत्वात्प्राणशब्दवाच्यः (रयिः, एव) धनाद्यैश्वर्यस्य निमित्तत्वाद्रयिशब्दवाच्यः (चन्द्रमाः) मनस आह्लादकः । भोक्तृभोग्यशक्त्योः प्राधान्येनोत्तेजकौ प्रधानौ निमित्ताख्यौ तावन्तरेण तयोः शक्त्योरसत्त्वात्तावेव प्राणरयिशब्दवाच्याविति भेदो दर्शितः । अथवा (एतत्, सर्वम्) (यत्) (मूर्त्तम्, च) स्थूलम् (अमूर्त्तम्, च) सूक्ष्मम् । भोक्तृभोग्यरूपं तत् (रयिर्वै) भोग्यमेवास्ति । भोक्ताऽपि भोग्यत्वमापद्यते (तस्मात्) शक्तिद्वयस्य चैकात्म्यात् (रयिः) भोग्यम् (मूर्त्तिरेव) स्थूलमेव । अर्थादमूर्त्तं सूक्ष्ममपि भोग्यं स्थूलत्वमापद्यते यद्वा कार्यस्थूलजगदपेक्षया तद्भोग्यं सूक्ष्मं भोक्तृपुरुषापेक्षया तु स्थूलमेव यतो हि भोक्तृपुरुषात्परमन्यत्सूक्ष्ममेव नास्ति । अतः स्थूलं सर्वं भोग्यम् । अमूर्त्तं भोक्त्रित्यर्थादापन्नं भवति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततःप्रजा इतिमनु-प्रामाण्यात्परम्परया भोक्तृणां स्थितावादित्यएवपरमं निमित्तम्। भोक्तृचेष्टायाः प्रवर्द्धकः सूर्योऽतएवरात्रौ तस्याः शैथिल्यम्। स्त्री भोग्यप्रधाना भोग्यशक्तिवर्द्धकश्चन्द्रमाः। अतएव प्रमदानां कामो रात्रौ चन्द्रसङ्गाद्विवर्द्धते चन्द्रेण च ता उपमीयन्ते। भोक्तृपुरुषशक्तिप्रधानो बर्द्धकश्च सूर्यः। प्रकृति स्त्री भोग्यशक्तिप्रधानास्तस्याः शक्तेर्वर्द्धकश्च चन्द्रमाः। अतएव चन्द्रमरीचिप्रसारात्प्रायो भोग्यौषध्यादीनि वर्द्धन्ते तानि च सूर्यमरीचिप्रसाराच्छुष्यन्ति भोग्यं स्थलं सूक्ष्मं चोभयरूपं भवति भोक्ताऽपि भोग्यत्वमापद्यते शरीरमन्तरेणात्मापि भोक्तुमनर्हः। शरीरं कस्यचिद्भोक्तुर्भोग्यं कस्यचित्तदेव भोक्तृ भवति। अतएव चराणामन्नमचरा दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः अहस्ताश्च सहस्तानां शूराणां चैव भीरवः॥ इति पञ्चमाध्याये मनुः। [सिद्धानुवादोऽयं नतु विधिवाक्यम्-सहस्तैरहस्ता भक्षणीया इति। अप्राप्तौ लिङादिक्रियासत्वे च विधिः प्रतीयते तदुभयमत्र नास्ति॥

आत्मा भोक्ता प्राधान्येनामूर्त्तः सूक्ष्मो न कदाचित्स्वरूपेण स्थूलत्वमापद्यते भोग्यं प्राधान्येन मूर्तं स्थूलं सामान्येनोभयरूपं भवितुमर्हति। इत्थं भेदद्वयेनैव सर्वा सृष्टिर्नानारूपत्वमापद्यतेइदमेव सृष्टिकर्त्तुर्विद्याविचित्रत्वं ज्ञानिनाऽनुसन्धेयम्॥५॥

भावार्थः—अब कारणसहित भोक्ता और भोग्य के सा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म्य वैधर्म्य दिखाने पूर्वक व्याख्यान का प्रारम्भ करते हैं (ह, वै) निश्चय कर प्रत्यक्ष प्रसिद्ध (आदित्यः) दिन रात्रि आदि-काल के विभाग से सब पदार्थों का नया पुराना करता हुआ सूर्य (प्राणः) प्राण अर्थात् मनुष्यादि के जीवन का मुख्य निमित्त होने से प्राण कहाता है (रयिः) (एव) धनादि भोग्य ऐश्वर्य का मुख्य निमित्त होने से (चन्द्रमाः) मन को प्रसन्न करने वाले चन्द्रमा का नाम रयि है। अर्थात् भागने वाली और भोग में आनेवाली शक्तियों के मुख्यता से उत्तेजक और निमित्त सूर्य चन्द्रमा हैं इन दोनों के विना भोक्तृ भोग्य शक्ति नहीं ठहर सक्ती इससे वे सूर्य चन्द्रमा हो दोनों प्राण और रयि शब्द के वाच्य हैं यह भेद दिखाया गया है। अथवा (एतत्, सर्वम्) यह सब प्रत्यक्ष दीखता (यत्) जो (मूर्त्तं च) स्थूल और (अमूर्त्तम्, च) सूक्ष्म भोक्ता भोग्य रूप जगत् है वह (रयिर्वै) भोग्य ही है क्योंकि भोक्ता भी कहीं किसी का भोग्य हो जाता है (तस्मात्) इस कारण दोनों शक्ति के एक रूप होने से (रयिः) भोग्य वस्तु (मूर्त्तिरेव) स्थूल ही है अर्थात् सूक्ष्म भोग्य भी स्थूल हो जाता वा स्थूलकार्य जगत् की अपेक्षा वह सूक्ष्म कहाता और भोक्ता पुरुष की अपेक्षा स्थूल माना जाता है क्योंकि भोक्तृशक्ति भोग्यसे सदा सूक्ष्म ही रहती है इसलिये स्थूल सब भोग्य है और भोक्ता सूक्ष्म है यह अर्थापत्ति से आ गया॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०-मनुस्मृति में लिखा है कि सूर्य से वर्षा, वर्षा से अन्न, और अन्न से वीर्यादि होकर मनुष्यादि प्राणियों की उत्पत्ति होती है इस प्रकार परम्परा से भोक्ता प्राणियों की स्थिति में सूर्य ही मुख्य निमित्त कारण है। भोगने वाली क्रियाका बढ़ाने वाला सूर्य है इसी से रात्रि में भूख आदि कम लगती जठराग्नि सूर्य की सहायता विना मन्द रहता है! स्त्री भोग्य वस्तुओं के अन्तर्गत है भोग्यशक्ति को बढ़ाने वाला चन्द्रमा है इसी से स्त्रियों का कामदेव रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश से बढ़ता है और चन्द्रमा की उपमा भी स्त्रियों के मुख से इसी कारण दी जाती है। भोक्ता पुरुषरूपशक्ति मुख्य कर सूर्य में है और चेतन प्राणियों में भोक्तृशक्तिका बढ़ाने वाला सूर्य ही है स्त्रीरूप भोग्य प्रकृति शक्ति चन्द्रमा में मुख्य है क्योंकि वह उस शक्ति का बढ़ाने वालाहै। इसीलिये चन्द्रमा के किरण फैलने से प्रायः भोग्य ओषधि आदि पदार्थ बढ़ते हैं। और वे ही ओषधि आदि सूर्य की किरणों के प्रताप से सूखते हैं। भोग्य वस्तु स्थूल सूक्ष्म दोनों रूप हैं क्योंकि भोक्ता भी भोग्य हो जाता है शरीर के विना आत्मा भी कोई भोग नहीं कर सकता मनुष्यादि का शरीर भी किसी भोक्ता का भोग्य और किसी का भोक्ता हो जाता है इसलिये मनुस्मृति में कहा है कि—चेतन का जड़; दांत वालों का विना दांत वाले, हाथ वालों का विना हाथ वाले और हिंसक प्राणियों का अन्न डरपाक प्राणी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सः (एषः) प्राणी (तेन) कर्मानुकूलवासनाबद्धचित्तेन सार्कं शरीरेन्द्रियसम्बन्धं विहाय (प्राणम्) प्राणवृत्तिम् (आयाति) आश्रयति (प्राणः) (तेजसा) उदानवृत्त्या (युक्तः) (आत्मना) भोक्त्रा स्वामिना जीवात्मना (सह) वर्त्तमानं लिङ्गशरीरम् (यथासङ्कल्पितम्) शुभाशुभकर्मवशाद्यथाभिप्रेतम् (लोकम्) योनिं भोगं च (नयति) प्रापयति ॥

भा०—सति शरीरे मनुष्यो यादृशानि शुभान्यशुभानि वा कर्माणि प्रायशः करोति तादृशएव तस्य प्रबलः संस्कारोऽन्तःकरणे जायते ते संस्कारा वासनारूपेण सञ्चीयन्ते यदेव सञ्चितं पुण्यं पापं वा निगद्यते। प्रयाणकाले तादृशमेव तस्य चित्तं भवति। मरणावसरे जीवात्मनः शरीरेन्द्रियैः पूर्वं सम्बन्धे त्रुट्यति स प्राणमालम्बते तदा न वदति न शृणोति वा किन्तु प्राणएव चलति तावत्सम्बन्धिनो वदन्ति जीवत्ययमिति। अनन्तरमुदानेन युक्तः प्राणः सलिङ्गशरीरं जीवात्मानं देहान्निस्सार्य कर्मानुकूलं स्थानं योनिं भोगं च प्रापयति ॥ १० ॥

भाषार्थः—शरीर से निकलते समय जीवात्मा (यच्चित्तः) जिस अनुभव वा अभ्यास किये भोग्य आदि वस्तु में लगा वासनारूप रस्सी से खिंचा जिसका चित्त है वह (एषः) यह प्राणी (तेन) उस कर्मानुकूल वासनाओं से बँधे चित्त के साथ शरीर और इन्द्रियों से सम्बन्ध छोड़ के (प्राणम्) प्राण का (आयाति) आश्रय लेता है और (प्राणः) प्राण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तेजसा) उदानवृत्ति के साथ (युक्तः) युक्त हुआ (आत्मना) भोक्ता स्वामी जीवात्माके (सह) सहित वर्तमान लिङ्ग शरीर को (यथासङ्कल्पितम्) शुभ अशुभ कर्म के अनुकूल (लोकम्) योनि वा भोग को (नयति) प्राप्त कराता है ॥

भा०—शरीरकी वर्तमान दशामें मनुष्य जैसे शुभ वा अशुभ कर्म प्रायः करता है वैसाही उसके अन्तःकरणमें प्रबल संस्कार होता है। वे संस्कार वासनारूपसे सञ्चित होते हैं। वही सञ्चित पाप वा पुण्य कहा जाता है, उन्हीं वासनाओं के अनुकूल मरते समय उसका चित्त होता है। मरते समय जीवात्माका इन्द्रियों के साथ पहिले सम्बन्ध टूटता और केवल प्राण के आश्रय जीवात्मा रह जाता है तब न कुछ बोलता न सुनता वा न देखता है किन्तु श्वासमात्र चलता है तब तक सम्बन्धी लोग कहते हैं कि यह जीता है। पश्चात् उदान से युक्त प्राण लिङ्ग शरीर के सहित जीवात्मा को शरीर से निकालके कर्मानुकूल स्थान योनि और भोग को प्राप्त कराता है ॥ १० ॥

य एवं विद्वान् प्राणं वेद । न हास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ११ ॥

(यः) (विद्वान्) सदसद्विवेकी पुरुषः (एवम्) उक्तप्रकारेण (प्राणम्) (वेद) जानाति (अस्य, ह) प्रसिद्धस्य विदुषो दिवामैथुनादिशास्त्रविरुद्धदुष्कर्मत्यागात्तदनुकूलञ्चाचरतः (प्रजा) पुत्रादिरूपा (न, हीयते) वंशोच्छेदो न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवति। किन्तु पुत्रीभवति। मृते च शरीरे (अमृतः) अमरणधर्मा मुक्तः (भवति) (तत्, एषः, श्लोकः) तस्यार्थस्य प्रतिपादकः प्रमाणीभूत एष वक्ष्यमाणो मन्त्रोऽस्ति ॥

भा०—यः पुरुषः प्राणं तत्त्वतो जानाति स जीवन्नैहिकसुखं भुक्त्वा मृत्वा प्राणायामादिलक्षणयोगाभ्यासेनात्मज्ञानसम्पन्नः सन्मुक्तो भवति तदर्थं प्राणविद्यां सम्यग्बुद्ध्वा तदनुकूलमाचरितव्यम् ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(यः, विद्वान्) जो सत्यासत्य का विवेकी विद्वान् पुरुष (एवम्) इस उक्त प्रकार से (प्राणम्) प्राण को (वेद) जानता है (अस्य, ह) दिन में मैथुन करना आदि शास्त्र विरुद्ध दुष्कर्म के त्याग पूर्वक शास्त्रके अनुकूल आचरण करता है ऐसे प्रसिद्ध विद्वान् की (प्रजा) पुत्रादि सन्तति (न, हीयते) नष्ट नहीं होती अर्थात् वह निर्वंश नहीं होता किन्तु पुत्रवान् होता है और शरीर छूटने पर (अमृतः) जन्म मरणरहित मुक्त (भवति) होता है (तत्, एषः, श्लोकः) इसी अर्थ का प्रतिपादक प्रमाणरूप यह वक्ष्यमाण मन्त्र है ॥

भा०—जो पुरुष तत्त्व से प्राण को जानता है वह जीता हुआ संसारी सुख को भोग के प्राणायामादिरूप योगाभ्यास करके आत्मज्ञान युक्त हुआ मरने पश्चात् मुक्त होता है इसलिये ज्ञानी को उचित है कि प्राण विद्या को ठीक २ जान के उसके अनुकूल आचरण करे ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वं चैव पञ्चधा । अध्यात्मञ्चैव प्राणस्य विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृतमश्नुत इति ॥ १२ ॥

(उत्पत्तिम्) परमात्मनः सकाशात् (आयतिम्) वासनारज्जुभिराकृष्यमाणस्य शरीरेऽस्मिन्नागमनम् (स्थानम्) पायूपस्थादिस्थानेषु भेदेन स्थितिम् (विभुत्वम्, च) भोक्तृशक्तितैजसप्रधानतया सर्वव्यापित्वं च (एव) (पञ्चधा) प्राणवृत्तिभेदानां पञ्च प्रकारेणैव (प्राणस्य) सूर्यादिरूपेण बाह्यं चक्षुरादिरूपेण (च,एव) (अध्यात्मम्) शरीरान्तर्गतमवस्थानम् प्राणस्वरूपम् (विज्ञाय) ज्ञानी (अमृतम्) अमरणधर्मत्वं मोक्षभावम् (अश्नुते) प्राप्नोति । द्विर्वचनं तृतीय प्रश्नस्य समाप्तिसूचकम् ॥

भा०—यथा प्रश्नत्रयेण प्राणस्य महिमा वर्णितस्तथैव सम्यग्विज्ञाय तदनुकूलमाचरन् योगी जनो मुक्तो भवति ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(उत्पत्तिम्) परमात्मा से प्राण की उत्पत्ति (आयतिम्) वासनारूप रस्सियों से खींचे हुए प्राण का इस शरीर में आना (स्थानम्) गुदा नेत्र आदि स्थानों में भिन्न भिन्न प्रकार से स्थिति (च) और (विभुत्वम्,) भोक्तृशक्ति के तैजसप्रधान होने से सर्वत्र व्याप्त होना (पञ्चधा, एव) प्राण अपानादि पाँच प्रकारों से (प्राणस्य) सूर्यादि रूप से बाह्य (च) और चक्षु आदि रूप से (अध्यात्मम्) शरीरान्तर्गत प्राण के स्वरूप को (एव) ही (विज्ञाय) ज्ञानी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानकर (अमृतम्) अविनाशी मोक्ष दशा को (अश्नुते) प्राप्त होता है। इसमें अन्तिम वाक्य का द्वितीय वार पाठ तृतीय प्रश्न की समाप्ति जताने के लिये है॥

भा०—जैसे तीन उक्त प्रश्नों में प्राण की महिमा कही गयी है उसी प्रकार ठीक २ प्राण को जानके उसके अनुकूल आचरण करता हुआ योगी जन मुक्त होता है॥ १२॥

इति तृतीयः प्रश्नः समाप्तः॥

अथ हैनं सौर्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ। भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति, कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति, कस्यैतत्सुखं भवति, कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति॥ १॥

(अथ) कौसल्यकृतप्रश्नस्योत्तरश्रवणानन्तरं क्रमेण प्रत्यगात्मविषयेषु नित्यमात्मानं ज्ञातुम् (सौर्यायणी) सूर्यस्य युवापत्यम्। फिञन्तस्यान्येषामपि दृश्यत इति दीर्घः (गार्ग्यः) गर्गगोत्री (एनम्) पिप्पलादम् (पप्रच्छ) पृष्टवान् हे (भगवन्!) (एतस्मिन्) (पुरुषे) शरीरे प्राणेन्द्रियेषु (कानि) (स्वपन्ति) (अस्मिन्) शरीरे (कानि) (जाग्रति) बहूनां प्राणादीनां मध्ये (कतरः) कः (एषः) इच्छादिगुणवान् (देवः) ज्ञानप्रकाशमयः (स्वप्नान्) (पश्यति) (कस्य) (एतत्) प्रत्यक्षमनुभूयमानम् (सुखम्) (भवति) ज्ञानजन्यं सुखं कोऽनुभवतीत्यर्थः (कस्मिन्, नु) कस्मिंश्च (सर्वे)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणादिजीवात्मपर्यन्ता बाह्याश्चराचरा वा पदार्थाः (सम्प्रतिष्ठिताः) सम्यक्प्रतिष्ठिताः (भवन्ति) (इति) एवं पप्रच्छ ॥

भा०—अत्र पञ्च प्रश्नाः सन्ति तत्रादिमौ द्वौ प्राणेन्द्रियविषयकौ । मध्यमौ जीवात्मविषयकौ । अन्त्यश्चैकः परमात्मविषयकस्तेषां क्रमेणोत्तराणि वक्ष्यन्ते ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब कौसल्यऋषिकृत प्रश्न का उत्तर सुनने पश्चात् क्रम से सूक्ष्म २ विषयों में अतिसूक्ष्म नित्य आत्मा को जानने के लिये (सौर्यायणी) सूर्य नामी ऋषि के प्रपौत्र (गार्ग्यः) गर्ग गात्री ने (एनम्) इन पिप्पलाद से (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवन् !) गुरो (एतस्मिन्) इस (पुरुषे) शरीर में प्राण और इन्द्रियों में से (कानि) कौन (स्वपन्ति) सोते तथा (अस्मिन्) इस शरीर में (कानि) कौन (जाग्रति) जागते हैं और बहुत प्राणादि के बीच (कतरः) कौन (एषः) यह इच्छादि गुणवाला (देवः) ज्ञानरूप प्रकाश से युक्त (स्वप्नान्) स्वप्नों को (पश्यति) देखता (एतत्) प्रत्यक्ष अनुभव में आने वाला ज्ञान सम्बन्धी (सुखम्) सुख (कस्य) किसको (भवति) होता अर्थात् ज्ञान से होने वाले सुख का अनुभव कौन करता है (उ) और (कस्मिन्) किस में (सर्वे) जीवात्मा पर्यन्त प्राणादि शरीरस्थ वा चराचर जगत् के पदार्थ (सम्प्रतिष्ठिताः) सम्यक् प्रतिष्ठित (भवन्ति) होते हैं (इति) इस प्रकार पूछा ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—इस मन्त्र में पांच प्रश्न हैं उन में पहिले दो (इस शरीर में कौन सोते और कौन जागते हैं) प्राण और इन्द्रियों सम्बन्धी और बीच के दो (कौन स्वप्न देखता और किसको सुख होता) जीवात्मा सम्बन्धी तथा अन्त्य का एक (किस की सत्ता से सब स्थित रहते हैं) परमेश्वर विषयक है इन का क्रम से उत्तर कहेंगे ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच । यथा गार्ग्य ! मरीचयोऽर्कस्यास्तं गच्छतः सर्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकी भवन्ति । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वै तत्सर्वं परे देवे मनस्येकी भवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदत नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ २ ॥

कानि स्वपन्तीत्यस्योत्तरं दीयते (तस्मै) गार्ग्याय (सः) पिप्पलादः (ह, उवाच) इदमब्रवीत् । हे (गार्ग्य !) यथा (अस्तम्, गच्छतः) (अर्कस्य) सूर्यस्य (सर्वाः मरीचयः) किरणाः (एतस्मिन्, तेजोमण्डले) तेजोराशौ सूर्ये (एकी, भवन्ति) कूर्माङ्गानीवोपसंहृता भवन्ति (ताः) रश्मयः पुनः पुनः प्रत्यहम् (उदयतः) सूर्यस्य सहैव (प्रचरन्ति) (एवम् , ह-वै) (तत्सर्वम्) चक्षुरादीन्द्रियमात्रम् (परे) इन्द्रियेभ्यः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्मे (देवे) विषयप्रकाशके (मनसि) (एकी भवन्ति) निद्राहेतुना तमोगुणेनाभिभूतं स्वरूपावस्थिते मनसि सर्वा इन्द्रियशक्तयो लीना भवन्ति (तेन) हेतुना (तर्हि) तस्मिन्काले (एषः, पुरुषः) मनुष्यः (न, शृणोति, न, पश्यति, न जिघ्रति, न, रसयते, न, स्पृशते, नाभिवदते) वाचा (नादत्ते) हस्ताभ्याम् (नानन्दयते) उपस्थेन (न, विसृजते) गुदेन्द्रियेण विष्ठादिकम् (न, इयायते) पद्भ्यां न गच्छति । एवं सति (स्वपिति) अयं पुरुषः (इति, आचक्षते) कथयन्ति जागृताः ॥

भा०—सर्वेन्द्रियेषु मनसः शक्तिरेव प्रधाना । सर्वेन्द्रियाणि मनोऽनुगामीनि मनसि जाग्रति जाग्रति तमोऽभिभूते स्वपति च तस्मिन् स्वपन्ति । सर्वत्रैव सहानुवर्त्तिनः पदार्थाः सहयोगिनि सति भवन्ति । असति च तेषामप्यभावः । यथा सति सूर्ये किरणा भवन्त्यसति तासामप्यभावः । अर्थादिन्द्रियाणि मनसा सार्द्धं स्वपन्ति तेषु स्वपत्सु पुरुषः स्वपितीति कथ्यते जनैः । तत्र निद्रायाः कारणं तमस्तथा चोक्तं सुश्रुतस्य शारीरे—

हृदयंचेतनास्थान—मुक्तं सुश्रुत ! देहिनाम् ।
तमोऽभिभूतेतस्मिंस्तु निद्राविशतिदेहिनाम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—अब कौन सोते हैं ? इसका उत्तर दिया जाता है (तस्मै) गर्गगोत्री ऋषि से (सः) वे पिप्पलाद (ह, उवाच) यह बोले कि हे (गार्ग्य !) गार्ग्य ऋषि (यथा) जैसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्तम्, गच्छतः) अस्त होते हुए (अर्कस्य) सूर्य की (सर्वाः) सब (मरीचयः) किरणें (एतस्मिन्) इस (तेजोमण्डले) तेजःस्वरूप सूर्यमण्डल में (एकी भवन्ति) लीन होतीं अर्थात् जैसे कछुआ अपने अवयवों को शरीर में कर लेता वैसे उसी में मिल जाती हैं (ताः) वे किरणें (पुनः पुनः फिर २ नित्य प्रातःकाल (उदयतः) उदय होते सूर्य्य के साथ ही (प्रचरन्ति) फैलती हैं (एवम् हवै) इसी प्रकार (तत्सर्वम्) वे सब नेत्रादि इन्द्रिय (परे) अपने से सूक्ष्म (देवे) विषयों के प्रकाशक (मनसि) मन में (एकी भवन्ति लीन होजाते हैं अर्थात् तमोगुण से दबे अपने स्वरूप में स्थित निद्राग्रस्त मनमें सब इन्द्रियों की शक्ति लीन हो जाती हैं (तेन) तिसी कारण (तर्हि) उस निद्रा समय में (एषः) यह (पुरुषः) मनुष्य (न, शृणोति) न कान से सुनता (न, पश्यति) न आंख से देखता (न, जिघ्रति) न नाक से सूंघता (न, रसयते) न जीभ से चाखता (न, स्पृशते) न त्वचा से शीत उष्ण वा कोमल कठोर जानता (नाभिवदते) न वाणी से बोलता (नादत्ते) न हाथों से पकड़ता (न, आनन्दयते) न उपस्थेन्द्रिय से मैथुन करता (न विसृजते) न गुदा से विष्ठा करता और (न, इयायते) न पगों से चलता है किन्तु ऐसा होने पर यह (स्वपिति) सोता है (इति) ऐसा (आचक्षते) लोग कहते हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—सब इन्द्रियों में मन की शक्ति ही मुख्य है सब इन्द्रिय मन के पीछे चलते मन के जागने से सब जागते और तमोगुण से घिरे सोते हुए मन के साथ ही सोजाते हैं। सर्वत्र ही सहयोगी पदार्थ सहयोगी के रहने पर होते और न रहने पर नहीं रहते। जैसे सूर्य के होने पर किरण फैलते और सूर्य के अस्त होते ही किरण भी नहीं रहते। अर्थात् इन्द्रिय मनके साथ सोते हैं उनके सोने पर पुरुष सोता है ऐसा कहते हैं। निद्रा का कारण तमोगुण है सुश्रुत में लिखा है कि चेतनता का स्थान हृदय है वह जब तमोगुण से आच्छादित होता तब मनुष्य को निद्रा घेर लेती है ॥ २ ॥

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति। गार्हपत्यो ह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ ॥

कान्यस्मिन् जाग्रतीत्यस्योत्तरमाह (एतस्मिन्) (पुरे) नवद्वारे नगरस्थानीये (प्राणाग्नयः, एव) रूपप्रकाशका अग्नय इव जीवनप्रकाशकाः प्राणाः (जाग्रति) अत्र गार्हपत्यादिश्रौताग्निभिः प्राणादीनां साम्यं दर्शयति तद्यथा (गार्हपत्यो हवै) पत्नीसंयाजादिश्रौतकर्मसाधनभूतो गृहपदवाच्यायाः स्त्रियाः पत्या यथाविधि कृताधानः सस्त्रीकेनैव पुरुषेणाधातुमुचितोऽग्निरेव (एषोऽपानः) वायुर्नाभिसंस्थितः शरीरस्थापानवायोः श्रौताग्निषु गार्हपत्यस्य च गृहस्थ पुरुषेणैव प्रधानः सम्बन्धइति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साम्यम् । (व्यानोऽन्वाहार्यपचनः) हृदयाद्दक्षिणसुषिरद्वारेण निर्गमाद्दक्षिणदिक्सम्बन्धाद्व्यानएवान्वाहार्यपचनो दक्षिणाग्निः (यद्वगार्हपत्यात्प्रणीयते) यस्मादग्निहोत्रकाले पौर्णमासादीष्टिकाले च गार्हपत्यखरात्तत्तत्कर्मार्थमुद्धृत्य प्रणीयतआनीयतेऽतः (प्रणयनात्) उद्धरणात्प्राणआहवनीयः । मुखनासिकाभ्यां संचरणशीलः प्राणोऽपि नाभिस्थापानादेव प्रणीयतआनीयतइति प्राणस्याहवनीयेन साम्यम् ॥

भा०—सन्तानोत्पत्यादिकार्याणि पायूपस्थेन्द्रियसम्बद्धानि सर्वाण्येव गृहाश्रमेऽपानवायुसाध्यानि सन्ति । गार्हपत्योऽग्निरपि सस्त्रीकपुरुषेणैव यथाविध्याधीयते नान्येन । व्यानस्य दक्षिणगतिरेव दक्षिणाग्निना साम्यं बोध्यम् । ब्राह्मादिविधिना धर्मपुरस्सरं स्नातकैरूढासु स्त्रीषु जाताश्च ब्रह्मचारिणो भवन्ति । अर्थाद्यथागार्हपत्यादाहवनीयः प्रणीयतएवमेव गृहस्थेभ्योब्रह्मचारिणआगच्छन्ति तेष्वेव मुखसम्बद्धस्य वेदघोषणादिकार्यसाधकस्य प्राणस्य प्राबल्यं जायते । एवं चाऽत्र गार्हपत्याद्यग्निभिः सह बहुविधमपानादिशरीरस्थवायूनां साम्योपपादनं सम्भवति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—इस शरीर में कौन जागते हैं इसका उत्तर कहते हैं-(एतस्मिन् , पुरे) इस इन्द्रियरूप नव दरवाजे वाले शरीररूप नगर में (प्राणाग्नयः, एव) रूप और विषयके प्रकाश करनेवाले अग्नियोंके तुल्य जीवन के प्रकाशक प्राण ही (:आ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रति) जागते हैं अर्थात् जैसे रात्रि को सबके सोनेपर चौकी दार जागते हैं वैसे इन्द्रियादि के सोनेपर शरीररूप नगर की रक्षा के लिये प्राणरूप चौकीदार पुकारते हैं कि यह शरीर जीवित है वहां गार्हपत्यादि श्रौताग्नियों के साथ प्राणादि की समता दिखाते हैं जैसे (गार्हपत्यो हवै) पत्नी संया जादि श्रौतकर्माङ्गों का साधनभूत, गृहनाम स्त्री के पति ने विधिपूर्वक आधान किया अर्थात् स्त्री सहित पुरुष ही जिस का आधान कर सकता है ऐसा गार्हपत्यअग्नि ही (एषोऽपानः) यह शरीर में रहनेवाला नाभिस्थ अपान है। शरीरस्थ अपान वायु का और श्रौत अग्नियों में गार्हपत्य का गृहस्थ के साथ प्रधान सम्बन्ध है यही गार्हपत्य के साथ अपान की समता है (व्यानोऽन्वाहार्यपचनः) हृदय से दक्षिण की ओरकी गयी हुई नाड़ी के छिद्र से गमन करने के कारण दक्षिण दिशा के सम्बन्ध से दक्षिणाग्नि के साथ व्यानकी समता है (यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते) जिस कारण अग्निहोत्र के समय वा पौर्णमासादि इष्टियों के समय गार्हपत्यकुण्ड से कर्म के लिये उद्धरण करके लाया जाता है इस (प्रणयनात्) प्रणयन उद्धरण से प्राण को आहवनीय कहते हैं। क्योंकि मुख नासिका द्वारा विचरता हुआ प्राण भी नाभिस्थल में रहनेवाले अपान से ही उठकर ऊपर को आता है यही प्राण की आहवनीय के साथ तुल्यता है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—गुदा और उपस्थ इन्द्रिय से सम्बन्ध रखनेवाले सन्तानोत्पत्ति आदि सभी कार्य गृहाश्रम में अपान वायु से सिद्ध होते हैं। गार्हपत्याग्नि का भी स्त्री सहित पुरुष ही विधिपूर्वक आधान करता है अन्य कोई नहीं। ध्यान की दक्षिण ओर गति होना ही दक्षिणाग्नि के साथ समता है। ब्राह्मआदि विवाह की उत्तमरीति से धर्मपूर्वक स्नातक पुरुषों द्वारा प्राप्त की हुई सवर्णास्त्रियों में उत्पन्न संस्कारी अच्छे बालक ही ब्रह्मचारी बनते हैं। अर्थात् जैसे गार्हपत्य से आहनीय लाया जाता है वैसे ही गृहस्थों से उत्पन्न हुए ब्रह्मचारी बनते उन्हीं में मुख सम्बन्धी वेदघोषणादि कार्यसाधक प्राण की प्रबलता होती है। इस प्रकार यहां गार्हपत्यादि अग्नियों के साथ अपानादि शरीरस्थ वायु की समता बहुत प्रकार से सिद्ध हो सकती है॥ ३॥

यदुच्छ्वासनिश्वासावाहुती समनयतीति स समानः। मनो ह वाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति॥ ४॥

स्वापकाले समानोदानौ किं कुरुत इत्याह (यत्)) (उच्छ्वासनिश्वासौ) (आहुति) आहुतिरूपौ (समम्) पर्यायेण द्वयोरपि समताम् (नयति) करोति (इति) अनेनैवार्थेन (सः) नाभिस्थः प्राणः (समानः) समान इत्युच्यते (ह, वाव) अव्ययौ (मनः) मन्यते जानाति सर्वमिति जीवात्मा। (यज-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानः) यज्ञादेरिव फलाकाङ्क्षाविशिष्टः (इष्टफलम्) कृतयज्ञस्येवाभीष्टं फलम् (उदानः) फलस्य प्रापकः (सः) उदानः (एनम्) मनोरूपम् (यजमानम्) योगयज्ञस्यानुष्ठातारम् (अहरहः) प्रतिदिनम् (ब्रह्म) (गमयति) प्रापयति स्वापकाल इति शेषः ॥

भा०—समानो नाभिस्थः प्राणस्ततएव श्वास उत्तिष्ठति। स एव पुनरुपरिष्टादधस्तादपकर्षति तेनोच्छ्वासनिश्वासौ साम्येन चलतः। यद्येक आधिक्येन चलेदेकश्च शैथिल्येन तदा शरीरस्थितौ सन्देहः स्यात्। एतौ साम्येन प्रवर्त्तयति तस्मादेव तस्य समान इति नामास्ति। मनः शब्देनात्र जीवात्माभिप्रेतःशयनयज्ञानुष्ठान उच्छ्वासनिश्वासावाहुती जीवात्मा यजमानः, समानो होता, उदानः फलप्रेरकः, सउदान एव सुषुप्तौ समाधौ च जीवात्मानं फलरूपं ब्रह्म प्रापयति ॥ ४ ॥

भावार्थः—सोते समय समान और उदान क्या करते हैं सो कहा जाता है (यत्) जो (उच्छ्वासनिश्वासौ) ऊपर को वा नीचे को श्वास चलता है इन दो (आहुति) आहुतियों को (समम्) बराबर एक दूसरे के पीछे (नयति) अग्नि में घी छोड़ के जैसे प्राण को ऊपर चढ़ा के लौटा लेता (इति) इसी अभिप्राय से (सः) वह नाभिमें रहनेवाला वायु (समानः) समान कहाता है (ह, वाव) और(मनः) सब विषय को जानने वाला जीवात्मा (यजमानः) यज्ञादिका स्वामी फलकी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इच्छा से युक्त (इष्टफलम्) यज्ञ के फल के तुल्य अभीष्ट फल को प्राप्त कराने वाला (सः) वह (उदानः) उदान है वह (एनम्) इस (यजमानम्) योग यज्ञ के अनुष्ठाता जीवात्मा को (अहरहः) नित्य २ प्रतिदिन सुषुप्ति के समय (ब्रह्म) ब्रह्म को (गमयति) प्राप्त कराता है ॥

भा०—नाभि में ठहरने वाला समान प्राण है उसी से श्वास उठता है वही फिर ऊपर से नीचे श्वास को खींचता है इस कारण ऊपर नीचे बराबर श्वास चलता है यदि ऊपर को जाकर नीचे न आवे वा नीचे से ऊपर को न जावे वा एक ओर को विशेष चले तो शरीर का ठहरना कठिन हो जावे। इन दोनों को सोते समय सम रखता है इस लिये उस को समान कहते हैं। मन शब्द से इस मन्त्र में जीवात्मा लिया है। निद्रारूप यज्ञ के अनुष्ठान में ऊपर नीचे को श्वास चलना आहुति, जीवात्मा यजमान, समान होता और उदान फल दिलाने वाला सञ्चित कर्म है क्योंकि वह उदान ही सुषुप्ति और समाधि में जीवात्मा को फलरूप ब्रह्म को प्राप्त कराता है ॥४॥

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनु भवति । यद्दृष्टंदृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टं चादृष्टं च श्रुत चाश्रुतं चानुभूतं चाननुभूतं च सच्चासच्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यतीत्यस्य प्रश्नस्योत्तरं विवृणोति (अत्र) पूर्वोक्तेऽस्मिन् (स्वप्ने) स्वापकाले प्राणादिषु शरीररक्षार्थं जाग्रत्सु (एषः) पूर्वोक्तः (देवः) ज्ञानप्रकाशमयो जीवात्मा (महिमानम्) विषयिविषयाद्यनेकभावप्राप्तिरूपं महत्त्वम् (अनुभवति) वक्ष्यमाणप्रकारेणानुसन्धत्ते (यत्, दृष्टम्, दृष्टम्) पुत्रमित्रकलत्रादिप्रियं प्रतिकूलं च यावज्जाग्रदवस्थायां दृष्टं नेत्रेण तत्स्वप्ने (अनुपश्यति) तदनुकूलं प्रत्यक्षमिव पश्यति (श्रुतम्, श्रुतम् एव) (अर्थम्) इष्टानिष्टोदासीनभावप्रतिपादकं शब्दविषयम् (अनुशृणोति) कर्णाभ्यामिव प्रत्यक्षं शृणोति (च) (देशदिगन्तरैः) देशान्तरैर्नदीतीरवाटिकारामारण्यग्रामपत्तनादिभिर्दिगन्तरैः प्राच्यादिभिः (प्रत्यनुभूतम्) प्रत्येकवारकृतानुभवविषयं तादृशमेव (पुनःपुनः) अनेकदिनेषु (प्रत्यनुभवति) अनेकस्वप्नेषु वारंवारमनुभवत्यनुसन्धत्त इदमित्थमिति । अर्थात् (दृष्टम्, च, श्रुतं च, अनुभूतं, च, सत्, च) इह वर्त्तमाने जन्मनि दृष्टं श्रुतमनुभूतं विद्यमानं च (अदृष्टं, च, अश्रुतं, च, अननुभूतं, च, असत्, च) अविद्यमानं च जन्मान्तरीयमेतत् (सर्वम्) उभयविधम् (पश्यति) (सर्वः, पश्यति) सर्वः प्राणी गर्भस्थमारभ्य कीटपतङ्गादिपर्यन्तः स्वप्नान् पश्यति जानाति ॥

भा०—यावद्दृष्टं श्रुतमनुभूतमन्येन्द्रियेण मनसा वा तत्सर्वं सर्वः प्राणी स्वप्ने पश्यति शृणोति, अनुभवति च स्वप्न-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मादि योग के अङ्गों के अनुष्ठान करने में तत्पर हुआ ज्ञानी विद्वान् (प्रायणान्तम्) जीवनपर्यन्त (ओङ्कारम्) ओङ्कार शब्द के वाच्यार्थ ब्रह्म का (अभिध्यायीत) शब्दादि विषयों से इन्द्रयों को वृत्तियोंको जिसने निवृत्त किया, समाहित स्वस्थ जिसका चित्त हो, निर्वातस्थान में निश्चल दीपज्योतिः के तुल्य जिसका मन अचल हो जिसकी ज्ञानवृत्तियों का तार आत्मा के साथ ही बराबर लगा हो ऐसा उपासक तदाकार-वृत्ति से सम्मुख हुआ चिन्तन करे (सः) वह (तेन) उस ध्यान से (कतमम्) पृथिव्यादि में से किस (लोकम्) लोकका (वाव) निश्चय कर (जयति) अधिष्ठाता होता है (इति) यह मेरा प्रश्न है ॥

भा०—सत्यकाम ऋषि पिप्पलाद ऋषि से यह पूछते हैं कि जो ज्ञानी विद्वान् गृहाश्रमादि में होने वाले संसारी सुखको छोड़के जन्मभर ब्रह्मचर्य धारण कर योगाभ्यास और तप करता हुआ ब्रह्म की उपासना करता है वह कैसे फल वा अधिकार को पाता है ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच । एतद्वै सत्यकाम ! परञ्चापरं च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥

(तस्मै) सत्यकामाय (सः) पिप्पलादो महर्षिः (ह, उवाच) प्रकटमिदमुवाच हे (सत्यकाम !) (परम्, च) पर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्थमुक्तिफलप्राप्तिकामनयोपासितम् (अपरम्, च) संसारिसुखप्राप्तिकामनयोपासितमपरम् (ब्रह्म) (एतद्वै) एतदेवास्ति (यत्) (ओङ्कारः) शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासेन-ओमिति ब्रह्म (तस्मात्) कारणात् (विद्वान्) ज्ञानी पुरुषः (एतेनैव, आयतनेन) परापरोपासनेनात्मप्राप्तिसाधनेन यथोपासनम् (एकतरम्) परमपरं वा फलं (अन्वेति) आनुकूल्येनाप्नोति ॥

भा०—ब्रह्मत्वेकमेवास्ति तत्र भेदविवक्षा नास्ति किन्तु संसारिसुखमभिलषद्भिस्तत्सुखप्राप्तिकामनयाऽस्य सर्वसुखस्यैव हेतुर्ब्रह्मेति मनीषयाऽपरं संसारस्थमेव ब्रह्मेति मन्यते। विषयभोगान्निवृत्तचित्तैर्विरक्तैर्योगिभिश्च मुक्तिफलप्राप्तिकामनया संसारात्पृथग्भूतं परमार्थफलप्राप्तेरेव हेतुर्ब्रह्मेति मन्यते। अनेन ब्रह्मणि भेदो न जायते सर्वस्य संसारिपरमार्थसाधनजन्यसुखस्य ब्रह्मणोऽधिष्ठातृत्वात् । यथा सर्वशास्त्रज्ञो विद्वान् यो यदिच्छति तं तदेवोपदिशत्यध्यापयति वा शिष्यश्च व्याकरणमधीयानो वैयाकरणत्वेन न्यायमधीयानश्च नैयायिकत्वेन स्वीकरोति तद्वदिहाप्यनुसन्धेयम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(तस्मै) उस सत्यकाम से (सः) वे पिप्पलाद महर्षि (ह, उवाच) बोले कि हे-(सत्यकाम !) सत्यकाम ! (परम्, च) परमार्थ मुक्तिफल प्राप्ति की कामना से जिसकी उपासना की हो उस पर और (अपरम्, च) सं-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारी सुख की कामना से उपासना किया गया अपर (ब्रह्म) ब्रह्म (एतद्वै) यही है (यत्) जो (ओङ्कारः) शब्द अर्थ और दोनों का ज्ञान इनका एक दूसरे में लय करने से "ओम्" यह ज्ञान है (तस्मात्) तिस से (विद्वान्) ज्ञानी पुरुष (एतेन, एव, आयतनेन) आत्मज्ञान की प्राप्ति के साधन पर अपर उपासना से उपासना के अनुसार (एकतरम्) पर वा अपर फल को (अन्वेति) अनुकूलता से प्राप्त होता है ॥

भा०—ब्रह्म तो एक ही है उसमें भेद कहने की अपेक्षा नहीं है किन्तु संसारी सुखभोगकी अभिलाषा रखने वाले जन विषय सम्बन्धी सुख प्राप्ति की इच्छा से इसी सब सुख का दाता ब्रह्म है ऐसा बुद्धि से मानते हैं वह अपर कहाता और विषयसम्बन्धी सुखभोग से जिनका चित्त निवृत्त होगया वे विरक्त योगी जन मुक्तिफलप्राप्ति की इच्छा से संसार से पृथक परमार्थरूप फल का ही देने वाला ब्रह्म है ऐसा मानते हैं यह परब्रह्म है। इससे ब्रह्म में कोई भेद नहीं आता क्यों-कि परमेश्वर संसार परमार्थ दोनों का स्वामी दोनों दशा में उपस्थित व्याप्त है। जैसे सब शास्त्रों का जानने वाला विद्वान् जो जिस शास्त्र का पढ़ना वा उपदेश चाहता है उसको उसी शास्त्र का उपदेश देता वा पढ़ाता है और व्याकरण पढ़नेवाला शिष्य उसको वैयाकरण तथा न्याय पढ़ने वाला नैयायिक मानता है किन्तु गुरु में भेद नहीं वैसेही यहाँ भी संसार और पर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मार्थके फलप्राप्ति का भेद जीवात्माओं का है किन्तु परमात्मा में कोई भेद नहीं है ॥ २ ॥

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥

(सः) ईश्वरभक्तः (यदि) (एकमात्रम्) 'अ' इत्येकमात्रं संसारिफलहेतुकमल्पप्रयत्नेन ब्रह्म (अभिध्यायीत) (सः) पुरुष उपासकः (तेन, एव) एकमात्राल्पोपासनेनैव (संवेदितः) सम्बोधितः सचित्तो जागरितः (तूर्णम्, एव) शीघ्रमेव (जगत्याम्) पृथिव्याम् (अभिसम्पद्यते) उभयतो राज्यादिसर्वोत्तमसुखसामग्रीसम्पन्नो भवति (तम्) उपासकम् (ऋचः) ऋग्वेदरूपा एका मात्रा (मनुष्यलोकम्) मनुष्यसमुदायेऽधिष्ठातृत्वेन (उपनयन्ते) प्रतिष्ठितमुपनयनेन संस्कृतमिव स्थापयन्ति (सः) (तत्र) तेषु मनुष्येषु (तपसा, ब्रह्मचर्य्येण, श्रद्धया) च (सम्पन्नः) नक्षत्रेषु चन्द्रमाइव भ्राजमानः परमात्मनः (महिमानम्) महत्त्वम् (अनुभवति) ॥

भा०—"अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः । वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवःस्वरितीति च,, ॥ इति मनुवाक्यादोमित्यस्मिन्वेदत्रयस्य समावेशः । वेदत्रयरूपओङ्कारः । कर्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना, ज्ञानमिति वेदस्य त्रयो मुख्या विषयाः । भूः भुवः स्वः, इति त्रयो मुख्या लोकास्तत्रैकैकेन यथासंख्यं सम्बन्धः । परमात्मा स्वस्य चतुर्थांशसामर्थ्येन सर्वमिदं जगद्व्यरचयत् । तच्च यजुर्वेद उक्तम् "पादोस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति" । जगत्यसंख्यविचित्रकार्येण ब्रह्मणः सर्वज्ञत्वं यदनुमीयतेतच्चतुर्थांशस्यज्ञानस्यैवानुमानं जायते । लौकिकफलप्राप्तिकामनां मनसि धृत्वा यदि कश्चिदुपासको ब्रह्मोपासीत तस्य ब्रह्मणः सर्वांशरूपस्य बोधो न जायते किन्तु एकमात्रस्य अकाररूपस्य ऋग्वेदस्य वाच्यं जगत्स्थसामर्थ्यविशिष्टब्रह्मोपासनेनापरमेत्र संसारेऽधिष्ठातृत्वं जनकादिवल्लभते । श्रीकृष्णादयोऽप्येकमात्रोपासनया जगति मान्याः सर्वेषां शिरोमणयोऽभूवन् । एवमन्येऽपि ये तथा करिष्यन्ति ते भविष्यन्ति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(सः) वह ईश्वर का भक्त (यदि) जो (एकमात्रम्) ओम् में पहिली मात्रा "अ" है संसारी फल के हेतु ब्रह्म का थोड़े प्रयत्न से (अभिध्यायीत) अभिध्यान करे (सः) वह उपासक पुरुष (तेन, एव) उस एकमात्रिक छोटी उपासना से (संवेदितः) सचेत अपने कर्त्तव्य में उद्योगी ब्रह्मसम्बन्धी ज्ञान के प्रकाश से युक्त हुआ (तूर्णम्, एव) शीघ्र ही (जगत्याम्) पृथिवी पर (अभिसम्पद्यते) राज्य आदि सर्वोत्तम सुख भोग की सामग्री से सब प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त होता है (तम्) उस उपासक पुरुष को (ऋचः) ओंकार की ऋग्वेदरूप एक मात्रा अर्थात् कर्मकाण्ड की उपासना (मनुष्यलोकम्) मनुष्यों में सर्वाध्यक्ष होने के सम्बन्ध से (उपनयन्ते) यज्ञोपवीत संस्कार से पवित्र प्रतिष्ठित हुए के तुल्य आदर वा मान का हेतु होती है '(सः) वह (तत्र) उन मनुष्यों में (तपसा) तप (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य और (श्रद्धया) श्रद्धा से (सम्पन्नः) युक्त हुआ नक्षत्रों में चन्द्रमा के तुल्य शोभा वा प्रकाश से युक्त हुआ परमेश्वर को (महिमानम्) महिमा का (अनुभवति) अनुभव करता है। अर्थात् इसके महानन्दस्वरूप को जान के आप आनन्दभागी होता है॥

भा०—मनुस्मृति में लिखा है कि "अ, उ, म्" इन तीन वर्णों को ऋगादि तीन वेदों से परमेश्वरने निकाल कर तीनों को मिला कर "ओम्" नाम रक्खा है इसीलिये यह मुख्य नाम है इससे तीनों वेद का संयोग ओम् में है। और कर्म उपासना ज्ञान ये वेद के मुख्य तीन विषय हैं तथा भूः भुवः, स्वः, ये तीन ही मुख्य लोक हैं उन तीन मात्रा, कर्म उपासना ज्ञान और लोकों का यथाक्रम सम्बन्ध है पहिले के साथ पहिले का दुसरे से दूसरे का तथा तीसरे से तीसरे का है। परमेश्वरने अपने चतुर्थांश सामर्थ्य से इस सब जगत् को बनाया है सो यजुर्वेद में कहा भी है कि इस परमेश्वर का एकांश सामर्थ्य से यह जगत् है। जगत् में असंख्य विचित्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यों के देखने से परमेश्वर का सर्वज्ञ होना जो अनुमान किया जाता है वह चतुर्थांश ज्ञानका अनुमान होता है। लौकिक फल की प्राप्ति की इच्छा को चित्त में रख के यदि कोई पुरुष ब्रह्म की उपासना करे तो उसको परमेश्वर का पूरा बोध नहीं होता किन्तु एकमात्रा अकाररूप ऋग्वेद का वाच्य जगत्सम्बन्धी सामर्थ्यसे युक्त ब्रह्म की उपासना से जनकादि के तुल्य संसार में ज्ञानी अधिष्ठातृभाव को प्राप्त होता है और इसी प्रकार श्रीकृष्ण जी आदि भी एक तृतीयांश उपासना से संसार में मान्य और सब के शिरोमणि और ज्ञानी लोगों के भी गुरु हो गये हैं। इसी प्रकार अन्य भी जो लोग ऐसी उपासना करते हैं वा करेंगे वे ऐसा फल पावेंगे ॥ ३ ॥

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते सोमलोकं। स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते ॥ ४ ॥

(अथ) एकमात्राध्यानानन्तरम् (यदि) (द्विमात्रेण) अ उ इति भागद्वयविशिष्टमोङ्कारशब्दवाच्यं ब्रह्माभिध्यायेद् यावज्जीवम्। (सः) उपासकः (मनसि) मरणकाले मानसकर्मप्रधाने यजुर्वेदाभिप्राय उपासनाख्ये (सम्पद्यते) एकाग्रचेतसा सम्पन्नो भवति (यजुर्भिः) तदानीन्तनैरुपासनैः सर्वतो वृत्तिमाकृष्य (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्षगतलोकेषु (उन्नी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यते) उत्कृष्टतया प्राप्यते (सः) उपासकः (सोमलोकम्) चन्द्रलोकं प्राप्नोति (सः, सोमलोके) (विभूतिम्) सर्वैश्वर्येण जायमानमानन्दम् (अनुभूय) (पुनः, आवर्त्तते) पृथिव्यां ब्राह्मणादिषु पुनरुत्पद्यते ॥

भा०—वागेवर्ग्वेदः मनो यजुर्वेदः प्राणः सामवेदइति शतपथे। अ, उ, म् इति च ऋगादीनां प्रधाना अंशाः। वाक्कर्मप्रधान ऋग्वेदः, मनः-कर्मप्रधानो यजुर्वेदः। प्राणक्रियाप्रधानः सामवेदः। वागेव भूर्लोको मनो भुवर्लोकः। प्राणः स्वर्लोक इत्यपि तत्रैव शतपथेऽस्ति। तेनैकांशोपासनया वाक्कर्मप्रधानायां पृथिव्यामुपासकोऽधिष्ठातृत्वं लभते। द्विगुणितोपासनया च मनःकर्मप्रधानेषु चन्द्रादिलोकेषु विशेषतो मानससुखमनुभवति यद्वा भूर्लोकोऽध्यात्मविद्यायां नाभिस्थलं ततएव वागुत्पद्यते। भुवर्लोको हृदयाकाशस्तत्रैव मनस्तिष्ठति। स्वर्लोकः शिरस्तत्रैव चक्षुरादिषु प्राणस्तिष्ठति। वागादीनां च तत्तत्कर्मप्रधानत्वाद्वगादिभिः सम्बन्ध इत्येवं शरीरेऽपि व्याख्यानं युक्तमेव। तत्रापि समुदायस्याधिष्ठातैव जायते। मानसं-मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभमिति मानवं वाक्यमप्येतेन संगतं भवति। मध्यमोपासनेन मध्यममेवसुखमाप्नोतीति तात्पर्य्यम् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—एकांश ध्यान के कहने पश्चात् (यदि) जो (द्विमात्रेण) अ, उ इन दो मात्राओंसे युक्त ओंकार के वाच्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्म का जन्मभर ध्यान करे (सः) वह उपासक मरते समय मानसकर्म जिसमें मुख्य है उस उपासनारूप यजुर्वेद के अभिप्राय में (सम्पद्यते) एकाग्रचित्त हुआ संयुक्त होता है और (यजुर्भिः) उस समय की उपासनाओं से सब ओर से मनको खींचकर (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष में रहनेवाले लोकों में (उन्नीयते) उन्नतिदशा को प्राप्त होता है पीछे (सः) वह उपासक (सोमलोकम्) चन्द्रलोक को प्राप्त होता है पीछे (सः) वह उपासक (सोमलोके) चन्द्रलोक में (विभूतिम्) मन सम्बन्धी सब सुख देनेवाली सामग्री से उत्पन्न विद्यावान् होनेवाले आनन्द का (अनुभूय) अनुभव करके पृथिवी पर ब्राह्मणादि अधिकारियों के कुल में (पुनः, आवर्त्तते) फिर उत्पन्न होता है ॥

भा०—शतपथ ब्राह्मण में लिखा है कि वाणी ही ऋग्वेद मन यजुर्वेद और प्राण सामवेद है। तथा अ, उ, म्, ये ऋग्वेदादि के मुख्थ अंश हैं। ऋग्वेद में वाणी का कर्म स्तुति प्रधान है यजुर्वेद में मन का कर्म उपासना प्रधान है और सामवेद में प्राण की क्रिया ज्ञान मुख्य है। वाणी भूलोक अर्थात् भूलोक में वाणीका कर्म प्रधान है मन भुवर्लोक अर्थात् उसमें मनका कर्म मुख्यहै और प्राण स्वर्लोक अर्थात् उसमें प्राणका कर्म पुरुषार्थ ज्ञान ही प्रधान है अथवा यों कहो कि जहां ज्ञानकाण्ड मुख्य है वहीं स्वर्लोक है अर्थात् उसीका नाम स्वर्ग है क्योंकि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख्य सुख ज्ञान से ही होता है तथा अध्यात्मविचारानुसार इस शरीर में भी भू आदिको व्यवस्था ठीक लग जाती है जैसे नाभिस्थल भूर्लोक है वही वाणीका उत्पत्ति स्थान है। हृदयाकाश भुवर्लोक (अन्तरिक्ष) है उसी में मन रहता तथा शिर में स्वर्लोक है वही मुख्यकर प्राण का स्थान है। नाभि में वाणी के साथ ऋग्वेद, हृदय में मन के साथ यजुर्वेद और शिर में प्राण के साथ सामवेद है। यह भी शतपथ ब्राह्मण का लेख है इससे यह आया कि एकांश उपासना से उपासक पुरुष पृथिवी पर अधिष्ठाता राजा होता है और द्विगुणी उपासना से मानस कर्म की जहां प्रधानता है उन चन्द्रादि लोकों में मानस सुख का अनुभव करता और वहाँ भी समुदाय का अधिष्ठाता ही होता है मनुस्मृति में लिखा है कि मन से किये शुभ अशुभ कर्म का फल मन से ही भोगता है यह भी इससे संगत होता है अर्थात मध्यम उपासना से मध्यम ही सुख को प्राप्त होता है ॥ ४ ॥

यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्यनेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथोत्तमोपासनाफलमभिधत्ते (यः) (पुनः) उपासकः (एतत्) एतेन (ओम्, इत्यनेनैव, त्रिमात्रेण) (अक्षरेण) अविनाशिना परमात्मनाम्ना (परम्) सर्गस्मात्सूक्ष्मम् (पुरुषम्) पूर्णं व्याप्तं परमात्मानम् (अभिध्यायीत) आभिमुख्येन तदाकारवृत्त्या योगाभ्यासरीत्या च ध्यानंकुर्वीत (सः) उपासको मरणावसरे (तेजसि) तेजोवर्द्धके (सूर्ये) मूर्द्धस्थे प्राणे (सम्पन्नः) संयुक्तो भोक्तृपुरुषशक्तिं समाश्रितः (यथा, पादोदरः) उदरमेव पादा यस्य स सर्पो यथा (त्वचा) (विनिर्मुच्यते) (एवम्, हवै) तथैव (सः) उपासकः (पाप्मना) अन्तःकरणस्य मलिनसंस्कारजन्यवासनावृत्त्या (विनिर्मुक्तः) निर्मलःसन् (सः, सामभिः) प्राणैः साकम् (ब्रह्मलोकम्) ब्रह्मैव लोक्यं दर्शनीयं प्राप्नोति तदा (सः) (एतस्मात्) प्रत्यक्षात् (जीवघनात्) जीवस्य मूर्त्तिः शरीरं घनः । मूर्त्तौ घन इति निपातनम् । तस्माच्छरीरात् (परात्) परं सूक्ष्मं कारणं तस्मादपि (परम्) सूक्ष्मम् (पुरिशयम्) पुरि ब्रह्माण्डे शयानमिव स्थितम् (पुरुषम्) पूर्णं परमात्मानम् (ईक्षते) ज्ञानदृष्ट्या पश्यति (तदेतौ, श्लोकौ, भवतः) एतस्यैव विषयस्य प्रतिपादकौ वक्ष्यमाणौ मन्त्रौ स्तः ॥

भा०—यः सर्वथा सर्वदा मनसा वाचा कर्मणा सर्वात्मना ब्रह्मोपास्ते स प्रयाणकाले साम्प्रतं देहं सर्पः कञ्चुकमिव विहाय निर्मलः सन् प्राणक्रियाप्रधानेन सामवेदाश्रयेन ज्ञानेन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोक्तृशक्त्यात्मज्ञानसम्बन्धाज्जायमानं सर्वबाधाविनिर्मुक्तं मुक्तिसुखमनुभवति। उपात्तं शरीरं विहाय पुनः सृष्टौ नैव जायते ॥ ५ ॥

भाषार्थः—अब उत्तम प्रकार की उपासना का फल कहते हैं (यः, पुनः,) फिर जो उपासक (एतत्) इस (ओम्, इत्यनेनैव, त्रिमात्रेण, अक्षरेण) ओम्, इस तीन मात्रा वाले अविनाशी परमेश्वर के नाम से (परम्) सबसे सूक्ष्म (पुरुषम्) पूर्ण व्याप्त परमात्मा को (अभिध्यायीत) सम्मुख होकर तदाकारवृत्ति और योगाभ्यासकी रीति से ध्यान करे (सः) वह उपासक मरण समय में (तेजसि) तेज के बढ़ाने वाले (सूर्ये) शिर नाम स्वर्लोकस्थ प्राण में (सम्पन्नः) संयुक्त हुआ अर्थात् भोक्तृरूप पुरुष की शक्ति का आश्रय लिये (यथा पादोदरः) जैसे साँप (त्वचा) पुरानी चमड़ी केंचुली से (विनिर्मुच्यते) छूट जाता और निर्मल हो जाता है (एवम्, हवै) वैसे ही (सः) वह उपासक (पाप्मना) अन्तःकरण के मलिन संस्कार से हुई वासनारूप अशुद्ध वृत्तिसे (विनिर्मुक्तः) छूटकर निर्मल हुआ (सः सामभिः) वह प्राणों के साथ (ब्रह्मलोकम्) ज्ञानदृष्टि से देखने योग्य ब्रह्म को प्राप्त होता है तब (सः) वह उपासक (एतस्मात्) इस प्रत्यक्ष (जीवघनात्) चेतन शरीरों से (परात्) सूक्ष्म जो कारण उससे भी (परम्) सूक्ष्म (पुरिशयम्) ब्रह्माण्ड में सोते के तुल्य अवस्थित (पु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुषम्) पूर्ण परमेश्वर को (ईक्षते) ज्ञानदृष्टि से देखता है (तदेतौ, श्लोकौ, भवतः) इसी विषय को कहने वाले अगले दो मन्त्र प्रमाण हैं ॥

भा०—जो उपासक सब प्रकार से सब कालमें मन वाणी कर्म से सब रीति से ब्रह्म की उपासना करता है वह मरते समय वर्त्तमान शरीर को जैसे साँप केंचुली को छोड़े वैसे छोड़ के निर्मल हुआ प्राणक्रिया जिसमें मुख्य है उस साम-वेद के आशयरूप ज्ञान से भोक्तृशक्तिरूप आत्मा के ज्ञानस-म्बन्ध से हुए सब बाधाओं से पृथक् मुक्तिसुख का अनुभव करता है अर्थात् प्राप्त शरीर को छोड़ कर मुक्तिकाल को अवधि तक सृष्टि में जन्म नहीं लेता ॥ ५ ॥

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्य-सक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्य-मासु सम्यक्प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ॥ ६ ॥

(अन्योऽन्यसक्ताः) परस्परं सम्बद्धाः (अनविप्रयुक्ताः) न विप्रयुक्ताः । अर्थादेकस्मिन् ध्यानकाले सर्वाः सहैवोपयुक्ताः (मृत्युमत्यः) मृत्युर्विद्यत आसामिति प्रयोक्तृणामभावे प्रयो-गाभाव एव तासां मृत्युः प्रलयावसरे च प्रयोक्तारो जीवा-त्मानोऽशरीरा न प्रयुञ्जते (प्रयुक्ताः) उपासनावसरे उपयुक्ता ओङ्कारस्य (तिस्रः) (मात्राः) सन्ति (बाह्याभ्यन्तरमध्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मासु) जाग्रदवस्थायां बाह्या स्वप्ने मध्यमा सुषुप्तावाभ्यन्तरा तासु योगाभ्याससम्बन्धिनीषु (क्रियासु) (सम्यक्प्रयुक्तासु) उपयुक्तासु मात्रासु योगाभ्यासकालेऽवस्थितो (ज्ञः) ज्ञानयोगतत्परो योगी (न,कम्पते) चलितो विचलितो न भवति ॥

भा०—ओङ्कारस्य तिस्रो मात्रा इतरेतरं यथा सम्बद्धास्तथैव शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासेनोमिति नाम्ना सम्बद्धासु सम्प्रज्ञातासम्प्रज्ञातसमाधिपरासु जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तावस्थासु योगाभ्यासेन योगी मनो नियुङ्क्ते तदा समाधिजन्यफलान्न विचलति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अन्योन्यसक्ताः) एक दूसरी से मिली (अनविप्रयुक्ताः) एक समय के ध्यान में सबका साथ ही उपयोग हो ऐसी (मृत्युमत्यः) मृत्यु वाली [अर्थात् प्रलय के समय जीवात्मा के शरीर रहित होने से प्रयोग नहीं होता सो प्रयोग न होना ही उनका मृत्यु है] और (प्रयुक्ताः) उपासना में उपयुक्त ओङ्कार की (तिस्रः) तीन (मात्राः) मात्रा हैं उन (बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु) जाग्रत् अवस्था में बाहरी स्वप्न में मध्यम और सुषुप्ति में भीतरी योगाभ्यास सम्बन्धिनी (क्रियासु) उक्त तीनों क्रियाओं में (सम्यक्) अच्छे प्रकार (प्रयुक्तासु) उपयुक्त मात्राओं में योगाभ्यास के समय में अवस्थित (ज्ञः) ज्ञानयोग में तत्पर योगी (न, कम्पते) अपने कर्त्तव्य से चलायमान नहीं होता ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—ओङ्कार की तीनों मात्रा परस्पर जैसे मिली हैं वैसे ही शब्द अर्थ और ज्ञान के उक्त प्रकार इतरेतराध्यास के साथ ओम् इस नाम से युक्त, सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात समाधि-परक जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति दशा में योगी पुरुष मन को योगाभ्यास से युक्त करता है। तब समाधि से होने वाले फल से नहीं विचलता किन्तु उसको अवश्य प्राप्त होता है ॥६॥

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोंकारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥ ७ ॥

(सः) योगी (विद्वान्) (ऋग्भिः) ऋग्वेदाभिप्रायरूपाभिर्वाग्जन्यस्तुतिभिः (एतम्) प्रत्यक्षं मनुष्यलोकम् (यजुर्भिः) यजुर्वेदाभिप्रायरूपैर्मानसकर्मभिः (अन्तरिक्षम्) चन्द्रादिलोकम् (सामभिः) सामवेदाभिप्रायरूपैः प्राणायामादिज्ञानवर्द्धकप्राणसाध्यकर्मभिः (यत्) (कवयः) पण्डिता एव (वेदयन्ते) जानन्ति (तत्) ब्रह्मलोकमनिर्देश्यं परोक्षम् (तम्) लोकत्रयम् (ओङ्कारेण, एव, आयतनेन) साधनेन (अन्वेति) प्राप्नोति तद्ब्रह्म कीदृशमित्युच्यते (यत्, तत्) अतीन्द्रियत्वादसङ्केत्यम् (शान्तम्) निर्विकल्पमवस्थाभेदशून्यमतएव (अजरम्) जराऽवस्था विरहम् (अमृतम्) मृत्युरहितमतएव (अभयम्) निर्भयम् (च) (परम्) नास्ति किमपि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तु परं प्रकृष्टं यस्मात् तन्निरतिशयम् (इति) प्रश्नसमाप्ति-सूचनार्थः ॥

भा०—उत्तममध्यमनिकृष्टत्रिविधोपासनैस्तादृशमेव त्रिविधफलमुपासकोऽवाप्नोति। सर्वोत्तमोपासनया योगाभ्यासेन च जरामृत्युभयादिजन्यविकारशून्यं सर्वस्मात्सूक्ष्मं नित्यमुक्तं ब्रह्म योगिभिः प्राप्यते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(सः) वह योगी (विद्वान्) विद्यावान् ज्ञानी (ऋग्भिः) ऋग्वेद के अभिप्रायरूप वाणी से हुई स्तुतियों से (एतम्) इस प्रत्यक्ष मनुष्य लोक को (यजुर्भिः) यजुर्वेद के अभिप्रायरूप मानसकर्मों से (अन्तरिक्षम्) चन्द्रमा आदि लोकको (सामभिः) सामवेद के अभिप्रायरूप प्राणायामादि ज्ञानसम्बन्धी कर्मों से (यत्) जिसको (कवयः) पण्डित विद्वान् लोग ही (वेदयन्ते) जानते हैं (तत्) उस परोक्ष निर्देश न करने योग्य ब्रह्मलोक अर्थात् (तम्) उस तीनों लोकों को (ओङ्कारेण, एव, आयतनेन) ओङ्काररूप शब्द वाच्य अर्थ की उपासनारूप साधन से ही (अन्वेति) प्राप्त होता है वह ब्रह्म कैसा है सो कहते हैं (यत्, तत्) जिसमें इन्द्रियों की गति न होने से संकेत नहीं हो सकता (शान्तम्) शान्तस्वरूप जिस में किसी प्रकार का विकल्प नहीं अर्थात् अवस्था भेद नहीं इसीलिये (अजरम्) वृद्धावस्थारहित (अमृतम्) मृत्युरहित है इसीसे (अभयम्) निर्भय है (च)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और (परम्) जिससे सूक्ष्म वा उत्तम परे कोई नहीं (इति) यह प्रश्न समाप्त हुआ ॥

भा०—उत्तम मध्यम और निकृष्ट तीन प्रकारकी उपासना से वैसे ही तीन प्रकार के फल को उपासक पाता है। सर्वोत्तम उपासना और योगभ्यास से जीर्ण अवस्था, मृत्यु और भय आदि से होने वाले विकारों से रहित सबसे सूक्ष्म नित्यमुक्त ब्रह्म को योगीजन प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

इति पञ्चमः प्रश्नः समाप्तः ॥

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ । भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं भारद्वाज पुरुषं वेत्थ ? तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद । यद्यहमिममवेदिषं कथं ते नावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥ १ ॥

(अथ) शैव्यकृतप्रश्नस्यात्तरश्रवणानन्तरं (सुकेशा) एतन्नामकः (भारद्वाजः) भरद्वाजस्य गोत्रापत्यम् (एनम्) पिप्पलादमृषिम् (ह) स्फुटमिदम् (पप्रच्छ) हे भगवन् ! (कौशल्यः) कोसलानां राजा (राजपुत्रः, हिरण्यनाभः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतन्नामको (मामुपेत्य तम्) वक्ष्यमाणं (प्रश्नमपृच्छत) । हे (भारद्वाज !) त्वम् (षोडशकलम्) षोडश कला अस्मिन्नस्य वा स्वामिनः सन्ति तम् (पुरुषम्) पूर्णं व्याप्तं परमात्मानं (वेत्थ) जानासि ? (तम्) कुमारमहमेतदब्रुवम् (नाहमिमम्, पुरुषं, वेद) जानामीति । (यद्यहमिमम्) त्वया पृच्छ्यमानमात्मानम् (अवेदिषम्) तर्हि पूर्णशिष्यगुणवते (ते) तुभ्यं (कथम्) नावक्ष्यमपित्ववश्यमेव वदेयम् । (यः) पुरुषो जानन्नपि (अनृतमभिवदति) (सः, एषः) (वै) निश्चयेन समूलः (परिशुष्यति) (तस्मात्) (अहमनृतम्) (शास्त्रविरुद्धं वक्तुम्) (नार्हामि) न योग्यो भवामि : इत्येवं प्रकारेण मद्वचः श्रुत्वा (स, तूष्णीम्, रथमारुह्य, प्रवव्राज) मत्समीपात्स्वस्थानं गतवान् । सोऽहम् (तम्, पुरुषम्, त्वा, पृच्छामि) क्वासौ अस्तीति ॥

भा०—सुकेशा वदति यद्यहमेव न जानामि तर्हि कथमन्यस्मा उपदिशेयमिति याथार्थ्येन यत्स्वयं न जानीयान्न तदन्यस्मा उपदिशेत् । अनृतवादी समूलो विनश्यति । अस्मिन्नन्तिमप्रश्ने सामान्येन जीवात्मनो विशेषेण च ब्रह्मणः स्वरूपमेव निरूप्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब शैव्य ऋषिकृत प्रश्न के उत्तर सुनने के पश्चात् (सुकेशा) सुकेशानामक (भारद्वाजः) भारद्वाजगोत्री ऋषि ने (एनम्) इन पिप्पलाद ऋषि से (ह)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकट (पप्रच्छ) पूछा कि हे (भगवन् !) गुरो ! एक समय (हिरण्यनाभः) हिरण्यनाभनामक (कौसल्यः) कोसल देश के (राजपुत्रः) राजकुमार ने (माम) (उपेत्य) मेरे पास आकर (एतम्, प्रश्नम्) इस प्रश्न को (अपृच्छत) पूछा कि हे (भारद्वाज !) भारद्वाजगोत्र तुम (षोडशकलम्) जिस सर्वाध्यक्ष परमात्मा की सोलह कला हैं वा जिस जीवात्मा के साथ सोलह कला रहती हैं उस (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त परमेश्वर वा जीवात्मा को (वेत्थ) जानते हो ? (तम्, कुमारम्) उस राजपुत्र से (अहम्) मैंने (एनत्) यह (अब्रुवम्) कहा कि (नाहमिमं, वेद) मैं इस पुरुष को नहीं जानता (यद्यहमिममवेदिषम्) यदि मैं तुम्हारे पूछे इस आत्मा को जानता होता तो पूर्ण शिष्य के गुणों वाले (ते) योग्यता के पात्र तुम्हारे लिये (कथम्) क्यों (न, अवक्ष्यम्) न कहता किन्तु अवश्य तुमको उपदेश करता क्योंकि मैं मानता हूँ कि (एषः) वह पुरुष (वै) निश्चय कर (समूलः) धन पुत्रादि सहित (परिशुष्यति) सूखता—नष्ट हो जाता है (यः) जो (अनृतम्) शास्त्र से विरुद्ध जान कर झूठ (अभिवदति) बोलता है (तस्मात्, नार्हामि, अनृतं, वक्तुम्) इस लिये मैं झूठ नहीं बोल सकता अर्थात् मैं कदापि झूठ न बालूँगा (इति) ऐसा मेरा कथन सुन कर (सः) वह राजपुत्र (तूष्णीम्) चुपचाप (रथमारुह्य) रथ पर चढ़ कर (प्रवव्राज) मेरे समीप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से अपने स्थान को चला गया। इस लिये (तम्) उस आत्मा को (त्वा) आपसे (पृच्छामि) पूछता हूँ कि (असौ) वह (पुरुषः) आत्मा (क्व) कहाँ है (इति) ऐसा आप कहिये॥

भा०—सुकेशा ऋषि कहते हैं कि जब मैं ही नहीं जानता तो अन्य के लिये कैसे उपदेश करूँ। शास्त्रकारों की आज्ञा है कि जिस बात को यथार्थरूपसे आप न जाने उसको अन्य के लिये भी उपदेश न करे। मिथ्यावादी निर्मूल नष्ट हो जाता है। इस अन्तिम प्रश्न में सामान्य कर जीवात्मा और विशेष कर ब्रह्म के स्वरूप का ही निरूपण किया जाता है॥ १॥

तस्मै स होवाच इहैवान्तः शरीरे सोम्य !। स पुरुषो यस्मिन्नेताः षोडश कलाः प्रभवन्तीति ॥२॥

हे (सोम्य!) शान्त्यादिगुणयुक्त (इहैवान्तःशरीरे) व्याप्तः (सः, पुरुषः) पूर्णो जीवात्मा परमात्मा च योगिभिर्ध्यानेन प्राप्यते ज्ञायते च (यस्मिन्नेताः) वक्ष्यमाणाः (षोडशकलाः) भागाः (प्रभवन्ति) समर्था भवन्ति उत्पद्यन्ते वा। इत्येवं स पिप्पलादस्तस्मै भारद्वाजाय (ह) प्राकट्येनोवाच॥

भा०—"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया" ॥ इति भगवद्गीतासु प्रतिपादनादीश्वरः कलाभिः सर्वान् जन्तून् भ्रामयन् हृदि तिष्ठति जीवात्मानमपि व्याप्नोति। यद्यपि सर्वत्रचराचर एकरसतया परमात्मा व्याप्तस्तथापि दर्पणे प्रतिविम्बमिव शुद्धान्तःकरणे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानिभिरेवोपलभ्यत इति मत्वाऽन्तःशरीर एव स्थितिर्दर्शिता। ज्ञानरूपं साधनं च शरीर एवास्ति ॥ २ ॥

भाषार्थः—हे (सोम्य !) शान्ति आदि गुणयुक्त सुकेशा (इहैव, अन्तःशरीरे) यहीं शरीरके भीतर (सः, पुरुषः) वह जीवात्मा वा पूर्ण व्याप्त परमात्मा योगी लोगों से योगाभ्यास ध्यानादि करके प्राप्त किया वा जाना जाता है (यस्मिन्, एताः) जिसमें ये आगे कही (षोडश) सोलह (कलाः) कार्य जगत् के अंश (प्रभवन्ति) जीव में समर्थ होते और परमात्मा में उत्पन्न होते हैं। (इति) इस प्रकार (तस्मै) उन सुकेशा से (सः) वे पिप्पलाद (उवाच, ह) बोले ॥

भा०—भगवद्गीता में लिखा है कि सब प्राणियों को कल में बैठाकर जैसे कोई घुमावे वैसे कार्य जगत् शरीरादि के साथ उनके हृदय में स्थित हुआ परमेश्वर चला रहा है अर्थात् कर्मफल भुगाता है और जीवात्मा में भी व्याप्त रहता है। यद्यपि परमात्मा सब चराचर जगत् में एकरस व्याप्त है तो भी दर्पण में छाया के तुल्य शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञानी लोगों को ही प्राप्त हो जाता है। ऐसा मानकर ज्ञान में स्थिति दिखाई गयी है और ज्ञानरूप साधन भी शरीरमें ही रहता है॥२॥

स ईक्षाञ्चक्रे कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन्वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सः) जीवात्मा सर्गारम्भे (ईक्षाञ्चक्रे) आलोचितवान् (अहम्, कस्मिन्नुत्क्रान्ते) निर्गतेऽस्मात्कलेवरात् (उत्क्रान्तः) निस्सृतः (भविष्यामि) (वा) अथवा (कस्मिन्) (प्रतिष्ठिते, प्रतिष्ठास्यामि, इति) एवमचिन्तयत् ॥

भा०—इदमीक्षणं जीवात्मन्येव सम्भवति नतु परमात्मनि । सर्वव्यापकपरेशस्य निर्गमप्रवेशयोरसम्भवात् । यद्यपि गतद्वितीयमन्त्रे सामान्येनात्मद्वयस्यापि सम्भवात्प्रयोजनवत्त्वाच्चसमावेशोऽस्ति तथापि कलानामुत्पत्तिप्रसङ्गे चतुर्थमन्त्रे परमात्मन उपयोगो न्याय्यः । अस्मिन् प्रश्ने षोडशकलासम्बद्ध आत्मा प्रष्टव्यो वक्तव्यश्चास्ति कलाभिश्च परमात्मजीवात्मनोरुभयोरपि सम्बन्धः । कलानामुत्पत्तिस्थितिप्रलयकर्त्ता परमात्माऽतस्तेन जन्यजनकादिसम्बन्धः स्फुटएव । जीवात्मनश्च निर्गमप्रवेशौ सबलनिर्बलभावः कार्यसाधनासाधने च सर्वे कलाधीनमेवेति कर्त्तृकरणसम्बन्धः प्रधानः । परमेश्वरेण सर्वं जगत्परार्थमेवोत्पादितमिति कला अपि तेनैव जीवात्मकार्यसाधनाय परोपकाराय निर्मिताः । तस्मिन्कलासमुदाये शरीरेस्थिते जीवात्मापि तिष्ठति निस्सृते च निस्सरति ॥ ३ ॥

भावार्थः—(सः) उस जीवात्मा ने सृष्टि के आरम्भ में (ईक्षाञ्चक्रे) चिन्तन किया कि (अहम्) मैं (कस्मिन्) किस के (उत्क्रान्ते) निकलने पर इस शरीर से (उत्क्रान्तः,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यामि) निकल जाऊँगा (वा) अथवा (कस्मिन्) किसके (प्रतिष्ठिते) प्रतिष्ठित होने से (प्रतिष्ठास्यामि) प्रतिष्ठित होऊँगा (इति) इस प्रकार विचार उपस्थित हुआ।

भा०—मैं किसके ठहरने से ठहरता वा किस के निकलने से निकल जा सकता हूँ इस प्रकार की चिन्ता जीवात्मा में हो सकती है किन्तु परमात्मा में नहीं क्योंकि सर्व व्यापक परमेश्वर का निकलना पैठना नहीं बनता अर्थात् असम्भव है आकाश कहीं से निकल गया यह नहीं हो सकता। यद्यपि गत द्वितीय मन्त्र में सामान्य कर सम्भव और प्रयोजन होने से दोनों आत्मा का ग्रहण है तो भी कलाओं की उत्पत्ति के प्रसङ्ग से चौथे मन्त्र में परमात्मा का उपयोग लिया है और इसमें केवल जीवात्मा का ग्रहण है। इस अन्तिम प्रश्न में सोलह कलाओं से सम्बन्ध रखने वाले आत्मा को जानने को प्रश्न वा उत्तर है और कलाओं के साथ परमात्मा जीवात्मा दोनों का सम्बन्ध है। कलाओंकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय करने वाला परमात्मा है। इस लिये कलाओं के साथ उसका जन्य-जनक सम्बन्ध प्रकट है। और जीवात्मा का निकलना पैठना सबल निर्बल होना वा कार्य का बनना बिगड़ना सब कलाओं के आधीन है इसलिये कर्त्ता करण वा भोक्ता भोग्य का सम्बन्ध मुख्य है। परमेश्वर ने सब जगत् जीवों के लिये ही बनाया है वैसे कला भी उसी ने जीवात्मा को कार्य सिद्धि के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'अथ बनाई है। उस कलासमुदाय के शरीर में रहने से जीवात्मा ठहरता और निकलने से निकल जाता है ॥ ३ ॥

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ ॥

(सः) परोक्षः परमेश्वरः सर्वकलासु प्रधानं सर्वासां कारणभूतं भोक्तृशक्तिप्रधानं जीवनहेतुम् (प्राणम्) प्रथमम् (असृजत) (प्राणात्) कारणभूतात् (श्रद्धाम्) सत्येव प्राणे श्रद्धा भवितुमर्हति नासति ततः (खम्) आकाशम् (वायुर्ज्योतिः) अग्निवायू (आपः, पृथिवी) इति पञ्चभूतानि तेभ्यश्च भौतिकं श्रोत्रादि (इन्द्रियम्) जातावेकवचनम्। ततः, (मनः) इन्द्रियाणां राजा सतीषु प्रजासु राज्ञः सम्भवात्। ततस्तेषां रक्षकम् (अन्नमन्नात्) उपादानात् (वीर्यम्) सति वीर्ये पराक्रमे (तपः) सम्भवति तपसि च (मन्त्राः) प्रयुज्यन्ते (कर्म) च कर्तुं मन्त्रमन्तरेण विचारमन्तरा न सम्भवति कर्मणा मैथुनादिजन्यचेष्टया शिल्पादिकर्मणा वा (लोकाः) जनाः प्राण्याधारा श्रोत्पद्यन्ते तेषु (च, लोकेषु) सत्सु (नाम, च) व्यवहारसिध्यर्थं संज्ञाऽपि क्रियते। यथा सतो मांसपिण्डस्य देवदत्त इति संज्ञा क्रियते नासतः ॥

भा० —जीवात्मनां सुखेन कार्यसिद्धिः स्यादिति प्रयोजनमुररीकृत्य परमात्मना प्राणादयः षोडशकलाः क्रमेण निर्मिताः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्यहं धार्यन्ते प्रलयावसरे विनाश्यन्ते च। तस्माद्यः कलाना मुत्पादकः स एवान्तःशरीरे व्याप्तः पुरुषः परमेश्वरोऽस्ति ॥४॥

भाषार्थः—(सः) उस परोक्ष परमेश्वर ने सब कलाओं में मुख्य सब के कारणभूत भोक्तृशक्ति के उत्तेजक जीवन के हेतु (प्राणम्) प्राण को प्रथम (असृजत) रचा (प्राणात्) कारणरूप प्राण से (श्रद्धाम्) श्रद्धा को बनाया क्योंकि प्राण के न होने से श्रद्धा नहीं हो सकती तिस पीछे (खम्) आकाश (वायुः) वायु (ज्योतिः) अग्नि (आपः) जल (पृथिवी) पृथिवी ये पाँच भूत रचे और उन भूतों से (इन्द्रियम्) कान आदि भौतिक इन्द्रिय तिस पीछे (मनः) इन्द्रियों का राजा मन बनाया क्योंकि पहिले प्रजा हो तबही उसका राजा उसी में से हो सकता है फिर इन्द्रिय और मन की रक्षा के लिये (अन्नम्) अन्न बनाया (अन्नात्) अन्न से (वीर्यम्) वीर्य, वीर्य से बल, बल होने से तप हो सकता और वीर्य की रक्षा के लिये तप करना चाहिये इस कारण वीर्य के पीछे (तपः) तप बनाया पीछे तपके उपयोगी (मन्त्राः) वेदमन्त्र बनाये और मन्त्र नाम विचार किये विना कर्म नहीं हो सकता इसलिये मन्त्र से पीछे (कर्म) कर्म को बनाया कर्म मैथुनादि वा शिल्पादि से (लोकाः) मनुष्य वा पृथिव्यादि बने (च) तथा (लोकेषु) उन लोकों में व्यवहार सिद्धि के लिये (नाम, च) संज्ञा भी बनायी क्योंकि विद्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मान मांसपिण्ड की देवदत्त इत्यादि संज्ञा की जाती है अविद्यमान की नहीं ॥

भा०—जीवात्माओं की सुखपूर्वक कार्यसिद्धि हो इस प्रयोजन को स्वीकार कर परमेश्वर ने प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, अग्नि. जल, पृथिवी,इन्द्रियां; मन,अन्न, वीर्य, तप,मन्त्र, कर्म लोक, और नाम ये सोलह कला अर्थात् कार्य जगत् के अंश क्रम से रचे। इन सोलह कलाओं में सब जगत् आजाता है इन कलाओं को वही धारण करता और प्रलय समय सब कलाओं का नाश करता है इससे जो कलाओं की उत्पत्ति आदि करने वाला है वही शरीर में व्याप्त परमेश्वर है ॥ ४ ॥

स यथेमा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते। एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तंगच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ५ ॥

कलानामुत्पत्तिनाशौ परमात्मसकाशादेव जायेते इत्यत्र (सः) प्रसिद्धो दृष्टान्त उच्यते (यथा) (स्यन्दमानाः) (इमाः) प्रत्यक्षा दृश्यमानाः (समुद्रायणाः) समुद्रोऽयनं स्थित्यधिकरणमासां ताः (नद्यः) (समुद्रम्) (प्राप्य, अस्तम्) अदृश्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावम् (गच्छन्ति) तदा च (तासाम्) (नामरूपे) (भिद्येते) इयं गङ्गेयं यमुनेत्यादिनामानि । इयमीदृशीत्यादि रूपाणि च तत्रैव समाप्यन्ते किन्तु (समुद्रः, इत्येवम्, प्रोच्यते) (एवमेवास्य, परिद्रष्टुः) परितःसर्वतो दर्शकस्य ज्ञातुः सर्वज्ञस्य स्वामिनः (इमाः) (षोडशकलाः, पुरुषायणाः) पुरुषः परमात्मैव स्थित्यधिकरणमासामिति ताः (पुरुषम्, प्राप्य) प्रलयावसरे सूक्ष्माः सत्यः (अस्तम्) (गच्छन्ति) अदृश्या भवन्ति (तासाम्, नामरूपे) तदा (भिद्येते) (पुरुषः, इत्येवम्, प्रोच्यते) (सः, एषः) परमात्मनो विज्ञाता जनः (अकलः) शरीरादिरहितोऽतएव (अमृतः) मुक्तः (भवति) (तदेषः) (श्लोकः) तस्य विषयस्य प्रतिपादको वक्ष्यमाणः मन्त्रोऽस्ति ॥

भा०—यस्मिन् परमात्मनि सर्वमिदं प्रत्यक्षीभूतं कार्यं जगन्नद्यः समुद्रइव नामरूपविरहं सत्प्रलीयते तं यस्तत्त्वतो जानाति स दुःखान्मुच्यते । अदृश्यसाधर्म्यमाश्रित्यायं दृष्टान्तो न तु जलस्येव जडचेतनयोः साधर्म्यम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—कलाओं की उत्पत्ति और विनाश परमात्मा से ही होते हैं इस विषयमें (सः) यह प्रसिद्ध दृष्टान्त कहा जाता है (यथा) जैसे (स्यन्दमानाः) चलती हुई (इमाः) ये गङ्गादि (नद्यः) नदियाँ (समुद्रायणाः) समुद्र ही जिनका आधार है वे (समुद्रम्) समुद्र को (प्राप्य) प्राप्त होकर (अस्तम्) अस्त-अदृश्य भाव को (गच्छन्ति) प्राप्त होजाती हैं (तासाम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तब उनके (नामरूपे) गङ्गा यमुनादि नाम और श्वेत काला आदि रूप (भिद्येते) मिट जाते हैं किन्तु (समुद्रः, इत्येवम्, प्रोच्यते) समुद्र है यही कहाजाता है। यद्यपि गङ्गा यमुनादि के जल परमाणुओं का समुद्र में भी अभाव नहीं होता वे स्वरूप से अवश्य भिन्न बने रहते हैं तो भी अदृश्य होने से नाम रूप का भिन्न व्यवहार नहीं हो सकता और न स्थूल इन्द्रियों से नामरूप भिन्न २ दीख सकते हैं (एवमेव) इसी प्रकार (अस्य) इस (परिद्रष्टुः) सब ओर को ज्ञान रखने वाले सर्वज्ञ सब के स्वामी परमेश्वर की (इमाः) ये (पुरुषायणाः) उत्पत्ति स्थिति प्रलय तीन दशा में पूर्ण व्याप्त ब्रह्म ही जिनका आधार है ऐसी (षोडशः) सोलह पूर्वोक्त (कलाः) कला (पुरुषम्) परमेश्वर को (प्राप्य) प्राप्त होकर (अस्तम्) अस्त अदृश्य रूप (गच्छति) होजाती हैं अर्थात् प्रलयदशामें सूक्ष्म हुई अदृश्य होकर ब्रह्म के आश्रय रहती हैं तब (तासाम्) उनके (नामरूपे) पृथिवी घटपटादि नाम और रक्त कृष्णादि रूप (भिद्येते) मिट जाते हैं (पुरुषः, इत्येवम्, प्रोच्यते) परमेश्वर एक रह जाता यही व्यवहार होता है। यद्यपि कारण रूप से पृथिवी आदि सब कलाओं के परमाणु सूक्ष्मावस्था में अवश्य बने रहते हैं तो भी अदृश्य होने से उनके नामरूप का व्यवहार नहीं रहता। (सः, एषः) वह प्रसिद्ध आत्मज्ञानी पुरुष (अकलः) शरीर आदि से रहित इसी कारण (अमृतः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्त (भवति) होता है (तदेषः, श्लोकः) इस उक्त विषयका प्रतिपादन करने वाला अगला मन्त्र है ॥

भा०—जिस परमात्मा में यह सब कार्यरूप प्रत्यक्ष जगत् [जैसे समुद्र में नदियाँ वैसे] नामरूप रहित हुआ लय हो जाता है उस ब्रह्म को जो तत्त्वरूप से जानता है वह दुःख से छूट जाता है। अदृश्य होने वा नामरूप मिटने मात्र अंशमें यह दृष्टान्त है किन्तु जैसे नदी वा समुद्र का जल भी वास्तव में एक है वैसे जड़ जगत् और चेतन ब्रह्म का साधर्म्य नहीं मिल सकता इस कारण इस अंश में दृष्टान्त नहीं समझना चाहिये ॥ ५ ॥

अराइव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः । तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ॥६॥

हे ऋषयः ! सर्वसाधरणा जिज्ञासवो जना वा (रथनाभावराइव) (यस्मिन्) ब्रह्मणि पूर्वोक्ताः षोडश (कलाः) (प्रतिष्ठिताः) आश्रिता यदाधाराः सन्ति (तम्, वेद्यम्) ज्ञातु योग्यम् (पुरुषम्) पूर्णं परेशम् (यथा) ज्ञानी (वेद) जानाति तथा युष्माभिरपि ज्ञातव्यः। इदानीं पिप्पलाद आशीर्ददाति–हे शिष्याः ! (वः) युष्मान् (मृत्युर्मा) (परिव्यथाः) न व्यथयेत् (इति) अत्र पुरुषव्यत्ययः ॥

भा०—अत्रापि सर्वाधारत्वद्योतनाय रथनाभिदृष्टान्तो न तु नाभिवदेकदेशित्वं ब्रह्मणः सूचनार्थः। यथा नाभ्यःश्रयेणारा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तिष्ठन्ति नहीतस्ततो विचलन्ति तथैव पृथिव्यादयः सर्वेलोकाः परमात्माश्रयेणैव स्वस्वकक्षायां स्थितास्तेनैव धृतास्ततो न विचलन्ति। तदेवंभूतमात्मतत्त्वं यो विजानाति तं मृत्युर्न व्यथयति। अर्थान्मरणावसरेऽपि प्रसन्नचेताः सन् मुक्तो भवति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—हे ऋषि लोगो ! वा सर्वसाधारण जिज्ञासु लोगो ! जैसे (रथनाभौ) (अराइव) रथ के पहिये की पुट्ठी में अरानामक लकड़ी लगी होती है वैसे (यस्मिन्) जिस ब्रह्म में पूर्वोक्त सोलह (कलाः) कला (प्रतिष्ठिताः) स्थित वा आश्रित हैं (तम्, वेद्यम् पुरुषम्) उस जानने योग्य पूर्णव्याप्त परमेश्वर को (यथा) जैसे ज्ञानी पुरुष (वेद) जानता है वैसे तुमको भी जानने योग्य है। अब पिप्पलाद ऋषि आशीर्वाद देते हैं—हे शिष्यो ! (वः) तुम सबको (मृत्युः) मृत्यु (मा, परिव्यथा इति) पीड़ित न करे ॥

भा०—यहाँ इस मन्त्रमें भी सर्वाधार परमेश्वरको जताने के लिये रथनाभि का दृष्टान्त है किन्तु पुट्ठी के तुल्य ब्रह्म को एकदेशी जताने के लिये नहीं। जैसे नाभि के आश्रय से अरा ठहरते हैं किन्तु इधर उधर को विचलते नहीं वैसे ही पृथिव्यादि सब लोक परमात्मा के आश्रय से ही अपनो२ कक्षा में उसीसे धारण किये स्थित हैं तिससे चलायमान नहीं होते। उस परमात्मा को जो जानता है उसको मृत्यु पीड़ित नहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता अर्थात् मरण समय में भी प्रसन्न चित्त हुआ शरीर छोड़ के मुक्त होता है ॥ ६ ॥

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परं ब्रह्म वेद नातः परमस्तीति ॥ ७ ॥

(तान्) सुकेशादीन् शिष्यान् प्रति पिप्पलादो विषयमुपसंहरन् (ह, उवाच) (अहम्, एतावत्, एव, एतत्परम्) (ब्रह्म) (वेद) जानामि । अतः परमन्यः कश्चिज्जानीयादिति शङ्कानिराशायाह (न) (अतःपरमस्ति) । अतः परमन्यद्ब्रह्म नास्त्येव (इति) निश्चितम् ॥

भा०—पिप्पलादो महर्षिर्वदति—बहुना कथनेनैव बोधो न भवत्यपितु स्वल्पेन सारकथनेनैव भवादृशा जानन्ति । यन्मया प्रतिपादितं तदेवाहं परं ब्रह्म जानामि नातः परं कश्चिद्वक्तुमर्हति ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(तान्) उन सुकेशादि शिष्य ऋषियों के प्रति विषय को समाप्त करते हुए पिप्पलाद ऋषि (होवाच) बोले कि (अहम्) मैं (एतावदेव) इतना ही (एतत्) इस (परम्, ब्रह्म) परब्रह्म को (वेद) जानता हूँ यदि कोई शङ्का करे कि इससे परे अन्य कोई जाने सो नहीं (अतः परम्) इससे परे (न, अस्ति) अन्य ब्रह्म नहीं है ॥

भा०—पिप्पलाद महर्षि कहते हैं कि बहुत कहने वा उपदेश से बोध नहीं होता किन्तु साररूप थोड़े ही कथन से आप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे लोग जान लेते हैं जिसका मैंने प्रतिपादन किया है उसी परब्रह्म को मैं जानता हूँ इससे परे कोई नहीं कह सकता ॥७॥

ते तमर्चन्तस्त्वं नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः ॥ ८ ॥

(ते) सुकेशादय ऋषयः प्राप्तविद्योपकारस्यान्यं प्रत्युपकारमपश्यन्तः (तम्) पिप्पलादम् (अर्चन्तः) शिरसि पुष्पाञ्जलिदानेन शिरसा तत्पादयोः प्रणामादिना च पूजयन्तः स्तुवन्ति । (त्वम्, हि, नः) (अस्माकम्, पिता) अविद्या दिक्लेशजन्यपीडातो रक्षकोऽसि (यः) त्वम् (अविद्यायाः) सरितः (परम्, पारम्, तारयसि) नास्ति भवत्तारणे निमज्जनभयम् । इत्यादि प्रकारैः स्तुवन्ति स्म (नमः, परमऋषिभ्यः, नमः, परमऋषिभ्यः) इत्येवं पिप्पलादाय पुनःपुनर्नमस्कुर्वन्तिस्म । द्विर्वचनं प्रश्नसमाप्तिसूचकम् ॥

भा०—यः स्वोपकारं कुर्यात्तस्य प्रत्युपकारः कार्य इत्येव कृतज्ञत्वम् । पिप्पलादेन च सुकेशादीनां सर्वदुःखान्निवृत्तिरूपो महानुपकारः कृतस्तस्य प्रत्युपकारमन्यमपश्यन्तः कृतज्ञत्वं सूचयन्ति । एवमेव गुरोर्विद्यामादाय सर्वैः कृतज्ञता कार्या प्रत्युपकारश्च ॥ ८ ॥

भावार्थः—(ते) वे सुकेशादि ऋषिजन विद्याप्राप्ति-ब्रह्मज्ञानरूप उपकार का अन्य प्रत्युपकार करने में अपना सामर्थ्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न देखते हुए (तम्) उन पिप्पलाद ऋषि को (अर्चन्तः) शिर पर पुष्प वर्षाते और पगों में शिर धरके प्रणाम आदि करने से पूजा करते हुए स्तुति करते हैं कि (त्वम्, हि) आप ही (नः अस्माकम्) हमारे (पिता) अविद्यादि क्लेशजन्य पीड़ा से रक्षक है (यः) जो आप (अविद्यायाः) अविद्यारूप नदी के (परस्पारम्) उत्तम प्रकार पार करने वाले हैं आपके तारने में, डूबनेका भय नहीं है। इत्यादि प्रकार से स्तुति की। (नमः, परमऋषिभ्यः २) इस प्रकार पिप्पलाद से सब शिष्यों ने बार २ नमस्कार किया। द्विर्वचन प्रश्नसमाप्ति के अर्थ है ॥

भा०—जो अपना उपकार करे उसका प्रत्युपकार करना चाहिये यही कृतज्ञता है पिप्पलाद ने सुकेशादि ऋषियों का सब दुःखों से निवृत्तिरूप बड़ा उपकार किया उसका अन्य प्रत्युपकार न देखते हुए कृतज्ञता दिखाते हैं। इसी प्रकार गुरु से विद्या पाकर सबको कृतज्ञता और प्रत्युपकार करना चाहिये ॥ ८ ॥

इति षष्ठः प्रश्नः समाप्तः ॥

अस्यां प्रश्नोपनिषदि प्रत्यगात्मभूतप्राणादिसूक्ष्मवस्तुषु क्रमशो ज्ञानवृद्धयेऽध्यात्मविद्योक्ता। तत्र षट्सु प्रश्नेष्वादिमे जगतः कारणविज्ञानाय प्रश्नो न तु कार्यविज्ञाने प्राधान्यमपितु कारणस्य ब्रह्मणो विज्ञाने कार्यमुपयुक्तं भवतीति कार्यस्य व्याख्यानं प्रारब्धम्। सत्स्वेव साधनेषु साध्यस्य सिद्धिः सुल-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेति न तिरोहितम्। नेत्रमन्तरेण रूपं किमस्तीति ज्ञातुं प्रवृत्ता न ज्ञातुमर्हन्ति। तस्मात्साध्यसिद्धेः पूर्वमेव साधनमपेक्ष्यते सत्सु नेत्रादिसम्यक्साधनेषु रूपादिज्ञानमनायासेनैव भवितुमर्हति। एवं ब्रह्मज्ञानस्य साधनमन्तःकरणस्य सम्यक् शुद्धिः। अन्तःकरणशुद्धिसाधनान्यप्यत्रोच्यन्ते तेषु सत्सु सति नेत्रे रूपमिव स्वयमेव ब्रह्म ज्ञायते। अतो ये साधनसञ्चयोपायमकृत्वा वादेन पुस्तकादिदर्शनमात्रेण वा ब्रह्मज्ञानाय धावन्ति तेषां कर्म भस्मनि हुतवन्निरर्थकमिति विदुषामनुभवः। सिद्धसाधना एव सुकेशादयः पिप्पलादकृताल्पोपदेशेनैव ज्ञानसम्पन्ना बभवुः। एवमर्थमस्यामुपनिषदि साधनानि वर्णितानि॥

भा०—इस प्रश्नोपनिषद् में प्रत्यगात्मरूप प्राणादि सूक्ष्म वस्तुओं में ज्ञान बढ़ाने के लिये अध्यात्मविद्या कही है। उन छः प्रश्नों में से पहिले प्रश्न में जगत् का कारण जानने के लिये प्रश्न किया गया है किन्तु कार्य के जानने में प्रश्न का आशय नहीं। अर्थात् कारण रूप ब्रह्म के जानने में कार्य का ज्ञान उपयोगी होता है इसलिये कार्य पदार्थों के व्याख्यान का प्रारम्भ किया है। साधनों के होने पर साध्य की सिद्धि सुगम होती है; यह प्रकट है छिपा नहीं क्योंकि नेत्र के विना रूप क्या है ऐसी बुद्धि से जानने को प्रवृत्त हुए मनुष्य रूपको नहीं जान सकते। इस कारण साध्य की सिद्धि अर्थात् रूप दीख पड़ने से पहिले नेत्रादि साधन की अपेक्षा होती है। जब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेत्रादि साधन ठीक २ होते तब रूपादि ज्ञान सहज स्वभाव से होता ही है। इसी प्रकार ब्रह्मज्ञान का साधन अन्तःकरण की ठीक २ शुद्धि होना है और अन्तःकरण की शुद्धि के साधन भी यहाँ उपनिषदों में कहे हैं। उन साधनों के इकट्ठे होने से नेत्र होने पर रूप के तुल्य स्वयमेव ब्रह्मज्ञान हो जाता है। इससे जो लोग साधनों के सञ्चय का उपाय न करके वाद विवाद वा पुस्तकादि के देखने मात्र से ब्रह्मज्ञान के लिये दौड़ते हैं उनका कर्म राख में होम किये के तुल्य निरर्थक होता ऐसा विद्वानों का सिद्धान्त है। सुकेशादि ऋषिजनों के आचरण वा साधन प्रथम ही से अच्छे थे तभी पिप्पलाद कृत थोड़े उपदेश से ही वे ब्रह्मज्ञानयुक्त होगये इस प्रकार इस उपनिषद् में साधनों का वर्णन किया गया है ॥

इति भीमसेनशर्मकृतभाष्यसंयुता प्रश्नोपनिषत् समाप्तिमगमत् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाथर्ववेदीयमुण्डकोपनिषत्प्रस्तावः

यथा मूलवेदादितरास्तलवकाद्याः सर्वा उपनिषदः शिष्यप्रशिष्यपरम्परयातिपुरातनकालात्पठनपाठनव्यापारान्तर्गताः प्रवर्त्तन्ते। यथा च कठोपनिषदि यमनचिकेतसोः संवादो मूलम्। स च केनचिच्छिष्येण याथातथ्येन श्रुतोऽन्यस्मैस्वशिष्यायोपदिष्टस्तेन चान्यस्मै तेनाप्यन्यस्माइत्येवं बहुकालात्प्रवृत्तः केनचिच्छिष्येण पुस्तकाकारे संयोजितस्तेनैवोक्तम्—उशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस। नचेदं वचो यमनचिकेतसोरन्यतरस्य भवितुमर्हति। किन्तु ताभ्यामितरस्य तृतीयस्येदं कथनम्। तथैवास्यामपि बोध्यम्। कल्पारम्भे समुद्भूतेन ब्रह्मणा वेदपारगत्वात् सर्वविद्यासागरेणेयं वेदान्तविद्या मुण्डकोपनिषत्प्रतिपादिता पूर्वमथर्वणे स्वशिष्यायोपदिष्टा तेन चान्यस्मा अन्येन चान्यस्मै। एवं शिष्यप्रशिष्यपरम्परया प्रवृत्ता। अनन्तरं शौनकेनर्षिणाऽङ्गिरस्तो यथा प्राप्ता साऽन्यशिष्येण श्रुता पुस्तकाकारे संयोजिता च। तदुपक्रान्तमेवादौ मन्त्रत्रयमस्ति। नाम च तस्य नास्ति। नह्याधुनिकाइव पूर्वजा अपि रजोगुणग्रस्ताः स्वनाम्नः प्रचाराय प्रतिष्ठायै वा प्रयतितवन्तइति ते तु रजोगुणात्प्रति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्ठातो वा विषादिव विभ्यति स्म। तथा चोक्तं धर्मशास्त्रे—सम्मानाद्ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव। अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा। इत्यादिना प्रतीयते—पण्डिताः समदर्शिनो मानापमानादोनाम्। तस्मिन् काले सत्यपराः सत्यनिष्ठाः सत्यस्यैव प्रवर्त्तका विद्वांस आसन्। नासीत्तदानीमयं व्यापारो यन्निर्नामकान् जालग्रन्थान् वेदबाह्यान्निर्माय जगति कश्चिच्चालयेदिति यदर्थं पुस्तकेषु नामरक्षणावश्यकता स्यात्। अतोऽत्र पुस्तकनिर्मातुर्नाम नास्ति तेन निर्मात्राऽन्येषां स्वतः पूर्वजानां नामानि तु विद्याया गौरवदर्शनाय रक्षितानि। स काल इदानीं नास्ति यन्नामरक्षणमन्तरेण व्यवहारः सिध्येत्। यदि कश्चिच्छ्रेष्ठो विद्वान् स्वं नाम पुस्तकेन रक्षयेन्मूढश्च कश्चिन्निर्नामकं पुस्तकमालोक्य स्वंनामाङ्कितं कुर्यात्तदा नहि कश्चिन्नाम द्रष्टा श्रद्दधीत द्रष्टुं च नोत्सुकः स्यादित्यादीनि प्रयोजनानि प्रतिपक्षदूषणानि चोरसि कृत्य नाम रक्षणीयमिति। अत्र चोक्तप्रकारेण शौनकः प्रष्टा श्रोता च। अङ्गिरा वक्ताऽस्ति अत्रत्रीणिमुण्डकानि षट्खण्डाःसन्तिः विशेषस्तत्रतत्र वक्ष्यते॥

भाषार्थः—अब अथर्ववेदीय मुण्डकोपनिषद् का प्रारम्भ किया जाता है। जैसे मूल वेद से भिन्न तलवकारादि सब उपनिषद् शिष्य के शिष्य आदि परम्परा से बहुत प्राचीनकाल से पठन पाठन व्यापार में प्रवृत्त चली आती हैं जैसे कठोपनिषद् में यमाचार्य और नचिकेता ऋषिपुत्र का संवाद मूल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है वह संवाद किसी अन्य शिष्य ने यथावत सुनी और अन्य शिष्य को उपदेश किया उसने और को और ने और को इस प्रकार बहुत काल तक उस के पठन पाठन की प्रवृत्ति चली आई पीछे किसी शिष्य ऋषि ने पुस्तकाकार बना दिया उसीने यह कहा (उशन्हवै०) कि तपस्वी तेजस्वी वाजश्रवस ऋषि ने सर्ववेदस यज्ञ किया उनका पुत्र नचिकेता नामी था। यह वचन यमाचार्य वा नचिकेता में से किसी का नहीं हो सकता किन्तु उन दोनों से भिन्न तीसरे का है। वैसे ही इस मुण्डकोपनिषद् में भी जानना चाहिये इस वर्त्तमान कल्प के प्रारम्भ में ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न हुए वेद के पारगन्ता होने से सब विद्याओं के समुद्र ब्रह्मा जी ने यह मुण्डकोपनिषद् रूप वेदान्त विद्या अपने मुख्य शिष्य अथर्वा ऋषि के लिये पहिले उपदेश की उसने अन्य को और ने और को इस प्रकार शिष्य के शिष्य आदि की परम्परा से प्रवृत्त हुई। तिस पीछे शौनक ऋषि ने अङ्गिरा ऋषि से जैसे प्राप्त की उसी प्रकार अन्य शिष्य ने शौनक से सुना और पुस्तकाकार बना दी। उसी शौनक अङ्गिरा से भिन्न तृतीय ऋषि की ओर से आरम्भके तीन मन्त्र हैं। उसका नाम यहां नहीं लिखा गया। इसका कारण यह है कि अन्य ऋषियों का नाम तो उस ने लिखा अन्य की प्रशंसा में अच्छे पुरुषों को सङ्कोच नहीं होता किन्तु आनन्द वा उत्साह होता है परन्तु अपनी प्रशंसा स्वयं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने में सज्जन महात्माओं को अवश्य सङ्कोच होता है। वे लोग सत्त्वगुणी थे किन्तु आधुनिक कामी क्रोधी लोगों के तुल्य रजोगुण की रस्सी में वे नहीं फँसे थे इसी कारण वे अपने नाम और प्रतिष्ठा बढ़ाने के उपाय में नहीं लगे रहते थे किन्तु वे लोग रजोगुण के विचार और प्रतिष्ठा से विष के तुल्य डरते थे जैसा कि मनुस्मृति धर्मशास्त्रमें कहा है कि:—

(सम्मानाद्ब्रा०) स्वधर्मनिष्ठ वेदज्ञानी ब्राह्मण को चाहिये कि विष के तुल्य सम्मान से डरता रहे और अमृत के तुल्य अपमान की काङ्क्षा रक्खे इसका प्रयोजन यह है कि जो अपमान से बचता और सम्मान चाहता है वह धर्म अधर्म का विचार वा सत्य का वर्त्ताव कदापि नहीं कर सकता। इससे प्रतीत होता है कि पण्डित वे ही हैं जो मान अपमानमें समदर्शी हो। उस समय में सत्यपरायण सत्यनिष्ठ और सत्य की प्रवृत्ति करने वाले ही विद्वान् लोग होते थे। यह व्यवहार नहीं था कि विना नाम के वेद विरुद्ध जाल ग्रन्थ बनाकर कोई चला देवे जिसके लिये पुस्तकों में नाम रखने की आवश्यकता होती। इस लिये यहाँ पुस्तक बनाने वाले का नाम नहीं रखा गया पर पुस्तक कर्त्ता ऋषिने अपने से पूर्वज गुरु आदि के नाम विद्या का गौरव दिखाने के लिये रक्खे हैं। वैसा समय अब नहीं है जो नाम रक्खे विना व्यवहार सिद्ध हो यदि कोई श्रेष्ठ विद्वान् अपना नाम पुस्तक में न रक्खे और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई मूर्ख उस बिना नाम के पुस्तक में अपना नाम रखदे तो मूर्ख के नाम से कोई भी श्रद्धा न करे और न देखने को उद्यत हो इत्यादि प्रयोजन और विरुद्ध होने में ये ही दोष जानकर अब पुस्तकों में नाम अवश्य रखना चाहिये। इस मुण्डकोपनिषद् में उक्त प्रकार से शौनक पूछने वाले और श्रोता हैं तथा अङ्गिरा वक्ता हैं। इसमें तीन मुण्डक बड़े भाग हैं। और छः खण्ड हैं विशेष व्याख्या वहाँ२ की जायगी इति। प्रस्तावः॥

ह० भीमसेन शर्मणः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ मुण्डकोपनिषद्भाष्यारम्भः॥

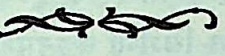

ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्य कर्त्ता भुवनस्य गोप्ता। स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह॥ १॥

कल्पारम्भे (विश्वस्य) सर्वस्य वर्णाश्रमसम्बन्धिधर्मस्य (कर्त्ता) प्रवर्त्तकः सम्पादकः (भुवनस्य, गोप्ता) उत्पन्नस्य सर्वसाधारणाज्ञप्राणिमात्रस्य कल्पान्तरीयशुद्धसंस्कारैरुद्भूत विद्याबुद्धिबलेनान्धं कूपादिवरक्षकः (देवानाम्) वेदविदां मध्ये सर्ववेदवित् (प्रथमः) आदिमोमुख्यो वा (ब्रह्मा) धर्मज्ञानब्रह्मवर्चसतपस्तेजःपरवैराग्यैश्वर्यादिभिः प्रवृद्धो महान् ब्रह्मा इति नाम्ना प्रसिद्धः पुरुषः (सम्बभूव) परमात्मनः स्वाभाविक्या प्रेरणयामैथुनसंयोगमन्तरेणोत्पन्न आसीत् (सः) ब्रह्मा (सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्) सर्वा विद्याः प्रतितिष्ठन्ति यत्र तां सर्वासां पराकाष्ठाम्। अनया ब्रह्मज्ञाने सति न किमपिज्ञातुमवशिष्यते ताम् (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मज्ञानसाधनोपायरूपां वेदान्तविद्याम् (ज्येष्ठपुत्राय) सर्वपुत्रेषु श्रेष्ठाय शुचये योग्यायाप्रमत्तये शिष्याय (प्राह)॥

भा०—कल्पारम्भेऽथर्ववेदान्मूलादाशयमाकृष्य मुण्डकना-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्नाप्रसिद्धा ब्रह्मविद्या ब्रह्मणा योग्याय स्वशिष्याय पूर्वमुपदिष्टा पश्चात् शिष्यप्रशिष्यपरम्परया प्रचारं प्राप्ता। कल्पारम्भाद्विद्याया मूलदर्शनेनास्याः प्राशस्त्यं सूच्यते। विश्वस्येति विशेषणम्। तस्यजगदिति विशेष्यं वक्तुमशक्यम्। कर्त्तुरपि कार्यान्तर्गतत्वात् वेदेष्वपि परब्रह्मणएव स्रष्टृत्वप्रतिपादनाच्च यथाथर्ववेदउच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वेदिविदेवा दिविश्रितः। इत्यादिबहुशः प्रतिपादितं येन स्पष्टं प्रतीयते यस्मादिदं सर्वं जगज्जायते स रचनात उच्छिष्यतेऽतएव तस्योच्छिष्टमिति नामास्ति ब्रह्मा च स्वयं रचनायामागतोऽस्ति। तस्मात्तस्य सृष्टिकर्त्तृत्वं नोपपद्यते। यदि कुत्राप्येतदुपपन्नं भवेत्तर्हि तत्र परब्रह्मण एव ब्रह्मानामावगन्तव्यं धीमद्भिः ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस ब्राह्म कल्प के आरम्भ में (विश्वस्य) सब वर्णाश्रम सम्बन्धी धर्म के (कर्त्ता) प्रवर्त्तक वा प्रचारक (भुवनस्य) उत्पन्न हुए सर्वसाधारण प्राणी मात्र के कल्पान्तर सम्बन्धी शुद्ध संस्कारों से प्रकट हुई विद्या और बुद्धि के प्रताप से कूप से अन्धे की तुल्य रक्षा करने वाले (देवानाम्) वेदवेत्ता अग्नि आदि ऋषियों के बीच (प्रथमः) मुख्य सर्ववेद पारगन्ता (ब्रह्मा) धर्म का पूर्णज्ञान वेद और तप संबन्धी तेज और परवैराग्य आदि ऐश्वर्य सम्पत्ति से बढ़े हुए ब्रह्मा नामी प्रसिद्ध पुरुष (सम्बभूव) परमात्मा की स्वाभाविक प्रेरणा से स्त्री पुरुष के मैथुन संयोग के विना ही उत्पन्न हुए

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सः) वे ब्रह्मा जी (सर्वविद्याप्रतिष्ठाम्) सब विद्याओं की जिसमें स्थिति हो अर्थात् इस वेदान्त विद्या में लिखे साधनों का यथावत् अनुष्ठान होने से ब्रह्मज्ञान होने पर जानना कुछ बाकी नहीं रह जाता उस (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मज्ञान के साधन उपाय रूप वेदान्त विद्या का (ज्येष्ठपुत्राय) सब पुत्रों में श्रेष्ठ शुद्धान्तः कारण योग्य अप्रमादी शिष्य को (प्राह) उपदेश किया ॥

भा०—इस वर्तमान ब्राह्मकल्प के आरम्भ में ब्रह्मा जी ने मूल अथर्ववेद का आशय लेकर मुण्डक नाम से प्रसिद्ध ब्रह्म विद्या का अपने मुख्य शिष्य अथर्वा ऋषि को पहले उपदेश किया पीछे शिष्य प्रशिष्य की परम्परा से इस ब्रह्मविद्या का प्रचार आज तक चला आता है कल्प के प्रारम्भसे इस विद्या का मूल दिखाने से इसका उत्तम होना प्रकट किया है। इस मन्त्र में विश्व शब्द विशेषण वाचक हैं उसका विशेष्य पद जगत् इसलिये नहीं माना जा सकता कि ब्रह्मा जी भी कार्य जगत के अन्तर्गत ही थे घटादि कार्य से कुलालादि कर्त्ता सदा भिन्न रहता है और ब्रह्मा जी को सृष्टि कर्त्ता मानने में वेद से भी विरोध आता है जैसे अथर्ववेद में लिखा है कि (उच्छिष्टाज्जज्ञिरे०) जो रचना से सदा पृथक रहता है रचना में कभी नहीं आता उसी परमेश्वर उच्छिष्ट नामीसे सूर्यादि सब जगत् उत्पन्न हुआ है इत्यादि अनेक प्रकारके कथन से स्पष्ट निश्चय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होजाता है कि जिससे यह सब जगत् उत्पन्न होता है वह रचना में कदापि नहीं आता इसी से उसका उच्छिष्ट नाम हुआ है। ब्रह्मा जी स्वयं रचना में शरीरधारी हुए इसलिए वे सृष्टि कर्त्ता नहीं हो सकते। यदि कहीं ऐसा ही प्रतीत हो कि ब्रह्मा ही सृष्टि कर्त्ता हैं तो वहाँ परब्रह्म का ही ब्रह्मा नाम बुद्धिमानों को जानना चाहिये ॥ १ ॥

अथर्वणे यां प्रवदेत ब्रह्माऽथर्वा तां पुरोवाचाङ्गिरे ब्रह्मविद्याम्। स भारद्वाजाय सत्यवाहाय प्राह भारद्वाजोऽङ्गिरसे परावराम् ॥ २ ॥

(ब्रह्मा) चतुर्वेदवक्ता (याम्, ब्रह्मविद्यायाम्) (अथर्वणे) उक्तशिष्याय [अथर्वशब्दः प्रकारद्वयेन व्युत्पादयितव्यः सचैकार्थएव। एकोऽदन्तोऽपरो नान्तः। थर्वतिश्चरतिकर्मा (चरसंशये) तत्प्रतिषेधः संशयप्रतिषेद्धाऽथर्वोऽथर्वावा] (प्रवदेत) प्रोक्तवान् भूते लिङ् (ताम्, अथर्वा) (अंगिरे) अङ्गिर्नामकाय स्वशिष्याय (पुरा, उवाच) अन्यशिष्येभ्यः पूर्वमधिकारिणंमत्वोपदिष्टवान् (सः) अंगीः (भारद्वाजाय) भारद्वाजगोत्रिणे (सत्यवाहाय) एतन्नाम्ने शिष्याय (प्राह) उक्तवान् (भारद्वाजः) (परावराम्) परस्मादवरेण पश्चादुद्भूतेन प्राप्तां विद्याम् (अंगिरसे) एतन्नाम्ने ऋषये प्राह। एवं परम्परया प्रचरिता ॥

भा०—सर्वविद्यानां वेदमूलकत्वात्सर्वविद्यामूलं परमा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मा तस्मादेव सर्वा विद्याः सर्वं च जगदुत्पन्नम्। अनन्तरं गुरुशिष्यपरम्परया कल्पावधि न्यूनाधिकभावेन सर्वा विद्याः प्रवर्त्तन्ते ॥

भाषार्थः—(ब्रह्मा) चारो वेद के वक्ता ब्रह्मा जी ने (याम्, ब्रह्मविद्याम्) जिस ब्रह्मविद्या का (अथर्वणे) उक्त शिष्य अथर्वा ऋषि के लिये (प्रवदेत) उपदेश किया (ताम्) उसी का (अथर्वा) अथर्वा ने (अङ्गिरे) अङ्गी नामक अपने शिष्य को (पुरा, उवाच) अन्य शिष्यों से पहिले उसको अधिकारी मान के उपदेश किया (सः) उस अङ्गी ने (भारद्वाजाय) भारद्वाजगोत्री (सत्यवाहाय) सत्यवाह नामी ऋषि को (प्राह) उपदेश किया और (परावराम्) पहिले २ पुरुषों से अगले २ को प्राप्त होती आई विद्या का(भारद्वाजः) भारद्वाजगोत्री सत्यवाहने (अङ्गिरसे) अङ्गिरा ऋषि को उपदेश किया। इसी प्रकार परम्परा से प्रचार होता आया ॥

भा०—सब विद्याओं का मूल वेद और वेद का भी मूल परमेश्वर है उसीसे सब विद्या तथा सब जगत् उत्पन्न हुआ है। इसके पीछे गुरु शिष्य की परम्परा से कल्पभर न्यूनाधिक भाव से सब विद्या प्रवृत्त रहती हैं। प्रलयानन्तर फिर भी उसी से चलती हैं उसका गुरु कोई नहीं वह गुरुओं का भी गुरु है ॥ २ ॥

शौनको ह वै महाशालोऽङ्गिरं विधिवदुपसन्नः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पप्रच्छ । कस्मिन्नुभगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति ॥ ३ ॥

अन्यः कश्चिच्छिष्यः प्राह (हवै) पुरातनकाले (महाशालः) महत्यः शाला गृहाणि प्रसादा यस्य स सर्व गृहाश्रमैश्वर्यसम्पन्नः (शौनकः) शुनकस्यापत्यम् (अङ्गिरसम्) सत्यवाहशिष्यं स्वस्याचार्यम् (विधिवत्) शास्त्रोक्तप्रकारेण (उपसन्नः) सान्निध्यं प्राप्तः (प्रपच्छ) पृष्टवान् । हे (भगवः) भगवन् विद्वयैश्वर्यसम्पन्न तपोधन ! (कस्मिन्) (विज्ञाते) (इदम्, सर्वम्, विज्ञातम्) भवति । अर्थात् तत् किमस्ति यस्य विज्ञानेन पुनरन्यस्य ज्ञातुमपेक्षा निवर्त्तते ॥

भावार्थः—अस्यामुपनिषदि शौनकर्षिकृत एकएवायं प्रश्नोऽस्यैव सर्वं व्याख्यानमुत्तररूपमेव विज्ञेयम् । तत्र च विज्ञानं विज्ञेयं सर्वंच किमस्तीति सर्वं पृष्टमेव विज्ञेयम् । साधनमन्तरेण विज्ञानमप्यसम्भवमिति साधनान्यपि वक्तव्यानि ३

भावार्थः—अन्य कोई शिष्य कहता है (ह, वै) पहिले समय में (महाशालः) बड़े २ ऊँचे अति सुन्दर घरों वाले गृहाश्रम के सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त (शौनकः) शुनक के पुत्र शौनक ऋषि ने सत्यवाह के शिष्य और अपने गुरु (अङ्गिरसम्) अङ्गिराऋषि के समीप (विधिवत्) शास्त्र की आज्ञा के अनुसार (उपसन्नः) जाकर (प्रपच्छ) पूछा कि हे (भगवः) विद्यारूप ऐश्वर्य से युक्त तप ही जिनका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धन है (कस्मिन, विज्ञाते) किस के जान लेने से (इदम् सर्वम्) यह सब (विज्ञातम्) (भवति) जान लिया जाता है अर्थात् वह कौन वस्तु है कि जिसके जान लेने से फिर अन्य के जानने की अपेक्षा नहीं रहती ॥

भा०—इस उपनिषद् में शौनकऋषिकृत एक यही प्रश्न है इसीका उत्तर रूप व्याख्यान इसमें है। उसमें ज्ञान, जानने योग्य वस्तु और सब क्या है इत्यादि सभी का पूछना आ जाता है और साधन के विना ज्ञान होना भी असम्भव है इस लिये साधन भी अवश्य कहने चाहिये ॥ ३ ॥

तस्मै सहोवाच द्वे विद्ये वेदितव्य इति ह स्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च ॥ ४ ॥

इदानीं साधनमुपक्रमते-(सः) अङ्गिराः (तस्मै) शौनकाय (होवाच) तात ! त्वया (द्वे, विद्ये, वेदितव्ये) (इति) इत्येवं प्रकारेण (ह, स्म) अतीतवृत्त स्मरणार्थौ निपातौ (यत्) विद्याद्वयम् (ब्रह्मविदः) वेदाशयज्ञा वेदपारगाः (वदन्ति) तयोर्नाम्नी (परा, च, एव अपरा, च) पराविद्या परमार्थसाधने मुख्यतयोपयुक्ता, अपरा संसारान्तर्गतधर्माधर्मादिविवेचने मुख्यतयोपयुक्ता ॥

भा०—जगति यावत्पदार्थजाते भेदद्वयं प्रत्येतव्यम्। परमपरं च तथैव ब्रह्मज्ञानसाधनेषु भेदद्वयमस्ति। तत्रपरम्परयाऽपरापि ब्रह्मज्ञानस्य साधनम्। साक्षात्तु परैव। पराविद्यायाश्च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षात्साधनमपरा विद्यास्ति । स्वस्वविषये द्वयोरपि प्राधान्यम् । नात्र परापरशब्दौ प्रधानाप्रधानवाचकौ स्तः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—अब ब्रह्मविद्या होने के साधनों के व्याख्यान का प्रारम्भ किया जाता है (सः) वे अङ्गिरा ऋषि (तस्मै) उन शौनक अपने शिष्य से (ह, उवाच) प्रकट बोले कि हे शिष्य तुमको (द्वे,विद्ये,वेदितव्ये) दो विद्या जानने चाहिये (इति) ऐसा विचार कर (ह,स्म) बहुत पुरातन काल से (यत्) जिन दो विद्याओं को (ब्रह्मविदः) वेद का आशय यथावत् जानने वाले वेद के पारगन्ता विद्वान् लोग (वदन्ति) कहते आये हैं उन दोनों विद्या के (परा, च, एव, अपरा,च) परा और अपरा नाम हैं परमार्थ के सिद्ध होने में मुख्य उपकार जिनसे हो वह परा और संसारान्तर्गत धर्म अधर्म के विवेचन में मुख्य उपयोगिनी अपरा विद्या है ॥

भा०—जगत् में जितने पदार्थ हैं उन सब में दो भेद निश्चय करने चाहिये । उसमें परम्परा से अपरा विद्या भी ब्रह्मज्ञान का साधन है परन्तु साक्षात्साधन परा ही है और परा विद्या का साक्षात्साधन अपरा विद्या है अपने२ विषय में दोनों की प्रधानता है किन्तु यहां पर अपर शब्द की गौणता वा किसी की मुख्यता दिखाने के लिये नहीं है ॥ ४ ॥

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति। अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते ॥ ५ ॥

(तत्र) तयोः परापरविद्ययोर्मध्ये (ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदः) इमे चत्वारोवेदाः, (शिक्षा, कल्पः, व्याकरणम्, निरुक्तम्, छन्दः, ज्योतिषम्) इमानिषडङ्गानि तत्र शिक्षाव्याकरणे पाणिनीये कल्पः पैङ्गीत्यादिविशेषणविशिष्टः। निरुक्तं यास्कमुनिप्रणीतं छन्दः पिङ्गलाचार्यकृतम्। ज्योतिषं सूर्यसिद्धान्तादिनाम्ना प्रसिद्धम्। उपलक्षणमेतदन्येषामार्षग्रन्थानाम्। तेन सर्वाणि पुस्तकान्यपरा विद्यास्थानानि (अथ) (यया) विद्यया (तत्, अक्षरम्) अविनाशि परोक्षं ब्रह्म (अधिगम्यते) प्राप्यते ज्ञायते च सा (परा) परमार्थसाधने मुख्यतयोपयुक्ता शमदमतितिक्षोपरतितपश्चरणयोगांगानुष्ठानादिरूपा परा विद्यास्ति ॥

भा०—सर्वविद्यामूलं वेदस्तस्मादेव व्याकरणनिरुक्तादिकं निस्सृतम्। सर्वविद्याविषयत्वाद्वेदस्य सर्वोपरिप्राधान्यं स्वस्वविषये चान्येषां व्याकरणादीनाम्। एवमुपनिषदां ब्रह्मज्ञानसाधनेषु प्राधान्यमायाति तानि साधनानि सूत्रभूतानि मूलवेदादुपादायोपनिषत्सु विस्तरेण वर्णितानि। नह्यतेन वेदादधिकं प्राधान्यमुपनिषदामुपपादनीयं ज्ञातव्यं वा वेदः पितृस्थान्यन्यानि पुस्तकानि च पुत्रस्थानीनि पुत्राच्च पितुः प्राधान्यं स्फुटमेव ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तत्र) उन दोनों परा अपरा विद्या के बोध (ऋग्वेदः यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्ववेदः,) ऋगयजुः साम अथर्व ये चार वेद (शिक्षा, कल्पः, व्याकरणम् निरुक्तम्, छन्दः, ज्योतिषम्) शिक्षा और व्याकरण अष्टाध्यायी ये पाणिनि ऋषि कृत, कल्प पिङ्गऋषि कृत, निरुक्त यास्क ऋषिका बनाया, छन्दः पिङ्गलाचार्य का बनाया, ज्योतिष सूर्यसिद्धान्तादि नाम से प्रसिद्ध ये वेद के छः अङ्ग इत्यादि सब अन्य भी ऋषि प्रणीत पुस्तक अपरा विद्या में हैं (अथ) और (यया) जिस विद्या से (तत् अक्षरम्) वह परोक्ष अविनाशी ब्रह्म (अधिगम्यते) प्राप्त होता वा जाना जाता है वह (परा) परमार्थ की सिद्धि में मुख्य कर उपयोगिनी, शम शान्ति, चंचलताका छूटना, दम इन्द्रियोंका वशमें होना, सहन शीलता वैराग्य, तप का सेवन और योग के यम नियमादि अङ्गों का अनुष्ठान रूप परा विद्या है ॥

भा०—सब विद्याओं का मूल वेद है उसी से व्याकरण निरुक्तादि भी निकले हैं वेद में सब विद्याओं का विषय होने से वेद सबसे मुख्य वा प्रधान है और व्याकरणादि अपने २ एक २ विषय में प्रधान हैं। उपनिषदों में ज्ञान के जो २ साधन कहे हैं उनका भी सूत्रमात्र मूल वेद से लेकर विस्तार से वर्णन किया गया है। इससे उपनिषदों की वेद से अधिक उत्तमता सिद्ध नहीं करनी चाहिये क्योंकि वेद पितृस्थानीय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा अन्य पुस्तक सब पुत्रस्थानीय हैं पुत्र से अधिक प्रधानता जैसे पिता की मानी जाती है वैसे सब ग्रन्थोंकी उत्पत्तिके हेतु पितृस्थानी वेद की सब उपनिषदादि से अधिक प्रधानता माननी चाहिये ॥ ५ ॥

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादं । नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ ६ ॥

पराविद्याधिगम्यमक्षरमविनश्वरं ब्रह्म कीदृगित्युच्यते— (यत्तत्) यत्तच्छब्दाभ्यामेव वक्तुमर्हम् । नहि केनचिद्धस्तामलकवद्द्रष्टुं योग्यम् (अद्रेश्यम्) अतीन्द्रियं ज्ञानेन्द्रियैरग्राह्यम् (अग्राह्य) कर्मेन्द्रियैः प्राप्तुमशक्यम् (अगोत्रम्) पित्रादिवंशविहीनम् (अवर्णम्) श्वेतपीतकृष्णादिवर्णरहितम् (अचक्षुःश्रोत्रम्) नास्ति चक्षुः श्रोत्रं च यस्य न चक्षुषा पश्यति न च श्रोत्रेण शृणोति यद्येवं स्यात्तर्हि तयोरभावेऽन्धो बधिरश्चापि भवेत् (तत्, अपाणिपादम्) उपलक्षणमेतदपि तेन कर्मेन्द्रियविवर्जितमिति निष्पन्नम् (नित्यम्) (विभुम्) विविधप्रकारेषु वस्तुषु भवति सत्तारूपेण तिष्ठति सर्वान् स्थापयति च (सर्वगतम्) परमाणुजीवात्मस्वपि व्याप्तम् (सुसूक्ष्मम्) अतिसूक्ष्मं नास्ति किमपि ततः सूक्ष्मम् । अतएव (तत् अव्ययम्) नास्ति व्ययो ह्रासो यस्य तत् (यत्) (भूतयोनिम्) भूतानामुत्पन्नानां पदार्थमात्राणां योनिं कारणं तस्मादेव सर्वमु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्पद्यते। यथा पितरावन्तरेणापत्यं न जायते तथैव सर्वस्य स एव माता पिता चास्ति। एवंभूतं परं ब्रह्म (धीराः) ध्यानशीला विद्वांसः (परिपश्यन्ति) परितः प्रत्यगात्मदृष्ट्या ध्याने नात्ममनःसंयोगमात्रेण साक्षात्कुर्वन्ति ॥

भा०—अपराविद्यास्थेषु सर्ववेदादिपुस्तकेषु कल्याणमार्गप्रधानस्य ब्रह्मज्ञानस्य साधनानि साङ्गोपाङ्गानि वर्णितानि तेषां शास्त्राणां ज्ञानं ब्रह्मचर्याद्याश्रमनियमानुष्ठानपुरस्सरं सम्पादयितुं सुलभम्। तत्र च श्रोत्रेणविद्यानां श्रवणं नेत्रेण पुस्तकादिषु दर्शनं वाचा कथनं च कर्त्तव्यम्। एवमेतस्यामपराविद्यायां निष्पन्नायां तत्साहाय्येन धारणाध्यानसमाधिरूपां पराविद्यां विद्वानन्त्याश्रमे सेवेत। इत्येवं प्रकारेणादृश्यादिरूपं ब्रह्म साक्षाज्ज्ञातुं शक्यम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—परा विद्या से प्राप्त होने योग्य अविनाशी ब्रह्म कैसा है सो कहते हैं (यत्, तत्) जो वह इत्यादि प्रकार से ही जिसका वर्णन कर सकते हैं कोई हाथ में आमले के तुल्य प्रत्यक्ष ब्रह्म को नहीं देख सकता (अदृश्यम्) जो ज्ञानेन्द्रियों से नहीं जाना जाता (अग्राह्यम्) हाथ पांव आदि से पकड़ने में नहीं आता (अगोत्रम्) जिसका गोत्र अर्थात् कोई कुल नहीं (अवर्णम्) जिसमें काला पीला श्वेत आदि रंग नहीं (अचक्षुःश्रोत्रम्) आँख कान जिसके नहीं जो न आँख से देखता न कान से सुनता है। यदि आँख आदि से देखता हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो आँख कान के न रहने पर अन्धा और बहिरा भी होना चाहिये (तत्, अपाणिपादम्) वह हाथ पाँव आदि कर्मेन्द्रियों से रहित है (नित्यम्) नित्य (विभुम्) सब प्रकार के पदार्थों में सत्तारूप से स्थित और सब को अपनी सत्ता से स्थित रखने वाला (सर्वगतम्) परमाणु और जीवात्मा में भी व्याप्त इसी से (सुसूक्ष्मम्) अतिसूक्ष्म जिससे परे कोई सूक्ष्म नहीं (तत्, अव्ययम्) वह अव्यय है जिसमें कभी कुछ घटता नहीं (भूतयोनिम्) उत्पन्न हुए सब वस्तुओं का कारण है उसीसे सब उत्पन्न होता है जैसे पिताके बिना पुत्र नहीं होता वैसे ही सब के माता पिता का भी माता पिता है इस उक्त प्रकार के परमात्मा का (धीराः) ध्यानशील विद्वान् लोग (परिपश्यन्ति) भीतरी विचार वा ध्यान से आत्मा मन के संयोग से ही साक्षात् ज्ञान करते हैं ॥

भा०—अपरा विद्या के अन्तर्गत सब वेदादि के पुस्तकों में जो २ कल्याणके मार्ग कहे हैं उनमें मुख्य ब्रह्मज्ञानके साधन भी साङ्गोपाङ्ग वर्णन किये गए हैं उन शास्त्रों का ज्ञान ब्रह्मचर्यादि आश्रम के नियमोंका अनुष्ठान पूर्वक सिद्ध होना सुलभ है। वहाँ कान से शास्त्रों का सुनना आँख से पुस्तकादि देखना और वाणी से कहना वा घोखना आदि प्रायः बाह्य क्रिया होने से अपरा विद्या है इस प्रकार अपरा विद्या की सिद्धि अर्थात् शास्त्र ज्ञान होने पर उसी की सहायता से धारणा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान और समाधिरूप परा विद्या का विद्वान् पुरुष चौथे संन्यासाश्रम में मुख्य कर सेवन करे इस प्रकार परा विद्यासे अदृश्यादि रूप परमेश्वरका साक्षात् ज्ञान हो सकता है ॥ ६ ॥

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च यथा पृथिव्या-
मोषधयः सम्भवन्ति । यथा सतः पुरुषात्केशलो-
मानि तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम् ॥ ७ ॥

पूर्वस्मिन् मन्त्रे भूतयोनिमित्युक्तम् । तस्येदं विशिष्टं व्याख्यानम् । किंभूतं जगतः कारणं ब्रह्मेत्युच्यते-(यथा) (ऊर्णनाभिः) ऊर्णा जालनिर्माणकारणं नाभौ यस्य स लूताकीटः (सृजते) जालतन्तून् स्वभावेनैव निर्मिमीते प्रसारयति (गृह्णतेच) स्वात्मनि कूर्मोङ्गानीव संकोचयति (यथा) (पृथिव्याम्) आधाररूपायां धरायां सत्यामेव स्वस्वबीजोपादानात् (ओषधयः) यवाद्याः (सम्भवन्ति) उत्पद्यन्ते (यथा) च (सतः) विद्यमानस्य जीवात्मनः (पुरुषात्) शरीरात्यूर्णाद्यौवनावस्थादेव (केशलोमानि) श्मश्रुशस्पाद्यानि सम्भवन्ति । (तथा) सत एव (अक्षरात्) अविनाशिनः परब्रह्मणः (इह) संसारे (विश्वम्) वस्तुमात्रं स्वस्वकार्य धर्मेण भिन्नं (सम्भवति) उत्पद्यते ॥

भा०—ब्रह्मणउपादानकारणप्रतीकाराय दृष्टान्तत्रयम् । नहि दृष्टान्तत्रये चेतनं क्वापि जडस्योपादानं प्रतिपाद्यते किन्तु जड-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतनसंयोगादेव ज्ञानपूर्विका सृष्टिरिति प्रतिपादयितुं दृष्टान्ताः। यथोर्णनाभिस्थो जीवात्मा प्रकृतिरूपात्स्वशरीरस्थात्कारणाज्जडकार्यं तन्तुरूपं विस्तारयति नतु जीवात्मा तस्योपादानम्। यथौषध्यादिषु पृथिव्युपादानं कृषको निमित्तं तथा च केशादिषु शरीरमुपादनं जीवात्मा च निमित्तमस्ति सर्वत्रैव जडचेतनसंयोगात्सृष्टिरिति सिद्धान्तः। तथैवेहापि बोध्यम्। सर्गारम्भे परमात्मा जडप्रकृत्या संयुज्यते तस्माज्जडोपादानात्सर्वं कार्यं जगन्निर्मिमीते। ये चात्र चेतनब्रह्मोपादानात्सृष्टिं मन्यन्ते तैर्दृष्टान्तेऽपि चेतनोपादानाज्जालौषधिकेशादिकार्यं दर्शनीयम्। नोचेद्ब्रह्मैवास्योपादानमिति विवादान्मौनैर्भवितव्यम्। स्पष्टमत्र ब्रह्मोपादानवादिनः प्रत्युच्यन्ते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—इससे पूर्व मन्त्र में परमेश्वर को सर्व जगत् का कारण कहा है उसका विशेष व्याख्यान इस मन्त्रसे करते हैं कि जगत् का कारण ब्रह्म कैसा है:—(यथा) जैसे (उर्णनाभिः) जाला बनाने का उपादान कारण जिस के मध्य शरीर नाभि में हो ऐसा मकरी नामी कीड़ा (सृजते) जालरूप सूतों को स्वभाव से ही बनाता फैलाता है (च) और (गृह्णते) कछुआके तुल्य अपने शरीर में फिर लय कर लेता है। (यथा) जैसे (पृथिव्याम्) आधार रूप पृथिवी के होने पर ही अपने २ उपादान कारण बीज से (ओषधयः) जौ आदि शाखारूप औषधियाँ (सम्भवन्ति) उत्पन्न होती हैं। और (यथा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे (सतः) विद्यमान जीवात्मा के (पुरुषात्) पूर्ण युवावस्था में स्थित शरीर से ही (केशलोमानि) दाढ़ी मूँछ और गुप्त केशलोमादि उत्पन्न होते हैं (तथा) वैसे ही विद्यमान (अक्षरात्) अविनाशी परब्रह्मके सत्तारूप होने से इस जगत् में (विश्वम्) अपने २ कार्य धर्मसे भिन्न सब वस्तु मात्र (सम्भवति) उत्पन्न होता है ॥

भा०—इस मन्त्र में जगत् का उपादान कारण ब्रह्म नहीं इस बात की सिद्धि के लिये तीन दृष्टान्त हैं क्योंकि इन तीनों दृष्टान्त में से किसी में जड़ का उपादान चेतन नहीं कहा गया । किन्तु जड़ चेतन के संयोग से ही ज्ञानपूर्वक सृष्टि होती है इस बात का प्रतिपादन करने के लिये दृष्टान्त दिये गये हैं। जैसे मकरी के शरीर में रहने वाला जीवात्मा प्रकृति रूप अपने शरीरस्थ कारण से तन्तु सूत्र जालारूप जड़ कार्य का विस्तार करता है किन्तु जीवात्मा स्वयं जालारूप नहीं बन जाता। ओषधि आदि पृथिवी के विकारों में बीज और पृथिवी उपादान और किसान निमित्त कारण है। तथा केशादि के निकलने में शरीर उपादान और जीवात्मा निमित्त कारण है। सर्वत्र ही जड़ चेतन के संयोग से ज्ञानपूर्वक सृष्टि होती है यही सिद्धान्त है वैसे ही यहाँ भी जानना चाहिये सृष्टि के आरम्भ में परमेश्वर जड़ प्रकृति के साथ संयुक्त होता है उसी जड़ उपादान से सब जड़ कार्य को रचता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और जो इस वेदान्तशास्त्र में ब्रह्मरूप उपादान से सृष्टि मानते हैं उनको उचित है कि दृष्टान्त में भी जाला औषधि और केशादि कार्यों को चेतन उपादान से उत्पन्न हुए दिखावें और ऐसा न कर सकें तो वे लोग भी ब्रह्म ही जगत् का उपादान कारण है ऐसे कहने से मौन हों। क्योंकि यहाँ ब्रह्म को उपादान कहने वालोंके मत का खण्डन स्पष्ट निकलता है ॥ ७ ॥

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते। अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ॥८॥

इदानीं सृष्टेरुत्पत्तिप्रकारं वक्तुमारभतेः-(तपसा) ज्ञानेनेक्षणेन रचनप्रकारपर्यालोचनेन [यस्य ज्ञानमयं तप इति वक्ष्यमाणप्रामाण्यात्तपः-शब्देन ज्ञानमुच्यते] (ब्रह्म) आत्मस्वरूपम् (चीयते) वृद्धं भवति [तेनैव तस्य ब्रह्मेति नाम जायते। नानेन विकारित्वं तस्योपपाद्यतेऽपितु ज्ञानेन सम्यगीक्षणपूर्विका सृष्टिरिति प्रतिपाद्यते] (ततः) तस्मादीक्षणकर्तुः परमात्मनईक्षणात् (अन्नम्) अद्यते सामान्येन सर्वप्राणिभिस्तदव्यक्तमाकाशस्तमोनुदः प्रकाशो वा (अभिजायते) प्रकटी भवति [तस्यैव तैत्तिरीयोपनिषदि-तस्मादेतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतइत्याकाशत्वेन वर्णनम्। प्रादुरासीत्तमोनुदइति च मनुस्मृतौ। अव्यक्ताकाशमन्तरेण कश्चिदपि प्राणी जीवितुमशक्तइति मत्वा तस्यान्नत्वमुच्यते] तस्मात् (अन्नात्) अ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्तात् (प्राणः) महत्तत्त्वमपसंज्ञकमुपजायते प्रकटं भवति [प्रकृतेर्महानिति सांख्ये । अपएव ससर्जादाविति मनुस्मृतौ चास्यैव वर्णनम्] तस्मान्तरम् (मनः, अन्तःकरणरूपमुत्पद्यते [एतस्यैव महतोऽहङ्कारइति सांख्ये वर्णनम् । मनोबुद्धिचित्ताहङ्कार शब्दैरन्तःकरणमेव यथाशास्त्रमुच्यते] तदनन्तरम् [सत्यम्] सति विद्यमाने साधु [प्रकृतिरूपत्वान्नित्यं विद्यमानं पञ्चतन्मात्रं सूक्ष्मभूतपञ्चकम् । तथा च सांख्यवादिभिरष्टौ प्रकृतयः षोडशविकारा स्वीकृताः । तत्र प्रकृतिर्महानहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीत्यष्टौ प्रकृतयः । तेषां स्वरूपेण सदा विद्यमानत्वात् प्रकृतित्वम् । उत्पत्तिकथनं प्रादुर्भावमात्रं नतु तेषु कश्चिद्विकारी भवति दुग्धाद्दधिवत्] ततः सर्वे (लोकाः) पृथिव्यादयः स्थूला दृष्टिपथगताः प्राणिनिकायाश्चोत्पद्यन्ते तेषु मनुष्यादिप्राणिषु सत्स्वेव कर्माणि वर्णाश्रमभेदविधायकानि संजातानि । तेषु (कर्मसु) निमित्तभूतेषु सत्सु (अमृतम्) कर्मफलं कल्पितं भवति [कर्माणि प्रवाहेण नित्यानीति तेषां फलमपि सदा विद्यतइत्यमृतत्वमुच्यते] ॥

भा०—ब्राह्मकल्पारम्भे प्रलयानन्तरमादौ प्रकाश उत्पद्यते तस्यैवाकाशइत्यपि नाम जायते तस्मिन्नेव सर्वे प्राणिनः स्थितिकाले प्राणन्ति । तदुत्पत्तेः पूर्वं ब्रह्म ज्ञानेन रचनप्रकारकालोचनेन संयुज्यते । तदेव मनुस्मृतावप्युक्तम् । ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम् । महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्तमोनुदः । ज्ञानप्रकाशावन्तरेण किमपि कार्यं भवितुमशक्यम् । अस्मिन् मन्त्रे सत्यपर्यन्ताः प्रकृतयः प्रदिपादिताः । ननु तेषां दुग्धाद्दधिवद्विकारभावो विवक्षितः किन्तु तेषामाबिर्भावे पूर्वं पूर्वं कारणं परं परं प्रकृतिरूपमेव कार्यम् । नहि घटस्य मृत्स्नेव सर्वस्य कारणमपितु यस्मिन्सति यस्य भावो यस्मिन्नसति यस्याभावइति कारणस्य सामान्यं लक्षणम् । तच्च न क्वापि व्यभिचरति । नहि साधर्म्येण पृथिव्या उपदानमापो भवितुमर्हन्ति किन्तु सत्सूदकेषु पृथिव्याः स्थितिर्नासत्सु तद्वदिहापि ब्रह्मादीनामुत्तरोत्तरस्य कारणमिति विद्वद्भिरनुसन्धेयम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—अब सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार कहने का प्रारम्भ करते हैं (तपसा) रचना का प्रकार जानने से [अगले नवमें मन्त्र में कहा है कि जिस का तप ज्ञानस्वरूप ही है इसलिये यहाँ तप शब्द से ज्ञान लिया है] (ब्रह्म) परमात्मा (चीयते) सदा सबसे बड़ा माना जाता है इसीलिये उस का ब्रह्म नाम है [इससे परमेश्वर का बढ़ना घटना नहीं कहा किन्तु ज्ञान से सम्यक् विचारपूर्वक सृष्टि कहने में तात्पर्य है] (ततः) उस ईक्षण कर्त्ता परमात्मा के विचार करने पश्चात् (अन्नम्) सब प्राणियोंकी स्थितिका हेतु जो श्वास द्वारा प्रतिक्षण खाया जाता है वह अन्धकार नाशक प्रकाश वा आकाश प्रकट हुआ [उसी का तैत्तिरीयोपनिषद् में उस पर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्मा से आकाश हुआ इस प्रकार आकाश नाम से वर्णन है और प्रलय के पश्चात् अन्धकार नाशक प्रकट हुआ यह मनुस्मृति में कहा है। अव्यक्तरूप आकाश के विना कोई भी प्राणी जी नहीं सकता ऐसा मानकर उसको अन्न कहा गया है] उस (अन्नात्) अव्यक्तरूप अन्न से (प्राणः) महत्तत्त्व अप् नामक प्रकट हुआ [प्रकृति से महान् हुआ ऐसा सांख्य में और प्रारम्भ में अप् नाम जल को प्रकट किया यह मनु० में कहा है] तिस पीछे (मनः) अन्तःकरणरूप प्रकट हुआ [इसी का महान् से अहङ्कार हुआ इस प्रकार सांख्य में वर्णन है। मन बुद्धि चित्त अहङ्कार शब्दों से भिन्न २ शास्त्रों में एक अन्तःकरण ही कहा गया है] तिस पीछे (सत्यम्) विद्यमान रहने वाले पदार्थों में उत्तम [प्रकृति के अन्तर्गत] होने से नित्य विद्यमान पाँच सूक्ष्मभूत [अर्थात् सांख्य वादी लोगों ने आठ प्रकृति और सोलह विकार माने हैं। उनमें प्रकृति, महान्, अहङ्कार, और पाँच सूक्ष्मभूत ये आठ प्रकृति हैं वे स्वरूप से सदा विद्यमान रहते हैं इससे प्रकृति माने जाते हैं। और उत्पत्ति कहना प्रकटता दिखाने मात्र के लिये है किन्तु दूध से दही के तुल्य उनमें कोई विकारी नहीं होता] तिस पीछे सब (लोकाः) पृथिव्यादि स्थूल दृष्टि में आने वाले लोक लोकान्तर और प्राणियों के शरीर उत्पन्न हुए उन मनुष्यादि प्राणियों के होते ही वर्णाश्रम भेद के सिद्ध करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले कर्म हुए (कर्मसु) कर्मों के होने पर (अमृतम्) कर्म का फल हुआ [कर्म प्रवाह से नित्य हैं इसीसे उनके फल भी प्रवाह से सदा विद्यमान रहते हैं इस लिये फल को अमृत कहा है] ॥

भा०—ब्रह्म कल्प के प्रारम्भ में और प्रलय की समाप्ति में प्रथम प्रकाश उत्पन्न होता है वह प्रकाश भौतिक नहीं किन्तु परमेश्वरकी ओरसे होता है उसीकी आकाश संज्ञा इसलिये मानी जाती है कि (काशृदीप्तौ) धातु से आकाश शब्द (प्रकाश अर्थ का वाचक) बनता है उसी आकाश में सब प्राणी सृष्टि की वर्त्तमान दशा में श्वास लेते हैं जिस से सबका जीवन रहता है इस प्रकार जीवनका हेतु मानकर आकाश को अग्नि कहा गया। उस की प्रकटता से पूर्व रचने के प्रकार का विचार करना रूप ज्ञान से ब्रह्म संयुक्त होता है यही बात मनु स्मृति में भी कही है कि प्रलय के पश्चात् स्वयमेव अन्धकार का नाशक प्रकाश परमात्मा की सत्ता से प्रकट हुआ। क्योंकि पहिले ज्ञान और प्रकाश न हों तो कोई कार्य जगत् का चल नहीं सकता। इस मन्त्र में सत्य शब्द तक प्रकृतियाँ कहीं किन्तु उनका दुध से दही के तुल्य विकार नहीं होता अर्थात् उन प्रकृतियों की प्रकटता में पूर्व २ कारण और पर पर प्रकृति रूप ही कार्य है। कारण शब्द का भी यह अर्थ नहीं है कि जैसे घड़े का कारण मिट्टी है वैसे ही सब का का-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रण माना जावे किन्तु जिसके होने से जो वस्तु हो तथा जिस के न रहने से जो न रहे वह भी कारण हैं यह कारण का सामान्य लक्षण है यह कहीं व्यभिचारी नहीं होता। अर्थात् पृथिवीका उपादान कारण जल कदापि नहीं हो सकता किन्तु जल की विद्यमानता में ही पृथिवी ठहर सकती है न होने पर नहीं वैसे यहां भी जानो। ब्रह्म आदिमें उत्तर २ का पूर्व २ कारण है सो विद्वानों को इसका अनुसन्धान करना चाहिये।

यःसर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयंतपः। तस्मादेतद् ब्रह्म नामरूपमन्नं च जायते ॥ ९ ॥

(यः) परमात्मा पराविद्यया योगिभिः साक्षात् क्रियते (सर्वज्ञः) सर्वं याथार्थ्येन जानाति न किमपि यस्य ज्ञातुमवशिष्यते (सर्ववित्) सर्वं वस्तुमात्रं कार्यकारणद्वयमपि विन्दत्याप्नोति यद्वा सर्वस्मिन्स्वसत्तया विद्यते यद्वा सर्गारम्भे सर्वं रचनप्रकारं विन्तआलोचयतीति सर्ववित् [नात्र वेत्तेः क्विप् कर्त्तुं युक्तः। तदर्थस्य सर्वज्ञशब्देनोक्तत्वात्। शङ्करस्वामिना च वेत्तेः क्विब् विहितस्तत्समीचीनं न प्रतिभाति सर्वशब्देन सामान्यविशेषयोरुभयोरपि ज्ञानसम्भवात्] (यस्य) (ज्ञानमयम्) ज्ञानस्वरूपम् (तपः) प्रतापः प्रकाशो वास्ति (तस्मात्) निराकारान्निर्विकारान्निर्विकल्पान्निरामयाच्छुद्धाच्छान्तात्सनातनात् (ब्रह्म) वेदस्तस्मिन् (नाम) पृथिव्यादीनां संज्ञा तेषां च (रूपम्) स्थूलरूपं कार्यं तस्यां पृथिव्याम् (अन्नम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओषधिफलम् (च) अपि (जायते) उत्पद्यते ॥

भा०—पूर्वमन्त्रे यः सृष्टेः क्रम उक्तस्तेनैव क्रमेण रूपमन्नं चोत्पन्नम् । कार्यसृष्टेः प्राक् वेदे सर्वकार्यवस्तूनां नामान्यासंस्तदनुकूलान्येव सर्ववस्तून्युत्पन्नानीत्यनेन सूच्यते ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यः) जो परमात्मा परा विद्या द्वारा योगी लोगों से प्रत्यक्ष होता (सर्वज्ञः) सबको यथार्थ रूप से जानता है जिसके जाननेको कुछ बाकी नहीं रह जाता (सर्ववित्) सब कार्य कारणरूप वस्तु मात्र को प्राप्त होता अथवा अपनी सत्ता से सबमें विद्यमान अथवा सृष्टि के आरम्भ में सब रचना के प्रकार को विचारता है [यहां स्वामी शङ्कराचार्यजी ने ज्ञानार्थ विद्धातु से क्विप् प्रत्यय किया है सो ठीक नहीं प्रतीत होता क्योंकि वह अर्थ सर्वज्ञ शब्द से आगया तथा सब शब्द से सामान्य विशेष दोनों प्रकारका जानना भी आ सकता है] (यस्य) जिसका (ज्ञानमयम्) ज्ञान स्वरूप ही (तपः) प्रताप वा प्रकाश है (तस्मात्) उस निराकार निर्विकार निर्विकल्प निरामय शुद्ध सनातन परमात्मा से (ब्रह्म) वेद प्रकट हुआ उस वेद में (नाम) पृथिव्यादि वस्तुओंके नाम (रूपम्) पीछे स्थूलरूप कार्य वस्तु और उस पृथिव्यादि स्थूलरूप में (अन्नम्) ओषधियों का फल अन्न (च) भी (जायते) प्रकट हुआ ॥

इति प्रथममुण्डके प्रथमः खण्डः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ प्रथममुण्डके द्वितीयः खण्डः ।

तदेतत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि । तान्याचरथ नियतं सत्यकामा एष वः पन्थाः स्वकृतस्य लोके ॥१॥

अथ द्वितीयखण्डेऽन्तःकरणशुद्धेः परमं कारणमुपदिश्यतेः—हे (सत्यकामाः) सत्यो मनसः सङ्कल्परूपः कामो येषां तत्संबुद्धौ ब्रह्मजिज्ञासवो दुःखान्मुमुक्षवो जनाः (यानि) (कर्माणि) सत्यभाषणादीन्यग्निहोत्रादीनि च (कवयः) क्रान्तदर्शना वेदाशयज्ञानेऽव्याहतबुद्धयो विद्वांसः ऋषयः (मन्त्रेषु ऋग्वेदादिषु (अपश्यन्) ज्ञानचक्षुषा दृष्टवन्त इदमित्थं कर्त्तव्यमिति (तानि) कर्माणि (त्रेतायाम्) त्रयीविद्यायां त्रिषु वेदेषु (बहुधा) बहुप्रकारैः (सन्ततानि) विस्तृतानि (तानि) यूयम् (नियतम्) निश्चयेन (आचरथ) (तदेतत्सत्यम्) ईश्वराज्ञानुष्ठानरूपत्वादेतत्सत्यं वैदिककर्मानुष्ठाने न किमपि मिथ्यात्वफलं भवितुमर्हति सत्यमेव तस्य फलं भवति अतएव (वः) युष्माकम् (स्वकृतस्य) स्वपुरुषार्थेन निष्पादितस्य कर्मणः (एषः) सुखभोगफलरूपः (पन्थाः) मार्गः (लोके) दृष्टिपथगते जगत्यस्ति ॥

भा०—मनुष्येणान्तःकरणशुद्धये वेदोक्तेश्वराज्ञारूपस्य सत्यभाषणाग्निहोत्रादिकर्मणो यथावदनुष्ठानं कर्त्तव्यं तेन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तःकरणशुद्धौ सत्यां दर्पणे रूपमिव ब्रह्मणो ज्ञानं सुलभं भवति। नहि वैदिककर्मसेवी कश्चिदुदुर्गतिं प्राप्तुमर्हति ॥१॥

भाषार्थः—अब द्वितीय खण्ड में अन्तःकरण की शुद्धि के मुख्य उत्तम कारण का उपदेश किया जाता है—हे (सत्यकामाः) सत्य संकल्प अर्थात् सर्वोत्तम ब्रह्मज्ञान की कामना रखनेवाले जिज्ञासु वा दुःखसे छूटने की इच्छा वाले लोगों (यानि) जिन (कर्माणि) सत्यभाषणादि वा अग्निहोत्रादि कर्मोंको (कवयः) वेद के तात्पर्य जानने में जिनकी बुद्धि रुकती नहीं अर्थात् बराबर चलती है वे ऋषि विद्वान् लोग(मन्त्रेषु) ऋग्वेदादि वेद के मन्त्रों में (अपश्यन्) ज्ञानदृष्टि से देखते आये हैं कि यह कर्म इस प्रकार करना चाहिये (तानि) वे कर्म (त्रेतायाम्) त्रयीविद्यारूप तीनों वेदों तथा उन २ के ब्राह्मणों में (बहुधा) बहुत प्रकारों से (सन्ततानि) विस्तृत हैं (तानि) उनका तुम लोग (नियतम्) निश्चय से (आचरथ) आचरण वा सेवन करो (तदेतत् सत्यम्) ईश्वर की आज्ञारूप होने से यही सत्य है क्योंकि वैदिक कर्म के सेवन से कुछ मिथ्या फल नहीं हो सकता किन्तु उसका फल सत्य ही है। इसी से (वः) तुम्हारे (स्वकृतस्य) पुरुषार्थ से सिद्ध हुए कर्म का (एषः) यह सुख भोग फल रूप (पन्थाः) मार्ग (लोके) प्रत्यक्ष संसार में है ॥

भा०—मनुष्य को योग्य है कि अपने अन्तःकरण की शुद्धि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये वेदोक्त ईश्वर की आज्ञारूप सत्य भाषणादि वा अग्निहोत्रादि कर्म का यथावत् सेवन करे। उससे अन्तःकरण की शुद्धि होने पर दर्पण में रूप दीख पड़ने के तुल्य परमेश्वर का ज्ञान सुगम हो जाता है क्योंकि वैदिक कर्म का सेवन करने वाला कोई दुर्गति वा दुर्दशा को प्राप्त नहीं हो सकता ॥ १ ॥

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने । तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेच्छ्रद्धया हुतम् २

अग्निहोत्रादिर्विधियज्ञः कथमनुष्ठेय इत्यभिधीयते-(यदा) (हव्यवाहने, समिद्धे) हव्यं घृतादिकं वायौ सूर्यरश्मिषु च वोढुं प्रसारयितुं शीले वह्नौ (हि) निश्चयेन (अर्चिः) ज्वाला (लेलायते) उत्तिष्ठते सम्यक् प्रज्वलति (तदा) तस्मिन् काले (आज्यभागौ) (अन्तरेण) आज्यभागाहुतिद्वयानन्तरम्। अन्तरान्तरेण युक्तइतिद्वितीया। (श्रद्धया) (हुतम्) हवनं यथा स्यात्तथा (आहुतीः) (प्रतिपादयेत्) प्रक्षिपेत्। श्रद्धया हुतमित्युपलक्षणं विधिवत्कर्त्तव्यतायाः ॥

भा०—अग्नये सोमायचेति द्वेआहुती सर्वेषु श्रौतस्मार्त्तहोमयज्ञेष्वाज्यभागनामिके प्रधानयागात्पूर्वं विधीयेते। तयोः प्रथमा कुण्डस्योत्तरपूर्वार्द्धे प्रज्वलितेऽग्नौ द्वितीया च दक्षिणपूर्वार्द्धे प्रक्षेप्या। तयोर्मध्येऽन्याः प्रज्वलितेऽग्नौ प्रेक्षप्याः। अप्रज्वलितेऽग्नावाहुतयो न देयाः। अशुचिनाऽश्रद्धयाऽविधिना च होमो न कार्यः किन्तु—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अफलाकाङ्क्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते।
यष्टव्यमेवेतिमनः समाधाय स सात्त्विकः ॥

इति भगवद्गीतासूक्तप्रकारेण विदुषा सात्त्विको यज्ञोऽनुष्ठातव्यः। तत्र च श्रद्धया वेदमन्त्रपाठेन परमात्मनो गुणानुवादः शुभस्य प्रार्थना च कार्या येनान्तः करणशुद्धिर्मध्यमन्त्रानुष्ठानेन मेधाप्राप्तिश्च स्यात्। तेनात्मदर्शनयोग्यतापि सुलभा भवतीत्याशयः ॥ २ ॥

भाषार्थः—अब अग्निहोत्रादि विधियज्ञका सेवन किस प्रकार करना चाहिये सो कहा जाता है (यदा) जब (हव्यवाहने) होमके योग्य घृतादि पदार्थका वायु मंडल वा सूर्यकी किरणों में पहुँचाने वाला अग्नि (समिद्धे) अच्छे प्रकार जलने लगे और (हि) निश्चय कर अग्नि की (अर्चिः) ज्वाला लपट (लेलायते) उठने लगे (तदा) तब (आज्यभागौ) आज्यभाग नामक दो आहुतियों के (अन्तरेण) पश्चात् (श्रद्धया) श्रद्धा से (हुतम्) होम जैसे हो वैसे (आहुतीः) अग्नि में आहुतियों को (प्रतिपादयेत्) छोड़े। श्रद्धा पूर्वक होम हो इसके कहने का तात्पर्य यह है कि विधिपूर्वक होम करे ॥

भा०—अग्नि और सोम के लिये दो आज्यभाग नामक आहुति सब श्रौतस्मार्त्त होम यज्ञों के आरम्भ में प्रधान याग से पूर्व देनी चाहिये ऐसा विधान शास्त्रों में किया गया है उन में से पहिली आहुति कुण्ड के उत्तर पूर्वार्द्धस्थ प्रज्वलित अग्नि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में और दूसरी कुण्डके दक्षिण पूर्वार्द्ध में छोड़नी चाहिये और उन दोनोंके बीचमें प्रज्वलित अग्नि पर उस २ कर्म में विधान की हुई अन्य आहुति छोड़नी चाहिये। अप्रज्वलित अग्नि में आहुति न देना चाहिये। मनुष्य को उचित है कि अपवित्र हुआ श्रद्धा रहित विधान से विरुद्ध होम न करे किन्तु फल की काङ्क्षा छोड़ कर शास्त्र में लिखे अनुसार यज्ञ करना हमारा काम है ऐसा मनमें निश्चय करके किया यज्ञ सत्त्वगुण सम्बन्धी कहाता है इस प्रकार भगवद्गीता में कही रीति से विद्वान् को सात्त्विक यज्ञ करना चाहिये। उस यज्ञ में श्रद्धा पूर्वक वेद मन्त्रों के पाठ से परमात्मा का गुणानुवाद और शुभ फल प्राप्ति की प्रार्थना करनी चाहिये। जिससे अन्तःकरण की शुद्धि और पवित्र मन्त्रों के अनुष्ठान से बुद्धि की प्राप्ति हो उस से आत्मज्ञान की योग्यता सुगमता से हो सकती है यह तात्पर्य है ॥ २ ॥

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमासमचातुर्मास्यमनाग्रयणमतिथिवर्जितं च। अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥ ३ ॥

शास्त्रविधिमुत्सृज्य स्वेच्छया कृतस्याग्निहोत्रादिकर्मणो न सम्यगभीष्टफलं भवतीत्युच्यते (यस्य) यज्ञकर्मानुष्ठाने प्रवृत्तस्य यजमानस्य (अदर्शम्) दर्शेष्टिरहितम् (अपौर्णमा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्) पौर्णमासेष्टिवर्जितम् (अचातुर्मास्यम्) चातुर्मास्येष्टिविहीनम् (अनाग्रयणम्) नवान्नेष्टिवर्जितम् (च, अतिथिवर्जितम्) अतिथिपूजैको महायज्ञो यस्य नित्यकृत्येषु प्रतिदिनं नानुष्ठीयते (अहुतम्) काले योऽग्निहोत्रादिकं न करोति (अवैश्वदेवम्) वैश्वदेवो महायज्ञो येन नानुष्ठीयते (अविधिना, हुतम्) विधिरहितेन घृणितनिन्दितप्रकारेणाविश्वासपूर्वकं हुतं सद्वासनारूपेण स्थितं सञ्चितं कर्म (तस्य) यजमानस्य (आसप्तमान्) सप्तमपर्यन्तान् (लोकान्) लोक्यते दृश्यते साक्षात् क्रियते ब्रह्म यैस्तान् श्रवणमननिदिध्यासनशमदमतितिक्षोपरत्याख्यान् (हिनस्ति) कार्यसाधनेऽसमर्थान्निर्बलान् करोति। नहि तस्य साधनान्युपयुज्यन्ते ॥

भा०—अमावास्यायां पौर्णमास्यां वर्षासु शरदतौ च यदा येन येन प्रकारेण यैर्यैर्वस्तुविशेषैर्यज्ञा विधीयन्ते तथा तथा विधियज्ञानुष्ठाने प्रवृत्तेन यजमानेन श्रद्धया विश्वासेन कर्त्तव्याः। मांसेनापि कुत्रचिद्यज्ञा विधीयन्ते तथापि कर्त्तव्यमिति न शङ्कनीयम्। हिंसायुक्तं कर्म तामसमिति भगवता श्रीकृष्णेनाप्युक्तम्-अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्। मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ १ ॥ तेन प्रतीयते तामसयज्ञानुष्ठानं राक्षसानां कर्मास्ति तत्कल्याणेप्सुना विदुषा नैव कार्यम्। यश्च यजमानः पञ्चमहायज्ञान् विहाय दर्शेष्ट्यादिरहितमग्निहोत्रादिकमतीतकालं भ्रष्टघृणितप्रकारेणाश्रद्धयाऽ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्वासेन दम्भार्थमेव करोति न तस्यान्तःकरणशुद्धिद्वारा ब्रह्मज्ञानस्योपकारकमग्निहोत्रादिकं भवति । भगवद्गीतासु चोक्तम् "अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत्। इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम्॥ विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्र हीनमदक्षिणम्। श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते" ॥ तस्माद्विपश्चिता फलाकाङ्क्षां विहाय सात्त्विको यज्ञः सेवनीयो न तु राजसतामसाविति भावः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—शास्त्र में लिखे विधान को छोड़ कर अपनी इच्छा से किये अग्निहोत्रादि कर्म का अभीष्ट अच्छा फल नहीं होता सो कहते हैं (यस्य) जिस यज्ञ कर्म के अनुष्ठान में प्रवृत्त हुए यजमान का (अदर्शम्) दर्शेष्टि [जिसे अमावास्या और प्रतिपदा की सन्धि में करना चाहिये] से रहित (अपौर्णमासम्) पौर्णमासेष्टि यज्ञ [जो पूर्णमासी वा प्रतिपदा के दिन किया जाता है] से वर्जित (अचातुर्मास्यम्) चातुर्मास्येष्टियों [वैश्वदेव, वरुणप्रघास साकमेध और शुनासीरीय ये चार पर्व फाल्गुनी पौर्णमासी से लेकर होने वाले चातुर्मास्य कहाते हैं] से रहित (अनाग्रयणम्) शरद् वसन्तऋतुओं में होने वाली नवान्नेष्टियों से वर्जित (च) और (अतिथिवर्जितम्) धर्म शास्त्रों में लिखे प्रकार अतिथि अभ्यागत पुरुष का जिस अग्निहोत्री के घर में पूजन सत्कार नहीं (अहुतम्) ठीक समय पर जिसका अग्निहोत्र नहीं होता (अ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैश्वदेवम्) वैश्वदेव नामक महायज्ञ जिस अग्निहोत्र के साथ नहीं होता (अविधिना, हुतम्) और विधि रहित निन्दित प्रकार से अविश्वास पूर्वक किया गया होम वही वासनारूप से संचित्त कर्म बनकर (तस्य) उस अग्निहोत्री यजमान के (आसप्तमान्) सातवें पर्यन्त (लोकान्) ब्रह्मज्ञान के साक्षात् होने के हेतु श्रवण, मनन निदिध्यासन, शम, दम, तितिक्षा और उपरति-वैराग्य नामक सातो लोकों को (हिनस्ति) कार्य सिद्ध करने में असमर्थ निर्बल करता है अर्थात् श्रवणादि साधन उसके उपयोगी नहीं होते ॥

भा०—अमावास्या पौर्णमासी वर्षा और शरदृतुमें जब२ जिस २ प्रकार से जिन २ वस्तुओंसे यज्ञोंका विधान किया गया है उसी २ प्रकार विधियज्ञ के अनुष्ठान में प्रवृत्त यजमान पुरुष को श्रद्धा और विश्वास के साथ यज्ञ करना चाहिये। कोई कहे कि मांस से भी कहीं यज्ञों का विधान है तो क्या वह भी करना चाहिये ? ऐसी शङ्का ठीक नहीं क्योंकि हिंसा युक्त कर्म तमोगुणी है यह भगवान् श्रीकृष्णजी ने भी भगवद्गीता में कहा है कि मुख्य अपने अनुकूल, अपनी हानि, किसी जीव की हिंसा और परिश्रम की चिन्ता न करके अज्ञानसे आरम्भ किया कर्म तमोगुणी कहाता है। इससे प्रतीत होता है कि तामस यज्ञ करना राक्षसों का कर्म है ऐसा काम कल्याण को चाहने वाले विद्वान् को नहीं करना चाहिये। जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजमान पंचमहायज्ञों को छोड़कर दर्शेष्टि आदि रहित अग्निहोत्रादि यज्ञ को काल बिता के निन्दित प्रकार से श्रद्धा और विश्वास रहित दम्भ-दिखाने मात्र के लिये करता है उसका अग्निहोत्रादि यज्ञ अन्तःकरण की शुद्धि द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपकारी नहीं होता। भगवद्गीता में भी कहा है कि—हे अर्जुन फल पर आरुढ होकर दम्भार्थ जो यज्ञ किया जाता है वह राजस रजोगुण सम्बन्धी है और विधान से विरुद्ध विना शोधे बनाये हविष्य से किया हुआ यज्ञ जिस में मन्त्र पाठ नहीं हुआ और दक्षिणा नहीं दी गई और जो श्रद्धा रहित यज्ञ है वह तामस कहाता है इसलिये बुद्धिमान् को चाहिये कि फल की अपेक्षा छोड़ कर सात्त्विक यज्ञ का सेवन करे किन्तु राजस तामस का नहीं ॥ ३ ॥

काली कराली च मनोजवा च सुलोहिता या च सुधूम्रवर्णा। स्फुलिङ्गिनी विश्वरूपी च देवी लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः ॥ ४ ॥

(काली) कृष्णवर्णा (कराली) भयङ्करा (च) तथा (मनोजवा) शीघ्रतरगतिमती (च) अपि (सुलोहिता) सम्यक् रक्तवर्णा (या, च) यापि (सुधूम्रवर्णा) शोभनो धूम्रस्येव वर्णो यस्याः (स्फुलिङ्गिनी) स्फुलिङ्गा विद्यन्तेऽस्यां सा (विश्वरूपी) कृष्णादिसर्ववर्णसंयुक्ता (च) अपि (देवी) दर्शनीया सर्वासां विशेषणमेतत् (इति) उक्तनामिकाः (लेलाय-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानाः) दीप्यमाना अग्नेः (सप्त) (जिह्वाः) जोहूयते यासु ता ज्वालास्तरङ्गा भवन्ति ॥

भा०—प्रज्वलितेऽनावेवजुहुयादिति विधीयते तत्र प्रज्वलनस्य भेदा दर्शिता एतेषु सर्वभेदेषु विदुषा होतव्यम् । नत्वप्रज्वलिते होतव्यमिति । केन प्रकारेण प्रज्वलिते होतव्यम् ? इति शङ्कानिवारणायेदं वच आरभ्यते ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(काली) कालेरंग से युक्त (कराली) भयङ्कर (च) तथा (मनोजवा) अतिशीघ्र उठने वाली (च) और (सुलोहिता) अच्छे प्रकार शुद्ध लालरंग युक्त (या, च) और जो (सुधूम्रवर्णा) देखने योग्य धूम के तुल्य जिसका वर्ण हो (स्फुलिङ्गिनी) चिनगारी वाली (च) और (विश्वरूपी) काले आदि सब रंगों से युक्त (इति) ये (सप्त) सात नाम वाली सात प्रकारके गुणों से युक्त (देवी) देखने योग्य और (लेलायमानाः) प्रकाशमान (जिह्वाः) जिनमें वार २ होम किया जाता वे ज्वाला वा तरंगें कहाती हैं ॥

भा०—प्रज्वलित हुए अग्नि में ही होम करना चाहिये ऐसा विधान शास्त्रों में किया है। सो यहां मन्त्र में अग्नि के जलने के भेद दिखाये गये हैं इन्हीं सब प्रकार की ज्वालाओं में होम करना चाहिये किन्तु बुझे हुए अग्निमें होम न करे। प्रज्वलित में किस प्रकार से होम करे इस शङ्का को दूर करने के लिये अगला मन्त्र कहते हैं ॥ ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ॥ ५ ॥

(यः) कर्मफलमनाश्रितः कार्यं वैदिकमग्निहोत्रादि कर्म कुर्वाणो यतचित्तात्मा विद्वान् (एतेषु पूर्वोक्तेषु भ्राजमानेषु) दीप्तिमत्सु वह्निप्रज्वलनभेदेषु (यथाकालम्) कालमनतिक्रम्य प्रातरुत्थितः परमात्मस्तुतिप्रार्थनापुरस्सरम् (आहुतयः) आहुतीः। विभक्तिव्यत्ययेनात्र प्रथमा (हि) निश्चयेन विश्वासपूर्वकम् (आददायन्) समन्तादृदाति (चरते, च) आचरणमपि छलकपटादिरहितं सत्यमेव करोति (तम्) त्यक्तभोगाभिलाषं यजमानं विद्वांसम् (एताः) आहुतयः (सूर्यस्य) (रश्मयः) रश्मिगताः संचितकर्मरूपा भूत्वा (अधिवासः) अधिवसति निवसति सर्वं जगदस्मिन् सः (एकः) अद्वैतः (देवानाम्) विदुषां मुक्तानामपि (पतिः) रक्षकः स्वामी (यत्र) ध्यायिनां प्रत्यक्षदशायां तुरीयावस्थायां विद्यते तत्र तस्याम् (नयन्ति) प्रापयन्ति ॥

भा०—यः कश्चिन्मुमुक्षुरग्निहोत्रादि वेदविहितं कर्म लौकिकफलकाङ्क्षाराहित्येन श्रद्धया नियमेनाप्रमादेन यथाकालं प्रतिदिनं सेवते तत्कर्म संचितं भूत्वा परमात्मप्राप्तिरूपं मुक्तिफलं कालेन निष्पादयति। ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिनेति भगवद्गीतासु चोक्तम् ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः –(यः) जो कर्मके फल की कांक्षा को छोड़ कर वैदिक अग्निहोत्रादि करने योग्य कर्म करता हुआ मन और आत्मा को वश में रखने वाला विद्वान् (एतेषु) इन पूर्वोक्त (भ्राजमानेषु) प्रकाशमान अग्नि के ज्वालारूप सात भेदों में (यथाकालम्) प्रातः सायंकाल जो होमादि का समय है उसका उलङ्घन न करके परमात्मा की स्तुति प्रार्थना पूर्वक (हि) निश्चित मन से श्रद्धा विश्वासपूर्वक (आहुतयः) आहुतियों को (आददायन्) अच्छे प्रकार देता-छोड़ता है (च) और (चरते) छल कपटादि रहित सत्य आचरण भी करता है (तम्) उस भोग की इच्छा को त्याग देने वाले यजमान विद्वान को (एताः) ये उक्त आहुति (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मयः) किरणों में प्राप्त हुई संचित कर्मरूप होकर उस दशा में (नयन्ति) पहुँचाती हैं कि (यत्र) जहाँ ध्यानशीलों की चतुर्थ समाधि अवस्था में (देवानाम्) मुक्त विद्वानों का स्वामी (पतिः) रक्षक (एकः) एक अद्वितीय (अधिवासः) सब जगत् का आधार परमात्मा साक्षात् जाना जाता है ॥

भा०—जो कोई मुमुक्षु अग्निहोत्रादि वेदविहित कर्म को फल की अभिलाषा तथा प्रमाद छोड़ के श्रद्धा पूर्वक नियम के साथ नित्य प्रतिदिन सेवन करता है वह कर्म संचित होकर परमात्मा की प्राप्तिरूप मुक्ति फल को धीरे २ सिद्धकरता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भगवद्गीतामें भी लिखा है कि मनुष्य निष्काम ध्यान देकर किये वैदिक कर्म से ब्रह्म को प्राप्त होता है ॥ ५ ॥

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति । प्रियां वाचमभिवदन्त्यो ऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ॥ ६ ॥

संचितकर्मणः कृत्यं विशेषतया प्रतिपाद्यते-(तम्) पूर्वोक्तं यजमानं विद्वांसम् (सुवर्चसः) शोभनस्य तेजस उत्पादिकः (आहुतयः) (सूर्यस्य) (रश्मिभिः) शरीरपातादूर्ध्वं मुक्तिदशां प्रापयितुम् (एहि-एहि, इति) एवं प्रकारेणोक्त्वेव (प्रियां, वाचं, वदन्त्यइव) (अर्चयन्त्यः) यथा प्रियभाषणेनादरं कुर्वन् कश्चित्सुखयेत् तथा सुखहेतुका भूत्वा (वहन्ति) मुक्तिदशां प्रापयन्ति कथं वदन्त्यइत्याह-(वः) युष्माकम् आदरार्थं बहुवचनम् (सुकृतः) शोभनकर्मणः फलरूपः (एषः) प्रत्यक्षः (पुण्यः) पुण्यस्वरूपः पवित्रः (ब्रह्मलोकः, ब्रह्मणो दर्शनमस्ति । अत्र नास्ति दुःखस्य लेशोऽपि किन्तु शान्तिरूपं सुखमेव बहुकालावधि भोक्तव्यम् ॥

भा०-सुकृतस्य कर्मणः सर्वे प्रकारा वासनारूपेण हृदिस्थिताः फलप्राप्तिदशायां सम्यक्तया प्रस्फुरन्ति तेन पुण्यात्मा जानाति मया कृतस्य तस्यैव शुभकर्मण इदं फलमुपस्थितम् । तत्र कर्मैव चेतनवत्कथयतीति कर्मणः प्राधान्यबोधनायालङ्कारेण कथनमिदम् ॥ ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—संचित कर्म के कृत्य को विशेष प्रकार से सिद्धि दिखाते हैं (तम्) उस पूर्वोक्त यजमान विद्वान् को (सुवर्चसः) सुन्दर धर्म सम्बन्धी तेज वा प्रकाश को उत्पन्न करने वाली (आहुतयः) संचित आहुति (सूर्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों द्वारा शरीर छूटने पश्चात् मुक्तिदशा को प्राप्त कराने के लिये (एहि, एहि, इति) आइये २ इस प्रकार से कह कर (प्रियाम् वाचम्) प्रिय वाणी को (वदन्त्यः) कहती हुई (अर्चन्त्यः) और जैसे प्रिय भाषण से आदर करता हुआ कोई किसी को सुख पहुँचावे वैसे सुख की हेतु होकर (वहन्ति) मुक्तिदशा को प्राप्त कराती हैं। किस प्रकार कहती हुईं कि—(वः) तुम्हारा (सुकृतः) सुन्दर कर्म का फलरूप (एषः) यह (पुण्यः) पुण्य स्वरूप पवित्र (ब्रह्मलोकः) परमेश्वर का दर्शन वा ज्ञान है। इसमें दुःखका लेश भी नहीं है किन्तु शान्तिरूप सुख ही प्राप्त होता है

भा०—अच्छे धर्म सम्बन्धी कर्म के सब भेद वासनारूप से हृदय में स्थित रहते, फल प्राप्ति की दशा में सम्यक् रीति से प्रकट होते हैं। उससे पुण्यात्मा पुरुष जान लेता है कि मेरे किये अमुक शुभ कर्म का यह फल प्राप्त हुआ है वहाँ कर्म ही चेतन के तुल्य मानो कहता है ऐसी रीति से कर्म की प्रधानता जताने के लिये यह कथन किया है॥ ६॥

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येषु कर्म । एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ॥ ७ ॥

(येषु) यज्ञेषु (अष्टादशोक्तम्) दशेन्द्रियाणि शरीरं मनः पञ्च प्राणा आत्मा चैतदष्टादशसमुदायस्य सम्पत्तये कौशल्य-सम्पादनाय च शास्त्रेषूक्तम् (अवरम्) जन्ममरणप्रवाहप्रव-र्त्तनेन संसारि+आम्यफलप्रदाने समर्थम् (कर्म) अस्ति (ये) (मूढा) (एतत्, श्रेयः) एतदेव कर्म फलत्रापणं श्रेयो मोक्ष-इति (अभिनन्दन्ति) सर्वोत्कृष्टं मत्वा समन्ताद्धृष्यन्ति (ते) (पुनः, एव) मुहुर्मुहुरेव (जरामृत्युम्) वृद्धावस्थया मृत्युं मरणम् (अपियन्ति) प्राप्नुवन्ति नष्टा भ्रष्टाश्च भवन्ति ॥

भा०—यद्यपि जगत्यतिशयेन दुःखिदरिद्रिनिर्बुद्धिनिर्विद्य-जनापेक्षया विद्यादिसर्वधनोपेताः सुखभोगपूर्णसामग्रीसम्पन्ना जना अत्युत्तमाः सन्ति तथापि ते मोक्षानन्दिपुरुषापेक्षयाऽत्य-न्ताधमा दुःखिन एव ये लोके स्त्रीधनपुत्राद्यैश्वर्यमवाप्य तमेव परमं कल्याणपन्थानं मत्वा मुक्तिसुखं परमात्मज्ञानलक्षणं पर-मार्थं तृणीकृत्य कृतकृत्या वयमिति मन्यन्ते तेऽत्र निन्द्यन्ते । भगवद्गीतासुचोक्तम्—

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः ।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम् ।
व्यवसायात्मिकाबुद्धिः समाधौनविधीयते ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावार्थः—(येषु) जिन यज्ञों में (अष्टादशोक्तम्) दश इन्द्रिय शरीर मन पाँच प्राण आत्मा इन अठारह का सौभाग्य और कुशल क्षेम बनने के लिये शास्त्रों में कहा (अवरम्) संसारी कामना युक्त फल देने में समर्थ (कर्म) कर्म है (ये) जो (मूढाः) मूर्ख लोग (एतत्) इसी उक्त कर्म को (श्रेयः) परम कल्याणमार्ग वा मोक्ष है ऐसा (अभिनन्दन्ति) सर्वोत्कृष्ट मानकर अच्छे प्रकार आनन्द मानते हैं (ते) वे (पुनः, एव) बार २ ही (जरामृत्युम्) वृद्धावस्था के साथ होने वाले मृत्यु को (अपियन्ति) प्राप्त होते अर्थात् नष्ट भ्रष्ट होते हैं ॥

भा०—यद्यपि जगत् में अत्यन्त नीच दशा के बीच पड़े दुःखी दरिद्री निर्बुद्धि मूर्खजनों की अपेक्षा विद्यादि सब उत्तम २ धनों से युक्त सुखभोग की पूर्णसामग्री वाले मनुष्य अत्युत्तम हैं तो भी वे मुक्ति के आनन्द का अनुभव करने वालों की अपेक्षा अति नीच वा दुःखी ही माने जाते हैं। जो जगत् में स्त्री धन पुत्रादि ऐश्वर्य को प्राप्त होके उसीको परम कल्याण मार्ग मानकर परमात्मा के ज्ञानरूप परमार्थ सम्बन्धी मुक्ति सुख को तुच्छ करके हम कृतकृत्य हैं ऐसा मानते हैं उनकी यहां निन्दा की है। भगवद्गीतामें भी लिखा है कि-

मूर्ख अज्ञानी लोग जिस निष्फल [चित्र विचित्ररूप पुष्प जिसमें लगे हैं ऐसी] पुष्पितवाणी को कहते हैं कि वेदादि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र पढ़ने जानने का भी फल जो कुछ है वह यहीं संसार में उत्तमर स्त्री पुत्र राज्य स्वर्ग धनैश्वर्यादि हैं इससे परे जन्मान्तर परलोक में मुक्ति सुख भोगादि कुछ नहीं है ! वे मनुष्य कामसुख में बड़े प्रवीण होते वेदादि के सिद्धान्त पर वाद विवाद करने में प्रवृत्त रहते किसी को पराजित कर अपने को सर्वोपरि मानते और अहङ्कार रूप मद में मत्त रहते हैं। उन भोग में आसक्त पुरुषों की बुद्धि योगाभ्यास वा समाधि में न लगने से वे सदा परमार्थ से विमुख ही रहते हैं ॥ ७ ॥

अविद्यायामन्तरे वर्त्तमानाः स्वयन्धीराः पण्डितम्मन्यमानाः । जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथाऽन्धाः ॥ ८ ॥

तदेव पुनरपि द्रढयति—(अविद्यायाम्) अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरूपाऽविद्या तस्याः (अन्तरे) मध्ये (वर्त्तमानाः) लिप्तास्तदुत्कर्षायैव विशेषतः प्रयतमानाः (स्वयन्धीराः) वयं धीरा ध्यानवन्तो विचारशीलाः पूर्वापरमालोच्य कार्यमनुष्ठातुं शक्ताइत्यादिप्रकारेण स्वात्मानम् (पण्डितम्मन्यमानाः) पण्डितशब्देनैवास्माञ्जना व्याप्रियन्तेऽतो वयं पण्डिताइति मन्यमानाः (जंघन्यमानाः) अनेक प्रतिकूलोपद्रवः पुनःपुनस्ताड्यमानाः (मूढाः) विक्षिप्तचित्ताः (यथा, अन्धेनैव) चक्षुषा रहितेनैव (नीयमाना) चाल्यमानाः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अन्धाः) कार्यासक्तचित्ता धावन्तो गर्त्तकण्टकादिषु पतित्वा महद्दुःखं भजन्ते तद्वदविद्यान्धकारे निमग्ना दर्शनज्ञानविहीनास्तत्त्वमपश्यन्तः (परियन्ति) परितइतस्ततो गच्छन्ति। ऐहिकसुखभोगसञ्चयाय धावन्ति ॥

भा०—अभ्युदयिकशास्त्रज्ञानेन भोगैश्वर्यमवाप्ता लोकैर्दत्तप्रतिष्ठा अहङ्कुर्वाणा अविद्यालक्षणेषु निमग्ना पुरुषाः परमार्थं प्राप्तुमशक्ताएव ॥ ८ ॥

भाषार्थः—उसी पूर्वोक्त विषय को फिर भी दृढ़ करते हैं (अविद्यायाम्) अनित्य शरीरादि को नित्य समझना, अपवित्र शरीरादि को पवित्र मानना, दुःखको सुख और अनात्मा शरीरादि को आत्मा समझना रूप अविद्या के (अन्तरे) बीच (वर्त्तमानाः) उसी अविद्यादि की वृद्धि के लिये विशेष कर प्रयत्न करते उसी में दिन रात लिप्त (स्वयम्, धीराः) हम विचारशील हैं आगा पीछा शोच समझ के कार्य का प्रारम्भ वा अनुष्ठान करने में समर्थ हैं इस प्रकार अपने को (पण्डितम्मन्यमानाः) हम को सब लोग पण्डित कहते हैं इसलिये हम पण्डित हैं ऐसा मानते हुए (जंघन्यमानाः) अपने प्रतिकूल अनेक उपद्रवों से बार २ पीड़ित (यथा) जैसे (अन्धेनैव, नीयमानाः, अन्धाः) नेत्र रहित अन्धे के साथ चलने वाले जिनका मन कार्य की सिद्धि में आसक्त है ऐसी दशा में मार्ग की ओर ध्यान भी न रखकर भागते हुए काँटे और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गढ़े आदि में गिर कर महादुःख भोगते हैं वैसे ही अविद्यारूप अन्धकार में दबे शास्त्र सम्बन्धी तत्त्वज्ञान से रहित सत् असत् का विवेक करनेवाली बुद्धि से कल्याण का मार्ग न देखते हुए (मूढाः) विक्षिप्त चित्त मूर्ख लोग (परियन्ति) सब ओर से इधर उधर को संसारी अनित्य सुख के साधनों का संचय करने के लिये भाग रहे हैं ॥

भा०—शास्त्र के संसार सम्बन्धी ज्ञानरूप ऐश्वर्य को प्राप्त हुए संसारी मनुष्यों से लोक में प्रतिष्ठा को प्राप्त अहङ्कार करते हुए अविद्या के लक्षणरूप अगाध समुद्र में डूबे पुरुष परमार्थ को नहीं प्राप्त हो सकते ॥ ८ ॥

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत् कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ ९ ॥

पुनरप्युक्तमेव प्रपञ्चयति (अविद्यायाम्) बहुप्रकारैर्भिन्नायामुक्तायाम् (बहुधा) बहुप्रकारैः (वर्त्तमानाः) तस्या उत्कर्षाय प्रयतमानास्तस्यामासक्ता वा (बालाः) अज्ञास्तत्त्वज्ञानहीनाः (वयम्) (कृतार्थाः) सिद्धप्रयोजनाः प्राप्तस्त्रीपुत्रधनैश्वर्यादिभोगा अस्मच्छदृशः कोऽस्त्यन्यः ? (इति) इत्यादिप्रकारेण (अभिमन्यन्ति) अभिमानं कुर्वन्ति (रागात्) रागमाश्रित्य (यत्कर्मिणः) यस्मिन् कर्मणि कृतानुरागा आसक्ताः (तेन) कर्मफलप्राप्तिहेतुना (आतुराः) दुःखिता धावमानाः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(क्षीणलोकाः) विनष्टतत्त्वज्ञाना दर्शनशास्त्रहीनाः परमार्थसम्बन्धिबृहत्सुखप्राप्तिप्रयोजनात् (च्यवन्ते) च्युता भवन्ति किन्तु रागादेव तत्त्वं (न, प्रवेदयन्ति) नहि जानन्ति ॥

भा०—न्यायशास्त्रस्य वात्स्यायनभाष्ये उक्तम् मुक्तिसुखरागेणापि मोक्षाय घटमानो न मोक्षमधिगच्छेन्नाधिगन्तुमर्हति । बन्धनसमाज्ञातो हि रागः । अयमाशयः—रागद्वेषमोहा एव दोषास्ते मुमुक्षुणा पूर्वमेव हेयाः सति रागे बन्धनमेव रागो बन्धनहेतुः । यस्य कस्मिंश्चिद्रागस्तस्य द्वेषोऽप्यवश्यं भवति । अहं गौरः शोभनाकृतिमान् युवा धनैश्वर्यसम्पन्नो विद्वान् बलवान् पुत्रवान् प्रियस्त्रीकश्चास्मि नास्ति मत्सदृशः कश्चित् । इत्यादिप्रकारेणाविद्यायां निमग्ना परमार्थविमुखा नहि ब्रह्मज्ञानसुखमाप्तुमर्हन्ति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—फिर भी उक्त विषय को ही स्पष्ट करते हैं:—(अविद्यायाम्) बहुत प्रकार वाली उक्त अविद्या में (बहुधा) बहुत प्रकारों से (वर्त्तमानाः) उस अविद्या की बुद्धि के लिये प्रयत्न करते वा उसमें आसक्त (बालाः) अज्ञानी तत्त्वज्ञान से रहित मनुष्य (वयम्) हम (कृतार्थाः) कृतार्थ हैं स्त्री पुत्र और धनैश्वर्यादि भोग हमको प्राप्त है हमारे समान अन्य कौन है ? (इति) इत्यादि प्रकार से (अभिमन्यन्ति) अभिमान करते हैं (रागात्) राग का आश्रय लेकर (यत्कर्मिणः) जिस कर्म में आसक्त हुए (तेन) उस कर्म के फल प्राप्ति हेतु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (आतुराः) दुःख में फँसकर भागते हुए (क्षीणलोकाः) जिन ने दर्शन न्यायादि शास्त्रों को नहीं देखा इसीसे तत्त्वज्ञान रहित हुए परमार्थ सम्बन्धि महान् सुख प्राप्ति रूप प्रयोजन से (च्यवन्ते) च्युत होते हैं किन्तु राग-प्रीति का रङ्ग चढ़ जाने से ही (न, प्रवेदयन्ति) नहीं जानते ॥

भा०—न्यायशास्त्र के वात्स्यायन भाष्य में लिखा है कि जो मुक्ति सुख प्राप्ति के राग से भी मोक्ष के लिये प्रयत्न करता है वह मोक्ष को प्राप्त नहीं हो सकता अर्थात् वह मुक्ति का अधिकारी नहीं क्योंकि बन्धन का हेतु राग उसमें बना है जिसमें राग बना है वहाँ किसी से द्वेष भी अवश्य रहेगा। इसी राग में फँसा मनुष्य समझता है कि मैं गोरा देखने में सुन्दर जवान धनैश्वर्य युक्त विद्वान् बलवान् पुत्रवान् और प्रिय स्त्री वाला हूँ मेरे तुल्य कोई नहीं है। इत्यादि प्रकारसे अविद्या में डूबे परमार्थ से विमुख मनुष्य ब्रह्मज्ञान के सुख को प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ९ ॥

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः। नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं वाविशन्ति ॥ १० ॥

ये (प्रमूढाः) प्रकृष्टमोहान्धकाराज्ञानयुक्ताः (इष्टापूर्तम्) लौकिकफलभोगोत्करठां पुरस्कृत्य श्रौतं स्मार्त्तं च कर्म (वरिष्ठम्) अतिश्रेष्ठम्। एतत्फलावाप्त्यैव कृतकृत्या वयमिति (म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यमानाः) अतः परम् (नान्यच्छ्रेयः) अन्यच्छ्रेयो नास्ति— इति (वेदयन्ते) जानन्ति (ते) (सुकृते) स्वेनैव संचितकर्मणा निष्पादिते (नाकस्य) न विद्यतेऽकं दुःखमस्मिन् तस्य जगत्प्रदेशस्य (पृष्ठे) स्थले उपरि (अनुभूत्वा) पुण्यफलं विशिष्टसुखमनुभूय (इमम्) प्रत्यक्षम् (हीनतरम्) अतिनिकृष्टं दुःखबहुलं प्रदेशम् (च) अपि (आविशन्ति) प्राप्नुवन्ति ॥

भा०—ये संसारिणो जनाः स्त्री पुत्रधनराज्यैश्वर्यादिजन्यं सुखमेव परमकल्याणहेतुकं मत्वा निर्विघ्नमेतत्सुखं याचमानास्तत्सुखप्राप्तिकामनया यज्ञादिवैदिकं कर्मेष्टं वापीकूपतडागारामनिपानानाथालयादीनां परोपकारार्थं निर्माणं पूर्त्तं स्मार्त्तं कर्म कुर्वन्ति । तत्फलरूपादुक्तसुखात्प्रकृष्टं कल्याणहेतुकमन्यद्ध्यानसमाध्युपासनादिजन्यं परोक्षं जन्मान्तरेऽनुभूयमानं सुखं नास्तीति कृतनिश्चयाः संसारिफलप्रापके कर्मण्येवाहर्निशं रमन्ते ते जन्ममरणसरित्प्रवाहान्निस्सृत्य कदापि मुक्ता न भवन्ति । अर्थादेवं कर्मिणो जगति प्रकृष्टं सुखमवाप्य पुनर्दुःखे निपतन्ति किन्त्वानन्दमयं ब्रह्म कर्हिचिदपि नाप्नुवन्ति येन निर्विकल्पानन्दस्यानुभवः स्यात् । नह्यत्र श्रौतस्मार्त्तं कर्मणी निन्द्येते अपितु परोक्षं परमार्थज्ञानसुखं तृणीकृत्यानित्यसुखमेव श्रेष्ठतमं मन्यमाना मूढा निन्द्यन्ते ॥ १० ॥

भाषार्थः—जो (प्रमूढः) अत्यन्त मोहान्धकाररूप अज्ञान से युक्त पुरुष (इष्टापूर्त्तम्) लौकिक फल भोग की इच्छा को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे करके अग्निहोत्रादि वेदोक्त कर्म और प्याऊ बैठाना आदि स्मार्त्तकर्म को (वरिष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त (मन्यमानाः) मानते हुए कि इस फल की प्राप्ति से ही हम कृतकृत्य हैं। इससे परे (नान्यच्छ्रेयः) अन्य कोई अधिक कल्याण का मार्ग नहीं है ऐसा (वेदयन्ते) जानते हैं (ते) वे (सुकृते) अपने संचित किये कर्म से सिद्ध हुए (नाकस्य) दुःख रहित जगत् के प्रदेश के (पृष्ठे) स्थल में (अनुभूत्वा) पुण्य के फल विशेष सुख का अनुभव कर (इमम्) इस प्रत्यक्ष मनुष्यादि शरीर में तथा (हीनतरम्) अति नीच बहुत दुःख वाले स्थावरादि योनियों में (च) भी (आविशन्ति) प्राप्त होते हैं ॥

भा०—जो संसारी मनुष्य स्त्री पुत्र धन और राज्य सम्बन्धी ऐश्वर्य से होने वाला सुख ही परम कल्याण का हेतु है ऐसा मान कर इस सुख के निर्विघ्न प्राप्त होने की प्रार्थना करते हुए उस सुख प्राप्तिकी इच्छासे यज्ञादि वैदिक कर्म और बाउली, कुआ, तालाब, बगीचा, प्याऊ और अनाथालयादि का परोपकार के लिये बनाना आदि स्मार्त्त-धर्मशास्त्र सम्बन्धी कर्म को करते हैं उस कर्म के फलरूप उक्तसुख से उत्तम कल्याण का हेतु अन्य ध्यान समाधि उपासनादि से होने वाला, जिसका जन्मान्तरमें अनुभव होना है ऐसा परोक्ष सुख नहीं है इस प्रकार का निश्चय रखने वाले पुरुष संसारी फल के देने वाले कर्म में ही दिन रात रमते हैं वे जन्म मरण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवाह वाली नदीसे निकल कर कभी मुक्त नहीं होते। अर्थात् ऐसे कर्म वाले संसार में उत्तम सुख पाकर फिर २ दुःख में गिरते हैं किन्तु आनन्दस्वरूप ब्रह्म को कभी भी प्राप्त नहीं होते। जिससे निःशङ्क आनन्द प्राप्त हो। इस मन्त्र में श्रौत-स्मार्त्त कर्मों की निन्दा नहीं की गई है किन्तु परमार्थ सम्बन्धी परोक्ष सुख को तुच्छ मानकर अनित्य विषय सुख को अतिप्रशस्त मानते हुए मूर्खों की निन्दा की गई है ॥ १० ॥

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः। सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ११ ॥

(ये, हि) (शान्ताः) संसारिसुखादुपरतबुद्धयः (विद्वांसः) शास्त्रज्ञाः (भैक्षचर्याम्) भृत्यादिना वाणिज्येन वा वृत्तिं विहाय भिक्षया नियतं प्राणयात्रामात्रं श्रद्धालुजनादन्नमादाय जीवनम् (चरन्तः) यापयन्तः (अरण्ये) नानाशब्दवर्जिते वनाद्येकान्तप्रदेशे (तपःश्रद्धे) द्वन्द्वसहनव्रतधारणरूपं तपो वैदिकमग्निहोत्रादिकर्म च कुर्वन् (उपवसन्ति) स्वात्मनि निरुद्धचेतसो निवसन्ति (ते) (विरजाः) शुद्धा निष्पापाः सन्तः (यत्र) यस्यां दशायाम् (अव्ययात्मा) अविनाशिस्वरूपः (अमृतः) नित्यमुक्तः (पुरुषः) पूर्णो व्याप्तः परमात्मास्ति तत्र (सूर्यद्वारेण) मूर्द्धगतप्राणनाडीद्वारा (प्रयान्ति) प्रयाणकाले निस्सरन्ति गच्छन्ति तामेव दशामाप्नुवन्ति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—कर्मफलभोगेषु रतानां दशा पूर्वमुक्ता । इदानीं कर्मफलभोगोत्कण्ठां विहाय वैदिके कर्मणि तत्पराणां दशोच्यते । ये शुद्धाः शान्ता भोगादुपरताश्च भूत्वा श्रद्धया विश्वासेन चेश्वराज्ञारूपं वेदोक्तमग्निहोत्रादिकं कर्म सेवन्ते ते ज्ञानिनो मरणावसरे उपात्तं कलेवरं त्यक्त्वा मुक्ता भवन्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(ये, हि) जो ही (शान्ताः) संसारी सुख भोग से जिनकी बुद्धि विरक्त होगई ऐसे (विद्वांसः) शास्त्रज्ञाता विद्वान् लोग (भैक्षचर्याम्) नौकरी वा व्यापार से जीविका छोड़ कर श्रद्धालु मनुष्य से प्राण स्थिति के निर्वाहमात्र आठ ग्रास अन्न को लेकर जीवन (चरन्तः) व्यतीत करते हुए (अरण्ये) नाना प्रकार के शब्दों से रहित वनादि एकान्त देश में (तपःश्रद्धे) शीत उष्णादि द्वन्द्वों का सहना वा नियम धारण रूप तप और अग्निहोत्रादि वैदिक कर्म को करते हुए (उपवसन्ति) अपने अन्तःकरण में चित्त को रोक कर बसते हैं (ते) वे (विरजाः) शुद्ध निष्पाप हुए (यत्र) जिस दशा में (अव्ययात्मा) अविनाशीरूप (अमृतः) नित्य मुक्त (पुरुषः) पूर्ण व्याप्त परमात्मा है उस दशा में (सूर्यद्वारेण) मूर्द्धा ब्रह्माण्ड में रहने वाली प्राण नाड़ी द्वारा (प्रयान्ति) मरण समय में निकलते हैं अर्थात् परमेश्वर की उसी मुक्तदशा को प्राप्त होते हैं ॥

भा०—कर्मफल भोगों में आसक्त लोगों की दशा पहिले

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कही अब कर्मफल के भोग की अभिलाषा को छोड़ कर वैदिक कर्म में तत्पर पुरुषों की दशा कहते हैं—जो शुद्ध शान्त और भोग से विरक्त होकर श्रद्धा और विश्वास से परमेश्वर की आज्ञा रूप वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म का सेवन करते हैं वे ज्ञानी लोग मरण समय में प्राप्त हुए शरीर को छोड़ कर मुक्त होते हैं ॥ ११ ॥

परीक्ष्य लोकान् कर्मचितान् ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥१२॥

(ब्राह्मणः) ब्रह्मणो वेदस्य ज्ञाता ब्रह्मणः परमात्मनो ज्ञाने प्राप्तौ निषण्ण आसक्तो जिज्ञासुर्जनः (कर्मचितान्) कृतैः शुभाशुभकर्मभिः फलभोगोत्कण्ठया संचितान् (लोकान्) लोकितुं द्रष्टुं योग्यान् स्त्रीधनपुत्रादिपदार्थान् सुखहेतून् (परीक्ष्य) परिणामादिना दुःखहेतून् निश्चित्य (निर्वेदम्) संसारिसुखभोगादौदासीन्यम् (आयात्) प्राप्नुयात् कुतः (कृतेन) कर्मणा-निष्पादितेन फलभोगेन (अकृतः) अकृत्रिमो जगदीश्वरः (नास्ति) निष्पादयितुं प्राप्तुमशक्यः कथन्तर्हि ज्ञेयस्तदाह (सः) उक्तविधो ब्राह्मणः (तद्विज्ञानार्थम्) ब्रह्मज्ञानाय (समित्पाणिः) समिधः पाणौ हस्ते यस्य तादृशो यद्वा समित्सम्यगिद्धा दीप्तोपस्थिता वेदविद्या पाणौ हस्तामलकवद्यस्य तथाभूतः सन् (ब्रह्मनिष्ठम्) ब्रह्मणि परमात्मनि निष्ठा मनसः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थितिर्यस्य तम् (श्रोत्रियम्) वेदपाठिनं वेदाशयज्ञम् (गुरुम् एव) आचार्यमेव (अभिगच्छेत्) आभिमुख्येन गच्छेत् ॥

भा०-फलभोगोत्कण्ठयानुष्ठितस्य पुण्यकर्मणः फलप्राप्त्यापि ब्रह्मप्राप्तिरसम्भवा नहिकस्यचित्कर्मणः फलरूपे ब्रह्म किन्तु निष्कामकर्मानुष्ठानेनान्तःकरणशुद्धौ सत्यां ज्ञानाधिकारित्वं जायते । सोऽधिकारी ब्रह्मज्ञादाचार्यादुपदेशं गृह्णीयात् । स नास्ति जगति कस्यचित्सुखस्य भोगो यस्यादिमध्यावसानेषु क्वापि दुःखं नायात् किन्तु सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । चक्रवत्परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥ एवं सुखभोगाभिलाषुणा दुःखमवश्यं भोक्तव्यम् । सुखभोगहेतुकार्यपदार्थाप्राप्तौ ब्रह्मज्ञानानुभवोद्भव आनन्दएव निर्दुःखः । इत्यादिप्रकारेणालोच्य जिज्ञासुना फलभोगोत्कण्ठातो विरक्तेन भवितव्यमित्याशयः ॥

भाषार्थः—(ब्राह्मणः) वेद का जानने वाला वा परमेश्वर के ज्ञान और प्राप्तिके लिये उत्सुक जिज्ञासु मनुष्य (कर्मचितान्) शुभ अशुभ कर्मों से फलभोग की इच्छा पूर्वक संचित किये (लोकान्) देखने 'योग्य सुख के हेतु सुन्दर स्त्री धन पुत्रादि पदार्थों को (परीक्ष्य) परिणामादि से परीक्षा कर अर्थात् दुःख के हेतु समझ कर (निर्वेदम्) संसारी सुख भोग से उदासीनता को (आयात्) प्राप्त हो क्योंकि (कृतेन) कर्म से सिद्ध हुए फल भोग से (अकृतः) अकृत्रिम परमात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी से (नास्ति) सिद्ध नहीं हो सकता। तो कैसे जाना जा सकता है सो कहते हैं—(सः) वह उक्त प्रकार का ब्राह्मण (तद्विज्ञानार्थं) उस ब्रह्म को जानने के लिये (समित्पाणिः) समिधा जिसके हाथ में अथवा सम्यक् उपस्थित वेदविद्या जिसको हस्तामलक के तुल्य प्रत्यक्ष है ऐसा हुआ (ब्रह्मनिष्ठम्) जिसका मन परमेश्वर में स्थित है उस (श्रोत्रियम्) वेदपाठी वेद के अभिप्राय को जानने वाले (गुरुम् , एव) गुरु के पास ही (अभिगच्छेत्) सन्मुख जावे ॥

भा०—फल भोग की उत्कण्ठा से अनुष्ठान सेवन किए पुण्य कर्म का फल मिलने से भी ब्रह्म की प्राप्ति अथवा ज्ञान होना असम्भव है क्योंकि किसी कर्म का फलरूप ब्रह्म नहीं है किन्तु फल की कामना छोड़कर सेवन किये कर्म से अन्तःकरण की शुद्धि होने पर ज्ञान का अधिकारी होता है वह अधिकारी ब्रह्मज्ञानी आचार्य से उपदेश ग्रहण करे। जगत् में सुख का भोग ऐसा कोई नहीं जिसके आदि मध्य वा अन्त में कभी दुःख न आवे किन्तु किसी कवि ने कहा है कि (सुखस्यानन्तरं०) सुख के पीछे दुःख और दुःख के पीछे सुख गाड़ी के पहिये के समान आते जाते बने रहते हैं इस प्रकार सुख भोग के अभिलाषी को दुःख अवश्य भोगना पड़ता है। और सुख भोग के हेतु बनावटी पदार्थ के न मिलने पर ब्रह्मज्ञान के अनुभव से उत्पन्न हुआ आनन्द ही निर्दुःख है इत्यादि प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विचार कर जिज्ञासु पुरुष को फल भोग की उत्कण्ठा से विरक्त होना चाहिये यह अभिप्राय है ॥ १२ ॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥ १३ ॥

गुरुणा किं कार्यमित्युच्यते-(सः, विद्वान्) (सम्यक्) (प्रशान्त चित्ताय) प्रकृष्टतया भोगवासनातः शान्तं चित्तमन्तःकरणमस्य तस्मै (शमान्विताय) इन्द्रियैरपि शान्त्या शुभकर्मणोऽनुष्ठात्रे (उपसन्नाय) समीपं प्राप्ताय (तस्मै) शिष्याय (येन) यादृशज्ञानेन (अक्षरम्) अविनाशिनम् (सत्यम्) सनातनम् (पुरुषम्) पूर्णपरमात्मानम् (वेद) जानाति (ताम्) तादृशीम् (ब्रह्मविद्याम्) (तत्त्वतः) याथातथ्येन (प्रोवाच) प्रब्रूयादुपदिशेत् ॥

भा०—अक्षरशब्देन प्रकृतेरपि ग्रहणं जायतेऽतएव सत्य पुरुषशब्दावक्षरशब्देन ब्रह्मणो ग्रहणाय विशेषणत्वेन परिपठितौ । यथा यस्मिन् क्षेत्रे उप्तं बीजं नोत्तरयते तत्र बुद्धिमता कृषकेन न वप्तव्यम् । तथैव विदुषा कुपात्रे विद्या न रक्षणीया तथा चोक्तम्-यमेव विद्याः शुचिमप्रमत्तं मेधाविनं ब्रह्मचर्योपपन्नम् । इत्यादि प्रकारकाधिकारिणे प्राप्ताय याथातथ्येन ब्रह्मविद्योपदेष्टव्या ॥ १३ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—गुरु को क्या करना चाहिये सो कहते हैं (सः, विद्वान्) वह विद्वान् गुरु (सम्यक्, प्रशान्त चित्ताय) अच्छे शान्त चित्त वाले जिस के मन में विषय संबन्धी सुख भोग की वासना नहीं उस (शमान्विताय) इन्द्रियों से भी शान्ति पूर्वक शुभ कर्म के सेवन करने वाले) उपसन्नाय) समीप आये हुए (तस्मै) उस योग्यके लिये (येन) जिस प्रकार के ज्ञानसे (अक्षरम्) अविनाशी (सत्यम्) सनातन (पुरुषम्) पूर्ण व्याप्त परमात्माको (वेद) जानता है (ताम्) उस प्रकार की (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्या को (तत्त्वतः) यथार्थ स्वरूप से (प्रोवाच) उपदेश करे ॥

भा०—अक्षर शब्द से प्रकृति का भी ग्रहण होता है इसी कारण यहां अक्षर शब्द से ब्रह्म का ग्रहण होने के अर्थ सत्य और पुरुष शब्द विशेषण होने को पढ़े हैं। जिस खेत में बोया बीज उत्पन्न नहीं होता वहां जैसे बुद्धिमान् किसान को न बोना चाहिये वैसे विद्वान् को उचित है कि कुपात्र को विद्या न देवे वेद में भी कहा है कि-हे विद्वान् जिसको तुम पवित्र अ-प्रमादी बुद्धिमान ब्रह्मचारी जानो उसे विद्या दो इत्यादि प्रकार के प्राप्त हुए अधिकारी पुरुष के लिये यथार्थ प्रकार से ब्रह्मविद्या का उपदेश करे ॥ १३ ॥

इति प्रथम मुण्डके द्वितीयः खण्डो मुण्डकश्च समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिङ्गाः स-
हस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाक्षरात्पुरुषाः सोम्य-
भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥ १ ॥

इदानीमस्याः कार्यसृष्टेरुपादानं दर्शयति—(यथा) येन प्रकारेण (सुदीप्तात्) सुष्ठुप्रज्वलितात् (पावकात्) अग्नेः सकाशात् (सरूपाः) तुल्यस्वरूपाः (विस्फुलिङ्गाः) (सह-स्रशः) (प्रभवन्ते) उद्गच्छन्ति । हे (सोम्य) सोममर्हत तत्सम्बोधने शान्तप्रज्ञ जिज्ञासो (तथा) तेनैव प्रकारेण (अक्ष-रात्) स्वरूपेणाविनश्वरात् कारणात् प्रधानात् (भावाः) भव-न्त्युत्पद्यन्ते ते भावाः कार्याणि वस्तूनि (पुरुषाः) साङ्गोपाङ्गाः प्राणिनिकायाश्च (प्रजायन्ते) उत्पद्यन्ते (तत्र, च, एव) तस्मिन्नेव प्रधाने कारणे (अपियन्ति) प्रलीयन्ते ॥

भा०—अक्षरशब्दोऽत्र कारणरूपायाः प्रकृतेः पर्यायः । प्रक-रणानुकूलं परमात्मनोऽपि वाचकोऽक्षरशब्दआयाति । अत्र चोत्तरमन्त्रेप्यक्षरशब्दोऽव्यक्तस्यैव वाचकोऽस्ति । इत्थमेव च तदेतत्सत्यमिति वक्तुमुचितम् । नहि जडस्योपादानं चेतनं ब्रह्मेति सत्यं भवितुमर्हति पुरुषशब्देन ब्रह्मतो जीवोत्पत्तिरप्य-सत्यैवास्ति । जीवो नित्यइति प्रमाणशतस्य विद्यमानत्वात् । यद्यात्मा मलिनोऽस्वच्छो विकारी स्यात्स्वभावतः । नहि तस्य भवेन्मुक्तिर्जन्मान्तरशतैरपीति च । अस्य शरीरादिकार्यस्य जगत उपादानं जडं प्रधानमेवास्ति नतु चेतनः परमात्मेत्याशयः ॥१॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—अब इस सृष्टि से उपादान कारण को दिखाते हैं—(यथा) जिस प्रकार से (सुदीप्तात्) अच्छे जले हुए (पावकात्) अग्नि से (सरूपाः) तुल्य रूप वाले (विस्फुलिङ्गाः) चिनगारे (सहस्रशः) हजारों (प्रभवन्ते) निकलते हैं। हे (सोम्य) शान्त बुद्धि वाले जिज्ञासु मनुष्य (तथा) वैसे ही (अक्षरात्) स्वरूपसे अविनाशी प्रकृति नामक कारण से (भावाः) उत्पन्न हुए कार्य्य पदार्थ और (पुरुषः) साङ्गोपाङ्ग प्राणियों के शरीर (प्रजायन्ते) उत्पन्न होते हैं और (तत्र, च, एव) उसी प्रधान कारण में (अपियन्ति) लय होते हैं ॥

भा०—यहां अक्षर शब्द कारणरूप प्रकृतिका पर्याय वाचक है। प्रकरणानुकूल परमात्माका वाचकभी अक्षर शब्द आता है। यहां अगले मन्त्र में भी अक्षर शब्द प्रकृति का ही वाचक है। इसी प्रकार (तत्, एतत् सत्यम्) यह कहना ठीक बनता है क्योंकि जड़ जगत् का उपादान कारण चेतन ब्रह्म का मानना कदापि सत्य नहीं हो सकता। और इस मन्त्र में पुरुष शब्द से ब्रह्म से जीव की उत्पत्ति मानना भी असत्य ही है क्योंकि जीव नित्य है इत्यादि सैकड़ों प्रमाण विद्यमान हैं। एक विद्वान् ने लिखा है कि यदि जीवात्मा मलिन अपवित्र और स्वभावसे विकारी—बनने बिगाड़नेवाला हो तो सैकड़ों जन्मों तक उपाय करने पर भी उसकी मुक्ति नहीं हो सकती इस कारण इस शरीरादि कार्य जगत् का उपा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दान कारण प्रकृति ही है किन्तु चेतन परमात्मा नहीं यह अभिप्राय है ॥ १ ॥

दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥ २ ॥

इतः पूर्वमन्त्रे जगत उपादानकारणमुक्तं ततो विलक्षणः परमात्मेत्युच्यते (सः) परोक्षः (पुरुषः) पूर्णो व्याप्तः परमात्मा (दिव्यः) दिवि प्रकाशस्वरूपे स्वात्मनि भवो विद्यमानः । नहि संसार्यात्मवदिन्द्रियादिषु स कदाचिदपि तदाकारवृत्तिर्भवति (हि, अमूर्त्तः) निश्चितः सूक्ष्मः । नहि मूर्त्तवस्तुषु तिष्ठन्नपि जीवात्मवन्मूर्त्तः प्रत्यवभासते । जीवात्मा तु शरीराभिमानी सन् शरीरवदवभासतइति दृष्टचरम् (बाह्याभ्यन्तरः) बाह्येनाभ्यन्तरेण च साकं वर्त्तमानः । लोके बाह्यं वस्त्वाभ्यन्तरं न भवति नचाभ्यन्तरं बाह्यमिति तद्वदैकान्तिको नास्ति (हि, अजः) कदाचिदपि कथमपि न जायते सर्वविधोत्पत्ति रहितः । यद्यपि जीवात्मा प्रकृतिश्चाजास्ति तथापि कथंचिदनयोर्जायमानत्वं स्वीकार्यं भवति । यथा जीवात्मा पुत्रादिरूपेण जायते प्रकृतेश्च विकारा घटपटादिरूपेण जायन्ते । स्वरूपेणाविकारित्वादनयोरजत्वं विद्वद्भिर्मन्यते । न तद्वत्परमात्मा क्वापि जायते । अतएव (अप्राणः) जीवात्मनीव प्राणसम्बन्धो यस्मिन् नास्ति (हि, अमनाः) यथा जीवात्मा मनोरूपसाधनेन विजानाति मनसस्तमसि लीने सुषुप्तस्तिष्ठति तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परेशो मनोऽन्तरेणैव सर्वं जानाति सुषुप्तश्च कदापि न भवति (शुभ्रः) शुद्धो निर्मलः (परतः) इन्द्रियादिभ्यः परस्मात् (अक्षरात्) स्वरूपेणाविनश्वरात् (परः, हि) सूक्ष्म एवास्ति नास्ति तस्मात्परं किमपि सूक्ष्मम् ॥

भा०—सर्वव्याप्तः प्रकाशमयो निराकारः सूक्ष्मतमः सर्वेन्द्रियसम्बन्धवर्जितः शुद्धः सनातनः प्रकृतेः परः परमेश्वर एव मुमुक्षणोपासितव्य इत्याशयः ॥ २ ॥

भाषार्थः—इससे पूर्व मन्त्र में जगत् का उपादान कारण कहा है उससे विलक्षण परमेश्वर है सो कहते हैं—(सः) वह परोक्ष (पुरुषः) पूर्णव्याप्त परमात्मा (दिव्यः) प्रकाशस्वरूप अपने स्वरूप से सदाविद्यमान रहने वाला अर्थात् संसार में फंसे जीवात्मा के तुल्य इन्द्रियादि में तदाकार वृत्ति वह कभी नहीं होता (हि) अमूर्त्तः) निश्चय कर सूक्ष्म अर्थात् स्थूल पदार्थों में विद्यमान रहता भी जीवात्मा के तुल्य शरीरधारी प्रतीत नहीं होता और जीवात्मा तो शरीर का अभिमानी हुआ शरीर के तुल्य अपने को मानता है यह प्रत्यक्ष है (बाह्याभ्यन्तरः) बाहरी और भीतरी सब पदार्थों के साथ वर्त्तमान है। लोक में बाहरी वस्तु कभी भीतरी नहीं होती और न भीतरी बाहरी होती है वैसे वह एकदेशी नहीं है (हि, अजः) कभी भी कैसे ही उत्पन्न नहीं होता अर्थात् सब प्रकार की उत्पत्ति से रहित है। यद्यपि जीवात्मा और प्रकृति भी उत्पन्न न होने से अज हैं तो भी किसी प्रकार इन दोनों का उत्पन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना मानना पड़ता है। जैसे जीवात्मा किसी के सम्बन्ध में पुत्रादिरूप से प्रकट होता और घटपटादिरूप से प्रकृति के विकार बनते हैं स्वरूप से अविकारी होने से इन दोनों का अनुत्पन्न होना विद्वान् लोग मानते हैं और परमात्मा इस प्रकार भी कहीं उत्पन्न नहीं होता इसी से (अप्राणः) जीवात्मा के तुल्य प्राण का सम्बन्ध जिसमें नहीं (हि, अमनाः) जैसे जीवात्मा मनरूप साधन से विचारता जानता है और तमोगुण में मन के लीन होने पर सुषुप्तिदशा में पहुँच जाता है वैसे परमेश्वर मन के विना ही सब जानता है तथा कभी सुषुप्ति में नहीं जाता (शुभ्रः) परमात्मा सदा शुद्ध निर्मल (परतः) इन्द्रियादि से पर सूक्ष्म (अक्षरात्) स्वरूप से अविनाशी प्रकृति से भी (परः, हि) अति सूक्ष्म ही है किन्तु उससे अधिक सूक्ष्म कोई नहीं ॥

भा०—सब में व्याप्त, प्रकाशरूप, निराकार, अत्यन्त सूक्ष्म, सब इन्द्रियों के सम्बन्ध से रहित, शुद्ध, सनातन और प्रकृति से परे जो परमेश्वर है वही मुमुक्षु पुरुष के उपासना करने योग्य है यह तात्पर्य जानो ॥ २ ॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥३॥

अ०—इतः पूर्वं परमात्मनः प्राणेन्द्रियेभ्यः पृथग्भावः प्रदर्शितः स च जन्यजनकसम्बन्धेऽपि प्राप्तस्तद्विधानार्थमिद-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माह (एतस्मात्) पूर्वोक्तात्सर्वप्राणेन्द्रियसम्बन्धविवर्जितात् निमित्तरूपात् परमात्मतः (प्राणः) अपानादिभेदभिन्नो दशविधः शरीरस्थः (मनः) अन्तःकरणचतुष्टयम् (सर्वेन्द्रियाणि) भौतिकानि ज्ञानेन्द्रियाणि कर्मेन्द्रियाणि च (खम्) आकाशः शब्दगुणः (वायुः) द्वितीयं तत्त्वं वायुः (ज्योतिः) अग्निः (आपः) उदकम् (च) अपि (विश्वस्य) सर्वस्य चराचरस्य (धारिणी) धारणकर्त्री (पृथिवी) (जायते) उत्पद्यते ॥ ३ ॥

भा०—सर्गारम्भे जीवात्मानं शरीरधारणाय प्रयोजकः सूत्रात्मा ज्योतिर्मयो कारणवायुर्जायते तस्य च प्रेरकः परमात्मास्ति तमेव केचित्महत्तत्त्वनाम्ना व्याप्रियन्ते प्राणशब्देन च जीवनहेतुत्वात्तस्यैवोपादानम्। ततो द्वितीयदशायां महतोऽहंङ्कार उत्पद्यते यंमनःशब्देनात्र व्यवहरन्ति। ततः सूक्ष्मभूतानि तन्मात्राख्यानि ततश्च स्थूलभूतानि प्रत्यक्षे दृश्यानि जायन्ते सर्वेषामेषामुत्पादकः परमात्मैवास्ति। अर्थात् तस्य सर्वस्मात्पृथक्त्वेऽपि कार्यकारणरूपेण जगता सार्कं जन्यजनकसम्बन्धोऽस्त्येव। सत्येतस्मिन् सम्बन्धे न कथंचित्परमेश्वरो जगता सह लिप्यत इति भूतपूर्वः प्रतिषेधः साधुरेवावगन्तव्यः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—इससे पूर्व परमेश्वर का प्राण और इन्द्रियों से पृथक् होना दिखाया है। वह उत्पन्न करने में भी प्राप्त है उसको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाने के लिये यह कहते हैं (एतस्मात्) पूर्वोक्त सब प्राण और इन्द्रियों से रहित निमित्तरूप परमात्मा से (प्राणः) अपानादि नाम वाला दश प्रकार का शरीरस्थ वायु (मनः) मन बुद्धि चित्त अहंकार (सर्वेन्द्रियाणि) भौतिक पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय (खम्) शब्दगुण वाला आकाश (वायुः) दूसरा तत्व-वायु (ज्योतिः) अग्नि (आपः) जल (च) और (विश्वस्य) सब चराचर पदार्थों की (धारिणी) धारण करने वाली (पृथिवी) पृथिवी (जायते) उत्पन्न होती है ॥

भा०—सृष्टि के आरम्भ में जीवात्मा को शरीर धारण करने के लिये प्रेरक ज्योतिःस्वरूप सूत्रात्मा कारण वायु प्रकट होता उस का प्रेरक परमेश्वर है उसी को कोई महत्तत्वनाम से कहते हैं तथा कोई तमोनुद कहते हैं जीवन का हेतु होने से उसी का नाम प्राण भी है उससे दूसरी दशा में महान् से अहंकार होता है उसी को यहां वेदान्त में मन कहते हैं उससे पीछे पञ्चतन्मात्र सूक्ष्मभूत और इनसे पीछे पंच स्थूल भूत प्रत्यक्ष में देखने योग्य उत्पन्न होते हैं। इन सबका उत्पादक परमात्मा ही है अर्थात् उसके सब से पृथक् होने पर भी कार्य कारणरूप जगत् के साथ जन्य जनक वा उत्पाद्य उत्पादक सम्बन्ध है ही। इस सम्बन्ध के होने पर भी परमेश्वर जगत् के साथ कदापि लिप्त नहीं होता इस लिये पहिले प्राणादि से पृथक कहना भी ठीक ही समझना चाहिये ॥ ३ ॥

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ दिशः श्रोत्रे वाग् विवृ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताश्चवेदाः । वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥

अ०—इदानीं विराट्रूपस्य वर्णनमाह (अस्य) परमात्मनः समुदितस्यैकीभूतस्य ब्रह्माण्डस्य च (अग्निः) सर्गारम्भे सर्वस्मात्पूर्वमुत्पन्नः सूक्ष्मरूपस्तमोनुदाख्यः (मूर्द्धा) सर्वादित्वाद्भोक्तृशक्तेरुत्तेजकत्वादुत्तमाङ्गत्वं च मुख्यः (चन्द्रसूर्यौ) मध्यान्तरिक्षवर्त्तिनौ सूर्याचन्द्रमसौ (चक्षुषी) चक्षुःस्थानीयौ। एताभ्यामहनि रात्रौ च सर्वान् सर्वं दर्शयति। ब्रह्माण्डस्थश्च सर्वएताभ्यामेव पश्यति । दर्शनहेतुत्वात्तयोश्चक्षुष्ट्वम् (दिशः) पूर्वादयः (श्रोत्रे) दिग्रूपेणावकाशदानात्सर्वं श्रावयति सत्येव चावकाशे ब्रह्माण्डस्थैः शब्दः श्रूयते (विवृताः) विस्तृताः (वेदाः) ऋग्वेदादयः (वाक्) जगदीश्वरो वेदैरेव मनुष्याय कर्त्तव्यमुपदिशति मनुष्याणां च सर्वो वाग्व्यापारो वेदादेव निस्सरति (वायुः, प्राणः) वायुनैव सर्वान् जीवयति वायौ सत्येव सर्वे जीवन्ति (विश्वम्) सर्वं चराचरं वस्तुजातम् (हृदयम्) हृत्स्थानीयं तदाधारत्वात् सर्वस्य परमात्मन्यवस्थितत्वात् (च) (पद्भ्याम्) पादरूपनिकृष्टसामर्थ्यात् (पृथिवी) जायते। यद्वाऽस्य परमात्मनः पादरूपा निकृष्टस्थानीया पृथिव्यस्ति (हि, एषः, सर्वभूतान्तरात्मा) इत्येवमुक्तप्रकारेण प्रसिद्धः सर्वव्यापी भगवान् सर्वभूतानां प्राणिनामन्तर्मध्ये निरन्तरं प्राप्तोऽस्ति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा—नह्यत्र परमात्मनः साकारत्वमुच्यतइति शङ्कनीयम्। परमेश्वरं सर्वव्यापिनं मन्येतइति विधीयते। तत्कथं सर्वव्यापिनं भावयेदित्युपदिश्यते। सर्वशब्दवाच्याश्चाग्न्यादयो येऽत्र संख्यातास्तेषु सर्वेषु पश्येत्। शरीरस्थितं जीवात्मानं यथा नेत्राद्यवयवैः कार्यमारभमाणं भावयन्त्यस्ति कश्चिच्चेतन आत्माऽस्मिन् कलेवरइति। तथैव ब्रह्माण्डे सूर्यचन्द्रनेत्राद्यवयवोपलक्षितैः कार्यमारभमाणो यः कश्चिदस्ति सएवेश्वरइति विभावयेत् ॥ ४ ॥

भाषार्थः—अब विराट्रूप का वर्णन करते हैं:—(अस्य) इस परमेश्वर का वा इकट्ठे हुए ब्रह्माण्ड का (अग्निः) सब से पहिले उत्पन्न हुआ सूक्ष्मरूप अन्धकार का नाशक कारणरूप तैजस तत्त्व सृष्टि के आरम्भ में सब का आदि होने और भोगने वाली शक्ति को उत्तेजित करने वाला होने से शिर के तुल्य मुख्य (चन्द्रसूर्यौ) मध्य आकाश में वर्त्तमान चन्द्रमा और सूर्य (चक्षुषी) नेत्रस्थानी हैं। परमेश्वर इन्हीं दोनों के द्वारा दिन और रात्रि में सबको सब वस्तु दिखाता है और सब ब्रह्माण्डस्थ प्राणी इन्हीं के प्रकाश द्वारा देखते हैं देखने के हेतु होने से सूर्य चन्द्रमा चक्षु हैं। (दिशः) पूर्वादि दिशा (श्रोत्रे) कान हैं। अवकाश देने से सब को सुनवाता है। अवकाश होने पर ही ब्रह्माण्डस्थ प्राणियों को शब्द सुन पड़ता है (विवृताः) विस्तृत (वेदाः) ऋग्वेदादि वेद जिसकी (वाक्) वाणी है। परमेश्वर वेदों द्वारा ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य के लिये कर्त्तव्य का उपदेश करता है और मनुष्यों का सब वाणी का व्यवहार वेद से ही निकलता है (वायुः) वायु जिसका (प्राणः) प्राण है अर्थात् वायु से ही सब को जीवित रखता और वायु के होने पर ही सब जीते हैं (विश्वम्) सब चराचर वस्तु मात्र जिसका (हृदयम्) हृदय स्थानी है क्योंकि वही सब का आधार उसी परमात्मा में सब की स्थिति है (च) और (पद्भ्याम्) (पृथिवी) जिसके पगरूप निकृष्ट स्थानी पृथिवी है । अथवा उसके पगरूप निकृष्ट सामर्थ्य से पृथिवी उत्पन्न हुई है (हि, एषः, सर्वभूतान्तरात्मा) इस उक्त प्रकार से प्रसिद्ध सब में व्याप्त होने वाला परमात्मा सब प्राणियों के हृदय में निरन्तर प्राप्त हो रहा है ॥

भा०—इस मन्त्र में परमेश्वर का साकार होना कहा गया है ऐसी शङ्का न करनी चाहिये क्योंकि यहाँ परमेश्वर को सर्व व्यापी मानना चाहिये ऐसा विधान है सो सर्वव्यापी की भावना कैसे करे यह उपदेश किया है । सर्व शब्द वाच्य अग्नि आदि पदार्थ जो इस मन्त्र में गिनाये हैं उन सब में परमेश्वर को देखे । शरीर में रहने वाले जीवात्मा को जैसे नेत्रादि अवयवों से कार्य करते हुए को विचारते हैं कि इस शरीर में कोई चेतन आत्मा है वैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य चन्द्रमा रूप नेत्रादि अवयों से कार्य चलाता हुआ जो कोई है वही परमात्मा है ऐसी भावना करे ॥ ४ ॥

तस्मादग्निः समिधो यस्य सूर्यः सोमात् पर्जन्य ओ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षधयः पृथिव्याम् । पुमान् रेतः सिञ्चति योषितायां बह्वीः प्रजाः पुरुषात्सम्प्रसूताः ॥ ५ ॥

अ०—इदानीं कार्यसृष्टावुत्पत्तिप्रकाराः प्रदर्श्यन्ते (तस्मात्) परमेश्वरात्पुरुषात् (अग्निः) भौतिकःस्थूलरूपो जाठरादिरूपश्चोत्पद्यते (यस्य) अग्नेः (सूर्यः) (समिधः) उत्तेजकोऽस्ति सूर्येण हि सर्वं प्रकाश्यते सूर्यप्रकाशेन प्रकाशितात् (सोमात्) चन्द्राग्नितः (पर्जन्यः) वायुदलो मेघः प्रभवति तस्मात् (पृथिव्याम्) पतितात् (ओषधयः) सम्भवन्ति (पुमान्) ता भुक्त्वा पुंस्त्वमापन्नः शरीरी (योषितायाम्) योषाग्नौ (रेतः) वीर्यम् (सिञ्चति) तस्मादपत्यानि जायन्ते। एवम् पूर्णात्परेशात् (बह्वीः) (प्रजाः) मनुष्याद्याः प्राणिनः (सम्प्रसूताः) समुत्पन्नाः ॥

भा०—भोक्तृशक्तेरुत्तेजकोग्निरेवास्यां सृष्टौ मुख्यः प्रलयेऽन्धकारएव प्रधानः । यत्र कीदृशं किं वा दृश्यमस्ति नास्ति वेति वक्तुमशक्यम् । द्रष्टापि तदानीं न कश्चिदस्ति। सृष्टौ च द्रष्टा दृश्यप्रकारा दर्शनहेतु तैजसमिति त्रयमेव स्पष्टतया प्रतीयते तत्राग्निरेव सर्वस्य सूर्यविद्युदादिरूपेण दर्शकः । एवंभूतस्याग्नेरप्युत्पादकस्य सर्वशक्तिमतोऽनुसन्धानं च मुमुक्षणा कार्यम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—अब कार्य सृष्टि में उत्पन्न हुए पदार्थों के प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाये जाते हैं (तस्मात्) उस पूर्ण व्याप्त परमेश्वर से (अग्निः) भौतिक स्थूलरूप और जाठरादिरूप अग्नि उत्पन्न होता है (यस्य) जिस अग्नि का (सूर्यः) सूर्य (समिधः) जलने वाले काष्ठों के तुल्य उत्तेजक है क्योंकि सूर्य से ही सब वस्तु प्रकाशित होती है सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित (सोमात्) चन्द्रमारूप शीतल अग्नि से (पर्जन्यः) बादल नामी मेघ उत्पन्न होता उस (पृथिव्याम्) पृथिवी में गिरे हुए मेघ जल से (ओषधयः) औषधियां उत्पन्न होतीं उन ओषधियों के फलरूप अन्न को खाकर (पुमान्) पुरुष घन को प्राप्त हुआ प्राणी (योषितायाम्) स्त्री रूप अग्नि में (रेतः) वीर्य को (सिञ्चति) छोड़ता है उससे सन्तान मनुष्य उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार (पुरुषात्) पूर्णव्याप्त परमेश्वर से (बह्वीः) बहुत (प्रजाः) मनुष्यादि प्राणी (सम्प्रसूताः) उत्पन्न हुए हैं ॥

भा०—भोगने वाली शक्ति को बढ़ाने वाला मुख्य कर इस सृष्टि में अग्नि ही है। प्रलय में अन्धकार ही मुख्य प्रधान है जहाँ कैसा अथवा क्या देखने योग्य है वा नहीं ऐसा कोई नहीं कह सकता। देखने वाला भी उस समय कोई नहीं रहता और रचना होने पर द्रष्टा देखने वाला देखने योग्य वस्तुओं के भेद और देखने का हेतु तैजस प्रकाश ये तीनों स्पष्ट रीति से प्रतीत होते हैं। इस जगत् में अग्नि ही सूर्य वा बिजुली आदि रूप से सब को दिखाने वाला है। इस प्रकार के अग्नि के भी उत्पन्न करने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हारे सर्वशक्तिमान् परम पिता परमात्मा का ध्यान वा विचार मुमुक्षु पुरुष को करना चाहिये ॥ ५ ॥

तस्माद्दचः साम यजूंषि दीक्षा यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च । संवत्सरं च यजमानश्च लोकाः सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः ॥६॥

अ०—सम्प्रसूताइति पूर्वमन्त्रादनुवर्त्तते (तस्मात्) आदिपुरुषाज्जगदीश्वरात् (ऋचः) नियताक्षरपादविशिष्टा ऋग्वेदमन्त्राः (साम) सामवेदः (यजूंषि) अनियताक्षरपादावसानानि यजुर्वेदवाक्यानि (दीक्षाः) ब्रह्मचर्याश्रमादिचिन्हधारणविशेषाः (च) अपि (यज्ञाः) अग्निहोत्रादयः सर्वे दर्शपौर्णमासादयो यज्ञाः (सर्वे) (क्रतवः) अग्निष्टोमवाजपेयादयः च अपि (दक्षिणाः) सर्वं सुवर्णादि धनं यद्यज्ञे ऋत्विगादिभ्यो दीयते (संवत्सरम्) उपलक्षणमेतत् कालविभागस्य (च) (यजमानः) यज्ञस्यानुष्ठाता (यत्र) (सोमः) चन्द्रमाः (यत्र) च (सूर्यः) (पवते) स्वस्वकिरणैर्वस्तूनि लोकेषु पुनाति ते (लोकाः) पृथिवीनक्षत्रादयः (यत्र कर्मानुगो यजमानो भ्रमति) उत्पन्नाः ॥

भा०—कर्मफलमनाश्रितेनाग्निहोत्रादियज्ञानुष्ठात्रा यजमानेन स्वकल्याणाय भावनीयो विषयउपदिश्यते—कर्मोपासनाज्ञानेषु पठितव्या वेदमन्त्रा यज्ञानामितिकर्त्तव्यता च परमा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मनैव वेदद्वारोपदिष्टा। दक्षिणाद्यर्थानि धनानि समयविभागो यत्र यज्ञोऽनुष्ठातव्यः। यज्ञस्य कर्त्ता कर्म साधकतममधिकरणं फलं च सर्वं तेनैव सृष्टं तस्यैव सर्वमिदं सएव सर्वस्याधिष्ठाताऽहंतु तस्याज्ञापालको भृत्यवत्कर्त्ता। दक्षिणादिकमहं च सर्वं तस्यैवेति ध्यायताभिमानस्त्याज्यइतिशम् ॥८॥

भाषार्थः—पूर्व मन्त्र से यहाँ सम्प्रसूताः पद की अनुवृत्ति आती है (तस्मात्) उस आदि पुरुष परमेश्वर से (ऋचः) जिनमें अक्षर और पाद नियत हैं कि एक पाद में इतने अक्षर हों और एक मंत्र में इतने पाद हों ऐसे ऋग्वेद के मन्त्र (साम) सामवेद (यजूंषि) जिनके अक्षर पादों की समाप्ति नियत नहीं ऐसे विषमछन्द युक्त यजुर्वेद के मन्त्र (दीक्षाः) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के भिन्न २ चिन्ह धारण करने (च) और (यज्ञाः) अग्निहोत्रादि महायज्ञ (च) तथा (सर्वे) सब सुवर्णादि धन जो यज्ञ में पुरोहितादि को दिया जाता है (संवत्सरम्) वर्ष मास पक्ष आदि काल का विभाग (च) और (यजमानः) यज्ञ करने वाला तथा (यत्र) जहाँ (सोमः) चन्द्रमा (यत्र, च) और जहाँ (सूर्यः) सूर्य लोक (पवते) अपने २ किरणों से लोकों में वस्तुओं को प्रकाशित करते वा शुद्ध करते हैं वे (लोकाः) पृथिवी और नक्षत्रादि लोक उत्पन्न हुए हैं कि जिन लोकों में अपने कर्मों के अनुसार यजमान भ्रमता है ॥

भा०—कर्म के फल का आश्रय न किये हुए अग्निहोत्रादि यज्ञ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने वाले यजमान को अपने कल्याण के लिये जैसा विचार करना चाहिये वह विषय अब कहते हैं। कर्म उपासना और ज्ञानकाण्डों में पढ़ने योग्य वेदमन्त्र परमेश्वर ने ही वेद द्वारा उपदेश किये हैं। दक्षिणादि के लिये धन, समय का विभाग जिसमें यज्ञ किया जाय इत्यादि प्रकार यज्ञ का करने वाला, कर्म, साधन, आधार और फल सब परमेश्वर ने ही रचा उसी का यह सब है वही सब का स्वामी है मैं तो उसकी आज्ञा का पालक नौकर के तुल्य करने वाला हूं दक्षिणादि तथा मैं सब उसी के हैं ऐसा ध्यान करते हुए यजमान को अभिमान छोड़ना चाहिये ॥ ६ ॥

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि। प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च ॥७॥

अ०—(तस्मात्, च) परमेश्वरादेव (बहुधा) बहुप्रकारका विलक्षणबुद्धयो नानाविद्यासु निष्णाताः पूर्वजन्मानुभूतशुभकर्मजन्यसंस्कारसंस्कृतप्रज्ञाः सिद्धाः (देवाः) निर्मलनिकाया गर्भादिदोषेभ्यः पृथग्भूता मैथुनसृष्टेः प्राक् (सम्प्रसूताः) उत्पन्नाः (साध्याः) वर्त्तमाने जन्मनि शुभकर्मानुष्ठानैः सिद्धिमाप्तुमर्हाश्च देवान्तराः (मनुष्याः) विशिष्टविद्याबुद्धिविहीनाः (पशवः) गवादयः (वयांसि) पक्षिणः (प्राणापानौ) जीवनहेतू उच्छ्वासनिःश्वासौ (व्रीहियवौ) हविष्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्थावन्नविशेषो (तपः) शरीरसंस्कारार्थं कर्माङ्गं चान्द्रायणादिव्रतधारणं (च श्रद्धा) यस्य गुणस्याश्रयेण प्रज्ञायास्तिक्यं कर्मणि प्रवृत्तिरुत्साहश्चित्तप्रसादश्च स श्रद्धारूपो गुणः (सत्यम्) यथाभूतस्यार्थस्य कथनं प्रियं च (ब्रह्मचर्यम्) उपस्थेन्द्रियनिग्रहः (विधिः,च) आज्ञा च-इदमित्थं कर्त्तव्यमिति ॥

भा०—मनुष्येष्वनेकभेदाः सन्ति तत्र देवाः पितरो मनुष्या इति त्रयः प्रधाना भेदाः। तत्र देवा द्विविधाः सिद्धाः साध्याश्च पूर्वजन्मानुभूतशुभकर्मसंस्कारैः शुद्धा धीमन्तः शीघ्रप्राप्तविद्या जन्मत एव धर्मात्मानः सिद्धाः। वर्त्तमानजन्मनि क्रियमाणकर्मसिद्धिं प्राप्तुमर्हाः साध्याः पितरो ज्ञानिनो मनुष्याः साधारणा विशिष्टविद्याबुद्धिरहितास्ततो विरुद्धाः परापकारायोद्यतास्तस्करादिनामभिः प्रसिद्धा असुरादिनामकाः। इत्यादयः पश्वादयश्च सर्वे सर्गारम्भे परमात्मत एवोत्पद्यन्ते ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(तस्मात्, च) उसी परमेश्वर से (बहुधा) बहुत प्रकार के विलक्षण २ बुद्धि वाले अनेक प्रकार की विद्याओं में निपुण पूर्वजन्म में अनुभव किये अच्छे कर्मों के सेवन से संचित हुए शुभ संस्कारों से शुद्ध की गई जिनकी बुद्धि है वे इष्टसिद्धि को प्राप्त (देवाः) निर्मलशरीर वाले गर्भादि में होने वाले दोषों से रहित मैथुनी सृष्टि से पहिले (सम्प्रसूताः) उत्पन्न हुए और (साध्याः) वर्त्तमान जन्म में शुभ कर्मों के सेवन से इष्ट सिद्धि को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राप्त होने योग्य द्वितीय प्रकार के देव होते हैं और तीसरे (मनुष्याः) विशेष विद्या बुद्धि रहित (पशवः) गौ आदि पशु (वयांसि) पक्षी (प्राणापानौ) जीवन के हेतु ऊपर और नीचे को चलने वाले वायुरूप प्राण (व्रीहियवौ) होमने योग्य धान और यव अन्न (तपः) शरीर की शुद्धि के लिये चान्द्रायणादि व्रत धारणरूप एक कर्म (च) और (श्रद्धा) जिस गुण के शरीर में होने से बुद्धि में आस्तिकपन, विश्वास, कर्म में प्रवृत्ति, उत्साह, और चित्त की प्रसन्नता होती है वह श्रद्धारूप गुण (सत्यम्) जैसा वस्तु हो वैसा तथा प्रिय वचन कहना (ब्रह्मचर्यम्) उपस्थ इन्द्रिय को वश में रखना (विधिः, च) और आज्ञा कि यह काम इस प्रकार करना चाहिये यह सब उसी परमेश्वर से उत्पन्न हुआ है ॥

भा०—मनुष्यों में अनेक भेद हैं उनमें तीन भेद मुख्य हैं देव, पितृ और मनुष्य, देव दो प्रकार के होते हैं सिद्ध तथा साध्य। पूर्व जन्म में सेवन किये शुभ कर्मों के सस्कारों से शुद्ध बुद्धिमान् शीघ्र ही विद्या को प्राप्त होने वाले और जन्म से ही धर्मात्मा सिद्ध देवता हैं और वर्त्तमान जन्म में क्रियमाण कर्मों से सिद्धि को प्राप्त होने योग्य साध्य कहाते हैं। दूसरे ज्ञानी मनुष्य पितर और विशेष विद्या बुद्धि रहित साधारण मनुष्य हैं तथा इनसे विरुद्ध पराई हानि करने को उद्यत तस्करादि नामों से प्रसिद्ध असुरादि नाम वाले होते हैं इत्यादि मनुष्य और पशु आदि सब सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा से ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्सप्तार्चिषः समिध सप्तः होमाः । सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा गुहाशया निहिताः सप्तसप्त ॥ ८ ॥

अ०—(सप्तार्चिषः) सप्तविधान्यर्चींषि स्वस्वविषयबोधकानि येषां ते (सप्तहोमाः) सप्तविधा होमा आदानानि विषयग्रहणानि येषां ते (सप्त) (प्राणाः) बाह्यविषयग्रहणशक्तय. शिरस्था द्वे द्वे चक्षुःश्रोत्रनासिकानामेका च मुखस्य सप्तैव छिद्राण्यपि सन्ति (तस्मात्) आदिपुरुषात् (प्रभवन्ति उत्पद्यन्ते तथा (समिधः) इन्द्रियगोलकस्थप्राणशक्तीनां काष्ठान्यग्नेरिवोद्बोधकाः सप्तविधा विषयाः (इमे) प्रत्यक्षानि (लोकाः) दर्शनहेतूनि (सप्त) इन्द्रियच्छिद्राणि सन्ति (येषु) लोकेषु (गुहाशयाः) ध्यानादिसमये निद्रायां च गुहायां हृदयेऽन्तःकरणे शेरत इति गुहाशयाः (प्राणाः) जाग्रदादिसमये (चरन्ति) चलन्ति विचरन्ति । एवं भूताः प्राणाः परमात्मना प्रतिशरीरं (सप्तसप्त) (निहिताः) स्थापिताः ॥

भा० –सूक्ष्मा ज्ञानेन्द्रियशक्तयस्तासां गोलकानि विषयादयश्च सर्वं परमेश्वरेणैव सृष्टं प्रतिशरीरे स्थापितं च येनास्य जगतः सर्वो व्यवहारश्चलति । अतः सएव सर्वस्याध्यक्षः सर्वैर्जिज्ञासुभिरुपासनीयः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(सप्तार्चिषः) सात प्रकार की अपने २ विषय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को जताने वाली किरणें जिनकी हैं तथा (सप्तहोमाः) सात प्रकार की विषयग्रहण की शक्ति जिनमें हैं ऐसे (सप्त) सात (प्राणाः) शिर में रहने वाली-दो नेत्रों की, दो कान की, दो नासिका की और एक मुख की ये सात छिद्ररूप बाहरी विषय को ग्रहण करने वाली शक्ति (तस्मात्) उस आदि पुरुष परमात्मा से (प्रभवन्ति) उत्पन्न होती हैं तथा (समिधः) इन्द्रियों के गोलकों में रहने वाली प्राण की शक्तियों के अग्नि को काष्ठों के तुल्य उत्तेजित करने वाले सात प्रकार के विषय तथा (इमे) ये प्रत्यक्ष (लोकाः) देखने के हेतु (सप्त) इन्द्रियों के सात छिद्र हैं कि ये (येषु) जिनमें (गुहाशयाः) ध्यानादि वा निद्रा के समय में अन्तःकरण में सोने वाले (प्राणाः) प्राण जाग्रत् आदि दशा में (चरन्ति) विचरते हैं ऐसे प्राण परमात्माने प्रत्येक शरीरमें (सप्तसप्त) सात २ (निहिताः) स्थापित किये हैं ॥

भा०—ज्ञानेन्द्रियों की सूक्ष्म शक्तियां उनके गोलक और उन के विषयादि सब परमेश्वर ने ही रचे और प्रत्येक शरीर के साथ स्थापित किये हैं जिस से इस जगत् का सब व्यवहार चलता है इस कारण वही सब का अध्यक्ष और सब जिज्ञासुओं के उपासना करने योग्य है ॥ ८ ॥

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वेऽस्मात्स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः । अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा ॥ ९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—(अतः) अस्मादुक्तात्परमेश्वरादेव (सर्वे) (समुद्राः) क्षारादिनामकाः (च) (गिरयः) हिमालयादयः पर्वताः (अस्मात्) परमात्मतएव (सर्वरूपाः) पुरस्ताद्दक्षिणत उत्तरतो वा गामिन्यः (सिन्धवः) गङ्गाद्या नद्यः (अतः, च) अस्मादेवेश्वरान्निमित्तात् (सर्वाः, ओषधयः) यवाद्याः समुत्पन्नास्तासां परिणतस्तन्मूलफलादिभक्षणेन निष्पन्नः(रसः, च) रसोऽपि परमात्मनिमित्तादेव जातोऽस्ति (येन) रसेन धातुना परिणतैः (भूतैः) पञ्चभूतमयैर्मांसादिधातुभिः (पुरुषः) ज्ञानपूर्वकक्रियाकरणेन प्रत्यक्षः (अन्तरात्मा) अन्तः—हृदयाकाशे शरीरमध्येऽतति निरन्तरं प्राप्नोति बुद्धिवृत्तिभिर्मनसा वा रमतइति—अन्तरात्मा सलिङ्गशरीरो जीवात्मा (हि) निश्चयेन (तिष्ठते) तत्सर्वं परमात्मतएवोत्पन्नमिति सम्बन्धः ॥

भा०—परमात्मानं जिज्ञासुभिरेवमपि तस्यानुसन्धानं कार्यम्। प्रत्यक्षे दृश्यमानं पर्वतनदीसमुद्रजलान्नादिकं सर्वं प्राणिनामुत्पत्तिस्थितिहेतुकं यस्मान्निमित्तादुत्पन्नं सएवास्माभिरुपास्यः । नहि कार्यं किमप्यकर्तृकं भवितुमर्हति तस्माद्योऽस्य कर्त्ता स एवेश्वरइति भावनीयम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(अतः) इस उक्त परमेश्वर से ही (सर्वे) सब (समुद्राः) खारा समुद्र आदि (च) और (गिरयः) हिमालय आदि पहाड़ (अस्मात्) इस परमेश्वर से ही (सर्वरूपाः) पूर्व दक्षिण वा उत्तर को चलने वाली सब प्रकार की गङ्गादि नदियां (अतश्च) और इसी परमेश्वररूप निमित्त से (सर्वाः) सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ओषधयः) ओषधियां उत्पन्न हुई हैं उन ओषधियों के मूल वा फलरूप अन्न आदि के भक्षण से परिणाम को प्राप्त होकर सिद्ध हुआ (रसः, च) रस भी परमेश्वर ने ही उत्पन्न किया है (येन) जिस परिणाम को प्राप्त हुए धातुरूप रस से (भूतैः) बनने वाले पंचभूत रूप मांसादि धातुओं से (एषः) यह ज्ञान पूर्वक क्रिया करने से प्रत्यक्ष (अन्तरात्मा) शरीर के बीच हृदयरूप अवकाश में प्राप्त होने वाला बुद्धि की वृत्तियों वा मन के साथ रमण करता हुआ लिङ्ग शरीर के सहित जीवात्मा (हि) निश्चय करके (तिष्ठते) स्थित होता अर्थात् शरीर में ठहरता है। यह सब परमात्मा से ही उत्पन्न हुआ है ॥

भा०—परमेश्वर को जानने की इच्छा रखने वाले पुरुषों को इस निम्न लिखित प्रकार भी उसका अनुसन्धान करना चाहिये—प्रत्यक्ष में दीख पड़ने वाले पर्वत नदी समुद्र जल और अन्नादि सब पदार्थ (जिनसे प्राणधारियों के शरीरों की उत्पत्ति स्थिति होती है) जिस निमित्त कारण परमेश्वर से उत्पन्न हुए हैं उसीकी उपासना हमको करनी चाहिये क्योंकि बनावटी कोई वस्तु विना बनाने वाले के नहीं बन सकती। इसलिये जो इस सब प्रत्यक्ष बनावटी जगत् का कर्त्ता वही ईश्वर है ऐसी भावना करनीचाहिये।

पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्मपरामृतम्। एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ॥१०॥

अ०—अस्या उपनिषदः प्रारम्भे तृतीयमन्त्रे शौनकेना-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ङ्गिरसं प्रति पृष्टम्। ततोऽङ्गिरा एतावदुक्त्वोपसंहरति—हे (सोम्य) प्रिय शिष्य शौनक! (कर्म) क्रियामात्रम् (तपः) ज्ञानम् (परामृतम्) परं प्रकृष्टमुत्तमं च तदमृतमविनाश्यनादि नित्यम् (ब्रह्म) वेद (इदम्) प्रत्यक्षे दृश्यमानं जगच्च (विश्वम्) सर्वम् (पुरुषएव) पूर्णे व्याप्ते परमात्मन्येवास्ति सएव सर्वस्याधारः। अर्थादीदृशो महान् सोऽस्ति यस्य मध्येऽनन्तत्वेन प्रतीयमानमपि जगत्प्रविष्टमेकदेशिवद्वर्त्तते। यद्येवं बृहदस्ति तर्हि कथं ज्ञातुमर्हइत्याह—(यः) पुरुषः (एतत्) उक्तं ब्रह्म (गुहायाम्) स्वस्य बुद्धौ (निहितम्) स्थितम् (वेद) जानाति (सः) (अविद्याग्रन्थिम्) अविद्याया बन्धनहेतुकाया रज्जोरिव ग्रन्थिम् (इह) संसारे (विकिरति) छिनत्ति॥

भा०—यद्यपि परमेश्वरः सर्वस्मान्महानस्ति, नास्ति तस्मादधिकं महत्तरं तत्तुल्यं वा किमपि तथापि सर्वस्मिन् प्रविष्टो निर्मलदर्पणे रूपमिव शुद्धान्तःकरणे सत्येव जिज्ञासुनोपलभ्यते नहीतस्ततो भ्रमितव्यम्। उपायमनुतिष्ठता जिज्ञासुना स्वस्यैव हृदये भावनीयः॥ १०॥

भाषार्थः—इस मुण्डक उपनिषद् के प्रारम्भ के तृतीय मन्त्र में शौनक ऋषि ने अङ्गिराऋषि के प्रति पूछा है तिस पर अंगिरा इतना उपदेश कह कर अन्त में दिखाते हैं कि हे (सोम्य) प्रिय शिष्य शौनक (कर्म) क्रियामात्र (तपः) ज्ञान (परामृतम्) सब से उत्तम और अविनाशी नित्य (ब्रह्म) वेद तथा (इदम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह प्रत्यक्ष में दीख पड़ने वाला (विश्वम्) सब जगत् (पुरुषएव) पूर्णव्याप्त परमात्मा में ही ठहरा हुआ है वही सब का आधार है। अर्थात् वह ऐसा बड़ा है जिसके बीच में अनन्त प्रतीत होने वाला जगत् भी एक देशी के तुल्य प्रविष्ट हो रहा है। जब ऐसा बड़ा है तो हम अल्प सामर्थ्य वाले कैसे उसको जान सकते हैं सो कहते हैं (यः) जो (एतत्) इस उक्त परमेश्वर को (गुहायाम्) बुद्धि में (निहितम्) स्थित (वेद) जानता है (सः) वह (अविद्याग्रन्थिम्) बन्धन की हेतु रस्सी के तुल्य अविद्या की गांठ को (इह) इस जगत् में (विकिरति) काट देता है ॥

भा०—यद्यपि परमेश्वर सब से बड़ा है उससे अधिक बड़ा वा उसके तुल्य कोई नहीं है तो भी जगत् में प्रविष्ट निर्मल दर्पण में रूप दीखने के तुल्य शुद्ध अन्तःकरण होने पर ही जिज्ञासुपुरुष को प्राप्त होता है। इधर उधर भटकना नहीं चाहिये। उपाय करने वाले को अपने अन्तःकरण में ही ध्यान करना चाहिये ॥१०॥

॥ इति द्वितीय मुण्डके प्रथमखण्डः समाप्तः ॥

आविः सन्निहितं गुहाचरन्नाममहत्पदमत्रैतत्समर्पितम्। एजत्प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं परं विज्ञाना द्यद्वरिष्ठं प्रजानाम् ॥ १ ॥

अ०—प्रथमखण्डे यस्माद्ब्रह्मण उत्पत्तिर्दर्शिता तस्याश्च द्वितीयखण्डे स्वरूपं निरूप्यते (आविः) योगिनां ज्ञानिनां हृदये आविर्भूतम् (सन्निहितम्) सदा तेषां समीपस्थम्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(गुहाचरत्) ज्ञानिनां बुद्धिवृत्तिषु विद्यमानम् (नाम) प्रसिद्धम् (महत्) (पदम्) प्राप्तुं योग्यम् (प्रजानाम्) राज्ञोपेक्षयेव निकृष्टानां लौकिकविज्ञानवतां बुद्धिमतां मनुष्याणाम् (विज्ञानात्) शिल्पज्ञानात् (परम्) दूरमविज्ञातम् (वरिष्ठम्) वरेषूत्तमेषूत्तमतरमतएव (वरेण्यम्) ज्ञातुमभिलषितव्यम् (सत्) ज्ञानिनां बुद्धौ विद्यमानम् (असत्) लौकिकसुखभोगासक्तानां प्रज्ञायामविद्यमानमेवंभूतं यद् ब्रह्मास्ति । हे मनुष्याः (एजत्) कम्पमानं वृक्षादिकम् (प्राणत्) प्राणक्रियाविशिष्टं मनुष्यपश्वादिकं प्राणिमात्रम् (निमिषत्) प्राणक्रियारहितं मरणावसरं प्राप्तम् (च) अनिमिषदपि मृतं मृत्पाषाणादिकं (यद्, एतद्) सर्वं जगद् यूयम् (जानथ) जानीथ तत् (एतत्) (अत्र) यस्मिन् ज्ञानिभिः स्वान्तःकरण एवोपलभ्यमाने ब्रह्मणि (समर्पितम्) संलग्नम् (अस्य) जगतस्तदेवाधाररूपमस्ति ॥

भा०—यस्मिन् ब्रह्मणीदं जगदुत्पत्तिस्थितिप्रलयदशात्रये तिष्ठति तदेवं बृहत्सदपि सर्वत्र व्याप्तत्वाद् ज्ञानिभिः स्वहृदये प्रकाशमानमानन्दस्वरूपं योगाभ्यासेनोपलभ्यते । अन्यैश्च जन्मसहस्रेष्वपि प्राप्तुमशक्यम् । ब्रह्मज्ञान्यपेक्षया लौकिका विद्वांसोऽप्यज्ञानिनएव तेषां तीव्राऽपि बुद्धिर्ब्रह्मणि न गच्छति ॥ १ ॥

भाषार्थः—प्रथमखण्ड में जिस ब्रह्म से उत्पत्ति दिखाई है उसी का इस दूसरे खण्ड में स्वरूप निरूपण करते हैं (आविः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी योगी लोगों के हृदय में प्रकट स्वरूप (सन्निहितम्) सदा उनके समीपस्थ (गुहाचरत्) ज्ञानियों की बुद्धि की वृत्तियों में विद्यमान (नाम) प्रसिद्ध (महत्) सब से बड़ा (पदम्) प्राप्त होने योग्य (प्रजानाम्) जैसे राजा की अपेक्षा प्रजा निर्बल वा नीच होती वैसे परमेश्वर की अपेक्षा नीची दशा में स्थित सब मनुष्यों के (विज्ञानात्) शिल्प सम्बन्धी ज्ञान से (परम्) दूर (वारिष्ठम्) सब उत्तम पदार्थों में अत्यन्त उत्तम इसी कारण (वरेण्यम्) जिस को जानने की अभिलाषा करनी चाहिये (सत्) ज्ञानी लोगों की बुद्धि में विद्यमान (असत्) लौकिक सुख भोग में आसक्त मनुष्यों की बुद्धि में अविद्यमान जो ब्रह्म है। हे मनुष्यो (एजत्) वायुद्वारा हिलने वाले वृक्ष घासादि (प्राणत्) प्राण की क्रिया वाले अर्थात् श्वास वाले मनुष्य पशु आदि प्राणी मात्र और (निमिषत्) प्राण चेष्टा से रहित मरण को प्राप्त (च) तथा मरे हुए वा मट्टी पत्थर आदि जड़ पदार्थ (यत्, एतत्) जो इस सब (अत्र) इस ज्ञानियों को अपने ही अन्तःकरण में प्राप्त होने योग्य ब्रह्म में (समर्पितम्) संयुक्त स्थित है अर्थात् इस जगत् का वही ब्रह्म आधारस्वरूप है ॥

भा०—जिस ब्रह्म में यह जगत् उत्पत्ति स्थिति प्रलय तीनों दशा में स्थित रहता वह ऐसा बड़ा होने पर भी सर्वत्र व्याप्त होने से ज्ञानी लोगों को योगाभ्यास द्वारा अपने हृदय में प्रकाशमान आनन्दस्वरूप ब्रह्म प्राप्त होता है। अज्ञानी लोग हजारों जन्मों में भी उसको प्राप्त नहीं हो सकते। और ब्रह्मज्ञानी वा जीवन्मुक्त की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा लौकिक विद्वान् भी अज्ञानी ही माने जाते हैं उनकी लोक में तीव्र बुद्धि भी ब्रह्म में नहीं पहुँचती ॥१॥

यदर्च्चिमद्यदणुभ्योऽणु यस्मिन् लोका निहिता लोकिनश्च । तदेतदक्षरं ब्रह्म स प्राणस्तदुवाङ्मनः । तदेतत्सत्यं तदमृतं तद्वेद्धव्यं सोम्य विद्धि ॥ २ ॥

अ०—पुनस्तदेवोच्यते हे (सोम्य) प्रिय शिष्य (यत्) (अर्चिमत्) सर्वप्रकाशहेतुत्वाद् दीप्तिमत् (यत्) (अणुभ्यः) सूक्ष्मेभ्यः प्रकृत्यादिभ्यः (अणु) सूक्ष्मतरम (यस्मिन्) ब्रह्मणि (लोकाः) दृष्टिपथगताः पृथिव्यादयः (लोकिनः) लोका येषां सन्ति ते तत्र वस्तारो मनुष्यादयः प्राणिनः (निहिताः) स्थिताः (तत्, एतत्, ब्रह्म) (अक्षरम्) अविनश्वरम् (सः) (प्राणः) सर्वस्य जीवनहेतुः (तत्, उ) तदेव (वाङ्मनः) वाचां वेदरूपस्य मननशक्तेश्च निमित्तम् (तत्, एतत्) ब्रह्म (सत्यम्) सदैकरसतया विद्यमानम् (तत्, अमृतम्) न कदापि म्रियते (तत्, वेद्धव्यम्) मनसा ताड्यम् । मनस्तस्मिन् चालयितव्यम् । एवं प्रकारेण (विद्धि) जानीहि ॥

भा०—यथाऽत्यन्तसूक्ष्मस्य लक्ष्यस्य वेधनं कठिनं भवति तथैव सर्ववस्तुमात्रात्सूक्ष्मतरस्य ब्रह्मणो ज्ञानं क्लिष्टमस्ति तत्र मुहुर्मुहुर्मनश्चालनेन कर्तव्यं नहि तत्सुगमतया कश्चिज्ज्ञातुं शक्नोति ॥

भाषार्थः—फिर उस विषय को कहते हैं—हे (सोम्य)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रिय शिष्य शौनक (यत्) जो (अर्चिमत्) सब सूर्यादि प्रकाशक पदार्थों का कारण होने से दीप्तिवाला (यत्) जो (अणुभ्यः) प्रकृति आदि सूक्ष्मपदार्थों से भी (अणु) अतिसूक्ष्म (यस्मिन्) जिस ब्रह्म में (लोकाः) दृष्टि में आने वाले पृथिव्यादिलोक (च) और (लोकिनः) पृथिव्यादि में वसने वाले मनुष्यादि प्राणी (निहिताः) स्थित हैं (तत्, एतत्, ब्रह्म) वह यह ब्रह्म (अक्षरम्) अविनाशी (सः) वह (प्राणः) सब का जीवन हेतु (तत्, उ) वही (वाङ्मनः) वेदरूप वाणी और मननशक्ति का निमित्त (तत्, एतत्) वही ब्रह्म (सत्यम्) सदा एकरस रूप से विद्यमान (तत्, अमृतम्) वह कभी नहीं मरता (तत्) उसे (वेद्धव्यम्) मन से ताड़ित करना चाहिये अर्थात् उसकी ओर बार २ मन लगाओ इस प्रकार से उसको (विद्धि) जानो ॥

भा०—जैसे अति सूक्ष्म लक्ष्य का बींधना कठिन है वैसे सब वस्तुमात्र से अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म का ज्ञान भी बहुत कठिन है उस में बार २ मन को चला कर ज्ञान करना चाहिये क्योंकि सुगम रीति से ब्रह्म को कोई नहीं जान सकता ॥ २ ॥

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं शरं ह्युपासा निशितं सन्धीयत । आयम्य तद्भावगतेन चेतसा लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि ॥ ३ ॥

अ०—इदानीमङ्गिरा ऋषिः शौनकं संबोधयन्नुक्तं वेद्धव्यं च स्पष्टयन्पुनराह—हे (सोम्य) प्रियवर शौनक जिज्ञासुर्जनः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(औपनिषदम्) उपनिषत्सु ब्रह्मविद्योपपादकनिबन्धेषु भवं वक्ष्यमाणम् (महास्त्रम्) महच्च तदस्त्रम् (धनुः) धनुरिव लक्ष्यप्राप्तिहेतुकम् (गृहीत्वा) स्वीकृत्य तस्मिन्धनुषि (उपासा) ध्येयस्य ब्रह्मणो नित्यमभिध्यानेन (निशितम्) तीक्ष्णीकृतं (शरं, हि) तीक्ष्णबुद्धिरूपं बाणमेव (सन्धीयत) सन्धानं कुर्यात् । लक्ष्यब्रह्माभिमुखं योजयेदित्यर्थः (तद्भावगतेन) तस्य ब्रह्मणो भावो भावना तस्यां लब्धेन (चेतसा) मनसा आयम्य धनुराकृष्य (लक्ष्यम्) विध्येदिति शेषः । हे शौनक! एतेन कर्म्मणा (तदेव) पूर्वोक्तम् (अक्षरम्) अविनश्वरं ब्रह्मैव (विद्धि) जानीहि ॥

भा०—लौकिकलक्ष्यवद् ब्रह्मापि ताडितं खण्डितं वा भवेदिति माभूत्कस्यचिद्व्यामोहइति मन्त्रान्तःस्थेनाक्षरशब्देन ध्वन्यते । तथा लौकिकोऽयं दृष्टान्तो जिज्ञासोः सुलभतया बोधार्थः । यथा व्याधा लक्ष्ये बुद्धिवृत्तिमेकीकृत्य तन्मनसो भूत्वा विध्यन्ति स्वल्पेऽपि प्रमादे वेधनमसम्भवम् । एवमपि जिज्ञासुः सर्वतो बुद्धिवृत्तिमाकृष्य ध्येये ब्रह्मण्येव मुहुर्मुहुर्निवेशयेत् । एवं कृते दुःखाद्विमुच्यते ॥ ३ ॥

भाषार्थः—अब अङ्गिरा ऋषि शौनक को जानकर उक्त लक्ष्य को प्रकट करते हुए कहते हैं कि हे (सोम्य) प्रियवर शौनक जिज्ञासु पुरुष को योग्य है कि (औपनिषदम्) ब्रह्मविद्या सम्बन्धी पुस्तकों में जिसका विशेष व्याख्या है उस अगले मन्त्र में कहे (महास्त्रम्) बड़े शस्त्र (धनुः) धनुष के तुल्य लक्ष्य के प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने में हेतु वाचक शब्द को (गृहीत्वा) लेकर उस शब्दरूप धनुष में (उपासा) उपासना से (निशितम्) तीक्ष्ण किये (शरं हि) बुद्धिरूप बाण ही को संयुक्त करे (तद्भावगतेन) उसी ब्रह्म के ध्यान में लगे हुए (चेतसा) मन से (आयम्य) वाचकरूप धनुष को तान कर (लक्ष्यम्) लक्ष्य को प्राप्त होवे। हे शौनक इस प्रकार करने से (तदेव) उसी (अक्षरम्)अविनाशी परमात्मा को (विद्धि) जानो ॥

भा०—इस मन्त्र के अन्त में अक्षर शब्द कहने से यह भी प्रयोजन निकलता है कि लक्ष्य के तुल्य परमेश्वर भी मारा जाता हो ऐसी शङ्का किसी को न हो क्योंकि वह अविनाशी है। लौकिक दृष्टान्त का प्रयोजन यही है कि जिज्ञासु को सुगम रीति से बोध हो जावे। जैसे बहेलिया लोग लक्ष्य में बगुला के तुल्य चित्त को लगाकर प्रवृत्त होते हैं थोड़ा भी प्रमाद करें तो उनका कार्य सिद्ध होना असम्भव है। इसी प्रकार यहां भी जिज्ञासु मनुष्य अपनी बुद्धि को सब ओर से रोक कर उपास्य ब्रह्म में ही लगावे ऐसा करने से दुःख से छूट जाता है ॥ ३ ॥

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥ ४ ॥

अ०—पूर्वोक्तरूपकउपमानावयवैरुपमेयस्यैक्यं स्पष्टयति (प्रणवः) तस्य परमात्मनो वाचक ओमिति शब्दः (धनुः) (आत्मा हि) जीवात्मैव (शरः) बाणः (तद्ब्रह्म, लक्ष्यम्, उच्यते) (अप्रमत्तेन) प्रमादरहितेन ध्यानादिसाधनतत्परेण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(वेद्धव्यम्) विद्ध्वा च (शरवत्) लक्ष्ये लग्नबाणवत् (तन्मयः) तदाकारवृत्तिः (भवेत्) ॥

भा०—यथा बाणो लक्ष्यं प्रविशति तथैव सूक्ष्मा बुद्धिर्ध्यानाद्युपायेन जिज्ञासुना ब्रह्मणि प्रवेष्टव्या ॥ ४ ॥

भाषार्थः—पूर्व कहे रूपकालङ्कार में उपमान के अवयवों के साथ उपमेय की एकता दिखाते हैं:—(प्रणवः) उस परमेश्वर का ओम् शब्द ही (धनुः) उक्त लक्ष्य के बींधने में धनुष (आत्मा, हि) जीवात्मा ही (शर) बाण और (तत्, ब्रह्म, लक्ष्यम्, उच्यते) वह ब्रह्म लक्ष्य कहा जाता है। ऐसी दशा में (अप्रमत्तेन) अप्रमादी होकर ध्यानादि साधनों में तत्पर रहते हुए मनुष्य को (वेद्धव्यम्) लक्ष्य मारना चाहिये बींधकर (शरवत्) लक्ष्य में लगे बाण के तुल्य (तन्मयः) तदाकारवृत्ति वाला (भवेत्) होवे ॥

भा०—जैसे बाण लक्ष्य में प्रवेश करता वैसे ध्यानादि उपाय से सूक्ष्म हुई बुद्धि जिज्ञासु को ब्रह्म में प्रविष्ट करनी चाहिये ॥४॥

अस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षमोतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः। तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या वाचो विमुञ्चथ अमृतस्यैष सेतुः ॥ ५ ॥

अ०—पुनरपि तस्य स्वरूपं निरूप्यते (अस्मिन्) परमात्मनि (द्यौः) सूर्य्यादिलोकः (पृथिवी) (अन्तरिक्षम्, च) वायुमेघादीनामाधारश्च (सर्वैः) (प्राणैः, सह) (मनः, च) सर्वेन्द्रियैः सार्द्धं मनोपि (ओतम्) सूत्रे मणिगणाइवाश्रितम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एषः) योऽसौ (अमृतस्य) सर्वदुःखराहित्यस्य प्राप्तये (सेतुः) संसारसागरादुत्तरणहेतुः (तम्, एव, एकम्) अद्वितीयम् (आत्मानम्) परमात्मानम् (जानथ) जानीत (अन्याः) परमार्थापेक्षया भिन्नाः सांसारिकसुखप्रतिपादिकाः (वाचः) (विमुञ्चथ) परित्यजत ॥

भा०—इतः पूर्वं लक्ष्यवेधनरूपज्ञानं प्रस्तुतं तच्च लक्ष्यं कियदस्तीति वक्तुमुपक्रमते-नहि सांसारिकलक्ष्यवत्परिच्छिन्नमस्ति किन्तु सूर्यचन्द्रपृथिव्यादिकं सर्वं जगद्यस्यैकदेशे वर्त्तते तदेवं ब्रह्मलक्ष्यमस्ति तस्य प्राप्तिरपि तादृशेनैवोपायेन भवितुमर्हति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—फिर भी उस परमेश्वर के स्वरूप का निरूपण करते हैं (अस्मिन्) इस परमेश्वर में (द्यौः) सूर्यादि लोक (पृथिवी) पृथिवी (अन्तरिक्षम्) वायु और मेघादि के ठहरने का मध्य अवकाश तथा (सर्वैः) सब (प्राणैः, सह) इन्द्रियों के सहित (मनः, च) मन भी (ओतम्) सूत में मूंगा के तुल्य लगा है (एषः) जो यह (अमृतस्य) सर्व दुःखों से छूटने के लिये (सेतुः) संसार समुद्र से पार होने का कारण है (तम्) (एव) (एकम्) उसी एक (आत्मानम्) परमात्मा को (जानथ) जानो और (अन्याः) परमार्थ से भिन्न विरुद्ध केवल संसार के भोगों को कहने वाली (वाचः) वाणियों को (विमुञ्चथ) छोड़ो ॥

भा०—इससे पूर्व लक्ष्य की प्राप्तिरूप ज्ञान का प्रसङ्ग है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब वह लक्ष्य कितना बड़ा है इस बात को जताते हैं—संसारी लक्ष्य वस्तुओं के तुल्य वह परिच्छिन्न नहीं किन्तु सूर्य चन्द्रमा और पृथिवी आदि इस के एक देश में वर्त्तमान हैं वह ऐसा बड़ा अनन्त लक्ष्य है उस की प्राप्ति भी वैसे ही बड़े उपाय से हो सकती है ॥ ५ ॥

अराइव रथनाभौ संहताइव नाड्यः स एषोऽन्तश्चरतेबहुधा जायमानः। ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ॥ ६ ॥

अ—(यत्र) यस्मिन् हृदये यथा (रथानाभौ) रथचक्रस्य मध्यभागे (अराइव) इतस्ततः काष्ठानि संयोज्यन्ते तथा (नाड्यस्संहताः) एकीभूताः सन्ति तत्र योगिभिरुपलभ्यमानः (बहुधा, जायमानः) कर्म्मोपासनाज्ञानयोगाद्युपायैः प्रसिद्धिम्प्राप्यमाणः (सः, एषः, अन्तश्चरते) सर्वप्राणिनिकायेषु विचरति तम् (वः) युष्माकम् (पाराय) दुःखसागरात् तारणाय (स्वस्ति) कल्याणरूपम् (तमसः) अन्धकारात् (परस्तात्) पृथग्भूतम् (आत्मानम्) सर्वत्रव्याप्तम् (ओमित्येवं) ओमिति वाचकशब्दावलम्बनेनयूयम् (ध्यायथ) चिन्तयत ॥

भा०—इतः पूर्वमन्त्रे ज्ञेयस्यात्मनोऽनन्तत्वमुक्तम्। तत्र परिच्छिन्नस्य जीवात्मनः प्रवृत्तिः कथं स्यात्—इत्युच्यते—हृदयान्तर्वर्तिनीनाडीमार्गेण याश्चेतोवृत्तयो बहिर्निस्सरन्तिता अन्तर्निरुद्ध्य बहुकालं ध्यानेनात्मोपलभ्यते ॥ ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यत्र) जिस हृदय में (रथनाभौ) जैसे रथ के पहिये की पुट्ठी पर (अराइव) इधर उधर से लकड़ी जोड़ी जाती है वैसे (नाड्यः) नाड़ी (संहताः) नाभिचक्र में मिली है उसी हृदय में योगी लोग जिसको प्राप्त होते हैं (बहुधा, जायमानः) कर्म्म उपासना और ज्ञान योगादि अनेक प्रकार के उपायों से हृदय में प्रसिद्धि को प्राप्त होता हुआ (सः, एषः) वह परमेश्वर (अन्तश्चरते) सब प्राणियोंके हृदयों में साक्षीरूप होकर विचरता है उस (वः) तुम लोगों को (पाराय) दुःख सागर से पार होने के लिये (स्वस्ति) कल्याणरूप (तमसः) अन्धकार से (परस्तात्) परे (आत्मानम्) सर्वत्र व्याप्त परमेश्वर का (ओमित्येवम्) ओम् इस वाचक शब्द के अवलम्ब से तुम (ध्यायथ) ध्यान करो ॥

भा०—इससे पूर्व मन्त्र में जानने योग्य आत्मा का अनन्त होना कहा गया है उसमें परिच्छिन्न जीवात्मा की प्रवृत्ति कैसे हो इसलिये थोड़े अवकाश में प्राप्त हो सकना इस मन्त्र में दिखाया है अर्थात् हृदय में रहने वाली नाड़ियों के मार्ग से जो चित्त की वृत्तियाँ इन्द्रियों द्वारा बाहर निकलती हैं उनको भीतर रोक कर बहुत काल तक नित्य नियम पूर्वक ध्यान करने से परमात्मा प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः। मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः । क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे ॥ ८ ॥

अ०—इतः पूर्वं लक्ष्यवेधनदृष्टान्तेन ब्रह्मज्ञानस्योपायो दर्शितः । तत्र संजातब्रह्मज्ञाने मनुष्ये किं लक्ष्मास्तीत्युच्यते (तस्मिन्) इन्द्रियागोचरे परोक्षे (परावरे) परं सर्वेन्द्रियविषयादिभ्यः पृथग्भूतं शरीरत्रयसम्बन्धवर्जितं निर्गुणमवरं सृष्टिकर्तृत्वादिगुणान्वितं सगुणं तस्मिन्नुभयविधे ब्रह्मणि (दृष्टे) जिज्ञासुना साक्षात्कृते सति (अस्य) ब्रह्मज्ञानिनः (हृदयग्रन्थिः) हृदिस्था भोगवासना (भिद्यते) ग्रन्थिरिव विमुच्यते (सर्वसंशयाः) सर्वसन्देहाः (छिद्यन्ते) नश्यन्ति तेन चेतः समाहितं भवति (च) (कर्माणि) शुभाशुभमिश्राणि भोगोत्कण्ठया क्रियमाणानि (क्षीयन्ते) क्षीणानि भवन्ति ॥

भा०—यदा मनुष्यः प्रत्यहं योगाभ्यासेन ब्रह्मज्ञाने प्रयतते तदा समाधौ परमात्मानं साक्षात्कृत्वा वासनारूपेण बुद्धौ स्थिराः कामनास्तासां हेतूनि शुभाशुभमिश्राणि कर्माणि वासनाजन्यान् सर्वान्सन्देहांश्च समूलघातं हन्ति तदानीं सर्वबाधाविनिर्मुक्तो निरुपद्रवः शान्तस्तिष्ठति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—इससे पूर्व लक्ष्य वेधन के दृष्टान्त से ब्रह्मज्ञान का उपाय दिखाया है उनमें जिस मनुष्य को ब्रह्मज्ञान हो जाता है उसमें क्या चिन्ह है सो कहते हैं—(तस्मिन्) उस इन्द्रियों से अग्राह्य परोक्ष (परावरे) सब इन्द्रिय और विषयों से पृथक् तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थूल सूक्ष्म और कारण शरीरों के सम्बन्ध से रहित निर्गुण-पर और सृष्टि कर्तृत्व आदि गुणों से युक्त सगुण अक्षर इन दोनों प्रकार के ब्रह्म के (दृष्टे) जिज्ञासु पुरुष ने साक्षात् किये पर (अस्य) इस ब्रह्मज्ञानी की (हृदयग्रन्थिः) हृदय में स्थित वासनारूप गाँठ (भिद्यते) खुलजाती (सर्वसंशयाः) सब सन्देह (छिद्यन्ते) छिन्नभिन्न हो जाते जिससे चित्त में समाधान होता (च) और (कर्माणि) फल भोग की अभिलाषा से किये जानेवाले शुभ अशुभ वा मिले हुए कर्म (क्षीयन्ते) नष्ट हो जाते हैं ॥

भा०—जब मनुष्य प्रतिदिन ब्रह्मज्ञान होने के लिये योगाभ्यास द्वारा प्रयत्न करता है तब समाधि में परमेश्वर को साक्षात् जानकर वासनारूप से बुद्धि में स्थिर भोग की कामना, उनके कारण, शुभ अशुभ वा मिले हुए कर्म और वासना से होने वाले सब सन्देहों को निर्मूल नष्ट कर देता है उस समय सब बाधाओं से छूट कर निरुपद्रव शान्त हो जाता है ॥ ८ ॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ ९ ॥

अ०—(परे) बाह्यापेक्षया परभूते (हिरण्मये) ज्ञान प्रकाशस्वरूपे (कोशे) अन्तःस्थे हृदयावकाशे (यत्) (विरजम्) अविद्यारजोगुणादिदोषमलैर्विरहम् (निष्कलम्) कलाभिरवयवैर्निर्गतं निरवयवम् (ब्रह्म) सर्ववस्तुभ्यो महदात्मतत्त्वमस्ति (तत्) (शुभ्रम्) शुद्धम् (तत्) (ज्योतिषाम्) मन आदीनां प्रत्यगात्मस्थसुखदुःखादिप्रकाशकानामग्न्यादी-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नांबाह्यवस्तुप्रकाशकानामपि (ज्योतिः) प्रकाशकमिति (आत्मविदः) आत्मानं जीवात्मानं परमात्मानं च विदन्ति तत्त्वतो जानन्ति ते (विदुः) जानन्ति नत्वन्ये विषयभोगासक्ता ज्ञातुमर्हन्ति ॥

भा०—अस्मिन्नेव हृदयावकाशे ज्ञानप्रकाशमयेऽसेरिव कोशे शुद्धं सनातनमपरिच्छिन्नं निर्मलं निष्पापं निरञ्जनं प्रकाशकानामपि प्रकाशकं योगाभ्यासतत्परैः शुद्धात्मान्तःकरणैः शान्तैर्लौकिकसुखभोगाद्विरक्तमनस्कैर्विद्वद्भिरेव ज्ञायते नतु तद्विपरीतैरिति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(परे) बाहरी वस्तु की अपेक्षा शरीर के भीतर (हिरण्मये) ज्ञान प्रकाशस्वरूप (कोशे) भीतरी हृदय के अवकाश में (यत्) जो (विरजम्) अविद्या वा रजोगुण आदि दोषरूप मलों से रहित (निष्कलम्) निरवयव (ब्रह्म) सब वस्तुओं से बड़ा आत्मतत्व है (तत्) वह (शुभ्रम्) शुद्ध (तत्) और वह (ज्योतिषाम्) सुख दुःखादि के प्रकाशक भीतर रहने वाले मन आदि और बाहरी वस्तुओं के प्रकाशक अग्नि आदि का भी (ज्योतिः) प्रकाशक है ऐसा (आत्मविदः) जीवात्मा परमात्मा को तत्व से जानने वाले विद्वान् (विदुः) जानते हैं किन्तु अन्य विषय सम्बन्धी भोगों में आसक्त पुरुष नहीं जान सकते ॥

भा०—इसी ज्ञान प्रकाशस्वरूप हृदयावकाश (जो तलवार के मियाने के तुल्य बना है) में अपरिच्छिन्न विभु शुद्ध सनातन निष्पाप निर्मल निरञ्जन प्रकाशकों के भी प्रकाशक ब्रह्म को लौकिक सुख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोगों से जिनका मन विरक्त हो गया ऐसे योगाभ्यास में तत्पर शुद्धान्तःकरण वाले शान्तिशील विद्वान् लोग ही जानते हैं। किन्तु इनसे विपरीत लोग नहीं जान सकते ॥ ९ ॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ १० ॥

अ०—(तत्र) तस्मिन्ब्रह्मणि (न) (सूर्यः) (न, चन्द्रतारकम्) चन्द्रश्च तारकाश्चेति द्वन्द्व एकवद्भावः (भाति) (इमाः) प्रत्यक्षाः (विद्युतः) चाक्षुषतेजोऽभिभावुका अपि (न, भान्ति) तर्हि (अयम्, अग्निः, कुतः) प्रत्यक्षः पार्थिवोऽग्निः कथं भायात् किन्तु (तम्, एव, भान्तम्) प्रकाशयन्तम् सर्वम् सूर्यादिकम् (अनुभाति) तद्दत्तप्रकाशसम्प्राप्त्यैव प्रकाशते (तस्य) परमेश्वरस्य (भासा) दीप्त्या (इदम् सर्वम्) सूर्यादिकम् (विभाति) विस्पष्टतया प्रकाशते ॥

भा०—यदिदं प्रकाशकं सूर्यादि जगत्प्रत्यक्षतयोपलभ्यते, तद्विभाति तेषु च स्वतः प्रकाशो नास्ति किन्तु परमात्मा तान् सूर्यादीन् भाति स्वदत्तेन तेजसा प्रकाशयति सूर्यादयश्च तं प्रकाशयितुमशक्ताः। तस्य ततोऽधिकतेजस्कत्वात्। अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सूर्यादेः प्रकाशस्योपयोगो नापेक्षतेऽपितु बाधकं भवति ॥ १० ॥

भाषार्थः—(तत्र) उस ब्रह्म में (न, सूर्यः) न सूर्य (न,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्रतारकम्) न चन्द्रमा और तारे (भाति) प्रकाश करते तथा (इमाः) ये प्रत्यक्ष चमकने और (विद्युतः) नेत्र सम्बन्धी प्रकाश को देखने वाली बिजुली (न, भान्ति) प्रकाश नहीं करती तो (अयम्) यह पृथिवी पर प्रसिद्ध भौतिक (अग्निः) अग्नि (कुतः) कहां से प्रकाश करे क्योंकि सूर्य का प्रकाश वा तेज अग्नि से प्रबल है और भौतिक अग्नि का कारण भी सूर्य है जब उसमें कारण का प्रकाश नहीं पहुँचता तो कार्य का क्या पहुँचेगा किन्तु (तमेव, भान्तम्) उसी प्रकाशमान हुए के पीछे (सर्वम्) सब सूर्यादि (अनुभाति) उसके दिये प्रकाश को पाकर ही प्रकाशित होते हैं (तस्य) उस परमेश्वर की (भासा) दीप्ति से (इदम्, सर्वम्) यह सब सूर्यादि (विभाति) प्रत्यक्ष प्रकाश करते हैं ॥

भा०—जो यह सब का प्रकाशक सूर्यादि जगत प्रत्यक्षता से प्राप्त होता वही प्रकाशित है उनमें अपना स्वतःप्रकाश नहीं किन्तु परमात्मा उन सूर्यादि को अपने दिये तेज से प्रकाशित करता है और सूर्यादि उसको प्रकाशित नहीं कर सकते क्योंकि परमेश्वर उन सब से अधिक तेज वाला है इसी से ब्रह्मज्ञान के उपायों में सूर्यादि के प्रकाश का उपयोग अपेक्षित नहीं किन्तु नेत्र द्वारा देखने से ध्यान बटकर बाधा होती है ॥ १० ॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण । अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम्॥

अ०—ज्ञानिनां बुद्धौ (इदम्) प्रत्यक्षम् (अमृतम्) अविनश्वरम् (पुरस्तात्) समक्षे (ब्रह्मैव) अस्ति । अन्यच्च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वं जगन्नश्वरमेव विज्ञायते। तैः स्वस्य (पश्चात्) (ब्रह्म) (दक्षिणतः) (उत्तरेण, च, अधः, च, ऊर्ध्वम्, च) ब्रह्मैव स्थितमनुभूयते दृश्यते च प्रतिक्षणं तस्मिन्नेव चेतसो लग्नत्वात् (इदम्, विश्वम्) सर्वम् (वरिष्ठम्) सर्वोत्तमं ब्रह्मैवास्ति जगत्स्थं सर्वं वस्तुजातं वरिष्ठावरिष्ठमिश्रं तुच्छंवास्ति नहि केवलं वरिष्ठं किमप्यस्ति (इदम्) प्रत्यक्षम् (ब्रह्म, एव) (प्रसृतम्) नतु तद्वत्किमपि प्रसृतमस्ति तदपेक्षया सर्वस्याल्पत्वात्॥

भा०—ब्रह्मज्ञानिनां चेतस्सदाब्रह्मण्येव रमतेऽतस्ते सर्वदिक्षु सर्वदा सर्वथा सर्वावस्थासु सर्वस्मादुत्तमं ब्रह्मैव पश्यन्ति ध्यायन्ति च नान्यत्पश्यन्ति ध्यायन्ति वा प्रयोजनाभावात्॥ ११॥

भाषार्थः—ज्ञानियों की बुद्धि में (इदम्) यह प्रत्यक्ष (अमृतम्) अविनाशी (पुरस्तात्) सामने (ब्रह्मैव) ब्रह्म ही विद्यमान है तथा अन्य सब जगत् उनको नाशवान् ही दीखता है। उनको अपने (पश्चात्) पीछे (दक्षिणतः) दाहिनी ओर (उत्तरेण) बाईं ओर (च) तथा (अधः) नीचे (च) तथा (ऊर्ध्वम्) ऊपर (च) और सब ओर (ब्रह्म) ब्रह्म ही स्थित ज्ञान पड़ता है वा दीखता है क्योंकि उन लोगों का चित्त प्रतिक्षण उसी में लगा रहता है (इदम्, विश्वम्) यह सब (वरिष्ठम्) सर्वोत्तम ब्रह्म ही है जगत् में जितना पदार्थ है उसमें अच्छा बुरा मिला रहता है किन्तु केवल उत्तम ब्रह्म ही है (इदम्) यह प्रत्यक्ष (ब्रह्म, एव) ब्रह्म ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(प्रसृतम्) फैला है उसके तुल्य फैलाव किसी का नहीं क्योंकि उसकी अपेक्षा पृथिवी आकाशादि भी सब अल्प हैं ॥

भा०—ब्रह्मज्ञानियों का चित्त सदा ब्रह्म में ही रहता है इससे वे सब काल में सब दिशाओं में सब प्रकारों से सब अवस्थाओं में सब से उत्तम ब्रह्म को ही देखते वा जानते हैं किन्तु प्रयोजन न रहने से अन्य किसी को न देखते न ध्यान ही करते हैं ॥ ११ ॥

इति द्वितीयः खण्डो द्वितीयं मुण्डकं च समाप्तम् ॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥ १ ॥

अ०—पूर्वस्मिन् खण्डे मुख्यतया ब्रह्मात्मनएव वर्णनमस्ति तत्र सप्तममन्त्र इदमप्युक्तम् योऽसौ हृदयं सन्निधायान्ने प्रतिष्ठितः प्राणशरीरनेता जीवात्मास्ति तद्विज्ञानेन तस्य विज्ञानपुरस्सरमेव विद्वांसः परमात्मानं पश्यन्तीतितदर्थमस्मिन्खण्डे द्वयोरप्यात्मनोर्वर्णनं सहैवारभते सान्निध्यं साधर्म्यं च द्वयोरपि वक्तुमुपक्रमते-(सयुजा) व्याप्यव्यापकसम्बन्धेन घटाकाशाविव सहैव युक्तौ नास्त्यनयोः पृथग्भावः कदाचिदपि (सखाया) समाना ख्यातिः प्रकटतायाः कारणं योगाभ्यासशमदमतितिक्षोपरत्यादिसाधनं ययोस्तौ सखायौ आत्मेति समाननामानौ वा । अन्यत्र वा कृतसौहार्दौ (सुपर्णा) शोभनं पर्णं पतनं प्रापणं ययोस्तौ पक्षान्तरे दर्शनीयपक्षौ-पक्षिणौ (द्वा) जीवात्मपरमात्मानौ (समानम्) एकम् (वृक्षम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृश्च्यते छिद्यते-उत्पन्नं सत्पादपश्च नश्यति तच्छरीरं प्रकृतिस्थानीयं कार्यकारणरूपं भोग्यं जडं जगच्च (परिषस्वजाते) परितः सर्वतः सक्तौ कृतसङ्गौ वृक्षमारुह्य स्थिताविव्यर्थः (तयोः) द्वयोरात्मनोर्मध्ये (अन्यः) एको जीवात्मा (स्वाद्वु) स्वादिष्ठमभिलषितं कर्मणाम् (पिप्पलम्) फलमन्यत्र वृक्षफलम् (अत्ति) भक्षयति (अन्यः) तस्माज्जीवात्मतः स्वरूपतो भिन्नः परमात्मा (अनश्नन्) शुभाशुभकर्मभ्यस्तद्विपाकेभ्यश्चापरामृष्टः कर्मफलमभुञ्जानएव (अभिचाकशीति) साक्षित्वेन सर्वं शुभाशुभं पश्यति सर्वस्य कृत्यं याथार्थ्येन ज्ञात्वा तदनुकूले सुखदुःखफले ददाति ॥

भा०—अत्र रूपकालङ्कारेणात्मद्वयस्य वर्णनम् । ऋग्वेदेपीदृशएवायं मन्त्रः । जगति द्वावेवपदार्थौस्तः । भोक्ता भोग्यं चेतनं जडं पुरुषः प्रकृतिश्चेति ययोर्नाम्नी अभिधीयेते तत्र चेतनौ द्वौ स्तो जीवात्मा परमात्मा च तौ द्वावप्यात्मानौ सर्गस्थितिप्रलयदशासु परिणताया वृक्षरूपायाः प्रकृतेर्जड़स्याश्रयं कृत्वावस्थितौ तयोः परमात्मा स्वाभाविकशक्त्यैवास्य सर्गस्थितिलयान् कुर्वाणः सर्वत्र व्याप्तः सर्वान्तर्यामितया सर्वसाक्षीभूतः शुभाशुभकर्माणि तद्विपाकांश्चाननुभवन्नेव जन्ममरणजराव्याध्यादिवर्जितः सर्वबाधाविनिर्मुक्तो जीवात्मस्वरूपतः सदैव भिन्नः सर्गस्थितिलयदशासु प्रकृतिरूपं वृक्षमाश्रयते । द्वितीयो जीवात्मा कर्माणि तद्विपाकांश्चानुभवन् जन्ममरणजराव्याध्यादिजन्यबाधाश्च भुञ्जानः प्रकृतिकार्यमाश्र-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यते । इत्थंद्वयोर्ज्ञानं मनुष्येण सम्पाद्यम् । स्वात्मानं बद्धं ज्ञात्वैव मुक्तेर्यत्नः कर्त्तुं शक्यते नान्यथा ॥ १ ॥

भाषार्थः—इस से पहिले द्वितीय मुण्डक के द्वितीय खण्ड में मुख्यकर परमेश्वर का ही वर्णन है उस खण्ड के सातवें मन्त्र में यह भी कहा है कि जो अन्न के मिलने से हृदय में स्थित प्राण और शरीर का स्वामी जीवात्मा है उसको जानकर ही विद्वान् लोग परमात्मा को जानते हैं। इसलिये इस तृतीय मुण्डक के प्रथम खण्ड में दोनों आत्मा का वर्णन आरम्भ करते और दोनों की समीपता वा मेल दिखाते हैं (सयुजा) व्याप्य व्यापक सम्बन्ध से घटादि और आकाश के तुल्य सदा इकट्ठे रहने वाले अर्थात् इनका वियोग कभी नहीं होता (सखाया) योगाभ्यास, शम, दम, तितिक्षा और वैराग्यादि दोनों के जानने के एक ही साधन हैं वा दोनों का आत्मा यह एक ही नाम है तथा द्वितीय पक्ष में परस्पर मित्र (सुपर्णा) जिनकी प्राप्ति में सुख ही है ऐसे द्वितीय पक्ष में अच्छे पंखों वाले (द्वा) दो जीवात्मा परमात्मा वा पक्षी (समानम्) एक (वृक्षम्) उत्पन्न होकर नष्ट होने वाले प्रकृति स्थानी शरीर वा कार्य कारणरूप भोग्य जड़ जगत् को द्वितीय पक्ष में वृक्ष को (परिषस्वजाते) सब ओर से प्राप्त हैं अर्थात् इस वृक्ष पर ही रहते हैं (तयोः) उन दोनों आत्मा वा पक्षियों में से (अन्यः) एक जीवात्मा वा पक्षी (स्वादु) अपनी इच्छा से स्वादिष्ट कर्मों के वा वृक्ष के (पिप्पलम्) फल को (अत्ति) खाता है (अन्यः) और द्वितीय उस जीवात्मा के स्वरूप से भिन्न परमा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मा वा द्वितीय पक्षी (अनश्नन्) कर्म और उन के फल का अनुभव न करता हुआ वा वृक्ष फल का त्यागी हुआ (अभिचाकशीति) साक्षीरूप से सब शुभ अशुभ कर्मों को देखता है और यथार्थ जान कर कर्मों के अनुकूल सुख दुःख फल देता है ॥

भा०—इस मन्त्र में रूपकालङ्कार के साथ दोनों आत्मा का वर्णन है। और यह मन्त्र ऐसा ही ऋग्वेद में भी आता है। जगत् में दो ही पदार्थ हैं जो भोक्ता, भोग्य जड़, चेतन प्रकृति और पुरुष नामों से कहे जाते हैं। उन में चेतन के दो भेद हैं एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। वे दोनों आत्मा उत्पत्ति स्थिति और प्रलय दशा में परिणाम को प्राप्त होने वाली वृक्षरूप जड़ प्रकृति का आश्रय कर स्थिति रहते हैं। उन दोनों में से परमेश्वर स्वाभाविक अपनी शक्ति से ही इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय को करता हुआ सर्वत्र व्याप्त सबका अन्तर्यामी होने से सबका साक्षी हुआ शुभ अशुभ कर्म और उन के फलों का अनुभव न करके जन्म, मरण, वृद्धावस्था और सब व्याधियों से रहित सब दुःखों से छूटा हुआ और जीवात्मा के स्वरूप से सदा भिन्न उत्पत्ति स्थिति और प्रलय तीनों जगत् की अवस्थाओं में प्रकृतिरूप वृक्ष का आश्रय करता है। और द्वितीय जीवात्मा कर्मों तथा उनके फलों का अनुभव करता तथा जन्म, मरण वृद्धावस्था और रोगादि से होने वाले दुःखों को भोगता हुआ प्रकृति के कार्य शरीरादि जगत् का आश्रय करता है इस प्रकार दोनों का ज्ञान मनुष्य को करना चाहिये क्योंकि अपने आत्मा को बद्ध जान कर ही मुक्ति का यत्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करना बन सकता है। अन्यथा यदि जीवात्मा को बद्ध न मानें किन्तु नवीन वेदान्तियों के तुल्य जीव ब्रह्म को स्वरूप से एक माना जावे तो मुक्ति का उपाय करना ही निरर्थक है क्योंकि ब्रह्म तो मुक्त ही है ॥ १ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ २ ॥

अ०—(समाने) एकस्मिन् जड़े (वृक्षे) नश्वर शरीरादौ जगति (पुरुषः) जीवात्मा (निमग्नः) राग द्वेषादिभिर्लिप्तो वासनारश्मिभिर्बद्धः (मुह्यमानः) मोहेनाविद्यादिक्लेशेन ग्रस्तः (अनीशया) दुःखपाशान्निस्सर्त्तुमशक्तः (शोचति) भार्यापुत्रौ मे नष्टौ धनं मेऽपहृतं किं करोमि क्व गच्छामि नास्ति मम सामर्थ्यं यदेतस्माद्दुःखसागरात्पारं गच्छेयमिति शोकस्थानसहस्रैर्व्याकुलो भवति (यदा) सत्सङ्गतिविद्यायोगाभ्यासादिसाधनानि सेवमानः (अन्यम्) स्वतो भिन्नं निश्शोकम् (जुष्टम्) ज्ञानिभिर्योगिभिश्च सेवितम् (ईशम्) सर्वशक्तिमन्तम् (अस्य) ईशस्य (महिमानम्) जगद्रूपं महत्कर्म च (पश्यति) ध्यानादिना साक्षात्करोति (इति) एवं प्रकारेण (वीतशोकः) विगतशोको भवति ॥

भा०—यद्यप्येकस्मिन्नेव कार्ये जगति द्वावेवात्मानौ कृत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धौ स्तस्तथापि तयोर्जीवात्मा भोगासक्तत्वाच्छोकमोहादिजन्यदुःखमनुभवतीतरश्च परमात्मा शोकादिरहितः । यदा च योगाभ्यासादिना ज्ञानिज्ञेयं परेशं शोकहर्त्तारं साक्षात्करोति तदायं जीवात्मापि शोकमोहादीन् विहाय सुखी भवति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(समाने) एक ही जड़ (वृक्षे) नाशवान् शरीरादि जगत् में (पुरुषः) जीवात्मा (निमग्नः) रागद्वेष आदि से लिप्त और वासनारूप रस्सियों से बँधा (मुह्यमानः) अविद्यादि क्लेशों से ग्रस्त (अनीशया) दुःखरूप फाँसी से निकलने में असमर्थ (शोचति) शोचता है कि मेरे स्त्री पुत्र मर गये मेरा धन छिन गया अब मैं क्या करूँ ! कहाँ जाऊँ ! इस दुःखसागर से पार होने का मेरा सामर्थ्य नहीं है इत्यादि प्रकार सहस्रों प्रकार की शोक सम्बन्धी विपत्तियों से व्याकुल होता है (यदा) जब सत्संगति विद्या और योगाभ्यासादि साधनों का सेवन करता हुआ (अन्यम्) अपने से भिन्न सब शोकों से रहित (जुष्टम्) ज्ञानी और योगी लोगों से सेवित (ईशम्) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को और (अस्य) इस ईश्वर की (महिमानम्) जगत् की रचनारूप महिमा को (पश्यति) ध्यान दृष्टि से देखता है (इति) इस प्रकार वह भी (वीतशोकः) सब शोकों से रहित हो जाता है ।

भा०—यद्यपि एक ही जड़ कार्य जगत् में दोनों ही जीवात्मा परमात्मा सम्बन्ध किये हुए हैं तो भी उन में से जीवात्मा भोग में आसक्त होने से शोक मोहादि से होने वाले दुःख का अनुभव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करता और द्वितीय परमात्मा शोकादि से रहित है जब योगाभ्यासादि द्वारा ज्ञानियों से जानने योग्य शोकहर्त्ता परमेश्वर को साक्षात जान लेता है तब यह जीवात्मा भी शोक मोहादि को छोड़कर सुखी होता है ॥ २ ॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान् पुण्यपापे विधूय निरञ्जनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥

अ०—पुनस्तदेव पूर्वोक्तं स्पष्टीक्रियते (यदा) यस्मिन् योगसमाधिकाले (ब्रह्मयोनिम्) ब्रह्मणो वेदस्य योनिः कारणम् । शास्त्रयोनित्वादिति ब्रह्मसूत्रस्यैतदेव मूलम् । अस्य जगतः (कर्त्तारम्) निर्मातारम् (पुरुषम्) पूर्णं व्याप्तम् (रुक्मवर्णम्) प्रकाशमयम् (ईशम्) शर्वशक्तिमन्तं परमेश्वरम् (पश्यः) अन्तःकरणवृत्तिभिर्द्रष्टुं समर्थो ज्ञानी मनुष्यः (पश्यते) पश्यति ध्यानदृष्ट्या विजानाति (तदा) सः (निरञ्जनः) शोकमोहरागद्वेषादिभिर्निर्लिप्तः (विद्वान्) (पुण्यपापे) (विधूय) त्यक्त्वा (परमम्) अविद्यादिक्लेशराहित्यं कर्मतद्विपाकैश्चापरामृष्टत्वादिकम् (साम्यम्) समत्वम् (उपैति) प्राप्नोति ॥

भा०—यदा ज्ञानी जनो योगाभ्यासादिसाधनैः सर्वस्य मूलं परमेश्वरं विजानाति तदा स सर्वदुःखानि विहाय परमात्मवन्मुक्तो भवति । तत्रापि परेशो नित्य मुक्तोजीवात्मनश्च मुक्तिरनित्येति भेदोऽनुसन्धेयः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—फिर भी उसी पूर्वोक्त विषय को स्पष्ट कर कहते हैं—(यदा) जब योग समाधि काल में (ब्रह्मयोनिम्) ब्रह्मनाम वेद के उत्पादक (शास्त्रयोनित्वात्) इस वेदान्त के व्यास सूत्र में भी वेद का मूल कारण ब्रह्म ही माना है उस सूत्र का यही उपनिषद् वाक्य मूल है। इस जगत के (कर्त्तारम्) बनाने वाले (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त (रुक्मवर्णम्) प्रकाशमय (ईशम्) सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को (पश्यः) भीतरी ज्ञान वृत्तियों से देखने में समर्थ ज्ञानी पुरुष (पश्यते) देखता है अर्थात ध्यान दृष्टि से जानता है (तदा) तब (सः) वह (निरञ्जनः) शोक मोह राग द्वेषादि से पृथक् (विद्वान्) विद्यावान् पुरुष (पुण्यपापे) मिले हुए पाप पुण्यों को छोड़कर (परमम्) अविद्यादि क्लेशों से रहित तथा कर्म और उन की फलभोग सम्बन्धी वासना के संग से वर्जित होना रूप परमात्मा की (साम्यम्) तुल्यता को (उपैति) प्राप्त होता है ॥

भा०—जब ज्ञानी पुरुष योगाभ्यासादि साधनों से सब वस्तुओं वा विद्याओं के मूल कारण परमेश्वर को जानता है तब वह सब दुःखों को छोड़ कर परमात्मा के तुल्य मुक्त होता है तो भी परमात्मा नित्य मुक्त होने से कभी किसी प्रकार के बन्धन में नहीं आता परन्तु जीवात्मा की मुक्ति अनित्य है यह बड़ा भेद भी बना रहता है ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान् भवते नातिवादी। आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—(यः, एषः) योगिभिः कृतप्रत्यक्षः (प्राणः) स्वसत्तया सर्वप्राणिनां जीवनहेतुः परमात्मा (हि) एव। प्राणस्तथानुगमादिति व्याससूत्रेणापि प्राण इति ब्रह्मणो नाम स्थापितम् (सर्वभूतैः) सर्वप्राणिनिकायैः सह सर्वभूतहृद्देशस्थः (विभाति) साक्षिरूपेणान्तर्यामितया स्वनियमैर्वा सर्वं चराचरं प्रकाशयति [विद्वान्] ज्ञानी पुरुषस्तं प्राणम् [विजानन्] [अतिवादी] बहुभाषी [न, भवते] न भवति किन्तु यावत्प्रयोजनं मितमेव वदति सः [एषः] विद्वान् [आत्मरतिः] आत्मनि प्रत्यगात्मविचारे परमात्मनो ध्यान एव रतीरमणं रागः प्रीतिरस्य [आत्मक्रीडः] आत्मन्येव बाह्यसाधनापेक्षा क्रीडा यस्य। अर्थाद्बाह्यविषयेषु क्रीडां विहायात्मन्येव विहर्त्तुं शीलः। एवं सत्यपि (क्रियावान्) वेदोक्ताग्निहोत्रादिकर्मसु प्रवृत्तः। एवं भूतो विद्वान् [ब्रह्मविदाम्] ब्रह्मज्ञानिषु [वरिष्ठः] श्रेष्ठः ॥

भा०—सर्वान्तर्यामितया स्वसत्तया सर्वप्राणिनां जीवनहेतुं सर्वविद्याकर्मनियमधर्मादीनां प्रकाशकं जगदीश्वरं ज्ञात्वा सर्वविषयेष्विन्द्रियवृत्तीः शिथिलीकृत्य वेदोक्तानि सर्वोपकारकाणि फलाकाङ्क्षारहितानि धर्म्याणि कर्माणि कुर्वन् बाह्यकर्मफलसुखभोगाभिलाषावृत्तित्यागेन प्रत्यगात्मविचारे रममाणः पुरुष एव ब्रह्मवित्सु प्रशस्तो गण्यते यः कर्माणि कुर्वाणः कर्मफलैरेव परमात्मानं प्राप्तुमिच्छति यश्च कर्माणि विहाय केवले ज्ञान एव रमते तावुभावपि निकृष्टौ। तथा चोक्तं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुषश्चत्वारिंशत्तमेऽध्याये-अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्या-मुपासते। ततो भूयइव ते तमो य उ विद्यायाꣳ रताः। अत्राविद्याया ज्ञानाभावरूपस्य कर्मण उपासका विद्यायाः केवलज्ञानकाण्डस्यैवोपासकाश्चोभयेऽपि निकृष्टादर्शिताः। भगवद्गीतासु च बहुशः प्रतिपादितमेतत्। अनाश्रितः कर्म-फलं कार्यं कर्म करोति यः। स संन्यासी च योगी च न निर-ग्निर्न चाक्रियः॥ इत्यादिना तस्मात्सिद्धमेव ज्ञानकर्मणोः सहै-वोपासनम्। फलभोगवासनात्यागएव तु मुक्तेः कारणम्। एवं सति यच्छङ्करस्वामिनाऽग्निहोत्रादिक्रियाणां निरासः प्रदर्शितो नहि स शास्त्रीयरद्धान्तः। पूर्वोक्तप्रकारेण विरो-धसत्त्वात्। नहि भोगवासनात्यागे स्वाभाविकरीत्या कर्म-णामनुष्ठानमात्मरमणेन साकं विरुध्यते। वैराग्ये च क्रियात्वं न सम्भवति तत्र तु क्रियाणामपि त्यागएव। अतः क्रियावा-नित्यनेन वेदोक्तकर्मकाण्डस्यानुष्ठानवानेव ग्राह्यः॥ ४॥

भाषार्थः—(यः, एषः) जो यह योगियों से प्रत्यक्ष जाना गया (प्राणः) अपनी सत्ता प्राणियों के जीवन का हेतु परमात्मा (हि) एव (प्राणस्तथानुगमात्। इस वेदान्त सूत्र से भी ब्रह्म का ही नाम प्राण माना गया है) (सर्वभूतैः) सब चेतन शरीरों के साथ सबके हृदय में स्थित (विभात) साक्षीरूप से अन्तर्यामी होकर अथवा अपने नियमों से सब चराचर जगत् को प्रकाशित करता है (विद्वान्) ज्ञानी पुरुष उस सब के जीवन हेतु परमेश्वर को (विजानन्) जानता हुआ (अतिवादी) बहुत बोलने वाला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(न, भवते) नहीं होता किन्तु प्रयोजन के अनुसार थोड़ा ही बोलता है (एषः) यह विद्वान् (आत्मरतिः) भीतरी विचार रूप परमात्मा के ध्यान में ही प्रीति रखने वाला (आत्मक्रीडः) बाहरी साधनों की अपेक्षा रखने वाली क्रीडा जिसकी भीतरी आत्मा में ही है ऐसा अर्थात् बाहरी विषयों में क्रीडा [खेल] को छोड़ कर आत्मा में ही विहार करने का स्वभाव रखने वाला ऐसा होने पर भी (क्रियावान्) वेदोक्त अग्नि होत्रादि कर्म करने में तत्पर ऐसा विद्वान् (ब्रह्मविदाम्) ब्रह्मज्ञानियों में (वरिष्ठः) श्रेष्ठ माना जाता है ॥

भा०—सर्वान्तर्यामी होने से अपनी सत्ता के द्वारा सब प्राणियों को जीवित रखने वाले सब विद्या, कर्म, नियम और धर्मादि के प्रकाशक जगदीश्वर को जान कर सब विषयों से इन्द्रियों की वृत्ति शिथिल करके वेद में कहे सबके उपकारक धर्मानुकूल फल की आकाङ्क्षा रहित कर्मों को करता हुआ बाहरी कर्मों के सुख-रूप फल के भोग की आशारूप वृत्ति के छोड़ने से भीतरी विचार में रमण वा आनन्द मानता हुआ पुरुष ही ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ माना जाता है। और जो पुरुष कर्मों को करता हुआ केवल कर्म के फलभोग के साथ ही परमात्मा को प्राप्त होना चाहता है तथा जो कर्मों को छोड़ कर केवल ज्ञान में ही तत्पर होता है वे दोनों ही नीच है। सो यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय में कहा है कि (अन्धन्तमः०) यहां अविद्या शब्द से केवल ज्ञानकाण्ड लिया गया है उसके उपासक दोनों ही नीच दिखाये हैं। इस अंश पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भगवद्गीता में भी बहुत लेख है (अनाश्रितः कर्मफलम्०) कि जो कर्मफल भोग के आश्रय को छोड़ करके करने योग्य वेदोक्त कर्म को करता है वही संन्यासी तथा योगी है किन्तु कर्मों को छोड़ देने से कोई संन्यासी वा योगी नहीं हो सकता इत्यादि। इससे सिद्ध हुआ कि ज्ञान और कर्म दोनों का साथ ही सेवन करे उस में फलभोग की वासना का त्याग ही मुक्ति का कारण है। ऐसा होने पर जो श्री शङ्करस्वामी ने अग्निहोत्रादि क्रियाओं का खण्डन दिखाया है वह शास्त्र के सिद्धान्त से विरुद्ध है क्योंकि उनके पक्ष में पूर्वोक्त प्रकार से विरोध है। और यह भी नहीं हो सकता कि भोग की वासना छोड कर स्वाभाविक रीति से किया कर्मों का अनुष्ठान आत्मा में रमण के साथ विरुद्ध पड़ता हो। और वैराग्य में कर्म होना सम्भव नहीं क्योंकि वहाँ कर्म का भी त्याग ही होगा। इस कारण यहां क्रियावान् शब्द से वेदोक्त कर्म का सेवन करने वाला ही लेना चाहिये ॥ ४ ॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम्। अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

अ०—(यम्) परमात्मानम् (क्षीणदोषाः) क्षीणा नष्टा दोषा रागद्वेषमोहा येषां ते क्षीणदोषा अविद्यादिक्लेशैरपरामृष्टाः (यतयः) इन्द्रियादीनां नियन्तारो योगिनः (पश्यन्ति) ध्यानेनानुभवन्ति सः (अन्तःशरीरे) शरीरस्य मध्ये (ज्योतिर्मयः हि) ज्योतिर्मय एव न तत्राज्ञानान्धकारस्य लेशोऽप्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्ति (शुभ्रः) शुद्धो निर्मलः (एषः, आत्मा) योगिनां प्रत्यक्षः परमात्मा (नित्यम्, सत्येन) प्रात्यहिकसत्यभाषणेन (तपसा) नैत्यिकद्वन्द्वसहनादिलक्षणेन (सम्यग्ज्ञानेन) अविपरीतज्ञानेन यथार्थेन नैत्यिकेनैन (ब्रह्मचर्येण) नित्यमष्टविधमैथुनत्यागेनोपस्थेन्द्रियनिग्रहेण [अत्र नित्यशब्दः प्रत्येकमभिसम्बध्यते] तेन कादाचित्कसत्यभाषणादिना प्राप्तुमशक्यः (लभ्यः) प्राप्तव्यः ॥

भा०—यं परमात्मानं शुद्धाः सर्वदोषविवर्जिताः सत्यादिसाधनसम्पन्ना योगिनो ध्यानेनानुभवन्ति तमन्येऽपि जिज्ञासवः सत्यादिसाधनानां तीव्र संवेगेनानुष्ठानं कृत्वा स्वस्वान्तःकरणे ज्ञानप्रकाशमयं प्राप्तुमर्हन्ति। नहि साधनैर्विनाकश्चिदपि जन्मशतेनापि प्राप्तुमर्हति ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यम्) जिस परमात्मा को (क्षीणदोषाः) राग द्वेष और मोह रूप दोष जिनके नष्ट हो गये वे अविद्यादि क्लेशों से रहित (यतयः) इन्द्रियादि को नियम में रखने वाले योगी लोग (पश्यन्ति) ध्यान से देखते हैं वह (अन्तःशरीरे) शरीर के बीच हृदयाकाश में (ज्योतिर्मयः) ज्योतिःस्वरूप (हि) ही अर्थात् उसमें अज्ञानान्धकार का लेश भी नहीं (शुभ्रः) निर्मल (एषः, आत्मा) योगियों को प्रत्यक्ष यह परमात्मा (नित्यम्, सत्येन) प्रतिदिन सत्य बोलने (तपसा) निन्दा स्तुति शीत उष्णादि द्वन्द्वों के सहनेरूप नित्य किये तप से (सम्यग्ज्ञानेन) नित्य सेवन किये यथार्थ ज्ञान से और (ब्रह्मचर्येण) नित्य आठ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के मैथुन का त्याग वा उपस्थ इन्द्रिय के रोकने से (इस मन्त्र में पढ़ा नित्य शब्द प्रत्येक साधन के साथ सम्बन्ध रखता है इसी कारण कभी २ किये सत्य भाषणादि से प्राप्त नहीं हो सकता) (लभ्यः) प्राप्त होने योग्य है ॥

भा०—जिस परमेश्वर का सब दोषों से रहित शुद्ध योगी लोग ध्यान से अनुभव करते हैं अन्य जिज्ञासु भी सत्य आदि साधनों का अत्यन्त वेग से सेवन करके अपने ही अन्तःकरण में ज्ञान प्रकाशस्वरूप उस ईश्वर को प्राप्त हो सकते हैं। किन्तु साधनों विना भी सैकड़ों जन्म में भी प्राप्त नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

सत्यमेव जयते नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः। येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ॥ ६ ॥

अ०—(आप्तकामाः) आप्तः प्राप्तः कामोऽभीष्टसिद्धिर्निर्बाधो नित्यानन्दो यैस्ते (ऋषयः) ज्ञानिनो वेदार्थविदः (यत्र) यस्यां दशायाम् (सत्यस्य) सत्यानुष्ठानस्य (परमम्) प्रकृष्टम् (निधानम्) अवस्थितिः सीमास्ति नास्ति यस्मात्पदं किमपि सत्यम् (तत्) परमात्मतत्त्वम् (येन) सत्यभाषणेन सर्वथा सर्वदा मिथ्यात्वत्यागेन (आक्रमन्ति) उत्कर्षेण सह गच्छन्ति प्राप्नुवन्ति तादृशस्य (सत्यमेव जयते) सत्यस्यानुष्ठातैव जयमाप्नोति (न, अनृतम्) नतु मिथ्याभाषणतत्परोयतः (देवयानः) वैदिकधर्मकर्मानुष्ठातॄणां गमनाधिकरणः(पन्थाः) मार्गः परम्परया (सत्येन) सत्याचरणेनैव (विततः) विस्तृतः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यत्स्वरूपतो विकृतं न भवति तत्सत्यम्। अन्यानि सर्वाणि सत्यानि सापेक्षानि परमात्मनि तस्यावधिः। अन्यस्मिन्कथमपि किञ्चिदसत्यं स्यान्नतु परेशे। तस्मात्सत्याचरणनौकयैव योगिनो दुःखसागरमुत्तीर्य परमात्मानमाप्नुवन्ति सत्याचरणपरिपाटीं ज्ञानिजना वर्द्धयन्ति। सर्वमुक्तिसाधनेषु सत्यमेव प्रथमाश्रेणिः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(आप्तकामाः) सब बाधाओं से रहित नित्यानन्द रूप अभीष्ट जिनका सिद्ध हो गया वे (ऋषयः) वेदार्थ जानने से ज्ञानी (यत्र) जिस दशा में (सत्यस्य) सत्य सेवन की (परमम्) सर्वोत्तम (निधानम्) अवस्थिति वा सीमा है जिससे परे अन्य कोई सत्य नहीं (तत्) उस परमात्मतत्त्वस्वरूप को (येन) सब प्रकार सब समय में मिथ्यापन को छोड़ सत्य भाषण से (आक्रमन्ति) उत्तमता के साथ प्राप्त होते हैं वैसे (सत्यमेव, जयते) सत्य का सेवन करने वाला ही जीतता है (न, अनृतम्) किन्तु मिथ्यावादी का कभी जय नहीं होता क्योंकि (देवयानः) वैदिक धर्म का अनुष्ठान करने वाले विद्वान् लोग जिसमें चलते हैं ऐसा (पन्थाः) मार्ग (सत्येन) सत्याचरण की परम्परा से ही (विततः) विस्तृत वा प्रचरित हुआ है ॥

भा०—जो स्वरूप से कभी विकारी नहीं होता वही सत्य है। अन्य सब सत्य सापेक्ष बने रहते हैं किसी की अपेक्षा कोई विशेष सत्य रहता है परमात्मा में सत्य की अवधि है। यदि अन्य सत्यों में किसी प्रकार कुछ असत्य भी हो परन्तु परमेश्वर में असत्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का लेश भी नहीं। इस कारण सत्याचरणरूप नौका से ही योगी लोग दुःखसागर के पार उतर कर परमात्मा को प्राप्त होते हैं ज्ञानी लोग ही सत्याचरण की परिपाटी को बढ़ाते हैं इस लिये मुक्ति के सब साधनों में सत्य ही प्रथम सीढ़ी है॥ ६॥

बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत् सूक्ष्मतरंविभाति।
दूरात्सुदूरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितंगुहायाम् ॥७॥

अ०—(तत्) परोक्षम्। अतएव (अचिन्त्यरूपम्) विषयस्वरूपवद्यस्य रूपं चिन्तितुमनर्हम् (सूक्ष्मात्, च, तत्) प्रकृतिकालाकाशादेरपि (सूक्ष्मतरम्) द्वयोः सूक्ष्मयोः परमं सूक्ष्मम् (दिव्यम्) स्वयंज्योतिःस्वरूपं नहि तत्कस्यापि प्रकाशमपेक्षते (दूरात्) दूरङ्गतवस्तुनः (सुदूरे) अतिशयितं दूरम् (तत्) अतीन्द्रियम् (इह) शरीरे (अन्तिके) समीपम् (च) अपि (बृहत्, च) सर्वमहत्परिमाणविशिष्टाकाशादिभ्यो महदपि (पश्यत्सु) प्रत्यगात्मदृष्ट्या ध्यानादितत्परेषु योगिषु षष्ठ्यर्थे सप्तमी योगिनाम् (इहैव) अस्यामेव शरीरस्थायाम् (गुहायाम्) बुद्धौ (निहितम्) स्थितम् (विभाति) प्रकाशते॥

भा०—सर्वस्मात्सूक्ष्मं सर्वस्य प्रकाशकमिन्द्रियजन्यविषयसंस्कारवदनुसन्धातुमनर्हमाकाशादिमहत्परिमाणविशिष्टपदार्थापेक्षयापि महत् सर्वत्र व्याप्तमपि ब्रह्म तत्परत्वेन ध्यायिनामन्तःकरणे सन्निहितं प्रत्यक्षं प्रकाशितं भवति। विषयभोगवासनाबद्धानां च सदा दूरं तिष्ठति नहि ते जन्मशतैरपि ज्ञातुं शक्नुवन्ति ॥ ७॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(तत्) वह परोक्ष है इसी कारण (अचिन्त्य-रूपम्) विषय के रूप के तुल्य जिसका स्वरूप स्मरण में नहीं आ सकता (तत्) वह (सूक्ष्मात्, च) प्रकृति काल और आकाशादि सूक्ष्म पदार्थों से भी (सूक्ष्मतरम्) अत्यन्त सूक्ष्म (दिव्यम्) स्वयंज्योतिः स्वरूप क्योंकि वह किसी अन्य वस्तु के प्रकाश की अपेक्षा नहीं रखता (दूरात्) दूर हुए वस्तु से भी (सुदूरम्) अत्यन्त दूर (तत्) वह इन्द्रियों से परे (इह) शरीरस्थ हृदय में (अन्तिके) समीप (च) भी है (वृहत्, च) और सब विभु आकाशादि से भी अत्यन्त बड़ा ब्रह्म है तो भी (पश्यत्सु) भीतरीदृष्टि से ध्यानादि में तत्पर योगी जनों के (इहैव) इसी शरीरस्थ (गुहायाम्) बुद्धि में (निहितम्) स्थित हुआ (विभाति) प्रकाशित होता है ॥

भा०—सब से सूक्ष्म सब के प्रकाशक, इन्द्रियों से होने वाले विषय सम्बन्धी संस्कार के तुल्य जिसका चिन्तन नहीं हो सकता, आकाशादि विभु पदार्थों से भी जो अत्यन्त बड़ा, सर्वत्र व्याप्त भी ब्रह्म तत्पर होके ध्यान करने वालों के अन्तःकरण में प्राप्त अर्थात् प्रत्यक्ष प्रकाशित होता है अर्थात् योगियों को अपना स्वरूप साक्षात् प्रत्यक्ष करा देता है। और विषय भोग की वासनाओं में बन्धे हुए पुरुषों से सदा दूर रहते हैं वे लोग सैकड़ों जन्मों में भी उसको प्राप्त नहीं हो सकते ॥ ७ ॥

न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा वा। ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ॥ ८ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—स परमेश्वरः (न, चक्षुषा, न, अपि, वाचा) (न, अन्यैः) (देवैः) विषयद्योतकैः श्रोत्रादिभिरिन्द्रियैः (तपसा) ब्रह्मचर्यादिनियमव्रतधारणैः (कर्मणा) (वा) श्रौतस्मार्त्त-कर्म्मानुष्ठानेनापि (गृह्यते) चक्षरादिभिः साक्षात्कर्तुमशक्यः किन्तु यदा मनुष्यस्तपांसि श्रौतस्मार्त्तानि कर्माणि च सेवते तेन तस्य चेतः प्रसीदति (ज्ञानप्रसादेन) रागद्वेषादि मलैरदूषितेन निर्मलेन (विशुद्धसत्त्वः) निर्मलदर्पणवच्छुद्धान्तः-करणो भवति (ततः) तदनन्तरम् (निष्कलम्) निराकार-मपरिच्छिन्नम् (ध्यायमानः) (तम्) परमात्मानम् (पश्यते) पश्यति साक्षाद्विजानाति । छान्दसमात्मनेपदम् ॥

भा०—यः परमेश्वरः सूक्ष्मस्थूलविषयेभ्यः परतरोस्ति तस्मादिन्द्रियैर्न ज्ञायते तस्य ज्ञाने तपांसि शुभकर्मानुष्ठानानि च परम्परातः साधनानि सन्ति नतु साक्षात् । तपआदिपरि-कर्मभिरन्तःकरण शुध्यति प्रसन्नया च निर्मलप्रज्ञया ध्यानत-त्परेण योगिना साक्षाज्ज्ञायते । साधारणानां च रागद्वेषादि-कलङ्कै समलाऽशुद्धाऽप्रसन्ना प्रज्ञा भवति तस्मात्तैः स्वान्तः करणे स्थिताप्यात्मा ज्ञातुमशक्यः

भाषार्थः—वह परमेश्वर (चक्षुषा, न) न आंख से (न, अपि, वाचा) न वाणी से भी तथा (न, अन्यैः, देवैः) न विषयों का ज्ञान कराने वाले अन्य इन्द्रियों से और न (तपसा) ब्रह्मच-र्यादि आश्रमों में होने वाले नियम वा व्रतों के सेवन से (वा) अथवा न (कर्मणा) वेद और धर्मशास्त्र सम्बन्धी कर्मों के सेवन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्र से भी (गृह्यते) प्राप्त होता अर्थात् नेत्र आदि साधनों से विषयादि के तुल्य वह प्राप्त नहीं हो सकता किन्तु जब मनुष्य इन्द्रियों को वश में कर तप और वेदोक्त वा धर्मशास्त्र में कहे कर्मों का सेवन करता है उससे उसका चित्त प्रसन्न होता और (ज्ञानप्रसादेन) रागद्वेषादि दोष रूप मलों से रहित निर्मल शुद्ध चित्त से (विशुद्धसत्त्वः) निर्मल दर्पण के तुल्य शुद्ध अन्तःकरण वाला होता है (ततः) तब पीछे (निष्कलम्) निराकार व्याप्त का (ध्यायमानः) ध्यान करता हुआ (तम्) उस परमात्मा को (पश्ये) साक्षात् जान लेता है ॥

भा०—जो परमेश्वर स्थूल सूक्ष्म विषयों से अत्यन्त दूर है इसी कारण इन्द्रियों से नहीं जाना जाता। उसके जानने में तप और शुभ कर्मों के अनुष्ठान परम्परा से साधन हैं किन्तु साक्षात् नहीं। तप आदि के करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है और अन्तःकरण की शुद्धि से प्रसन्न निर्मल हुई बुद्धि द्वारा ध्यान में तत्पर योगी उसको साक्षात् जान लेता है और साधारण लोगों की बुद्धि रागद्वेषादि दोषों से दूषित अशुद्ध मलिन होती है इस लिये अपने अन्तःकरण में स्थित भी आत्मा को वह नहीं जान सकती ॥ ८ ॥

एषोऽणुरात्मा चेतसा वेदितव्यो यस्मिन्प्राणः पञ्चधा संविवेश । प्राणैश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां यस्मिन विशुद्धे विभवत्येष आत्मा ॥ ९ ॥

अ० —(यस्मिन्) शरीरे (प्राणः) (पञ्चधा) प्राणापानव्यानोदानसमानभेदैः (संविवेश) सम्यक् प्रविष्टस्तस्मिन्नेव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीरे (प्रजानाम्) प्रजातानां प्राणिनाम् (सर्वम्) (चित्तम्) अन्तःकरणचतुष्टयम् (प्राणैः) प्राणशक्तिधारकैरिन्द्रियैः सह (ओतम्) सूत्रे मणिगणाइव प्रोतम् (यस्मिन् विशुद्धे) रागद्वेषमोहैर्वियुक्ते निर्मले चेतसि सति (एषः, आत्मा) परमात्मा (विभवति) स्वस्वरूपं प्रकाशयति तेन (चेतसा) निर्मलेन ज्ञानेन (एषः) योगिनां प्रत्यक्षः (आत्मा) (अणुः सूक्ष्मो व्याप्तः परमात्मा (वेदितव्यः) ज्ञातव्यः ॥

भा०—प्राणएव स्वशक्तिभेदेनेन्द्रियरूपइति प्रश्नोपनिषदि व्याख्यातम् । अतएव प्राणायामाभ्यासो धातूनामग्निरिवेन्द्रियाणां दोषच्छेदकः । छिन्नेषु चेन्द्रियदोषेषु चेतः प्रसन्नं शुद्धं जायते तेनैव शुद्धचेतःज्ञानेन योगी सर्वस्मात्सूक्ष्मं ब्रह्मात्मानं ज्ञातुं शक्नोति । निर्मलदर्पणे प्रतिविम्बमिव शुद्धे चेतसि दृश्यते तस्माच्चेतःप्रसादाय यमनियमासनसाधनपूर्वकं प्राणायामः सेवनीयः ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यस्मिन्) जिस शरीर में (प्राणः) प्राण (पञ्चधा) प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान नामक पांच प्रकार के भेदों से (संविवेश) अच्छे प्रकार प्रविष्ट हो रहा है उसी शरीर में (प्रजानाम्) उत्पन्न हुए प्राणी मात्र का (सर्वम्, चित्तम्) चेतनता जताने वाला सब अन्तःकरण अर्थात् मन बुद्धिचित्त और अहंकार (प्राणैः) प्राण की शक्ति को धारण करने वाले इन्द्रियों के साथ [ओतम्] सूत में गुरियाओं के तुल्य पोहा है [यस्मिन्] जिस (विशुद्धे) रागद्वेष और मोहों से पृथक् हुए निर्मल चित्त के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर (एषः, आत्मा) यह परमात्मा (विभवति) अपने स्वरूप को प्रकाशित करता है उस (चेतसा) निर्मल चित्त वा ज्ञान से (एषः) यह योगियों को प्रत्यक्ष (अणुः) सूक्ष्म व्याप्त (आत्मा) परमात्मा (वेदितव्यः) जानना चाहिये ॥

भा०—प्राण ही अपनी शक्ति के भेदों से अनेक इन्द्रिय रूप है यह प्रश्नोपनिषद् में व्याख्यान किया गया है। इसी कारण सुवर्णादि धातुओं को अग्नि के तुल्य प्राणायाम का अभ्यास इन्द्रियों के मलरूप दोषों को नष्ट करने वाला है। जब इन्द्रियों के दोष कट जाते हैं तभी चित्त शुद्ध होता है उसी चित्त के शुद्ध ज्ञान से सब से सूक्ष्मब्रह्म को योगी पुरुष जान सकता है और निर्मल दर्पण में छाया के तुल्य शुद्ध हृदय में ब्रह्म दीखता है इस कारण चित्त की प्रसन्नता के लिये यम नियम और आसन की सिद्धि पूर्वक प्राणायाम का सेवन करना चाहिये ॥ ९ ॥

यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते यांश्च कामान्। तं तं लोकं जायते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः ॥ १० ॥

अ०—(विशुद्धसत्त्वः) शुद्धान्तःकरणो विगतछलकपटेर्ष्यामत्सरतादिदोषः सत्यसङ्कल्पः शान्तो जितेन्द्रियो जीवन्मुक्तिदशामापन्नो योगी ब्रह्मज्ञानी पुरुषः प्राप्तयोगविभूतिः (यंयम्) (लोकम्) सूर्यचन्द्रादिकम् (मनसा) मानसानुभवेन (संविभाति) संकल्पयति तत्र (च) (यान्) (कामान्) सुखभोगान् (कामयते) अभीप्सति (तन्तम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(लोकम्) (तांश्च) (कामान्) (जायते) प्राप्नोति (तस्मात्) जिज्ञासुः (भूतिकामः) योगसिद्धीनामभिलाषुकः पुरुषः सत्यसंकल्पज्ञानिसेवनेन तदुक्तानुष्ठानेन चाहमपि तादृशः स्यामिति कारणात् (आत्मज्ञम्) ब्रह्मज्ञानिनम् (अर्चयेत्, हि)) सेवेतैव ॥

भा०—विदितवेदितव्योऽधिगतयाथातथ्यस्तत्त्वज्ञानी ब्रह्मज्ञः पुरुषो मुक्तिमाप्तुमर्हति स यदि मोक्षानन्दं विहाय योगसिद्धिजमानन्दमनुभवितुमिच्छेत्तर्हि शरीरं विहायापि यं यं लोकं गन्तुमिच्छति यांश्च दुर्लभानपि भोगान्भोक्तुमिच्छति सर्वं तस्य प्राप्तं भवति । तस्माद्योऽन्योऽप्येवं सुखं भोक्तुमिच्छेत्सोऽपि तमेव ब्रह्मज्ञानिनं सेवेत ॥१०॥

भाषार्थः—(विशुद्धसत्त्वः) छल कपट ईर्ष्या और मत्सरतादि दोषों से दूर हुआ शुद्धचित्त वाला सत्य जिसका सङ्कल्प (निश्चय) है जो कभी मिथ्या की चाहना नहीं रखता शान्तिशील, जितेन्द्रिय जीवन्मुक्ति दशा को प्राप्त हुआ ब्रह्मज्ञानी योग की विभूति को प्राप्त योगी पुरुष (यं यम्, लोकम्) जिस २ सूर्यादि लोक में पहुँचने का (मनसा) मन के अनुभव से (संविभाति) सङ्कल्प करता है (च) और उन लोकों में (यान्) जिन (कामान्) सुख भोग की अभिलाषाओं को (कामयते) चाहता है (तंतम्, लोकम्) उस २ लोक (च) और (तान्, कामान्) उन कामनाओं को (जायते) प्राप्त होता है (तस्मात्) इस कारण (भूतिकामः) योग संबन्धी सिद्धियों को चाहने वाला जिज्ञासु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष, सत्यसङ्कल्प वाले ज्ञानी के सेवन से और उस के कहे अनुसार काम करने से मैं भी वैसा होऊँ इस कारण (आत्मज्ञम्) ब्रह्मज्ञानी की (अर्चयेत्, हि) सेवा शुश्रूषा वा सत्कार अवश्य करना चाहिये ॥

भा०—जिसने जानने योग्य को जान लिया जो ठीक २ सत्य को प्राप्त हो गया ऐसा तत्व को जानने वाला ब्रह्मज्ञानी पुरुष मुक्ति का अधिकारी होता है वह यदि अपनी इच्छा से मोक्ष सम्बन्धी आनन्द को छोड़ कर योग सिद्धियों से होने वाले आनन्द के अनुभव की इच्छा करे तो शरीर को छोड़ कर भी जिस जिस सूर्यादि लोक में जाना चाहता वा जिन २ दुर्लभ भोगों को भोगना चाहता है वह सब उस को प्राप्त होता है इस से जो अन्य भी ऐसा सुख भोगना चाहे वह भी उसी ब्रह्मज्ञानी का सेवन करे ॥ १० ॥

इति तृतीयमुण्डके प्रथमः खण्डः ॥

स वेदैतत्परमं ब्रह्म धाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् । उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्त्तन्ति धीराः ॥ १ ॥

अ०—(यत्र) यस्मिन् ब्रह्मणि (विश्वम्) सर्वं चराचरं जगत् (निहितम्) अवस्थितम् । यत्स्वेन प्रकाशस्वरूपेण निर्मलम् (शुभ्रम्) शुद्धम् (भाति) यच्च सर्वस्य विश्वस्य (धाम) आधारस्तत् (एतत्) (परमम्) सर्वोत्तमम् (ब्रह्म) (सः) पूर्वोक्तो ज्ञानीपुरुषः (वेद) जानाति (ये,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकामाः) परित्यक्तविषयभोगतृष्णाः (पुरुषम्) पूर्णं व्याप्तं परमात्मानम् (उपासते) (ते) (धीराः) ध्यानवन्तः अपि (एतत्) प्रसिद्धौ नृशरीरकारणम् (शुक्रम्) रेतःप्रवेशम् (अतिवर्त्तन्ति) अतिक्रम्य गच्छन्ति न पुनर्योनिद्वारा सर्पन्ति ॥

भा०—सर्वाधारं सर्वकामानां पूरकं सर्वदा प्रकाशमानं निर्मलं शुद्धं सर्वोत्तमं परमेश्वरे पूर्वोक्तगुणविशिष्टो ज्ञानी पुरुषएव जानाति तद्व्येऽन्येपि सर्वविषयसुखभोगवासनां विहाय तस्यैवोपासनं कुर्वते तेऽपि जन्ममरणजदुःखं विहाय मुक्तिमाप्नुवन्ति ॥ १ ॥

भाषार्थः—(यत्र) जिस परमेश्वर में (विश्वम्) सब चराचर जगत् (निहितम्) अवस्थित है जो ब्रह्म अपने प्रकाशस्वरूप से निर्मल (शुभ्रम्) शुद्ध (भाति) सबके हृदय में व्याप्त प्रकाशमान है। और जो सब जगत् का (धाम) आधार है उस (एतत्) इस उक्त (परमम्) सर्वोत्तम (ब्रह्म) ब्रह्मको (सः) वह पूर्वोक्त ज्ञानी पुरुष (वेद) जानता है। (ये) जो (अकामाः) विषयसम्बन्धी सुखभोग की तृष्णा को त्यागे हुए मनुष्य (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त परमात्मा की (उपासते) उपासना करते हैं वे (धीराः) ध्यानशील पुरुष भी (एतत्) मनुष्य शरीर के प्रसिद्ध कारण (शुक्रम्) वीर्य में प्रविष्ट होने को (अतिवर्त्तन्ति) छोड़ के पृथक् हो जाते हैं फिर योनि मार्ग में नहीं घुसते ॥

भा०—सब के आधार सब कामनाओं के पूरक सदा प्रकाशमान निर्मल शुद्ध सनातन सर्वोत्तम परमेश्वर को पूर्वोक्त ज्ञानी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष ही जानता है। इससे जो अन्य लोग भी विषयसुख भोग की वासना को छोड़ के उसी की उपासना करते हैं वे भी जन्म मरण के दुःख को छोड़ मुक्ति को पाते हैं ॥ १ ॥

कामान्यः कामयते मन्यमानः स कामभिर्जायते तत्र तत्र । पर्याप्तकामस्य कृतात्मनस्तु इहैव सर्वे प्रविलीयन्ति कामाः ॥ २ ॥

भा०—अकामाइति पूर्वमन्त्रउक्तं तदेवानेन व्यक्तीक्रियते (यः) (मन्यमानः) प्रत्यभिज्ञया तद्गुणान् ध्यायन् (कामान्) ऐहिकपारलौकिकांश्च भोक्तुमिष्टान् वासनाबद्धान् (कामयते) अभीप्सति (सः) कामात्मा पुरुषः (तत्र तत्र) वासनानुकूलेषु जात्यायुर्भोगेषु (कामभिः) विषयसुखभोगाभिलाषैः (जायते) शरीरेन्द्रियबुद्धिवेदनासमुदाये समुदितः प्रकटी भवति (पर्याप्तकामस्य) पर्याप्ताः परितआप्ता भोगेनातिबाधिताः कामा येन तस्य (कृतात्मनः) कृतः कामक्रोधलोभमोहादि दोषत्यागेन शुद्ध आत्मा यस्य तस्य मुमुक्षोर्जनस्य (इहैव) विद्यमानएव शरीरे (सर्वे) (कामाः) विषयसुखभोगसंस्काराः (प्रविलीयन्ति) स्वस्वकारणे लीना नाशमुपगता भवन्ति ॥

भा०—यावज्जिज्ञासुपुरुषस्य भोगवासना उद्भूताः सन्ति न तावदात्मज्ञानाय मुक्तये वा कृतो यत्नः फलवान् भवितुमर्हति तस्मात्पूर्वं भोगवासनास्त्याज्याः ॥ २ ॥

भाषार्थः—पूर्वमन्त्र में कामना रहित पुरुषों को अधिकारी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना है उसी को प्रकट करते हैं—(यः) जो (मन्यमानः) पूर्वानुभूत संस्कार के स्मरण से विषयों के गुणों का चिन्तन करता हुआ (कामान्) संसारी दशा और जन्मान्तर में भोगने को अभीष्ट वासनायुक्त विषयों की (कामयते) कामना करता है (सः) वह कामरूप बना पुरुष (तत्र तत्र) उन २ वासनाओं के अनुकूल प्राप्त हुए जाति आयु और भोगों में (कामभिः) विषय सम्बन्धी सुख भोग की अभिलाषाओं के साथ शरीर इन्द्रिय बुद्धि और वेदना समुदाय में मिला हुआ (जायते) प्रकट होता है (पर्याप्तकामस्य) भोग कर समाप्त किये काम जिसने ऐसे (कृतात्मनः) काम, क्रोध, लोभ, मोहादि दोषों के त्याग से जिसका आत्म शुद्ध हुआ ऐसे मुमुक्षुपुरुष के (इहैव) इसी विद्यमान शरीर में (सर्वे) सब (कामाः) कामना विषयभोग की वासना (प्रविलीयन्ति) अपने २ करण में लीन—अदर्शन को प्राप्त होती हैं ॥

भा०—जब तक जिज्ञासु पुरुष की भोग वासना जगी हुई है तब तक आत्मज्ञान वा मुक्ति के लिये किया यत्न सफल नहीं होता इस लिये प्रथम भोग वासना त्यागनी चाहिये ॥ २ ॥

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेनलभ्यस्तस्यैष आत्मा वृणुते तनूꣳस्वाम् ॥३॥

अ०—अयं मन्त्रईदृशएवकठोपनिषदि द्वितीयवल्ल्यां त्रयोविंशोऽस्ति । तस्मात्सएवार्थोऽत्रापि प्रकाश्यते । ग्रन्थभेदाच्च भेदः (अयम्) (आत्मा) (प्रवचनेन) अध्यापनेनोपदेशेन वा (न) (लभ्यः) (न, मेधया) न शास्त्रार्थधारणावत्या बुद्ध्या

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(न) न च (बहुना श्रुतेन) बहूनां शास्त्राणां पठनेन श्रवणेन लभ्यः कथं तर्हि लभ्यस्तदाह (एषः) मनुष्यः (यमेव) परमात्मानमेव मनसा वाचा कर्मणाऽनन्यचेताः (वृणुते) स्वीकरोति प्रार्थयति स्तौत्युपास्ते नान्यं कंचिदुपास्यबुद्ध्या मनुते (तेन) मनुष्येण (लभ्यः) (एषः, आत्मा) परमात्मा (तस्य) तस्मै चतुर्थ्यर्थे षष्ठी (स्वाम्) (तनूम्) यथार्थ रूपम् (वृणुते) प्रकाशयति ज्ञापयति ॥ ३ ॥

भा०—वेदादिशास्त्रेषु प्रवीणाः स्मृतिमन्तो वेदानामध्यापने तदाशयोपदेशे वा कुशला बहुश्रुताश्च लोकपव प्रतिष्ठिता भवन्ति। नहि वेदशास्त्रादीनां ज्ञानमात्रं ब्रह्मप्राप्तिहेतुकं भवितुमर्हति किन्तु शास्त्राण्यधीत्य तल्लेखानुसारमनन्यचेता यदा ब्रह्मात्मानमुपास्ते तदाऽयं प्राण्यात्मज्ञानजन्यसुखभाग्भवति। ब्रह्म च प्रसन्नं सत्तस्मै स्वस्वरूपं प्रकाशयति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—यह मन्त्र ज्यों का त्यों कठोपनिषद् की द्वितीय वल्ली में तेईसवां ऐसा ही आया है। इस कारण वही अर्थ यहां भी लिखा गया है। ग्रन्थ के भेद से दो बार पढ़ा गया जिससे कठ मुण्डक में से एक २ को पढ़ने वाले दोनों इस मन्त्र से अभिज्ञ रहें। (अयम्) यह (आत्मा) परमेश्वर (प्रवचनेन) पढ़ाने वा उपदेश करने की शक्ति से (न, लभ्यः) प्राप्त होने योग्य नहीं (न, मेधया) शास्त्र के सिद्धान्त को धारण करने वाली बुद्धि से नहीं प्राप्त होता और (बहुना, श्रुतेन) बहुत शास्त्रों के पढ़ने वा बहुत से शास्त्रादि सम्बन्धी उपदेश सुनने से भी (न) नहीं प्राप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होता । तो कैसे प्राप्त होता है सो भी कहते हैं (एषः) यह मनुष्य (यमेव) जिस कारण परमात्मा की ही मन वचन कर्म से एक चित्त होके (वृणुते) स्तुति प्रार्थना करता तथा सब समय उसी का विचार वा ध्यान करता है अन्य किसी को उपास्य नहीं मानता (तेन) उस मनुष्य से (लभ्यः प्राप्त होने योग्य है (एषः) (आत्मा) यह परमात्मा (तस्य) उस मनुष्य के किये (स्वाम्) अपने (तनूम्) यथार्थ स्वरूप को प्रकाशित कर देता अर्थात् जता देता है ॥

भा०—वेदादि शास्त्रों में प्रवीण स्मरण रखने वाले वेदों के पढ़ाने वा उनके अभिप्राय का उपदेश करने में कुशल और बहुश्रुत लोग संसार में ही प्रतिष्ठित होते हैं वेद शास्त्रों के जानने मात्र से ब्रह्मज्ञान नहीं हो सकता किन्तु शास्त्रों को पढ़ के उनमें लिखे अनुसार अनन्यचित्त होकें जब ब्रह्म की उपासना करता है तब यह प्राणी आत्मज्ञान से होने वाले सुख का भागी होता और प्रसन्न हुआ ब्रह्म भी उसके लिये अपने स्वरूप का प्रकाश कर देता है ॥३॥

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसोवाप्यलिङ्गात्
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ४

अ०—(अयम् आत्मा) (बलहानेन) उपस्थेन्द्रिय निग्रहरूपब्रह्मचर्यसेवनजन्यबलविहीनेन पुरुषेण बुद्धेर्निर्बलत्वात् (न, लभ्यः) (प्रमादात्) विषयासङ्गजन्यपरमार्थसाधनविस्मरणात् (वापि) अथवा (अलिङ्गात्) लिङ्गानि सच्चिह्ना ब्रह्मचर्याद्याश्रमास्तद्विरुद्धात्पाखण्डनिर्मितात् (तपसः) (न, च) लब्धुमर्हतीति शेष (एतैः) ब्रह्मवर्यधारणप्रमादत्यागसत्यतपो-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुष्ठानैः (उपायैः) (यः, तु, विद्वान्, यतते) (तस्य) विदुषः (एषः) योगेन प्रत्यक्षः (आत्मा) जीवात्मा (ब्रह्म) महत् (धाम) सर्वाधारम् (विशते) प्रविष्टं प्रत्यक्षम्भवति ॥

भा०—विरुद्धसाधनैः प्रमादपाखण्डरतैः पुरुषैः परमेश्वरः प्राप्तुमशक्यः किन्तु प्रमादादित्यागेनोपायैः प्रयतमानः प्राप्तुं शक्नोति तस्मात्सत्यतपआदिसाधनानां संग्रहएव निःश्रेयसस्य प्रथमा श्रेणिरिति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(अयम्, आत्मा) यह परमेश्वर (बलहीनेन) ब्रह्मचर्य के सेवन से होने वाले बल से रहित पुरुष को बुद्धि के निर्बल होने से (न, लभ्यः) प्राप्त होने योग्य नहीं (प्रमादात्) विषयासक्ति से होने वाले परमार्थ सम्बन्धी साधनों के विस्मरण—भूलने से (वापि) अथवा (अलिङ्गात्) चिन्ह सहित ब्रह्मचर्यादि आश्रमों से विरुद्ध पाखण्ड से किये (तपसः) तप से भी (न,च) नहीं प्राप्त हो सकता (एतैः) इन ब्रह्मचर्य के धारण, प्रमाद के त्याग और सत्य वा तपके सेवनरूप (उपायैः) उपायों के साथ (यःतु, विद्वान्, यतते) जो विद्वान् प्रयत्न करता है (तस्य) उस ज्ञानी का (एषः) योगाभ्यास से प्रत्यक्ष होने वाला (आत्मा) जीवात्मा (ब्रह्म) सबसे बड़े (धाम) सब के आधार परमेश्वर में (विशते) प्रविष्ट होता है ॥

भा०—प्रमाद वा पाखण्डादि विरुद्ध साधनोंवाले पुरुषों को परमेश्वर प्राप्त नहीं हो सकता किन्तु प्रमाद आदि के छोड़ने से उपायों के सेवन पूर्वक प्रयत्न करता हुआ प्राप्त हो सकता है इससे सत्य और तप आदि साधनोंका संग्रह करना ही कल्याण मार्गकी प्रथम सीढ़ी है ॥४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ।
ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाविशन्ति ५

अ०—(ऋषयः) वेदाविदो ज्ञानिनः (एनम्) परमेश्वरम् (संप्राप्य) (ज्ञानतृप्ताः) बाह्यविषयभोगवासनामन्तरेण केवलेनात्मज्ञानेनैव तृप्ताः (वीतरागाः) विगतस्त्यक्तो रागो विषयाणां भोगोत्कण्ठा यैस्तेऽतएव (प्रशान्ताः) गतविषयभोगलौल्याः (कृतात्मानः) शुद्धान्तःकरणाश्च भवन्ति । (ते, युक्तात्मानः) वशीकृतबुद्धयः (धीराः) प्रत्यगात्मविचारे रताः (सर्वतः, सर्वगम्) व्याप्तं परेशम् (प्राप्य) (सर्वमेव) कार्यकारणरूपं जगत् (आविशन्ति) भ्रमन्ति नह्येकत्र प्रदेशे क्वापि बद्धा भवन्ति किन्तु सर्वबन्धनान्मुच्यन्ते ॥

भा०—परमात्मा सदा विरक्तः शान्तः सिद्धो विषयभोगवासनामन्तरेण ज्ञानेनैव तृप्तश्चास्ति तदुपासकोऽपि तादृशो भवति मुक्तात्मा पुरुषः संसारिजनवदेकदेशी न भवत्यपितु सर्वत्र भ्रमति ॥

भाषार्थः—(ऋषयः) वेद को जानने वाले पुरुष (एनम्) इस परमेश्वर को (संप्राप्य) प्राप्त हो के (ज्ञानतृप्ताः) बाहरी विषय भोग की वासना के विना ही केवल आत्मज्ञान से सन्तुष्ट (वीतरागाः) विषयभोग की तृष्णा को त्यागने वाले (प्रशान्ताः) विषयभोग की लोलुपता को त्यागे हुए और (कृतात्मानः) शुद्ध अन्तःकरण वाले होते हैं (ते) वे (युक्तात्मानः) बुद्धि को जिनने वश में किया ऐसे (धीराः) प्रत्यगात्म विचार में रत (सर्वतः,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वगम्) सब ओर से सब में व्याप्त परमेश्वर को (प्राप्य) पाकर (सर्वमेव) कार्यकारण रूप जगत् को (आविशन्ति) प्रवेश वा उस में भ्रमण करते हैं कहीं एक स्थान में बद्ध नहीं रहते किन्तु सब प्रकार के बन्धन से छूटते हैं ॥

भा०—परमात्मा सदा विरक्त शान्त स्वयं सिद्ध और विषय-भोग की वासनाओं से रहित और केवल ज्ञान से तृप्त है उस का उपासक भी वैसा ही होता है। और मुक्त पुरुष संसारी मनुष्य के तुल्य एक देशी नहीं होता किन्तु सब स्थानों में भ्रमता है ॥

वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ॥६॥

अ०—ये (संन्यासयोगात्) दृष्टादृष्टविषयसुखभोगाभिलाषनिराकरणरूपपरापरवैराग्यसम्बन्धात् (यतयः) संयतेन्द्रियक्रियाः। तृष्णात्यागमन्तरेण जितेन्द्रियभावस्यासम्भवादतएव (शुद्धसत्वाः) शुद्धं रजस्तमोमलैर्विहीनं सत्वं सत्वगुणात्मकं बुद्धितत्वं सम्पद्यतएषां ते (वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः) वेदान्तस्योपनिषच्छिवन्धानाभ्यासेन जायमानं विज्ञानं वेदान्तविज्ञानं तस्यार्थः प्रयोजनं परमात्मा सुनिश्चितो निस्सन्देहं साक्षात्कृतो यैस्ते (ते) (परामृताः) परः सर्वोत्कृष्टोऽमृतो मोक्षो येषां ते जीवन्मुक्तिदशामापन्नाः (सर्वे) योगाभ्यासिनो ज्ञानिजनाः (परान्तकाले) चरमदेहत्यागावसरे। अन्तकालो मृत्युसमयः परश्चासावन्तकालः परान्तकालः। नास्ति यस्मात्परोऽन्योमृत्युः किन्तु यन्मरणकालानन्तरं मोक्ष एव भवति न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राकृतजनवत्कश्चिज्ज्ञानी पुनर्जन्मोपैति यस्मिन्सति तस्मिन् परान्तकाले (ब्रह्मलोकेषु) ब्रह्मणइमे लोकाः स्वभूतास्तत्तेषां पृथिव्यादीनामध्यक्षम् यद्वा ब्रह्माणो बृहन्तश्च ते लोका ब्रह्मलोकास्तेषु महत्सु सूर्यादिलोकेषु (परिमुच्यन्ति) पिञ्जरान्निर्गतशकुनिरिव कारागाररूपकलेवरात्पृथग्भूय यथेष्टं निर्बन्धं सर्वलोकेषु भ्रमन्ति नहि ते भित्तिवद्निजलादिना क्वापि निरुध्यन्ते ॥

एतन्मन्त्रस्योत्तरार्द्धेन श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनाऽयमर्थः प्रतिपादितः—ते परामृता उत्कृष्टतया मुक्तिं प्राप्ताः सर्वेज्ञीवात्मानः परान्तकाले प्रात्यहिकमरणापेक्षयाऽवान्तरप्रलये प्राणिसंहारापेक्षया च परः उत्कृष्टोऽन्तकालः प्राणिसंहारसमयो महाकल्पस्तस्मिन्महाप्रलयान्ते पुनः परिमुच्यन्ति संसारदशामाप्नुवन्ति । सम्भवितश्चायमर्थो मुक्तेः पुनरागमनवादिपक्षपोषकश्चास्ति ॥

अपुनरावृत्तिवादिनां च विरुद्धः। तत्रभवतां दयानन्दस्वामिनां चायमेव-राद्धान्तो यन्मुक्तेः पुनरावर्त्तनमिति । स च साधुतरः पक्षस्तस्मात्सोऽर्थोपि साधुरेव ॥

भा०—अनेकजन्मसु कृतसाधना यदौपनिषदमुपनिषत्सु व्याख्यातं परमात्मतत्त्वं सर्वथा साक्षाज्ज्ञात्वा समाहितचेतसः शुद्धान्तःकरणाश्चरमजन्मनि ज्ञानिनो भवन्ति तदा चरमदेहस्य त्यागकाले शरीररूपबन्धनान्मुक्ता जना अव्याहतगतयः सन्तः सर्वलोकेषु भ्रमन्ति तदा तैः सर्वविषस्वातन्त्र्यात्सर्वथा सुखमेवानुभूयते ॥ ६ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—जो (संन्यासयोगात्) संसारी वा जन्मान्तर सम्बन्धी विशेष सुख भोग की अभिलाषाओं के त्यागरूप पर वा अपर वैराग्य के होने से (यतयः) कर्म करने में वशीभूत इन्द्रियों वाले (क्योंकि तृष्णा को छोड़े विना जितेन्द्रिय होना असम्भव है इसी से) (शुद्धसत्वाः) रजोगुण तमोगुण से रहित निर्मल सत्व-गुणरूप जिन की बुद्धि हो जाती (वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः) उपनिषद् नामक वेदान्तशास्त्र का अभ्यास करने से हुआ जो ज्ञान उस के प्रयोजन वा फलरूप परमेश्वर को निस्सन्देह साक्षात् जिनने जान लिया (ते) वे (परामृताः) सर्वोत्तम मोक्ष जिन के लिये उपस्थित है वे जीवन्मुक्तिदशा को प्राप्त (सर्वे) सब योगाभ्यास करने वाले ज्ञानी लोग (परान्तकाले) सब की अपेक्षा अन्तिम मरण समय में (जिस मरने के पश्चात् फिर न मरना पड़े किन्तु मरते ही मोक्ष प्राप्त हो जावे वह परान्तकाल कहाता है) (ब्रह्म-लोकेषु) सर्वस्वामी परमात्मा के पृथिव्यादि लोकों वा बड़े२ सूर्यादि लोकों में (परिमुच्यन्ति) जैसे पिंजरा से पक्षी निकल कर इच्छा पूर्वक घूमता है वैसे सब बन्धनों से पृथक् हो कर यथेष्ट घूमते हैं किसी घर आदि में बन्ध नहीं किया जासकता इसको न अग्नि जला सकता है और न जल डुबा सकता किन्तु अग्नि जल और भित्ति आदिके बीच होकर निकल जाता और उनमें भी भ्रमण कर सकताहै ॥

इस मन्त्र में श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीजी ने ऐसा अर्थ किया है कि उत्तमता के साथ मुक्तिदशा को प्राप्त सब जीवात्मा महाकल्प के अंत में संसार में आकर फिर जन्म लेते हैं सो ऐसा अर्थ करना भी स-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्भव है किन्तु असम्भव नहीं। एक के अनेक अर्थ वा प्रयोजन होते भी हैं यह सबको प्रसिद्ध है इसलिये इसपर विशेष विचार की आवश्यकता नहीं। परन्तु एक मूल के परस्पर विरुद्ध दो अर्थ नहीं हो सकते उन में एकार्थ अवश्य मिथ्या होगा। यहां मुक्ति से पुनरावृत्ति रूप एक पक्ष वालों के दो अर्थ भी परस्पर विरुद्ध नहीं हो सकते ॥

भा०—अनेक जन्मों में मुक्ति के साधनों का जिन्हों ने संचय किया उपनिषदों में विशेषकर व्याख्यात परमात्मा को सब प्रकार से साक्षात् जानकर जिन का चित्त समाहित और अन्तःकरण शुद्ध हुआ ऐसे ज्ञानी पुरुष अन्तिम जन्म में मुक्त होते हैं तब अन्तिम शरीर [कि जिसके छूटने पर फिर जन्म न होगा] रूप बन्धन से छूटे मनुष्य सब रुकावटों से पृथक् हुए सब लोकों में घूमते हैं तब सब प्रकार की स्वतन्त्रता से सर्वथा सुख का ही अनुभव होता है ॥ ६ ॥

गताः कलाः पञ्चदश प्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु ।
कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्व एकी भवन्ति ७

अ०—मुक्तपुरुषस्य (पञ्चदश) प्रश्नोपनिषदः षष्ठप्रश्नस्य चतुर्थमन्त्रे प्रतिपादिताः प्राणाद्याः। [यासामिन्द्रियमनसोरभेदत्वेन पञ्चदशत्वम्] (कलाः) शरीरस्थास्तत्सम्बन्धिनो वा कार्यजगदंशाः (प्रतिष्ठाः) प्रतिष्ठां स्वस्वकारणे स्थैर्यम्। छन्दोवदुबुद्ध्या वचनव्यत्ययः (गताः) प्राप्ताः (च) (सर्वे) (देवाः) विषयद्योतकाः श्रोत्रादयः (प्रतिदेवतासु) स्वस्वकारणेष्वाकाशादिषु प्रतिष्ठां प्राप्ता भवन्ति (कर्माणि) संचिता वासनाः (विज्ञानमयः) चेतनस्वरूपः (आत्मा) जीवात्मा (च)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्वे) स्थूलरूपाभावेन भेदाप्रतीतेः (परे, अव्यये) सर्वोत्कृष्टेऽविनश्वरे (एकीभवन्ति) ॥

भा०—मुक्तिदशायां मुक्तजनस्य सर्वे प्राणादयः शरीरांशा जन्ममरणप्रवर्त्तकाश्च संस्काराः स्वस्वकारणे लीयन्ते शान्त कर्मा जीवात्मा च ससुखं परमात्मन्यवतिष्ठते जले मृदणूनामिव सूक्ष्मत्वाद्भेदो न लक्ष्यतइत्येकत्वं विज्ञेयम् ॥ ७ ॥

भाषार्थः—मुक्त पुरुष के (पञ्चदश) प्राणादि नाम से प्रश्नोपनिषद् के छठे प्रश्न के चौथे मन्त्र में गिनाये इन्द्रिय और मन को भिन्न २ न मानकर पन्द्रह (कलाः) शरीर में स्थित वा शरीर सम्बन्धी कार्य स्थूल जगत् के अंश (प्रतिष्ठाः) स्थिरता (गताः) को प्राप्त हुए (च) और (सर्वे) सब (देवाः) विषयों के प्रकाशक कान आदि इन्द्रिय (प्रतिदेवतासु) अपने २ कारण आकाशादि में प्राप्त वा लीन होते हैं (कर्माणि) संचित कर्मों की वासना (च) और (विज्ञानमयः) चेतन स्वरूप (आत्मा) जीवात्मा (सर्वे) ये सब (परे, अव्यये) सब से उत्तम अविनाशी परमेश्वर में (एकीभवन्ति) एकत्र हो जाते हैं ॥

भा०—मुक्ति दशा में मुक्त पुरुष के सब प्राणादि शरीर के अंश तथा जन्म मरण के हेतु संस्कार भी अपने २ कारणों में लीन हो जाते हैं और शान्त हो गये कर्म जिस के ऐसा जीवात्मा भी सुख पूर्वक परमात्मा में ठहरता है। जैसे जल में सूक्ष्ममट्टी घुल जाने से उस से भिन्न नहीं जान पड़ती और न भिन्न मानने का व्यवहार होता वैसे ही यहां भी सूक्ष्मता से भेद प्रतीत न होने के कारण अभेद कहा गया वास्तव में तो भेद ही है ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नाम रूपे विहाय।
तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥८॥

अ०—(यथा) (स्यन्दमानाः) प्रवहमानाः (नद्यः) गङ्गाद्याः (नामरूपे) इयं गङ्गेयं यमुनेत्येवं विधे (विहाय) त्यक्त्वा (समुद्रे) (अस्तम्) अदृश्यभावम् (गच्छन्ति) (तथा) मुक्तिदशोन्मुखः (नामरूपात्) देवदत्तादिनामतः शुक्लादिरूपतश्च चरमप्रयाणकाले (विमुक्तः) दूरीभूतः (परात्परम्) सूक्ष्मात्सूक्ष्ममुत्तमादुत्तमं च (दिव्यम्) दिवि स्वस्मिन्नेव प्रकाशस्वरूपे वर्त्तमानम् (पुरुषम्) पूर्णं व्याप्तं परेशम् (उपैति) प्रीतिभावेन सन्निहितो भवति ॥

भा०—यथा समुद्रे गतानां नदीनां पृथक् २ नामानि रूपाणि च जनैर्न व्याप्रियन्ते तासामप्राधान्यात्सागरस्य च प्राधान्यात्प्रधानशब्देन व्यापारस्तथैव प्रधानं सर्वाध्यक्षं परमात्मानमाश्रितस्य जीवात्मनः शरीरसम्बन्धीनि नामरूपाणि न व्याप्रियन्ते। भेदस्तु जलभेदवत्सूक्ष्मोऽवगन्तव्यो धीमद्भिः ॥८॥

भाषार्थः—(यथा) जैसे (स्यन्दमानाः) बहती हुई (नद्यः) गङ्गादि नदियां अपने २ (नामरूपे) इसका यह नाम वा यह रूप श्वेतादि है इस प्रकार नाम और रूपों को (विहाय) छोड़ कर (समुद्रे) समुद्र में (अस्तम्, गच्छन्ति) अदृष्ट हो जाती हैं (तथा) वैसे मुक्तिदशा की ओर झुका हुआ अन्तिम मरण समय में (नाम रूपात्) देवदत्तादि नाम और शुक्लादिरूप से विमुक्तः छूटा (परात्परम्) सूक्ष्म से सूक्ष्म और उत्तम से उत्तम (दिव्यम्) अपने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशस्वरूप में वर्त्तमान (पुरुषम्) पूर्णव्याप्त परमेश्वर को (उपैति) प्रीतिपूर्वक प्राप्त होता निकट पहुँच जाता है ॥

भा०—जैसे समुद्र में पहुँची हुई नदियों के पृथक् २ नाम और रूप का मनुष्य व्यवहार नहीं कर सकते कि यह गङ्गा वा यह यमुना है। क्योंकि वहां नदियों की गौणता और समुद्र की प्रधानता है वैसे ही सबके स्वामी सबसे श्रेष्ठ प्रधान परमेश्वर को प्राप्त हुए अप्रधान जीवात्मा के शरीर सम्बन्धी नामरूपों का व्यवहार नहीं रहता किन्तु समुद्र के जल में गंगादि के जल के परमाणु जैसे अवश्य अपने स्वरूपसे भिन्न रहते हैं वैसे सूक्ष्म भेद यहां रहता ही है

स यो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति। तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ॥

अ०—अधुना ग्रन्थोपसंहारे फलस्तुतिमाह—(ब्रह्म, एव, भवति) ब्रह्म हि निरवधिसत्तात्मकं भवति नहि तद्वदन्यः कश्चिन्नित्योऽस्तीति प्रकारेण (सः, यः, ह, वै) कश्चिदेवाधिगतयाथातथ्यो विद्वान् (तत्) परोक्षम् (परमम्) सर्वोत्कृष्टम् (ब्रह्म) (वेद) जानाति (अस्य) ब्रह्मविदः (कुले) पुत्रपौत्रादिसन्ततौ शिष्यशिक्षकपरम्परायाः प्रचुरप्रचारकारणात् कश्चिदपि (अब्रह्मवित्) अवेदज्ञः (न) न भवति किन्तु सर्वे विद्वांसएव जायन्ते आत्मज्ञो विद्वान् (शोकम्, तरति) (पाप्मानम्, तरति) (गुहाग्रन्थिभ्यः वासनारूपेणावस्थितरागद्वेषसंस्कारेभ्यः (विमुक्तः) (अमृतः) मुक्तः (भवति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—परमात्मा सर्वद्रष्टा सर्वदिक्ष्ववस्थितस्तस्यस्तत्तायां शङ्काविहीनः कश्चिदेव साक्षाद् ब्रह्मज्ञानी भवति यश्चैवं भवति सएव शोकमोहादिदुःखसागरस्य पारं गत्वा मुक्तो भवति। तस्य कुले च मूर्खा नोत्पद्यन्ते ॥ ९ ॥

भाषार्थः—अब इस ग्रन्थ की समाप्ति में फल दिखाते हैं:—(ब्रह्म, एव, भवति) ब्रह्म ही असीम स्थिति वाला है किन्तु उसके तुल्य अन्य कोई नित्य वस्तु नहीं इस प्रकार से (सः, यः, ह, वै) जो कोई ही यथार्थ भाव को प्राप्त हुआ विद्वान् (तत्) उस परोक्ष (परमम्) सबसे उत्तम (ब्रह्म) ब्रह्मको (वेद) जानता है (अस्य) इस ब्रह्मज्ञानी पुरुष के (कुले) पुत्र पौत्रादि वा शिष्य प्रशिष्यादि में पठन पाठन की परम्परा का विशेष प्रचार होने से कोई भी (अब्रह्मवित्) वेद का न जानने वाला (न, भवति) नहीं होता किन्तु सब वा प्रायः विद्वान् ही होते हैं। वह आत्मज्ञानी विद्वान् (शोकम्, तरति) शोक के पार और (पाप्मानम्, तरति) पाप वा दुष्कर्मों से पृथक् हो जाता है (गुहाग्रन्थिभ्यः) वासना रूप से अवस्थित रागद्वेष सम्बन्धी संस्कारों से (विमुक्तः) पृथक् हुआ (अमृतः) मुक्त (भवति) होता है ॥

भा०—परमात्मा सब का द्रष्टा सब दिशाओं में स्थित है उसकी सत्ता में शंका रहित कोई ही साक्षात् ब्रह्मज्ञानी होता है। जो ऐसा होता है वही शोक मोहादि से होने वाले दुःखसागर के पार पहुँचता मुक्त होता है और उसके कुल में मूर्ख नहीं उत्पन्न होते ॥ ९ ॥

तदेतदृचाभ्युक्तम्—क्रियावन्तः श्रोत्रिया ब्रह्मनिष्ठाः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वयं जुह्वते एकर्षिं श्रद्धयन्तस्तेषामेवैतां ब्रह्मविद्यां वदेत शिरोव्रतं विधिवद्यैस्तु चीर्णम् ॥

अ०—(तदेतदृचाभ्युक्तम्) अस्मिन्प्रसङ्गे वेदमन्त्रः प्रमाणम् (क्रियावन्तः) वेदोक्तकर्मानुष्ठातारः (श्रद्धान्विताः) श्रद्धान्विताः (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्मणि निष्ठा चेतोवृत्तिर्येषां ते (श्रोत्रियाः) वेदानामध्येतारो ज्ञातारश्च ज्ञानिनः (स्वयम्) न केनापि प्रयुक्ताः (एकर्षिम्) एको वेदरूपी ऋषिः प्रतिपादकोऽस्य तमग्निहोत्रादि यज्ञम् (जुह्वते, फलाकाङ्क्षाराहित्येन कुर्वन्ति (तेषाम्, एव) तेभ्यएव (एताम्) मुण्डकनाम्नोपनिषन्नाम्ना वा प्रसिद्धम् (ब्रह्मविद्याम्) (वदेत) उपदिशेत् तेभ्यः केभ्यस्तदाह-(यैस्तु) (शिरोव्रतम्) धर्म्याणां शुभगुणानां धारणं सज्जनानां सत्कारश्च शिरसि करणं जटिल ब्रह्मचारित्वं वा (चीर्णम्) समापितं सेवितं स्वीकृतं च तेभ्यः ॥

भा०—वेदोक्तोऽयं दृढः सिद्धान्तो यत्सत्क्रियांधर्म्यां कुर्वाणाएव सांसारिकपारमार्थिकसुखभाजो भवितुमर्हन्ति तेभ्यो ऽधिकारिभ्य एव ज्ञानोपदेशः कार्यो नानधिकारिभ्यः ॥ १० ॥

भाषार्थः—[तदेतदृचाभ्युक्तम्] अर्थात् इस पूर्वोक्त विषय में ऋग्वेद का भी प्रमाण है कि [क्रियावन्तः] वेदोक्त कर्म करने वाले (श्रद्धयन्तः) श्रद्धायुक्त (ब्रह्मनिष्ठाः) ब्रह्म में निष्ठा अर्थात् चित्त की वृत्ति जिनकी है वे (श्रोत्रियाः) वेदो के पढ़ने और जानने वाले ज्ञानी लोग (स्वयम्) किसी से प्रेरणा किये विना ही (एकर्षिम्) एक वेद नामक ऋषि जिसका जताने वाला है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसे अग्निहोत्रादि यज्ञ को (जुह्वते) फलभोग की काङ्क्षा को छोड़ कर सेवन करते हैं (तेषाम्, एव) उन्हीं के लिये (एताम्) इस मुण्डक नाम से प्रसिद्ध (ब्रह्मविद्याम्) ब्रह्मविद्या को (वदेत) कहे वा उपदेश करे। जिनको उपदेश किया जाय वे कैसे हों (यैः) जिन्होंने [शिरोव्रतम्] धर्मसम्बन्धी शुभ गुणों का धारण वा सज्जनों का सत्कार अपने शिर लेना वा जटिल दशा में ब्रह्मचर्य व्रत को (चीर्णम्) सेवनकर पूरा किया वा दृढ स्वीकार किया हो ॥

भा०—वेदोक्त सिद्धान्त दृढ़ यह है कि जो धर्म सम्बन्धी श्रेष्ठ कर्म को करते हुए ही संसार और परमार्थ के सुख भागी मनुष्य हो सकते हैं उन अधिकारियों के लिये ही ज्ञान का उपदेश करना चाहिये किन्तु अनधिकारियों को नहीं ॥ १० ॥

तदेतत्सत्यमृषिरङ्गिराः पुरोवाच नैतदचीर्णव्रतोऽधीते ।
नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्य ॥ ११ ॥

अ०—(पुरा) पूर्वकाले (अङ्गिराः) (ऋषिः) शौनकाय (अचीर्णव्रतः) विनष्टनियमो दुराचारोऽजितेन्द्रियः पुरुषः (एतत्, न, अधीते) नाध्येतुमर्हति (तत्, एतत् सत्यम्) अङ्गिराऋषिरुवाच । इदानीं पुस्तकसंग्रहीता कश्चिदृषिः स्वतः पूर्वज्ञानूनमस्करोति (परमऋषिभ्यः नमः । परमऋषिभ्यः, नमः) सर्वोत्तमऋषिज्ञानिसत्कर्मिभ्यो मुहुर्मुहुरस्माकं नमोऽस्तु यैः परम्परया वेदविद्या प्रचारिता ॥

भा०—यथोषरभूमावुप्तं बीजं नैव प्ररोहति तथैवानधिकारिणे विद्यादानश्रमस्य नैष्फल्यं मन्वान दातव्येति सज्जना-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुभवः। अत्राङ्गिरसः प्रथमपुरुषस्थत्वेन पुराशब्देन चानुमीयते तस्माद्भिन्नेन केनचिद्ऋषिणेयमुपनिषन्निर्मिता ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(पुरा) पूर्वकाल में (अङ्गिराः, ऋषिः) अङ्गिरा ऋषिने (उवाच) कहा कि (अचीर्णव्रतः) नियम रहित व्यवहार करने वाला दुराचारी लम्पट पुरुष (एतत् न, अधीते) इस ब्रह्मज्ञान सम्बन्धिनी विद्या को नहीं पढ़ सकता (तत्, एतत्, सत्यम्) सो यह सज्जनों का विचार सत्य ही है। अब इस पुस्तक का बनाने वाला कोई ऋषि अपने से पूर्वज वेदादि विद्या के प्रचारक अङ्गिरादि ऋषियों को नमस्कार करता है कि (परमऋषिभ्यः, नमः। परमऋषिभ्यः, नमः) श्रेष्ठ कर्म करने वाले सर्वोत्तम ज्ञानी विद्वान् पुरुषों को वार २ हमारा नमस्कार हो ॥

भा०—जैसे ऊपर भूमि में बोया बीज नहीं जमता वैसे अनधिकारी को विद्या देने में परिश्रम करना निष्फल है इससे उन को विद्या न देना चाहिये यह सज्जनों का अनुभव है। यहां पुरा शब्द के पढ़ने और अंगिरा को प्रथम पुरुषस्थ रखने से अनुमान है कि यह उपनिषद् अंगिरा से भिन्न किसी ऋषि का बनाया है ॥११॥

इति तृतीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः ॥

इति मुण्डकोपनिषत्समाप्ता।

यद्यपि सर्वासूपनिषत्सु सामान्येन ब्रह्मज्ञानमेव विषयः। तथाप्यस्यां मुण्डकोपनिषदि कश्चित्तस्यैवावान्तरभेदो वर्णितएवं सर्वासु पृथक्पृथगवान्तरभेदाएव सन्ति। यथा पाकसाधनसञ्चयएव पाकसिद्धौ मुख्यं कारणम्। तथैव सत्सु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधनेषु ब्रह्मज्ञानमपि सुलभमेव । अस्यां मुण्डकोपनिषदि एकएव प्रश्नः—कस्मिन्विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवतीति । यस्य विज्ञानं सर्वस्य विज्ञाने कारणं तस्य ज्ञानोपाया अपि वाच्या इत्यर्थादापन्नं भवति । अत्र सर्वसाधनेषु द्विविधपरा-ऽपरविद्यायाएव प्राधान्येन साधनकोटौ वर्णनमिति । सत्यां विद्यायां सर्वस्य ज्ञेयस्य ज्ञानं सुलभम् । तस्मादादौ विद्याऽ-ध्येतव्या ज्ञातव्या च तदनन्तरं विद्याचक्षुषा परमात्मज्ञानं सम्पादनीयमिति ग्रन्थाशय इत्यलं बहुना ॥

भाषार्थः—यद्यपि सब उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान ही मुख्य विषय है तो भी इस मुण्डकोपनिषद् में उसी विषय का कोई अवान्तर भेद कहा गया है इसी प्रकार सब उपनिषदों में पृथक् २ अवान्तर भेदों का वर्णन है । अर्थात् प्रायः सब उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान के साधन कहे गये हैं । जैसे भोजन पकाने की लकड़ी आटा आदि साधनों का इकट्ठा करना ही भोजन बन जाने में मुख्य कारण है । वैसे ही साधनों के होने पर ब्रह्मज्ञान भी सुलभ है। इस मुण्डकोप-निषद् में एक ही प्रश्न किया गया है कि किसके जानने में सब कुछ जान लिया जाता है। जिसका ज्ञान सबके ज्ञान का कारण है उसको जानने के उपाय भी कहने चाहिये यह अर्थापत्ति से सिद्ध है । यहां पर अपर दो प्रकार की विद्या को सब साधनों में प्रधान साधन कहा है क्योंकि विद्या होने पर ही सब जानने योग्य का ज्ञान होना सुलभ है । इससे पहिले विद्या को पढ़ जानके विद्या रूप नेत्र से परमात्मा का ज्ञान करना चाहिये यह मुख्य इस ग्रन्थ का आशय है ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथाथर्ववेदीयमाण्डूक्यो-पनिषत्प्रस्तावः।

इयं माण्डूक्योपनिषद् माण्डूक्यशाखान्तर्गता। मण्डूक-नामा कश्चिदृषिरासीत्तस्यापत्यं माण्डूक्यः। माण्डूक्येन महर्षिणा प्रोक्ता माण्डूक्या शाखा" तदन्तर्गतोपनिषदपि माण्डूक्योपनिषद्। इयमुपनिषत्सर्वास्वल्पीयसी, नास्ति काचिदतो लघीयसी तथापि प्रधानस्य परमात्मनो नाम्नो वाचकस्यो-मिति शब्दस्य महत्त्वमत्र प्रकाश्यते तेनेयं गरीयस्त्वमापन्ना। अस्या उपरि गौडपादीयाः कारिकाः शाङ्करमानन्दगिरिकृतं भाष्यं च बहुधा विस्तृतमस्ति। तत्र चत्वारि प्रकरणानि तैर्बद्धानि। तेषु पद्येष्वागमार्थाविष्करणं प्रथमं प्रकरणम्। तस्मिन्काचिद्विप्रतिपत्तिरस्ति तस्या उत्तररूपमस्मदीयं भाष्य-मेव विज्ञेयम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयं वैतथ्याख्यं प्रकरणम् तत्र—वैतथ्यं सर्वभावानां स्वप्न आह्युर्मनीषिण इत्यादिना स्वप्नदृष्टान्तेन सर्वस्य मिथ्यात्वमुक्तम्। आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथेति तात्कालिकोऽभाव एव सर्वस्य मिथ्यात्वे द्वितीयो हेतुः।

जीवस्य मिथ्यात्वे रज्जौ सर्पभ्रान्तिर्दृष्टान्तः। यथा रज्ज्वां निश्चितायां सर्पत्वभ्रान्तिर्निवर्त्तते तथा परमात्मनि ज्ञाते जीवत्वभ्रान्तिः स्वयमेव निवर्त्तते। तेनाद्वैतमेव सिद्धान्तःसाधुः अद्वैतं समनुप्राप्य जडवल्लोक आचरेत्। निस्स्तुतिर्निर्नमस्कारो निःस्वधाकार एव च। इत्यादि प्रकारेण सर्वकर्त्तव्याकर्त्तव्येभ्यो भ्रष्टः प्रच्छन्ननास्तिक इव पुरुषः स्यादिति गौडपादस्य तदनुयायिनः शङ्करस्वामिनश्चाभिप्रायो निस्सरति।

अत्रोच्यते—यत्र कस्यचिद्वैतथ्यं प्राप्तं तत्र केनचित्सापेक्षता भवत्येव। कस्यचिदपेक्षयैव कस्यचिद्वैतथ्यं याथातथ्यं वा भवितुमर्हति न तु निरपेक्षमिति। यस्य चापेक्षा तदेव तस्य वैतथ्ये हेतुरस्तीति बोध्यम्। शुक्तौ रजतज्ञानवत्। यश्च सज्ञासंज्ञिसम्बन्धज्ञानपूर्वकं रजतपदवाच्यं विजानाति स एव शुक्तिं दृष्ट्वा रजतमिदमस्तीति भ्रान्तो भवति न हि षाण्मासिको बालः पश्चाद्दिर्वाऽविज्ञातरजतगुणतत्त्वः शुक्तिं दृष्ट्वा रजतं मन्यते। एतेन तस्मिंस्तद्बुद्धिरतस्मिंस्तद्बुद्धेः कारणमित्यापन्नं भवति। भ्रान्तेः कारणं च साधर्म्यम्। रजतवच्छुक्लत्वविशिष्टा शुक्तिरिति समानधर्मोपपत्तिर्भवति। तथैव दार्ष्टान्तेऽपि प्रतिवादिना योजयितव्यम्। न हि स्वप्ने वैतथ्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतिपत्तिर्निर्मूला कथमपि भवितुमर्हति। यदि जाग्रदवस्थायां विद्यमानवस्तुषु तस्मिंस्तद्बुद्धिः सैवातस्मिंस्तद्बुद्धिरूपस्वप्नस्य कारणमित्युच्येत तर्हि युक्तं वैतथ्यमेतयोरिति सर्वस्य वा मिथ्यात्वमिति न सम्भवति। इतरेतरव्याघातात्। यदा च जाग्रद्दशाया अपि वैतथ्यं स्पष्टं प्रतिपाद्यते तदा सा स्वप्नस्य कारणं न भवति, भवति चेद्वदतो व्याघातः। न च तुरीयावस्थायां सर्वाणि वस्तूनि मिथ्या प्रतिभान्ति तदपेक्षयाऽतस्मिंस्तद्बुद्धिरिति भ्रम इति वाच्यम्। तत्र साधर्म्याभावात् साधर्म्यमेव च भ्रान्तेः कारणम्। अस्ति च रजते शुक्तौ च किमपि रूपसाधर्म्यं येन रजतवच्छुक्तिरवभासते। एवमन्यत्रापि साधर्म्यमेव कारणम्। न हि पक्षिणि पक्षिबुद्धिः स्थाणौ पुरुषबुद्धेः कारणमिति कथञ्चन भवितुमर्हति। न हि तुरीयावस्थया स्वप्नादेः साधर्म्यं केनचित्प्रतिपादयितुं शक्यम्। यावद्दृश्यस्य जगतो मिथ्यात्वप्रतिपादनं यस्य साध्यं पक्षो वास्ति तेन स्वपक्षसिद्धये साध्याज्जगतोऽन्यः कश्चित्साधको हेतुर्दृष्टान्तो वा निस्सारणीयो येन स पक्षः सिद्धो भवेत्। जगदन्तर्गतो हेतुश्चेत् साध्यसमहेत्वाभासो निग्रहस्थानम्। लौकिकपरीक्षकाणां यस्मिन्नर्थे बुद्धिसाम्यं स दृष्टान्त इत्येवम लौकिकस्य जगद्भिन्नस्य दृष्टान्तत्वमेव नास्ति। एवं हेतुदृष्टान्तावेव तस्य न स्तो यस्य सर्वं मिथ्यास्ति। सर्वं मिथ्येत्यत्र वाक्ये योऽयं सर्वशब्दस्तस्य वाच्यान्तर्गतं सर्वं मिथ्येति वाक्यमपि मिथ्येत्यायातम्। तेन सर्वं मिथ्येति वाक्याभि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धस्यैव मिथ्यात्वान्न सर्वं मिथ्येति सिद्धं भवति। आदावन्ते च यन्नास्ति वर्त्तमानेऽपि तत्तथेति घटपटादिवद्भवच्छरीरमपि वर्त्तमानदशायां नास्तिकिम्? अस्ति चेद्विषमो दृष्टान्तो नास्ति चेत्कण्टकेन भवच्छरीरतोदनं व्योमतोदनवद्विज्ञेयम्। यदि वेदनया कथमपि व्याकुलो भवसि। एवमपि विषमो दृष्टान्तः। एतेन रज्जौ सर्पभ्रान्तिरूपो दृष्टान्तोऽपि प्रत्युक्तो भवति। न हि सर्पे सर्पबुद्धावपि मिथ्यासत्यां रज्जौ सर्पभ्रान्तिर्वक्तुं शक्यते तस्मान्नैवायं पक्षः साधुः। अस्मन्मते तु नायं दोषः। अस्मन्मते सत्या जाग्रदवस्था। जाग्रद्दशायामनुभूतानामिन्द्रियप्रणालिकया हृदयान्तर्वर्त्तिनि बुद्धिसत्त्वे प्रतिबिम्बप्राप्तानां वस्तुसंस्काराणां तादृश एवानुभवः स्वप्नम्। इन्द्रियैर्निस्सरंत्या आभ्यन्तरविचारशक्तेरुद्धत्वात् प्रतिबिम्बगतविषयसंस्काराः साक्षादिव भासन्ते। जाग्रदवस्थायाः सत्यत्वान्नायं दोषः। परमात्मजीवात्मनोरनेकविषयसाधर्म्येऽपि शरीरपरिच्छिन्नो जीवः। सर्वत्र व्याप्तोऽपरिच्छिन्नः परमेश्वर इति महत्तयोर्वैधर्म्यमिति भ्रान्तिर्न भविष्यति। न हि परमात्मनः प्रतिबिम्बरूपो जीवात्मा भवितुमर्हति स्थूलस्य परिच्छिन्नस्यैव प्रतिबिम्बसद्भावात्। न हि क्वापि निराकारस्य प्रतिबिम्बो भवितुमर्हति। न हि शून्यस्य छाया भवति। एतेन प्रतिबिम्बप्रतिबिम्बिनोः साधर्म्यमपि प्रत्युक्तं भवति। न चानयोरंशांशिभावसम्बन्धोऽपि सम्भवति। तस्मात्तदैव परस्यैकत्वकालेऽपि कारणे कार्यसत्त्ववत्स्वरूपत एव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिन्नौ जीवात्मपरमात्मानौ चेतनमात्मद्वयं जडं जगतः कारणं च त्रय एवानाद्य इति सिद्धान्तः।

भाषार्थः—अब अथर्ववेदीय माण्डूक्य उपनिषद् के भाष्य का प्रस्ताव किया जाता है। यह माण्डूक्य उपनिषद् माण्डूक्यशाखाके अन्तर्गत है। मण्डूक नामक कोई ऋषि थे उनके कुलमें माण्डूक्य महर्षि हुये उनके द्वारा कही वा प्रचार की हुई उपनिषद् माण्डूक्य उपनिषद् कहाती है। यह उपनिषद् सबसे छोटी है अर्थात् इससे छोटी अन्य कोई उपनिषद् नहीं है तो भी परमात्मा के मुख्य नाम वाचक [ॐ] शब्द का महत्त्व इसमें दिखाया गया है इस कारण यह सबसे बड़ी है। इस उपनिषद् पर गौड़पादाचार्य ने—जो शङ्कर स्वामीके अनुयायी थे—कारिका बनायी है और शङ्कराचार्य वा आनन्दगिरिजी का भाष्य भी बहुत विस्तारपूर्वक किया गया है। उन गौड़पादीय कारिकाओं में चार प्रकरण बाँधे गये हैं। उनमें पहिला प्रकरण आगमार्थाविष्करण (आगम नाम मूल माण्डूक्य उपनिषद् का अर्थ प्रकाशक) नामक है। इस प्रकरण में जो कुछ विरोध होगा उसका उत्तररूप मेरा भाष्य ही समझना चाहिये इसी लिये उसके विषय में कुछ नहीं लिखता।

द्वितीय वैतथ्य (मिथ्या होने का) प्रकरण है। अर्थात् इस प्रकरण में सब संसार को मिथ्या ठहराया है। बुद्धिमान् लोग सब दृश्य पदार्थों का मिथ्या होना स्वप्न में कहते हैं इत्यादि प्रकार से स्वप्न का दृष्टान्त देकर सबका मिथ्या होना वहाँ पर कहा है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सबके मिथ्या होने में दूसरा हेतु यह भी दिया है कि जो पहिले नहीं था और न पीछे रहेगा, वह जल के बुलबुले के समान मिथ्या है अर्थात् वर्त्तमानमें भी उसका दीख पड़ना मिथ्या है। जैसे उत्पन्न होने से पहिले घट नहीं था फूटने के पश्चात् भी न रहेगा।

तृतीय जीवात्मा के मिथ्या होने में रस्सी में साँप का भ्रम होना दृष्टान्त है। जैसे रज्जु का निश्चय हो जाने पर कि यह रस्सी पड़ी है—सांप नहीं है सर्प का भ्रम छूट जाता है वैसे ही परमात्मा के जान लेने पर जीव होने का भ्रम छूट जाता है इसलिये अद्वैत सिद्धान्त ही ठीक है। क्योंकि अद्वैत को पाकर लोक में जड़ के तुल्य वर्त्ताव करे। न किसी की स्वयं स्तुति करे और न किसी से अपनी स्तुति चाहे, न किसी को अपने से ऊपर उपास्य इष्टदेव मान के स्तुति प्रार्थना, नमस्कार वा होम यज्ञादि करे इत्यादि प्रकार से सब कर्त्तव्य अकर्त्तव्य से भ्रष्ट गुप्त नास्तिक के तुल्य वेदान्ती बन जावे ऐसा गौड़पादाचार्य और शङ्करस्वामी का अभिप्राय प्रतीत होता है।

अब इसका उत्तर अतिसंक्षेप से इसलिये लिखा जाता है कि इसको विस्तृत करने में पार मिलना दुस्तर है। लोक में जहां किसी वस्तु वा वचन का मिथ्यापन जान पड़ता है वहाँ किसी के साथ सापेक्षता होती है। अर्थात् किसी की अपेक्षा से किसी का मिथ्या वा किसी का यथार्थ होना हो सकता है किन्तु निरपेक्ष नहीं। और जिसकी अपेक्षा से कोई मिथ्या होता है उसके मिथ्या होने में वही कारण होता है। जैसे अन्धकार की अपेक्षा से प्रकाश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

माना जाता है यदि अन्धकार कुछ न हो तो प्रकाश भी कुछ न कहा जावे क्योंकि अन्धकार को हटाने के लिये ही प्रकाश माना जाता वा अन्धकार को हटाना ही प्रकाशपन है। यदि अन्धकार को दूर न करे तो उसको प्रकाश कोई न कहे इसी प्रकार प्रकाश की अपेक्षा से अन्धकार की सिद्धि है। ऐसे ही सापेक्ष पदार्थों में कार्य—कारण भाव रहता है। जैसे सीपी को चाँदी समझ लेना। जो मनुष्य संज्ञासंज्ञि सम्बन्ध के ज्ञानपूर्वक (कि इस वस्तु का नाम चांदी है वा चाँदी यही है इसके रुपये बनते हैं इसके पास होने से सुख वा प्रतिष्ठा मिल सकती है इसको अपने पास रखने का यत्न करूँ इत्यादि प्रकार से गुण कर्मों सहित) चांदी को जानता है वही सीपी को देख कर रूप रंग के तुल्य होने से चाँदी समझ कर भ्रम में पड़ जाता है किन्तु छः महीने का बालक वा पशु आदि (कि जो चाँदी के मुख्य वा प्रशस्त गुणों को नहीं जानता) सीपी को देख कर चाँदी नहीं मान लेता। इससे यह सिद्ध हुआ कि उस वस्तु को वही समझनारूप सत्यज्ञान अन्य को अन्य समझनेरूप मिथ्याज्ञान का कारण होता है। भ्रम होने का मुख्य कारण साधर्म्यतुल्यता है जैसे चाँदी के तुल्य सीपी भी श्वेत है। अब इसी प्रकार दार्ष्टान्त में प्रतिपक्षी को घटाकर दिखाना चाहिये। स्वप्न में मिथ्या वस्तुओं का निर्मूल निष्कारण ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि विना कारण के कोई कार्य जगत् में होता नहीं। यदि कोई आग्रह करे कि होता है तो बिना पिता-माता के उसको अपनी उत्पत्ति भी माननी चाहिये और उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष को जगत् में ऐसा कोई दृष्टान्त दिखाना चाहिये कि देखो अमुक कार्य विना कारणके हो गया और दृष्टान्त नहीं दिखा सकता तो उसका पक्ष ही निर्मूल है। यदि ऐसा कहें कि जाग्रत् अवस्था में विद्यमान पदार्थों को ठीक २ समझनारूप जो बुद्धि है वही अन्य को अन्य समझनेरूप स्वप्न का कारण है तो (सब मिथ्या है वा जाग्रत् स्वप्न दोनों मिथ्या हैं) यह कहना असम्भव होगा क्योंकि यह कथन परस्पर विरुद्ध है। जब जाग्रत् अवस्था का मिथ्या होना भी स्पष्ट कहा है तब वह स्वयं मिथ्या जाग्रत्-दशा स्वप्न का कारण नहीं हो सकती। यदि हो तो वदतोव्याघात दोष(अपने कहे को आपही काटना) है। और कदाचित् कहो कि जिस तुरीयावस्था में सब वस्तु मिथ्या प्रतीत होते हैं वह सत्यदशा है उसकी अपेक्षा से अन्य में अन्य बुद्धिरूप भ्रम होता है सो भी ठीक नहीं क्योंकि वहां सादर्म्य नहीं मिलता और साधर्म्य ही भ्रान्ति का मुख्य कारण है। चाँदी और सीपी में भी रूप-रङ्ग की तुल्यता है जिसके होने से चाँदी के तुल्य सीपी जान पड़ती है इसी प्रकार अन्यत्र भी साधर्म्य ही मुख्य कारण है। और यह कभी नहीं हो सकता कि पक्षी को पक्षी समझनारूप सत्य ज्ञान स्थाणु(ठूंठ) को पुरुष समझनेरूप मिथ्याज्ञान का कारण हो क्योंकि तुरीयावस्था के साथ स्वप्नादि की तुल्यता कोई नहीं कह सकता। दृष्टि में आनेवाले सब जगत् को मिथ्या कहना जिसका साध्य वा पक्ष है उसको अपना पक्ष सिद्ध करने के लिये साध्य जगत् से भिन्न कोई साधक हेतु वा दृष्टान्त निकालना चाहिये जिससे वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पक्ष सिद्ध हो। जगत् के अन्तर्गत कोई हेतु कहा वा माना जावे तो साध्यसमनामक हेत्वाभासरूप निग्रहस्थान होगा तथा लौकिक और परीक्षक लोगों की बुद्धि की तुल्यता जिन अंशों में होती है वह दृष्टान्त कहाता है इस प्रकार लौकिक जगत् से भिन्न को दृष्टान्त नहीं कह सकते। इस प्रकार जिसके मत में सब मिथ्या है उसके सिद्धान्त में हेतु वा दृष्टान्त ही नहीं है।

और "सब मिथ्या है" इस वाक्य में जो 'यह सब' शब्द है उसके वाच्य अर्थ के अन्तर्गत "सब मिथ्या है" यह वाक्य भी मिथ्या हो गया तब (सब मिथ्या) इस वाच्य के मिथ्या होने से सब मिथ्या नहीं यह सिद्ध हो गया। इससे रस्सी में सर्पभ्रान्ति-रूप दृष्टान्त का भी सार आगया। यदि सांप को सांप समझना भी रस्सी को सांप समझने के तुल्य मिथ्या हो तो रस्सी में सांप का भ्रम कदापि नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि सांप को सत्य सांप समझते हैं तभी उससे भयादि होता है। इसी कारण रस्सी में हुए सांप के भ्रम को मिथ्या समझ लिया कि वास्तव में रस्सी है सांप नहीं तो भयादि की स्वयमेव निवृत्ति हो जाती है। यदि सांप को सांप समझना भी मिथ्या हो कि सांप कोई वस्तु नहीं न कुछ विष वा काटना है तो उसको सांप से ही भय नहीं फिर रस्सी में हुए सांप के भ्रम से क्योंकर भय हो सकता है? अर्थात् वेदान्तियों के मत में जब सांप को सांप समझना सत्य है तो उनका सबको मिथ्या कहना ही मिथ्या है क्योंकि सांप भी सबके अन्तर्गत होने से जैसे सत्य हो गया वैसे अन्य भी सत्य हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकेंगे। और यदि सांप समझना मिथ्या है तो रस्सी में सांप की भ्रान्ति का दृष्टान्त देना भी मिथ्या है। सांप और रस्सी जब दोनों मिथ्या हैं तो किसका किसमें भ्रम हो सकता है? इसी प्रकार इन आधुनिक वेदान्तियों का जाग्रत्-स्वप्न और शुक्ति-रजत आदि का दृष्टान्त भी नहीं बनता कि जिसकी पूर्व सूचना लिख चुके हैं। जब इनका दृष्टान्त ही ठीक नहीं तो यह पक्ष भी ठीक नहीं ठहर सकता। और हमारे मत में यह दोष नहीं आ सकता। हमारे मत में जाग्रत् अवस्था सत्य है उस जाग्रत् दशा में अनुभव किये इन्द्रियरूप पनालों के द्वारा हृदय के भीतर रहनेवाले सत्वगुणरूप बुद्धि में जो प्रतिबिम्ब वा प्रतिच्छायारूप वस्तुओं के संस्कार होते हैं उनका वैसा ही विषयानुकूल अनुभव स्वप्न कहलाता है अर्थात् इन्द्रियों द्वारा निकलनेवाली विचारशक्ति के भीतर रुक जाने से छायारूप से प्राप्त हुए विषयों के संस्कार साक्षात् विषयरूप प्रतीत होते हैं यही सोना वा स्वप्नदशा है। सिद्धान्त यह कि हमारे मत में जाग्रत् दशा के सत्य होने से यह दोष नहीं आता।

और परमात्मा जीवात्मा का अनेक विषय में साधर्म्य होने पर भी शरीर में परिच्छिन्न जीवात्मा और सर्वत्र व्याप्त अपरिच्छिन्न परमेश्वर है इत्यादि कारण इन का बड़ा वैधर्म्य होने से जीव में ईश्वर की भ्रान्ति नहीं हो सकती। और परमेश्वर का प्रतिबिम्ब रूप भी जीवात्मा नहीं हो सकता क्योंकि स्थूल परिच्छिन्न वस्तु का ही प्रतिबिम्ब होता है कभी निराकार आकाश दिशादि का प्रतिबिम्ब नहीं होता न शून्य की छाया पड़ती है। इस कारण जीव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रतिबिम्बी भाव नहीं बन सकता और न इन दोनों का अंशांशिभाव सम्बन्ध ही कभी घट सकता है इस कारण सदैव एक कहे जाने के समय भी कारण में कार्यसत्ता के समान स्वरूप से ही भिन्न जीव, ईश्वर, दो चेतन आत्मा और एक जगत् का जड़ कारण है ये तीनों वस्तु अनादि हैं यही सिद्धान्त है।

अथ गौडपादीयं तृतीयमद्वैताख्यं प्रकरणम्। द्वितीयप्रकरणे सर्वस्य वैतथ्यप्रतिपादनेन सर्वशब्दवाच्यान्तर्गताद्वैतस्यापि वैतथ्यं प्राप्तं तस्याद्वैतस्य युक्तितो याथार्थ्यप्रदर्शनायेदं तृतीयं प्रकरणम्। अस्मिन् प्रकरणे गौडपादाचार्येण घटाकाशादिदृष्टान्तेन जीवस्य मिथ्यात्वमेकस्य परमात्मनश्च याथार्थ्यमनेकाभिर्युक्तिभिः प्रतिपादितम्। उपासनाश्रितो धर्मो ज्ञाते ब्रह्मणि वर्त्तते। यद्येकं ब्रह्मैव, नास्ति कश्चिज्जीवस्तर्हि क उपासकः स्यादुपासनं धर्मः क्व तिष्ठेदिति शङ्कानिवारणाय ब्रह्मणो द्वैविध्यमङ्गीक्रियते यदा च ब्रह्मण्येव द्वविध्यमूरीकृतं तर्हि स्पष्टैव द्वैतापत्तिः पुनः कथमद्वैतभावः स्यादिति। ज्ञाते ब्रह्मणि कृपणत्वमजे चाकार्पण्यमित्यपि कथनं द्वैतापत्तिं बोधयति। अत्र सजातीयभेदेन द्वैतापत्तिः। आत्मा ह्याकाशवज्जीवैर्घटाकाशैरिवोदित इत्यादि वाक्यमद्वैतसिद्धये प्रारब्धं तदेव द्वैतं साधयति। अत्राकाशवदिति दृष्टान्तः। यद्याकाशः कश्चिन्नास्ति तदा दृष्टान्तस्य मिथ्यात्वात्पक्षासिद्धौ द्वैतापत्तिः। इतः पूर्वप्रकरणे घटपटादिसर्ववस्तूनां वैतथ्यमभाव एवोक्तः पुनरत्र घटादयः कुत आगताः? यदि सन्ति तर्हि दृष्टा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्ते वक्तुं शक्यन्ते नोचेन्न। न हि वन्ध्यापुत्रशशशृङ्गादीनां कश्चिदृष्टान्तं दातुमर्हति न ह्यसद्वस्तुनो दृष्टान्तेन कस्यापि साध्यस्य सिद्धिः कर्तुं शक्यते यदि घटस्थानीयानि जडान्यन्तःकरणान्येव जीवत्वपरिच्छेदकानि स्वीक्रियन्ते भवता तर्हि सर्वघटमठादिष्वेकस्यैवाकाशस्य विद्यमानत्ववत् सर्वान्तःकरणेषु ज्ञानस्वरूपस्यैकस्यात्मनो विद्यमानत्वात्सर्वस्य हार्दं सर्वे जानीयुस्तस्य किं बाधकम्? किमर्थं सर्वस्य मनोगतं सर्वे न जानन्ति? आत्मन एकत्वात्प्राप्तम्। तच्चाधुनिकवेदान्तिभिः समाधेयम्। अस्मिन् प्रकरणेऽनेकाः शाखायुक्तयो गौडपादेनोपपादितास्तासामेकस्या मूलयुक्तेः खण्डितत्वात्सर्वासामेव खण्डनं विज्ञेयम्। पुनस्तासां खण्डने प्रयासः पिष्टपेषणवत्प्रतिभाति। सा च मूलयुक्तिरियमेव—आकाशघटयोर्दृष्टान्तेन जीवस्य परमात्मत्वं प्रतिपाद्यते तत्र त्रित्वं तत्कथनादेव सिद्धम्। एकः परमात्मा द्वितीया कम्बुग्रीवादिमती व्यक्तिर्घटः। तृतीयश्चाकाशः। अत्र यदि घटाकाशयोर्वैतथ्यं तर्हि दृष्टान्ताभावात्पक्षासिद्धिस्तस्माद्वैतसिद्धान्त एव साधुः। अद्वैतशब्दो यदि ब्रह्मणो विशेषणं तदा द्वितीयं ब्रह्म नास्तीत्यर्थः कार्यः। यस्य व्यावर्तकं विशेषणं भवति तस्यैव द्वित्वं प्रतिषेधति। यथाऽद्वितीयोऽयं पण्डितो देवदत्त इत्युक्ते न हि चेतनमात्रस्य जडमात्रस्य वा प्रतिषेधः सम्भवति। एवमद्वैतं ब्रह्मेत्युक्ते द्वितीयस्य ब्रह्मण एव प्रतिषेधस्तत्र च त्रैविध्यमेव। सजातीयविजातीय-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वगतभेदशून्यं ब्रह्मेत्यर्थः। ब्रह्मणः सजातीयं तुल्यजातीयंब्रह्म नास्ति। विजातीयोऽपि कश्चित्पदार्थस्तत्सदृशसामर्थ्यो महान् वा नास्ति। तस्मिन् ब्रह्मणि मनुष्यादेः शरीरस्येवावय वावयविभेदोऽपि नास्ति। तस्य निराकारत्वात्। एवमद्वि-तीय ईश्वरो जीवात्मानो जडं जगच्च सर्वं तस्यैव स्वं रक्ष-णीयं परिणाम्यं वास्तीति सिद्धान्तः शिष्टाभिमतो मन्तव्य इति शम्।

भाषार्थ—अब गौड़पादीय कारिकाओं के अद्वैत नामक तृतीय प्रकरण की संक्षेप से समालोचना करते हैं। इस से पूर्व द्वितीय प्रकरण में सब वस्तुमात्र को मिथ्या करने से सब के अन्त-र्गत अद्वैतके भी आजाने से अद्वैत का भी मिथ्या होना प्राप्त हुआ। इस कारण अद्वैत को युक्ति से यथार्थ ठीक सत्य ठहराने के लिये यह तृतीय प्रकरण बाँधा है। इस तृतीय प्रकरण में गौड़पादाचार्य ने घट और आकाशादि के दृष्टान्त से जीव का मिथ्यापन और परमेश्वर का सत्य होना अनेक युक्तियों से सिद्ध किया है। स्वयं गौड़पादजी को जब शङ्का हुई कि यदि एक ब्रह्म ही माना जावे तथा कोई जीव न माना जावे तो कौन किस की उपासना करे? उपासना करनारूप गुण किस में रहे? इस सन्देह की निवृत्ति करने के लिये ब्रह्म के दो भेद मानने पड़े कि एक जन्म लेकर संसार में आनेवाला ब्रह्म और दूसरा अजन्मा, जो ब्रह्म जगत् में उत्पन्न होता है उसी में उपासनारूप गुण रहता है अर्थात् उत्पन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ ब्रह्म उत्पन्न न होनेवाले ब्रह्म की उपासना करता है। उत्पन्न होनेवाला ब्रह्म ही जीव है। सो यदि यहां दो प्रकार वा दो गुण-वाला ब्रह्म माना जावे और वास्तव में एक है तो परस्पर विरुद्ध दो गुण वा धर्म एक वस्तु में ठहर नहीं सकते। जैसे घट उत्पन्न होने वाला (उत्पत्तिधर्मक) है तो आकाश के तुल्य अनुत्पत्ति धर्मवाला कोई उस को नहीं ठहरा सकता तथा आकाश अनुत्पत्तिधर्मक है तो वह कहीं उत्पत्ति धर्मवाला नहीं देखा जाता। सो यदि एक ब्रह्म को दो गुणों (जो परस्पर विरुद्ध हैं जैसे रात-दिन, प्रकाश-अन्धकार आदि एक समय वा एक स्थान में नहीं रहते) से युक्त मानना इन लोगों को इष्ट है तो ऐसा कोई दृष्टान्त देवें कि अमुक पदार्थ में परस्पर विरुद्ध दोनों गुण जैसे रहते हैं वैसे उत्पत्ति अनुत्पत्ति दोनों धर्म ब्रह्म में रह सकते हैं। और फिर उत्पन्न हुए ब्रह्म को भी मिथ्या कह देते हैं तो पूछना चाहिये कि जिस शङ्का की निवृत्ति के लिये तुमने उत्पन्न होनेवाला ब्रह्म जीव माना था उसको मिथ्या कर देने में वह शङ्का फिर खड़ी हो जायगी। और इन अतत्त्वज्ञ महात्मा स्वयं ब्रह्म बननेवाले लोगों से यह भी पूछना चाहिये कि तुम तो अद्वैत को सिद्ध करने चले थे सो ब्रह्म को दो प्रकार का मान बैठने से अद्वैत कहां रहा ? किन्तु स्पष्ट ही द्वैत सिद्ध हो गया। उत्पन्न हुए ब्रह्म में नीचता और अजन्मा में ऊँचता कहना भी द्वैतपक्ष को सिद्ध करता है। यहां सजातीयरूप से द्वैतभाव है अर्थात् उत्पन्न होनेवाला ब्रह्म अनुत्पन्न ब्रह्म का सजातीय है। तथा जैसे एकही आकाश अनेक घटोंमें भिन्न २ प्रतीत होता है परन्तु तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी आकाश परिच्छिन्न नहीं कहाता एक ही व्याप्त बना रहता वैसे एक ही परमेश्वर सबमें व्याप्त है भिन्न २ अन्तःकरणोंमें भिन्न २ प्रतीत होता है किन्तु परमेश्वर परिच्छिन्न नहीं होता इत्यादि दृष्टान्त अद्वैतपक्ष की सिद्धि के लिये प्रारम्भ किया गया है वही द्वैतपक्ष को सिद्ध करता है। यहाँ आकाशवत् यह दृष्टान्त है सो आकाश कोई वस्तु न हो तो दृष्टान्त के मिथ्या होने से अद्वैतपक्ष के कट जाने पर द्वैतपक्ष आ जाता है। इस से पूर्व द्वितीय प्रकरण में घट-पटादि सब पदार्थों का मिथ्या होना कह चुके अर्थात् सब का होना झूठ ठहरा चुके अब इनके मत में कोई पदार्थ रहा ही नहीं, फिर इस तृतीय प्रकरण में अद्वैत की सिद्धि के लिये घड़ा और आकाश कहां से आ गये? यदि हैं तो दृष्टान्त में कहे जा सकते हैं परन्तु पूर्व का मिथ्या सिद्ध करना मिथ्या हो गया। और यदि घट आदि नहीं हैं तो दृष्टान्त में भी नहीं आ सकते। जैसे बन्ध्यापुत्र और शश (खरहा)के सींग का कोई दृष्टान्त नहीं दे सकता। और अविद्यमान वस्तु के दृष्टान्त से किसी साध्य वस्तु की सिद्धि भी नहीं हो सकती। यदि घटस्थानीय जड़ अन्तःकरण ही जीवात्मा को भिन्न २ करनेवाले आप लोग मानते हो तो जैसे सब घड़े वा मन्दिर आदि में एक ही आकाश विद्यमान रहता है वैसे सब अन्तःकरणों में ज्ञान स्वरूप एक आत्मा के विद्यमान होनेसे सब के मनका वृत्तान्त सब जान लिया करें सो क्यों नहीं होता? उसकी क्या रुकावट है सबके मन की सब क्यों नहीं जान लेते? यह दोष आत्मा के एक ही मानने से प्राप्त है। सो आधुनिक वेदान्तियों को इसका

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाधान करना चाहिये। इस प्रकरण में अनेक शाखा प्रतिशाखा-रूप युक्ति गौड़पादाचार्य ने कहीं हैं। सो उनकी एक मूलयुक्ति का खण्डन हो जाने से उनकी उन सब युक्तियों का खण्डन हो गया जान लेना चाहिये। फिर उनका पृथक् से खण्डन करना पिसे को पीसने के समान है और वह मूलयुक्ति एक यही है कि जो आकाश और घड़ा के दृष्टान्त से जीव का परमेश्वर होना सिद्ध करते हैं वहां तीन पदार्थ उनके कहने से ही सिद्ध हो गये। एक परमेश्वर दूसरा घड़ा और तीसरा आकाश। इनमें यदि घट और आकाश मिथ्या हैं तो दृष्टान्त के न बन सकने से अद्वैतपक्ष का खण्डन होकर द्वैत सिद्धान्त ही ठीक ठहर जाता है और यदि घटाकाश सत्य है तो सब का मिथ्या कहना कट जाता है।

और अद्वैत शब्द यदि ब्रह्म का विशेषण है तो दूसरा ब्रह्म नहीं ऐसा अर्थ करना चाहिये। क्योंकि जिसके साथ अन्य को हटाने-वाला विशेषण होता है उसी के दूसरे भावको हटाता है। जैसे कहा जावे कि यह देवदत्त अद्वितीय पण्डित है तो चेतनमात्र का निषेध नहीं हो सकता। इसी प्रकार अद्वैत ब्रह्म है ऐसा कहने से द्वितीय ब्रह्म का ही निषेध होगा किन्तु जीवात्मा वा घास फूस वृक्षादिरूप संसार का निषेध नहीं हो सकता। सो अन्य ब्रह्म का निषेध भी तीन प्रकार से है एक—ब्रह्म का सजातीय कोई ब्रह्म नहीं द्वितीय विजातीय पदार्थों में ब्रह्म के तुल्य सामर्थ्य वाला वा बड़ा कोई वस्तु नहीं तथा तृतीय उस ब्रह्म में मनुष्यादि के शरीर के समान अवयवावयवि भेद भी नहीं है क्योंकि वह निराकार है। इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार एक ईश्वर है जीवात्मा और जड़ जगत् सब उसी के अधिकार में रक्षा करने योग्य वा उत्पत्ति विनाश करने योग्य है। यह सिद्धान्त श्रेष्ठ लोगों को माननीय है।

अथ गौडपादीयकारिकासु-अलातशान्त्याख्यं चतुर्थं प्रकरणम्। तस्य समासतो विवेचनमारभामहे। अस्मिन् प्रकरणे गौडपादेन सांख्यन्यायवैशेषिकादीनामितरेतरं विरोधं प्रदर्श्य सर्वेषां मिथ्यात्वं प्रतिपादितम्। तेन स्वमतपुष्टिश्च दर्शिता। असदुत्पद्यत इति केचित्। सदेवोत्पद्यत इत्यन्ये नास्त्यनयोर्विरोध इति न्यायादिभाष्यकरणावसरे विस्तरशो वक्ष्यामः। सदेवोत्पद्यत इति सम्भवमसम्भवं च। यो वदति मृत्तिकायामवदति मृत्तिकायामपि घटो विद्यते स एवोत्पन्नस्तर्हि विद्यमानस्योत्पत्तिरनर्थकेति विद्यमानमुत्पद्यत इति वदतो व्याघातश्च। तस्मात्सदेवोत्पद्यते किन्तु निर्मूलं निष्कारणमभावाद्भावो नोत्पद्यत इत्याशये नास्ति दोषः। येषां चासदेवोत्पद्यत इति मतं तेषाम्-यदुत्पद्यते तदुत्पत्तेः प्राङ् नास्ति। अस्ति चेदुत्पद्य इति कथनमनर्थकम्। कारणमन्तरेणोत्पद्यते इत्याशयो नास्ति। एवमत्र पक्षद्वये नास्ति विरोधः। एषां वेदान्तिनां च सिद्धान्तो न च सदुत्पद्यते न चासत्। कथमपि किमपि नोत्पद्यते न चास्ति किञ्चिद्, भ्रम एव सर्वः तथा चोक्तम्-"न विरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः। न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता"ति। अयं च पश्यतां चक्षुषि धूलिप्रक्षेपः। प्रत्यक्षं प्राणिनो म्रियन्ते सम्बन्धिनो रुद-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्ति एषां मते न कश्चिन्म्रियते न घटादिः कश्चिन्नश्यति कारणे वा प्रलीयते। बालाश्च प्रत्यक्षमुत्पद्यन्ते सम्बन्धिनो हृष्यन्ति जनन्यश्चोत्पत्तिवेदनामपि जानन्ति-एषां मते न कश्चिदुत्पद्यते तदेतदसम्भवकथनं कथं संगच्छेत? विद्वांश्च कथं रोचेत? न हीदं शिष्टग्राह्यं भवितुमर्हति। अस्मिन् सम्मत इमे मायाकारस्य दृष्टान्तं वदन्ति। यथा मायाकारोऽविद्यमानानेव पदार्थान् दर्शयति ते च सत्यवत्प्रतिभान्ति तदानीमेव च स तेषामभावमपि दर्शयति। अस्मिन् प्रसङ्गे ऋग्वेदमन्त्रस्य प्रमाणमपि प्रतिपादयन्ति-"इन्द्रो मायाभिः पुरुरूपईयत" इति। अत्रोच्यते-यदि मायाकारः कश्चिदस्ति यो मिथ्यावस्तूनि दर्शयति तर्हि स एव दोषः सर्वस्य मिथ्यात्वे मायाकारोऽपिमिथ्यास्तु यदि मायाकारो मिथ्या तर्हि दृष्टान्तो नोपपद्यते। अथ सत्यस्तर्हि सर्वं मिथ्येति न सम्भवति। किं मायाकारो मिथ्यावस्तूनि दर्शयति? तर्हि वृश्चद्भं शशशृङ्गं चापि किमर्थं न दर्शयति? शरदतौ फलितानाम्रवृक्षान् बहून् दर्शयति किम्? ये च जगति सन्ति ते दर्शनकालेऽन्तर्हितास्तस्य प्रातिहारकस्याप्यभ्याशे सन्ति। इयमेव च तस्य चातुरी यत्तथा दर्शयति। तस्मान्नास्ति मायाकारस्य दृष्टान्तेन युष्माकं पक्षसिद्धिः। यदि निरोधादिकं किमपि नास्ति तर्हि (न निरोधो न०) इति वाक्यं क्वास्ति? यदि वाक्यं नास्ति चेन्निरोधादिकं सर्वमस्ति। यद्येषामाधुनिकवेदान्तिनां ग्रन्थेषु किमपि वेदमूलकं तत्त्वं निस्सरति तर्हि तदनिर्वचनीयख्यात्यर्थमेवास्ति अलात

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिप्रकरणेन कस्यालातस्य शान्तिः कृता। अलातशब्देनो-ल्मुक उच्यते तत्स्थानीयस्य जगतः प्रवृत्तेः शान्तिः केन कर्तुं शक्यते? अलातशान्त्यर्थं प्रवृत्तेन स्वयमेव शान्तेन भाव्यम्। प्रच्छन्ननास्तिकत्वमेषां केचिद् वदन्ति तदुक्तप्रकारेण तथ्यमेव प्रतिभाति। विरम्यतेऽधुनाऽनल्पविवादेन।

भाषार्थः—अब गौडपादीय कारिकाओं में अलातशान्ति नामक चौथा प्रकरण है उसका संक्षेप से विवेचन करना आरम्भ करते हैं। इस प्रकरण में गौड़पादाचार्य ने सांख्य, न्याय और वैशेषिकादि शास्त्रों में परस्पर विरोध दिखा कर सब को मिथ्या ठहराया है और इसी से अपने मत की पुष्टि भी दिखायी है। इन सांख्यादि में किन्हीं का मत है कि असत्—जो नहीं है वह उत्पन्न होता है तथा कोई कहते हैं कि सत्—जो है वही होता है। इत्यादि दो २ पक्षों में परस्पर विरोध नहीं, किन्तु समझ का भेद है सो विस्तार पूर्वक तो न्यायादि का भाष्य करते समय इस २ प्रकार इन २ में विरोध नहीं, करूंगा परंतु संक्षेप से यह है कि जो है वही उत्पन्न होता है यह कथन सम्भव असम्भव दोनों हो सकता है। जो कहता है कि मृत्तिका में भी घट विद्यमान है वही उत्पन्न हुआ तो विद्यमान वस्तु की उत्पत्ति कहना व्यर्थ है तथा विद्यमान है तो उत्पन्न क्या हुआ वा उत्पन्न हुआ तो विद्यमान कैसा? इसलिये सत् ही उत्पन्न होता है। इसका अभिप्राय यह है कि विना कारण के कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती अर्थात् अभाव से भाव—नास्ति से अस्ति (नेस्ति से हस्ति) नहीं हो सकता ऐसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय होने में दोष नहीं आता। और जिनका मत यह है कि असत्—जो नहीं है वही उत्पन्न होता है उनके मत में जो उत्पन्न होता है वह उत्पन्न होने से पूर्व नहीं था यदि था तो उत्पन्न हुआ यह कहना व्यर्थ पड़ता है। अर्थात् कारण के बिना उत्पन्न होता हो यह आशय नहीं है। किन्तु उस वस्तुका कारण है पर वह कारण में कार्यरूप होने से नहीं था अर्थात् कार्यरूप का ही नाम घट है कारणरूप घट नहीं कहा वा माना जा सकता और जिनका असत् ही उत्पन्न होता ऐसा मत है उनके मत में जो पदार्थ उत्पन्न होता है वह उत्पत्ति से पहिले नहीं था यदि पहिले भी था तो उत्पन्न होता है यह कहना अनर्थक है। क्योंकि कारण के विना कार्य नहीं उत्पन्न होता यह अभिप्राय है। इस प्रकार इन दो पक्षों में विरोध नहीं है। और इन नवीन वेदान्तियों का सिद्धान्त है कि न सत् (विद्यमान) की उत्पत्ति हो और न असत् की अर्थात् कभी कोई वस्तु किसी प्रकार उत्पन्न होती ही नहीं न कुछ है केवल भ्रममात्र सब दीखता है सो (न निरोधो०) इत्यादि कारिकाओं में गौड़पाद ने दिखाया है कि न किसी वस्तु वा संसार की उत्पत्ति होती न प्रलय होता न कोई बद्ध-दुःखी न दुःख से बचने का कोई उपाय तथा न कोई मुक्त है न कोई मुक्ति का चाहनेवाला न कोई चाहता है इत्यादि प्रकार से सबका अभाव समझ लेना ही परमार्थ की सिद्धि है। यह कथन प्रत्यक्ष देखनेवाले विचारशीलों की आंख में धूल झोंकना है प्रत्यक्ष में मनुष्यादि प्राणी मरते घटपटादि पदार्थ टूटते फूटते चले जाते हैं उनके सम्बन्धी उन प्राणियों वा पदार्थों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के वियोग में रोते चिल्लाते हैं पर इनके मत में न कोई मरता न नष्ट वा लीन होता है। तथा प्राणियों के बालक वा घटपटादि पदार्थ प्रत्यक्ष उत्पन्न होते उनके सम्बन्धी हँसते माताओं को सन्तानों की उत्पत्ति की पीड़ा भी होती है पर तो भी इनके मत में कोई उत्पन्न ही नहीं होता सो यह असम्भव कथन कैसे ठीक हो? और कोई विद्वान् कैसे रुचि करे? यह पक्ष इन्हीं उक्त कारणों से श्रेष्ठ लोगों के मानने योग्य कदापि नहीं हो सकता। इस प्रसङ्ग में ये आधुनिक वेदान्ती लोग इन्द्रजाली (वाजीगर) का दृष्टान्त देते हैं। जैसे इन्द्रजाली उन वस्तुओं को प्रत्यक्ष दिखा देता है जो उसके पास नहीं हैं और वे पदार्थ वा उसका इन्द्रजालरूप खेल सत्य जैसा प्रतीत होता है। उसके पास सूत नहीं और सूत के गट्ठे मुख से निकालता है अनेक फलादि उसके पास नहीं है पर लोगों को दिखा देता है इत्यादि। इसी के साथ मृगतृष्णकादि का दृष्टान्त भी आ सकता है तात्पर्य यह है कि अभाव से भाव दीख पड़े, जो वस्तु नहीं है वह दीख पड़े यही दृष्टान्त का अभिप्राय है इसी प्रकार यह जगत् न किसी ने बनाया न कुछ है केवल परमेश्वर खेल कर रहा है अर्थात् इन्द्रजाली का सा खेल है। इसमें ऋग्वेद का भी प्रमाण है कि (इन्द्रो मायाभिः०) इन्द्र नाम परमेश्वर माया नाम छलकपट से अनेक रूपों को प्राप्त होता है। अब इसका उत्तर सुनिये—यदि इन्द्रजाली कोई है जो मिथ्या वस्तुओं को सत्य कर दिखाता है तो तुम्हारे पक्ष में वही दोष आवेगा कि सब मिथ्या है तो इन्द्रजाली भी मिथ्या ठहरा और इन्द्रजाली को मिथ्या मानो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सो दृष्टान्त तुम्हारा नहीं बन सकता। यदि उसको सत्य मानो तो सब मिथ्या है यह कहना असम्भव हुआ। क्या इन्द्रजाली मिथ्या वस्तुओं को दिखाता है? तो मनुष्य का शृङ्ग वा शश (खरहा) का सींग भी क्यों नहीं दिखा सकता? और शरद् ऋतु में आम के वृक्षों पर अनेक कच्चे फल क्यों नहीं लगे दिखाता है? क्या जो पदार्थ उस समय जगत् में नहीं हैं उनको वह दिखा सकता है? यदि हाँ यह कहो तो ऐसा एक इन्द्रजाली मेरे पास लाओ और न कहो तो मान लो कि अभाव से भाव नहीं दिखा सकता यदि ऐसा होता तो जो पदार्थ जगत् में उस समय नहीं हैं उनको भी वह दिखा सकता। जब ऐसा नहीं कर सकता तो इसी से निश्चय होता है कि जिन पदार्थों को वह अभाव से भाव करके दिखाता है वे अवश्य उसके पास हैं। उसकी चतुराई यही है कि उसको इस प्रकार दिखाता है कि लोग आश्चर्य मानते हैं। इस लिये इन्द्रजाली के दृष्टान्त से तुम्हारे पक्ष की सिद्धि नहीं हो सकती। और जब उत्पत्ति प्रलयादि कुछ नहीं है तो (न निरोधो०) इत्यादि श्लोक भी कहाँ है? और जब वह श्लोक ही मिथ्या है तो उत्पत्ति प्रलयादि सब सत्य हो गया। यदि इन आधुनिक वेदान्तियों के ग्रन्थों में कुछ वेदमूलक तत्त्व निकल सकता है तो वह अकथनीय दशा में ही काम आवेगा। और अलातशान्तिप्रकरण से इन लोगों ने किस लुक्कट को शान्त किया? उसके सम्बन्धी जगत् की शान्ति तो कोई नहीं कर सकता। यदि ऐसा होता तो अलातशान्तिप्रकरण बनने के पीछे सब जगत् का प्रलय हो गया होता सो नहीं हुआ तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो जगत् की शान्ति के लिये यत्न करेगा वह स्वयं ही शान्त हो जायगा। कोई लोग इन आधुनिक वेदान्तियों को प्रच्छन्न नास्तिक कहते हैं सो उक्त प्रकार से सत्य ही जान पड़ता है। पद्मपुराण में महादेवजी ने पार्वती जी से कहा है कि:—

मायावादमसच्छास्त्रं प्रच्छन्नं बौद्धमेव च ॥

मायावाद वेदान्तमीमांसा असत्, निन्दित, दुष्ट और प्रच्छन्न (छिपा) बौद्ध वा नास्तिक शास्त्र है इत्यादि। इसलिये आस्तिक लोगों को इससे बचना चाहिये। इस नास्तिकशास्त्र में मूल उपनिषद और ब्रह्म सूत्रों को नहीं समझना चाहिये किन्तु गौड़पाद, शङ्करस्वामी वा आनन्दगिरि आदि के नवीन कल्पित ग्रन्थों का ही ग्रहण है। उपनिषद् तथा ब्रह्मसूत्र ही मुख्य कर वेदान्तरूप हैं। अब अधिक लिखना इस अंश पर समाप्त किया जाता है।

अथास्यामुपनिषदि प्रणवस्यैव व्याख्यास्ति। तत्र द्वैविध्यमेव मुख्यतया वर्णितम्। पूर्वं व्यष्टिसमष्टिरूपाभ्यामवयवावयविनोः सम्बन्धः। ओङ्कारस्य पादकल्पनया व्यवहारदशायां त्रैविध्यम्। एकश्च प्रकारो निर्बीजसमाधौ तुरीयावस्थायामस्ति। द्वितीयप्रकरणे जाग्रदाद्यवस्थाभेदेन सर्वमिष्टं प्रतिपादितम्। अस्मिन् प्रकरणद्वयेऽप्योङ्कारस्य शब्दरूपत्वाच्छब्दार्थयोरुपासनाप्रसङ्ग इतरेतराध्यास एव प्रधानं तात्पर्यम्। तच्च तथैव वर्ण्यते। विशेषस्तत्र तत्र द्रष्टव्यः। अस्यामुपनिषदि मूलमन्त्रा द्वादशैव सन्ति। भद्रं कर्णेभिरिति मन्त्रस्त्वादावन्ते च मङ्गलार्थं मूलपुस्तकेषु कैश्चिन्मुद्रापितः स व्याख्येयो ना-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्ति। एवमन्यासु चोपनिषत्सु प्रारम्भेऽवसाने च मङ्गलार्थ-मुद्धृता मन्त्रा न व्याख्याता न च व्याख्यास्यन्ते॥

भाषार्थ—इस उपनिषद् में केवल ओङ्कार की व्याख्या है। उसमें दो प्रकारों से मुख्य कर वर्णन किया है। पहिले प्रसङ्ग में व्यष्टि समष्टिरूप से अवयवावयवी का सम्बन्ध कहा है। ओङ्कार के अंश मात्रारूपों की कल्पना दिखाने पूर्वक व्यवहार दशा में तीन प्रकार दिखाये हैं। और एक चौथा भेद निर्बीज समाधि नामक चौथी दशा में कहा गया है। द्वितीय प्रकरण में जाग्रत् आदि अवस्था के भेद से सब इष्ट का प्रतिपादन किया है। यहां दोनों प्रकरणों में ओङ्कार के शब्दरूप होने से उपासनाप्रसङ्ग में इतरेतरा-ध्यास ही मुख्य अभिप्राय है। जैसे घटशब्द घटअर्थ घट यह ज्ञान तीनों का एकरूप से कहना तथा एक में दूसरे का अध्यारोप करना इतरेतराध्यास कहाता है। इसी प्रकार स्पष्टता से वर्णन दिखाया गया है। इस कारण विशेष विचार वहां २ भाष्य में देखना चाहिये। इस उपनिषद् में मूल मन्त्र १२ बारह हैं। कहीं २ मूल पुस्तकों में (भद्रं कर्णेभिः०) यह मन्त्र मङ्गलार्थ आदि अन्त में छपा दिया है इससे उसकी व्याख्या न करेंगे। तथा ऐसे मङ्गलार्थ धरे अन्य उपनिषद् के आदि अन्त के मन्त्रों का अर्थ भी नहीं किया गया है और न किया जायगा॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथ माण्डूक्योपनिषद्भा-ष्यारम्भः

ओमित्येतदक्षरमिदꣳसर्वं तस्योपव्याख्यानम् । भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव । यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥ १ ॥

अस्यामुपनिषद्ययमेव मूलो मन्त्रः । अन्ये चास्यैव व्याख्यानरूपाः (इदम्) ज्ञानिषु प्रत्यक्षम् (सर्वम्) (अक्षरम्) अचलमेकरसं व्याप्तमखिलम् एतत्पदत्रयमनुवाद्यम् (ओमित्येतत्) विधेयमेतत् । ओमिति वाचकस्य वाच्येनाभेदान्वयः । ओंशब्देन सम्बद्धावित्येतच्छब्दौ तस्य वाच्यवाचकपरतां बोधयतः । तेन यावदक्षरं तावदोंशब्दवाच्यमिति बोध्यम् (तस्य) ओमिति वाचकस्य वाच्यस्य वा (उपव्याख्यानम्) सन्निकृष्टं तत्प्राप्त्युपायसूचकं व्याख्यानम् । (भूतम्) (भवत्) वर्त्तमान-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कालसम्बद्धः (भविष्यत्) अनागतकालविशिष्टश्च (सर्वम्, ओङ्कारः, एव) एवम्भूतश्च सर्वं ओंशब्दवाच्य एवास्ति। न हि तादृशैकरसतया कश्चित्कालत्रयेण संयुक्तो भवति। एतेनोत्पत्तिस्थितिप्रलयान् यथाकालं यथानियमं यथाकर्म प्रवर्त्तयतः परमात्मानः सगुणस्य सूत्रनम् (यत् च, अन्यत्) कालावच्छिन्नप्राणिभ्यो भिन्नम् (त्रिकालातीतम्) यं कालो नात्येति यश्च कालमत्येति स त्रिकालातीतः। एवंभूतः। (तदपि, ओङ्कारः, एव) प्रणववाच्य ईश्वर एव॥

भा०-एकं ब्रह्मैव सर्वोपरिव्याप्तं चञ्चलतारविरहमविनश्वरं च, नास्ति तादृगन्यत् किमपि वस्तु। जीवात्मा जगत्कारणं चाप्यविनश्वरमस्ति तदन्यशरीरादिकार्यवस्त्वपेक्षयैव नित्यमिति ज्ञेयम्। परमात्मापेक्षया तु—एतद्द्वयमपि कथञ्चित्परिणमते। अर्थात्परमात्मवदैकरस्यमनयोर्नोपपादयितुं युक्तम् यथा कार्यदशायां प्रकृतिरव्याकृतं प्रधानं कार्यरूपेण परिणमते। यथा वा जीवात्मा जन्ममरणदशायां शरीरेण संयुक्तः शरीरनाशे स्वस्यैव नाशं मन्यमानः शोचति। इत्थं द्वावपि विपरिणमेते। नैवं परमात्मा कदापि परिणमते। तस्मादक्षरतायाः काष्ठ प्राप्तिर्ब्रह्मण्येव।

अस्मिन्मन्त्रे—ओमिति शब्दस्तस्य वाच्य ईश्वरः। एवमीश्वरोऽप्येकः शब्द एव वाच्यवाचकयोर्द्वयोरेव निर्देशः सर्वत्र शब्देनैव क्रियते। कुत्रचिच्छब्दस्य शब्द एव वाचको वाच्यश्च। यावद्वाग्व्यापारकार्यं तावच्छब्देनैव कर्त्तुं शक्यते। यथा व्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करणशास्त्रे शब्दोच्चारणेन वाचकस्यैव शब्दस्य ग्रहणं भवति यदाऽग्नेर्ढगित्युक्तेऽग्निशब्दादेव ढक्क्रियते न तु तद्वाच्याङ्गारस्वरूपात्प्रत्ययः कर्त्तुं शक्यते ततो विरुद्धमन्यशास्त्रेषु प्रायशः शब्दोच्चारणेन तद्वाच्यं प्रतीयते। एवमत्रोमिति शब्दउपासनायां वाच्यवाचकयोरभेदान्वयमितरेतराध्यासेन सूचयति। इतरस्येतरस्मिन्नध्यास आरोपरूपइतरेतराध्यासश्च शब्दार्थज्ञानानां कथञ्चिदेकरूपत्वात्कर्त्तव्यो भवति। यथा कश्चिद्वदेत—घटशब्दं लिख! घटमानय। घटाकृतिविशिष्टं ज्ञानं घटज्ञानम्। अत्र पूर्ववाक्ये घट इति शब्दो वाचकः। आनयेति क्रियासम्बन्धे व्यक्तिर्वाच्योऽर्थः। तृतीये च घट इति ज्ञानम्। त्रिष्वपि घट इत्येकाकारो नास्त्यत्र भेदः ॥

एवमत्रापि—ओम्—इति शब्दः। ओम्-इति वाच्यं ध्येयं ब्रह्म। ओमिति तयोर्ज्ञानम्। एतेषां ध्येयाकारासु बुद्धिवृत्तिषु सतीषु स्वत एव भेदो निवर्त्तते। उपासकेन च पूर्वत एवैतद्विचार्यमनुसन्धेयं च। योऽयं वाचकः शब्दः स एवार्थः। योऽर्थः स एव शब्दः। न ह्यर्थज्ञानकालेऽन्योऽस्य वाचकः इत्यपेक्षा जायते। यज्ज्ञानं स एवार्थः शब्दश्च। यः शब्दः स एवार्थो ज्ञानं च। योऽर्थः स एव शब्दो ज्ञानं चैवमितस्ततो विपरिवर्त्तनमेवेतरेतराध्यासः। एवमितरेतराध्यासेन ब्रह्मणः साक्षाज्ज्ञानमुत्पद्यते ब्रह्मणो द्वैविध्यं कार्यद्वैविध्यात्। एकं सगुणं द्वितीयं निर्गुणं च सगुणं ब्रह्म भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालसम्बद्धं सर्गस्थितिलयकर्त्तृ सर्वाधारं सर्वपालकं सर्वनियामकं शुभा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुभकर्मफलप्रदं च। निर्गुणं ब्रह्म दिक्कालाद्यनवच्छिन्नं जन्म-मरणादिवर्जितमकायमव्रणमस्नाविरमपापविद्धमशब्दमस्पर्शम-रूपमित्यादिविशेषणविशिष्टम्। न ह्येतद्भेदेन स्वरूपे भेदोऽव-गन्तव्यः किन्तर्हि गुणकर्मणी अत्र भेदके स च वाग्व्यापारमात्रे भेदः। नास्त्यनेन सिद्धान्तस्य ब्रह्मणो वा काचित्क्षतिरिति ॥१॥

भाषार्थ—इस माण्डूक्य उपनिषद् में यही पहिला मूल मन्त्र है। आगे २ इसी के व्याख्यानरूप मन्त्र हैं (इदम्) ज्ञानी लोगों में प्रत्यक्ष (सर्वम्) पूर्ण (अक्षरम्) निश्चल एकरस व्याप्त अर्थात् सर्वोपरि निश्चल अविनाशी व्याप्त जो कोई इष्ट वा उपास्य है वह (ओम, इति, एतत्) ओम् यह वाचक वा इस का वाच्य अर्थ है। यहां (ओम्, इति एतत्) ऐसा कहने से वाच्यवाचक का अभेदा-न्वय सम्बन्ध दिखाया है। ओम्—शब्द के साथ लगे (इति, एतत्) ये दोनों शब्द उस को वाच्यवाचक की ओर झुका जताते हैं। इससे जो अक्षर है वह सब ओङ्कार का वाच्य अर्थ है (तस्य) ओम्—इस वाच्यवाचकरूप एक ब्रह्म का (उपव्याख्यानम्) उस की प्राप्ति का उपाय जतानेवाला व्याख्यान है (भूतम्, भवत्, भविष्यत्) भूत भविष्यत् वर्त्तमान कालयुक्त (इति, सर्वम्, ओंकारः, एव) भी सब ओम् शब्द का वाच्यार्थ परमेश्वर ही है। क्योंकि उस प्रकार एकरसता से कोई वस्तु तीनों काल से संयुक्त नहीं होती कि जो भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों कालमें बनी रहे। इस कथन से उत्पत्ति स्थिति प्रलयों के समय नियम और कर्म के अनुसार प्रवृत्त करते हुए सगुण ब्रह्मकी सूचना है (यत्, च, अन्यत्) किसी काल विशेष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में होकर ठहरने अर्थात् सब काल में न रहनेवाले प्राणियों से भिन्न (त्रिकालातीतम्) काल जिसका उल्लंघन नहीं करता और जो काल का भी काल है वह तीनों से पृथक् (तदपि ओङ्कार एव) ऐसा भी एक वही प्रणव वाच्य अर्थ ईश्वर है ॥

भा०—एक ब्रह्म ही सर्वोपरि व्याप्त, चञ्चलतारहित और अविनाशी है। उस के तुल्य अविनाशी अन्य कोई वस्तु नहीं है। यद्यपि जीवात्मा और जगत्का कारण प्रकृति भी अविनाशी है तो भी वे अन्य शरीरादि की अपेक्षा से ही नित्य वा अविनाशी हैं किन्तु परमेश्वर की अपेक्षा ये दोनों भी किसी प्रकार परिणामी होते ही हैं। अर्थात् परमात्मा के तुल्य इन दोनों की एकरसता सिद्ध नहीं हो सकती। जैसे कार्यदशा में प्रकृति वा प्रधानादि नामवाला सूक्ष्म कारण कार्यरूप से परिणामी होता। अथवा जैसे जीवात्मा जन्ममरण दशा में शरीर के साथ संयुक्त हुआ शरीर के नाशमें अपना ही नाश मानता हुआ शोक करता है इस प्रकार दोनों ही परिणामी होते हैं किन्तु परमात्मा कदापि किसी प्रकार परिणामी नहीं होता। इसलिये अविनाशी वा अविकारी अपरिणामी होने की काष्ठाप्राप्ति (हद) ब्रह्म ही में है।

इस मन्त्र में ओम्—यह शब्द है उसका वाच्यार्थ परमेश्वर है और ऐसा कहने से परमेश्वर भी एक शब्द ही है। इसी प्रकार वाच्य-वाचक दोनों का सर्वत्र शब्द से ही निर्देश किया जाता है। कहीं शब्द का शब्द ही वाच्य वा वाचक भी माना जाता है। जितना वाणी के व्यवहार का काम है, वह सब शब्द से ही किया जा सकता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे व्याकरण शास्त्र में शब्द का उच्चारण करने से वाचक शब्द का ही ग्रहण होता है। जब अग्नि से ढक् प्रत्यय कहा गया तो अग्नि-शब्द से ही ढक् करते हैं किन्तु अग्नि के वाच्य अङ्गाररूप से ढक् प्रत्यय नहीं किया जा सकता। और अन्य शास्त्रों में इस से विरुद्ध शब्द के उच्चारण से प्रायः उसका वाच्य अर्थ प्रतीत होता है। इसी प्रकार यहां भी उपासना प्रसङ्ग में ओम्—यह शब्द इतरेतराध्यास—(एक का दूसरे में आरोप करने) से वाच्यवाचक के अभेद को सूचित करता है। इतरेतराध्यास भी शब्द अर्थ और ज्ञानों के किसी प्रकार एक रूप हो सकने से करना चाहिये वा करना पड़ता है। जैसे कोई कहे कि घटशब्द को लिखो! घट लाओ। घटकी आकृति से युक्त घट ज्ञान है। यहां पहिले वाक्य में घट यह शब्द वाचक है। आनय—इस क्रिया के सम्बन्ध में प्रसिद्ध घट व्यक्ति का वाच्यार्थ है और तीसरे वाक्य में घट यह ज्ञान है तीनों में घट एक ही प्रकार का माना जाता है इसमें भेद नहीं कि शब्द ज्ञान के लिये जो घट बोला जाता है उससे भिन्न किसी प्रकार का अर्थ ज्ञान के लिये बोला जावे।

इसी प्रकार यहाँभी ओम्—यह शब्द, ओम्—यह वाच्य वा ध्यान करने योग्य अर्थ तथा ओम्—ऐसा शब्द और अर्थ का ज्ञान है। जब बुद्धि की वृत्तियां ध्येयरूप—वाच्याकार हो जाती हैं उस समय वाणीमात्र से प्रकट होनेवाला शब्दादि का भेद टूट जाता है। उपासक पुरुष को पहिले से ही ऐसा विचार वा अनुसन्धान करना चाहिये कि जो यह वाचकशब्द है वही अर्थ, जो अर्थ है वही शब्द

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है क्योंकि वाच्य अर्थ का ज्ञान होते समय अन्य वाचक की अपेक्षा नहीं होती। जो ज्ञान है वही अर्थ और शब्द, जो शब्द है वही अर्थ और ज्ञान तथा जो अर्थ है वही शब्द और ज्ञान इस प्रकार इधर उधर से एक को दूसरे में लौट पौट करना इतरेतराध्यास कहाता है। इस प्रकार इतरेतराध्यासपूर्वक ध्यान वा उपासना करते २ ब्रह्म का साक्षात् ज्ञान हो जाता है।

कर्म के भेद से परमेश्वर दो प्रकार का माना जाता है। एक सगुण द्वितीय निर्गुण। सगुण ब्रह्म—भूत भविष्यत् वर्त्तमान इन तीनों काल से सम्बन्ध रखनेवाला, उत्पत्ति स्थिति प्रलयकर्त्ता, सर्वाधार, सर्वरक्षक, सर्वनियामक और शुभाशुभ कर्मों का यथावत् फल देनेवाला है और सब दिशा सब काल वा सब स्थानों में विद्य, मान, जन्ममरणादि से रहित अशरीर अच्छेद्य अवध्य निष्पाप- और शब्दस्पर्शरूपादि से रहित निर्गुण ब्रह्म कहाता है। इस भेद से उस ब्रह्म के स्वरूप में भेद होता हो ऐसा नहीं मानना चाहिये किंतु इस भेद के होने में गुण कर्मों का भेद ही कारण है यह वाणी के व्यवहारमात्र का भेद है। इस भेद के होने से सिद्धान्त पक्ष की वा ब्रह्म की कुछ हानि नहीं है ॥ १ ॥

सर्वं ॐ ह्येतद्ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्॥२॥

पूर्वं वाच्यवाचकयोरभेदेनोक्त्वाऽधुना वाच्यरूपतयाभिधीयते—(एतत्) ओं शब्दवाच्यम् (सर्वम्) अखिलम् (ब्रह्म) ब्रह्मैवास्ति। अर्थात्तस्मिन्नानात्वं नास्ति (अयम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यानेन प्रत्यक्षः (आत्मा) व्याप्त ईश्वरः (ब्रह्म) सर्वस्माद्-बृहदस्ति (सः, अयम्, आत्मा) (चतुष्पात्) वाचकभेदमनुसृत्य वाच्य आरोपः स च सुगमतया बोधार्थः । तस्य च वक्ष्यमाणमन्त्रेषु व्याख्यानम् ॥

भा०—अस्मिन् मन्त्रे ब्रह्म, आत्मा, अयमिति शब्दत्रयं द्विरागतम् । तत्रायमिति ज्ञानिषु प्रत्यक्षताया वशद्योतनार्थः । ब्रह्मशब्द एको विशेष्यः विशेषणं च द्वितीयः । द्वितीय आत्मशब्दो वाचकस्वरूपबोधनपूर्वकं वाच्येनाभेदान्वयार्थः । यत्र यत्राखण्डे ब्रह्मादौ भेदकल्पनया वर्णनं तत्र तत्र तस्य ज्ञानिभिरप्यगम्यस्य दुर्ज्ञेयस्य निरतिशयसूक्ष्मस्य वस्तुनः सुगमतया बोधार्थम् । न ह्येतेन तत्रांशांशिभावः शश्य उपपादयितुमिति । यथोच्येताकाशस्य प्रदेशः । अमुष्मिन्नाकाशप्रदेश इदं कृतं तथैवात्रापि सुगमतया बोधार्था ब्रह्मभेदकल्पनास्ति न तु वास्तविकीति ॥ २॥

भाषार्थः—पहिले मन्त्र में वाच्यवाचक के अभेद को लेकर कहा है अब केवल वाच्य को लेकर कहते हैं (एतत्) ओंशब्द का वाच्य (सर्वम्) सब (ब्रह्म) ही है अर्थात् उस में अन्य का मेल कुछ नहीं है (अयम्) यह ध्यान से प्रत्यक्ष होनेवाला (आत्मा) व्याप्त ईश्वर (ब्रह्म) सब से बड़ा है (सः, अयम्, आत्मा) सो यह परमेश्वर (चतुष्पात्) वाचक ओंशब्द के मात्रारूप भेद को लेकर वाच्य आत्मा के भी चार प्रकार वा भाग हैं । यह विभागकथन सुगमता से जानने के लिये है इसका विशेष व्याख्यान अगले मन्त्रों में किया गया है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—इस मंत्र में ब्रह्म, आत्मा तथा अयम्, ये तीन शब्द दो बार आये हैं। उन में 'अयम्' यह ज्ञानियों में प्रत्यक्षता की प्रबलता दिखाने के लिये है। एक ब्रह्मशब्द विशेष्य और दूसरा विशेषण है। द्वितीय आत्मशब्द का वाचक स्वरूप जताने पूर्वक वाच्य के साथ अभेदान्वय होने के लिये है। जहां २ अखण्ड निर्विकार ब्रह्मादि में भेदकल्पना के साथ वर्णन है, वहाँ २ उन ज्ञानियों को भी कठिनता के साथ जानने योग्य वा अगम्य सब सूक्ष्म वस्तुओं से भी अत्यन्त सूक्ष्म ब्रह्म वस्तु का सुगमता से बोध होने के लिये है। किन्तु इससे उस ब्रह्म में अंशांशिभाव नहीं आसकता। जैसे कोई कहे कि आकाश के एक प्रान्त में घटादि वा आकाश के अमुक प्रदेश में यह काम किया। वैसे ही यहां भी सुगमता से बोध होने के लिये ब्रह्म में भेदकल्पना है, किन्तु वास्तव में नहीं॥ २॥

जागरितस्थानो बहिःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः।
स्थूलभुग्वैश्वानरः प्रथमः पादः॥ ३॥

(जागरितस्थानः) सर्वस्य शुभाशुभकर्मफलविवेचनमेव जागरितं तदेव स्थानं स्थितिरस्य सः (बहिःप्रज्ञः) स्वस्माद्भिन्ने संसारस्य व्यवस्थाकरणे बाह्ये कर्मणि प्रज्ञा यस्य स बहिःप्रज्ञः। (सप्ताङ्गः) व्याहृतिनाम्ना प्रसिद्धा जगतोऽङ्गान्यवयवाः सप्त लोका अस्मिन्सः (एकोनविंशतिमुखः) एकोनविंशतिः पञ्चतन्मात्राणि दशेन्द्रियाणि मनोबुद्धिश्चेतोऽहङ्कारश्चेति तत्त्वानि मुखे यस्य सः (स्थूलभुक्) स्थूलं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भुनक्ति पालयतीति स्थूलभुक् (वैश्वानरः) सर्वमनुष्यादि प्राणिनां नायकः स्वामी (प्रथमः) (पादः) भागोंशः ।

भावार्थ—प्रवृत्तेर्निवृत्तिमुखं व्याख्यानमत्र । परमात्मनि चतुष्पात्त्वकल्पनं वेदेऽपि कथञ्चिदस्त्येव "पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवीति" वर्णनात् । ताश्चेमाश्चतस्रोऽवस्था एव विज्ञेयाः । यथा मनुष्यस्यापि चतस्रोऽवस्था भवन्ति तथैव परमात्मनः कार्यभेदेनेयं प्रथमाऽवस्थास्ति । आसामवस्थानां वाच्यपरतयाऽत्र व्याख्यानम् । यद्यपि परमात्मा सदैव जागर्त्ति तथापि विशेषतया पालनदशायामेव जागरणव्यापारस्तदानीमेव बहिर्विचारापत्तिस्तस्य । सर्वस्य धारणं सर्वस्य स्वस्वकर्मणि चालनमप्येतस्यामेवावस्थायां सम्पद्यते । अतो जगतः स्थितिदशायां सर्वस्य व्यवस्थापकत्वमेव तस्य प्रथमः पादः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(जागरितस्थानः) सबके शुभ अशुभ कर्मफलों का विवेक करनेरूप जागरण में ही जिसकी स्थिति है (बहिःप्रज्ञः) अपने से भिन्न संसार की व्यवस्था करनेरूप बाहरी काम में जिसकी बुद्धि लगी है (सप्ताङ्गः) भूः, भुवः, स्वः, आदि सात नामवाले जगत् के अवयवरूप सात लोक जिसमें हैं (एकोनविंशतिमुखः) पञ्चतन्मात्र, दश इन्द्रिय और मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार ये उन्नीस तत्त्व जिसके मुख में हैं ऐसा (स्थूलभुक्) स्थूल संसार की रक्षा करनेवाला (वैश्वानरः) सब मनुष्यादि प्राणियों का चालक वा स्वामी (प्रथमः) पहिला (पादः) वा चौथा भाग है ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—यहां प्रथम चार मन्त्रों में प्रवृत्ति से निवृत्ति की ओर झुका कर व्याख्यान किया है। परमात्मा में चतुष्पाद् होने की कल्पना वेद में भी किसी प्रकार है ही। जैसे (पादोस्य०) इस मन्त्र में वर्णन है सो यह भागकल्पनारूप चार अवस्था मात्र जाननी चाहिये। जैसे मनुष्य की चार अवस्था होती है वैसे परमेश्वर की कार्यभेद से यह प्रथम अवस्था है। इन अवस्थाओं का वाच्य ईश्वर की ओर लगा कर यहां व्याख्यान है। यद्यपि परमेश्वर सदैव जागता है तो भी विशेष कर जगत् की पालनदशा में जागने का व्यवहार है। क्योंकि उसी समय उसको अपने से भिन्न बाहरी प्रजा में विचार लगाना पड़ता है। सबका धारण और अपने २ कर्म में सबका चलाना भी इसी अवस्था में बन सकता है। इस लिये स्थितिदशा में सबकी व्यवस्था कर सकनारूप भाव ही उसका प्रथम अंश है। इस मन्त्र का यही तात्पर्य्य है॥ ३॥

स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पादः॥ ४॥

(स्वप्नस्थानः) स्वप्नेऽवान्तरप्रलयदशायां स्थानं स्थितिरस्य सञ्जिहानस्यार्द्धसुप्तस्य सः (अन्तःप्रज्ञः) अन्तः स्वस्मिन्नेव प्रज्ञाऽस्य (सप्ताङ्गः, एकोनविंशतिमुखः) (प्रविविक्तभुक्) प्रकर्षेण विविक्तं विषयवासनाजन्यभोगात्पृथक्कृतं शुद्धं ज्ञानं केवलं भुनक्त्यनुभवति यद्वा प्रकृष्टतया विविक्तान् सदसद्विवेकशीलान् भुनक्ति पालयति। यद्वा प्रकृष्टविवेकेन निकृ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ष्टोत्तमान् तथा योग्यं पालयति स प्रविविक्तभुक् (तैजसः) स्वयं प्रकाशस्वरूपः । एवम्भूत ईश्वरः (द्वितीयः) (पादः) अस्ति ।

भा०—यथा मनुष्यः स्वप्नावसरेऽन्तरेव स्वप्नान्पश्यति नैवेन्द्रियैर्बाह्यविषयाननुभवति । तथैवावान्तरप्रलयेषु यदा सर्वप्राणिनां सर्वतत्त्वानां च प्रलयो न भवति तदार्द्धसुप्त इवेश्वरो वर्त्तमानस्यावशिष्टस्य धारणपालनादि कुर्वन् स्वस्वरूप एव ध्यानावस्थितो भवति स द्वितीयां दशामापन्नो द्वितीयभागात्मक इति कथ्यते स च निर्धूमतैजसप्रकाश इव स्वस्मिन् ध्यानावस्थितो जायते ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(स्वप्नस्थानः) अवान्तरप्रलयदशारूप स्वप्न में जिसकी स्थिति है अधसोये मनुष्य के तुल्य (अन्तःप्रज्ञः) अपने भीतरी विचार में जिसकी बुद्धि है (सप्ताङ्गः) ब्रह्माण्ड के सात लोकरूप अवयव जिसके आश्रय हैं (एकोनविंशतिमुखः) पूर्वोक्त इक्कीस तत्त्व जिसके मुखमें हैं तथा (प्रविविक्तभुक्) जो अच्छे प्रकार विषयसम्बन्धी वासना से होनेवाले भोग से पृथक् किये केवल शुद्ध ज्ञान का अनुभव करता है अथवा अच्छे प्रकार सत् असत् के विवेक करनेवाले मनुष्यों की रक्षा करता यद्वा अच्छे विचार पूर्वक नीच ऊँचों की यथायोग्य रक्षा करता है उसको प्रविविक्तभुक् कहते हैं (तैजसः) स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर (द्वितीयः) दूसरा (पादः) अंश वा भाग है ।

भा०—जैसे मनुष्य स्वप्नावस्था में अपने भीतर ही स्वप्नों को देखता है किन्तु इन्द्रियों द्वारा उस समय बाहरी विषयों का अनु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भव नहीं करता। वैसे ही अवान्तर (बीच के) प्रलयों में जब सब प्राणियों वा सब तत्त्वों का प्रलय नहीं होता तब अधसोये मनुष्य के तुल्य ईश्वर शेष रहे वर्त्तमान जगत् का धारण-पालन करता हुआ अपने स्वरूप में ही ध्यानावस्थित होता है। वह द्वितीय दशा को प्राप्त द्वितीयभाग रूप कहा जाता है वह धूम रहित अग्नि के प्रकाश के तुल्य अपने स्वरूप में ध्यानावस्थित होता वा रहता है॥ ४॥

यत्र सुप्तो न कञ्चन कामं कामयते न कञ्चन स्वप्नं पश्यति तत्सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञातघन एवानन्दमयो ह्यानन्दभुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः॥ ५॥

प्रलयदशाया वर्णनमेतत्-(यत्र) यस्मिन्नवस्थाने स परमेश्वरः (न, कञ्चन, कामम् कामयते। न, कञ्चन, स्वप्नम्, पश्यति) (तत्, सुषुप्तम्) (सुषुप्तस्थानः) सुषुप्तं प्रलयदशायामवस्थानमस्य सः (एकीभूतः) सर्वतो विचारशक्तिं समाहृत्य स्वस्वरूपेऽवस्थितः (प्रज्ञानघनः) प्रकृष्टज्ञानस्वरूप एव, नास्ति तस्मिन्नज्ञानस्य लेशोऽपि। प्रकृष्टं ज्ञानं प्रज्ञानं तस्य घनो मूर्त्तिः स्वरूप एव। मूर्त्तौ घन इति निपातनम्। (आनन्दमयः) नास्ति तस्मिन् कदापि दुःखस्य लेशोऽपि (आनन्दभुक्, हि) आनन्दमेव सदा भुङ्क्तेऽन्नादिवत्तस्यानन्द एव भोग्यः (चेतोमुखः) स्वप्नादेः प्रतिबोधनं चेतस्तत्र नित्यबोधानुगत्वाच्चेतोमुख इत्युच्यते। अर्थात्स्वप्नसुषुप्तावस्थयोरपि स जागर्त्त्येव (प्राज्ञः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वस्मिन् काले सर्वविषयान् यथार्थतया विजानाति सः (तृतीयः) (पादः) भागोंशो वा॥

भा०—एषु त्रिषु मन्त्रेषु प्रथमे सृष्टिस्थितिदशायां परमेश्वरो यादृशकर्मकरणेन यादृशीमवस्थामाप्नोति तस्या वर्णनम्। द्वितीयेऽवान्तरप्रलयदशापन्नस्य तृतीयेऽस्मिन् प्रलयदशायामवस्थितस्य। तयोपासनाप्रसङ्गेऽपि प्रथममन्त्रे सवितर्कासमापत्तिस्तयोपास्यतां गत ईश्वरः प्रथमपादत्वं लभते। द्वितीये निर्वितर्कसमापत्तिप्रकारेणोपास्यत्वं प्राप्तस्तैजसो द्वितीयः पादः। अस्मिन् तृतीयमन्त्रे सविचारनिर्विचारसमापत्तिभ्यामुपासितः परमेश्वरः प्राज्ञसंज्ञां प्राप्तस्तृतीयपादवद्वर्ण्यते। अर्थात् कार्ये जगति प्रकारत्रयेण स उपासनीयः कार्यभेदेन प्रकारत्रयमेवापन्न इति कृत्वा त्रैविध्यमारोप्यते। इमे त्रय उपासनाप्रकाराः सबीजसमाधौ सम्प्रज्ञातयोगे ज्ञातव्याः। एनमेव कार्यदशायामुपास्यं त्रिविधं परमेश्वरं सगुणमपि वदन्ति। निर्बीजसमाधिगम्यं च निर्गुणमिति। तस्य व्याख्यानं सप्तममन्त्रे वक्ष्यते॥ ५॥

भाषार्थः—इस मन्त्र में प्रलयदशा का वर्णन है (यत्र) जिस अवस्था वा दशा में परमेश्वर (न, कञ्चन, कामम्, कामयते) किसी प्रकार की कामना नहीं रखता तथा (न, कञ्चन, स्वप्नम्, पश्यति) न उसको किसी प्रकार का स्वप्न दीखता है (स्वप्न के निषेध का अभिप्राय यही है कि जब पूर्वोक्त निर्वितर्क समाधिगम्य द्वितीयावस्था में भी नहीं होता) (तत्सुषुप्तम्) वह तीसरी सुषुप्ति दशा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है (सुषुप्तस्थानः) सुषुप्त नाम प्रलयदशा में जिसकी स्थिति है (एकीभूतः) सब ओर से विचारशक्ति को खेंच कर अपने स्वरूप में अवस्थित (प्रज्ञानघन एव) प्रबल ज्ञान स्वरूप ही है उसमें अज्ञान का लेश भी नहीं (आनन्दमयः) उसमें कभी दुःख का नाम भी नहीं (आनन्दभुक्, हि) वह सदा आनन्द ही भोगता यानी अन्नादि के तुल्य आनन्द ही उसका भोग्य है। (चेतोमुखः) सोने आदिसे जागना रूप जो चित्त वा चेतनता है सो वह सदा जागता होने से चेतोमुख कहाता है। अर्थात् स्वप्न और सुषुप्तावस्थाओं में भी वह जागता ही है (प्राज्ञः) सब काल में सब विषयों को यथार्थरूप से जानता है। यह (तृतीयः) तीसरा (पादः) भाग वा अंश कहाता है।

भाषार्थः—इन तीन मन्त्रों में से प्रथम में सृष्टि की स्थिति-दशा में परमेश्वर जैसा कर्म करने से जैसी अवस्था को प्राप्त होता है उस का वर्णन है। द्वितीय मन्त्रमें अवान्तर प्रलयदशा को प्राप्त का और तृतीय मन्त्र में प्रलय दशा में अवस्थित ईश्वर का वर्णन है। वैसे ही उपासना प्रसङ्ग में भी प्रथम मंत्र से सवितर्का समापत्ति—इतरेतराध्यासपूर्वक ध्यान से उपासना किया ईश्वर प्रथम भागस्थ कहाता, निर्वितर्का (जिस में केवल ध्येय वस्तुमात्र का ध्यान रहता) से उपासना किया गया प्रकाशस्वरूप द्वितीय भागस्थ ईश्वर है। और इस तृतीय मन्त्र में सविचार निर्विचार समापत्तियों से उपासना किया परमेश्वर ज्ञानस्वरूप वा प्राज्ञसंज्ञा को प्राप्त तृतीय पाद वा अंश के तुल्य गिना वा माना जाता है। अर्थात् कार्य जगत् में परमेश्वर तीन प्रकार से उपासनीय है और कार्य के भेद से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीन प्रकारों को प्राप्त होता ऐसा मान कर तीन भाग वा अंशों का आरोपण किया है। ये तीन उपासना के प्रकार सबीजसमाधि वा संप्रज्ञातनामी योग के विषय जानो। कार्यदशा में उपासना करने योग्य इसी तीन प्रकार के परमेश्वर को सगुण भी कहते और निर्बीजसमाधिगम्य को निर्गुण मानते वा कहते हैं। उस का व्याख्यान सातवें मन्त्र में आगे कहेंगे॥ ५॥

एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्याम्येष योनिः सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्॥ ६॥

(एषः) पूर्वमन्त्रैः प्रतिपाद्यः (सर्वेश्वरः) सर्वस्य चराचरस्याध्यक्षः (एषः, अन्तर्यामी) सर्वस्यान्तःकरणेषु याति प्राप्नोति। (एषः, योनिः) सर्वस्य कारणम्। तथा (भूतानाम्) सर्वेषां विद्यमानवस्तूनाम् (प्रभवाप्ययौ, हि) उत्पत्तिप्रलययोरेवाधिकरणम्। तस्मादेव सर्वमुत्पद्यते शैलादभिनदी यथा। तस्मिन्नेव सर्वं लीयते। न हि कथमपि तस्योपादानत्वं सम्भवति॥

भा०-पूर्वमन्त्रत्रयेण प्रतिपादितोऽप्यखण्ड्य एवैष परमेश्वरः सर्वोत्पादकः सर्वाधारः सर्वविनाशकश्चास्ति तस्यैव ध्यानमुपासकेन कार्यम्॥ ६॥

भाषार्थः-(एषः) यह पूर्व मन्त्रों से प्रतिपादन करने योग्य (सर्वेश्वरः) सब चराचर जगत् का स्वामी (एषः) यह (सर्वज्ञः) सर्व भूत भविष्यत् वर्त्तमान तीनों काल की वस्तु जाननेवाला

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एषः) यह (अन्तर्यामी) सब के अन्तःकरणों में प्राप्त होता (एषः) यह (योनिः) कारण तथा (भूतानाम्) सब विद्यमान पदार्थों का (प्रभवाप्ययौ) उत्पत्ति और प्रलय का मुख्य आधार है। पर्वतों से नदियों के तुल्य उसी से सब उत्पन्न होता तथा उसी में सब का लय हो जाता है तो भी वह किसी प्रकार जगत् का उपादान कारण नहीं हो सकता जैसे कि नदी का उपादान पहाड़ नहीं है पर पहाड़ से निकलती अवश्य है इसी प्रकार परमेश्वर भी जगत् का प्रभव कारण अवश्य है॥

भा०—इस से पूर्व के तीन मन्त्रों में प्रतिपादन किया भी परमेश्वर अखंड्य ही है तथा वह सब का उत्पादक, सब का धारण करने वाला तथा सब का विनाशक है। उसी का ध्यान उपासक पुरुष को करना चाहिये॥ ६॥

नान्तःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्। अदृष्टमव्यवहार्य्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारंप्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः॥७॥

महाप्रलयदशायामवस्थितं निर्बीजसमाधिनोपास्यं परं ब्रह्म (न, अन्तःप्रज्ञम्) अन्तःकरण इव स्वस्वरूपे नास्ति बाह्यवस्तुज्ञाने प्रज्ञाऽस्य तादृशम्। एतेन तैजसनिषेधः (न, बहिःप्रज्ञम्) बहिर्मनसो बाह्यवृत्तिरिव सर्वस्य जगतो विवेचनं शुभाशुभफलप्रदत्वेन व्यवस्थापकत्वं बहिःप्रज्ञत्वं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदपि तदानीं तत्र नास्ति) न, उभयतः प्रज्ञम्) उभयतोऽन्तर्बहिश्च प्रज्ञास्य तदपि न । अर्थान्नान्ततःप्रज्ञमित्यनेन स्वप्नावस्थानिषेधः । न बहिःप्रज्ञमिति जाग्रत्प्रतिषेधः । नोभयतः प्रज्ञमित्यवस्थाद्वयस्यान्तरालस्थितेः प्रतिषेधः (न, प्रज्ञानघनम्) न च प्रज्ञानस्वरूपं सुषुप्तावस्थापन्नं भवतीति वक्तुं शक्यते वाचाऽनिर्देश्यत्वान्निर्बीजैकसमाधिगम्यस्वरूपत्वाच्च (न, प्रज्ञम्) न च युगपत्सर्वविषयान् वस्तून् वा जानाति किन्तु यदा यस्य ज्ञानमभीष्टं तदा तस्य वस्तुनो यथावत्स्वरूपं ज्ञातमेव भवति नैव स्मरणाय श्रमः क्रियते (नाप्रज्ञम्) अप्रज्ञमज्ञानं नास्ति किन्तु सदा चेतनस्वरूपम् (अदृष्टम्) अप्रत्यक्षम् । अतएव (अव्यवहार्यम्) यस्य वस्तुनो गुणकर्माणि दृश्यन्ते तदेव वाचा व्यवह्रियते न त्वदृष्टम् (अग्राह्यम्) व्यवहारानर्हत्वादेव व्यवहृतमेव मनसा वाचा कायेन वा गृह्यते (अलक्षणम्) अलिङ्गं चिह्नविशेषविरहम् । अतएव (अव्यपदेश्यम्) संज्ञासंज्ञिसम्बन्धेनानिर्देश्यम् (एकात्मप्रत्ययसारम्) सर्वावस्थासु चतुष्पात्त्वेनापि प्रतिपादित एक एवात्माऽव्यभिचारी, नास्ति तस्मिन् पादकल्पनयापि भेद इति प्रत्ययो ज्ञानं तेन सारमनुसरणीयं ज्ञातुं योग्यमिति यावत् । (प्रपञ्चोपशमम्) प्रपञ्चस्य कार्यदशायां व्यक्तस्य सर्वस्य जगत उपशमः शान्तिरस्मिन् तत् । अतएव (शान्तम्) निरुपद्रवम् (शिवम्) कल्याणस्वरूपम् (अद्वैतम्) नास्ति द्वितीयं तत्तुल्यं किमपि (चतुर्थम्) तुरीयदशापन्नं ब्रह्मास्ति ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति (मन्यन्ते) विद्वांसो जानन्ति (सः, आत्मा) सर्वस्य चालकः प्रेरकः सर्वाध्यक्षश्चास्ति तस्मात् (सः, विज्ञेयः) विशेषेण ज्ञातुं योग्यः। अर्थात्तस्य ज्ञानाय मनुष्येण प्रकृष्टो यत्नः कार्यः॥

भा०—चतुर्थी, निर्बीजसमाधिदशाऽसम्प्रज्ञातयोगावस्था तस्यामेव प्राप्यस्वरूपस्य निर्गुणस्य निराकारस्य महाप्रलय-दशायामवस्थितस्य च परमात्मनश्च चतुर्थपादरूपस्यास्मिन् मन्त्रे वर्णनमिति॥ ७॥

भाषार्थः—महाप्रलयदशा में अवस्थित निर्बीज समाधिसे उपासना करने योग्य परमेश्वर (न, अन्तःप्रज्ञम्) अन्तःकरण के तुल्य अपने स्वरूप में जिस का विचार न हो अर्थात् बाहरी वस्तु के जानने में जिस का विचार फँसा है ऐसा नहीं। इस से तैजस का निषेध किया है (न, बहिःप्रज्ञम्) मन के बाह्यवृत्ति के तुल्य सब जगत् का विवेचन करना शुभ अशुभफल के दिये जाने से व्यवस्थापक का होना बाहरी बुद्धि का तात्पर्य है सो भी उस समय उस में नहीं रहती (न, उभयतःप्रज्ञम) दोनों ओर बाहर भीतर से जिस की बुद्धि हो सो भी नहीं। अर्थात् भीतरी बुद्धि के निषेध से स्वप्नावस्था का निषेध, बाहरी बुद्धि के निषेध से जाग्रत् अवस्था का निषेध और दोनों प्रकार की बुद्धि के निषेध से दोनों अवस्था के मध्य की स्थिति का निषेध है (न, प्रज्ञानघनम्) सुषुप्ति अवस्था से युक्त होता हो ऐसा भी नहीं कह सकते क्योंकि वाणी से जिस के वास्तविक स्वरूप का निर्देश नहीं हो सकता और केवल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक निर्बीज समाधि से जिस के स्वरूप को प्राप्त हो सकते हैं। (न, प्रज्ञम्) एक काल में सब विषयों वा वस्तुओं को वह नहीं जानता किन्तु जिस समय जिसका जानना अभीष्ट होता है तब उस का यथावत् स्वरूप जान लेता है। उसको स्मरण करने के लिये परिश्रम नहीं करना पड़ता (न, अप्रज्ञम्) वह अज्ञानी वा जड़ नहीं किन्तु सदा चेतनस्वरूप है (अदृष्टम्) अप्रत्यक्ष अर्थात् इन्द्रियों से परे परोक्ष है इसी से (अव्यवहार्य्यम्) जिस वस्तु के गुण कर्म दीखते हैं उसी का वाणीसे व्यवहार होता है किन्तु अदृष्ट का नहीं (अग्राह्यम्) व्यवहार के योग्य न होने से ही गृहीत नहीं होता किन्तु व्यवहार में आया ही वस्तु मन वाणी वा शरीर से ग्रहण किया जाता है (अलक्षणम्) किसी प्रकार के चिह्न से रहित इसी कारण (अचिन्त्यम्) चिन्ता वा विचार में न आने योग्य इसी से (अव्यपदेश्यम्) संज्ञासंज्ञी के सम्बन्ध से न कहने योग्य (एकात्मप्रत्ययसारम्) चार भाग कल्पित होने से भी सब अवस्थाओं में अव्यभिचारी एक ही आत्मा है। उसमें पाद की कल्पना से भी भेद नहीं, ऐसी प्रतीति से ज्ञातव्य (प्रपञ्चोपशमम्) कार्यदशारूप सब जगत् की शान्ति जिस की चतुर्थ दशा में हो ऐसे इसी से व्यक्त कारण (शान्तम्) निरुपद्रव (शिवम्) कल्याणस्वरूप (अद्वैतम्) दूसरा कोई जिस के तुल्य नहीं ऐसा (चतुर्थम्) चौथी अवस्था को प्राप्त ब्रह्म है ऐसा (मन्यन्ते) विद्वान् लोग जानते वा मानते हैं। (सः, आत्मा) वह सब का प्रेरक वा सब का स्वामी है इस से (सः, विज्ञेयः) वह विशेष कर जानने योग्य है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् उस को जानने के लिये मनुष्य को बड़ा प्रबल यत्न करना चाहिये।

भा०–चौथी निर्बीज समाधिदशा असम्प्रज्ञात योग की अवस्था है। उसीमें जिस के स्वरूप की प्राप्ति हो सकती है ऐसी निर्गुण निराकार महाप्रलयदशा में अवस्थित चतुर्थ पादरूप परमात्मा का इस मन्त्र में वर्णन है॥ ७॥

सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रामात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥ ८॥

इदानीं वाच्यवाचकयोरभेदमाह-(सः, अयम्) योऽसौ वाच्यप्रधानतया व्याख्यातः सोऽयम् (आत्मा, अध्यक्षरम्, ओङ्कारः) ओमित्यक्षराभिधानप्राधान्येन वर्ण्यमानः सततमन्तर्यामी वाच्य ईश्वरः पूर्वोक्तमन्त्रेषु पादशः कल्पितस्ते पादा वाचकरूपेणेहाङ्गीकृताः (अधिमात्रम्) वाचकस्य मात्रास्वधिकृत्य वर्त्तत इत्यधिमात्रम् (पादाः) वाच्यस्य भागास्त एवोमिति वाचकस्य (मात्राः) याश्च वाचकस्य (मात्राः) ते वाच्यस्य (पादाः) अंशाः (अकारः, उकारः, मकारः, इति)॥

भा०–इतः पूर्वमन्त्रेषु वाच्यस्यावस्थाभेदेन कार्यकालयोर्भेदेन वा पादमाश्रित्य भेदाः प्रदर्शिताः। अधुना तु मात्राशब्देन वाचकस्य-ओमिति शब्दस्य भेदाः प्रदर्श्यन्ते। तयोर्वाच्यवाचकयोरभेदेनान्वित इतरेतराध्यासेन वैकीभूते पादानां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्रात्वं मात्राणां च पादत्वं कथ्यते नैव तत्कथमपि विरुद्धं भवितुमर्हति सर्वस्यैकरूपत्वात् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—अब वाच्यवाचक का अभेद कहते हैं—जो वाच्य की प्रधानता से पूर्व कहा गया (सः, अयम्) सो यह (आत्मा, अध्यक्षरम्, ओङ्कारः) ओम्—इस वाचक अक्षर की प्रधानता से वर्णन किया गया निरन्तर अन्तर्यामी वाच्य ईश्वर पूर्वोक्त मन्त्रों में पादशब्द के साथ अंशकल्पना से कहा, वे पाद यहां वाचक-पद में मात्रा करके माने गये हैं (अधिमात्रम्) ओम् शब्द वाचक की मात्राओं में वर्त्तमान (पादाः) वाच्य ईश्वर के जो भाग वे ही ओम्—इस वाचक की (मात्राः) मात्रा (च) और जो वाचक की (मात्राः) मात्रा हैं । वे वाच्य के (पादाः) पाद वा अंश हैं । वाचक में (अकारः, उकारः, मकार इति) अ, उ, म्, ये तीन पाद वा मात्रा हैं ।

भा०—इस से पूर्व मन्त्रों में वाच्य के अवस्था कार्य और काल के भेद से पादकल्पना का आश्रय कर भेद दिखाये हैं और अब वाचक ओम् इस शब्द के मात्र शब्द से भेद दिखलाते हैं । उन दोनों वाच्यवाचक के अभेदान्वित होने और इतरेतराध्यास से एकीभूत होने में पादों को मात्रा वा मात्राओं को पाद कहना होता है सो किसी प्रकार विरुद्ध नहीं हो सकता । क्योंकि वाच्यवाचक दोनों एक ही रूप हैं ॥ ८ ॥

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥ ९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जागरितस्थानः) जागरिते जागरणे स्थानं स्थितिरस्य स सर्वस्य व्यवस्थापकः (वैश्वानरः) सर्वस्य नायकः स्वस्वकर्मणि चालको वाच्य ईश्वरः (आकारः) अकाररूपा (प्रथमा) (मात्रा) वाचकेऽस्ति (आप्तेरादिमत्त्वात्) इति पूर्वोक्त इतरेतराध्यासे हेतुः। आदिर्विद्यतेऽस्याः साऽऽदिमती व्याप्तिर्वर्णमालायां प्रथमाक्षरस्य--अकारस्य। अर्थात्प्रायो वाग्व्यापारोऽकारेण व्याप्तः शब्दविषयेऽकारस्य प्रायिकः प्रयोगः। इदमेव वाचकस्य जागरणं तथा वैश्वानरोऽपि सर्वत्र व्याप्तः (यः) उपासको जनः (एवम्) इतरेतराध्यासपूर्वकध्यानेन (येन) परमात्मानं साक्षाज्जानाति (ह वै) स एव (सर्वान्) (कामान्) (वा) अपि (आप्नोति) (च) (आदिः) महतां प्रतिष्ठावतामग्रगण्यश्च (भवति)।

भा०—यथा वैश्वानरोऽग्निः सदैव जागर्त्ति न कदापि स्वपिति यथा वा वर्णमालायाः प्रथमाक्षरम्-अ इति सर्वस्मिन् वाचोव्यवहारे व्याप्तम्। तथैव जगतः स्थितिदशायां स्वस्वकार्ये सर्वस्य प्रेरकः परमेश्वरो जागर्त्ति सर्वत्र च व्याप्तः सर्वस्य चादिर्न हि तस्य कश्चिदादिरस्ति। तं ये यथावदितरेतराध्यासपूर्वकोपासनेन यथावज्जानन्ति ते लोकेऽपि सर्वोपरि प्रतिष्ठिता अग्रगण्याः सन्तः सर्वानभीष्टान् प्राप्नुवन्ति। दुःखाद्विमुक्तिरप्यभीष्टैवास्ति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(जागरितस्थानः) जागरण दशा में अवस्थित सबकी व्यवस्था करनेवाला (वैश्वानरः) अपने २ कर्म में सबको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलानेवाला वाच्य ईश्वर (अकारः) (प्रथमा) वाचक ओम् पद में पहिली (मात्रा) मात्रा है (आप्तेः आदिमत्त्वात्) वर्णमाला में प्रथम अक्षर अकार की व्याप्ति का आदि मुख्य प्रशस्त होने से यह पूर्वोक्त इतरेतराध्यास में हेतु है। अर्थात् प्रायः वाणी का व्यापार अकार से व्याप्त है और शब्द विषय में अकार का मुख्य प्रयोग है यही वाचक की प्रथम मात्रा का जागना है और वैश्वानर अग्नि भी सर्वत्र व्याप्त है (यः) जो उपासक (एवम्) इतरेतराध्यासपूर्वक ध्यान से परमात्मा को (वेद) साक्षात् जानता है (ह वै) वही (सर्वान्, कामान्) सब कामनाओं को (वा) भी (आप्नोति) प्राप्त होता (च) और (आदिः) बड़े प्रतिष्ठितों में अग्रगण्य अर्थात् सबका पूज्य ज्ञानी और स्वयं सदा शोकादि रहित (भवति) होता है।

भा०—जैसे अग्नि सदैव जागता किन्तु कभी नहीं सोता वा जैसे वर्णमाला का पहिला अक्षर (अ) सब वाणी के व्यवहार में व्याप्त है वैसे ही जगत् की स्थितिदशा में अपने-अपने काम में सब को प्रेरणा करनेवाला परमेश्वर जागता है। वह सर्वत्र व्याप्त और सबका आदि है, किन्तु उसका कोई आदि नहीं। उसको जो लोग इतरेतराध्यासपूर्वक उपासना से यथावत् जानते हैं वे लोक में भी सर्वोपरि प्रतिष्ठित और अग्रगण्य हुए सब अभीष्ट कामनाओं को प्राप्त होते हैं। दुःख से छूटना भी अभीष्ट कामना ही है ॥ ९ ॥

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीया मात्रोत्कर्षादुभयत्वा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वोत्कर्षति ह वै ज्ञानसन्ततिं समानश्च भवति नास्याब्रह्म-वित्कुले भवति य एवं वेद ॥ १० ॥

(स्वप्नस्थानः) स्वप्ने स्वप्नवन्मध्यमदशायां स्थानं स्थितिरस्य सः (तैजसः) स्वरूपस्थितो सर्वस्य तेजो वर्द्धत इति तेजःसम्बन्धात्तैजसो वाच्य ईश्वरः स (उकारः) मध्यस्थो वाचकः (द्वितीया, मात्रा) वाच्यस्य द्वितीयपाद इव (उभयत्वात्) उभयसम्बन्धात् । मध्यस्थं वस्तु पूर्वोत्तराभ्यां द्वाभ्यामेव सम्बध्यते (वा) यद्वा (उत्कर्षात्) मध्यवृत्तित्वादुत्कृष्ट उकारस्तस्मात्स्वप्नस्थानत्वं च वाच्यधर्ममापद्यते (यः, एवम्) वाच्यवाचकयोस्तादात्म्यसम्बन्धम् (वेद) (ह वै) स एव (ज्ञानसन्ततिम्) ज्ञानस्य सन्तानम् (उत्कर्षति) वर्द्धयति (अस्य) योगिनः (कुले) पुत्रादिषु (अब्रह्मवित्) कश्चिदप्यब्रह्मज्ञानी (न, भवति) तथा सः (समानः, च) आत्मौपम्येन सर्वस्य सुखं दुःखं वा द्रष्टुं शीलः (भवति) लोके प्रसिद्धो भवति ॥

भा०--वाचकस्योमित्यस्य द्वितीया मात्रोकारो वाच्यस्य स्वप्नस्थानत्वं तैजसत्वं चापद्यते । ओमिति वाचक उकारो मकाराकाराभ्यां सम्बद्धः साम्येनोत्कृष्टो भवति । एकेन सम्बन्धापेक्षया द्वाभ्यां सम्बद्धः प्रबल उत्कृष्टो गण्यते । अतएव स्वस्वरूपेऽवस्थितत्वात्तैजसत्वमापद्यते । एवमत्र वाच्यवाचक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योरैक्यं तादात्म्यसम्बन्धेनैव प्रतिपादितं तदाशयं यो ज्ञानी योगाभ्यासेन यथावज्जानाति तस्य ज्ञानं सदा वर्द्धते पुष्टं दृढं च भवति। यस्य गन्धेनाग्र उत्पद्यमानाः पुत्रपौत्रादयोऽपि तस्य कुले ज्ञानिनो वेदज्ञा एव भवन्ति। इयमेव ज्ञानस्य सन्ततिः परम्परा या निरन्तरं पुत्रादिषु प्रवर्त्तते नाविच्छिद्यते। एतन्मन्त्राशयेन स्पष्टं निस्सरति यद्गृहस्था अपि ब्रह्मज्ञानिनो जीवन्मुक्ता विदेहमुक्ताश्च भवन्ति भवितुमर्हन्ति च। तेषामेव मानवधर्मशास्त्रे वेदसंन्यासिकपदेन ग्रहणमर्थात्त एव वेदानुकूलाः संन्यासिन इति। एवं सति शङ्करस्वामिभिर्यदुक्तं गृहाश्रमं त्यक्त्वा विरक्ताः संन्यासिनो मुण्डिन एव ज्ञानिनो भवितुमर्हन्ति नैव तत्सम्यक् कथमपि प्रतिभाति तस्माद्धोगोत्कण्ठातो विरक्त एव ज्ञानी जनो सर्वाश्रमेषु मुक्तो भवितुमर्हति ॥ १० ॥

भाषार्थः—(स्वप्नस्थानः) स्वप्ननाम मध्यदशा में जिस की अवस्थिति ऐसा (तैजसः) अपने स्वरूप में स्थित होने पर सब का तेज वढ़ता है इस कारण तेज के सम्बन्ध से वाच्य ईश्वर का नाम तैजस है। वह (उकारः) मध्यस्थ वाचक की (द्वितीया, मात्रा) द्वितीय मात्रा द्वितीय पाद के तुल्य (उभयत्वात्) दोनों के साथ सम्बन्ध होने से क्योंकि मध्यस्थ वस्तु अपने से पूर्व उत्तर दोनों के साथ सम्बन्ध रखता है (वा) अथवा (उत्कर्षात्) मध्यवृत्तिबीच में रहने से उकार उत्कृष्ट है इसी कारण उस में स्वप्नस्थिति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तैजस होना वाच्य का धर्म आरोपित किया जाता है (यः, एवम्) जो इस प्रकार वाच्यवाचक के तादात्म्य सम्बन्ध को (वेद) जानता है (ह वै) वही पुरुष (ज्ञानसन्ततिम्) ज्ञान की परम्परा को (उत्कर्षति) चलाता वा बढ़ाता है (अस्य) इस योगी के (कुले) पुत्रादि में कोई भी (अब्रह्मवित्) वेदादिशास्त्र का न जाननेवाला अविद्वान् (न, भवति) नहीं होता तथा वह (समानः, च) अपने तुल्य सब का सुख दुःख देखनेवाला (भवति) होता है ॥

भा०—ओम् इस वाचक पद की उकाररूप द्वितीय मात्रा वाच्य के स्वप्नस्थानत्व और तैजसत्व धर्म को प्राप्त होती है। ओम्—इस वाचक पद में जो उकार है वह अकार मकार दोनों से सम्बन्ध रखता और समता से उत्कृष्ट होता है। लोक में भी एक के साथ सम्बन्ध की अपेक्षा दो से सम्बन्ध होना प्रबल वा उत्तम माना जाता है। इसी कारण अपने स्वरूप में अवस्थित होने से वह तैजस बनता है। इस प्रकार इस मन्त्र में वाच्यवाचक का तादात्म्यसम्बन्ध से प्रतिपादन किया है (उसका आत्मा नाम स्वरूप ही तादात्म्य सम्बन्ध से लिया जाता है सो इतरेतराध्यसपूर्वक ध्यान से देखें तो दोनों का एक ही स्वरूप है। इसी कारण "ब्रह्म का ध्यान करो" यहां वाचक ब्रह्म शब्द से वाच्य ब्रह्म की एकता झलकती है) जो ज्ञानी पुरुष इस तादात्म्य सम्बन्ध के आशय को यथावत् जानता उसका ज्ञान सदा बढ़ता और दृढ़ तथा पुष्ट भी होता है। जिस ज्ञान के गन्धसहित आगे उत्पन्न होने-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले पुत्र पौत्रादि भी उस के कुल में ज्ञानी और वेद के जानने वाले होते हैं। यही ज्ञानी की परम्परा है कि जो निरन्तर पुत्रादि शास्त्र पढ़कर विद्वान् होते हैं किन्तु पठनक्रम का विच्छेद नहीं होता। इस मन्त्र के विचारने से स्पष्ट आशय निकलता है कि गृहस्थ लोग भी ब्रह्मज्ञानी तथा जीवन्मुक्त हो सकते हैं। उन्हीको मानवधर्मशास्त्रके षष्ठाध्याय में वेदसंन्यासी माना है अर्थात् वे ही वेदानुकूल संन्यासी हैं जो ऋषि, देव और पितृसम्बन्धी ऋण को ठीक २ चुकाकर ऋण-रूप बन्धन से छूटते हैं अर्थात् मुक्त हुए रहते हैं, वे ही जीवन्मुक्त भी कहाते हैं। इसी कारण उनको वेदसंन्यासी कहा है अर्थात् वेद की आज्ञा कर्मको प्रधान मानने पर है। इस से जो कर्मकाण्ड के निन्दक और केवल ज्ञान बतानेवाले हैं वे वेदविरुद्ध संन्यासी हैं यह तात्पर्य है। ऐसा सिद्धान्त ठीक होने पर श्रीशङ्कर स्वामीजी ने जो कई प्रसङ्गों में गृहाश्रम के त्यागी विरक्त संन्यासी ही ज्ञानी हो सकते हैं ऐसा लिखा है सो उक्त सिद्धान्त से विरुद्ध होने से ठीक नहीं, इस लिये संसारी विषयभोग की उत्कण्ठा से विरक्त ही ज्ञानी पुरुष सब आश्रमों में रह कर मुक्त हो सकता है ॥ १० ॥

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारस्तृतीया मात्रा मितेरपीतेर्वा मिनोति ह वा इदꣳ सर्वमपीतिश्च भवति य एवं वेद ॥११॥

(सुषुप्तस्थानः) सुषुप्तदशायां स्थानं स्थितिरस्य स सर्वथा प्रत्यगात्मन्यवस्थितः (प्राज्ञः) यथा चक्षरादि द्वा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रा मनुष्यस्य विचारशक्तिर्बहिर्निस्सरति सैव सुषुप्तावस्थायां चक्षुरादीनां प्रज्ञायामन्तर्भावात्प्रकृष्टतया ज्ञानस्वरूपेऽवतिष्ठते तथैव प्रलयदशायां परमात्मा स्वरूपावस्थितः प्राज्ञः सुषुप्तस्थानश्च कथ्यते। वाचके यथा—अकारोकारयोरुच्चारणसमाप्तौ द्वितीयप्रयोगे च (मकारः) (तृतीया, मात्रा) (मितेः) मिनोति मानमियत्तां निर्धारयति। आदावन्ते च स्थितेन मध्यस्थानां मानं क्रियते (वा) अथवा (अपीतेः) मकारोच्चारण ओमित्यस्याप्ययःसमाप्तिर्लय इति तथा चान्तशब्दोऽपि लयवाचकः। एवं हेतुद्वयस्य वाच्येऽपि सामान्यम्। सुषुप्तदशायां जाग्रत्स्वप्नयोर्मानं समाप्तिश्च जायते (यः) पुरुषः (एवम्) उक्तप्रकारेण तृतीयदशास्थं वाच्यवाचकरूपं परमात्मानम् (वेद) जानाति (ह, वै) स एव (इदम्,सर्वम्) जगत् (मिनोति) यथार्थतया जानाति (अपीतिः, च, भवति) स्वयं शरीरसमाप्तो मुक्तो भवति।

भा०—वाचके तिस्र एव मात्रा अ, उ, म्—इति। अकारेण—आप्तिरुकारेण उत्कर्षो मकारेण मितिर्मानं चार्थो वाच्ये गृह्यते। ओमिति वाचकेन यादृशो गुणो वाच्य आरोप्यते स एव वाचकावयवेष्वपि वर्णरूपतया प्रतिभातीति वाच्यवाचकयोरैक्यम्। यथा—अकारेण जाग्रद्दशापन्नस्याप्तस्य व्याप्तस्य च सर्वव्यवस्थापकस्य वाच्यस्य वैश्वानरस्य। उकारेणोत्कृष्टस्य स्वप्नस्थानीयस्य मध्यस्थस्योभयसम्बद्धस्यावान्तरप्रलये ऽवस्थितस्य तैजसस्य। मकारेण सर्वस्य प्रमातुः सुषुप्तदशा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पन्नस्य ज्ञानस्वरूपस्य वाच्यस्येश्वरस्य ग्रहणमिति स्पष्टं भवति । एवमत्र वाच्यवाचकयोरैकरूप्यं व्याख्यातं भवति॥११॥

भाषार्थः—(सुषुप्तस्थानः) सुषुप्तदशा में स्थान नाम जिस की स्थिति है वह सर्वथा प्रत्यगात्मा में स्थिति (प्राज्ञः) जैसे नेत्रादि द्वारा मनुष्य की विचारशक्ति बाहर निकलती है वही सुषुप्तिदशा में चक्षु आदि इन्द्रियों की बुद्धि में लीन होने से अच्छे प्रकार अपने ज्ञानस्वरूप में अवस्थित होता है वैसे ही प्रलयदशा में परमेश्वर अपने स्वरूप में अवस्थित प्राज्ञ और सुषुप्तस्थान कहा व माना जाता है। वाचक में जैसे अकार–उकार के उच्चारण की समाप्ति और अन्य का पुनर्वार उच्चारण करने के आरम्भमें (मकारः, तृतीया मात्रा) मकाररूप तीसरी मात्रा [मितेः] मान वा तोल करानेवाला होता है अर्थात् आदि अन्त में रहनेवाले से मध्यस्थों की इयत्ता अवधि वा तोल हो जाती है कि वह इतना लम्बा चौड़ा वा छोटा बड़ा है (वा) अथवा (अपीतेः) मकार अन्तिम वर्ण के उच्चारण में " ओम् " इस शब्द की समाप्ति होती है समाप्ति और लय तथा अन्त शब्द एकार्थ ही हैं। सुषुप्तदशा में जाग्रत् वा स्वप्न का परिणाम और समाप्ति हो जाती है (यः) जो पुरुष (एवम्) इस उक्त प्रकार से तृतीयदशास्थ वाच्यवाचकरूप परमात्मा को (वेद) जानता है (हवै) वही (इदम्, सर्वम्) इस सब जगत् को (मिनोति) यथार्थरूप से जानता है (अपीतिः, च भवति) और स्वयं शरीर छोड़ कर मुक्त होता है ॥

भा०—वाचक पद 'ओम्' में तीन मात्रा हैं अ, उ, म्। इन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अकार से आप्ति–व्याप्ति। उकार से उत्कर्ष और मकार से मिति मान–माप अर्थ वाच्य में लिया गया है। ओम् वाचक शब्द से जैसा गुण वाच्य में आरोपित किया जाता है, वही वाचक के अकारादि अवयवों में भी वर्णरूप से प्रतीत होता है जैसे मिति में "म्" आदि उत्कर्ष में "उ" तथा आप्ति में "अ" इन तीनों शब्दों के आदि के अक्षरों से ओम् बन सकता है यही वाच्य वाचक की बड़ी एकता है। अकार से सब में व्याप्त सब को नियमपूर्वक अपने २ कर्म में चलानेवाले उकार से मध्यस्थ होने उत्कृष्ट अवान्तर प्रलय की दशा में रहनेवाले और मकार से सब के प्रमाण कर्त्ता ज्ञानस्वरूप वाच्य ईश्वर का ग्रहण है। इस प्रकार इन मन्त्रों से उपासनाप्रसङ्ग में वाच्यवाचक की एकरूपता का व्याख्यान सिद्ध होता है ॥ ११ ॥

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद य एवं वेद ॥ १२ ॥

अ०–अथ निर्गुणस्य व्याख्यानम्–अत्रापि वाच्यवाचकयोरैकरूप्यस्यैव प्राधान्यम्। (प्रपञ्चोपशमः) प्रपञ्चो मात्राकल्पनया भेदेन व्याख्यानं तस्योपशमः समाप्तिरत्र वाचके सः तथा कार्यदशापन्नस्य जगत उपशमः शान्तिरत्र स महाप्रलयावस्थो वाच्यः (अमात्रः) अकारादिभिः पादकल्पनाभिश्च वर्जितो निर्विकल्पसमाधिग्राह्य अतएव (अव्यवहार्यः) अती-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्द्रियत्वाद् वाचकपक्षे स्फोटात्मा शब्दः (चतुर्थः) तुरीयप्रकारकः (अद्वैतः) नास्ति तादृशस्तस्मादधिको वा कश्चिदपि सः (शिवः) कल्याणस्वरूपः । तादृशस्योपासनं सर्वोपरि कल्याणकरम् (एवम्) उक्तप्रकारेण (ओङ्कारः) वाचकः शब्दः (आत्मैव) वाच्यान्तर्गत एवास्ति (य एवं वेद) य उक्तप्रकारेण वाच्यवाचकयोरैकरूप्यं समाधिनिर्धूतमलेन चेतसा निर्बीजसमाधौ निश्चितं साक्षादनुभवति (आत्मना, आत्मानम्, संविशति) स पुरुष उपात्तदेहपातानन्तरं स्वेन रूपेण परमात्मानं प्राप्नोति ॥

भा०--अस्मिन् मन्त्रेऽन्तिमवाक्यस्य ग्रन्थसमाप्तिसूचनार्थं द्विर्वचनम् । यथा सर्वस्य वस्तुनो जगति दशाद्वयमेवास्ति । प्रवृत्तिर्निवृत्तिश्च । प्रवृत्तिदशायां सर्ववस्तुभिः प्राणिभिश्च यथासम्भवं यथाधिकारं च कर्माणि क्रियन्ते कार्यन्ते च निवृत्तिदशायां च सर्वाणि वस्तूनि प्राणिनश्च स्वस्वरूपे शान्तरूपेण तिष्ठन्ति । तथैव परमेश्वरोऽपि प्रवृत्तिदशायां जगत उत्पत्तिस्थितिलयान् करोति । निवृत्तौ च शान्तस्तिष्ठति । प्रवृत्तिदशायामुत्तममध्यमनिकृष्टतया भेदत्रयम् । निवृत्तौ निर्विकल्पसमाधौ च नास्ति भेदः । वस्तुतः परमात्मनि भेदो नास्ति तथापि व्याख्यातारो गायका विवदमानाश्चाभिमन्यन्ते स एकस्तस्य प्रकारः । तथा शरीरेण दानं परित्राणं शरणागतादीनां परिचरणं गुर्वादीनामीश्वरप्राप्त्यर्थं कुर्वन्ति स द्वितीयः प्रकारः । केचित्केवलेन मनसैवाहर्निशं चिन्तयन्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स तृतीयः। केचिच्च निर्बीजसमाधिद्वारा तदाकारतामापद्यन्ते स चतुर्थः प्रकारः। एवमस्माकं विचारेऽवस्थिता भेदा ब्रह्मण्यारोपिता भवन्ति तच्चैतत्सर्वं सुगमतया बोधार्थमेवमेवमुपासना कार्येति॥

भाषार्थ—अब निर्गुण का व्याख्यान करते हैं। यहां भी वाच्य वाचक की एकरूपता की प्रधानता दिखायी है (प्रपञ्चोपशमः) मात्रा वा पादकल्पना द्वारा स्पष्ट भेद का व्याख्यान प्रपंच है उसकी समाप्ति जहां वाचक में हो तथा कार्यदशा को प्राप्त व्यक्त जगत् की शान्ति जहां हो, वह महाप्रलय दशामें अवस्थित वाच्य (अमात्रः) अकारादि मात्रा वा पाद की कल्पना से रहित निर्विकल्प समाधि से ग्राह्य अतएव (अव्यवहार्यः) निर्गुण परमात्मा वा वाचक पक्ष में स्फोटरूप शब्द ये दोनों व्यवहार के योग्य नहीं क्योंकि अतीन्द्रिय हैं (चतुर्थः) चौथे प्रकार का (अद्वैतः) उसके तुल्य वा उस से अधिक कोई नहीं तथा (शिवः) कल्याणस्वरूप है ऐसे परमेश्वर की उपासना सर्वोपरि कल्याणकारिणी है (एवम्) इस उक्त प्रकार से (ओङ्कारः) वाचक ओम् शब्द (आत्मैव) वाच्य के अन्तर्गत ही है। (यः, एवं वेद। यः, एवं वेद) जो उक्त प्रकार से समाधिद्वारा शुद्ध हुई चित्त से निर्बीज समाधि में वाच्य-वाचक की एकता को निश्चित साक्षात् जानता है वह उपासक पुरुष ग्रहण किये शरीर को छोड़ने के पश्चात् (आत्मना, आत्मानम्, संविशति) अपने स्वरूप से परमात्मा को प्राप्त होता है।

भा०—इस मन्त्र में अन्तिम वाक्य को ग्रन्थ की समाप्ति जताने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये द्विर्वचन किया गया है । जैसे जगत् में सब वस्तुओं की दो ही दशा हैं एक प्रवृत्ति और द्वितीय निवृत्ति । प्रवृत्तिदशा में सब वस्तु वा प्राणी यथा सम्भव अपनी २ योग्यता वा शक्ति के अनुसार अपने २ कर्मों को करते कराते हैं और निवृत्तिदशा में सब वस्तु और प्राणी अपने स्वरूप में शान्त होकर ठहर जाते हैं । वैसे ही परमेश्वर भी प्रवृत्ति में जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लयों को करता है और निवृत्ति में शान्त होकर ठहर जाता है । प्रवृत्तिदशा के उत्तम मध्यम निकृष्टरूप से तीन भेद हैं निवृत्ति में निर्विकल्प समाधि दशा होने पर कोई भेद नहीं । वास्तव में परमात्मा में कोई भेद नहीं तो भी व्याख्याता उपदेशक गाने और शास्त्रार्थ करने वाले जैसे वाणीगम्य परमेश्वर को मानते हैं वह एक प्रकार है । शरीर से दान, शरणागतादि की रक्षा तथा ईश्वर को प्राप्त होने के लिये गुरु आदि महात्माओं की सेवा करते हैं वह द्वितीय प्रकार है तथा कोई मन से ही प्रतिक्षण चिन्तन करते हैं यह तीसरा प्रकार है । कोई निर्बीज समाधि द्वारा तदाकार बुद्धि करते हैं यह चौथा प्रकार है । इस प्रकार हम लोगों के विचारमें अवस्थित भेद ब्रह्म में आरोपित किये जाते हैं सो यह सब सुगमता से बोध होने के लिये है कि ऐसे ही उपासना करनी चाहिये ॥ १२ ॥

इति भीमसेनशर्मकृतं माण्डूक्योपनिषद्भाष्यं समाप्तम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ यजुर्वेदीयतैत्तिरीयोप-निषदःप्रस्तावः।

इयं तैत्तिरीयोपनिषत्तैत्तिरीयशाखान्तर्गता। तित्तिरिरिति ऋषिविशेषस्य नामधेयम्। तेन प्रोक्ता तैत्तिरीया-उपनिषत्। तित्तिरिवरतन्तुखण्डिकोखाच्छण्निति पाणिनिसूत्रेण प्रोक्तार्थे छण् प्रत्ययः। तित्तिरिरिति पक्षिविशेषस्यापि नामास्ति तत्र पक्षिणि प्रवचनरूपस्याध्यापनस्योपदेशस्य चासम्भवादृषिणा तन्नामकेन प्रोक्तमिति सम्भवितार्थ एव ग्राह्यः। न हि पक्षिणो ग्रन्थान्निर्मातुं शक्ताः। साहचर्य्यादपि तित्तिरिशब्दो मनुष्य-व्यक्तिविशेषस्यैव वाचकः प्रोक्ताधिकारे भवितुमर्हति। यतोऽन्यान्यपि तत्रस्थनामानि मनुष्यव्यक्तिविशेषस्य वाचकानि सन्ति येभ्यः प्रोक्ते प्रत्यया विधीयन्ते। तस्मात्तित्तिरिरपि ऋषिविशेषस्य नाम तेन प्रोक्तोपनिषत्तैत्तिरीया।

अस्यामुपनिषदि कठादिवदितिहासपुरस्सरं व्याख्यानं नास्ति तथापि तृतीयस्यां भृगुवल्ल्यां कथमपि सम्भवति। तत्र भृगुः प्रष्टा तज्जनको वरुणश्चोपदेष्टा। अस्यामुपनिषदि तिस्रो वल्ल्यः सन्ति। प्रथमा वल्ली शिक्षाध्यायरूपा तत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा कृत्वा मनुष्येण कल्याणभाजा भवितव्यं तत्सर्वं साधनं निरूपितम्। तेन ब्रह्मज्ञाने मुक्तावपि कर्मण एव प्राधान्यं न तु नैष्कर्म्येण कश्चित्सिद्धिमाप्नोति। ज्ञानमपि कर्मार्थमेवास्ति. विचारेण शान्त्या सफला चेष्टा कार्या। स्वाभाविकवृत्यापि जना इत्थमेव कुर्वन्ति। अतएवोक्तम्–यन्मनसा मनुते तद्वाचा वदति तत्कर्मणा करोति। स्वस्वविचारानुकूलमेव पुरुषः सर्वाणि कर्माणि करोति। यदर्थं मानसज्ञानं वास्ति तत्करणाय कर्णेन्द्रियाण्यपि नैव चलन्ति तेन ज्ञानं कर्मार्थमित्यार्थातम्। सर्वं सुखं दुःखं च मनुष्यः कर्मणैवाप्नोति। लौकिकदृष्टान्तेनाप्येवमेवावगम्यते। अन्नस्य ज्ञाने न नैव क्षुन्निवर्त्ततेऽपि तु भक्षणेन भक्षणं च कर्म। अनुद्योगेन कस्तैलं तिलेभ्यः संप्रयच्छति। कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय इत्यादि प्रमाणशतैर्निश्चीयते कर्मणा विना ब्र कोऽपि किमपि सुखमाप्तुमर्हति। विचित्रशिल्पविद्यान्वितस्य जगतः सर्वविद्यानामाकरस्य च वेदस्य निर्माणरूपकर्मणैव परमेश्वरस्य परमैश्वर्यं महत्त्वं च निश्चीयतेऽतएव जन्माद्यस्य यतः। शास्त्रयोनित्वात्। इति ब्रह्मसूत्राभ्यां तस्य सर्वज्ञत्वं सर्वशक्तिमत्त्वं च व्यवस्थाप्यते। कर्मकरणादेव ज्ञायते यस्येदृशं महत्कर्मास्ति तद्ब्रह्मेति यच्च कर्म यदर्थं नियुज्यते तस्य करणं बन्धः। पूर्त्तिश्च मुक्तिः। अतएवोक्तम्––ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्। अनेन ऋणानामपाकरणं बन्धो यश्च ऋणानि नापाकरोति तस्य बन्ध एव नास्ति कुतो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुक्तिः सम्भवति नास्ति। यथा सति ग्रहणे त्यागस्य सार्थक्यम्। यत्र ग्रहणमेव नास्ति तत्र कस्य त्यागः स्यादिति। एवं मुक्तिरपि यान्यवश्यं करणीयानि कर्माणि तेषां पूर्त्तिरेव। तेन पितृवत्कर्मणः प्राधान्यमस्ति। मनुष्येणैहिकपारमार्थिकसुखसिद्धये कर्मफलभोगोत्कण्ठाराहित्येनायं मदीयो निष्कारणो धर्म इति मत्वा श्रौतस्मार्त्तानि कार्यकर्माण्याचरितव्यानि। फलभोगोत्कण्ठाराहित्येन क्रियमाणं कर्म विशिष्टं फलं प्रयच्छति॥

तथा च मीमांसाशास्त्रस्य पूर्वोत्तरप्रकारेण भेदद्वयम्। पूर्वमीमांसा जैमिनीयसूत्रं यत्र वैदिकसिद्धान्तद्वारा कर्मकाण्डस्य सर्वथा प्राधान्यं प्रदर्शितम्। उत्तरमीमांसा च वेदान्तदर्शनम्। यत्र कर्मणः फलभोक्तृत्वदातृत्वरूपाभ्यां जीवब्रह्मणोः कर्माङ्गत्वेन स्वरूपनिरूपणम्। अतएव क्रियाविधिशेषत्वं वेदान्तानामिति कथनं सम्भवति। अतः कर्मकाण्डस्याङ्गित्वं ज्ञानकाण्डस्याङ्गत्वं च सिद्धम् कर्माङ्गेषु च कर्त्तुश्चेतनत्वात्प्राधान्यम्। अतो यत्र कुत्र जीवब्रह्मणोर्ज्ञानस्य प्राधान्यं प्रदर्शितम्। तत्र कर्मण एकैकाङ्गापेक्षया प्राधान्यं न तु कर्मकाण्डापेक्षया। अतः शङ्करस्वामिभिरुक्तं कर्मकाण्डापेक्षया ज्ञानकाण्डस्य प्राधान्यं न सम्भवतीति प्रस्तावस्याशयः।

द्वितीयतृतीयवल्ल्योश्च ब्रह्मज्ञानस्य प्रधानतया वर्णनमस्ति। तत्सर्वं यथावसरं व्याख्यास्यते॥

भावार्थः—अब यजुर्वेदसम्बन्धी तैत्तिरीय उपनिषद् के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाष्य का प्रस्ताव किया जाता है यह तैत्तिरीय उपनिषद् तैत्तिरीय शाखा के अन्तर्गत है। तित्तिरि किसी निज (ख़ास) ऋषि का नाम है उस ऋषि द्वारा कही वा पुस्तकाकार बनायी तैत्तिरीय उपनिषद् कहाती है (अ० ४। ३। १०२) पाणिनिसूत्र से छण् प्रत्यय होकर तैत्तिरीय शब्द बनता है यद्यपि तित्तिरि—(तीतर) पक्षी का भी नाम है सो पक्षी में पुस्तक का बनाना पढ़ाना वा उपदेश करना सम्भव नहीं इसलिये तित्तिरिनामक ऋषि द्वारा कही यह सम्भव ही अर्थ लेना चाहिये। क्योंकि पक्षी किसी शास्त्रसम्बन्धी ग्रन्थ को नहीं बना सकते तथा प्रोक्ताधिकार में अन्य भी जो प्रातिपादिक अनुवाद्य पढ़े हैं जिनके नामों से पुस्तकों के नाम बनते हैं वे सब मनुष्य विशेष व्यक्तियों के नाम हैं इस प्रकार के साहचर्य से भी तित्तिरि शब्द मनुष्यव्यक्ति विशेष का वाचक है उस तित्तिर ऋषि की कही उपनिषद् तैत्तिरीय कहाती है।

इस उपनिषद् में कठादि उपनिषदों के तुल्य इतिहासपूर्वक व्याख्यान नहीं है। तो भी तीसरी भृगुवल्ली में किसी प्रकार इतिहास आ गया है। क्योंकि उस तृतीय वल्ली में भृगु ऋषि पूछनेवाले और उनके पिता वरुण उपदेष्टा हैं इस उपनिषद् में तीन वल्ली हैं। इनमें प्रथम वल्ली शिक्षाध्यायरूप है। तथा द्वितीय तृतीय वल्ली में ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया गया है। शिक्षाध्याय का आशय है कि मनुष्य को जिस प्रकार आचरण कर कल्याणभागी होना चाहिये, उस प्रकार के सब साधन कहे हैं। उससे ब्रह्मज्ञानरूप मुक्ति में भी कर्म की ही प्रधानता आती है किन्तु निक-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्मेपन से कोई सिद्धि को प्राप्त नहीं हो सकता। और ज्ञान भी कर्म के लिये ही है कि अमुक काम इस लिये इस प्रकार करना चाहिये जिससे संसार में परमार्थ का सुख प्राप्त हो। भाव यह कि विचार पूर्वक और शान्तिसे सफल कर्म करना चाहिये। ऐसा मानने से ज्ञान भी एक कर्म का उपयोगी सहायक ठहरता है। स्वाभाविक वृत्तिसे भी मनुष्य ऐसा ही करते हैं अर्थात् जब तक कर्म करने का मानस विचार पक्का ठीक नहीं हो लेता तब तक किसी काम के करने को हाथ तक नहीं उठता इसलिये कर्म के साथ ज्ञान उपयोगी कारण है और इसी विचार से उपनिषदों में लिखा है कि "जैसा मन से विचारता वैसा वाणी से कहता तथा जो वाणी से कहता है वही कर्म से करता है" अर्थात् अपने २ विचारानुकूल मनुष्य सब काम करता है। जिस कर्म के लिये मानस ने विचार नहीं किया उसको करने के लिये कर्मेन्द्रिय हाथ पग वाणी आदि नहीं चलते। इससे कर्म के लिये ज्ञान का होना सिद्ध हो गया। मनुष्य सब प्रकार के सुख वा दुःख को कर्म से ही पाता है तथा संसारी दृष्टान्त से भी यही प्रतीत होता है कि जैसे अन्न का ज्ञान हो जाने मात्र से क्षुधा की निवृत्ति नहीं होती किन्तु भोजन से होती है और भोजन करना एक कर्म है। इसीलिये नीति में लिखा है कि "उद्योग किये विना तिलों से तेल कोई नहीं ले सकता" तथा भगवद्गीता में भी लिखा है कि "जनकादि बड़े २ प्रतिष्ठित ज्ञानी लोग कर्मों के प्रताप से ही सिद्धि को प्राप्त हुए।" इत्यादि सैकड़ों प्रमाण के अनुसार विना कर्म के किये कोई भी सुख नहीं पा सकता। आश्चर्यरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिल्पविद्या से युक्त जगत् और सब विद्याओं की खान वेद के निर्माणरूप कर्म से ही परमेश्वर की परमेश्वरता और महत्त्व जाना जाता है। इसी लिये "जिससे इस जगत् के उत्पत्ति स्थिति प्रलय होते हैं इसी कारण वह सर्वशक्तिमान् है। तथा अनेक विद्यायुक्त वेद का उत्पन्न करनेवाला होने से सर्वज्ञ है" इन दोनों वेदान्तसूत्रों से उस ब्रह्म का सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होना ठहराते हैं। यहां परमेश्वर के जगदुत्पत्ति आदि वा वेद की रचनारूप बड़े २ अनन्यकर्तृक कर्मों से उसका सर्वोपरि महत्त्व सिद्ध किया है। और कर्म करने से ही जानते हैं कि जिसके ऐसे बड़े २ काम हैं वही ब्रह्म है।

जो कर्म जिसके लिये नियत किया है उसको यावत् पूरा न करे तब तक बन्धन है और पूरा कर लेना मुक्ति ही है। इसी लिये कहा है कि "तीन ऋण चुका कर मोक्ष में मन लगावे।" इससे ऋणों का चुकाना बन्धन है और जो ऋणों को नहीं चुकाता उसका बन्ध ही नहीं तो मुक्ति कैसे हो? क्योंकि बन्ध होने पर ही मुक्ति हो सकती है बिना बन्ध के छूटना किससे कहा जावे! जैसे जिस वस्तु को ग्रहण नहीं किया उसका त्याग नहीं कर सकते जहां ग्रहण ही नहीं वहाँ किसका त्याग माना जावे?। इसी प्रकार जो अवश्य करने योग्य कर्म हैं उनकी पूर्त्ति कर लेना ही मुक्ति है।

इस लिये पिताके तुल्य कर्म की प्रधानता और पुत्रके तुल्य कर्म की अपेक्षा ज्ञान निकृष्ट है। मनुष्य को संसार के परमार्थसम्बन्धी सुख की सिद्धि के लिये कर्मफल भोगकी तृष्णा को छोड़ कर और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मेरा निष्कारण धर्म है। ऐसा मान कर करने योग्य श्रौत स्मार्त्त कर्मों का आचरण करना चाहिये। क्योंकि फलभोग की उत्कण्ठा को छोड़कर किया कर्म विशेष फल देता है।

मीमांसा शास्त्र के पूर्वोत्तर प्रकार से दो भेद हैं। पूर्व मीमांसा जैमिनिसूत्र है जिसमें वेद के सिद्धान्त द्वारा कर्मकाण्ड की सर्वथा प्रधानता दिखायी गयी है। तथा उत्तरमीमांसा वेदान्तदर्शन है, जिसमें कर्म का फल भोगनेरूप शक्तिवाला जीव और कर्मफल देने की शक्तिवाला ब्रह्म इन दोनों को कर्माङ्ग मान कर स्वरूप-निरूपण किया है। इसी से वेदान्त (ज्ञानकाण्ड) क्रियाविधि का उपयोगी एक साधन है यह कहना ठीक ठहरं जाता है। अर्थात् आधुनिक वेदान्ती इस पर हठ करते हैं कि वेदान्तक्रिया का उपयोगी नहीं, पर यह उनकी भूल है। क्योंकि तप स्वाध्याय श्रवण मनन यज्ञ इत्यादि कर्मों का सेवन उपनिषदों में प्रायः ज्ञानी के लिये लिखा है। सुखभोग जो सबका मूल है वह भी एक क्रिया है। तथा अब तक कोई वेदान्ती नहीं निकला जिसने सब कर्म छोड़ दिये हों। इस से कर्मकाण्ड का अङ्गी होना और ज्ञानकाण्ड का अङ्ग होना सिद्ध है। कर्म के अङ्गों में कर्म का करनेवाला भी एक अङ्ग है क्योंकि कर्त्ता के विना कोई कर्म हो ही नहीं सकता। चेतन होने से अन्य अवयवों की अपेक्षा उस कर्त्ता की प्रधानता है। इस लिये जहाँ कहीं जीव वा ब्रह्म के ज्ञान की विशेष प्रशंसा है वहाँ कर्म के एक एक अङ्ग की अपेक्षा से प्रधानता है किन्तु कर्मकाण्डमात्र की अपेक्षा से प्रधानता नहीं है। इस लिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शङ्कर स्वामीजा ने जो कर्मकाण्ड की अपेक्षा ज्ञानकाण्ड को सर्वोपरि अधिक प्रधान ठहराया है सो ठीक नहीं, यह इस प्रस्ताव का आशय है।

इस पुस्तक की द्वितीय तृतीय वल्लियों में ब्रह्मज्ञान का प्रधानता के साथ वर्णन है। उस का यथा अवसर व्याख्यान किया जायगा।

इति यजुर्वेदीयतैत्तिरीयोपनिषदः प्रस्तावः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

ओ३म्
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ यजुर्वेदीयतैत्तिरीयोप-निषद्भाष्यम् ।

ॐ शन्नो मित्रः शं वरुणः । शन्नो भवत्वर्यमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नो विष्णुरुरुक्रमः नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ १ ॥ सत्यं वदिष्यामि पञ्च च ॥ इति प्रथमोऽनुवाकः ।

हे (ओम्) एतत्पदवाच्यपरमात्मन् (नः, मित्रः, शम्) अस्मभ्यं प्राणः शं सुखदोऽस्तु (शम्, वरुणः) अस्मभ्यमपानः शमस्तु (नः, अर्यमा) अस्मभ्यं चक्षुः (शम्, भवतु) (नः) अस्मभ्यम् (इन्द्रः) बलवन्तौ बाहू (शम्) सुखहेतू स्याताम् (बृहस्पतिः) विद्यान्विता वाग् बुद्धिश्च बृहत्या विद्यायाः पतिः स्वामी वा शं सुखदोऽस्तु (नः) अस्मभ्यम् (उरुक्रमः) चलनक्रियासमर्थः (विष्णुः) सर्वस्मिन् जगति व्याप्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरः पादौ च (शम्) सुखदावास्ताम् । (वायो) सर्वकर्म-फलप्रद सर्वाधार वा (ते) तुभ्यम् (नमः) (ब्रह्मणे, नमः) सर्वस्माद् वृद्धाय वृहते भवते नमोऽस्माकं नमनमस्तु (त्वम्, एव, प्रत्यक्षम्, ब्रह्म, असि) एवंभूतस्य जगतो वेदस्य च निर्माणेन त्वं प्रत्यक्षमिव ब्रह्मैव सर्वेभ्यो महादेवोऽसि न हि कश्चिदल्प एवं महत्कार्यं कर्त्तुं शक्तः । अतः (त्वाम्,एव, प्रत्यक्षम्, ब्रह्म, वदिष्यमि) त्वां प्रत्यक्षमिव ब्रह्मैव वदिष्यामि तच्चैतत् (ऋतम्) शास्त्रानुकूलमस्ति तस्मात्तद्वदिष्यामि (सत्यम्) मनोवःक्षायकर्मस्वेकरूपम् (वदिष्यामि) अन्तःकरणाद्विरुद्धं कदापि किमपि नैव वक्ष्यामि इत्थं सर्वशुभकर्मारम्भे ब्रह्मप्रार्थनापुरस्सरं सत्यकथनस्य प्रतिज्ञा कार्या । (तत्) ब्रह्मणो वृहत्त्वकथनमृतकथनं सत्यकथनं च (माम्) श्रोतार वक्त्रपेक्षया (अवतु) रक्षतु (तत्) कथनम् (वक्तारम्) उपदेष्टारमाचार्यम् (अवतु) (अवतु, माम्, अवतु, वक्तारम्) इति पुनर्वचनं विशिष्टप्रार्थनाज्ञापनार्थमावयोः शिष्याचार्ययोरवश्यं रक्षणं करोत्वित्यर्थः (ओम्, शान्तिः, शान्तिः शान्तिः) आवयोरध्यापकाध्येत्रोः शिष्याचार्ययोः स्त्रीपुरुषयोः पितापुत्रयोरित्यादिसम्बन्धसम्बद्धयोर्धर्मार्थकाममोक्षसुखभोगेषु बाधकानामाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकानां यद्वा मानसवाचिककायिकानां दुःखानां विघ्नानां वा शान्तिः स्यादिति त्रिःपाठस्य प्रयोजनम् । अस्मिन् प्रथमानुवाके सत्यं वदिष्यामीत्येका कण्डिका तदग्रे पंच च वाक्यान्यवशिष्टानीति विज्ञापितम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—महाभाष्यकृता पतञ्जलिमुनिनोक्तम्—शमित्येवादीन् शब्दान् पठन्ति। अर्थादध्यापनोपदेशरूपेण शिक्षाकरणारम्भात्पूर्वमेव शन्नोमित्र इत्यादि पाठः कार्यस्तस्य चार्थ उक्त एव ॥ १ ॥

भाषार्थः—हे (ओ३म्) निराकार परमेश्वर (नः मित्रः, शम्) हमारे लिये प्राण वायु सुख देनेवाला हो (शम्, वरुणः) हमारे लिये अपान वायु सुखदाता हो (शम्, नः, भवतु, अर्यमा) चक्षु इन्द्रिय हम को सुख देवे (शम्, नः इन्द्रः) बलवान् बाहु हम को सुख दें (बृहस्पतिः) विद्यासागर पुरुष हमें सुखी करें वा वाणी और बुद्धि हमको सुख देवें (नः) हमारे लिये (उरुक्रमः) चलने में समर्थ सर्वत्र पड़नेवाले पग वा व्याप्त ईश्वर (शम्) सुख देवे। हे वायो! सब कर्मों के फलदाता वा सब के आधार ईश्वर! (ते) तुम (ब्रह्मणे) सब से बड़े श्रेष्ठ वा व्याप्त वा शक्तिमान् के लिये (नमः) हमारा नमस्कार प्राप्त हो (त्वम्, एव, प्रत्यक्षम्, ब्रह्म असि) ऐसे चित्र विचित्र वा महान् जगत् की तथा वेद की रचना करने से आप प्रत्यक्ष के समान सब से बड़े ही हो क्योंकि कोई छोटा प्राणी ऐसे बड़े कार्य जगत् को नहीं बना सकता इस कारण (त्वाम्, एव, प्रत्यक्षम्, ब्रह्म, वदिष्यामि) आप को प्रत्यक्ष के तुल्य अवश्य बड़ा कहूँगा सो यह (ऋतम्) सत्य शास्त्रों के अनुकूल है इस से वैसा (वदिष्यामि) कहूँगा। (सत्यम्) मन वाणी और कर्मों में अविरुद्ध (वदिष्यामि) कहूँगा। अन्तःकरण से विरुद्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कभी कुछ नहीं कहूँगा। इस प्रकार सब शुभ कर्मोंके आरम्भमें ब्रह्म से प्रार्थना करने के साथ सत्य कहने वा करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये। (तत्) उस ब्रह्म को सर्वोपरि बड़ा कहना शास्त्रानुकूल कहना वा सत्य कहना (माम्) वक्ता की अपेक्षा मुझ श्रोता की (अवतु) रक्षा करे (तत्) वह कहना (वक्तारम्) उपदेशक आचार्य की (अवतु) रक्षा करे (अवतु माम्, अवतु, वक्तारम्) मेरी और मेरे अध्यापक की रक्षा करे यह फिर से कहना विशेष प्रार्थना जताने के लिये है अर्थात् सत्याचरण रूप कर्म हम गुरु शिष्यों की अवश्य रक्षा करे (ओ३म्, शान्तिः शान्तिः शान्तिः) पढ़ने पढ़ानेवाले गुरु शिष्यों, स्त्री पुरुषों वा पिता पुत्रों के सम्बन्धवाले हम दोनों के धर्म अर्थ काम और मोक्ष सम्बन्धी सुख भोगों में विघ्नकारी आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक अथवा मानस वाचिक और शारीरिक तीन प्रकार के दुःख वा विघ्नों की शान्ति हो यह तीन बार कहने का प्रयोजन है। (सत्यम्, वदिष्यामि, पञ्च, च) इस कथन से इस अनुवाक में (सत्यं वदिष्यामि) तक एक कण्डिका उसके आगे पाँच वाक्य और हैं यह जताया है ॥

भा०—महाभाष्यकार पतञ्जलि ऋषि ने लिखा है कि "पठन-पाठन के प्रारम्भ में शम् आदि शब्दों को पढ़ते हैं" अर्थात् पढ़ाने वा उपदेशरूप शिक्षा करने के प्रारम्भ से पूर्व ही (शन्नो मित्रः०) इत्यादि मन्त्रों का पाठ करना चाहिये उसका अर्थ पूर्वमें लिख दिया गया है ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओम्–शिक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शिक्षाध्यायः॥ १॥ शिक्षाः पञ्च॥ द्वितीयोऽनुवाकः॥ २॥

इदानीं पुनराचार्य आह—(ओम् , शिक्षाम् , व्याख्यास्यामः) परमात्मस्मरणपुरस्सरमित्थं ज्ञातव्यं वक्तव्यं कर्त्तव्यं वेतिप्रकारां शिक्षां वयं व्याख्यास्यामः सा त्वया श्राव्या (वर्णः) अकारादिरेवंप्रकारक एवंस्वरूपो वा (स्वरः) उदात्तादिर्वर्णधर्म एवंविधः (मात्राः) ह्रस्वप्रभृतयः (बलम्) आभ्यन्तरो बाह्यश्च प्रयत्नः (साम) शान्त्या मध्यमवृत्योच्चारणम् (सन्तानः) वर्णानां पूर्वापरीभावसम्बन्धः संहिता (इति) एवंप्रकारेण (शिक्षाध्यायः) अस्मिन् पुस्तके (उक्तः) कथितोऽस्ति शिक्षा यस्मिन्नस्तीति स शिक्षाध्यायः। अनेन वक्ष्यमाणस्यापि सर्वस्य ग्रहणम्॥ इमानि पूर्वाणि च पञ्च वाक्यानि मिलित्वा द्वितीयोऽनुवाकः सम्पन्नः।

भा०—शिक्षा द्विविधा-शब्दशिक्षा-अर्थशिक्षा च। पूर्वस्यां वर्णस्वरमात्राप्रयत्नानां मध्यमादिवृत्तेः संहितावसानयोश्च याथार्थ्येन स्वरूपबोधः शब्दशिक्षा। गुणकर्मस्वभावानां विशदीकरणमर्थशिक्षा। पूर्वापेक्षया द्वितीया प्रधाना ततस्तस्या विशिष्टं व्याख्यानमग्रे वक्ष्यते॥ २॥

भाषार्थः—अब फिर गुरु बोले कि (ओम्–शिक्षां, व्याख्यास्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मः) परमात्मा का स्मरण करने पूर्वक ऐसा जानना कहना वा करना चाहिये इत्यादि प्रकार की शिक्षा हम कहेंगे सो तुम सुनो (वर्णः) अकारादि अक्षर ऐसे २ स्वरूपवाले हैं (स्वरः) उदात्तादि स्वर ऐसे (मात्राः) ह्रस्वादि (बलम्) आभ्यन्तर और बाह्य प्रयत्न (साम) शान्तिपूर्वक मध्यमवृत्ति से वर्णों का उच्चारण (सन्तानः) संहिता-सन्धि परस्पर वर्णों का मेल (इति) इस प्रकार से (शिक्षाध्यायः) जिसमें शिक्षा की गयी ऐसा शिक्षाध्याय (उक्तः) इस पुस्तक में कहा गया है। पूर्वानुवाक के पाँच और पाँच वाक्य इसके मिलकर द्वितीयानुवाक हुआ ॥

भा०—शिक्षा दो प्रकार की है एक शब्दशिक्षा द्वितीय अर्थ-शिक्षा कहाती है। पहिली शब्दशिक्षा में वर्ण, स्वर, मात्रा, प्रयत्न, मध्यम, द्रुत, बिलम्बितवृत्ति और संहिता वा अवसानादि के यथार्थ स्वरूप का बोध होना शब्दशिक्षा कहाती है। इसके अन्तर्गत शिक्षा नामक वेदाङ्ग और व्याकरण भी आ जाता है इसको वाचकसम्बन्धिनी शिक्षा भी कह सकते हैं। इसके लिये पृथक् ग्रन्थ बने हैं इस कारण यहाँ विशेष व्याख्यान नहीं किया गया और गुण कर्म स्वभावों का शुद्ध करना अर्थशिक्षा कहाती है। इसी लिये यह द्वितीय शिक्षा प्रधान है इस कारण भी इस का विशेष व्याख्यान इस पुस्तक में आगे कहेंगे ॥ २ ॥

सह नौ यशः सह नौ ब्रह्मवर्चसम्। अथातः संहिताया उपनिषदं व्याख्यास्यामः ॥ पञ्चस्वधिकरणेषु।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यमधिप्रजमध्यात्मम्। ता महासंहिता इत्याचक्षते ॥ ३ ॥

अथ शिष्यः प्रार्थयति (नौ) आवयोः शिष्याचार्ययोः (यशः) विद्याप्रतापेनोद्भूता कीर्तिः (सह) सार्द्धमेवास्तु (नौ) आवयोः (ब्रह्मवर्चसम्) शुभगुणकर्मस्वभावानुष्ठानेनोद्भूतं तेजः (सह) सहैवास्तु गुरुणा सह ममापि यशस्तेजसी वर्द्धेताम्। (अथ) अनन्तरम् (अतः) ब्रह्मवर्चसवृद्धिहेतोः (संहितायाः) सन्निकृष्टस्य मिलितस्य संयुक्तस्य वा वस्तुनः (उपनिषदम्) पूर्वापरीभावसम्बद्धं यथोपयोगमवयवज्ञानम् (व्याख्यास्यामः) (पञ्चस्वधिकरणेषु) विभक्तं ज्ञानं व्याख्यास्यामः। तानि च पञ्चाधिकरणानि (अधिलोकम्० (इत्यादीनि (ताः, महासंहिता इत्याचक्षते) अधिलोकादीनामितरेतरमाकर्षणादि सम्बन्ध एव जगत उत्पत्तिस्थितिहेतुरित्यतः कारणान्महत्यश्च ताः संहिता महान्तः संयोगाः ॥

भा०—इतरेतरसम्बद्धानां विभागेनावयवसम्बन्धज्ञानमेव मुख्यं ज्ञानं तेनैव संसारपरमार्थसुखसिद्धिः। तस्मात्परस्परं सम्बन्धज्ञानं कार्यम् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—अब शिष्य प्रार्थना करता है कि (नौ) हम शिष्य और गुरु का (यशः) विद्या के प्रताप से प्रकट हुई कीर्त्ति (सह) साथ ही प्रचरित रहे (नौ) और हम दोनों का (ब्रह्मवर्चसम्) शुभगुण कर्म और स्वभावों के सेवन से प्रकट हुआ ब्रह्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेज वा ब्रह्मधर्म (सह) साथ ही हो अर्थात् गुरु के साथ मेरा भी यश और ब्रह्मतेज बढ़े। (अथ) इसके पश्चात् (अतः) ब्रह्मतेज बढ़ने के लिये (संहिताया: समीपस्थ वा मिले या संयुक्त हुए वस्तु के (उपनिषदम्) पूर्वापर से सम्बद्ध उपयोग के अनुकूल अवयव-सम्बन्धी ज्ञान का (व्याख्यास्याम) व्याख्यान करेंगे वह अवयव ज्ञान (पञ्चसु, अधिकरणेषु) पाँच भागों में बँटा हुआ है। वे पांच अधिकरण (अधिलोकम्०) अधिलोक, अधिज्यौतिष अधि-विद्य, अधिप्रज और अध्यात्म नामक हैं इन की विशेष व्याख्या आगे होगी (ताः, महासंहिताः, इत्याचक्षते) इन अधिलोकादि का परस्पर आकर्षणादि सम्बन्ध ही जगत् की उत्पत्ति स्थिति का हेतु है इन अधिलोकादि का यथावत् ज्ञान होना ही परमज्ञान वा विद्या का परमोत्तम विषय है। इस कारण वे बड़े २ संयोग कहाते हैं।

भा०—परस्पर मिले हुए पदार्थों का विभाग के साथ अवयव-सम्बन्ध का ज्ञान ही मुख्य ज्ञान है और उसी ज्ञान से संसारके पर-मार्थ सुख की सिद्धि है और यही ज्ञान शिक्षा का पूर्वरूप है। इस लिये परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान करना चाहिये।

अथाधिलोकम्—पृथिवी पूर्वरूपं द्यौरुत्तररूपम्। आ-काशः सन्धिः ॥ १ ॥ वायुः सन्धानम्। इत्यधिलोकम्। अथाधिज्यौतिषम्। अग्निः पूर्वरूपम्। आदित्य उत्तररूप-म्। आपः सन्धिः। वैद्युतः सन्धानम्। इत्यधिज्यौतिषम्। अथाधिविद्यम्। आचार्यः पूर्वरूपम् ॥ २ ॥ अन्तेवास्युत्तर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूपम्। विद्या सन्धिः। प्रवचनꣳ सन्धानम्। इत्यधि-विद्यम्। अथाधिप्रजम्। माता पूर्वरूपम्। पितोत्तररूपम्। प्रजा सन्धिः। प्रजनन ꣳ सन्धानम्। इत्यधिप्रजम् ॥३॥

(अथ) सर्वत्रोद्दिष्टक्रमविवक्षार्थोऽथशब्दः (अधिलोकम्) लोकं पृथिव्यादिकमधिकृत्य प्रवृत्तं ज्ञानमधिलोकम्। तत्र लोकसम्बन्धिकार्यसाधनाङ्गेषु (पृथिवी) (पूर्वरूपम्) मुख्यं साधनमाधारभूतम् (द्यौः) प्रकाशात्मकः सूर्यादिलोकः (उत्तररूपम्) गौणं साधनं परभागवत् (आकाशः, सन्धि) सन्धीयेते संनिकृष्येते संबध्येते वा पूर्वोत्तररूपौ यस्मिन् सोऽवकाशः (वायुः, सन्धानम्) सन्धीयते-सूक्ष्मस्थूलजलयोर्गमनागमनरूपः सम्बन्धो भवत्यनेन स वायुः परस्परानुकूल्येन कार्यसाधने साधकतमः (इति) एवम् (अधिलोकम) लोकसम्बन्धिज्ञानं कार्यम् (अथ, अधिज्यौतिषम्) (अग्निः) (पूर्वरूपम्) पूर्वं पार्थिवाग्निनोदकं सूक्ष्मीभूत्वा सूर्यलोकाभिमुखं याति (आदित्यः, उत्तररूपम्) सूर्यः पुनः पृथिव्यां वर्षयति (आपः, सन्धिः) अप्सु सन्धीयेते अग्निसूर्यौ (वैद्युतः, सन्धानम्) विद्युत्सम्बद्धोऽग्निस्तयोः सम्बन्धकारकः (इति, अधिज्यौतिषम्) (अथ, अधिविद्यम्) विद्यायां प्रधानत्वात् (आचार्यः) (पूर्वरूपम्) (अन्तेवासी) शिष्यः (उत्तररूपम्) (विद्या, सन्धिः) विद्यायां द्वयोः सम्बन्ध उपयोगो वास्ति (प्रवचनम्) अध्यापनमुपदेशो वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सन्धानम्) द्वयोः सम्बन्धे करणम् (इति, अधिविद्यम्) (अथ, अधिप्रजम्) (माता) सन्तानोत्पत्तौ मूलं मुख्यं वा (पूर्वरूपम्) साधनम् (पिता, उत्तररूपम्) द्वितीयं साधनम् (प्रजा) सन्तानेषु (सन्धिः) द्वयोः सम्बन्धः (प्रजननम्) सन्तानोत्पत्तिः (सन्धानम्) द्वयोः सम्बन्धे साधकतमा (इति, अधिप्रजम्) प्रजाविषयकं दर्शनम् ॥

भा०—अस्मिन्मन्त्रे गूढरूपेण महती विद्योक्तास्ति। तस्या विस्तरेण वर्णनं त्विह कर्त्तुमशक्यमपित्वतिसमासत इदमुच्यते। यथा मातुः शरीरादेव नवमासेषु गर्भः सम्पद्यते वर्द्धते च तस्मात्सन्तानरूपफलसाधने माता मुख्या पिता च तदपेक्षया द्वितीयं साधनम्। फलरूपे च सन्ताने द्वयोरंशयोः प्रीतेश्च पूर्णः सम्बन्धस्तस्मिन्नपत्ये प्रीतिद्वयं संयुज्यते सन्तानोत्पत्तिश्च तत्र कारणम्। तथैव पृथिव्यादिषु संयोज्यम्। वेदेत्युक्तम्—द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै० इत्यादि-स्त्री पृथिवीस्थानिन्यधोभागस्थः पुरुषः सूर्यस्थान्युपरिस्थः। उपरिष्टात्सूर्यसम्बन्धेन पृथिव्यां जलं पतति तेनौषधिवनस्पतिरूपाणि संसारस्थितिहेतूनि फलान्युत्पद्यन्ते। तथा विद्यायाः परम्परयोपयोगे गुरुरेव मुख्यं साधनम्। शिष्यश्च द्वितीयः। विद्या प्रचाररूपे फले द्वयोः सम्बन्धोऽध्यापनरूपं सर्वोत्तमं कर्म च सम्बन्धस्य साधकतमम्। एवं यद्यपि सर्वत्रैककार्यसिद्धावङ्गरूपाणि बहूनि साधनानि भवन्ति तथापि सर्वत्रावयवपूर्वकव्याख्याने चतुःसङ्ख्यायाः प्राधान्याच्चत्वार्येव प्रधानाङ्गानि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्तव्यानि सर्वविद्याबीजे वैदिकसम्प्रदायेऽपि सर्गारम्भादेव चत्वारो वेदा वर्णा आश्रमा धर्मार्थकाममोक्षाश्चेत्यादयः चत्वार एव भागाः कृताः । आयुर्वेदेऽपि रोगो रोगहेतुरारोग्यं भैषज्यमिति चतुर्विधविज्ञानस्यैव प्राधान्यम् । योगेऽपि हेयं हेयहेतुर्मोक्षो मोक्षोपायश्चेति प्रधानैश्चतुर्भेदैरेव व्याख्यानमस्ति । एवं सर्वत्रैव शास्त्रेषु प्रायेण सर्वस्य विषयस्य त्रैविध्यं चातुर्विध्यं वा प्रकल्प्य व्याख्यानमारब्धं दृश्यते तच्चैतद्वेदानां चतुष्पाद्वेदानुकूलमेव व्याख्यानमस्ति । यथा सामान्यस्य चत्वारो भागास्तथैव तद्गतसर्वावान्तरभेदेषु चतुरवयवानामेव प्राधान्यम् । अत्राप्यधिलोकादींश्चतुर्धा विभज्य (अधिज्यौतिषमित्यस्याधिलोकेऽन्तर्भावः सम्भवति पुनः पञ्चसङ्ख्यया व्याख्यानस्य विशिष्टं प्रयोजनमालोच्य पञ्चत्वमुक्तम्) पुनरेकैकस्मिन् पूर्वरूपोत्तररूपसन्धिसन्धानशब्दैश्चतुर्भिरेव व्याख्यानं प्रदर्शितम् । एवं पूर्वरूपादीनामपि चातुर्विध्यं व्याख्यानान्तरे कर्त्तुं शक्यम् । यथा वैकस्य कृत्यस्य धर्मादेरपि चातुर्विध्यम् । यथा चतुष्पात्सकलो धर्मः । एवं सत्यादेरपि पादस्य चातुर्विध्यं बोध्यम् । इदं च सर्वं चतुःसङ्ख्याकैर्ऋग्वेदादिभिर्यथासङ्ख्यं योज्यम् । एवं सर्वविद्यानां गहनोऽयं विषय इति ध्येयम् । तेषां पूर्वरूपादीनां गौणप्राधानादिरूपेण यथावत् स्वरूपज्ञानमेव शिक्षाप्राप्तेः पूर्वरूपम् ॥३॥

भाषार्थः—(अथ) सर्वत्र उद्देश के क्रमानुसार व्याख्यान है यह जताने के लिये अथ शब्द है (अधिलोकम्) पृथिव्यादि लोकों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को आगे कर जो प्रवृत्त हुआ व्याख्यान उसको अधिलोक कहते हैं। वहाँ लोक से सिद्ध होनेवाले कार्य साधन के जो अवयव हैं। उन में (पृथिवी) पृथिवी (पूर्वरूपम्) कार्य सिद्धि में आधारस्वरूप होने से मुख्यसाधन और (द्यौः) प्रकाशस्वरूप सूर्यादि लोक (उत्तररूपम्) परभाग के तुल्य गौण साधन हैं (आकाशः सन्धिः) पूर्व और उत्तर का जिस में सम्बन्ध वा मेल हो वह आकाश सन्धि (वायुः, सन्धानम्) सूक्ष्म जलों का आना जाना रूप सम्बन्ध जिस से हो वह वायु परस्पर की अनुकूलता से कार्यसिद्धि में मुख्य हेतु है (इति) इस प्रकार (अधिलोकम्) लोकसम्बन्धी ज्ञान करना चाहिये। इसी को भूगोल विद्या नाम से कह सकते हैं (अथ अधिज्यौतिषम्) अब ज्योतिष् सम्बन्धी विचार यह है कि (अग्निः पूर्वरूपम्) पहिले पृथिवी सम्बन्धी अग्नि से जल सूक्ष्म होकर सूर्य लोक के सन्मुख जाता है (आदित्यः, उत्तररूपम्) सूर्य फिर पृथिवी में वर्षा करता है (आपः, सन्धिः) जल में दोनों की शक्ति का मेल वा सम्बन्ध होता है (वैद्युतः,सन्धानम्) बिजुली सम्बन्धी तेज उन दोनों अग्नि सूर्य का सम्बन्ध करानेवाला है (इति अधिज्यौतिषम्) इत्यादि प्रकार ज्योतियों सम्बन्धी व्याख्यान है। इसी को खगोलविद्या वा ज्योतिषविद्या भी कहते हैं। क्योंकि सूर्य चन्द्रमा वा नक्षत्रादि प्रकाशक वस्तुओं का नाम ज्योतिष् है। उन का यथार्थज्ञान करना ज्योतिषविद्या कहाती है (अथाधिविद्यम्) विद्याप्रचार के उपयोगी ये हैं-(आचार्यः) विद्या में प्रधान होने से गुरु (पूर्वरूपम्) पहिला कारणस्वरूप (अन्तेवासी) शिष्य—

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यार्थी (उत्तररूपम्) द्वितीय साधन (विद्या, सन्धिः) विद्या में दोनों का सम्बन्ध वा उपयोग है तथा (प्रवचनम्) पढ़ाना वा उपदेश करना (सन्धानम्) दोनों के सम्बन्धी होने में साधन (इति, अधिविद्यम्) यह विद्यासम्बन्धी उपयोग साधनों का व्याख्यान है (अथ, अधिप्रजम्) पुत्रादि सन्तानोत्पत्ति विषयक ज्ञान यह है कि (माता) सन्तानों की उत्पत्ति में (पूर्वरूपम्) मूल वा मुख्य कारण माता (पिता, उत्तररूपम्) पिता द्वितीय साधन वा ऊपरला भाग (प्रजा) पुत्रादि में (सन्धिः) दोनों का सम्बन्ध (प्रजननम्) सन्तानों की उत्पत्ति होना माता पिता दोनों के अंश वा प्रीति के एकत्र होने में हेतु है (इति, अधिप्रजम्) इत्यादि प्रकार प्रजा विषयक ज्ञान मनुष्य को करना चाहिये।

भा०—इस मन्त्र में गूढ़रूप से महती विद्या का उपदेश किया है। उस का विस्तारपूर्वक वर्णन करना तो यहाँ दुस्तर है किन्तु अतिसंक्षेप से कहा जाता है कि जैसे माता के शरीर से नव महीने में गर्भ बनता और बढ़ता है उस सन्तानरूप फल की सिद्धि में मुख्य कर माता और माता की अपेक्षा गौण द्वितीय साधन पिता है। तथा फलरूप सन्तान में माता पिता दोनों की प्रीति एकत्र हो जाती है। सन्तानों का उत्पन्न होना इस का मुख्य कारण है वैसे ही पृथिव्यादि में सम्बन्ध लगाना चाहिये। वेद में भी लिखा है कि "पुरुष की ओर से कथन—मैं सूर्य तू पृथिवी वे हम दोनों परस्पर विवाह करें" पृथिवी स्थानिनी स्त्री नीचे और सूर्य स्थानी पुरुष ऊपर होने से प्रजा होती है। जैसे सूर्य के सम्बन्ध से ऊपर से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी में वीर्यरूप जल की वर्षा होकर ओषधि बनस्पति आदि संसार की स्थिति रहने में हेतुरूप फल उत्पन्न होते हैं। जैसे परम्परा से उपयोग लेने में गुरु ही विद्या का मुख्य साधन है और शिष्य द्वितीय साधन है विद्या का प्रचार होनेरूप फल में दोनों का सम्बन्ध है। पढ़ानारूप सर्वोत्तम कर्म दोनों के सम्बन्ध होने में बड़ा हेतु है। इसी प्रकार यद्यपि सर्वत्र एक कार्य की सिद्धि में अवयवरूप से अनेक साधन होते हैं तथापि सर्वत्र विभाग पूर्वक व्याख्यान करने में प्रायः चार संख्या के प्रधान होने से मुख्य कर चार ही अवयव मानने चाहिये क्योंकि सब विद्याओं के मूलरूप वैदिक सम्प्रदाय में भी सृष्टि के आरम्भ से ही चार वेद उनके व्याख्यान का विषय चार वर्ण चार आश्रम चार धर्म अर्थ काम मोक्ष इत्यादि चार २ भाग ही प्रत्येक विषय के किये गये हैं। आयुर्वेद चिकित्साशास्त्र में भी १-रोग २-निदान। ३-आरोग्य। ४-रोगनिवृत्ति का उपाय ये चार ही बातें प्रधान हैं। योगशास्त्र में भी १-दुःख का हेतु संसार त्याज्य। २-जन्म मरण रूप हेय संसार दुःख का हेतु अविद्यादि क्लेश। ३-दुःख से छूटना मोक्ष। ४-और दुःख से छूट कर मुक्त होने का उपाय इन चार ही प्रकारों से व्याख्यान किया है। इस प्रकार सभी शास्त्रों में प्रायः सभी विषय की तीन वा चार प्रकारों में कल्पना करके व्याख्यान का आरम्भ दीखता है। सो यह वेदों के चार होने से वेदाशय के अनकूल ही व्याख्यान है। जैसे किसी सामान्यके चार भाग होते हैं वैसे ही उसके साथ सम्बन्ध रखनवाले अवान्तर भेदों में चार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवयवों की कल्पना ही प्रधान है। इस प्रकरण में भी विद्या सम्बन्धी एक विषय को अधिलोकादि चार भागों में विभक्त करके फिर एक २ में पूर्वरूप उत्तररूप सन्धि और सन्धान चार ही शब्दों से व्याख्यान दिखाया है। इसी प्रकार एक २ पूर्वरूपादि के भी चार भाग व्याख्यानान्तर में कर सकते हैं। अथवा जैसे एक कर्त्तव्य के धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चार भाग हैं फिर एक धर्मादि के भी चार २ भाग हैं। जैसे सत्य, तप, यज्ञ, दान, ये धर्म के चार भाग प्रधान हैं। इसी प्रकार सत्यादि एक २ पाद के भी चार २ भागों द्वारा व्याख्यान हो सकता है और यह सब ऋग्वेदादि चार के साथ यथासंख्य लगाया जाना चाहिये। इस प्रकार सब विद्याओं का यह गम्भीर वा गुप्त आशय जानना चाहिये। जिन पूर्वरूपादि में गौण प्रधानादि रूप से यथावत् स्वरूप का ज्ञान होना ही शिक्षा-प्राप्ति का पूर्वरूप है॥

अथाध्यात्मम्। अधरा हनुः पूर्वरूपम्। उत्तरा हनुरुत्तररूपम्। वाक्सन्धिः। जिह्वा सन्धानम् इत्यध्यात्मम्। इतीमा महासंहिताः। य एवमेता महासंहिता व्याख्याता वेद। सन्धीयते प्रजया पशुभिः। ब्रह्मवर्चसेनान्नाद्येन सुवर्गेण लोकेन ॥ ४ ॥ सन्धिराचार्यः पूर्वरूपमित्यधिप्रजं लोकेन॥ इति तृतीयोऽनुवाकः॥

(अथ) (अध्यात्मम्) आत्मनः शरीरस्य मध्येऽध्यय-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाध्यापनरूपस्य वाग्व्यापारस्योत्पत्तिस्थानं वक्ष्यमाणप्रकारेण बोध्यम् (अधरा, हनुः) मुखस्य द्वयोर्भागयोरधोभागस्था हनुर्वर्णानामुच्चारणे (पूर्वरूपम्) मुख्यं साधनम् (उत्तरा) उपरिस्था (हनुः) (उत्तररूपम्) गौणं साधनम् (वाक्, सन्धिः) वाच उच्चारणे हनुद्वयं सन्धीयते (जिह्वा, सन्धानम्) जिह्वया च हनुद्वयं सन्धीयते सम्बध्यते (इति) एवं वर्णानामुच्चारणे (अध्यात्मम्) शरीरमध्ये विचारः कार्यः (इति) एवम् (इमाः) अधिलोकाद्याः (महासꣳहिताः) महान्तः सम्बन्धाः कार्यसाधकाः सन्ति। (यः) पुरुषः (एवम्, एताः, महासꣳहिताः, व्याख्याताः)) वेद) जानाति सः (प्रजया) पुत्रादिना (पशुभिः) सुखहेतुभिर्गवादिभिः (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेजसा (अन्नाद्येन) अत्तुं भोक्तुं योग्येनान्नेन (सुवर्गेण, लोकेन) सुखविशेषाधिकरणेन स्थानेन च (सन्धीयते) संयुक्तः सम्बद्धो भवति। १—सन्धिः २-आचार्यः पूर्वरूपम् ३-इत्यधिप्रजम्। ४-लोकेन। एवमस्मिन् तृतीयानुवाकस्थ खण्डानामन्त्यपदानि खण्डपूर्तिसूचनाय सूचितानि॥

भा०—अध्यात्मप्रसङ्गे स्वस्वमुखावयवसम्बंधेन वर्णा उच्चार्यन्ते। वर्णानां वाक्याकृतिमापन्नानामुच्चारणे कर्मणि वक्ता श्रोता च द्वावेवोपयोगिनौ तत्रापि वक्तुरेव प्राधान्यम्। यः पुरुषोऽधिलोकादीन् सम्यग् ज्ञात्वा तेभ्यो यथायथमुपयोगं गृह्णाति यथाचार्यशिष्ययोः मातापित्रोर्वा सम्बन्धज-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यं कृत्यं पूरयति स यावज्जीवं षड्विधं जीवलोकसुखमवाप्य प्रयाणानन्तरमत्यन्तं परमार्थसुखभाग्भवितुमर्हति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(अथ) अब (अध्यात्मम्) आत्मा नाम शरीर के भीतर पढ़ने-पढ़ानेरूप व्यवहार की उत्पत्ति का ज्ञान आगे कही रीति के अनुसार जानना चाहिये (अधरा, हनुः) मुख में दो भाग हैं एक नासिका की ओर ऊपर और द्वितीय नीचे ठोढ़ी की ओर इन दोनों भागों के मेल से अन्न का चवाना वा वर्णों का उच्चारण करना आदि बन सकता है। इनमें नीचे का भाग (पूर्वरूपम्) ऊपर का भाग नीचे की अपेक्षा गौण साधन है। (वाक्, सन्धिः) वाणी के उच्चारण में पूर्वोत्तर दोनों भाग का सन्धि—मेल होता है (जिह्वा, सन्धानम्) मुख के नीचे ऊपर के दोनों भाग जिह्वा से मिलते हैं इस कारण जिह्वा उनके मेल में हेतु है (इति) इस प्रकार वर्णों के उच्चारण में (अध्यात्मम्) शरीर के बीच विचार करना चाहिये (इति) इस उक्त रीति से (इमाः) ये अधिलोकादि (महासर्ठ०हिताः) बड़े २ कार्य साधक सम्बन्ध हैं (यः) जो पुरुष (एवम्, एताः, महासंहिताः, व्याख्याताः) इन व्याख्यान किये हुए बड़े २ सम्बन्धों को (वेद) जानता वा निरन्तर उन का सेवन करता है वह (प्रजया) पुत्रादि (पशुभिः) सुख के हेतु गौ आदि (ब्रह्मवर्चसेन) ब्रह्मतेज (अन्नाद्येन) खाने योग्य अन्न और (सुवर्गेण, लोकेन) सुख विशेष के आधार स्थान के साथ (सन्धीयते) संयुक्त वा सम्बद्ध होता है अर्थात् उसको पुत्रादि प्राप्त होते हैं ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—अध्यात्म प्रसंग में मुख के अपने २ अवयव मिलने से वर्णों का उच्चारण होता है। वाक्यस्वरूप को प्राप्त हुए वर्णों की उच्चारण क्रिया में वक्ता श्रोता दोनों ही उपयोगी हैं। उसमें भी वक्ता को ही प्रधानता है जो पुरुष लोकविषयक सम्बन्ध आदि को ठीक जानकर उनसे यथा योग्य उपयोग लेता है अर्थात् जैसे आचार्य शिष्य और माता-पिता के सम्बन्ध से होनेवाले कार्य को पूरा करता है वह जन्म भर छः प्रकार के संसारी सुख (धन की प्राप्ति, नीरोग रहना, स्त्रीप्रिया, प्रियवादिनी, आज्ञाकारीपुत्र, प्रयोजनसाधिका विद्या) को भोग के मरने पश्चात् अत्यन्त परमार्थ सुख का भागी होता है॥ ३॥

यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपः। छन्दोभ्योऽध्यमृतात्स-म्बभूव। स मेन्द्रो मेधया स्पृणोतु। अमृतस्य देवधारणो भूयासम्। शरीरं मे विचर्षणम्। जिह्वा मे मधुमत्तमा। कर्णाभ्यां भूरि विश्रुवम्। ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधया पिहितः। श्रुतं मे गोपाय। आवहन्ती वितन्वाना॥ १॥ कुर्वाणाऽ चीरमात्मनः। वासार्ठ०सि मम गावश्च अन्नपाने च सर्वदा।

शिष्येण मनसि यादृशी कामना रक्ष्या यादृशी च पर-मात्मनः प्रार्थना कार्या तदुच्यते-(यः, छन्दसाम्) आह्ला-दयुक्तानामानन्दवतां मध्ये। चन्देरादेश्च छ इत्युणादिसूत्रेण छन्दःशब्दस्य चदि आह्लादने धातोरसुनि प्रत्यये सिद्धिः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋषभः) अतिश्रेष्ठः (विश्वरूपः) सर्वरूपवद्वस्तुषु तत्तत्स्वरूपेणैवावस्थितः (छन्दोभ्यः) ऋग्वेदादिभ्यो वेदेभ्यः (अमृतात्) मोक्षाच्च (अधि) उपरि तयोरधिष्ठातृत्वेन (सम्बभूव) सम्भवति य एवंभूतः प्रसिद्धः (सः) (इन्द्रः) अन्नादिदानेन सर्वस्य चराचरस्य रक्षको व्यवस्थापकः (मा) माम् (मेधया) धारणावत्या मत्या (स्पृणोतु) पालयतु। अहम् (अमृतस्य) वेदादिशास्त्रज्ञानस्य विद्यायाः (देवधारणः) देवा विद्वांस इव धारयिता (भूयासम्) इत्याशासे (मे) मम (शरीरम्) (विचर्षणम्) मानुषम्भूयात्। न तु तिर्यग्योनौ जायतेत्याशयः (मे) मम (जिह्वा) (मधुमत्तमा) अतिमधुरभाषिणी स्यात्। अहं कटुभाषी न स्यामिति प्रार्थये। अहम् (कर्णाभ्याम्) श्रोत्राभ्याम् (भूरि) बहु (विश्रुवम्) शास्त्राशयस्य सदुपदेशस्य च सदैव श्रोता भवेयमित्यर्थः। त्वम् (ब्रह्मणः) वेदस्य (कोशः) अधिष्ठानम् (असि) सर्वे वेदास्त्वय्यर्पिता अतएव (मेधया, पिहितः) आच्छादितस्त्वं सर्वोपरि मेधाव्यसि (मे) मम (श्रुतम्) अधीतं शास्त्रम् (गोपाय) रक्षय। शास्त्रस्य विस्मरणं न स्यात्। मम कीर्त्तिं सुखं च (आवहन्ती) सर्वतः प्रापयन्ती (वितन्वाना) शोभां विस्तारयन्ती पुनः किं कुर्वती लक्ष्मीः (आत्मनः) स्वस्यावयवरूपां सामग्रीम् (अचीरम्) अचिरं क्षिप्रं (कुर्वाणा) निर्वर्त्तयन्ती किम्भूता सा सामग्री (वासांसि) बहुमूल्यानि दर्शनीयानि वस्त्राणि (गावः) गोहस्त्यश्वादयः (च) (सर्वदा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मय, अन्नपाने च) सर्वोत्तमे स्याताम् । इत्यादयो लक्ष्या एवावयवाः मत्समीपेऽस्युरिति प्रार्थना कार्या ॥

भा०—विद्यार्थिना मेधादिसर्वोत्तमवस्तूनां प्रार्थना कार्या तेषामेव प्राप्तये यथाशक्ति पूर्णोद्योगश्च कार्यः । मेधादिवर्द्धकानि कर्माण्यनुष्ठेयानि मेधादिषु विघ्नकारकाणि च सदा त्याज्यानि । अयमेवोद्योगः सदानुष्ठेयस्तदा शिक्षितः स्यादिति सम्भवति । उक्तविधवाक्यानां सदा जपो मनसि मुहुर्मुहुर्निवेशनं च कार्यम् । अभ्यासेन तद्गुणानां पात्रं स्यात् ॥

भाषार्थः—शिष्य को मन में जैसे कामना रखनी और परमेश्वर से जिस प्रकार की प्रार्थना करनी चाहिये सो कहते हैं (यः) जो (छन्दसाम्) आनन्दयुक्त पुरुषों के बीच (ऋषभः) सर्वोपरि आनन्दमय अतिश्रेष्ठ (विश्वरूपः) सब रूपवान् वस्तुओं में उन २ के रूप से अवस्थित (छन्दोभ्यः) गायत्र्यादि छन्दयुक्त ऋग्वेदादि वेद और (अमृतात्) मोक्ष से ऊपर है अर्थात् उन दोनों का अधिष्ठाता होना (सम्बभूव) सम्भव है । जो इस प्रकार से प्रसिद्ध है (सः) वह (इन्द्रः) अन्नादि के दान से सब चराचर जगत् की रक्षा वा व्यवस्था करनेवाला परमेश्वर (माम्) मुझको (मेधया) धारण करने अर्थात् स्मरण रखनेवाली बुद्धि से (स्पृणोतु) रक्षा करे । मैं (अमृतस्य) वेदादि शास्त्रसम्बन्धी ज्ञान वा विद्या का (देवधारणः) विद्वानों के तुल्य धारण करनेवाला (भूयासम्) होऊँ ऐसी आशा रखता हूँ (मे) मेरा (शरीरम्) शरीर (विचर्षणम्) मनुष्यसम्बन्धी होवे अर्थात् मैं तिर्यग्योनि में उत्पन्न न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होऊँ (मे) मेरी (जिह्वा) मीज (मधुमत्तमा) अतिमीठे वचन बोलनेवाली हो अर्थात् मैं कटुभाषी न होऊँ ऐसी प्रार्थना करता हूँ। मैं (कर्णाभ्याम्) कानों से (भूरि) बहुत (विश्रुवम्) शास्त्र के आशय और श्रेष्ठ उपदेशों को सदा सुननेवाला होऊँ। हे परमेश्वर! आप (ब्रह्मणः) वेद के (कोशः) कोशरूप (असि) हैं सब वेद आप में रहता है इसी से (मेधया, पिहितः) श्रेष्ठबुद्धि से आच्छादित हुए आप सर्वोपरि बुद्धिमान् हैं। (मे) मेरे (श्रुतम्) पढ़े हुए शास्त्र की (गोपाय) रक्षा करो जिससे भूल न जाऊं। मेरी कीर्ति और सुख को (आवहन्ती) सब ओर से प्राप्त कराती और (वितन्वाना) शोभा को विस्तृत करती हुई फिर क्या करती हुई लक्ष्मी (आत्मनः) अपनी अवयवरूप सामग्री को (अचीरम्) शीघ्र ही (कुर्वाणा) सिद्ध करती हुई मुझ को प्राप्त होवे। वह लक्ष्मी कैसी है (वासांसि) बहु मूल्य देखने योग्य वस्त्र (गावः) गौ हाथी घोड़े आदि (च) और (मम) मेरे (सर्वदा) सब काल में (अन्नपाने, च) अन्न-जल भी भोगने योग्य सर्वोत्तम हों इत्यादि लक्ष्मी के अंश मेरे समीप हों ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये।

भा०—विद्यार्थियों को मेधा आदि सर्वोत्तम वस्तुओं की प्रार्थना परमेश्वर से करनी चाहिये और उन्हीं बुद्धि आदि की प्राप्ति के लिये यथाशक्ति पूर्ण उद्योग भी करना चाहिये अर्थात् बुद्धि आदि को बढ़ानेवाले कर्मों का अनुष्ठान करना और बुद्धि आदि की प्राप्ति में विघ्नकारक कर्मों का सदा त्याग करना चाहिये यही उद्योग सदा कर्त्तव्य है। तब विद्यार्थी शिक्षित हो सकता है।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त प्रकार के वाक्यों के आशय का सदा वार २ मन में स्थापनरूप जप करना चाहिये। ऐसा अभ्यास करने से उन उन गुणों का आधार–पात्र वह पुरुष बन सकता है।

ततो मे श्रियमावह। लोमशां पशुभिः सह स्वाहा। आ मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। वि मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। प्र मा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। दमा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। शमा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा ॥२॥ यशोजनेऽसानि स्वाहा। श्रेयान् वस्यसोऽसानि स्वाहा। तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा। तस्मिन् सहस्रशाखे। निभगाऽहं त्वयि मृजे स्वाहा। यथाऽऽपः प्रवता यन्ति। यथा मासा अहर्जरम्। एवं मां ब्रह्मचारिणः। धातरायन्तु सर्वतः स्वाहा। प्रतिवेशोऽसि प्रमा भाहि प्रमापद्यस्व ॥ ३ ॥ वितन्वाना शमा यन्तु ब्रह्मचारिणः स्वाहा। धातरायन्तु सर्वतः स्वाहैकं च ॥ इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥

शिक्षां प्राप्तुकामेन वक्ष्यमाणप्रकारेणापि परमात्मनः प्रार्थना होमश्च कार्यः। हे परमात्मन्! (धातः) सर्वस्य चराचरस्य जगतो धारक भवान् (ततः) पूर्वोक्तवस्तुदानानन्तरम् (लोमशाम्) अजाविरूपाम् (श्रियम्, मे, आवह) मह्यं प्रापय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पशुभिः) अन्यैश्च पशुभिः (सह) श्रियं प्रापय (मा) माम् (दमाः) दमनशीलाः (ब्रह्मचारिणः) (यन्तु) (शमाः) शमेन शान्त्या युक्ताश्च (ब्रह्मचारिणः) (यन्तु) प्राप्नुवन्तु (मा) माम्। (ब्रह्मचारिणः) (आयन्तु) आगच्छन्तु (मा) माम् (ब्रह्मचारिणः) (वि, यन्तु) विशेषतया प्राप्नुवन्तु (मा) माम् (ब्रह्मचारिणः) (प्र, यन्तु) प्रकर्षेण जानन्तु। जितेन्द्रिया ब्रह्मचारिणो मां जितेन्द्रियं कुर्वन्तु शान्तिशीलाश्च शान्तिं प्रयच्छन्तु। अहम् (यशोजने) यशोन्विते कीर्त्तिमति जनसमूहे परिगणितः (असानि) भूयासम्। हे भगवन् (वस्यसः) अत्यन्तधनिनो भवतः सम्बन्धादहम् (श्रेयान्) प्रशस्यतरः (असानि) भवानि। हे (भग) भगवन्! (तम्) पूर्वोक्तं विद्याया आकरम् (त्वा) त्वाम् अहम् (प्रविशानि) ध्यानेन भवत्स्वरूपे प्रविष्टो भवानि। हे (भग) भगवन! (सः) त्वम् (मा) माम् (प्रविश) मदन्तःकरणे प्रविष्ट इव प्रसिद्धो भव (सहस्रशाखे) जगतः सहस्रं शाखा यस्मिंस्त्वयि सन्ति (तस्मिन्) (त्वयि) भवति (भग) भगवन्! (अहम्) (नि, मृजे) शुद्धं भवामि शोधयामि वाऽऽत्मानम्। लोके (यथा) (आपः) जलानि (प्रवता) निम्नप्रदेशेन सार्द्धम् (यन्ति) गच्छन्ति (यथा) च (मासाः) आग्रहायणादयः (अहर्जरम्) अहोभिः परिवर्त्तमानं लोकान् जरयन्तं यद्वाऽहान्यस्मिन् जीर्यन्ति समाप्तानि भवन्ति तं संवत्सरं यन्ति प्राप्नुवन्ति। हे (धातः!) सर्वस्य जगतो धारक परमेश्वर! (एवम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथैव (सर्वतः) सर्वदेशेभ्यः (माम्) (ब्रह्मचारिणः) (आयन्तु) हे परमात्मन् ! त्वम् (प्रतिवेशः) विश्रामस्यारामस्यानन्दस्य च स्थानम् (असि) अर्थात्सर्वदुःखनाशकोऽसि । अतः (मा) मां प्रति (प्र, भाहि) स्वस्वरूपं प्रकाशय (मा) माम् (प्रपद्यस्व) प्राप्तो भव ॥ वितन्वाना इत्यवधि ब्रह्मचारिणः स्वाहा सर्वतः स्वाहेति च तृतीयः खण्डः । ततोऽग्रेऽर्वाशिष्टमेकं च वाक्यम् ॥

भा०—ब्रह्मचर्याश्रमस्थ एव प्रधानो ब्राह्मणस्तस्य च शमदमादिसाधनेन मेधावगमः प्रधानं प्रथमं वा कृत्यं तथैव कुर्वाणः कल्याणभाग्भवति । मेधायुर्धनानि कामयमानेन पुरुषेण सर्वैः स्वहान्तमन्त्रैरग्नौ प्रत्यहं होमः कार्यः । तेषु च परमात्मनो यादृशी प्रार्थना कृताऽस्ति सा मुहुर्मुहुरभ्यसनीया । मेधादीनां प्राप्तये च मनुष्येण पुरुषार्थो यथाशक्ति कार्यः । मनुष्येणादौ ब्रह्मचर्याश्रमे धीर्विद्या संस्कृता बुद्धिः सम्पादनीया । तदनन्तरं लक्ष्मीप्राप्तये प्रयत्नः कार्यः सत्यां च लक्ष्मीप्राप्तौ गृहाश्रमो दारपरिग्रहः कर्त्तव्य इति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—शिक्षा को प्राप्त होने की कामना रखनेवाले पुरुष को उचित है कि आगे कही रीति से परमेश्वर की प्रार्थना और होम किया करे कि—हे परमेश्वर ! (धातः) सब चराचर जगत् को धारण करनेवाले ! आप (ततः) पूर्वोक्त वस्तु मुझको देने पश्चात् (लेमशाम्) रोंगटोंवाले भेड़ बकरी गौ आदि पशु सम्बन्धिनी (श्रियम्) शोभा वा लक्ष्मी को (मे, आवह) मुझको

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दीजिये तथा (पशुभिः, सह) अन्य घोड़ा हाथी आदि पशुओं के साथ उक्त लक्ष्मी को प्राप्त कराइये (मा) मुझको (दमाः) दमनशील—इन्द्रियों वा मनको वश में रखनेवाले (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी लोग (यन्तु) प्राप्त हों, जिनकी सङ्गति से हम भी जितेन्द्रिय तथा तेजस्वी ब्रह्मचारी बनें (शमाः) शान्तिशील (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी लोग हमको (यन्तु) प्राप्त हों जिनके मेल से हम भी शान्तिशील बनें (मा) मेरे समीप (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी लोग (आ, यन्तु) आवें (मा) मुझको (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी लोग (वि, यन्तु) विशेष कर प्राप्त हों (मा) मुझको (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी लोग (प्र, यन्तु) अच्छे प्रकार जानें। जितेन्द्रिय ब्रह्मचारी लोग मुझको जितेन्द्रिय करें और शान्तिशील ब्रह्मचारी लोग मुझे शान्ति देवें। मैं (यशोजने) कीर्तिवाले मनुष्यों की गणना में (असानि) होऊं वा समझा जाऊँ। हे सब धनों के स्वामी ! (वस्यसः) अत्यन्त धनोंवाले आपके सम्बन्ध से मैं (मेयान्) अति प्रशंसा योग्य (असानि) होऊँ। हे (भग) सब ऐश्वर्य के अध्यक्ष ! (तम्) उन पूर्वोक्त विद्या के कोशरूप (त्वाम्) आपको मैं (प्रविशानि) ध्यान से आपके स्वरूप में प्रविष्ट होता हूँ। हे (भग) शोभारूप परमेश्वर ! (सः) सो आप (मा) मुझमें (प्रविश) अर्थात् मेरे हृदय में प्रविष्ट हुए के तुल्य प्रकट हूजिये (सहस्रशाखे) जगत् की सहस्रों शाखा जिसमें हैं (तस्मिन् त्वयि) उस आपमें (भग !) हे परमेश्वर ! (अहम्) मैं (नि,मृजे) शुद्ध होता वा अपने आत्मा को शुद्ध करता हूँ। लोक में (यथा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे (आपः) जल (प्रवता) नीचे मार्ग के साथ (यन्ति) चलते और (यथा) जैसे (मासाः) अगहन आदि महीने (अहर्जरम्) दिनों से बदलनेवाले और मनुष्यों को जीर्ण करते हुए वा जिसमें दिनों का लय हो जाता है ऐसे संवत्सर को (यन्ति) प्राप्त होते हैं। हे (धातः!) सब जगत् के धारण करनेवाले परमेश्वर! (एवम्) ऐसे ही (सर्वतः) सब देशों से (माम्) मुझको (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी लोग (आ, यन्तु) प्राप्त हों--आकर मिलें। हे परमेश्वर! आप (प्रतिवेशः) विश्राम वा आराम के स्थान (असि) हैं अर्थात् आपको प्राप्त हो के आराम मिलता है आप सब दुःखों के नाशक हैं। इससे (मा) मेरे प्रति (प्र, भाहि) अपने स्वरूप को प्रकाशित कीजिये और (मा) मुझको (प्रपद्यस्व) प्राप्त हूजिये ॥

भा०—तथावत् ब्रह्मचर्याश्रमस्थ पुरुष ही मुख्य कर ब्राह्मण है शान्ति वा जितेन्द्रियतादि साधनों से उत्तम बुद्धि की प्राप्ति करना उस ब्राह्मण का प्रधान वा पहिला कर्त्तव्य है। ऐसा ही करनेवाला मनुष्य कल्याणभागी होता है। बुद्धि आयु और धनों की कामना रखनेवाले पुरुष को सब स्वाहान्तमन्त्रों से अग्नि में प्रतिदिन होम करना चाहिये। उक्त मन्त्रों में परमात्मा की जैसी प्रार्थना की है उसका बार २ अभ्यास करना चाहिये और बुद्धि आदि की प्राप्ति के लिये मनुष्य को यथाशक्ति पुरुषार्थ भी करना चाहिये। मनुष्य को पहिले ब्रह्मचर्याश्रम में विद्यायुक्त बुद्धि प्राप्त करनी चाहिये। इसके पीछे लक्ष्मी प्राप्ति के लिये यत्न करे और लक्ष्मी प्राप्त होने पर गृहाश्रम यानी स्त्रीसम्बन्ध करना उचित है ॥ ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासामु ह स्मैतां चतुर्थीम्। माहाचमस्यः प्रवेदयते। मह इति तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः। भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवरित्यसौ लोकः ॥१॥ मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते। भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते। भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि। सुवरिति यजूंषि ॥ २ ॥ मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते। भूरिति वै प्राणः। भुव इत्यपानः। सुवरिति व्यानः मह इत्यन्नम्। अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते। ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा। चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः। ता यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति ॥ ३ ॥ असौ लोको यजूंषि वेद द्वे च ॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः ॥ ५ ॥

अथ व्याहृतीनां शिक्षणमारभ्यते। (भूः, भुवः, सुवः, इति, वै, एताः, तिस्रः, व्याहृतयः) व्याह्रियन्तेऽनेकेऽर्था याभिस्ता-स्तिस्रो महाव्याहृतयः सन्ति। अर्थात् भूः—इत्यादिशब्दानां बहूनां पृथिव्यादिवाच्यार्थानां व्याहरणाद्वाचकत्वेन कथनाद्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्याहृतिसञ्ज्ञास्ति (तासाम्) मध्ये (उ, ह, स्म) व्यतीतस्य प्रत्यभिज्ञानार्था निपाताः (एताम्) (मह, इति, चतुर्थीम्) महत्त्वेन प्रसिद्धां मह इति व्याहृतिपदवाच्यां लोकवेदवर्णाश्रमादीनां चतुर्थीं दशामवस्थाम् (माहाचमस्यः) महाचमसस्यापत्यमृषिः स्वानुभवेन (प्रवेदयते) प्रकृष्टतया जानाति मह इति व्य हृतेः संवेदनादेव तस्य माहाचमस्य इति नामासीदिति ध्वनितम् । यद्वा यः कश्चिच्चतुर्व्याहृतेः संवेदनादेव तस्य महाचमस्य इति नामासीदिति ध्वनितम् । यद्वा यः कश्चिच्चतुर्थीं व्याहृतिं सम्यग्वेत्ति स महाचमसनामा भवितुमर्हति तदपत्यमपि तादृशमेव (अन्येषां ज्ञानस्य निषेधो न क्रियते किन्तु माहाचमस्यस्य पूर्वानुभवोऽनेन बोध्यते) (तत्) महच्छब्दवाच्यम् (ब्रह्म) ब्रह्मैव ज्ञेयम् (सः, आत्मा) निरन्तरं व्याप्तोऽस्ति तेनैव सर्वं धार्यते (अन्याः, देवताः) सूर्यवायवादयो धारणाकर्षणयोः (अङ्गानि) अवयवरूपतया कार्यसाधकानि (वै, भूः, इति, अयम्, लोकः) पृथिवीलोको भूशब्दवाच्यः (भुवः, इति, अन्तरिक्षम्) वायोराधारलोको भुवः शब्दवाच्यः (सुवः, इति, असौ, लोकः) असावन्तरिक्षादुपरिलोकः स्वःशब्दवाच्यः । (महः, इति, आदित्यः) सर्वेभ्यो महत्त्वान्महच्छब्दवाच्यः सूर्यः (आदित्येन, वाव) सूर्येण हि (सर्वे) पृथिव्यादयः (लोकाः) (महीयन्ते) पूज्यन्ते तेषां प्रकाशहेतुत्वात्कार्यनिर्वाहक इति कृत्वा पूजाहेतुः (वै, भूः, इति, अग्निः) भूरित्यग्नेर्वाचको यतो भूमावेवाग्निस्तिष्ठति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न त्वाकाशे तत्र च तस्य विद्युन्नामास्ति (भुवः, इति, वायुः) अन्तरिक्ष एव वायुश्चलत्यतः (सुवः, इति, आदित्यः) अन्तरिक्षादुपरि सुवरिति सूर्यस्य वाचकः (महः, इति, चन्द्रमाः) कुतः (चन्द्रमसा, वाव, सर्वाणि, ज्योतींषि) चन्द्रमसैव सर्वनक्षत्राणि (महीयन्ते) ज्योतिष्ट्वेन वृद्धिं गतानि दृश्यन्ते रात्रौ चन्द्रगतप्रकाशेन नक्षत्राणि प्रकाशन्ते इत्यर्थः । अहनि तु सूर्यप्रकाशेन तिरोभवन्ति। (भूः, इति, वै, ऋचः, भुवः, इति, सामानि सुवः, इति, यजूंषि) भूरादयस्तिस्रो व्याहृतयः ऋग्वेदादिवाचकाः (महः, इति, ब्रह्म) महःशब्दवाच्योऽथर्ववेद कुतः (ब्रह्मणा, वाव, सर्वे, वेदाः) अथर्वणैव ऋगादयः (महीयन्ते) यथा चतुर्थवर्णेन शूद्रेण ब्राह्मणादयः सेवनादिना वृद्धिमाप्नुवन्ति। यथा वा चतुर्थाश्रमेण प्रत्यक्षानुभवपुरस्सरं पूर्वाश्रमप्रकाशनमस्ति। तथैव परिपक्वावस्थयाथर्वरूपया पूर्ववेदावस्थानां महत्त्वं साध्यते। (भूः, इति, वै, प्राणः) चक्षुःश्रोत्रस्थो वायुः (भुवः, इति, अपानः) अपानवायोर्वाचकः (सुवः, इति, व्यानः) सर्वशरीरव्याप्तो वायुः सुवःशब्दवाच्यः। अत्र सर्वस्मिन्ननुवाके पुस्तके वा स्वःशब्दस्य स्थाने सुव इति प्रयुक्तम् । इयं च ग्रन्थकारस्य शैलीत्यनुमीयते। इत्यादिपूरण इति पिङ्गलसूत्रानुकूला च सम्भवति। (महः, इति, अन्नम्) ओषधिफलं वा भक्ष्यमात्रं महःशब्दवाच्यम्। कुतः (अन्नेन, वाव, सर्वे, प्राणाः, महीयन्ते) अन्नभक्षणेनैव प्राणस्य बलं वर्द्धते (ताः, वै, एताः, चतस्रः, चतुर्द्धा) (व्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हृतयः) (चतस्रः, चतस्रः) सन्ति (यः, ताः, वेद) जानाति (सः) कृतसाधनः (ब्रह्म) (वेद) जानाति (अस्मै) ब्रह्मज्ञानिने (सर्वे) (देवाः) विद्वांसः स्वस्य पूज्यमङ्गीकृत्य (बलिम्) उपहारम् (आवहन्ति) प्रापयन्ति ॥ असौ लोक इत्यादिपदानि पूर्ववत्खण्डभेदावगमाय बोध्यानि ॥

भा०—अत्र पञ्चमेऽनुवाके चतसृणां व्याहृतीनां व्याख्यानमस्ति। यद्यपि व्याहृतयः सप्त सन्ति तथापि सप्त संख्यापेक्षया चतस्रः प्रधाना इति कृत्वा शिक्षाध्याये चतसृणामेव व्याख्यानमस्ति। यथा चत्वारो वेदा उपवेदाश्च। चत्वारो वर्णा आश्रमाश्च चत्वारि युगानि चतस्रो दिशोपदिशश्च। एकस्यापि चत्वार एव मुख्या भागा भवन्ति। अतएव चतुर्थो भागः पाद इत्युच्यते। चतस्र एवावस्थाश्चत्वारो मनुष्यभेदा इत्यादिप्रकारेणास्याः सङ्ख्यायाः प्रधानत्वम्। अत्रापि चतसृव्याहृतिष्वेकैकस्याश्चतुर्भिश्चतुर्भिरेव पृथिव्यादिपदवाच्यवस्तुभिः सम्बन्धः प्रदर्शितः। तथा सति षोडशविधं व्याहृतिव्याख्यानं सम्पद्यते। पृथिवी, अग्निः, ऋक्, प्राणः, एभिश्चतुर्भिर्भूरित्यस्याः सम्बन्धः। अन्तरिक्षम्, वायुः, यजुः अपानः, एभिर्भुव इत्यस्याः। असौ, आदित्यः, साम, व्यानः। एभिः सुव इत्यस्याः। आदित्यः, चन्द्रमाः, ब्रह्म, अन्नम्, एभिश्च मह इत्यस्याः। अत्र पृथिव्यग्न्यादीनां संयोगेन व्याख्याने सति बहुविधा विद्या मनुष्यकल्याणहेतुः प्रकाशिता स्यादित्यनुमीयते। यथा सर्वत्र चतुर्ष्वेकस्य प्राधान्यमितरेषां च गौणत्वं तथैवा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रापि मह इत्यस्याः प्राधान्यमस्ति। तथा च पूर्वं प्रदर्शितम्। मनुष्येण शिक्षाप्राप्त्यवसरे व्याहृतीनामर्थाः सम्यग् ज्ञातव्याः। भूरादिरूपमेव सर्वं जगदस्ति तस्याऽविपरीतज्ञानेन ज्ञानानुकूल एव सम्यक्सुखसाधक उपयोग आदातुं शक्यते तस्मात्सम्यग्ज्ञानं सम्पादनीयम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—अब व्याहृतियों की शिक्षा का प्रारम्भ करते हैं। (भूः, भुवः, सुवः, इति. वै, एताः, तिस्रः, व्याहृतयः) अनेक अर्थ जिनके द्वारा प्रकट किये जाते हैं, वे भूः आदि तीन महाव्याहृति कहाती हैं अर्थात् भू आदि शब्दों की वाचक होकर पृथिव्यादि वाच्य अर्थों के कहने से व्याहृति संज्ञा है (तासाम्) उनमें (उ, ह, स्म) पूर्वकाल में हो चुके वृत्तान्त को जताने के लिये ये तीन निपात वा अव्यय शब्द हैं कि (एताम्, महः, इति, चतुर्थीम्) श्रेष्ठ वा बड़े होने से प्रसिद्ध व्याहृतिपदवाच्य लोक, वेद, वर्ण और आश्रमादि की चौथी दशा वा हालत को (माहाचमस्यः) महाचमस नामक ऋषि का पुत्र माहाचमस्य पूर्व व्यतीत हो चुके समय में (प्रवेदयते) अच्छे प्रकार जानता था 'महः' इस व्याहृति के जानने से ही माहाचमस्य यह ऋषि का नाम हुआ यह प्रकट होता है। अथवा जो कोई चौथी व्याहृति के आशय को यथावत् जाने वह महाचमस हो और उसका सन्तान भी वैसा ही हो यह सम्भव है। [इससे यह समझ लेना कि अन्य कोई महःपदवाच्य को जानता ही न था अर्थात् ऐसा नहीं कहा गया कि एक वस्तु का एक ही ज्ञाता हो यह कोई नियम नहीं हो सकता किन्तु सबसे पहिले महः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदवाच्य का साक्षात् अनुभव माहाचमस्य महर्षि को भासित हुआ यह जताया गया है] (तत्) उस महःशब्द का वाच्यार्थ (ब्रह्म) ब्रह्म को ही जानना चाहिये (सः, आत्मा) वह आत्मा निरन्तर व्याप्त है उसी से सब का धारण होता (अन्याः, देवताः) धारण आकर्षणरूप कार्यों में सूर्य वायु आदि अन्यदेव (अङ्गानि) अवयवरूप गौणता से कार्य सिद्ध करनेवाले हैं। अर्थात् यद्यपि संसार का धारण वा आकर्षण सूर्य वायु आदि से भी होता है तथापि इसमें सूर्यादि गौण और मुख्य कर सबका धारक परमेश्वर है (भूः, वै, इति, अयम्, लोकः) पृथिवीलोक भूशब्दवाच्य है (भुवः, इति, अन्तरिक्षम्) वायु का आधारलोक भुवःशब्द का वाच्यार्थ है (सुवः, इति, असौ, लोकः) अन्तरिक्ष से ऊपर का लोक सुख का साधक होने से स्वः शब्द का वाच्यार्थ है तथा (महः, इति, आदित्यः) सब से बड़ा होने के कारण महःशब्दवाच्य भी सूर्य है। क्योंकि (आदित्येन, वाव) सूर्य से ही (सर्वे) सब पृथिव्यादि (लोकाः) लोक (महीयन्ते) सत्कार को प्राप्त सुखी होते हैं क्योंकि सूर्यलोक पृथिव्यादि पर प्रकाश पहुँचा कर कार्य चलाने में मुख्य हेतु और वर्षा करके अन्नादि उत्पन्न कराने से जीवन रखनेवाला है (भूः, इति, वै, अग्निः) भूःशब्द अग्नि का वाचक भी है क्योंकि भूमि पर ही अग्नि ठहरता है आकाश में नहीं। आकाश में ठहरनेवाले तेज को बिजुली कहते हैं और स्थूलाङ्गारादिरूप दाहगुणयुक्त को अग्नि कहते हैं (भुवः इति, वायुः) सूर्य और पृथिवी के बीच अन्तरिक्ष में वायु चलता है इस कारण भुवःशब्द वायु का वाचक (सुवः,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति, आदित्यः) अन्तरिक्ष से ऊपर स्वःशब्द सूर्य का वाचक है (महः, इति, चन्द्रमाः) चन्द्रमा महःशब्द का वाच्यार्थ है (चन्द्रमसा, वाव, सर्वाणि, ज्योतींषि) चन्द्रमा से ही सब नक्षत्र प्रकाशित होकर (महीयन्ते) बड़े २ वा स्पष्ट दीख पड़ते हैं अर्थात् रात्रि में चन्द्रमा के प्रकाश से नक्षत्र प्रकाशित होते हैं और दिनमें तो सूर्य के प्रकाश से सबका तेज ढप जाता है (भूः, इति, वै, ऋचः) भूःशब्द ऋग्वेद का वाचक (सुवः, इति, यजूंषि) स्वःशब्द यजुर्वेद का वाचक है इसी से यह भी वार्त्ता निकलती है कि ऋग्वेद में पृथिवी अग्नि और प्राण की विद्या का विशेष कर वर्णन है। तथा इसी कारण ऋग्वेद का प्रारम्भ अग्नि के वर्णन परक हुआ जान पड़ता है कि "अग्निमीडे पुरोहितम्" द्वितीय यजुर्वेद में अन्तरिक्ष वायु और अपान की विद्या का विशेष कर वर्णन है इसी कारण यजुर्वेद का प्रारम्भ वायुपरक है "इषे त्वोर्जेत्वा वायस्थ" तृतीय सामवेद में, स्वर्ग सूर्य और व्यान वायु की विद्या का अधिकांश वर्णन है। इसी कारण सामवेद का आरम्भ सूर्याग्निपरक है "अग्न आयाहि वीतये" यहीं अग्नि शब्द से सूर्याग्नि का ग्रहण है। इसी प्रकार (महः, इति, ब्रह्म) महःशब्द का वाच्यार्थ अथर्ववेद है क्योंकि (ब्रह्मणा, वाव. सर्वे, वेदाः) अथर्ववेद से ही ऋग्वेदादि सब वेद (महीयन्ते) जैसे चौथे शूद्रवर्ण से सेवनादि द्वारा ब्राह्मणादि वर्ण पुष्ट होते वा बढ़ते हैं वा जैसे चौथे संन्यास आश्रम से प्रत्यक्ष सबका अनुभव होने द्वारा ब्रह्मचर्यादि आश्रमों की यथार्थ भावप्रकाश द्वारा वृद्धि होती है। वैसे ही अथर्वरूप वेद की परिपक्व चौथी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था से पूर्व ऋग्वेदादि अवस्थाओं का महत्त्व सिद्ध होता है (भूः, इति, वै प्राणः) प्राण नाम चक्षु और श्रोत्र की शक्ति को ठीक रखनेवाला वायु भूशब्द का वाच्यार्थ (भुवः, इति, अपानः) भुवःशब्द अपान वायु का वाचक (सुवः, इति, व्यानः) सब शरीर में व्याप्त वायु स्वःशब्द का वाच्यार्थ है (महः, इति, अन्नम्) ओषधि का फल वा भोजन के योग्य मात्र महाशब्द का वाच्य है (अन्नेन, वाव, सर्वे, प्राणाः, महीयन्ते) अन्न के खाने से ही प्राण की रक्षा होती और बल बढ़ता है (ताः, वै, एताः चतस्रः) सो ही ये चार (व्याहृतयः) व्याहृति (चतुर्द्धा) चार प्रकार की (चतस्रः) एक २ चार २ प्रकार की होने से सोलह प्रकार की हैं (यः, ताः, वेद) जो पुरुष उन व्याहृतियों को जानता है (सः वह ठीक २ साधनों को प्राप्त हुआ (ब्रह्म, वेद) ब्रह्मको जानता है (अस्मै) इस ज्ञानी पुरुष के लिये (सर्वे, देवाः) सब विद्वान् लोग अपना पूज्य मान कर (बलिम्) उपहार (भेंट) (आवहन्ति) पहुँचाते हैं। (असौ, लोकः) इत्यादि पद पूर्व के समान अनुवाकस्थ खण्डों का भेद जनाने के लिये जानने चाहिये।

भा०—इस पञ्चम अनुवाक में चार व्याहृतियों का व्याख्यान है। यद्यपि व्याहृति सात हैं तो भी सात संख्या की अपेक्षा चार संख्या प्रधान है ऐसा मान कर शिक्षाध्याय में चार का ही व्याख्यान है। जैसे चार वेद, चार उपवेद, चार वर्ण, चार आश्रम, चार युग, चार दिशा, चार उपदिशा, चार अवस्था, मनुष्य के चार भेद और एक के भी चार ही भाग मुख्य कर होते हैं। इसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण चौथे भाग का नाम पाद है इत्यादि प्रकार से इस चार संख्या की प्रधानता है। यहाँ भी चार व्याहृतियों में से एक २ का चार २ पृथिव्यादि पद वाच्य वस्तुओं के साथ सम्बन्ध दिखाया है। ऐसा होने पर व्याहृतियों का सोलह प्रकार का व्याख्यान हो जाता है। पृथिवी, अग्नि, ऋक्, प्राण इन चार के साथ भूः का अन्तरिक्ष, वायु, यजुः, अपान, इनके साथ भुवः का, असौ, आदित्य, सोम, व्यान इनके साथ सुवः का, आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्न इनके साथ मह इस चौथी व्याहृति का सम्बन्ध है। यहां पृथिवी और अग्नि आदि के संयोग से व्याख्यान होने पर मनुष्य के कल्याण का हेतु बहुत प्रकार की विद्या का प्रकाश हो सकता है। जैसे सब स्थलों में चार में एक की प्रधानता होती और कोष तीन गौण होते हैं वैसे यहाँ भी महःव्याहृति की प्रधानता है। और वैसा ही अर्थ पूर्व से दिखाया गया है। मनुष्य को शिक्षा प्राप्त करते समय व्याहृतियों के अर्थ सम्यक् जानने चाहिये। भूः आदि का वाच्यरूप ही सब जगत् है उसके ठीक २ ज्ञान से ज्ञान के अनुकूल सम्यक् सुख सिद्धि का हेतु उपयोग लेना बन सकता है। इस लिये इन व्याहृतियों का ठीक २ अर्थज्ञान करना चाहिये॥ ५॥

स य एषोन्तर्हृदय आकाशः। तस्मिन्नयं पुरुषो मनोमयः। अमृतो हिरण्मयः। अन्तरेण तालुके। य एष स्तन इवावलम्बते। सेन्द्रयोनिः। यत्रासौ केशान्तो विवर्त्तते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यपोह्य शीर्षकपाले । भूरित्यग्नौ प्रतितिष्ठति । भुव इति वायौ ॥१॥ सुवरित्यादित्ये । मह इति ब्रह्मणि । आप्नोति स्वाराज्यम् । आप्नोति मनसस्पतिम् । वाक्पतिश्चक्षुष्पतिः । श्रोत्रपतिर्विज्ञानपतिः । एतत्ततो भवति । आकाशशरीरं ब्रह्म । सत्यात्मप्राणारामं मन आनन्दम् । शान्तिसमृद्धममृतम् । इति प्राचीनयोग्योपास्व ॥ २ ॥ वायावमृतमेकं च ।

इति षष्ठोऽनुवाकः ॥ ६ ॥

इदानीं शिक्षाप्रसङ्गे पुरुषेण कथमुपासना कर्येति कथ्यते (अन्तर्हृदये) पुण्डरीकेण सदृशोऽधोमुखो मांसपिण्डो हृदयनाम्ना प्रसिद्धस्तस्यान्तर्मध्ये (यः, आकाशः) अवकाशोऽस्ति (तस्मिन्) अवकाशे (सः, अयम्) यो वक्ष्यमाणरीत्या शरीरस्याधिष्ठाताऽस्ति सः (मनोमयः.) विज्ञानस्वरूपः (पुरुषः) पुर्यन्तःशरीरे शयनात् (हिरण्मयः) प्रकाशस्वरूपो न हि तस्य स्वरूपेऽन्धकारोस्ति (अमृतः) शरीरवन्न विनाशमाप्नुते इति नित्यो जीवात्मास्ति । (अन्तरेण, तालुके) हृदयादूर्ध्वं द्वयोरूपर्यधस्थयोस्तालुभागयोर्मध्ये (यः एषः) मांसखण्डः (स्तन इव) स्तनवत् (अवलम्बते) (अनेनैव मार्गेण सुषुम्णा नामिका नाडी—ऊर्ध्वं निस्सृता । यस्याः कठे प्रश्ने च व्याख्यानमस्ति—"शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिस्सृतैका । तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ङ्ङ्म्या उत्क्रमेण भवन्ति । इत्यादिप्रकारेण कठे । अथैकयोर्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति पापेन पापमित्यादिप्रकारेण च प्रश्ने) तथा (यत्र) यस्मिन् शिरःकपाले (केशान्तः) केशानामन्तो मूलम् (विवर्त्तते) विशेषतया विभागेन वा वर्त्तते । अर्थाद्यतो मूलात्केशा निस्सरन्ति तं प्रदेशम् (व्यपोह्य) विच्छिद्य (शीर्षकपाले) विनिस्सृता या नाडी (सा) सैव (इन्द्रयोनिः) इन्द्रस्य मोक्षसाधनसम्पन्नस्य जीवन्मुक्तस्य वा जीवात्मनो योनिः सरणिर्मार्गोऽस्ति । अर्थात्तेन मार्गेण मरणावसरे ज्ञानिनो जीवात्मा देहान्निःसरति । निस्सृत्य च मुक्तिदशायाम् (भूः इति, अग्नौ) भूरित्यस्य वाच्येऽग्नौ पृथिव्यां वा (प्रतितिष्ठति) मुक्तेषु प्रतिष्ठां प्राप्नोति (भुवः, इति, वायौ) भुव इत्यस्य वाच्ये वायावन्तरिक्षे च (सुवः इति, आदित्ये) सुवरित्यस्य वाच्ये सूर्यादौ च यथेष्टं विहरति तथा (महः, इति, ब्रह्मणि) मह इति नामके ब्रह्मात्मनि च स जीवात्मा मुक्तिदशायाम् (स्वाराज्यम्) स्वयं बाह्यसुखसाधनानपेक्ष एव राजते स स्वराट् तस्य भावम् (आप्नोति) स्वयं निरपेक्षः सूर्यचक्षुरादिप्रकाशानपेक्षः प्रदीप्यते (मनसस्पतिम्) मनसः पतिर्नियन्ता स्वामी भवति यद्वा मनसामाधिपत्यम् (आप्नोति) स जीवात्मा यः प्रयाणकालात्पूर्वमेव (वाक्पतिः, चक्षुष्पतिः, श्रोत्रपतिः, विज्ञानपतिः) च भवति । एवंभूताय गुरुरुपदिशेत्—(ततः) पश्चात् (एतत्, भवति) वक्ष्यमाणमेतदुपदेशवाक्यजातं सम्भवति हे (प्राचीनयोग्य)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राचीनस्य ब्रह्मणः प्राप्तये योग्य प्रिय शिष्य ! त्वम् (आकाशरीरम्) आकाशवच्छून्यं शरीरमस्य तन्निराकारम् (सत्यात्म) सत्य आत्मा स्वरूपमस्य (प्राणारामम्) प्राणानासमन्ताच्छरीरे रमयति तत्प्राणारामम् (मन आनन्दम्) मनसः सम्यक्सुखप्रदम् (शान्तिसमृद्धम्) शान्त्या समृद्धं सम्पन्नम् (अमृतम्) अविनाशि (ब्रह्म) परं ब्रह्म (उपास्व) तस्योपासनां कुरु ॥ अस्मिन्ननुवाके वायावित्यवध्येकः खण्डः । अमृतशब्दावधि द्वितीयः समाप्तः तत एकं वाक्यमवशिष्टमस्ति ।

भा०—शिष्येण शिक्षाप्राप्तिसमये परमात्मन उपासनायाः शिक्षापि ग्राह्या । यत्कृपातः संसारपरमार्थयोर्द्वयोरपि कार्याणि सिद्ध्यन्ति। तत्र पूर्वं स्वस्य मन इन्द्रियाणि च सम्यग्वशे कृत्वा स्वस्य जीवात्मनः स्वरूपं विज्ञेयम् । तदनन्तरं सत्यसनातनस्य निराकारस्य ब्रह्मण उपसनं कार्यम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—अब शिक्षाप्रकरण में इस छठें अनुवाक से उपासना की रीति कुछ कहते हैं–(अन्तर्हृदये) कमल के सदृश नीचे को मुखवाले मांसपिण्डरूप हृदय के बीच (यः) जो (आकाशः) अवकाश है (तस्मिन्) उसमें (सः, अयम्) जो आगे कहे अनुसार शरीर का स्वामी है वह (मनोमयः) विज्ञानस्वरूप (पुरुषः) शरीर के भीतर रहनेवाला (हिरण्मयः) प्रकाशस्वरूप है उसके स्वरूप में अन्धकार का लेश भी नहीं (अमृतः) शरीर के साथ विनाश को प्राप्त नहीं होता ऐसा नित्य जीवात्मा है उसके ज्ञानार्थ (अन्तरेण, तालुके) हृदय से ऊपर दोनों ऊपर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नीचे के भागों के बीच (यः, एषः) जो यह मांसखण्ड काक नामक कण्ठ में (स्तन इव) थन के तुल्य (अवलम्बते) लटकता है (इसी मार्ग से सुषुम्णा नामक नाड़ी ऊपर को निकली हैं। "हृदय की एक सौ एक नाड़ी हैं उनमें एक मूर्द्धा-मस्तक को गयी है। मुक्त होनेवाला जीवात्मा उसी के द्वारा शरीर से बाहर निकलता और अन्य नाड़ियों के द्वारा निकलनेवाले मुक्त नहीं होते" इत्यादि प्रकार कठ में और "एक-सुषुम्णा नाड़ी के साथ उदाननामी प्राण रहता है वही पुण्यात्मा को उत्तम स्थान में और पापी को निकृष्ट स्थान में पहुँचाता है" इत्यादि प्रकार से प्रश्नोपनिषद् में व्याख्यान किया है) तथा (यत्र) जिस शिर की खोपड़ी में (केशान्तः) केशों की जड़ें (विवर्त्तते) विशेष कर वर्त्तमान हैं वा विभाग पूर्वक विद्यमान हैं अर्थात् जहाँ से केश निकलते हैं उस स्थानको (व्यपोह्य) छेदन करके अर्थात् उसमें होकर (शीर्षकपाले) शिर की खोपड़ी में जो नाड़ी जा निकली है (सा) वही (इन्द्र-योनि) मोक्ष साधन सम्पन्न जीवन्मुक्त जीवात्मा का (योनि) मार्ग है। अर्थात् मरण समय में ज्ञानी पुरुष का जीवात्मा उसी नाड़ी द्वारा शरीर से निकलता है और शरीर से निकल कर मुक्ति-दशा में (भूः, इति, अग्नौ) भूः शब्द के वाच्य अग्नि और पृथिवी में (प्रतितिष्ठति) मुक्तों में प्रतिष्ठित होता है (भुवः, इति, वायौ) भुवःशब्द के वाच्य वायु और अन्तरिक्ष में (सुवः, इति, आदित्ये) और सुवःशब्द के वाच्य सूर्यादि में यथेच्छ भ्रमता है तथा (महः, इति, ब्रह्मणि) महः इस नाम के ब्रह्म में जीवात्मा मुक्तिदशा में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(स्वाराज्यम्) बाहरी सुख के साधनों की अपेक्षा को छोड़कर अपने मुख्य स्वभाव वा तेज को (आप्नोति) प्राप्त होता अर्थात् सूर्य और चक्षु आदि के प्रकाश की अपेक्षा छोड़कर स्वयमेव प्रकाशित रहता है (मनसस्पतिम्) मन का नियन्ता स्वामी होता वा मनों के स्वामीपन को (आप्नोति) प्राप्त होता है। वह जीवात्मा अपने शरीर से छूटने से पहिले ही (वाक्पतिः, चक्षुष्पतिः, श्रोत्र-पतिः, विज्ञानपतिः) वाणी नेत्र, कान और मन को वश में करने-वाला होता है। ऐसे जितेन्द्रिय शिष्य को गुरु उपदेश करे कि (ततः) जितेन्द्रिय होने के पश्चात् (एतत्) यह (भवति) आगे कहे उपदेश वाक्यों का सारांश सिद्ध होना सम्भव है। हे-(प्राचीन योग्य!) प्राचीन-सनातन ब्रह्म को प्राप्त होने योग्य शिष्य! तुम (आकाशशरीरम्) आकाश के तुल्य शून्यस्वरूपवाले निराकार (सत्यात्म) सत्यस्वरूप (प्राणारामम्) अच्छे प्रकार प्राणों को शरीर में रमाने वाले (मनआन्दम्) मन को सम्यक् प्रकार सुख पहुँचानेवाले (शान्तिसमृद्धम्) शान्ति से युक्त (अमृतम्) अवि-नाशी (ब्रह्म) परब्रह्म की (उपास्व) उपासना करो। इस छठें अनुवाक में (वायौ) तक पहिला और (अमृतम्) पद तक द्वितीय अनुवाक समाप्त है। आगे एक वाक्य शेष रहा॥

भा०—शिष्य को शिक्षाप्राप्ति के समय में परमेश्वर की उपा-सना सम्बन्धी शिक्षा भी स्वीकार करनी चाहिये कि जिसकी कृपा से संसार परमार्थ दोनों के कार्य सिद्ध होते हैं। उसमें पहिले अपने मन और इन्द्रियों को सम्यक् वश में करके जीवात्मा को अपना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप जानना चाहिये। इसके पश्चात् सत्य सनातन निराकार ब्रह्म की उपासना करे। इस प्रकार इस छठें अनुवाक में जीव और ब्रह्म दो पदार्थों के स्वरूप ज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने का उपदेश किया गया है॥ ६॥

पृथिव्यन्तरिक्षं द्यौर्दिशोऽवान्तरदिशः। अग्निर्वायुरादित्यश्चन्द्रमानक्षत्राणि। आप ओषधयो वनस्पतय आकाश आत्मा। इत्यधिमतम्। अथाध्यात्मम्। प्राणो व्यानोऽपान उदानः समानः। चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् त्वक्। चर्म मांसं स्नावास्थि मज्जा। एतदधिविधाय ऋषिरवोचत्। पाङ्क्तं वा इद ँ सर्वम्। पाङ्क्तेनैव पाङ्क्त ँ स्पृणोतीति॥ १॥ सर्वमेकं च॥ इति सप्तमोऽनुवाकः॥

अ०-(पृथिवी, अन्तरिक्षम्, द्यौः, दिशः, अवान्तरदिशः) अत्रान्तरिक्षशब्देन वायुचन्द्रग्रहनक्षत्रादीनां सर्वेषामन्तरिक्षस्थानामेव ग्रहणम्। द्यौःशब्देन तदुपरिस्थस्य सूर्यस्य, दिशः पूर्वादयोऽवान्तरदिश आग्नेय्यादय इति लोकपञ्चकमेष्वेव पञ्चकमेष्वेव वश्चप्रकारेषु सर्वे ब्रह्माण्डस्था लोकाः सङ्गृह्यन्ते। ब्रह्माण्डे पञ्चविभागा एव मुख्याः (अग्निः, वायुः, आदित्यः, चन्द्रमाः, नक्षत्राणि) इत्येतज्ज्योतिषां पञ्चकं त्रयस्त्रिंशद्देवतानां वा। तत्र पृथिवीस्थानि सर्वाणि ज्योतींषि दीपादीनि भौतिकान्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञेयानि। सूर्यकान्तादिनाम्ना प्रसिद्धानि सूर्यादिसम्बन्धीनि। वायोर्ज्योतिषामुत्तेजकत्वाज्ज्योतिष्ट्वम्। अग्निः पृथिवीस्थो वायुश्चन्द्रमा नक्षत्राणि चान्तरिक्षस्थानि, आदित्यो द्युस्थानः। विद्युदादिज्यौतींषि यथासम्भवमग्न्यादिष्वेवान्तर्भवन्ति। त्रयस्त्रिंशद्देवाश्चैष्वेव ज्योतिष्षु यथासम्भवमन्तर्भवन्ति। रुद्रा वायौ द्वादशादित्या मासाश्चादित्ये (आपः, ओषधयः, वनस्पतयः, आकाशः, आत्मा) इति भूतपञ्चकम्। भूतानि च प्राणिशब्दवाच्यानि तेषां चाबादीनि साक्षात्कारणानि तस्मादेषामेव पञ्चानां भूतत्वमस्ति। आकाशादपां वर्षकर्मणा पृथिव्यामोषधिवनस्पतय उत्पद्यन्ते (इति, अधिभूतम्) एतत्तृतीयं पञ्चकं भूतमध्ये व्याख्यातम्। अतःपूर्वं च द्वे पञ्चके अधिलोकाधिदेवनाम्नी स्तः (अथ, अध्यात्मम्) आत्मनि भौतिकशरीरे भवं व्याख्यानं वक्ष्यमाणरीत्या बोध्यम् (प्राणः, व्यानः, अपानः, उदानः, समानः) एतद्वायुपञ्चकम्। अर्थाच्छरीरव्यवहारसाधका मुख्यतया पञ्चैव प्राणादयो वायुभेदाः सन्ति (चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, वाक्, त्वक्) एतदिन्द्रियपञ्चकम्। वागिति रसनेन्द्रियस्यापि बोधाय। त्वगित्यनेन घ्राणस्यापि बोधः कार्यते। (चर्म, मांसम्, स्नायुः, अस्थि, मज्जा) एतद्धातुपञ्चकम्। अर्थादिम एव मुख्यतया स्थूलशरीरस्यावयवाः सन्ति (वै) इति निश्चयेन (इदम्, सर्वम्) (पाङ्क्तम्) पञ्चसङ्ख्यासम्बद्धमस्ति (पाङ्क्तेन) पञ्चसङ्ख्यासम्बद्धेन पृथिव्यादिपञ्चकेन (एव) (पाङ्क्तम्) प्राणा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिपञ्चकम् (स्पृणोति) प्रीणयति (इति) एवं प्रकारेणैषां पञ्चकानामितरेतरमुपयोगो ज्ञातव्यः ॥

भा०—शिक्षाप्रकरणे पृथिव्यादिपञ्चकत्रयमाधिभौतिकाधिदैविकप्रसङ्गे ज्ञातव्यम्। अध्यात्मप्रसङ्गे च प्राणादिपञ्चकत्रयं विज्ञेयम्। सर्वेषां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां ज्ञानेन कार्याण्यारभमाणः पुरुषस्त्रिविधं दुःखं विहाय सुखमवाप्नोति ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(पृथिवी) भूमि (अन्तरिक्षम्) वायु, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रादि के ठहरने का अवकाश अन्तरिक्ष कहाता है, इस कारण अन्तरिक्षशब्द से वायु आदि का भी ग्रहण जानो (द्यौः) चन्द्रमादि से ऊपर रहनेवाला सूर्य वा सूर्य के रहने का प्रदेश (दिशः) पूर्वादि दिशा और (अवान्तरदिशः) आग्नेयी अर्थात् पूर्व दक्षिण के बीच मध्यदिशा आदि ये पांच प्रकार के लोक हैं। इसको लोकपञ्चक कहते हैं क्योंकि इन ही पांच प्रकारों में ब्रह्माण्ड भर के सब लोक आजाते हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड में पांच भाग ही मुख्य हैं। (अग्निः) पृथिवी पर रहनेवाला भौतिक अग्नि वा दीपादि ज्योति (वायुः) ज्योतियों का उत्तेजक अर्थात् तेज बढ़ाने वाला होने से वायु भी एक प्रकार का ज्योति है। (आदित्यः) सूर्य (चन्द्रमाः, नक्षत्राणि) चन्द्रमा और नक्षत्र ये पांच प्रकार की ज्योति हैं इसको ज्योतिपञ्चक कहते हैं। अन्य बिजुली आदि के प्रकाश भी इन्हीं ज्योतियों के अन्तर्गत आजाते हैं। और बृहदारण्योपनिषद् में लिखे तैंतीस देवता भी यथासम्भव इन ही ज्योतियों के अन्तर्गत हो जाते हैं। जैसे ग्यारह रुद्र वायु के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्गत तथा बारह आदित्य सूर्य के अन्तर्गत हो जाते हैं इत्यादि। (आपः) जल (ओषधयः) जो घास वा जौ आदि अन्न के वृक्ष फल पकते समय सूख जावें उनको ओषधि कहते हैं। (वनस्पतयः) पुष्प के विना ही जिन पर फल लगते हैं ऐसे पीपल आदि वनस्पति (आकाशः) आकाश और (आत्मा) मनुष्यादि प्राणियों के शरीर-इसको भूतपञ्चक कहते हैं। यद्यपि भूतशब्द के अनेक अर्थ हैं तथापि इस प्रकरण में भूतशब्द मुख्यकर प्राणियों का वाचक लेना है। इसमें आत्मा-शब्द चेतन शरीरों का वाचक है और जलादि उसके साक्षात् कारण हैं। इस कारण ये पांचों भूत कहाते हैं। आकाश द्वारा जल की वृष्टि होने से पृथिवी में ओषधि और वनस्पति उत्पन्न होते हैं उन ओषधि आदि के फल वा पत्ती आदि को खाकर प्राणियों के शरीर बनते हैं। इस प्रकार पांचों भूत परस्पर सम्बद्ध हैं (इति, अधिभूतम्) यह तीसरा पञ्चक भूत विषयक है इससे पूर्व के दो पञ्चक अधिलोक और अधिदेव नामक हैं। (अथ, अध्यात्मम्) अब आगे आत्मा नाम भौतिक शरीर के मध्य निम्न लिखित व्याख्यान जानो। (प्राणः) मुख और नासिका द्वारा निकलनेवाला वायु (व्यानः) सब शरीर में रुधिर चलानेवाला वायु (अपानः) विष्ठा मूत्र को नीचे गिरानेवाला वायु (उदानः) कण्ठ में रहनेवाला वायु (समानः) अन्न पकाने में उपयोगी है। इसको वायुपञ्चक कहते हैं। (चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, वाक्, त्वक्,) आंख, कान, मन, वाणी और त्वचा इसको इन्द्रिय-पञ्चक कहते हैं। वाणी कहने से रसना इन्द्रिय का भी बोध हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है अथवा वाक् शब्द कर्मेन्द्रियों के उपलक्षणार्थ भी मानना ठीक है क्योंकि कर्मेन्द्रियों में वाणी मुख्य है और त्वचा कहने से नासिका का भी ग्रहण हो सकता है। क्योंकि नासिका की त्वचा में स्पर्श होने से ही गन्ध का ग्रहण होता है (चर्म, मांसम्, स्नायु, अस्थि, मज्जा) चाम, मांस, नसें, हड्डी, और चर्बी यह धातुपञ्चक हैं। ये ही पांचो मुख्यकर स्थूल शरीर के अवयव हैं (एतत्, अधिविधाय) इन पृथिव्यादि पञ्चकों को योजना करके (ऋषिः) ग्रन्थकर्त्ता ऋषि ने (अवोचत्) कहा कि (इदम् वै, सर्वम्, पाङ्क्तम्) ये पूर्वोक्त सब पृथिव्यादि पांच २ संख्यावाले हैं, इससे पाङ्क्त कहाते हैं। क्योंकि पञ्च शब्द से ही पङ्क्ति और पाङ्क्त शब्द बनते हैं। (पाङ्क्तेन, एव) पांच २ संख्यावाले पृथिव्यादि पञ्चक से ही (पाङ्क्तम्) प्राणादि पञ्चक को मनुष्य (स्पृणोति) तृप्त करता (इति) इस प्रकार इन पांच २ का परस्पर उपयोग जानना चाहिये ॥

भा०—शिक्षाप्रकरण में पृथिव्यादि तीन पञ्चक आधिभौतिक और आधिदैविक सम्बन्ध में जानने चाहिये और प्राणादि तीन पञ्चक अध्यात्म सम्बन्धी हैं। इन छओं पञ्चकों का किन २ अंशों में प्रेम वा विरोध है ऐसा जानकर कार्य्यों को आरम्भ करनेवाले पुरुष तीन प्रकार के दुःख को छोड़कर सर्वोत्तम सर्वविध सुखके भागी होते हैं॥ ७ ॥

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदꣳ सर्वम्। ओमित्येतदनु-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कृति ह स्म वा अप्योश्रावयेत्याश्रावयन्ति । ओमिति सामानि गायन्ति । ओꣳशोमिति शास्त्राणि शंसन्ति । ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं गृणाति । ओमिति ब्रह्मा प्रस्तौति । ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति । ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह । ब्रह्मोपाप्नवानीति । ब्रह्मैवोपाप्नोति ॥८॥ ओं दश ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

(ओम्, इति) इति शब्द ओमिति शब्दस्य स्वरूपबोधार्थः । ओमिति वाचकः शब्दः (ब्रह्म) इतरेतराध्यासेन ब्रह्मास्ति (ओम्, इति, इदम्, सर्वम्) इत उत्तरत्र वाच्यवाचकयोरैकरूप्यमेवौमिति शब्देन गृह्यते । ओमित्यव्ययशब्दो लिङ्गवचनविहीनः । तेनोमित्यनेनेदं सर्वं जगद्व्याप्तमिति सिद्धम् (ह, स्म वै) प्रसिद्धमेतत्—यत् (ओम्, इति, एतत्) वाच्यवाचकरूपस्य ब्रह्मणः (अनुकृति) अनुकरणम् (ओ, अपि, श्रावय) (इति) ओ इति सम्बोधनम् । यदि कश्चिद्वदेत्त्वं ब्रह्मण उपदेशं श्रावय तदा ओमिति शब्दमुच्चार्य्यैवाश्रावयन्ति (ओम्, इति) ब्रह्मणः प्रसादायौमित्युच्चार्य वा (सामानि) गायकाः सामानि (गायन्ति) (ओम्, शोम्, इति) इत्युच्चार्य (शास्त्राणि) गीतिरहितानि मन्त्रवाक्यानि (शंसन्ति) वददीन्ति शोमित्यत्र शकारःशमित्यस्य बोधकः । तेन ओं शन्नोमित्र इत्यादिमन्त्रस्य पाठमादौ विधाय पश्चाद्यथेष्टमन्त्राणां पाठः कार्यइति निष्पन्नम् । (अध्वर्युः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजमानः पूर्वं होत्रा स्तुतस्य वाक्यस्य (प्रतिगरम्) प्रत्युत्तरम् (ओम्, इति) उच्चार्य (प्रतिगृणाति) प्रतिस्तौति (ब्रह्मा) यज्ञकर्मणि नियुक्तश्चतुर्वेदवक्ता आचार्यः (ओम्, इति) उच्चार्य्यैव (प्रस्तौति) परमात्मस्तुतिं प्रारभते (ओम्, इति) उच्चारणं कृत्वा (अग्निहोत्रम्) नैत्यिकं होमम् (अनुजानाति) कर्त्तुं प्रतिवासरं स्वीकरोति (प्रवक्ष्यन्) अध्यापनारम्भं करिष्यन्नाचार्यः (ब्राह्मणः) वेदवित् (ब्रह्म) परमेश्वरं वेदं वा (उपाप्नवानि) समीपतः प्राप्नुयाम् (इति) एवं मनसि कृत्वा (ओम्, इति, आह) ओमित्युच्चारणेन परमात्मानं ध्यात्वा कार्यमारभते सः (ब्रह्म, एव, उपाप्नोति) ध्यानकाले ध्यातुर्मनः शब्दात्मकं ज्ञानात्मकं च ब्रह्मावश्यमाप्नोति ॥

भा०—यानि यानि शुभकर्माणि जगति मनुष्येणारभ्यन्ते तानि तान्योमिति परमात्मनो नामोच्चार्य मनसा चेमित्यस्य वाच्यं ब्रह्म ध्यात्वाऽऽरब्धव्यानि। तत्र सामगानादीन्युपलक्षणार्थानि प्रधानत्वात्। दशावध्येव मुख्यतया संख्यास्ति। तस्माद्दशसंख्याका ओङ्कारा अत्र वर्णिताः कुत्रचिद्वर्त्तमानक्रियाभिरपि विधिवाक्यानि शास्त्रेषूपलभ्यन्त इति कृत्वा सामानि गायन्तीत्यादीनि विधिवाक्यान्यवगन्तव्यानि। ओङ्कारश्च परमात्मनो मुख्यं नामातस्तद्द्वारैव मनुष्यैस्तस्योपासनं कार्यम्। एवमस्मिन्ननुवाके मुख्यतया द्वयोर्व्याख्यानमस्ति। ओमित्यनेनोपासनमेकम्। द्वितीयं-पठनादिशुभकार्य्यस्यारम्भे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाचकस्य प्रणवस्य प्रयोगो वाच्यस्य ब्रह्मणो ध्यानं च कार्यमिति शिष्येभ्यः शिक्षणीयमाचार्येणेत्याशयः ॥ ८ ॥

भावार्थः—(ओम्, इति) यहाँ इति शब्द ओम्-इस शब्द का स्वरूप जताने के लिये है। वाचक ओम् शब्द (ब्रह्म) इतरेतराध्यासरूप देखने से ब्रह्म है (ओम्, इति इदम्, सर्वम्) ओम्-वाच्यवाचकरूप ब्रह्म से सब जगत् व्याप्य है। यहाँ से आगे वाच्यवाचक दोनों का ग्रहण ओम् कहने से समझना चाहिये और (ह, स्म, वै) यह प्रसिद्ध है कि (ओम्, इति, एतत्) ओम्-यह वाच्यवाचकरूप ब्रह्म का (अनुकृति) अनुकरण है (ओ, श्रावय, इति) यदि कोई कहे कि तुम ब्रह्म का उपदेश सुनाओ तब ओम्, ऐसा उच्चारण करके ही (आश्रावयन्ति) अच्छे प्रकार सुनाते (ओम्, इति) ओम् के वाच्य ब्रह्म की प्रसन्नता के लिये गानेवाले लोग (सामानि) सामवेद के मन्त्रों को (गायन्ति) गाते और (ओम्, शोम्, इति) ऐसा उच्चारण करके गान रहित साधारण प्रकार मन्त्र के वाक्यों को (शंसन्ति) कहते हैं। शोम्-इस शब्द में शम् को जताने के लिये केवल शकार ओम् के साथ मिलाया है कि इस से "शन्नो मित्रः" इत्यादि मन्त्रों का पाठ प्रारम्भ में करके पीछे यथेष्ट मन्त्रों का पाठ करना चाहिये यह सिद्ध होता है (अध्वर्युः) यजमान होता के प्रस्तावित वाक्य का (प्रतिगरम्) प्रत्युत्तर (ओम्, इति) ओम् ऐसा बोल कर (प्रतिगृणाति) प्रस्तुत करता है (ब्रह्मा) चारों वेद का जाननेवाला यज्ञकर्म में नियत किया गया आचार्य (ओम्, इति) ओम् ऐसा उच्चारण करके ही (प्रस्तौति) परमात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की अस्तुति करना प्रारम्भ करता है । (ओम्, इति) ओम् ऐसा स्वीकारार्थ उच्चारण करके (अग्निहोत्रम्) प्रतिदिन होम करने की (अनुजानाति) प्रतिज्ञा वा अङ्गीकार करता है (प्रवक्ष्यन्) पढ़ाने का आरम्भ करने से पूर्व गुरु (ब्राह्मणः) वेदज्ञ ब्राह्मण (ब्रह्म) परमेश्वर वा वेद को मैं (उपाप्नवानि) समीप से प्राप्त होऊँ (इति) ऐसा मन में निश्चय कर (ओम्, इति, आह) ओम् ऐसा बोलने से परमेश्वर का ध्यान करके कार्य आरम्भ करता है वह (ब्रह्म, एव, उपाप्नोति) ध्यान के समय ध्यानकर्त्ता का मन शब्दरूप वा ज्ञानस्वरूप ब्रह्म को अवश्य प्राप्त होता है (ओम्, दश) इस अनुवाक में दश ओङ्कार कहे हैं ।

भा०—जगत् में मनुष्य जिन २ शुभकर्मों का आरम्भ करता है उन २ का परमेश्वर के ओम् नाम का उच्चारण और ओम् के वाच्य ब्रह्म का ध्यान कर के आरम्भ करना चाहिये । उनमें मुख्य होने से सामगान आदि उपलक्षणार्थ हैं और मुख्य कर दश ही तक उनकी संख्या है इसी कारण इस अनुवाक में दश ओङ्कारों का वर्णन किया है । कहीं वर्तमानकाल सम्बन्धिनी क्रियाओं से भी शास्त्रों में विधि-आज्ञा के वाक्य मिलते हैं इसी के अनुसार यहां भी "ओम्-का उच्चारण पहिले करके सामवेद को गाते हैं" इत्यादि को विधिवाक्य मानना चाहिये कि ओम् का उच्चारण करके सामवेद का गान करे । ओम्-यह परमेश्वर का मुख्य नाम है इस कारण इसी नाम के द्वारा मनुष्यों को ईश्वर की उपासना करनी चाहिये। इस प्रकार इस अनुवाक में दो बातों का मुख्य कर वर्णन है कि एक तो ओम् शब्द

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वारा परमेश्वर की उपासना करनी और द्वितीय पढ़ने आदि शुभ-कर्मों के आरम्भ में ओम्शब्द का उच्चारण और उसके वाच्य ब्रह्म का ध्यान करना उचित है-आचार्य ऐसी शिक्षा करे ॥ ८ ॥

ऋतञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च । दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्नयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । अग्निहोत्रञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । अतिथयश्च स्वाध्यायप्रवचने च । मानुषञ्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजनश्च स्वाध्यायप्रवचने च । प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च । सत्यमिति सत्यवचा राथीतरः । तप इति तपो नित्यः पौरुशिष्टिः । स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः । तद्धि तपस्तद्धि तपः ॥१॥ प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च षट् च ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥ ९ ॥

(ऋतम्, च) वेदादिसच्छास्त्रानुकूलं वचः (स्वाध्यायप्रवचने) वेदादीनामध्ययनमध्यापनं च (सत्यम्) यन्मनसि तस्यैव वाचा कथनम् (तपः) धर्मस्योपार्जने क्लेशसहनम् एतदेव द्वन्द्वसहनस्यापि तात्पर्यम् (दमः) बाह्यचक्षुरादीन्द्रियाणां वशीकरणम् (शमः) मनसो वशीकरणम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इमानि ऋतानि यथायथमनुष्ठेयानि (अग्नयः) आहवनीयादय आधातव्या अर्थाद् ब्रह्मचर्यादय आश्रमाः शास्त्राज्ञानुकूलं सेवनीयाः (अग्निहोत्रम्) देवयज्ञो नित्यं कर्त्तव्यः (अतिथयः) पूज्याः (मानुषम्) विवाहादिसम्बन्धो दारपरिग्रहः कार्यः (प्रजा) धर्मेण पुत्रादय उत्पाद्याः (प्रजनः) प्रजननमुत्पादनं गर्भाधानं वा ऋतुकालाभिगामितया कायम् (प्रजातिः) पौत्रादीनामप्युत्पत्तिः कार्या। एतानि सर्वाणि धर्म्यकर्माणि कुर्वन्नपि स्वाध्यायप्रवचने अध्ययनाध्यापने यत्नतो निरन्तरं सुकृती सेवेत (सत्यवचाः) सत्यं वचो यस्य यो न कदाप्यसत्यं वचो ब्रवीति सः (राथीतरः) रथीतरस्यापत्यमृषिराचार्यः (सत्यम्) सर्वधर्माचरणेषु सत्यस्याचरणं श्रेष्ठतमम् (इति) मन्यते (तपो नित्यः) नित्यं तपसि तत्परो यस्य मतौ तप एव परं प्रधानम् स (पौरुशिष्टिः) पुरुशिष्टस्यापत्यमृषिराचार्यः (तपः) तप एव प्रधानम् (इति) मन्यते (मौद्गल्यः) मुद्गलस्यापत्यम् (नाकः) नाकनामकऋषिराचार्यः (स्वाध्यायप्रवचने, एव) अनुष्ठेये आभ्यामेव परमं कल्याणम् (इति) मन्यते (तत्, हि, तपः, तत्, हि, तपः) स्वाध्यायप्रवचने एव मुख्यतया तपःसञ्ज्ञिके स्तस्तस्मादवश्यमनुष्ठेये ॥

भा०—ऋतादीनामनुष्ठानं यथावद्विचारवता निरन्तरं कार्यं तेन साकमध्ययनाध्यापने अनिशं सेव्ये। गृहाश्रमे धर्मेण पुत्रादीन् श्रेष्ठानुत्पाद्य पठनपाठने श्रवणोपदेशौ च यत्नेन सेवनीयौ पुत्रादयो विद्याधर्मावनुशास्या इदमेव प्रधानं धर्म्यं कर्म कार्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म् । एवं शिक्षासम्पन्न एव आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः । स्वप्रत्ययावृत्तिरभीतवासः षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन्नित्यादिप्रकारकाणि षट् सुखानि पुरुष आप्नोति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(ऋतम्, च) वेदादि श्रेष्ठ शास्त्रों में कहे अनुसार चलना (सत्यम्) जो मन में हो उसी को वाणी से कहना (तपः) धर्म का सञ्चय करने के लिये क्लेश उठाना और सहना उसी को द्वन्द्वसहनरूप तप भी कहते हैं (दमः) बाहिरी आँख आदि इन्द्रियों को वशीभूत करना (शमः) मन को वश में करना, इन ऋत आदि धर्म के लक्षणों का ठीक २ सेवन करना चाहिये (अग्नयः) आहवनीय आदि तीनों अग्नि का आधान अर्थात् ब्रह्मचर्यादि आश्रमःशास्त्र को आज्ञानुकूल सेवने चाहिये (अग्निहोत्रम्) अग्निहोत्र नामक देवयज्ञ नित्य करना (अतिथयः) श्रेष्ठ धर्मसम्बन्धी सत्यमार्ग के उपदेष्टा अकस्मात् आये हुए विद्वानों का पूजन (मानुषम्) विवाहादि गृहाश्रम का कृत्य करना (प्रजा) धर्म से पुत्रादि को उत्पन्न करना (प्रजनः) ऋतुकालाभिगामी होकर गर्भाधान करना (प्रजातिः) पौत्रादि की उत्पत्ति होने का भी यत्न करना इन सब धर्मसम्बन्धी कामों को करता हुआ भी विद्वान् शिक्षित विचारशील पुरुष (स्वाध्यायप्रवचने) पढ़ने पढ़ाने के यत्न के साथ सब दशाओं में निरन्तर सेवन करे (सत्यवचाः) सत्य जिन की वाणी है जो कभी असत्य वचन नहीं बोलते ऐसे (राथीतरः) रथीतर नामक ऋषि के पुत्र राथीतर ऋषि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य (सत्यम्) सब धर्म के आचरणों में सत्य का सेवन श्रेष्ठतम है (इति) ऐसा मानते हैं (तपो नित्यः) नित्य तप करने में तत्पर यानी जिनकी बुद्धि में तप ही मुख्य है ऐसे (पौरुशिष्टिः) पुरुशिष्ट ऋषि के सन्तान ऋषि (तपः) तप ही प्रधान है (इति) ऐसा मानते हैं (मौद्गल्यः) मुद्गल ऋषि के पुत्र (नाकः) नाक नामक ऋषि आचार्य (स्वाध्यायप्रवचने एव) पढ़ने पढ़ाने वा सुनने सुनाने को ही मुख्य धर्म मान सेवन करना चाहिये इन्हीं दोनों कर्म से परमकल्याण हो सकता है (इति) ऐसा मानते हैं (तत्, हि, तपः, तत्, हि, तपः) पढ़ने पढ़ाने ही मुख्य कर तप हैं इस से उन का सेवन अवश्य करना चाहिये ।

भा०—विचारशील पुरुष को ऋतादि का यथावत् सेवन करना और उस के साथ पढ़ने पढ़ाने का कर्म भी नित्य सेवन करना चाहिये । गृहाश्रम में श्रेष्ठ पुत्रादि को उत्पन्न करके पढ़ना पढ़ाना वा सुनना सुनाना भी यत्न के साथ कर्तव्य है। पुत्रादि को धर्म और विद्या की शिक्षा करना यह धर्मयुक्त मुख्य कर्म करना उचित है । इस प्रकार शिक्षित पुरुष ही संसार के छः (नीरोगता, ऋण-रहित होना, प्रियों के निकट वास, श्रेष्ठ पुरुषों से मेल, लोक में विश्वास और निर्भय स्थान में निवास इन) सुखों को प्राप्त होता है इस लिये शिक्षानुकूल उक्त कर्म करने चाहिये ॥ ९ ॥

अहं वृक्षस्य रैरिवा । कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव । ऊर्ध्व-पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि । द्रविणꣳसवर्चसम् । सुमेधा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अमृतोक्षितः । इति त्रिशङ्कोर्वेदानुवचनम् ॥१॥ अहꣳषट्॥

इति दशमोऽनुवाकः ॥

(अहम्) विद्यां शिक्षां च प्राप्तः (वृक्षस्य) प्रत्यहं छिद्यमानस्य संसारस्य (रेरिवा) निर्वाहकः । रि गतावित्यस्मात्क्वनिप् द्वित्वं च यङन्ताद्वा । अर्थाद्धर्मोपकारसम्बन्धिनो जगद्व्यवहारस्याहं वृषभवद् वोढा भवेयम् । अविश्रामं वहेद्भारमिति नीतिवचनाच्च । येन धर्म्यकर्मणा मम (कीर्त्तिः) यशः (गिरेः, पृष्ठमिव) ऊर्ध्वगमुच्चं प्रसिद्धं वा स्यात् (ऊर्ध्वपवित्रः) ऊर्ध्वं नाभेरुपरिष्टात् पवित्रमस्य स शुद्धान्तःकरणः (वाजिनीव) वेगवत्युद्योगकारिणि जने यथा शीघ्रं सम्पत्तिरायाति तथा मयि सम्पत्तिः स्यादित्येवं यतेय । (स्वमृतम्) सु—शोभनप्रकारेणामृतं मोक्षम् (अस्मि) अनुभवेयम् (सवर्चसम्) तेजःप्रतापस्तेन सहितम् (द्रविणम्) धनं मम स्यात् (सुमेधाः) सुष्ठुतरा मेधा धारणावती बुद्धिरस्य समयानुकूलेष्टस्मरणवतीं बुद्धिं प्राप्नुयाम् (अमृतोक्षितः) अमृतेन उक्षितः सिक्तः स्नातः शरीरेणापि शुद्धः स्याम् (इति) एवं (त्रिशङ्कोः) राजर्षेः (वेदानवचनम्) वेदाशयस्यानुवादोऽस्ति ॥

भा०—त्रिशङ्कुः पुरा कोऽपि राजर्षिरासीत्तेनाखिला वेदा अधीताः । वेदाभिप्रायं बुद्ध्वा च तेनोक्तम्—मनुष्यः पूर्वस्मिन्ब्रह्मचर्याश्रमे विद्याशिक्षासम्पन्नः शोभनां बुद्धिं शरीर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बलं चावाप्य धर्मात्मतापूर्वकं धनादीनुपार्जयेत् । शुद्धान्तः-करणः प्रतापी सन् परोपकारसम्बन्धिबहूनां कार्याणां सेवनेन जगति स्वस्य शुभामचलां कीर्त्तिं स्थापयेत् ॥ १० ॥

भाषार्थः—(अहम्) मैं विद्या और शिक्षा को प्राप्त हुआ मनुष्य (वृक्तस्य) प्रतिदिन बनने बिगड़नेवाले संसार का (रेरिवा) कार्य चलानेवाला अर्थात् धर्म और उपकार सम्बन्धी जगत् के व्यवहार का बैल के तुल्य बोझा लादनेवाला होऊँ। नीति में भी कहा है कि "धर्म के भार को विना विश्राम किये अन्त तक पहुँचावे" कि जिस धर्मयुक्त कर्म के सेवन से मेरा (कीर्त्तिः) यश (गिरेः, पृष्ठमिव) पर्वत की चोटी के तुल्य ऊँचा वा प्रसिद्ध हो (ऊर्ध्वपवित्रः) मैं शुद्ध अन्तःकरणवाला होऊं (वाजिनीव) उद्योगी वेगवान् पुरुष के समान मेरे समीप दैवी सम्पत् प्राप्त हो ऐसा यत्न करूं (स्वमृतम्) अच्छे प्रकार मोक्ष का (अस्मि) अनुभव करूं (सवर्चसम्) तेज और प्रताप के सहित (द्रविणम्) मेरे निकट धन हो (सुमेधाः) अच्छी धारणावाली बुद्धि जिस की हो अर्थात् समयानुकूल इष्ट का स्मरण रखनेवाली बुद्धि को प्राप्त होऊं (अ-मृतोक्षितः) जल से स्नान शौचादि करता हुआ शरीर से भी शुद्ध रहूँ (इति) इस प्रकार (त्रिशङ्कोः) त्रिशङ्कु नामक राजर्षि का (वेदानुवचनम्) वेदानुकूल कहना है ॥

भा०—आर्यावर्त्त देश में पहिले एक त्रिशंकु राजा हुआ उस ने सम्पूर्ण वेद पढ़ा। वेद का मुख्य आशय जानकर उसने कहा कि मनुष्य को पहिले ब्रह्मचर्य आश्रम में विद्या व शिक्षा से युक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तम बुद्धि और शरीर सम्बन्धी बल को प्राप्त करके धर्मात्मता पूर्वक धनादि का उपार्जन करना चाहिये। तथा मनुष्य हृदय से शुद्ध और प्रतापी होकर परोपकार सम्बन्धी अनेक शुभ कर्मों के सेवन से जगत् में अपनी शुभ अचल कीर्त्ति को स्थापन करे॥ १०॥

वेदमनूच्याचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्॥ १॥ देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माꣳ सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि॥ २॥ नो इतराणि। ये के चास्मच्छ्रेयाꣳसो ब्राह्मणाः। तेषां त्वयाऽऽसनेन प्रश्वसितव्यम्। श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्। ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्। अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा वा स्यात्॥ ३॥ ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः। अलूक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तत्र वर्त्तेरन्। तथा तत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्त्तेथाः । अथाभ्याख्यातेषु । ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः । युक्ता आयुक्ताः । अलूक्षा धर्मकामाः स्यु । यथा ते तेषु वर्त्तेरन् । तथा तेषु वर्त्तेथाः । एष आदेशः । एष उपदेशः । एषा वेदोपनिषत् । एतदनुशासनम् । एवमुपासितव्यम् । एवमुचैतदुपास्यम् ॥४॥ स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् । तानि त्वयोपास्यानि । विचिकित्सा वा स्यात् । तेषु वर्त्तेरन् । सप्त च ॥

इत्येकादशोऽनुवाकः ।

अध्ययनानन्तरं गुरवे गुरुदक्षिणां यथानुशिष्टां दत्त्वा ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य सन्तानोत्पत्तिफलसहितं गृहाश्रममवश्यं सेवेतेति प्रजातन्तुं माव्यवच्छेत्सीरित्यस्याशयः । अश्रद्धया देयमित्यत्र पक्षद्वयम् । अश्रद्धयाऽदेयं न दातव्यमिति शाङ्करं मतम् । विद्यारण्यस्वामिना च देयमिति व्याख्यातम् । यथा कथञ्चिद्द्वयमपि सम्भवति तथापि देयमिति साधु भाति ह्रिया देयमित्यादिसाहचर्यात् । अभ्याख्यातेषु सन्दिग्धदोषेणासञ्जितेषु विषयेषु । अर्थात्केनचिदुत्पादितसन्देहेषु विषयेषु । युक्ताः स्वयं धर्मे संयुक्ताः आयुक्ता अन्यप्रेरणया प्रवृत्ताः । अलूक्षा अरूक्षाः कपिलकादित्वाल्लुत्वम् । आदेशः शास्त्रीयाऽऽज्ञा । उपदेशः पित्रादीनां पुत्रादिभ्यः शिक्षा । अनुशासनमुपदिष्टस्य पश्चाच्छासनम् उपासितव्यमुपास्यमित्यनयोः पुनर्वचनमादरार्थम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्यच्च स्पष्टत्वान्न व्याख्यातं लोकभाषया सर्वं व्याख्यास्यते॥

भा०—अस्मिन्ननुवाके चतस्रः कण्डिकाः सन्ति तदग्रे च स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यमित्यादि चत्वारि वाक्यानि सर्वासां कण्डिकानामन्तिमानि धृतान्यविपरीतबोधार्थम्। तेषु वर्त्तेरन्नित्यतः पश्चात्सप्त वाक्यान्यवशिष्टानीति सप्त चेत्यनेन बोध्यते। सर्वत्राध्ययनं द्विविधम्। शास्त्रीयपुस्तकानां गुरुमुखात्पाठस्य पाठक्रमेणार्थस्य च श्रवणं तस्य तथैव मननं चैकम्। द्वितीयमधीताध्यापितशास्त्राणां सिद्धान्तसारमादायाचार्यैः शिक्षा श्रावयितव्या शिष्यैश्च श्रोतव्या। तदनुकूलमेव विहितमनुष्ठेयं च वर्जनीयमित्थमेवेष्टं कल्याणं प्राप्तुं शक्यते। न हि केवलेन गुरुमुखाच्छास्त्राणां श्रवणेन तदर्थविज्ञानेन वा भवितुमर्हति। तस्माद्वेदाध्ययनानन्तरं गुरुणा वेदानुकूलं कर्त्तव्यमकर्त्तव्यं च शिष्येभ्यः शिक्षणीयं शिष्यैश्च सावधानतया श्रुत्वा धारणीयम्॥ ११॥

भाषार्थः—इस अनुवाक के प्रत्येक पदों का अर्थ स्पष्ट जान कर संस्कृत में नहीं किया किन्तु जिन पदों पर कुछ विशेषता समझी गयी उन का अर्थ लिख दिया है और आगे भी अब ऐसा ही किया जायगा परन्तु भाषा में प्रत्येक पद का पूरा २ अर्थ रहा करेगा। (आचार्यः) गुरु (अन्तेवासिनम्) समीप रहनेवाले शिष्य को (वेदम्) वेद (अनूच्य) पढ़ाकर (अनुशास्ति) पीछे कर्त्तव्य की शिक्षा करता है वा करे कि हे शिष्य! तुम (सत्यम्,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वद) सत्य बोलो अर्थात् प्रत्यक्षादि प्रमाणों से जैसा देखा, जाना वा सुना हो वैसा ही बोलो (धर्मम्) धर्म का (चर) सेवन करो (स्वाध्यायात्) वेदशास्त्र के पढ़ने से (मा, प्रमदः) प्रमाद न करो अर्थात् नित्य के पठन-पाठन को न भूलो वा आलस्यादि से न छोड़ो (आचार्याय) जब तुम विद्या पढ़ चुको तब गुरु से प्रार्थना करो कि अब मैं आपको प्रत्युपकार में क्या दक्षिणा दूँ सो आज्ञा कीजिये। आज्ञा पाकर यथाशक्ति माँगी हुई गुरु के लिये (प्रियम्, धनम्, आहृत्य,) यथेष्ट प्रिय दक्षिणा को देकर अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके (प्रजातन्तुम्) पुत्रादिरूप कुलपरम्परा को (मा,व्यवच्छेत्सीः) मत तोड़ो अर्थात् सन्तानोत्पत्तिरूप फल सहित गृहाश्रम का अवश्य सेवन करो आगे २ कुल के सन्तान (सिल-सिला) को बढ़ाते चलो (सत्यात्, न, प्रमदितव्यम्) तुमको भूल कर भी कभी झूठ न बोलना चाहिये (धर्मात्, न प्रमदितव्यम्) धृति आदि धर्म के लक्षणों को भूल से भी न छोड़ना चाहिये (कुशलात्, न, प्रमदितव्यम्) अपनी रक्षा के हेतु किये जानेवाले वेदोक्त अग्निहोत्रादि कर्म को कभी न छोड़ो वा मत भूलो (भूत्यै) सुखों के साधन धनादि को प्राप्त करानेवाले कर्म से कभी प्रमाद न करना चाहिये अर्थात् धर्मादि उपार्जन के उद्योग को कभी मत छोड़ो (स्वाध्यायप्रवचनाभ्याम्) पढ़ने पढ़ाने को कभी मत भूलो (देव-पितृकार्य्याभ्याम्) देव-अध्यापक उपदेशक शिक्षक विद्वान् और पितृ-नाम मननशील ज्ञानी इन दोनों को (न, प्रमदितव्यम्) सेवा सत्कार पूजा से प्रमाद वा भूल मत करा अर्थात् इन की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर सेवा सत्सङ्ग करो। तथा विशेष कर आगे कहे मातादि देव नामक हैं उनकी सेवा करना भी परमधर्म है। तुम (मातृदेवः) माता को देव माननेवाले (भव) होओ (पितृदेवः) पिताको देव—पूज्य माननेवाले (भव) होओ (आचार्यदेवः) गुरु को पूज्य माननेवाले(भव) होओ (अतिथिदेवः) अतिथि नाम अकस्मात्प्राप्त होने वाले सद्धर्मोपदेशक पुरुष को देव-पूज्य माननेवाले (भव) होओ (यानि) जो कहे हुए धर्मसम्बन्धी कार्यों से भिन्न वेदादिशास्त्र में कहे वा शिष्टाचारसम्बन्धी (अनवद्यानि) अनिन्दित (कर्माणि) कर्म हैं (तानि) उन का तुम को (सेवितव्यानि) सेवन करना चाहिये। (नो, इतराणि) किन्तु निन्दित कामों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिये। कदाचित् निन्दित काम कभी किसी कारण शिष्ट पुरुष से भी बन पड़ा हो तथापि हम को उस का दृष्टान्त लेकर न करना चाहिये। इसी बात को और भी स्पष्ट करते हैं (अस्माकम्) हम आचार्य लोगों के (यानि) जोर (सुचरितानि) शास्त्र की आज्ञा के अनुकूल कर्म हैं (तानि) उन का (त्वया) तुम को (उपास्यानि) सेवन करना चाहिये (नो, इतराणि) यदि हम अध्यापक वा उपदेशक-शिक्षकों में किसी प्रकार के दोष हों तो उन का सेवन तुम कभी मत करो और न उन बड़ों का दृष्टान्त दो कि अमुक भी तो ऐसा करते थे। तथा (ये, के, च) जो कोई अन्य (अस्मत्) हम जो तुम्हारे शिक्षक वा गुरुजन हैं उन से भिन्न (श्रेयांसः) अत्यन्त प्रशंसा के योग्य (ब्राह्मणाः) वेदशास्त्र के जाननेवाले विद्वान् ब्राह्मण हों (तेषाम्) उनका (आस-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नेन) आसन-विस्तर आदि देकर सत्कार वा सुख की सामग्री से (त्वया) तुमको उनका दुःख निवृत्त करना उचित है। अर्थात् हम से भिन्न अन्य भी प्रशस्त विद्वानों का सत्सङ्ग वा सेवा करके अपना भी दुःख हटाना वा उनका सदुपदेश मानना चाहिये। अब छः वाक्यों से दान-धर्म की आवश्यकता दिखाते हैं (श्रद्धया, देयम्) श्रद्धापूर्वक दान दो (अश्रद्धया, देयम्) श्रद्धा न हो तो भी दान करो क्योंकि न करने से करना अच्छा है (यद्यपि अश्रद्धा से दान देना धर्मशास्त्रों में निषिद्ध है तथापि वह श्रद्धापूर्वक देने की अपेक्षा बुरा है किन्तु जो सर्वथा दान करता ही नहीं उस की अपेक्षा अश्रद्धा से देनेवाला भी अच्छा है) "इस वाक्य में शङ्करस्वामी ने" " अदेयम्" पद निकाला और अश्रद्धा से दान देने का निषेध किया है। तथा विद्यारण्यस्वामी ने "देयम्" पद निकाला और अश्रद्धा से भी देना कहा है। यद्यपि जिस किसी प्रकार ये दोनों पक्ष ठीक हो सकते हैं तो भी "देयम्" पद निकालना ठीक जान पड़ता है। क्योंकि आगे लज्जा से भी देना कहा है। "कई उस के साथी मित्र दान करें और एक दो कोई न करे तो उस को लज्जित होना पड़ता है इस कारण लज्जा से दान कहा गया" (श्रिया, देयम्) धनप्राप्ति देख कर दान करो (हिया, देयम्) लज्जा से दान करो (भिया, देयम्) कृपण के साथ लगनेवाली बुराइयों के भय से दान करो और (संविदा, देयम्) मित्रादि के कार्य सिद्ध होने के निमित्त दान करना चाहिये। इत्यादि प्रकार से धर्मसम्बन्धी काम करने में (अथ, यदि.) जो (ते) तुमको (कर्मविचिकित्सा)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदोक्त अग्निहोत्र सन्ध्यादि कर्मों में (वा) और (वा) अथवा (वृत्तविचिकित्सा, स्यात्) दया, दान वा सत्यादि के आचरण में सन्देह हो अर्थात् जहां दो प्रकार का कर्त्तव्य का मार्ग आ जावे तो किस पर चलें कैसा करें ? तब (ये) जो (तत्र) उस देश वा काल में (युक्ताः) धर्म करने में स्वयमेव प्रवृत्त (आयुक्ताः) व किसी की प्रेरणा से धर्म करनेवाले (अलूक्षाः) निर्दयता रहित (धर्मकामाः) धन और विषयभोग में ही न फँस के सर्वोपरि धर्म को चाहनेवाले (सम्मर्शिनः) सम्यग् विचार करने में समर्थ (ब्राह्मणाः) वेदवेत्ता ब्राह्मण लोग हैं (ते) वे (यथा) जैसे (तेषु) उस संदिग्ध विषय में (वर्त्तेरन्) वर्त्तें अर्थात् दो में से जिसको करें (तथा) वैसे (तत्र) उसमें तुम भी (वर्त्तेथाः) वर्त्तो । (अथ) इसके अनन्तर (अभ्याख्यातेषु) जिनमें कुछ लोगों ने सन्देह डाल दिया हो वहां भी (तत्र) उन देश वा समयों में (ये) जो (युक्ताः) स्वयं धर्मात्मा लोग (आयुक्ताः) भयादि से धर्म करने वाले (अलूक्षाः) दयालु (धर्मकामाः) धर्म के प्रेमी (सम्मर्शिनः) सम्यग् विचारशील (ब्राह्मणाः) ब्राह्मण (स्युः) हों (ते) वे (यथा) जैसे (तत्र) उन सन्दिग्ध विषयों में (वर्त्तेरन्) वर्त्तें (तथा) वैसे (तेषु) उनमें (वर्त्तेथाः) वर्त्तो । (एषः) यह (आदेशः) वेदादि शास्त्र की आज्ञा (एषः) यही (उपदेशः) शिक्षक पितादि की आज्ञा है (एषा) यही (वेदोपनिषद्) वेद सम्बन्धी ब्रह्मज्ञान का गुप्त मन्त्र वा पूर्वरूप है और (एतत्) यही (अनुशासनम्) बार २ उपदेश वा शिक्षा है कि मनुष्य को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(एवम् उपासितव्यम्) (एवम्, उ, च, एतत्, उपास्यम्) उक्त प्रकार से कर्त्तव्य का सेवन करना चाहिये। द्वितीय वार कहने का प्रयोजन यह है कि यही मनुष्य के कल्याण का मार्ग है। इसी प्रकार आचरण करनेसे प्राणी इष्ट को पा सकता है अन्यथा नहीं ॥

भा०—इस ग्यारहवें अनुवाकमें चार कण्डिकायें हैं उसके आगे (स्वाध्यायप्र०) इत्यादि चार कण्डिकाओं के अन्त्य के धरे हैं कि जिससे विपरीत ज्ञान न हो। (तेषु वर्त्तेरन्) इससे आगे सात वाक्य शेष रह जाते हैं। उन्हीं का (सप्त च) इस पद से बोध कराया है* ॥

सब प्रसङ्ग वा दशाओं में पढ़ना दो प्रकार का है—गुरुमुख से शास्त्र सम्बन्धी पुस्तकों का पाठ और पाठ के क्रम से अर्थ सुन कर उसका वैसे ही मनन करना एक प्रकार का पढ़ना है। द्वितीय पढ़े पढ़ाये शास्त्रों के सार रूप सिद्धान्त को लेकर आचार्य लोगों की शिक्षा सुनाना और शिष्यों का सुन कर मानना वा तदनुकूल आचरण करना। उसी के अनुसार विहित का सेवन और निषिद्ध का त्याग करने से ही इष्ट कल्याण प्राप्त हो सकता है किन्तु गुरु-मुखसे शास्त्रों के सुनने वा उनके अर्थ विचारने मात्र से वैसा कल्याण नहीं हो सकता। इससे वेद पढ़ाने के पश्चात् गुरु को उचित है कि वेद के अनुकूल कर्त्तव्याकर्त्तव्य की शिक्षा शिष्यों को करे

---

* यही आशय पीछे वा आगे जहां अनुवाक के अन्त्य के संस्कृत वाक्यों का कुछ अर्थ नहीं किया हो, वहां सर्वत्र समझ लेना।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और शिष्यों को भी सावधान होकर शिक्षा को सुनना वा धारण करना चाहिये ॥ ११ ॥

शन्नो मित्रः शं वरुणः । शं नो भवत्वर्यमा । शन्न इन्द्रो बृहस्पतिः । शन्नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्मावादिषम् । ऋतमवादिषम् । सत्यमवादिषम् । तन्मामावीत् । तद्वक्तारमावीत् । आवीन्माम् । आवीद्वक्तारम् ॥१२॥ ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ सत्यमवादिषं पञ्च च ॥

इति द्वादशोऽनुवाकः ॥

शन्नः, शिक्षां, सह नौ, यच्छन्दसां, भूः, स यः, पृथिवीं, ओमिति, ऋतञ्च, अहं, वेदमनूच्य, शन्नो द्वादश ॥ ॥१२॥ शन्नो, मह इत्यादित्यो, नो इतराणि, त्रयोविंशतिः ॥

इति शिक्षाध्यायः प्रथमा वल्ली समाप्ता ।

अयमेव मन्त्र एतदध्यायारम्भे व्याख्यातस्तत्र क्रियासु कालभेद एव भेदोऽस्ति । मङ्गलाचरणार्थश्चास्य मन्त्रस्य पाठः प्रायः क्रियते तस्य स एवार्थः सर्वत्र बोध्यः पुनः पुनस्तदर्थलेखनं पिष्टपेषणवद्भातीति मत्वार्थो न लिख्यते । सत्यमवादिषमित्यवध्येका समुदायसञ्ज्ञा । तदग्रे पञ्च वाक्यानि सन्ति । द्वादशानुवाकाग्रे शन्नः, शीक्षामित्यादि कथनं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रत्येकानुवाकस्य प्रतीकप्रदर्शनार्थम् । येन कश्चित्प्रक्षिप्तादिकं कुर्याच्चेद्गोप्तुमशक्यम् । शन्नो मह आदित्य इत्यादिकथनमनवाकस्योपरि कस्याश्चिद्विशिष्टसञ्ज्ञाया बोधार्थम् ॥१२॥

भाषार्थः—यही (शन्नः०) मन्त्र इस अध्याय के आरम्भ में कहा गया है उसकी क्रियाओं में काल का भेद ही केवल भेद है जैसे वहां कहा कि मैं आपको ही साक्षात् ब्रह्म कहूँगा, शास्त्रानुकूल कहूँगा वा सत्य कहूँगा इत्यादि आरम्भ का कथन भविष्यत् काल की क्रियाओं से है और यहां अन्त्य में "मैंने आपको साक्षात् ब्रह्म कहा शास्त्रानुकूल कहा वा सत्य कहा" इत्यादि भूतकाल की क्रियाओंसे कहना चाहिये । "वह मेरी रक्षा करे" ऐसा आरम्भ में और "उसने मेरी रक्षा की" इत्यादि अन्त्य में कहना वा मानना चाहिये अर्थात् किसी कार्य वा पढ़ने के आरम्भ में भविष्यत् की क्रियाओं से प्रतिज्ञा करे कि मैं ऐसा करूँगा ईश्वर मेरी रक्षा करे और कार्य वा पढ़ने की समाप्ति में भूत की क्रियाओं से प्रतिज्ञा करे कि मैंने धर्मानुकूल सत्यादि कहा इससे उसने मेरी रक्षा की इत्यादि । सो इस (शन्नः०) मन्त्र में प्रारम्भ में किये अर्थ से केवल भूत की क्रिया बदलना ही भेद है और मङ्गलाचरण के लिये इस मन्त्र का प्रायः पाठ किया जाता है इस कारण उसका सर्वत्र वही अर्थ समझना चाहिये । फिर २ अर्थ लिखना पिसे को पीसने के तुल्य है ऐसा मानकर अर्थ नहीं लिखते । (सत्यमवादिषम्) यहां तक एक समुदाय की संज्ञा है आगे पांच वाक्य हैं । इस बारहवें अनुवाक के आगे (शन्नः, शोचाम्) इत्यादि कथन इस वल्ली के प्रत्येक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुवाक की प्रतीक दिखाने को है कि जिससे कोई पीछे कुछ मिला न सके वा मिलावे तो छिपे नहीं (शन्नो, मह आदित्यः) इत्यादि कथन अनुवाक से ऊपर कोई बड़ी संज्ञा जताने के लिये है॥ १२॥

इति भीमसेनशर्म्मकृते तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्ये शिक्षाध्यायरूपा प्रथमा वल्ली समाप्ता ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ ब्रह्मानन्दवल्ली ।

ओ३म्–सह नाववतु सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्वि नावधीतमस्तु । मा विद्विषावहै । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

अथादौ प्रार्थना शान्तिश्चाभिधीयते (नौ) आवाम् (सह) सहैव परमेश्वरः (अवतु) तर्पयतु (नौ) (सह) (भुनक्तु) पालयतु । आवाम् (वीर्यं) ब्रह्मविद्यातो निष्पन्नं सामर्थ्यम्) सह (करवावहै) साधयावहै (नौ) आवयोः शिष्याचार्य्ययोः (अधीतम्) अध्ययनमध्यापनं च (तेजस्वि) ब्रह्मतेजोऽन्वितमस्तु । शिष्याचार्य्यावावाम् (मा विद्विषावहै) द्वेषं मा करवाव । (ओ३म् शान्तिः ३) त्रिविधशान्तिविधानेन तापत्रयं शान्तं भवतु ॥

भा०—सर्वस्मिन्कर्मणि परमेश्वर आदावन्ते च प्रार्थनीयः । उपद्रवा दुःखानि च न भवेयुरेतदर्थं शान्तिश्चाभिधेया । गुरुशिष्ययोर्लेशमात्रोऽपि भेदो न भवेत् । द्वयोरन्तःकरणं शुद्धं सेव्यसेवकप्रीतिवर्द्धकं प्रार्थनातत्परं मृदु भवेत्तदा विद्या सफला भवति । येनाध्यात्मिकाधिभौतिकदुःखानां

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिः स्यात्। अत्र द्विर्वचननिर्देशाच्छिष्याचार्याभ्यां स्त्रीपुंसाभ्यां वा प्रार्थना शान्तिश्च वक्तव्या ॥ १ ॥

भाषार्थः—अब द्वितीय ब्रह्मानन्द वल्ली के प्रारम्भ में प्रार्थना और शान्ति कहते हैं (नौ) हम दोनों (गुरु शिष्यों) को (सह) साथ ही परमेश्वर (अवतु) तृष्णा को छुड़ा के तृप्त सन्तुष्ट करे (नौ) हम दोनों की (सह) साथ (भुनक्तु) रक्षा करे। हे परमेश्वर! आपकी कृपासे हम दोनों (वीर्यम्) ब्रह्मविद्या के अभ्यास से हुए सुख दुःखादि द्वन्द्व सहनादिरूप सामर्थ्य को (सह) साथ (करवावहै) सिद्ध करें। (नौ) हमदोनों का (अधीतम्) पढ़ना पढ़ाना (तेजस्वि) ब्रह्म के तेज से युक्त (अस्तु) हो। हम दोनों (मा, विद्विषावहै) आपस में कभी द्वेष न करें (ओ३म्) हे परमात्मन्! आप ऐसी कृपा करें जिससे हमारे आध्यात्मिक—मानस, आधिदैविक—वाचिक वा शाब्दिकादि तथा आधिभौतिक—शारीरिक उपद्रव वा दुःख शान्त हो जावें ॥

भा०—सब कर्मों के आदि अन्त में परमेश्वर की प्रार्थना और उपद्रव वा दुःखों के हटाने के लिये शान्ति कहनी चाहिये। जब गुरु शिष्य के अन्तःकरण में लेशमात्र भी भेद न हो किन्तु दोनों का अन्तःकरण शुद्ध परस्पर प्रीति बढ़ानेवाला प्रार्थना में रँगा कोमल हो तब विद्या सफल होती है जिससे आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक दुःखों की शान्ति हो। इस मन्त्र में कर्त्ता क्रिया के द्विवचन पढ़ने से गुरु शिष्य वा स्त्रीपुरुषादि दो २ को मिल के ईश्वर की प्रार्थना और शान्ति कहनी वा माननी चाहिये ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्। ब्रह्मविदाप्नोति परम्। तदेषाऽभ्युक्ता। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन्। सोऽश्नुते सर्वान् कामान्। सह ब्रह्मणा विपश्चितेति। तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी। पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नम्। अन्नाद्रेतः। रेतसः पुरुषः। सवा एष पुरुषोऽन्नरसमयः। तस्येदमेव शिरः। अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः। अयमात्मा। इदं पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति॥

इति प्रथमोऽनुवाकः॥

अथ द्वितीयवल्ल्यां ब्रह्मणो ज्ञानाय विचारः प्रारभ्यते तादृश उद्योगश्च प्रदर्श्यते। ब्रह्मवित्पुरुषः परं कल्याणमाप्नोति। तत्तस्य स्वरूपबोधार्थमेषा वक्ष्यमानलक्षणा ऋक्-स्तुतिः पूर्वजैरभ्युक्ता कथिता (सत्यं—विपश्चितेति) अत्रेतिशब्दोऽस्य ऋग्रूपस्य पद्यस्यान्यकर्तृकत्वं सूचयति। प्रमाणार्थं चात्र धृतमिति प्रतीयते। सत्यं—सत्यस्वरूपं यत्स्वरूपान्न च्यवते न विकृतं भवति न व्यभिचरति। ज्ञानं ज्ञानस्वरूपं यत्राज्ञानस्य जड़वस्तुनोऽचैतन्यगुणस्य जीवात्मस्थविपरीतज्ञानस्य वा लेशोऽपि नास्ति। अनन्तमसीममनवधिकं सर्वस्मिन् चराचरे व्याप्तम्। एवमुक्तविशेषणविशिष्टं ब्रह्मेति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदवाच्यं विशेष्यमस्ति तत् परमे प्रकृष्टे व्योम्नि हृदयाकाशे या गुहा गूढा अस्यां संस्कारवासनारूपेणेन्द्रियैरात्ममनःसंयोगेन वाऽनुभूता विषयाः। तस्यां निहितं स्थितं व्याप्तं यो विद्वान् मनुष्यो वेद—जानाति स विपश्चिता मेधाविना सर्वज्ञेन ब्रह्मणा सह साद्धं सर्वान्कामानभीष्टान् भोगान् सुखानुभवानश्नुते प्राप्नोति। तस्मात्सत्यादिस्वरूपादेतस्मादनन्तरोक्तात्परमात्मन आकाशो वायोः कारणं शब्दगुणं तत्त्वं सत्तात्मकमुत्पन्नं न चात्राभावमात्रं शून्यमाकाशपदवाच्यम्। आकाशोऽस्तीत्यस्तित्वसामान्येन प्रतीयमान आसीत्। तस्माच्चाधारभूताद्वाय्वादयः प्रादुर्भूता रेतसः पुरुष इत्यत्र पुरुषशब्देन शिरआद्यवयवैः पूर्णं शरीरमभिधीयते स वै तदेव शरीरमन्नरसमयमन्नस्य रसमन्नरसमन्नरसमेव प्रचुर प्रकृतमस्मिन् तदन्नरसमयम्। अयमात्मा मध्यो नाभेरुपरि ग्रीवावधि शरीरस्य स्थूलभागो मध्यात्मा मध्यशरीरमित्युच्यते। नाभेरधस्ताद्यदङ्गं तदेव पुच्छं पृष्ठभागादध एव पश्वादीनामपि पुच्छं दृश्यते पुच्छशब्दोऽत्र पुच्छनिस्सरणस्थानस्य नितम्बादिसंज्ञकस्य बोधकोऽस्ति येन मनुष्यः पृथिव्यां तिष्ठति। अतएव तस्य देहावयवस्य प्रतिष्ठेति नामास्ति प्रतितिष्ठत्यनयेति निर्वचनात्। पक्षपुच्छशब्दावत्र शरीरस्य पक्षिण उपमाप्रदर्शनार्थौ। तदप्येष श्लोको भवति—तस्मिन्पूर्वोक्तेऽर्थे शरीरस्थान्नरसमयत्वप्रतिपादकविषये वक्ष्यमाणो द्वितीयानुवाकारम्भस्थः श्लोकः पद्यं प्रमाणमस्ति॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—अधुना पञ्चानुवाकेषु प्रत्यगात्मत्वेनाध्यात्मविचारे स्थूलदेहादारभ्य सूक्ष्मसूक्ष्मतरभेदास्तेषां सम्बन्धश्च प्रदर्श्यते। इयं च द्वितीया ब्रह्मानन्दवल्ली तस्यां प्रधानतया ब्रह्मण एव स्वरूपनिरूपणेन भाव्यमिति प्राप्तम्। पुनः किमर्थमन्नमयादिशरीरस्य विचारः प्रारब्ध इति चेदुच्यते—प्रत्यगात्मविचारे सम्पन्ने बुद्धिः सूक्ष्मतरा सञ्जायते तथा सति ब्रह्म ज्ञातुं शक्नोति। अस्य जगत उत्पत्तिस्थितिलया अनन्यकर्तृकास्तेषां प्रतिपादनेन ब्रह्मणो ज्ञानमुत्पद्यते। तथाऽन्नादिपदान्यपि ब्रह्मणो वाचकानीति ब्रह्मैव प्रतिपाद्यते। अर्थात् कुत्रचित्साक्षात्कुत्रचित्परम्परया सर्वथा ब्रह्मण एव प्रतिपादनमस्ति। यतः कारणात्तस्मात्सर्वमिदमुत्पन्नमतः सर्वशक्तिमत्सर्वज्ञं च ब्रह्मेत्यनुमीयते। यद्यपि स्थूलशरीरे शिरोवामदक्षिणभागादीनां कल्पनस्य विशिष्टे प्रयोजनं नास्ति तथाप्युत्तरानुवाकेषूपमयाऽवयवकल्पनसादृश्यप्रदर्शनार्थमत्रावयवकल्पनम्। अन्यच्च सर्वं स्पष्टमेवास्ति॥

अत्रानुवाके श्रीमच्छङ्करस्वामिना प्राकट्येन द्वैतभावबोधकान्यपि पदानि यथाकथञ्चित् क्लिष्टकल्पनया स्वस्याद्वैतपक्षस्य प्रतिपादनाय व्याख्यातानि। यथा—"स विद्वान् सर्वज्ञेन ब्रह्मणा सह सर्वान् कामानश्नुते" इत्यत्र वाक्ये ब्रह्मशब्दात्सहार्थे तृतीया विभक्तिरस्ति। यत्र च सहार्थे "सहयुक्तेऽप्रधाने" इति पाणिनिसूत्रेण तृतीया विधीयते तत्र प्रधानाप्रधानयोर्द्वित्वं सर्वैः स्पष्टमेव प्रतीयते। तस्य दृष्टान्तरूपा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एयुदाहरणानि—यथा—शिष्येण सहागतो गुरुः, पुत्रैः सह भ्रमति पिता इत्यादिषु गुरुशिष्यादिद्वन्द्वस्याभेदान्वयो यथा दुर्लभस्तथैवात्रापि "ब्रह्मणा सह विद्वान् सर्वान् कामानश्नुते" जीवब्रह्मणोरेकत्वप्रतिपादनमाशामोदकायितमेव। तस्मात्तेषाम् —"ब्रह्मभूतो विद्वान् ब्रह्मस्वरूपेणैव सर्वान् कामान् सहाश्नुते। न यथोपाधिकृतेन स्वरूपेणात्मनो जलसूर्यकादिवत् प्रतिबिम्बभूतेन सांसारिकेण" इत्याद्यप्रासङ्गिकं मूलात्सर्वथा सम्बन्धविरहं कथनं विद्वद्भिश्चिन्त्यं सत्यं चान्विष्य ग्राह्यम्। मूलार्थश्च स्पष्ट एवास्ति ॥ १ ॥

भाषार्थः—अब तृतीय वल्ली में ब्रह्मज्ञान सम्बन्धी विचार का आरम्भ किया जाता और वैसा उद्योग दिखाया जाता है कि जिस से ब्रह्म को जान सकें। मनुष्य के परिश्रम की सफलता तभी हो सकती है जब वह सब दुःखों से छूट के परमकल्याण को प्राप्त हो। क्योंकि प्राणिमात्र दुःखों से बचने और इष्ट सुख अर्थात् सर्वोत्तम सुख को प्राप्त होने के लिये ही प्रतिदिन नानाप्रकार के सत् असत् उपाय रचा करता है परन्तु सबका यथावत् इष्ट सिद्ध नहीं होता यद्यपि कुछ २ सांसारिक दुःखों की निवृत्ति और सुखों की प्राप्ति होती रहती है परन्तु (ब्रह्मवित्) ब्रह्मज्ञानी पुरुष (परम्) सर्वोत्तम कल्याण को (आप्नोति) प्राप्त होता है (तत्, एषा, अभ्युक्ता) उस परमेश्वर का स्वरूप जताने के लिये यह आगे कही ऋचारूप स्तुति पूर्वज लोगों ने कही है कि (सत्यं०-विपश्चिता) इस मन्त्र में इति शब्द को अन्य का बनाया वा अन्य ग्रन्थ का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होना जताने के लिये है और प्रमाण के लिये यहां धरा गया है (सत्यम्) जो अपने स्वरूप से च्युत वा चलायमान नहीं होता जिसमें किसी प्रकार विकार वा स्वरूपभेद नहीं पड़ता (ज्ञानम्) जो ज्ञानस्वरूप है जिसमें अज्ञान वा चेतनतारहित जड़ वस्तुके गुण का मेल भी नहीं अथवा जीवात्मा में रहनेवाले विपरीतज्ञान का जिसमें लेश भी नहीं (अनन्तम्) सीमा वा जिसकी अवधि (हद) नहीं हो कि इतना लम्बा चौड़ा वा हलका भारी आदि है किन्तु सब चराचर व्याप्त इस प्रकार उक्त विशेषणयुक्त (ब्रह्म) विशेष्य ब्रह्म है उस (परमे) उत्तम शुद्ध (व्योमन्) हृदयरूप आकाश-रूप (गुहायाम्) इन्द्रियों के द्वारा आत्मा और मन के संयोग वा संस्कार और वासनारूप से अनुभव किये विषय जिस में दबे हुए हैं ऐसी जो बुद्धि उस में (निहितम्) स्थित वा व्याप्त ब्रह्म को (यः) जो मनुष्य (वेद) जानता है (सः) वह विद्वान् (विपश्चितः) मेधावी सर्वज्ञ (ब्रह्मणा) ब्रह्म के (सह) साथ (सर्वान्) सब (कामम्) अभीष्टभोग वा सुख के अनुभवों को (अश्नुते) प्राप्त होता है। (तस्मात्) इस कारण सत्यादिस्वरूप (एतस्मात्) इस के अनन्तर पीछे कहे (वै, आत्मनः) परमात्मा से ही (आकाशः) वायु का कारण शब्दगुणवाला सत्तात्मक तत्त्व (सम्भूतः) उत्पन्न हुआ यहां अभाव वा शून्यमात्र आकाश का अर्थ नहीं, किन्तु आकाश एक तत्त्व है अर्थात् आकाश इस प्रकार अस्तित्व सामान्य से प्रतीत हुए (आकाशात्) आकाश-तत्त्व से (वायुः) वायु (वायोः) शब्दस्पर्श गुणवाले वायुतत्त्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से (अग्निः) अग्नि (अग्नेः) अग्नि से (आपः) जल (अद्भ्यः) जलों से (पृथिवी) पृथ्वी (पृथिव्याः) पृथ्वी से (ओषधयः) ओषधियां अर्थात् गेहूँ जौ आदि के वृक्ष (ओषधिभ्यः) ओषधियों से (अन्नम्) उन ओषधियों के फलरूप दाने हुए जिन को गेहूँ जौ आदि कहते हैं (अन्नात्) जिस के भोजन वा सेवन करने से बने रसादि द्वारा (रेतः) वीर्य उत्पन्न होता और (रेतसः) वीर्य से (पुरुषः) शिर आदि अवयवों से पूर्ण शरीर उत्पन्न होता है। (यहां की उत्पत्ति में आत्मा को उपादान कारण दिखाने से ग्रन्थकार का तात्पर्य नहीं है। यदि ऐसा हो तो सर्वत्र ही चेतन को जड़ का कारण मानना पड़े, पर यह युक्ति प्रमाणों से विरुद्ध है क्योंकि पृथिव्यादि जड़ पदार्थों से घटादि पदार्थ कहीं चेतन उत्पन्न नहीं होते और चेतन उपादान से जड़ होने के लिये कोई प्रमाण भी नहीं मिल सकता। न्याय में कार्य-कारण का सारूप्य मानने का यही आशय है कि जड़ का उपादान जड़ ही हो सकता है। 'द्वा सुपर्णा०" इत्यादि वेद मन्त्रों और "अजामेका०" इत्यादि उपनिषद् वाक्यों में जड़ प्रकृति को अनादि इसीलिये माना है कि जड़ जगत् को जड़प्रकृति उपादान मानना चाहिये। जब जड़ कार्य का चेतन उपादान नहीं हो सकता तो परमेश्वर किसी जड़कार्य का उपादान नहीं ठहरेगा। फिर अद्वैत पक्षवालों का सिद्धान्त जो अत्यन्त निर्बल है कि परमात्मा ही सर्वरूप बनगया है खण्डित होता है। अब आकाशादिसे वायु आदि कीउत्पत्ति दिखायी गयी है उस का तात्पर्य यह है कि " जिस के होने पर जो हो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न होने पर न हो, वह उस का कारण माना जाता है" सो परमेश्वर के विना आकाशादि कोई वस्तु उत्पन्न नहीं हो सकता इस लिये सब कारणों का भी कारण ईश्वर है। आकाश वायु का आधार है। आकाश न हो तो वायु नहीं ठहर सकता। अग्नि का कारण वायु है। इसी से जहाँ वायु का प्रवेश नहीं होता वहां अग्नि बुझ जाता है। वायु की सहायता से ही दीपक भी जलता है। इसी से किसी पात्र में जहां वायु न पहुँचे दीपक नहीं जल सकता। इस कारण अग्नि का कारण वायु है। अग्नि से अर्थात् सूर्यादि के ताप से जलकी प्रवृत्ति है। अर्थात् इसी कारण ग्रीष्म में सूर्य का विशेष ताप बढ़ने और होम यज्ञादि के अधिक करने में वर्षा होती है इस से जल का कारण अग्नि है। जल से पृथ्वी की स्थिति हो रही है। सब पार्थिव पदार्थ जल की सहायता से कार्य दे रहे हैं। मनुष्यादिप्राणियों के शरीर अन्न के विना कभी अधिक भी ठहर सकें परन्तु जल के विना चार छः दिन भी बचना कठिन है। इसी कारण वर्षा न होने पर अकाल वा दुर्भिक्ष का हाहाकार मचजाता है। इस से पृथिवी का का कारण जल है इत्यादि प्रकार आकाशादि सूक्ष्म २ जड़ तत्त्व पर दो जड़ तत्त्व का उपादान कारण मानना अनुचित वा अयुक्त नहीं है। ओषधियों का पृथ्वी उपादान कारण प्रसिद्ध है। इसी प्रकार अन्न का ओषधि और वीर्य का अन्न उपादान कारण है इसी वीर्य और आर्त्तव के सम्बन्ध से पुत्र के उपादान माता पिता भी माने जाते हैं। इस प्रकार वीर्य से बननेवाला शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष कहाता है। (सः, वै) वही पुरुषनामक शरीर (अन्नरसमयः) अन्न से उत्पन्न होनेवाला जो रसरूप धातु है उस से बननेवाले रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, वीर्य इन सब रूपोंवाला है अर्थात् अन्न से होनेवाले रसादि सात धातुमय शरीर हैं (तस्य) उस पुरुष नाम शरीर का (इदमेव) यही आंख नाक आदि युक्त (शिरः) शिर मुख्याङ्ग है। इसके विशेष पीडित होने से मरण और इसी की ठीक रक्षा से बुद्धि आदि की रक्षा है इसी के भेद से मनुष्य की व्यक्तियों का भेद है इस कारण यह मुख्य वा ऊपरी वा पहिला शरीर का भाग है अर्थात् सब शरीर का मूल कारण होने से पहिले यह गर्भ में बनता है (अयम्) यह जो प्रसिद्ध (दक्षिणः पक्षः) पूर्वाभिमुख पुरुष का दहिना भाग और (अयम्, उत्तरः, पक्षः) जो प्रसिद्ध है वही उत्तर की ओर वामभाग है (अयम्, आत्मा) और नाभी से ऊपर कण्ठपर्यन्त शरीर का मध्य भाग मदरा आत्मा नामस्वरूप है और जो नाभि से नीचे का भाग है वही (इदम्) यह (पुच्छम्) पूछ है। पीठ से नीचे पशु आदि की भी पूंछ होती है। पुच्छ शब्द यहां पूंछ निकलने के स्थान गुदाके समीप का नाम है कि जिस को टेक कर मनुष्य पृथिवी पर बैठता है इसी कारण देहके उस भाग का नाम (प्रतिष्ठा है कि उस साधन से बैठते हैं। इस अनुवाक में पक्ष नाम पङ्ख और पुच्छ नाम पूंछ शब्द शरीर को पक्षी की उपमा दिखाने के लिये पढ़े गये हैं (तत्, अपि, एषः,श्लोकः,भवति) उस पूर्वोक्त शरीरके अन्न रसरूप ठहराने विषय में आगे कहे द्वितीयानुवाक के आरम्भ का श्लोक प्रमाण है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—अब पाँच अनुवाकों में भीतरी ओर को अध्यात्मविचार किया जाता है। उस में स्थूल शरीर से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद और उन के सम्बन्ध दिखाये हैं। यह दूसरा ब्रह्मानन्दवल्ली नामक अध्याय है इसमें मुख्य कर ब्रह्म का ही स्वरूप निरूपण होना चाहिये फिर किस लिये अन्नमय आदि शरीर का विचार प्रारम्भ किया गया? इस का उत्तर यह है कि जब भीतरी ओर अध्यात्मविचार करना निश्चित होगया तो उस से बुद्धि अतिसूक्ष्म होजाती है और बुद्धि के सूक्ष्म होने से ही ब्रह्म को जान सकते हैं इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का अन्य कोई कर्त्ता नहीं किन्तु एक ब्रह्म ही है इत्यादि व्याख्यान से ब्रह्म का ज्ञान हो सकता है। तथा अन्नादि शब्द भी ब्रह्म के वाचक हैं इस कारण इन अनुवाकों में मुख्य कर ब्रह्म का ही प्रतिपादन है अर्थात् कहीं परम्परा से और कहीं साक्षात् परमेश्वर का वर्णन है। जिस कारण उस परमेश्वर से यह सब जगत् उत्पन्न हुआ है इस कारण वह सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् ब्रह्म अनुमान से प्रतीत होता है। यद्यपि वहां स्थूल शरीर में शिर और वाम—बायें दहिने भाग आदि की कल्पना का विशेष प्रयोजन नहीं तथापि अगले अनुवाकों में कही उपमा के साथ तुल्यता के लिये यहाँ अवयव की कल्पना की गई है। अन्य सब अंश स्पष्ट ही हैं॥

इस अनुवाक में शङ्कराचार्य स्वामी ने प्रसिद्धि में अद्वैत भाव जतानेवाले पदों को जिस प्रकार क्लिष्ट कल्पना से अपने अद्वैत पक्ष को सिद्ध करने के लिये दिखाया वा वर्णन किया है जैसे—"वह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वान् पुरुष सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ सब इष्ट कामनाओं को प्राप्त होता है"। इस वाक्य में ब्रह्मशब्द से सहार्थ में तृतीया विभक्ति है और जहां सह अर्थ में (सहयुक्ते०) सूत्र से तृतीयाविभक्ति का विधान किया गया है वहां प्रधान मुख्य और अप्रधान गौण दोनों प्रतीत होते हैं उस के दृष्टान्तरूप उदाहरण ये हैं जैसे–"शिष्य के सहित गुरु आया वा पुत्रों के सहित पिता घूमता है" इत्यादि वाक्यों में गुरु शिष्य वा पिता पुत्रादि को कोई एक नहीं कह सकता। वैसे यहां भी "सर्वज्ञ ब्रह्म के साथ विद्वान् पुरुष सब इष्ट सुख भोगता है" इत्यादि वाक्य में जीव ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन करना इच्छामात्र के मोदक खाना है इस कारण उन शङ्करस्वामी जी का "ब्रह्मरूप हुआ विद्वान् ब्रह्मरूप से ही सब सुखों को साथ भोगता है किन्तु जैसे जलरूप उपाधि से बना जल में सूर्य के प्रति बिम्ब के तुल्य संसारी जीव नामक प्रतिबिम्बरूप आत्मस्वरूप से मुक्ति सुख नहीं भोगता" इत्यादि प्रकरणविरुद्ध मूल से कुछ भी सम्बन्ध न रखनेवाला कथन विद्वानों को विचारणीय है और खोज कर सत्य का ग्रहण करना चाहिये ॥ १ ॥

अन्नाद्वै प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पृथिवीꣳ श्रिताः। अथो अन्नेनैव जीवन्ति। अथैनदपि यन्त्यन्ततः। अन्नꣳहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। सर्वं वै तेऽन्नमाप्नुवन्ति। येऽन्नं ब्रह्मोपासते। अन्नꣳहि भूतानां ज्येष्ठम्। तस्मात्सर्वौषधमुच्यते। अन्नाद्भूतानि जायन्ते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जातान्यन्नेन वर्द्धन्ते। अद्यतेऽत्ति च भूतानि। तस्मादन्नं तदुच्यत इति। तस्माद्वा एतस्मादन्नरसमयादन्योऽन्तर आत्मा प्राणमयः। तेनैष पूर्णः। सवाएष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्राण एव शिरः। व्यानो दक्षिणः पक्षः। अपान उत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा। पृथिवी पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

अन्नादेवोक्तप्रकारेण सर्वे स्थावरजङ्गमाः प्राणिदेहाः (प्रजायन्ते) उत्पद्यन्ते। अन्ततो मरणावसरेऽन्नमेवापियन्ति पृथिवीरूपेऽन्न एव प्रलीयन्ते प्राणिनां देहाः। क्षुन्निवृत्त्या महदुदुःखाद्वारकमिति कृत्वा सर्वौषधमन्नमुच्यते। अन्नमेवास्य प्राणिसमूहस्य सर्गस्थितिलयकारणमित्यतः सर्वस्माच्छ्रेष्ठं सर्वोपकारकत्वाद् ब्रह्म महदुपयुक्तमिति मत्वा ये उपासते प्राप्तिप्रयत्नमाचरन्ति ते पुरुषाः सर्वं सर्वविधमन्नमाप्नुवन्ति। पुनर्वचनमुपसंहारार्थम्। अद्यते प्राणिभिर्यत्तदन्नमोषधिफलम्। यच्च कर्तृरूपं भूतानि प्राणिनोऽत्ति तदन्नं पृथिव्यादिरूपं पृथिव्यामेव सर्वे प्राणिदेहा लीयन्ते प्राणिदेहविकारान् खादित्वा चान्नमुत्पद्यते तच्च प्राणिभिः खाद्यते। तस्मात्पूर्वोक्तादन्नरसमयात्स्थूलशरीरात्प्राणमय आत्माऽन्यो भिन्नोस्ति तेनैष देहः पूर्णः। स प्राणमयः सूक्ष्मोऽपि सन् स्थूलदेहा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार एवास्ति। तस्य स्थूलदेहस्य पुरुषाकृतिमत्त्वमनुलक्ष्यायं प्राणमयः पुरुषविधः कथ्यते। तस्य प्राणः शिर उत्तमस्थानीयः। व्यानो दक्षिणः पक्ष इत्यादि। आकाशो मध्ये समानो मध्यम्। पृथिवी च पुच्छस्थानीया॥

भा०—अन्नेन सम्यगुपयुज्यमानेन शरीरस्य स्वास्थ्यं संरक्षणं च कार्यम्। तदैव जगत उत्पत्तिस्थितिलयकर्त्तृ ब्रह्म सम्यगुपास्य कल्याणभाग्भवति॥ २॥

भाषार्थः—(याः, काः, च, पृथिवीम्, श्रिताः) जो कोई पृथिवी पर रहते वा वृक्षादि जमते हैं वे सब (अन्नात्, वै, प्रजाः, प्रजायन्ते) अन्न से ही उक्त प्रकार सब चर अचर प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं। (अथो, अन्नेन, एव, जीवन्ति) और अन्न से ही सब के प्राणों की रक्षा होती है। कुछ खाने को न मिले तो कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता (अथ, अन्ततः, एतत्, अपियन्ति) और अन्त में मरते वा नष्ट होते समय इसी पृथिवीरूप अन्न में सब चराचर के शरीर लीन हो जाते हैं। (अन्नम्, हि, भूतानाम्) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में अन्न ही (ज्येष्ठम्) सबसे उत्तम और बड़ा है क्योंकि सृष्टिप्रक्रिया में प्राणियों की उत्पत्ति से पहिले अन्न की उत्पत्ति दिखायी गयी है (तस्मात्) क्षुधा की निवृत्तिद्वारा महान् दुःख का हटानेवाला होने से अन्न ही (सर्वौषधम्) सब औषधिस्वरूप (उच्यते) कहा जाता है (ये) जो पुरुष (अन्नम्, ब्रह्म) अन्न सब का जीवनहेतु होने से महान् उपकारी है ऐसा मान कर (उपासते) उसका सेवन करते हैं (ते, वै)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेही पुरुष (सर्वम्, अन्नम्, आप्नुवन्ति) सब प्रकार के अन्न को प्राप्त होते हैं (अन्नम्, हि, भूतानाम्, ज्येष्ठम्) अन्न ही सब प्राणियों वा उत्पन्न हुए पदार्थों में बड़ा है (तस्मात्, सर्वौषधम्, उच्यते) इससे सब औषधियों का समूह अन्न कहा जाता है पुनः कथन अधिकता वा समाप्ति दिखाने के लिये है। (अन्नात्) अन्न से (भूतानि) प्राणी (जायन्ते) उत्पन्न होते और (जातानि) उत्पन्न हुए (अन्नेन) अन्न से (वर्द्धन्ते) बढ़ते हैं। मनुष्यादि प्राणियों से (अद्यते) खाया जाता इस निर्वचन से उसको अन्न कहते हैं और जो (भूतानि) उत्पन्न हुए चराचर को (अत्ति) खा जाता है (तस्मात्, अन्नम्, तत्) इससे वह अन्न पृथिव्यादि रूप है क्योंकि पृथिवी में ही सब प्राणियों के शरीर समा जाते हैं प्राणियों के शरीर के विकारों को खाकर अन्न उत्पन्न होता और वह प्राणियों से खाया जाता है (तस्मात्, वै, एतस्मात्, अन्नरसमयात्) उस पूर्वोक्त अन्न से बने रस आदि धातुरूप स्थूल शरीर के भीतर आत्मा भिन्न है (तेन, एषः, पूर्णः) उससे यह देह पूरित है अर्थात् वह देह में व्याप्त है (सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव) वह प्राणात्मा शरीर के तुल्य ही अवयवोंवाला है (तस्य, पुरुषविधताम्) उस स्थूल शरीर की आकृति के (अनु) अनुकूल सांचे में ढले वस्तु के तुल्य (अयम्) यह प्राणमय आत्मा (पुरुषविधः) शरीर के तुल्य कहाता है (तस्य) उसका (प्राण, एव, शिरः) प्राण ही शिर (व्यानः, दक्षिणः, पक्षः) व्यान दहिना—मुख्य भाग है क्योंकि व्यान सब शरीर में व्याप्त है (अपानः, उत्तरः, पक्षः) अपान बायाँ भाग है (आकाशः,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आत्मा) बीच में स्थित समान वायु मदरा (पृथिवी, पुच्छम्, पूतिष्ठा) पृथिवी का आश्रय अपान रखता है इसलिए प्राणात्मा की स्थिति का आश्रय पृथिवी है इसी कारण जब मनुष्य आकाश में यानादि द्वारा चढ़ता है तब उसको पृथिवी के साथ लगी अपान की आकर्षणशक्ति खींचती है और अधिक ऊपर चढ़ने से जीवन का भी भय हो जाता है। इससे पृथिवी ही प्राणात्मा की स्थिति का आश्रय होने से पुच्छस्थानी है। (तदप्येषः, श्लोको, भवति) इस उक्त विषय का आगे तृतीय अनुवाक के प्रारम्भ का श्लोक पोषक है अर्थात् प्रमाण है॥

भा०—अच्छे प्रकार उपयोग में लाये गये अन्न से शरीर की स्वस्थता और रक्षा करनी चाहिये क्योंकि शरीर के ठीक २ स्वस्थ वा रक्षित रहने पर ही जगत् की उत्पत्ति स्थिति और लय करने-वाले ब्रह्म की सम्यक् उपासना करके मनुष्य कल्याण का भागी हो सकता है॥ २॥

प्राणं देवा अनुप्राणन्ति। मनुष्याः पशवश्च ये। प्राणो हि भूतानामायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यते। सर्वमेव आयुर्यन्ति। ये प्राणं ब्रह्मोपासते। प्राणो हि भूताना-मायुः। तस्मात्सर्वायुषमुच्यत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्मात्प्राणमयात्। अन्यो-ऽन्तर आत्मा मनोमयः। तेनैष पूर्णः। सवा एष पुरुष-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य यजुरेव शिरः। ऋग्दक्षिणः पक्षः। सामोत्तरः पक्षः। आदेश आत्मा। अथर्वाङ्गिरसः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति॥

इति तृतीयोऽनुवाकः॥

देवाश्चक्षुरादीनीन्द्रियाणि प्राणमनुलक्ष्य तस्य सत्तयैव प्राणन्ति। यावत्प्राणास्तावदायुरिति प्राण एव जीवनं मनुष्यादीनाम्। ये प्राणं ब्रह्म बृहदुपकारकं जीवनहेतुं मत्वा सर्वोपायैः प्राणरक्षणमुपासते ते सर्वं पूर्णमायुः प्राप्नुवन्ति। तस्मात्प्राणः सर्वायुषरूपो भवति। अत्र यजुरादयः शब्दा मनसो वृत्तिभेदबोधकाः। मनसो या मुख्या स्वरूपबोधिका वृत्तिः सा यजुः। इत्थमेव "मनो यजुर्वेदः" इति शतपथब्राह्मणं (१४।४।३।१२) सङ्घटते। दयात्मिका वृत्तिर्यजुः। वाग्भिमुखी स्तुतिपरायणा मनोवृत्तिर्ऋक्पदवाच्या सैव मनोमयस्यात्मनो दक्षिणः पक्षः। शान्तिपरायणा ज्ञाननिष्ठा मनोवृत्तिः सामपदवाच्या सैवोत्तरः पक्षः। आदेशः शासनमुपदेश इन्द्रियाणां स्वस्वविषये प्रेरणं मनोमयस्यात्मनो मध्यम्। अहिंसाधर्मपरायणा मनोवृत्तिरथर्वाङ्गिरसपदवाच्या सैव प्रतिष्ठा पुच्छस्थानीया। अहिंसाधर्ममवलम्बमान एव मनोमय आत्मा प्रतितिष्ठते हिंसारतश्च भ्रमति। सुगमं चान्यत्सर्वम्॥

भा०—स्थूलशरीरादारभ्य सूक्ष्मसूक्ष्मतरविचारः प्रदर्शितः।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र स्थूलशरीरापेक्षया प्राणमय आत्मा सूक्ष्मस्तदपेक्षया च मनोमयः। सूक्ष्मः ज्ञानिना च तेषां सम्यक् स्वरूपं विज्ञेयम् ॥६॥

भाषार्थः—(देवाः) चक्षु आदि इन्द्रिय (प्राणम्, अनु) प्राण के आश्रय से वा प्राण के जीवित रहने से (प्राणन्ति) जीवित वा चेतन—देखना आदि शक्तियुक्त रहते हैं (ये, मनुष्याः, पशवः, च) और मनुष्य तथा पशु आदि भी जो जीवमात्र हैं वे सब प्राण के आश्रय रहते हैं क्योंकि (प्राणः, हि, भूतानाम्) प्राण ही सब जीवों का (आयुः) आयु है अर्थात् जब तक शरीर में प्राण हैं तभी तक आयु है (ये, प्राणम्, ब्रह्म, उपासते) जो लोग प्राण को सर्वोपरि उपकारक मुख्य जीवन का हेतु मानकर सब प्रकार के उपायों से प्राणरक्षा के साधनों का सेवन करते हैं (ते, सर्वम्, एव, आयुः, यन्ति) वे सम्पूर्ण अवस्था को प्राप्त होते हैं (तस्मात्, सर्वायुषम्, उच्यते) इस उक्त कारण से प्राण ही सब आयुरूप कहा जाता है। (प्राणो, हि, भूतानामायुः, तस्मात्सर्वायुषमुच्यते) प्राण ही प्राणियों का आयु है इससे सब प्राण आयुरूप कहा जाता है। इन दो वाक्यों का पुनः अनुवाद वा पाठ प्राण की वास्तविक विशेष प्रशंसा दिखाने के लिये है (तस्य, एषः, एव, शारीरः, आत्मा, यः, पूर्वस्य) उस प्राण का शरीर के भीतर रहनेवाला यही स्वरूप है जो पूर्व प्राणस्वरूप दिखाया गया है (तस्मात्, वै, एतस्मात्, प्राणमयात्) उस पूर्वोक्त प्राणस्वरूप आत्मा से (अन्यः, अन्तरः, आत्मा, मनोमयः) मन वा अन्तःकरण रूप आत्मा अन्य है (तेन, एषः, पूर्णः) उससे भी यह शरीर पूरित हो रहा है (सः, वै, एषः,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुषविध एव) सो यह अन्तःकरण भी शरीर के तुल्य अवयवों वाला ही है (तस्य, पुरुषविधताम्, अनु) उस शरीर वा प्राणरूप आत्मा की शरीराकृति के अनुकूल (अयम्, पुरुषविधः) यह अन्तःकरण [साँचे में ढले के तुल्य] शरीराकृति के तुल्य है। (तस्य, यजुः, एव, शिरः) यजुनाम मन के स्वरूप को जताने वाली वृत्ति ही उस प्राण का शिर है। इसी कारण शतपथब्राह्मण में लिखा है कि "मन यजुर्वेद है" अर्थात् मन की श्रद्धारूप वृत्ति यजु कहाती है (ऋक्, दक्षिणः, पक्षः) ऋचा नाम वाणी की ओर झुकी हुई स्तुतिरूप मन की वृत्ति ही मनोमय आत्मा का दहिना भाग है (साम, उत्तरः, पक्षः) शान्ति की ओर झुकी ज्ञाननिष्ठ मन की वृत्ति को साम कहते हैं वही मनोमय आत्मा का बांया भाग है। इस प्रकार यजु आदि शब्द यहां मन की भिन्न २ वृत्तियों के स्वरूप जतानेवाले हैं। (आदेशः, आत्मा) इन्द्रियों को अपने २ विषय में प्रेरित करना-शिक्षा वा उपदेशरूप मन की वृत्ति मनोमय आत्मा का मध्य है अर्थात् मदरा है। (अथर्वाङ्गिरसः) अहिंसाधर्म में प्रवृत्त अर्थात् दया कृपारूप मन की वृत्ति (पुच्छम्, प्रतिष्ठा) पुच्छस्थानी ठहरने का आश्रय है। अर्थात् अहिंसाधर्म का आश्रय करने से मनोमय आत्मा शान्ति के साथ ठहर जाता है और ईर्ष्या द्वेषादि हिंसा का आश्रय करने से चलायमान रहता है (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इसमें भी अगला श्लोक प्रमाण है ॥

भा०—स्थूल शरीर से लेकर आगे के सूक्ष्म वा अतिसूक्ष्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणादि का विचार चलाया है। उसमें स्थूल शरीर की अपेक्षा प्राणमय आत्मा सूक्ष्म और मनोमय आत्मा उसकी अपेक्षा भी अतिसूक्ष्म है ज्ञानी वा जिज्ञासु पुरुष को इनका यथावत् स्वरूप क्रम से जानना चाहिये ॥ ३ ॥

यतो वाचो निवर्त्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कदाचनेति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतस्मान्मनोमयात्। अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य श्रद्धैव शिरः। ऋतं दक्षिणः पक्षः। सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छं प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति ॥

इति चतुर्थोऽनुवाकः ॥ ४ ॥

यत्परमात्मानमप्राप्य मनसा सह वाचो यतो निवर्त्तन्ते तदेव ब्रह्मण आनन्दं स्वरूपं विद्वान् पुरुष उपलभ्य कदापि मरणादिभ्यो न बिभेति तस्य पूर्वस्य मनोमयस्यैष एव शारीरः शरीरे व्याप्त आत्माऽन्तर्याम्यस्ति। अर्थान्मनोमय आत्मा परमात्मकृतनियमेनैव शरीरे तिष्ठति तस्मादेतस्मान्मनोमयादन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयो निश्चयात्मिका विशेषो बस्वरूपा बुद्धिर्विज्ञानम्। सङ्कल्पविकल्पात्मकं सामान्यं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानं मनो निश्चयात्मकं विज्ञानं तत्स्वरूपो विज्ञानमयः। अर्थान्मनोमयः सङ्कल्पविकल्पात्मक एव यदा निश्चयात्मकत्वमापद्यते तदा विज्ञानमयदशायां ब्रह्मण आनन्दमनुभवितुं शक्नोति। तेन मनोमयेन कारणभूतेन सार्द्धमेषः पूर्णः। सोऽयं विज्ञानमय आत्मा मनोमयवच्छरीराकृतिमान्। श्रद्धैव शिर उत्तमाङ्गं तस्य विज्ञानमयस्यास्ति। ऋतं शास्त्राज्ञानुकूलाचरणं कार्यमिति वृत्तिर्दक्षिणो भागः। मनोऽनुकूलो वाग्व्यापारः कार्य इति वृत्तिरुत्तरो भागः। योगः समाधिः समाधानं निःसंशयात्मिका वृत्तिरात्मा मध्यं स्वरूपम्। महो महत्त्वं विज्ञानमयस्यात्मनः पुच्छ पुच्छस्थानीयं प्रतिष्ठाऽऽश्रयः। एतद्विषयकोऽप्येष वक्ष्यमाणः श्लोकः प्रमाणं भवति॥

भा०—रजोगुणात्मको मनोमय आत्मा। अतएव सङ्कल्पादिरूपेण तस्मिन् प्रधानतया चाञ्चल्यम्। तदपेक्षया विज्ञानमय आत्मा सत्त्वगुणात्मकः। अतएव शान्तिधैर्यगाम्भीर्यादिगुणरूपेण तस्मिन् समाधिः समाधानमेव मुख्यं तथा सत्येव परमात्मज्ञानेनानन्दो भवितुमर्हति॥ ४॥

भाषार्थः—जिस परमात्मा को (अप्राप्य) न प्राप्त होके (मनसा) मन के (सह) सहित (वाचः) वाणी (यतः) जिसके इधर ही पहुँच कर (निवर्त्तन्ते) हट आती हैं उसी (ब्राह्मणः) ब्रह्म के (आनन्दम्) आनन्दस्वरूप को (विद्वान्) पुरुष प्राप्त होकर (कदाचन) कदापि (न, बिभेति) मरण आदि से नहीं डरता (तस्य, पूर्वस्य) उस पूर्वोक्त मनोमय आत्मा का (यः, एषः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो यह (शारीरः) शरीर में व्याप्त परमेश्वर है वही (आत्मा) अन्तर्यामी है अर्थात् परमेश्वर के किये नियमों से ही शरीर के बीच मनोमय आत्मा स्थिर है (तस्मात्, वै, एतस्मात्, मनोमयात्) उस पूर्वोक्त इस मनोमय आत्मा से (विज्ञानमयः, अन्तरः, आत्मा, अन्यः) विज्ञानमय [निश्चयात्मक विशेष बोधरूप बुद्धि को विज्ञान कहते हैं] वा विज्ञानस्वरूप आत्मा भिन्न है। अर्थात् संकल्पविकल्परूप सामान्य ज्ञान मन और निश्चयात्मक विशेष ज्ञान का नाम विज्ञान है। उस विज्ञान के सब अवान्तर भेदों का समुदाय विज्ञानमय कोष वा आत्मा है। अर्थात् संकल्पविकल्पात्मक मनोमय आत्मा ही जब निश्चयात्मकस्वरूप को प्राप्त होता है तब विज्ञानमय दशा में ब्रह्म के आनन्द का अनुभव कर सकता है (तेन) उस कारणरूप मनोमय आत्मा के साथ (एषः) यह विज्ञानमय आत्मा (पूर्णः) व्याप्त है (सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव) वह विज्ञानमय आत्मा भी शरीर के जैसे अवयवोंवाला है (तस्य, पुरुषविधताम्) उस मनोमय को पुरुषाकृति के (अनु) अनुकूल अर्थात् मनोमयरूप सांचे में ढला (अयम्) यह विज्ञानमय आत्मा भी (पुरुषविधः) शरीर के तुल्य है (तस्य, श्रद्धा, एव, शिरः) उस आत्मा का श्रद्धा ही शिर उत्तमांग है (ऋतम्) शास्त्र की आज्ञा के अनुकूल आचरण करना चाहिये (दक्षिणः, पक्षः) ऐसी वृत्ति दहिना भाग (सत्यम्) मन के अनुकूल वाणी का व्यापार करना चाहिये (उत्तरः, पक्षः) ऐसी वृत्ति विज्ञानमय का उत्तर भाग है (योगः, आत्मा) समाधान वा निःसन्देह होनारूप वृत्ति मदरा वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मध्यम भाग है (महः, पुच्छम्, प्रतिष्ठा) महत्तत्त्व विज्ञानमय आत्मा का पुच्छस्थानी वा कटि से नीचे का भाग जिसके आश्रय से चलना फिरना और स्थिति हो सके। (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) इस विषय में भी अगले अनुवाक के प्रारम्भ का श्लोक प्रमाण है॥

भा०—मनोमय आत्मा रजोगुणरूप है इसी कारण उस में संकल्पविकल्पादिरूप से मुख्यकर चञ्चलता रहती है उस की अपेक्षा विज्ञानमय आत्मा सत्त्वगुणरूप है इस कारण शान्ति धीरता गम्भीरतादि गुणरूप से उस में समाधि वा समाधान ही मुख्य है। अर्थात् समाधि के ठीक होने पर ही परमात्मा का ज्ञान होकर आनन्द का अनुभव हो सकता है॥ ४॥

विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्माणि तनुतेऽपि च। विज्ञानं देवाः सर्वे। ब्रह्मज्येष्ठमुपासते। विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद। तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति। शरीरे पाप्मनो हित्वा। सर्वान् कामान् समश्नुत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य। तद्वास्मा एतस्माद्विज्ञानमयात्। अन्योऽन्तर आत्मा-ऽऽनन्दमयः। तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम्। अन्वयं पुरुषविधः। तस्य प्रियमेव शिरः। मोदो दक्षिणः पक्षः। प्रमोद उत्तरः पक्षः। आनन्द आत्मा। ब्रह्म पुच्छं प्रतिष्ठा तदप्येष श्लोको भवति॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः॥ ५॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञानं यज्ञं तनुत इत्यत्र करणस्य सौकर्यातिशयविवक्षायां कर्तृत्वं कर्तुश्चाविवक्षा । मनस्तु सङ्कल्पविकल्पावेव करोति । यावच्च सङ्कल्पविकल्पावुपतिष्ठेते तावच्च यज्ञस्य कर्मणां चारम्भः कर्तुमशक्यः । सति चाध्यवसायलक्षणे विज्ञाने यज्ञादीनामारम्भः कर्तुं शक्यते । व्यवसायात्मिकमनीषयैव कर्माणि क्रियन्ते । तथा सर्वे देवा विद्वांसो विज्ञानं विज्ञानस्वरूपं चिन्मयं ज्येष्ठं सर्गारम्भे सर्वस्मात्पूर्वं प्रादुर्भूतं ब्रह्मोपासते तथैव मनुष्यो विज्ञानस्वरूपं ब्रह्म चेद्वेद जानाति । तस्मात्तज्ज्ञानापायाच्चेन्न प्रमाद्यति तर्हि शरीरे वर्त्तमानान् पाप्मानः पापान् कल्मषान्दुःखफलकान् हित्वा त्यक्त्वा सर्वान् कामानभीष्टफलभोगानवाप्नोति यो विज्ञानमय आत्मा स एष एव तस्य पूर्वस्य मनोमयस्य शारीरोऽमनोमये शरीरे व्याप्त आत्मास्ति । तस्मादेतस्माद्विज्ञानमयादेव सूक्ष्मोऽन्तर आत्माऽऽनन्दमयोऽस्ति । तेन विज्ञानमयेनैषः पूर्णो व्याप्तोऽस्ति । स एष वै पुरुषविधः शरीराकृतिमानेव । तस्य विज्ञानमयस्य पुरुषविधतामनुलक्ष्यैषः पुरुषविधः । तस्यानन्दमयस्य प्रियमिष्टमित्रादिदर्शनजन्यं प्रेम शिरो मुख्याङ्गम् । प्रियप्राप्तिजन्यो हर्षो मोदो दक्षिणः पक्षः । प्रियतमप्राप्तिजन्यो हर्षः प्रमोद उत्तरः पक्षः । आनन्द आत्मा मध्यम् । आनन्दस्य पुच्छं प्रतिष्ठाश्रयो नितम्बभागो ब्रह्म । अस्यानन्दस्य प्रतिपादको वक्ष्यमाणः श्लोकः षष्ठानुवाकारम्भस्थः प्रमाणमस्ति ॥

भा०—समाधावानन्दमय एव तिष्ठति तदानीमेवास्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूपमनुभूयते । एवं प्रज्ञानरसमयादय आत्मानस्तेष्वान-न्दमयः सर्वस्मात्सूक्ष्मो ज्ञेयः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(विज्ञानम्) निश्चयात्मक ज्ञान वा बुद्धि (यज्ञम्) विधियज्ञ अग्निहोत्रादि वा ध्यान योग जप ब्रह्मयज्ञादि को (तनुते) विस्तृत करता अर्थात् विज्ञानरूप साधन से मनुष्य यज्ञ करता है। यहां करण की प्रधानता में कर्त्ता की अविवक्षा होने से करण ही कर्त्ता बन गया है। मन का काम सङ्कल्प विकल्प करनामात्र है और जब तक सङ्कल्पविकल्प रहते हैं तब तक कर्मों का आरम्भ नहीं हो सकता और निश्चयरूप विज्ञान के होने पर यज्ञादि का आरम्भ कर सकते हैं (कर्माणि, तनुते, अपि, च) अर्थात् निश्च-यात्मिका बुद्धि से ही कर्म किये जाते हैं (सर्वे) जैसे सब (देवाः) विद्वान् लोग (विज्ञानम्) विज्ञानस्वरूप चेतनमात्र (ज्येष्ठम्) सृष्टि के आरम्भ में सब से पूर्व प्रकट हुए (ब्रह्म) ब्रह्म की (उपासते) उपासना करते हैं वैसे ही मनुष्य (विज्ञानम्) विज्ञा-नस्वरूप (ब्रह्म) ब्रह्म को (चेत्) यदि (वेद) जानता है तथा (तस्मात्) उस के जानने के उपाय से (चेत्) यदि (न, प्रमा-द्यति) प्रमाद नहीं करता, ब्रह्मज्ञान के उपाय करने में यदि भूल चूक नहीं करता तो (शरीरे) शरीर में वर्त्तमान (पाप्मनः) दुःख जिन का फल है ऐसे पापों को (हित्वा) छोड़ कर (सर्वान्) सब (कामान्) अभीष्ट फलभोगों को (अश्नुते) भोगता वा प्राप्त होता है यः) जो विज्ञानमय आत्मा है (सः, एषः, एव) वह यही है (तस्य) उस (पूर्वस्य) पूर्वोक्त मनोमय आत्मा के (शारीरः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर में व्याप्त (आत्मा) आत्मा है (तस्मात्, वै, एतस्मात्, विज्ञानमयात्, अन्यः, अन्तरः, आत्मा, आनन्दमयः) उस पूर्वोक्त विज्ञानमय आत्मा से आनन्दमय आत्मा भिन्न है (तेन, एषः, पूर्णः) उस विज्ञानमय से यह आनन्दमय आत्मा व्याप्त है। (सः, वै, एषः, पुरुषविधः, एव) वही यह आनन्दमय आत्मा शरीर के तुल्य अवयवोंवाला ही है (तस्य) उस विज्ञानमय आत्मा की (पुरुषविधताम्, अनु) शरीराकृति के अनुकूल अर्थात् विज्ञानमयरूप सांचे में ढला होने से (अयम्, पुरुषविधः) यह आनन्दमय आत्मा पुरुष के तुल्य शरीराकृतिवाला है (तस्य) उस आनन्दमय का (प्रियम्, एव, शिरः) इष्ट मित्रादि के दर्शन से होने वाला प्रेम ही शिरःस्थानी मुख्य अङ्ग है (मोदः, दक्षिणः, पक्षः) प्रिय की प्राप्ति से होनेवाला हर्ष दहिना भाग है (प्रमोदः, उत्तरः, पक्षः) अत्यन्त प्रेमी के मेल से होनेवाली अधिकतर प्रसन्नता बायांभाग है (आनन्दः, आत्मा) आनन्द मदरा वा मध्यम भाग (पुच्छम्, प्रतिष्ठा, ब्रह्म) आनन्दमय आत्मा वा शरीर का पुच्छस्थानी स्थिति का हेतु ब्रह्म है अर्थात् सर्वोपरि आनन्द ब्रह्म में रहता है (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) उस आनन्द स्वरूप का कहनेवाला अगले अनुवाक के आरम्भ का श्लोक भी प्रमाण है ॥

भा०—समाधि दशा में मनुष्य आनन्दस्वरूप में स्थित होता है तभी इस आनन्द के स्वरूप का ठीक २ अनुभव हाता है। इस प्रकार अन्नरसमय आदि पांच आत्मा हैं इन में आनन्दमय को सब से सूक्ष्म जानना चाहिये ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असन्नेव स भवति । असद् ब्रह्मेति वेद चेत् । अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद । सन्तमेनं ततो विदुरिति । तस्यैष एव शारीर आत्मा । यः पूर्वस्य । अथातोऽनुप्रश्नाः । उताविद्वानमुं लोकं प्रेत्य । कश्चन गच्छति ३ । आहो विद्वानमुं लोकं प्रेत्य । कश्चित्समश्नुताऽ३उ । सोऽकामयत । बहुस्यां प्रजायेयेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा । इदꣳ सर्वमसृजत । यदिदं किञ्च । तत्सृष्ट्वा । तदेवानुप्राविशत् । तदनुप्रविश्य । सच्च त्यच्चाभवत् । निरुक्तञ्चानिरुक्तञ्च । निलयनञ्चानिलयनञ्च । विज्ञानञ्चाविज्ञानञ्च । सत्यञ्चानृतञ्च । सत्यमभवत् । यदिदं किञ्च । तत्सत्यमित्याचक्षते । तदप्येष श्लोको भवति ॥

॥ इति षष्ठोऽनुवाकः ॥

चेद्यदि यः कश्चिद्ब्रह्मासन्नास्तीति वेद जानाति । स जनोऽसन्नश्रेष्ठोऽविद्यमानवद्वा भवति । यश्च ब्रह्मास्तीति वेद चेद्यदि जानाति ततस्तस्मात्कारणादेनं जनं सन्तं श्रेष्ठं विद्यमानं वा विदुर्विद्वांसो जानन्ति । तस्य पूर्वस्य विज्ञानमयस्यैष एव शारीरः शरीरे विज्ञानमये भव आत्मा य आनन्दमयः । अथाचार्यकथनानन्तरमेतेऽनुपश्चाज्जायमानाः शिष्यस्य प्रश्नाः सन्ति । अविद्वानुतापि प्रेत्य कश्चन कोऽपि लोकं लोक्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मप्रत्यक्षं परमेश्वरमाप्नोति किम्? आहो अथवा कश्चिद्विद्वान्प्रेत्यामुं लोकं परमार्थसुखं समश्नुते किम्? सोऽस्तित्वेन प्रतिपाद्यमान ईश्वरः सर्गारम्भेऽकामयत सृष्टिकरणप्रकारमालोचितवान्। जीवात्मनां शरीराभावेनाशक्तत्वात्कार्याक्षमत्वम्। अव्यक्तं कारणं च क्रियासङ्ख्यादिविरहत्वादगणनीयम्। अतएव सर्वस्य परमात्माधीनत्वम्। अहं खल्वस्य शक्तिरूपकारणेन बहुविधः स्यां भवेयम्। प्रजायेय सर्वमिदमव्यक्तं बहुविधमुत्पादयेयमिति भावः। स्वस्वामिनोरभेदविवक्षया कथनमिदम्। प्रधानाप्रधानयोः प्रधाने कार्यसम्प्रत्यय इति वा। स ईश्वरस्तपो ज्ञानं समाधावतप्यत प्रसारितवान्। स तपस्तप्त्वा सर्वं यथावदालोच्य यदिदं किं च किमपि प्रत्यक्षेऽनुभूयमानं जगदस्ति तदिदं सर्वमसृजत। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्। सर्वस्मिञ्चराचरे व्याप्तिं कृतवान्। एवं व्याप्य जगतो द्वैविध्यं कृतवान्। सच्च विद्यमानं प्रत्यक्षं मूर्त्तं वा त्यच्चाविद्यमानं परोक्षममूर्त्तं वा निरुक्तं निर्वचनीयं सत्। अनिरुक्तमनिर्वचनीयमसत्। निलयनं साश्रयं सदनिलयनं निराश्रयं त्यत्। विज्ञानं चेतनमविज्ञानं जडम्। सत्यं नित्यमाकाशवाय्वादिकमनृतं विनश्वरं स्थूलं पृथिव्यादिकम्। यदिदं किमप्यस्ति तत्सर्वमित्यादिप्रकारेण द्वैविध्यमापन्नममवत्। यस्मिन् सर्वमिदं द्विविधं जगदस्ति तत् परमात्मस्वरूपं सत्यमित्याचक्षते तत्रेदं निर्वचनं सच्च त्यच्चास्त्यस्मिन्निति सत्यम्। अर्थात् सदिति शब्दात्सत्—त्यच्छब्दाच्च त्यदित्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दाय सत्यशब्दो व्युत्पादितः। तस्यैतस्य विषयस्य प्रतिपादको वक्ष्यमाणानुवाकारम्भस्थः श्लोकः प्रमाणमस्ति ॥

भा०—अत्रासदित्यारभ्य ब्रह्मणोऽस्तित्वनास्तित्वप्रतिपादनात्संशय उत्पद्यते किं ब्रह्मास्ति नास्ति वा ?। यो विद्वान् ब्रह्मास्तीति वेद ब्रह्मणोऽस्तित्वं याथार्थ्येनानुभवति। तमन्ये विद्वांसः सन्तं कथयन्ति जानन्ति च। अर्थात् लोके सन्त इति शब्दो ब्रह्मज्ञानिनामेव वाचकोऽस्ति। अस्मादेव कथनाद्ब्रह्मणोऽस्तित्वपक्षो विदुषश्च ज्ञातृत्वपक्ष एव ज्यायानस्ति। यथा बह्वौ तप्ते सति प्रकाश उपजायते तथैव सर्गारम्भे परमात्मा सृष्टिकरणप्रकारमादावालोचयति। तदनन्तरं प्रकाशोत्पादनावसरे तपतीति व्याहरन्ति। अतएव मनूक्तमप्यत्र सङ्गच्छते—'ततः स्वयम्भूर्भगवानव्यक्तो व्यञ्जयन्निदम्। महाभूतादिवृत्तौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः" ॥ एवं प्रकाशपूर्विका सर्वस्य चराचरस्य परामात्मना सृष्टिः कृतेति सिद्धान्तः। तेन च जगति व्याप्तवान प्राधान्येन द्वौ भेदौ कृतौ तच्च सर्वमुत्पाद्य सर्वस्मिन् चराचरे नित्येऽनित्ये चैकरसतया कूटस्थस्तिष्ठति तस्मात्सदैव निर्विकारित्वात्स परमेश्वरः सत्य इत्युच्यते ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(चेत्) यदि जो कोई पुरुष (असत्, ब्रह्म, इति, वेद) ब्रह्म नहीं है ऐसा जानता है (सः) वह मनुष्य (असन्, एव, भवति) अश्रेष्ठ वा नहीं होने के तुल्य होता है और जो (ब्रह्म, अस्ति, इति, चेत्, वेद) ब्रह्म है ऐसा यदि जानता है तो (ततः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी कारण (एनम्) इस ब्रह्मज्ञानी पुरुष को (सन्तम्, इति) सन्त ऐसे शब्द से विद्वान् लोग श्रेष्ठ (विदुः) जानते वा कहते हैं (तस्य, पूर्वस्य) उस पूर्वोक्त विज्ञानमय आत्मा का (एषः, एव, शारीरः) यही विज्ञानमय और शरीर में व्याप्त अन्तर्यामी है (यः) कि जो आनन्दस्वरूप कहाता है (अथ अतः, अनुप्रश्नाः) अब आचार्य के कथन के पश्चात् आगे कहे प्रश्न शिष्य की ओर से उत्पन्न होते हैं (कश्चन, अविद्वान्, उत, प्रेत्य, अमुम्, लोकम्, गच्छति ?) क्या कोई मूर्ख पुरुष भी मरने के पश्चात् उस जानने योग्य परोक्ष परमेश्वर को प्राप्त अर्थात् मुक्त हो सकता है ? (आहो, कश्चित्, विद्वान्, प्रेत्य, अमुम्, लोकम्, समश्नुते ?) अथवा कोई विद्वान् पुरुष मरने के पश्चात् परमार्थ सम्बन्धी सुख को भोग सकता है ? इसमें यही उत्तरपक्ष प्रधान वा सिद्धान्त है (सः) विद्यमानता के साथ प्रतिपादन किया गया परमेश्वर सृष्टि के आरम्भ में (अकामयत) संसार को रचने के प्रकार का अनुसन्धान करने लगा। प्रलयावस्था में जीवात्माओं के शरीर न होने से कार्य करने में सामर्थ्य नहीं रहता और अव्यक्त जड़ कारण क्रिया और संख्यादि रहित होने से गणना में नहीं आता। अर्थात् जिस वस्तु का होना कुछ काम वा प्रयोजन में न आवे उसका होना न होना एकसा होने से अभाव गिन सकते हैं इसी से जीवात्मा और जड़ कारण का परमेश्वर की आधीनता में अभाव सा मान कर एक परमेश्वर ही माना गया है कि (बहु, स्याम्, प्रजायेय) मैं अपनी शक्ति जड़ कारणरूप से बहुत प्रकार का होऊँ और इस सब जड़

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण को अनेक प्रकार का उत्पन्न करूँ। स्व और स्वामी की अभेदविवक्षा से यह सब कथन है। जैसे राजा की सेना आदि तथा शस्त्र और कोशादि सब राजा का "स्व" वा सामर्थ्य है सब के सहित राजा एक ही समझा जाता है इसी प्रकार जड़ कारण और जीवात्मा सब ईश्वर के आधीन होने से उसकी शक्ति हैं। तथा प्रधान और अप्रधान के सम्बन्ध में प्रधान का ही ग्रहण किया गया। (सः) उस ईश्वर ने (तपः) समाधिदशा में ज्ञान को (अतप्यत) फैलाया। (सः) उसने (तपः) ज्ञान करके (तप्त्वा) सबका यथावत् अनुसन्धान कर (यदिदम्, किम्, च) जो यह कुछ प्रत्यक्ष में अनुभूत होनेवाला जगत् है उस (इदम् सर्वम्, असृजत) सबको रचा है (तत्, सृष्ट्वा) उस सबका रच कर (तदेव, अनुप्राविशत्) उसी सब चराचर जगत् में पीछे से व्याप्त हुआ (तत्, अनुप्रविश्य) उसमें प्रवेश करके जगत् को दो प्रकार का किया (सच्च) विद्यमान प्रत्यक्ष वा स्थूल (त्यच्च) अविद्यमान परोक्ष वा अमूर्त्त सूक्ष्म (निरुक्तम्) जिसके रूप, रंग, परिमाण आदि का वर्णन कर सकते हैं कि वह ऐसा है उसीको निर्वचनीय भी कहते हैं (अनिरुक्तम्, च) जिसमें रूपरंगादि का वर्णन नहीं कर सकते वह अनिर्वचनीय (निलयनम्, च) किसी के आश्रय से ठहरनेवाला पृथिवी घटपटादि (अनिलयनम्, च) अन्यों का स्वयं आधार, आप निराश्रय रहनेवाला आकाशादि (विज्ञानम्, च) चेतन (अविज्ञानम्, च) जड़ (सत्यम्) नाश को प्राप्त न होनेवाला आकाशादि नित्य अथवा शास्त्रानुकूल धर्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अनृतम्) अनित्य विनाशवान् पृथिव्यादि वा शास्त्र से विरुद्ध अधर्म (यदिदम्, किम्, च) जो यह कुछ है वह उक्त प्रकार से दो २ प्रकारों को प्राप्त (अभवत्) हुआ जिसके अन्तर्गत यह सब दो प्रकार का जगत् है वह परमात्मा ही (सत्यम्, अभवत्) सत्य हुआ। सत् और त्यत् शब्दों को मिला कर सत्य शब्द के बनने से उस परमात्मा को (सत्यम्, इति, आचक्षते) " सत्य है " ऐसा कहते हैं क्योंकि उसमें सत् और त्यत् शब्द का अर्थ सभी रहता है (सत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) अगले अनुवाक के आरम्भ का श्लोक इस उक्त विषय के प्रतिपादन में प्रमाणरूप है ॥

भा०—इस अनुवाक में "असत्" से लेकर ब्रह्म के होने वा न होने के प्रतिपादन से सन्देह होता है कि ब्रह्म है वा नहीं ? जो विद्वान् ब्रह्म है ऐसा जानता अर्थात् ब्रह्म के होने का यथार्थ अनुभव करता है उसको अन्य विद्वान् लोग सन्त कहते वा जानते हैं अर्थात् लोक में सन्त यह शब्द ब्रह्मज्ञानियों का ही वाचक है किन्तु अनेक लोग राख लपेटने वा बाल रखानेवाले आदि ढचरी ठगों को सन्त कहते तथा मानते हैं सो मिथ्या है। इसी कथनसे ब्रह्म का अस्तित्वपक्ष और विद्वान् का ज्ञातृत्व पक्ष ही श्रेष्ठ है। जैसे अग्नि के तपने पर प्रकाश हो जाता है वैसे ही सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा रचना के प्रकार की समालोचना करता है। उसके पीछे प्रकाश के उत्पन्न होते समय परमेश्वर तप करता वा तापयुक्त होता है ऐसा कहते हैं। इसी के अनुसार मनुस्मृति में भी लिखा है कि "प्रलय के अनन्तर स्वयमेव प्रकट होनेवाला परमात्मा सब जगत्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रकट करता हुआ प्रकाशस्वरूप स्वयं प्रकट हुआ?" इस प्रकार प्रकाश अर्थात् तप करके सब चराचर जगत् को परमेश्वर ने बनाया यह सिद्धान्त है उसने जगत् में मुख्य कर दो भेद किये। और उस सब जगत् को उत्पन्न करके सब में व्याप्त हुआ। सब चराचर नित्य वा अनित्य में एक रस कूटस्थ रहता है इस कारण सदा निर्विकार होने और सब सत्-स्थूल, त्यत्-सूक्ष्म का आधार होने से वह परमेश्वर सत्य कहाता है॥ ६॥

असद्वा इदमग्र आसीत्। ततो वै सदजायत। तदात्मान ँ स्वयमकुरुत। तस्मात्तत्सुकृतमुच्यत इति। यद्वै तत्सुकृतम्। रसो वै सः। रस ँ ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात्। यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्। एष ह्येवानन्दयति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्येऽनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयनेऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते। अथ सोऽभयं गतो भवति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति। तत्त्वेव भयं विदुषोऽमन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति॥

इति सप्तमोऽनुवाकः॥

अग्रे सर्गारम्भात्पूर्वं वै इति निश्चयेनेदं प्रत्यक्षतयानुभूयमानं जगत्स्थूलरूपतयाऽसदविद्यमानमासीत्। आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्। एतदेशासनो वर्णनमस्ति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततस्तदनन्तरं सद्विद्यमानं स्थूलमेवाजायत। तत्कथमित्याह स परमात्मा तदा स्थूलजगदुत्पत्तेः प्राक् सर्गारम्भावसरे आत्मानं स्वस्वरूपं स्वयमेव प्रकटं रचनोद्योगिनमकुरुत। तद् ब्रह्म तस्मादेव कारणात्स्वयमेकस्यैव कर्मकर्तृभावात् स्वकृतं सुकृतं विद्वद्भिः कथ्यते। यद्वै सुकृतं पुण्यस्वरूपं स वै स एव रसस्तृप्तिहेतुरानन्दप्रदः परमात्माऽस्ति। अयं जीवात्मा तादृशं रसमेव लब्ध्वैवानन्दयुक्तो भवति नैव तादृश आनन्दोऽन्यस्मिन्कर्मणि सम्भवति। सः परमात्मा स्वयमानन्दस्वरूपोऽस्ति। तस्मादेष एव सर्वान् प्राणिन आनन्दयति। यद्यदि एष आकाशो निराकारः प्रकाशमान आनन्दस्वरूपः परमेश्वरो न स्यात् तर्हि को ह्येवान्यात्कः प्राण्यात्? न कोऽपीत्यर्थः। यदा ह्येव एष जीवात्मा एतस्मिन्नदृश्ये निर्विकारेऽनात्म्ये शरीरवर्जितेऽनिरुक्तेऽनिर्देश्याकृतिरूपरङ्गाद्येऽनिलयने निराश्रये सर्वाधारे ब्रह्मणि प्रतिष्ठां स्थितिमभयं यथा स्यात्तथा लभते। अथ निर्भयतया ब्रह्मणि प्रतिष्ठाप्राप्त्यनन्तरं सः पुरुषोऽभयं गतो मुक्तिमाप्तो भवति। यदा ह्येवैष जीवात्मा एतस्मिन् ब्रह्मणि उत्-अरम्-अल्पमप्यन्तरं तज्ज्ञानोपायानुष्ठाने व्यवधानमतिकालं वा कुरुते। अथ तदनन्तरं तस्य भयं संसारगमनं भवति। अमन्वानस्य ब्रह्मज्ञानविरहस्य विदुषोऽन्यत् सर्वं जानतोऽपि तत्त्वेव ब्रह्माऽज्ञानमेव भयरूपं विज्ञेयम्। अस्मिन् विषये वक्ष्यमाणानुवाकारम्भस्थः श्लोकः प्रमाणं भवति॥

भा०—ब्रह्म हीदमव्याकृताव्यक्तकारणाज्जगद्रचयति। स्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यं च रचनातः पृथग्भूत आनन्दस्वरूपेण तिष्ठत्यतः सर्वज्ञं सर्वशक्तिमच्च तद्विद्वद्भिः कथ्यते यश्च तस्यैव ज्ञानाय नैरन्तर्येण यतते स एव निर्भयो निश्शङ्क आनन्दस्वरूपो भवति। यदि तज्ज्ञानोपाये प्रमादं करोति तदा परमानन्दमनवाप्य जगत्येव संसरति ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(असत्, वै, इदम्, अग्रे, आसीत्) सृष्टि के आरम्भ से पूर्व यह प्रत्यक्ष से अनुभव में आनेवाला जगत् नहीं था अर्थात् इसका अभाव था। मनुस्मृति में भी लिखा है कि प्रलय-समयमें यह सब जगत् अज्ञात चिह्नरहित अन्धकाररूप था यही असत् का वर्णन है (ततः, वै, सत्, अजायत) तिस पीछे स्थूल दशा में विद्यमान हुआ (आत्मानम्, स्वयम्, अकुरुत) उस परमेश्वर ने स्थूल जगत् की उत्पत्ति से पूर्व सृष्टि के आरम्भ में अपने आत्मा को स्वयमेव सृष्टि रचने के लिये प्रकट किया (तस्मात्, तत्, सुकृतम्, उच्यते, इति) इस कारण विद्वान् लोग उसको अपना कर्त्ता आप ही होने से स्वकृत के स्थान में सुकृत कहते हैं (यत्, वै सुकृतम्, रसः वै, सः) जो ही पुण्यस्वरूप ब्रह्म है वही तृप्ति का हेतु रसके तुल्य आनन्द देनेवाला है (रसम्, हि एव, अयम्, लब्ध्वा, आनन्दी, भवति) यह जीवात्मा उस प्रकार के रस को पा कर ही आनन्दयुक्त होता है वैसा आनन्द वा सुख अन्य किसी कर्म से नहीं मिलता क्योंकि वह परमेश्वर आनन्दस्वरूप है (एषः, एव, हि, आनन्दयति) इस कारण उससे मेल करनेवाले को वही आनन्दित करता है (यत्, एषः, आकाशः न, स्यात्) यदि यह

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निराकार प्रकाशमान आनन्दस्वरूप परमेश्वर न हो ता (कः, हि, एव, अन्यात्, कः प्राण्यात्,) कौन अपना सम्बन्धी जीने की चेष्टा करे और प्रमाण क्रिया करे ? अर्थात् कोई नहीं। क्योंकि वह प्राणों का भी प्राण जीवन का भी जीवन वा मृत्यु का भी मृत्यु है (यदा, हि एव, एतस्मिन्, अदृश्ये, अनात्म्ये, अनिलयनं, अभयम्, प्रतिष्ठाम् विन्दते) जब ही यह जीवात्मा इस अदृश्य—निर्विकार, शरीर रहित, जिसकी आकृति वा रूप रंगादि नहीं कहा जा सकता, निराश्रय और सर्वाधार ब्रह्म के बीच निर्भयता के साथ स्थिति को प्राप्त होता है (अथ, अभयगतः, भवति) तभी वह पुरुष मुक्ति को प्राप्त होता है (यदा, हि, एषः, एतस्मिन्, उत्, अरम्, अन्तरम्, कुरुते) जब ही यह जीवात्मा इस ब्रह्म में वा उसके ज्ञान के उपाय के अनुष्ठान में थोड़ा भी व्यवधान वा अतिकाल करता है (अथ, तस्य, भयम्, भवति) तब उसको भयरूप जन्ममरण प्राप्त होते हैं (अमन्वानस्य) ब्रह्मज्ञान से रहित (विदुषः, तत्, तु, एव, भयम्) अन्य सब विषय जानते हुए भी विद्वान् को ब्रह्मज्ञान का न होना ही भयरूप जानना चाहिये (तत्, अपि, एषः, श्लोकः, भवति) आगे कहे अनुवाक के आरम्भ का श्लोक इस विषय में प्रमाणरूप है।

भा०—ब्रह्म ही अव्यक्त अतिसूक्ष्म कारण से इस जगत् को बनाता है और स्वयं रचना से पृथक् आनन्दस्वरूप रहता इस से उसको विद्वान् लोग सर्वज्ञ वा सर्वशक्तिमान् कहते हैं। जो उस को जानने के लिये निरन्तर यत्न करता है वही निर्भय निःशङ्क

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दस्वरूप होता है । यदि उस के ज्ञान के उपाय में भूल वा प्रमाद करता है तो परम आनन्द को न पाकर जगत् में बार २ जन्म मरण में पड़ा रहता है ॥ ७ ॥

भीषाऽस्माद्वातः पवते । भीषोदेति सूर्यः । भीषाऽस्मादग्निश्चेन्द्रश्च । मृत्युर्धावति पञ्चम इति । सैषानन्दस्य मीमाँसा भवति । युवा स्यात्साधुयुवाध्यायकः । आशिष्ठो द्रढिष्ठो बलिष्ठः । तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात् । स एको मानुष आनन्दः ते ये शतं मानुषा आनन्दाः । स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः । स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दाः । स एकः पितॄणां चिरलोकानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं पितॄणां चिरलोकलोकानामानन्दाः । स एक आजानजानां देवानामानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः । स एकः कर्म देवानां देवानामानन्दः ये कर्मणा देवानपि यन्ति । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः । स एको देवाना-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं देवानामानन्दाः। स एक इन्द्रस्यानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः । स एको बृहस्पतेरानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः । स एकः प्रजापतेरानन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः । स एको ब्रह्मण आनन्दः । श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य । स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये । स एकः। स य एवंवित् । अस्माल्लोकात्प्रेत्य । एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति । एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति । तदप्येष श्लोको भवति ॥

इत्यष्टमोऽनुवाकः ॥

ब्रह्मैव भयहेत्वित्युक्तम् । अस्मात्परमात्मनो भीषा भयेनेव वातो वायुः पवते सूर्य उदेति । अग्निर्भौतिक इन्द्रो विद्युच्च स्वस्वकार्ये कुरुतः। पञ्चमो मृत्युश्च धावति । यस्य मृत्युं ब्रह्म नेच्छति तस्मात्प्राणिनो मृत्युरपि भयेनेव धावति दूरं गच्छति। ब्रह्मणा स्वस्वकार्ये नियता वातादयो यथानियमं भयेनेव स्वस्वकार्यं कुर्वन्ति । यदा च जडवस्तून्यपि ब्रह्मकृत-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमेनैव प्रवर्त्तन्ते पुनर्ये विद्वांसो मनुष्यास्तद्विमुखा भवन्ति कथंन ते भयमवाप्नुयुरिति। सैषा वक्ष्यमाणलक्षणाऽऽनन्दस्य जगत्स्थस्य ब्रह्मस्थस्य च सुखानुभवस्य मीमांसा विवेचना भवति प्रारभ्यते । अत्र प्रकरणे लौकिकस्थूलानन्दादारभ्य सूक्ष्मसूक्ष्मतरानन्दस्य विचारः क्रियते। आशिष्ठोऽतिशयेनाशास्ता राजभावेन प्रजास्थानां शासकतमो यस्य शासनं च प्रजाभिः शिरोधार्यत्वेनोरीक्रियते द्रढिष्ठो मानसविचारेण शरीरकृत्येन च दृढतमो यो नैव कदापि धर्मादिकार्यसाधनाद्विचलति शरीरं वा पातयेत्कार्यं वा साधयेत्। बलिष्ठोऽतिशयेन बलवत्तम एवं शारीरिकोन्नतिशाली । साधुश्चासौ युवा साधुयुवा युवत्वेऽपि साध्वाचारवान्। अध्यायकोऽधीतवेदादिशास्त्रो युवावस्थासम्पन्नः कश्चित्पुरुषः स्यात्। तस्येयं सर्वा पृथिवी वित्तस्य पूर्णा स्यात्। तृतीयार्थेऽत्र षष्ठी वित्तमिति भोगमात्रस्योपलक्षकम्—सुखभोगसाधनैः सम्पन्ना युक्ता सम्पूर्णा पृथिवी तस्य विषयस्था स्यात्। अर्थात्तस्य सम्पूर्णराज्ये सर्वे प्राणिनस्तदर्थं सुखसाधनान्येवोपकल्पयेयुर्न हि कश्चित्प्रजास्थस्तं कौटिल्येन पश्येत्। तस्य य आनन्दः स एको मानुष आनन्दो मनुष्याणां साधारणलौकिकपुरुषाणामेक आनन्दः। ये ते शतं मानुषा आनन्दाः स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः। मनुष्येषु ये वाग्विद्याकुशला गानविद्यासु प्रवीणास्ते गन्धर्वाः। गां वाणीं गानविद्यारूपां धरन्ति। यद्वा कुटिलां धर्मविरुद्धां रुचिविहीनां वा गां वाचं धूर्वन्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिसन्ति ते गन्धर्वाः। समाहितचेतसो गायकाः सम्प्रज्ञातसमाधाविव गानविद्यायामासक्ता भवन्ति। अर्थाद्धर्मेश्वरादिविषयस्य यथावत्स्वरूपेण यथाविधिगानमप्यसम्प्रज्ञातसमाध्यन्तर्गतमस्ति। अतएव तत्र शतगुण आनन्दोऽनुभूयते। देवा विशिष्टास्त्यक्तवाचिकदोषा वाचिकपुण्यजुष्टा विद्वांसःपरोक्षकास्तेषु गन्धर्वा गानविद्यायां कृताभिनिवेशाः। ये चिरं चिरकालं लोकं लोकनीयं समाधिजन्यमानन्दं लोकन्तेऽनुभवन्ति ते चिरलोकलोकाः पितरो मानसविचारतत्परा मानसपुण्यभाजो मानसदोषरहिताः। आजाना आ समन्ताज्जन्मत एव जायन्ते विशेषतया जन्मान्तरीयबुद्धिवैचित्र्याल्लोके विशिष्टां प्रसिद्धिं कीर्तिं चाप्नुवन्ति त आजानास्तेषु जाताः। पूर्वजन्मकृतेन शुभकर्मणामनुष्ठानेन वर्त्तमाने जन्मनि लब्धोच्चप्रतिष्ठाः। विद्वत्समुदाये परिगणिताः। कर्मदेवा ये कर्मणा साम्प्रतिकजन्मनि देवत्वं प्राप्ताः। अर्थान्निकृष्टसमुदायेऽपि जाताः शुद्धकर्मानुष्ठानेन मनुष्येषूच्चं देवाधिकारं प्राप्ताः। देवाः स्वतःसिद्धाः पितृमातृपरम्परयैव जन्मतो बुद्धिविद्यादिजन्यसुखेषूत्कृष्टाः। तेष्वपि बुद्धिसत्त्वेनोत्कृष्टः प्रधानः सभापतिः शासको राजेवेन्द्रः। तेषां देवानां गुरुर्बृहस्पतिः सर्वविद्यापारगः। प्रजायाः सर्वस्याः सृष्टेः पालको रक्षकः पतिः प्रजापतिः परमेश्वरः। अर्थात् सृष्टेर्वर्तमानदशाया जगतः स्थितिकर्तृत्वमापन्नः। ब्रह्म च स्वात्मन्येवावस्थितं प्रलयदशायां समाधिस्थम्। एकमेव वस्तु कार्यावस्थयोर्भेदेन भिन्नमिव प्रदर्श्यते।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्रानुवाके श्रोत्रियस्य चाकामहतस्येति वाक्यं दशकृत्वः पठ्यते। तत्र प्रत्येकस्मिञ्छतगुणे क्रियमाणे आनन्देऽकामहतत्वस्य तारतम्यं विज्ञातव्यम्। यथैको वेदाध्येताऽकामहतस्तथा परस्तस्माच्छतगुणाधिक्येनाकामहतः। एवमुत्तरोत्तरं विज्ञेयम्। स यः परोक्षः पुरुषे शरीरे व्याप्तोऽयं यश्चासावादित्ये स्वस्वरूपे वर्तते। अर्थात् योऽसौ संसारस्योत्पतिस्थितिदशायामवस्थितः स एव स्वस्वरूपे प्रकाशमये प्रलयावस्थायामपि वर्त्तते नैव तस्मिन्नवस्थाभेदेनापि स्वरूपभेदो मनुष्यादिशरीरवद्भवतीति केनापि मन्तव्यम्। अतएव स एक इति वक्तुं शक्यते। य एवंवित्-एवमुक्तप्रकारेण यो जगदीश्वरं वेत्ति सोऽस्मात्प्रत्यक्षाल्लोकाद् दृष्टिपथगताच्छरीरेन्द्रियादिरूपात्प्रेत्य पृथग्भूत्वा। एतं पूर्वोक्तमन्नमयं प्राणमयं मनोमयं विज्ञानमयमानन्दमयं चात्मानमुपसङ्क्रामति-अर्थात्स्थूलशरीरसम्बन्धात्सम्यक् क्रामति दूरं गच्छति। यद्यपि स्वस्य विज्ञानानन्दस्वरूपस्य त्यागः कर्तुमशक्यस्तथापि प्राणान्नमयशरीरसम्बद्धस्य नैमित्तिकस्य विज्ञानस्यानन्दस्य च त्यागो मुक्तिदशायां कर्तुं युक्त एव। तस्यापि प्रतिपादको नवमानुवाकारम्भस्थः श्लोकः प्रमाणमस्ति॥

भा०—अस्मिन्ननुवाके ब्रह्मण आनन्दस्वरूपस्य वर्णनं प्रारब्धम्। तत्रान्यस्यानन्दस्य तारतम्यप्रदर्शनेन परमात्मसम्बद्धानन्दस्य सर्वोपरि वैशिष्ट्यमुत्तमत्वं च प्रतिपाद्यते। तत्र यस्य सर्वा पृथिवी यदि वित्तेन धनादिना सुखसाधनेन पूर्णा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्यादिति धनसम्बन्धी प्रथमानन्दः। ततः शतगुणः सम्यग्गानविद्यायां समाहितचेतसः पुरुषस्यानन्दः सम्भवति। तस्य सम्प्रज्ञातयोगैकविध्ये प्रविष्टत्वात्। तत्र गानविद्यायां द्वौ भेदौ, ये गानस्य परमात्मसम्बन्धिनः परं सीमानं प्राप्तास्ते देवगन्धर्वास्तैर्मनुष्यगन्धर्वापेक्षयापि शतगुण आनन्दोऽधिकोऽनुभूयते। पितृशब्दादारभ्याग्रे विद्यानन्दस्य तारतम्यमस्ति। मनुष्यगन्धर्वादयः शब्दा अधिकारवाचकाः प्रतिष्ठितानां भेदाः - विदुषामवान्तरभेदेषु पित्रादयोऽधिकारवाचकाः शब्दाः समाधिजन्यानन्दभाक्षु विद्वत्सु पुरुषेषु सर्वविधानन्दस्य पराकाष्ठाप्राप्तो ब्रह्मधर्मस्थो बृहस्पतिरस्ति। एवं क्षत्रविद्यानन्दस्य पराकाष्ठां प्राप्तः क्षत्रधर्मस्थ इन्द्रः। मनुष्येष्वतःपरमानन्दोऽधिकारश्च न विद्यते। परमात्मनि च द्विविध आनन्दोऽवस्थाभेदात्। प्रजापालनदशायां य आनन्दस्तस्माच्छतगुण आनन्दः समाहितस्य प्रलयदशायां जायते अयमाशयः—नहीदं ब्रह्मण आनन्दस्य सीमकल्पनमपि तु तारतम्येनानन्दकल्पनामन्तरा कथं वयं ज्ञातुं शक्नुयाम ब्रह्मप्राप्तिदशायां मुक्तौ कीदृश आनन्दो भवतीति। अनन्तानन्दकथनेऽपि तारतम्यप्रदर्शने विना तादृशबोधा लिप्सा न सम्भवति। ब्रह्मणस्तादृशानन्दप्रदर्शनेन तदुपासने तादृशानन्दोऽस्मान्मुमुक्षून प्राप्स्यतीत्याशयस्तथा च प्रजापालनदशास्थं तस्योपासनम्साक्षात्करमतस्तदा प्रलयापेक्षयाऽनन्दन्यूनत्वं बोध्यम्। कार्यकारणजगत्सम्बन्धापेक्षां विहाय निष्क्रियस्य निर्गुणस्य वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शुद्धस्योपासनं सर्वापेक्षयाऽधिकानन्दप्रदमिति बोधयितुं सर्व तारतम्यप्रदर्शनम् ॥ ८ ॥

भाषार्थः—इससे पूर्व अनुवाक में ब्रह्म ही को भय का हेतु कहा है इस कारण पहिले उसी बात को स्पष्ट करते हैं कि (अस्मात्) इस परमेश्वर से हुए (भीषा) भय से जैसे (वातः) वायु (पवते) सबको पवित्र करता वा अपने कार्य को नियमपूर्वक चलाता है (भीषा) भय से जैसे (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदित होता है (भीषा, अस्मात्, अग्निः, च, इन्द्रः, च) और उस परमेश्वर के भय से ही विद्युद्रूप और भौतिक अग्नि अपने २ कर्मों को करते हैं। और (मृत्युः, धावति, पञ्चमः) पांचवां मृत्यु भी भागता है। अर्थात् जिस पर ईश्वर की पूर्ण कृपा होती है उसका मृत्यु भी कुछ नहीं करता तथा अन्य भी पदार्थ परमेश्वर के नियमानुसार सृष्टि में काम देते हैं। यह कई चकारों से निकलता है। परमेश्वर अपने २ काम में नियत किये वायु आदि नियमानुकूल भय से जैसे अपने २ काम को करते हैं। जब जड़ पदार्थ भी ईश्वर के नियम से विरुद्ध नहीं चलते तो जो विद्वान् लोग उससे विरुद्ध होते हैं उनको भय प्राप्त क्यों न हो ? (सा, एषा, आनन्दस्य, मीमांसा, भवति) सो यह आगे कहे रूप से जगत् के वा ब्रह्मसम्बन्धी आनन्द की विवेचना की जाती है। इस प्रकरण में संसारी स्थूल आनन्द से लेकर सूक्ष्म से सूक्ष्म अर्थात् उत्तम आनन्द कहते हैं (आशिष्टः) राजा वा स्वामी बन कर प्रजा के लोगों को अच्छे प्रकार उचित रीति से शिक्षा करनेवाला अर्थात् जिसकी आज्ञा को प्रजास्थ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोग शिर पर धारण करें (द्रढिष्ठः) मानस विचार और शरीर-सम्बन्धी कार्यों में अतिदृढ़, जो धर्मादि कार्य के सिद्ध करने से कदापि नहीं हटता। अर्थात् शरीर रहे वा नष्ट हो, पर कार्य करने से न हटे (बलिष्ठः) अत्यन्त बलवान् शरीर की उन्नति करने वाला (साधुयुवा) युवावस्था में भी अच्छे आचरणवाला (अध्यायकः) सामान्य प्रकार वेदादिशास्त्र को भी पढ़ा हुआ कोई युवा पुरुष हो (तस्य, इयम्, पृथिवी, सर्वा, वित्तस्य, पूर्णा, स्यात्) यहां तृतीया के अर्थ में षष्ठी है। उस पूर्वोक्त पुरुष की यह सब पृथिवी (कि जहां तक उसका राज्य हो) सुखसम्बन्धी भोग के साधनों से युक्त हो। अर्थात् पूर्वोक्त विशेषणयुक्त राजा के राज्य में सब प्राणी उसके लिये सुख के साधनों का ही उपार्जन करें, किन्तु कोई प्रजा का मनुष्य कुटिल दृष्टि से उसको न देखे। उस राजा को जो उक्त सामग्री के होने से आनन्द होता है (सः) वह (एकः, मानुषः, आनन्दः) एकगुणा मनुष्यसम्बन्धी आनन्द है अर्थात् साधारण लौकिक पुरुषों के लिये वह एक बड़ा आनन्द है (ये, ते, शतम्, मानुषाः, आनन्दाः) जो वे मनुष्यसम्बन्धी आनन्द सौ एकत्र किये जायें तो (सः एकः, मनुष्यगन्धर्वाणाम्, आनन्दः) मनुष्यों में जो वाणी की विद्या में कुशल अर्थात् गानविद्या में प्रवीण हैं वे मनुष्य गन्धर्व कहाते हैं। गन्धर्व नाम गो वाणी का धारण करनेवाले वा धर्मविरुद्ध रुचिरहित कुटिल वाणी को नष्ट करनेवाले सम्प्रज्ञात समाधि के तुल्य गानविद्या में एकाग्र चित्त करके आसक्त होते हैं अर्थात् धर्म और ईश्वरादि विषय का यथार्थरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से विधिपूर्वक गाना भी असम्प्रज्ञात समाधि के अन्तर्गत है इसी कारण उसमें सौगुणे आनन्द का अनुभव होता है। (श्रोत्रियस्य, च अकामहतस्य) कामासक्तिरहित वेदपाठी को भी वैसा शतगुण आनन्द होता है। यहां कामासक्तिरहित होना ही विशेषता है वैसे साधारण वेदपाठ से वैसा आनन्द नहीं हो सकता। (ते, ये, शतम्, मनुष्या गन्धर्वाणाम्, आनन्दाः) जो वें मनुष्यगन्धर्वों के सौ आनन्द हैं (सः, एकः, देवगन्धर्वाणाम्, आनन्दः) जिनकी वाणी के असत्यभाषणादि दोष छूट गये ऐसे पुण्यात्मा परीक्षक देवनामक विद्वानों में जो गन्धर्व हैं कि जिनकी सर्वोत्तम गानविद्या में निष्ठा है उन देवगन्धर्वों को मनुष्य गन्धर्वों की अपेक्षा सौ गुणा आनन्द प्राप्त होता है। (श्रोत्रियस्य, च अकामहतस्य) वैसेही कामासक्तिरहित वेदाध्येता को भी आनन्द होता है। (ते, ये, शतम्, देवगन्धर्वाणाम्, आनन्दाः) वे जो देवगन्धर्वों के सौ आनन्द एकत्र किये जावें (सः एकः, चिरलोकलोकानाम्, पितृणाम् आनन्दः) वह एक उन पितृसंज्ञक विद्वानों को आनन्द प्राप्त होता है कि जो बहुत काल तक समाधि से होनेवाले अनुभव करने योग्य आनन्द को प्राप्त होते हैं उन मानसपुण्यकर्त्ता, मन के दोषों से रहित, मानसविचार में तत्पर, विद्वानों को चिरलोकलोक पितृ कहते हैं (ते, ये, शतम्, चिरलोकलोकान्, पितृणाम्, आनन्दाः) जो वे अधिकानन्दभोगी पितरों के सौ आनन्द इकट्ठे किये जावें (सः, एकः, आजानजानाम्, देवानाम्, आनन्दः) वह एक आनन्द उन विद्वानों (देवों) को प्राप्त होता है कि जो विशेष कर जन्म से ही पूर्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मसम्बन्धी बुद्धि की विचित्रता से लोक में विशेष प्रसिद्धि और कीर्ति को प्राप्त होते हैं जनके समुदाय में उत्पन्न हुए, पूर्वजन्मकृत शुभकर्मों के अनुष्ठान से वर्त्तमान जन्म में उच्च पदवी को प्राप्त विद्वानों के समुदाय में परिगणित हैं ऐसों को आजानज कहते हैं, (ते, ये, शतमाजानजानाम् , देवानाम् , आनन्दाः) वे जो आजानज, विद्वानों के सौ आनन्द एकत्र किये जावें (सः, एकः, कर्मदेवानाम् देवानाम् , आनन्दः) वह एक आनन्द उन विद्वानों को प्राप्त होता है कि (ये, कर्मणा, देवान्, अपियन्ति) जो वर्त्तमान जन्म में निकृष्ट समुदाय में उत्पन्न होकर भी शुद्ध कर्मों के सेवन से मनुष्यों में उत्तम देवाधिकार को प्राप्त हुए (जैसे श्रीकृष्णादि उत्तम कर्मों के योग से अत्यन्त उच्चाधिकारी माने गये) (ते, ये, शतम् , कर्मदेवानाम्, आनन्दाः) वे जो कर्मदेवनामक विद्वानों के सौ आनन्द एकत्र किये जावें (सः, एकः, देवानाम्,) वह एक आनन्द उन विद्वानों को प्राप्त होता है कि जो पिता माता की परम्परा से ही जन्म से बुद्धि और विद्यासम्बन्धी सुखों में बढ़े हुए स्वयं सिद्ध विद्वान् हों। (ते, ये, शतम्, देवानाम् , आनन्दाः) जो वे पूर्वोक्त विद्वानों के सौ आनन्द एकत्र किये जावें (सः, एकः, इन्द्रस्य, आनन्दः) वह एक उस इन्द्रनामक राजर्षि को आनन्द प्राप्त होता है कि जो विद्वानों में भी क्षात्रधर्म की प्रधानता रखनेवाला विद्वानों में भी बुद्धि की प्रबलता से प्रधान सभापति राजा के तुल्य शासक है। (ते, ये, शतम्, इन्द्रस्य, आनन्दाः) जो वे पूर्वोक्त इन्द्रनामक विद्वान् के सौ आनन्द एकत्र किये जावें तो (सः, एकः, बृहस्पतेः,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आनन्दः) वह एक आनन्द उस बृहस्पति नामक विद्वान् को प्राप्त होता है कि जो इन्द्रादि नामक सब प्रकार के विद्वानों का भी गुरु हो वह सब विद्याओंके अगाध आशय के पार पहुँचा हो जिसके ऊपर अन्य कोई भी मनुष्य विद्वान् नहीं हो सकता। विद्वान् मनुष्यों की विद्वत्ता की यही सीमा है। (ते, ये, शतम्, बृहस्पतेः, आनन्दाः) जो वे बृहस्पति नामक विद्वान् के सौ आनन्द एकत्र किये जावें (सः,एकः, प्रजापतेः आनन्दः) वह एक आनन्द उस परमेश्वर को प्राप्त है कि जो प्रजानाम सब सृष्टि का रक्षक स्वामी होने से प्रजापति कहाता है। अर्थात् सृष्टि की वर्त्तमान दशा में जगत् की स्थिति रखने को तत्पर है। (ते,ये, शतम्, प्रजापतेः आनन्दः) वे जो प्रजापति नामक ईश्वर के सौ आनन्द एकत्र किये जावें (सः, एकः, ब्रह्मणः, आनन्दः) वह एक आनन्द उस ब्रह्मनामक परमात्मा को प्राप्त है कि जो जगत् की प्रलयदशा में अपने स्वरूप में समाधिस्थ रहता है। एक ही वस्तु कार्य और अवस्था के भिन्न होने से भिन्न दिखाया गया। इस अनुवाक में (श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य) यह वाक्य दश वार पढ़ा गया है। उसमें प्रत्येक अगले २ श्रोत्रिय वेदपाठी को सौगुणे आनन्द के प्राप्त होने में निष्काम वा विरक्त होने की न्यूनाधिकता जाननी चाहिये। जैसे कोई एक वेदपाठी काम-भोग वा प्राप्ति की से इच्छा पीडित न होकर सुखभागी होता है उससे अधिक अकामहत होने से भी सौगुणा सुखी अन्य होता इसी प्रकार आगे दश तक जानना चाहिये। प्रजापति और ब्रह्मनामक परमेश्वर को जो दो प्रकार का आनन्द दिखाया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया है उसके साथ भी विरक्त वेदाध्येता पुरुष के आनन्द की तुलना दिखायी गयी है। इसका कारण यह है कि मुक्त पुरुष तदाकारवृत्ति होने से परमेश्वरसम्बन्धी पूर्ण आनन्द का अनुभव कर सकता है। परन्तु वहां तक पहुँचने का कारण वैराग्य की उत्तम कोटि ही है अर्थात् जो विरक्त दशा की सर्वोत्तम कोटि तक पहुँच गया वही जानो मुक्त है और उसी को परमात्मा के तुल्य आनन्द प्राप्त होगा। (सः) सो (यः अयम्) जो परोक्ष परमेश्वर (पुरुषे) पुरुष नाम शरीर में व्याप्त (सः, च, असौ, आदित्ये) जो वह अपने प्रकाशस्वरूप में वर्त्तमान है। अर्थात् जो वह संसार की उत्पत्ति स्थिति दशा में अवस्थित है, वही प्रकाशमय अपने स्वरूप में प्रलयदशा में भी वर्त्तमान है किन्तु उसमें अवस्था वा क्रिया भिन्न होने से भी मनुष्यादि के बाल्य युवा वृद्धावस्था के तुल्य स्वरूप का भेद होता है ऐसा किसी को नहीं मानना चाहिये। इसी कारण (सः, एकः) वह एक है ऐसा कह सकते हैं (सः, यः, एवंवित्) जो उक्त प्रकार से जगदीश्वर को जानता है वह (अस्मात्, लोकात्, प्रेत्य) इस लोक नाम दृष्टिगोचर प्रत्यक्ष शरीर वा इन्द्रियादिरूप से पृथक् होकर (एतम्, अन्नमयम्, उपसंक्रामति) (प्राणमय० मनोमय० विज्ञानमय० आनन्दमयम्, आत्मानम्, उपसंक्रामति) पूर्व इस ब्रह्मानन्दवल्ली के प्रारम्भ में कहे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, और आनन्दमय आत्माओं को स्थूल शरीर के साथी होने से सम्यक् छोड़ के दूर हो जाता है। यहाँ धातुओं के अनेक अर्थ मान कर उप, " सं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वक क्रम" धातु को "छोड़ कर दूर होना" अर्थ लगाया गया है। क्योंकि अन्य अर्थ की संगति नहीं लग सकती। यद्यपि अपने विज्ञान और आनन्द गुण का त्याग मुक्ति में भी कोई नहीं कर सकता और यदि करे तो आत्मा ही क्या रहे किन्तु विज्ञान वा आनन्द गुण रहित पदार्थ माना जाता है इसी के अनुसार आत्मा भी जड़ रह जावे। तथापि जैसा प्राण और अन्न रूप आत्मा का मुख्य सम्बन्ध स्थूल शरीरके साथ रहता है वैसे स्थूल शरीर सम्बन्धी नैमित्तिक विज्ञान और आनन्द का त्याग मुक्तिदशा में करना ठीक ही है। (तत् अपि एषः, श्लोकः, भवति) इस विषय का भी प्रतिपादक नवयें अनुवाक के प्रारम्भ का श्लोक प्रमाणरूप है॥

भा०—इस अनुवाक में आनन्दस्वरूप ब्रह्म के व्याख्यान का प्रारम्भ किया गया है। वहां अन्य मनुष्य वा विद्वान् आदि के आनन्द की न्यूनाधिकता दिखाने से परमात्मसम्बन्धी आनन्द की सर्वोपरि विशेषता वा उत्तमता का प्रतिपादन किया है। उन मनुष्यादि में जिसकी समस्त पृथिवी सुखभोग के साधन धनादि से यदि पूर्ण हो तो यह धनसम्बधी पहिला नाम एक छोटा आनन्द है। धनसम्बन्धी आनन्द यद्यपि संसार में सर्वोपरि माना जाता है तथापि शास्त्र की मर्यादा के अनुसार वह सब से छोटा है। इसी कारण मान्य के पाँच स्थानों में धन को सब से छोटा मानव धर्म शास्त्र में कहा है। और विद्या को सब से ऊपर माना है। उस धनसम्बन्धी आनन्द की अपेक्षा सौगुणा आनन्द उस पुरुष को होता है जो गानविद्या का ठीक मर्म जान कर एकाग्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चित्त से गान में लगा है। क्योंकि वह भी सम्प्रज्ञात समाधि के एक प्रकार में प्रविष्ट है। उस गानविद्या में दो भेद हैं। जो लोग परमात्मसम्बन्धी गानविद्या की अन्तिम सीमा को प्राप्त हो गये हैं वे देवगन्धर्व कहाते हैं। उनको मनुष्य गन्धर्वों की अपेक्षा सौगुणा आनन्द अधिक प्राप्त होता है। पितृशब्द से लेकर आगे विद्यासम्बन्धी आनन्द की न्यूनाधिकता दिखायी है। इस अनुवाक में कहे मनुष्य गन्धर्वादि शब्द अधिकारके वाचक अर्थात् प्रतिष्ठित वा विशेष सुखी लोगों की विशेष संज्ञा है। तथा विद्वानों के अवान्तर भेदों में पितृ आदि भी अधिकारों के नाम हैं। समाधि से होनेवाले आनन्दभागी विद्वान् पुरुषोंमें सब प्रकारके आनन्द की अन्तिम सीमा को प्राप्त ब्रह्मधर्मस्थ बृहस्पति और क्षत्रविद्यासम्बन्धी आनन्द सीमा को प्राप्त क्षत्रधर्मस्थ इन्द्रका होता है। मनुष्यों में इस से परे अन्य कोई बड़ा आनन्द वा सुख नहीं है। परमात्मा में दो प्रकार का आनन्द दो अवस्थाओं के होने से होता है। प्रजापालन दशा में जो परमेश्वर को आनन्द है उस से सौगुणा आनन्द प्रलयदशा में समाधिस्थ होने पर उस परमेश्वर को रहता है तात्पर्य यह है कि यह परमेश्वर आनन्द की अवधि (हद) नहीं दिखाई गयी है क्योंकि वह स्वयं अनन्त और आनन्दस्वरूप है तब उस का आनन्द भी असीम अवश्य है। तो इस आनन्द के न्यूनाधिक दिखाने का प्रयोजन यह है कि ब्रह्मप्राप्तिरूप मुक्तिदशा में हम को कैसा वा कितना आनन्द होता है इसकी कल्पना वा प्रकार हमको दिखाया है। यदि अनन्त आनन्द होना कह दिया जाता तो भी बहुत आनन्दों की तुलना

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिखाये बिना मोक्षानन्द का वैसा बोध वा उत्कण्ठा नहीं हो सकती। सृष्टिकर्तृत्वभाव से वा निष्क्रियभाव से परमेश्वर को न्यूनाधिक आनन्द दिखाने का आशय यह है कि जिस दशा में ब्रह्म की उपासना मुमुक्षु लोग करते हैं वैसा ही न्यूनाधिक आनन्द उनको मिलता है। अर्थात् प्रजापालनदशा में अनुमान द्वारा ईश्वर की उपासना करने से उसका साक्षात् ज्ञान नहीं होता इससे निष्क्रियदशा की अपेक्षा उस समय मुमुक्षु को थोड़ा आनन्द होता है। कार्य कारण जगत् के साथ परमेश्वर के सम्बन्ध की अपेक्षा को छोड़ के निष्क्रिय निर्गुण ब्रह्म की उपासना मुमुक्षु को सबसे अधिक आनन्द देनेवाली है यह जताने के लिये आनन्द का तारतम्य दिखाया गया है ॥ ८ ॥

यतो वाचो निवर्त्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान्। न बिभेति कुतश्चनेति। एतꣳह वाव न तपति किमहꣳ साधु नाकरवम्?। किमहं पापमकरवमिति। स य एवं विद्वानेते आत्मानꣳस्पृणुते। उभे ह्येवैष एते आत्मानꣳ स्पृणुते। य एवं वेद। इत्युपनिषत् ॥ ९ ॥

इति नवमोऽनुवाकः ॥

ब्रह्मविदिदमयमिदमेकविंꣳ शतिरन्नादन्नरसमयात्प्राणोव्यानोऽपान आकाशः पृथिवी पुच्छꣳ षड्विंꣳशतिः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणं यजुरृक्सामादेशोऽथर्वाङ्गिरसः पुच्छं द्वाविंशतिर्यतः श्रद्धर्त्तꣳ सत्ययोगो महोऽष्टादश विज्ञानं प्रियं मोदमोद आनन्दो ब्रह्मपुच्छं द्वाविꣳशतिरसन्नेवाथाष्टावि ꣳशतिरसत् षोडश भोषाऽस्मान्मानुषो मनुष्यगन्धर्वाणां देवगन्धर्वाणां पितृणां चिरलोकलोकानामाजानजानां कर्म देवानां ये कर्मणा देवानामिन्द्रस्य बृहस्पतेः प्रजापतेर्ब्रह्मणः स यश्च सङ्क्रामत्येकपञ्चाशद्यतः कुतश्चनैतमेकादश नव ॥

सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै । तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ओ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

ब्रह्मविद्या एवं वेदेत्युपनिषत् ।

इति ब्रह्मानन्दवल्ली ॥

अ०—यतः परमात्मनो वाक्स्तमप्राप्यैव मनसा सह निवर्त्तन्ते । अर्थात्सङ्कल्पविकल्पात्मकं मनो वाचश्च तत्र न गच्छन्ति । ब्रह्मणस्तदानन्दं स्वरूपं प्राप्य विद्वान् कुतश्चन कस्माच्चिदपि न बिभेति । अर्थाद्यः पूर्वोक्तः सर्वानन्दमयः पुरुष आनन्दस्य पराकाष्ठां प्राप्तं परमात्मात्मानं जानाति—आनन्दस्वरूपमेव पश्यति । स मुक्तिदशायां स्थूलं शरीरं तत्कार्याणि च त्यक्त्वा कस्मादपि भयहेतोरग्निज्वलनादि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्यान्न बिभेति किन्त्वानन्दस्वरूप एव तिष्ठति। तमेतमानन्दस्वरूपं जीवन्मुक्तं ह वाव निश्चयेन विषयसुखभोगाभिलाषो न तपति नैव दुःखयति। स पश्यति—किमहं साधु श्रेष्ठं कर्म नाकरवम्? किमहं पापमकरवम्? इति सर्वं पूर्वकृतं स्मरति। अर्थादहं सर्वं साध्वेव कर्म कृतवान्न किमपि पापं यन्ममानन्दे विघ्नं करिष्यति स यो विद्वानेते साध्वकरणासाधुकरणे मदर्थं तापहेतू न स्त इत्यात्मानं स्वस्वरूपं स्पृणुते प्रीणयति। उभे एते पुण्यपापे हि मुख्यं तयोरेकस्य सेवनमितरस्य त्याग एव कर्त्तव्यस्तच्च मया कृतमित्यात्मानं स्पृणुते परमेश्वरं सेवयति य एवमुक्तप्रकारेण वेद जानातीति पूर्वेणान्वयः। इत्युपनिषत्। इयं ब्रह्मविद्यास्ति। अस्मादग्रे यावान् पाठो मूले धृतस्तावानस्या ब्रह्मानन्दवल्ल्याः समाप्तौ सर्वानुवाकानां सूचीरूपः। वाक्यादीनां परिगणनार्थश्चास्ति। यथा ब्रह्मविदिति प्रथमानुवाकारम्भस्तस्मिन्नेकविंशतिर्वाक्यानि। अन्नादन्नरसमयादित्यारभ्य द्वितीयोऽनुवाकस्तस्मिन् षड्विंशतिर्वाक्यानि। एवमग्रेऽपि॥

भा०—यथा जलमवाप्य पिपासितो दुःखान्निवर्त्तते एवं सर्वथाऽऽनन्दस्वरूपं परमात्मानं प्राप्तस्य सर्वाणि दुःखानि निवर्त्तन्ते। यश्च पूर्वं सम्यग्प्रीत्या सर्वथा विरज्यते स वैराग्यस्य पराकाष्ठां प्राप्त एव पूर्णानन्दस्वरूपं परमात्मानमवाप्य पूर्णानन्दमनुभवति। नैव तदानीं पापस्य सेवनं सुकृतस्य त्यागो वा लौकिकमिव मुक्तजनं बाधते यत उक्तविधो मुक्तो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नैव पापस्य सेवनं करोति सुकृतं च परात्परमनुष्ठितमेव सेनेति ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यतः, अप्राप्य, मनसा, सह, वाचः, निवर्त्तन्ते) जिस परमात्मा को प्राप्त न होकर ही मन के सहित उससे वाणी लौट आती है अर्थात् सङ्कल्पविकल्परूप मन और वाणी की गति उस परमेश्वर तक नहीं है (आनन्दम् , ब्रह्मणः, विद्वान्, न, बिभेति, कुतश्चन इति) विद्वान् पुरुष ब्रह्म के उस आनन्दस्वरूप को प्राप्त होकर किसी से भी नहीं डरता। अर्थात् सब आनन्दस्वरूप पूर्वोक्त पुरुष आनन्द की उत्तम अन्तिम सीमा को प्राप्त परमात्मा को जानता और आनन्दस्वरूप का ही प्रतिक्षण अनुभव करता है वह मुक्तिदशा में स्थूल शरीर और उसके सहयोगी गुण कर्मों को छोड़ कर किसी अग्नि में जलने वा जल में डूबने आदि भय के हेतु कार्य से नहीं डरता किन्तु आनन्दस्वरूप में ही रहता है (एतम्, ह, वाव, न, तपति) इस पूर्वोक्त आनन्दस्वरूप जीवन्मुक्त पुरुष को विषयसम्बन्धी सुखभोग की अभिलाषा कदापि किसी प्रकार का दुःख नहीं दे सकती क्योंकि वह देखता है कि (किम्, अहम्, साधु, न अकरवम्) (किम्, अहम् , पापम्, अकरवम् , इति) मैंने क्या श्रेष्ठ कर्म नहीं किया ? क्या मैंने पाप कर्म किया है ? इस प्रकार पूर्वकृत सब कर्मों का वह स्मरण करता है। अर्थात् वह कहता है कि मैंने जब सभी कर्म श्रेष्ठ किया है किन्तु पाप कुछ नहीं किया जो मेरे आनन्द में आकर विघ्न डालेगा। (सः, यः, एवम्, विद्वान्, एते, आत्मानम्, स्पृणुते) सो जो विद्वान् ये यो दोनों (श्रेष्ठ कर्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का न करना और पाप का करना) कर्म मेरे लिये दुःख के हेतु नहीं हैं क्योंकि मैंने श्रेष्ठ कर्म पहिले से किये और पाप नहीं किये इस प्रकार आत्मा नाम अपने को प्रसन्न रखता है (उभे, हि, एव, एषः, एते, आत्मानम्, स्पृणुते) ये दोनों ही पुण्य पाप मुख्य हैं उनमें से एक का सेवन और दूसरे का त्याग करना चाहिये सो मैंने किया है ऐसा मान कर वह पुरुष परमेश्वर का सेवन करता है कि (यः, एवम्, वेद) जो ऐसे उक्त प्रकार से परमेश्वर को जानता है। अर्थात् जो उसको आनन्दस्वरूप नहीं जानता वह उसका सेवन भी नहीं कर सकता (इति उपनिषत्) यह ब्रह्मविद्या वा उपनिषत् है।

इससे आगे (ब्रह्मविदिदम्०) इत्यादि पाठ है वह सब ब्रह्मानन्दवल्ली की समाप्ति में सब अनुवाकों का सूचीरूप है और वाक्य आदि के परिगणन के लिये भी पढ़ा है। जैसे (ब्रह्मवित्०) यह प्रथम अनुवाक का आरम्भ है उसमें इक्कीस वाक्य हैं। (अन्नात्०) यहां से लेकर दूसरा अनुवाक है उसमें छब्बीस वाक्य हैं। इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिये॥

भा०—जैसे जल पाकर प्यासा पुरुष प्यास के दुःख से बच जाता है। इसी प्रकार सर्वथा आनन्दस्वरूप परमात्मा को प्राप्त हुए पुरुष के सब दुःख छूट जाते हैं। जो पहिले अच्छे प्रकार सब रीति से विरक्त हो जाता है वह वैराग्य की अन्तिम सीमा को प्राप्त हुआ ही पूर्णानन्दस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होकर सम्पूर्ण आनन्द का अनुभव करता है। उस समय पाप का सेवन और

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुण्य का त्याग संसारी मनुष्य के समान मुक्तपुरुष को दुःखित नहीं कर सकता। क्योंकि पहिले सब कर्म उसके अच्छे हैं और वर्त्तमान में वह कुछ कर्त्ता नहीं ॥ ९ ॥

इति भीमसेनशर्मकृते तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्ये
ब्रह्मानन्दवल्ली समाप्ता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भृगुवल्ली प्रारभ्यते।

भृगुर्वै वारुणिः। वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच। अन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति। तꣳ होवाच। यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति। तद्विजिज्ञासस्व। तद्ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥ इति प्रथमोऽनुवाकः॥

वारुणिर्वरुणस्यापत्यं भृगुनामक ऋषिः स्वस्य पितरं वरुणमुपससार तस्य सान्निध्यं गतवान्। अत्र वारुणिरिति विशेषणं मानवादीनां भृगूणां व्यावर्त्तकम्। गत्वा च भगवो हे भगवन्! नकारस्यात्र रुत्वम्। ब्रह्माधीहि-अध्यापय स्मारय ज्ञापयेति यावत्। इत्युवाच। इक् स्मरण इत्यस्य लुप्तणिच्कं रूपमधीहीति। तस्मै पुत्राय वरुणोऽन्नं प्राणं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमित्येतत्सर्वं ब्रह्म प्रोवाच। पुनस्तं पुत्रं ब्रह्मणो लक्षणं होवाच—यतो वै कारणरूपादिमानि भूतानि जायन्ते। येन साधकरूपेण जातानि भूतानि जीवन्ति यत्कर्मरूपमन्त्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्थायां प्रयन्ति प्राप्नुवन्ति—अभिसंविशन्ति यत्र लीयन्ते। तद्विजिज्ञासस्व तद्ब्रह्म। अर्थाद्यदाश्रिता एषां भूतानामुत्पत्तिस्थितिलयाः सन्ति तद्विज्ञातव्यं यदेव ब्रह्मास्ति। एवं श्रुत्वा स भृगुस्तपोतप्यत स तपस्तप्त्वाऽन्नं ब्रह्मेति व्यजानादित्युत्तरेण सम्बन्धः। अर्थाद्ब्रह्मज्ञानाय तात्कालिकं कृत्यं यदुक्तम्—तत्कृतवान् ब्रह्मज्ञानाय यथाविध्युद्योगं कृतवान्॥

भा०—अत्र ब्रह्मज्ञानाय भृगुणा ब्रह्मपिता पृष्टः किमिदं ब्रह्म यन्मया श्रुतं यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति। तस्मै क्रमेण ब्रह्मज्ञानं कारयितुं ससाधनं ब्रह्मोपदिश्यते। यद्यप्यन्नादीनि ब्रह्म न सन्ति। तथाप्यन्नादिद्वारा ब्रह्म ज्ञातुं शक्यतेऽतः कारणाच्छिष्यबुद्धिपरीक्षार्थमादावन्नादीनां ब्रह्मत्वमुक्तम्। यच्चात्र ब्रह्मणो लक्षणं कृतं तच्च सापेक्षत्वात्सामान्यत्वाच्चान्नादिष्वपि प्रविष्टे भवत्येव। अतएव भाविष्वनुवाकेषु पूर्वं पूर्वं सापेक्षं ब्रह्म नास्तीति कृत्वा निरपेक्षं काङ्क्षमाणो नित्यं निरामयं ब्रह्मावगच्छति। इत्थमेव सम्यग्बोधो भवति। तस्मात्क्रमेणोपदिष्टं न साक्षादिति॥ १॥

भावार्थः—(वारुणिः, भृगुः, पितरम्, वरुणम्, वै, उपससार) वरुण का पुत्र भृगुनामक ऋषि अपने पिता वरुण के पास निश्चित विचार के साथ गया [यहां वरुण का पुत्र ऐसा विशेषण इस लिये दिया है कि मनु आदि के पुत्र अन्य भृगुओं का ग्रहण न हो] जाकर (इति) ऐसा बोले कि हे (भगवः) भगवन्! (ब्रह्म, अधीहि) ब्रह्म का स्मरण वा ज्ञान मुझे कराइये (तस्मै, अन्नम्,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणम्, चक्षुः, श्रोत्रम्, मनः, वाचम्, इति, एतत् प्रोवाच) उस भृगु से वरुणनामक पिता ने कहा कि अन्न, प्राण, चक्षु श्रोत्र, मन और वाणी ये सब ब्रह्म हैं (तम्, ह, उवाच) फिर भृगु से वक्ष्यमाण प्रकार ब्रह्म का लक्षण कहा कि जो अन्नादि में भी सामान्य प्रकार से घट जाता है (यतः वै, इमानि, भूतानि, जायन्ते) जिस कारणरूप से ये सब प्रत्यक्ष में दीख पड़नेवाले प्राणी उत्पन्न होते (येन, जातानि, जीवन्ति) जिस साधकरूप सर्वाधारक वा सर्वपोषक की सहायता से उत्पन्न हुए प्राणी जीवित रहते हैं (यत्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति) जिसमें प्रलय के समय लीन होते वा जिसमें सब प्रविष्ट हो जाते हैं (तत्, विजिज्ञासस्व, तत्, ब्रह्म, इति) जिसके आश्रय इन प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म है उसी को जानो। ऐसा सुन कर (सः) उस भृगु ने (तपः, अतप्यत) ब्रह्म को जानने के लिये तत्काल करने योग्य उद्योग किया (सः, तपः, तप्त्वा) उसने तप करके अन्न को ब्रह्म जाना इस प्रकार अगले वाक्य के साथ सम्बन्ध है।

भा०—इस वल्ली के प्रारम्भ में भृगु ने ब्रह्म को जानने के लिये अपने पिता से प्रश्न किया कि मैंने सुन रक्खा है कि जिसको जानकर जीव दुःखों से छूट जाता और मुक्ति को प्राप्त होता है वह ब्रह्म क्या वस्तु है ?। ऐसा पूछने पर वरुण ने अपने पुत्र भृगु को क्रम से ब्रह्म जताने के लिये साधनों सहित ब्रह्म का उपदेश किया। यद्यपि अन्नादि वस्तु ब्रह्म नहीं हैं तथापि अन्नादि अर्थात् शरीरादि के द्वारा ब्रह्म को जान सकते हैं इस कारण शिष्य की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि की परीक्षा करने के लिए पहिले अन्नादि को ब्रह्म बताया। और जो इस पृथमानुवाक में ब्रह्म का लक्षण किया वह सापेक्ष और सामान्य होने से अन्नादि में भी घटता है। इसी कारण अगले २ अनुवाकों में पहिले २ सापेक्ष अन्नादि वस्तु को ब्रह्म न रख कर निरपेक्ष नित्य और निरामय को ब्रह्म जताया है। इसी प्रकार सम्यक् बोध हो सकता है इस कारण क्रम से उपदेश किया गया किन्तु साक्षात् नहीं। आशय यह है कि शिष्य की बुद्धि पर बोझा डाल कर समझावें और उसी के मुख से कहावें और स्थूल वस्तुओं के क्रम से सूक्ष्म २ को धीरे धीरे समझाता जावे एक साथ नहीं॥ ९॥

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। अन्नेन जातानि जीवन्ति। अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय। पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तꣳ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥ २॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः॥

पूर्वोक्तं तपस्तप्त्वा ब्रह्मज्ञानसाधनमनुष्ठायान्नं ब्रह्म व्यजानाद्विज्ञातवान्। कुतः—अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते जातानि सन्ति प्राणिशरीराण्यन्नेन जीवन्ति। यद्यन्नं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भक्ष्यं किमपि नाप्नुयात्तदा कस्यापि जीवनं न स्यात्। अन्ने पृथिव्यादौ च प्रत्यहं मरणावसरे शरीराणि प्रलीयन्ते। एवमुक्तलक्षणानुकूलमन्नं ब्रह्म ज्ञात्वा पुनरपि संशयमापन्नो भृगुः पितृसान्निध्यमवाप्योक्तवान्। हे भगवो भगवन्! ब्रह्माधीहि स्मरसि जानासि मामपि ज्ञापय। तेन पुनरप्युक्तं तपसा ज्ञानविशेषसाधनेन ब्रह्म जानीहि तपो ज्ञानस्वरूपमेव ब्रह्मास्ति। स भृगुः पुनरपि तपोऽतप्यत ब्रह्मज्ञानसाधनमनुष्ठितवान्॥

भा०—अन्नं किमपि भक्ष्यं भुक्त्वैव शुक्रमुत्पद्यते शुक्राच्चोपादानात्प्राणिशरीराणि निष्पद्यन्ते। अतोऽन्नमेव प्राणिदेहानामुत्पत्तिस्थितिलयकारणमिति कृत्वा तस्य महत्त्वमुच्यते महत्त्वाच्चान्नं ब्रह्म। यदान्नमप्युत्पन्नं वस्तु तदा तस्याप्युपादानं किमप्यस्ति। यस्य चोपादानं कारणं नास्ति तेन ब्रह्मणा भाव्यम्। इत्यादिप्रकारेण सापेक्षकारणस्यान्नस्य ब्रह्मत्वं शङ्कमानः पुनः पितरं पृच्छति किं ब्रह्मेत्युपदिश। तेन च पुनर्ब्रह्मज्ञानसाधनानुष्ठानायाज्ञप्तः। यतः साधनैरेव साध्यस्य प्राप्तिः कर्त्तुं शक्यते॥ २॥

भाषार्थः—पूर्वोक्त पूकार (तपः, तप्त्वा, अन्नम्, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) भृगु ने ब्रह्मज्ञान के साधन का उपाय वा सेवन कर अन्न को ब्रह्म जाना। क्योंकि (अन्नात्, हि, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) अन्न से ही इन सब प्राणियों के शरीर उत्पन्न होते हैं (अन्नेन, जातानि, जीवन्ति) उत्पन्न हुए प्राणियों के शरीर अन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही से जीते हैं यदि भोजन के लिये कुछ अन्न न मिले तो कोई जीवित न रहै। (अन्नम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति) अन्न नाम पृथिवी आदि में प्रतिदिन मरण अवसर पर प्राणियों के शरीर लीन होते जाते हैं (तत्, विज्ञाय) इस उक्त लक्षण के अनुकूल अन्न को ब्रह्म जानकर फिर भी सन्देह को प्राप्त हुए भृगु पिता के समीप जाकर बोले। हे (भगवः) भगवन्! (ब्रह्म, अधीहि, इति) ब्रह्म को जानते हो? उसे मुझको भी जताइये (तम्, ह, उवाच) उस पिता वरुण ने फिर भी कहा कि (तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व) ज्ञानरूप साधन विशेष से ब्रह्म को जानो क्योंकि (तपः, ब्रह्म, इति) तपनाम ज्ञानस्वरूप ब्रह्म है (सः, तपः, अतप्यत) उस भृगु ने फिर भी ब्रह्मज्ञानसम्बन्धी साधन का सेवन किया।

भा०—अन्ननाम खाने योग्य किसी वस्तु को खाकर ही वीर्य बनता और वीर्यरूप उपादान कारण से मनुष्यों के शरीर बनते हैं। इस कारण अन्न ही प्राणियों के शरीरों की उत्पत्ति, स्थिति और लय का कारण है ऐसा मान कर उसका महत्त्व कहा है और बड़ा होने से अन्न ब्रह्म है। जब अन्न भी एक कार्यवस्तु है तो उसका भी उपादान कुछ हुआ जिसका उपादान कारण कोई न हो वही ब्रह्म होना चाहिये। इत्यादि प्रकार सापेक्ष अन्नरूप कारण के ब्रह्म होने में शङ्का करके भृगुने फिर पितासे पूछा कि ब्रह्म कौन है? उस पिता ने फिर भी ब्रह्मज्ञानसम्बन्धी साधनों का अनुष्ठान करने के लिये आज्ञा दी क्योंकि साधनों से ही साध्य की प्राप्ति हो सकती है॥ २॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणो ब्रह्मेति व्यजानात् । प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । प्राणेन जातानि जीवन्ति । प्राणं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार अधीहि भगवो ब्रह्मेति । तꣳहोवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ।

॥ तृतीयोऽनुवाकः ॥

मनो ब्रह्मेति व्यजानात् । मनसो ह्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते । मनसा जातानि जीवन्ति । मनः प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति । तद्विज्ञाय । पुनरेव वरुणं पितरमुपससार । अधीहि भगवतो ब्रह्मेति । तꣳहोवाच । तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व । तपो ब्रह्मेति । स तपोऽतप्यत । स तपस्तप्त्वा ॥

॥ चतुर्थोऽनुवाकः ॥

अन्नापेक्षयाऽपि सूक्ष्मं प्रधानं प्राणिशरीराणां कारणं प्राणः । न हि प्राणवायुमन्तरेण कस्यापि प्राणिन उत्पत्तिस्थितिलयाः सम्भवन्ति । मरणावसरेऽपि यमनामकं प्राणवायुमेव जीवात्मा गच्छति । मनोऽन्तःकरणमिन्द्रियाणामधिष्ठातृ । मनःकृता अनेके सङ्कल्पविकल्पा एव प्राणिदेहानुत्पादयन्ति । अर्थात्प्राणिदेहानामुत्पत्तिस्थितिहेतवो भवन्ति । अतः कारणान्मनसोऽपि कारणत्वं बोध्यम् । यस्मिन्सति यद्भवत्यसति च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न भवति तत्तस्य कारणम्। प्राणमनसोश्च सतोरेव शरीराणामुत्पत्तिस्थितिलयाः सम्भवन्ति नासतोरिति कृत्वा तयोः कारणत्वमुक्तम् ॥

भा०—यद्यपि शरीराणामुत्पत्तिस्थितिलयेषु प्राणमनसोः कारणत्वमस्ति तथापि तयोः स्वयमपि कस्यापि कार्यत्वाद्ब्रह्मत्वं न सम्भवति। शङ्क्यमाने च तयोर्ब्रह्मत्वे पुनःकिञ्चनेति जिज्ञासा नैव निवर्त्तते। अतएव मुहुर्मुहुः प्रश्नः क्रियते ॥ ३ ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(प्राणः, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) तिस पीछे भृगु ने प्राण को ब्रह्म जाना। क्योंकि (प्राणात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) प्राण से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। अन्न की अपेक्षा भी मनुष्यादि के शरीरों का सूक्ष्म और प्रधान कारण प्राण ही है प्राण वायु के विना किसी जीव की उत्पत्ति स्थिति और लय नहीं हो सकते अर्थात् प्राण न हो तो मरे भी कौन ? उस का निकल जाना ही मरना है। मरते समय यम नामक प्राण वायु में ही जीवात्मा जाता है (प्राणेन, जातानि, जीवन्ति) उत्पन्न होकर प्राण के होने पर ही जीते हैं (प्राणम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति) प्राण में लीन हो जाते अर्थात् वायु में ही शरीर छोड़कर जीवात्मा जाते हैं (तत्, विज्ञाय) इस प्रकार प्राण को ब्रह्म जानकर भी प्राण के पराधीन होने से उसके ब्रह्म होने में शङ्का हुई तब (पुनः, एव, वरुणम्, पितरम्, उपससार) फिर भी भृगु अपने पिता वरुण के पास गये और बोले कि (अधीहि, भगवः, ब्रह्म,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति) हे भगवन् ! आप ब्रह्म को जानते हैं मुझे भी जताइये (त-
म्, ह, उवाच) तब पिता पुत्र से बोले कि (तपसा, ब्रह्म, विजि-
ज्ञासस्व) तप से ब्रह्म को जानना चाहो क्योंकि (तपः, ब्रह्म इति)
ज्ञानस्वरूप ही ब्रह्म है (सः, तपः, अतप्यत) तब भृगु ने फिर भी
तप किया (सः, तपः, तप्त्वा) उन्हों ने तप करके (मनः, ब्रह्म,
इति, व्यजानात्) मन को ब्रह्म जाना (मनसः, हि, एव, खलु,
इमानि, भूतानि, जायन्ते) मन से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते
(मनसा, जातानि, जीवन्ति) मनसे उत्पन्न हो कर जीते हैं (मनः,
प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति) मन में लीन होते हैं अर्थात् मन
नाम अन्तःकरण इन्द्रियों का अधिष्ठाता है उसी में रहनेवाले
अनेक संकल्पविकल्परूपादि मन की वृत्तियाँ जीवों के शरीरों की
उत्पत्ति स्थिति लय होने में कारण हैं अर्थात् वासनारूप वृत्ति ही
अनेक जन्ममरणादि कराती हैं। इस कारण मन को भी कारण
माना है। जिस के होने पर जो होता और न होने पर जो नहीं
होता उस का वह कारण है। प्राण और मन के होने पर ही शरीर
के उत्पत्ति स्थिति और लय होते हैं न होने पर नहीं ऐसा मान
कर उन को कारण कहा है॥

भा०—यद्यपि शरीरों की उत्पत्ति आदि में प्राण और मन
भी कारण हैं तो भी वे दोनों किसी अन्य के कार्य हैं इस से ब्रह्म
नहीं हो सकते। जब उन के ब्रह्म होने में सन्देह हो गया तो ब्रह्म
कौन है ? ऐसी जानने की इच्छा पूरी न हुई इसी लिये बार २ प्रश्न
किया गया है कि जिससे ब्रह्म का ठीक २ बोध हो॥ ३॥ ४॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात्। विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। विज्ञानेन जातानि जीवन्ति। विज्ञानं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद्विज्ञाय। पुनरेव वरुणं पितरमुपससार। अधीहि भगवो ब्रह्मेति। तꣳ होवाच। तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व। तपो ब्रह्मेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥

॥ पञ्चमोऽनुवाकः॥

आनन्दो ब्रह्मेति व्यजानात्। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति। आनन्दं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति सैषा भार्गवी वारुणी विद्या। परमे व्योमन् प्रतिष्ठिता। य एवं वेद प्रतितिष्ठति अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या॥

॥ षष्ठोऽनुवाकः॥

विज्ञानं निश्चयात्मकं ज्ञानं तच्च मनसोऽपेक्षया सूक्ष्मं प्रधानं चास्ति। ईक्षणपूर्विका सृष्टिरित्यस्यापि कथनस्येदमेव प्रयोजनं यन्निश्चयात्मकानुसन्धानमन्तरेण कस्याप्युत्पत्तिस्थिती न सम्भवत इति कृत्वा विज्ञानस्य हेतुत्वम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एवमानन्दस्वरूपं ब्रह्म तदेव च फलम्। अन्यानि च फलानि ब्रह्मानन्दस्यैव भेदरूपाणि भवन्ति। प्राणिनामुत्पत्तिस्थितिलयेष्वानन्दस्वरूपं ब्रह्म हि मुख्यं कारणम्। सैषा भृगुणा प्रोक्ता वरुणेन विज्ञाता विद्या परमे सर्वोत्तमे व्योमन् व्यांम्नि हृदयाकाशे चिदात्मनि प्रतिष्ठिता। यतो ज्ञानाधिकरणमात्मेति वदन्ति। योऽन्योऽपि कश्चित्तपसैव साधनेन पुनः पुनः सेव्यमानेन पूर्वोक्तक्रमेण चानन्दस्वरूपं ब्रह्म वेद सोऽप्यानन्दे प्रतितिष्ठतीति परोक्षं फलमभिहितम्। अन्नस्य तत्त्वं महत्त्वं च सम्यग् विशिष्टान्नवान्महत्प्रबलशरीरधारी वा सन्नान्नादोऽन्नं भक्ष्यं भोक्तुं शक्तो भवति प्रजया पुत्रादिना पशुभिर्गवाश्वादिभिर्ब्रह्मवर्चसेन विद्याविज्ञानतेजोभिश्च कीर्त्या च महान् पूज्यः सत्कारार्हो भवति। अर्थात्पुत्रादयः प्रशस्ताः सन्तस्तस्य पूजाहेतवो भवन्तीत्याशयः॥

भा०—विज्ञानं गुणास्तस्य द्रव्याश्रितत्वात्कर्तृत्वेऽपि कार्यत्वं सम्भवति कार्यं च ब्रह्म न भवतीति मत्वा जिज्ञासा प्रवर्तते। आनन्दानुभवे च सर्वस्य स्थितिर्दृश्यते। जगत्यपि नास्त्यानन्दात्परम्। आनन्दप्राप्त्यर्थमेव सर्वे प्रयत्नाः क्रियन्ते यदा च तस्य लेशोऽपि प्राप्यते तदैव सुखी भूत्वा स्थिरीभवति। आनन्दस्य निरतिशया प्राप्तिस्तु ब्रह्मण्येव सम्भवति तस्यानन्दस्वरूपत्वात्। यदा च भृगुणानन्दस्वरूपं ब्रह्म बुद्धं तदैव जिज्ञासा निवृत्ता। अन्योऽप्येवं करिष्यन् ब्रह्मानन्दं प्राप्यानन्दी भवितुमर्हति॥ ५॥ ६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—तप करके (विज्ञानम्, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) विज्ञान-नाम निश्चित ज्ञान को ब्रह्म जाना क्योंकि मन की अपेक्षा विज्ञान ही सूक्ष्म और प्रधान है (विज्ञानात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) विज्ञान से ही ये सब प्राणी उत्पन्न होते (विज्ञानेन, जातानि, जीवन्ति) विज्ञान से ही उत्पन्न हुए प्राणी जीते हैं (विज्ञानम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति, इति) विज्ञान में ही सब लीन हो जाते हैं इस कारण विज्ञान ब्रह्म है। प्रयोजन यह है कि ईक्षणपूर्वक अर्थात् ठीक २ विचार से अनुसन्धान करके ही संसार बनाया जाता है। इससे सिद्ध है कि विज्ञान के विना किसी की उत्पत्ति वा स्थिति होना सम्भव नहीं ऐसा मान कर विज्ञान को कारण ठहराया है (तत्, विज्ञाय) उस विज्ञान को ब्रह्म जान कर (पुनः, एव, वरुणम्, पितरम्, उपससार) फिर भी अपने पिता वरुण के पास जाकर बोले कि (अधीहि, भगवः, ब्रह्म, इति) हे भगवन् पितः! आप ब्रह्म को जानते हैं मुझे भी जताइये (तम्, ह, उवाच) उस भृगु से वरुण बोले कि (तपसा, ब्रह्म, विजिज्ञासस्व) तप से ब्रह्म को जानने की इच्छा करो क्योंकि (तपः, ब्रह्म, इति) तपके साथ ब्रह्म है (सः, तपः अतप्यत) उस भृगु ने फिर भी तप किया और (तपः, तप्त्वा) तप करके (आनन्दः, ब्रह्म, इति, व्यजानात्) आनन्द को ब्रह्म जाना क्योंकि (आनन्दात्, हि, एव, खलु, इमानि, भूतानि, जायन्ते) आनन्द से ही ये प्राणी उत्पन्न होते हैं (आनन्देन, जातानि, जीवन्ति) उत्पन्न हुए आनन्द के आश्रय से जीते हैं (आनन्दम्, प्रयन्ति, अभिसंविशन्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इति) आनन्दस्वरूप में ही सब लीन हो जाते हैं। आनन्दस्वरूप एक ब्रह्म है और वही सबकी अन्तिम सीमा है। परमात्मा को प्राप्त हुए पीछे किसी आनन्द की अपेक्षा नहीं रहती क्योंकि अन्य सब फल ब्रह्मानन्द के एक हिस्से में माने जाते हैं। प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति प्रलय होने में आनन्दस्वरूप ब्रह्म ही मुख्य कारण है (सा, एषा, भार्गवी, वारुणी, विद्या) सो यह पूर्वोक्त वरुण ने अनुभव की और भृगु ने कही वा पुस्तकाकार बनाके प्रकट की। विद्या (परमे, व्योमन्, प्रतिष्ठिता) सर्वोत्तम शुद्धहृदयरूप आकाश चेतन आत्मा में स्थित है इसी लिये आत्मा को ज्ञान का आधार मानते वा कहते हैं (यः एवम्, वेद) जो कोई अन्य भी बार २ सेवन किये तप ही साधन से पूर्वोक्त क्रम के अनुसार आनन्दस्वरूप ब्रह्म को जान लेता वा उसका अनुभव ठीक २ कर लेता है वह (प्रतितिष्ठति) भी आनन्द में स्थित हो जाता है यह परोक्षफल कहा है (अन्नवान्, अन्नादः, भवति) अन्न की प्रशंसा पूर्व लिख चुके हैं उसका फल कहते हैं कि जो अन्न को बड़ा उपकारी प्राणियों की उत्पत्ति स्थिति लय का कारण मानता है वह अन्नवान् बहुत अन्न का सञ्चय रखनेवाला पथ्यपूर्वक खानेवाला होने से भोजन शक्तियुक्त होता (महान्, भवति) शरीर से बड़ा और बलिष्ठ होता है अच्छे प्रकार अन्न का भोजन कर सकता और पचा सकता है (प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन) पुत्रादि प्रजा गौ घोड़े आदि पशु और विज्ञानसम्बन्धी तेजों से बढ़ता वा प्रतिष्ठित होता तथा (महान्, कीर्त्या) कीर्त्ति के बढ़ जाने से भी पूज्य वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्कार के योग्य होता है अर्थात् पुत्रादि भी प्रशंसा के योग्य हुए उसकी प्रतिष्ठा के हेतु होते हैं।

भा०—विज्ञान एक गुण है वह चेतन आत्मा नामक द्रव्य के आश्रित होने से कर्त्ता भी हो जाता है तथापि उसमें कार्य का होना सम्भव है अर्थात् विज्ञान के गुण होने से उसका पराधीन होना स्पष्ट है और ब्रह्म कर्त्ता होने से सर्वथा स्वाधीन है। इससे विज्ञान को ब्रह्म न मान कर आगे ब्रह्म को जानने की इच्छा प्रवृत्त होती है। और आनन्द का अनुभव होने पर सबकी स्थिति दीखती है। जगत् में भी आनन्द से परे कुछ नहीं है। आनन्द को प्राप्त होने के लिये ही सब प्रयत्न किये जाते हैं। जब आनन्द का लेश भी प्राप्त हो जाता है तभी सुखी होकर मनुष्य चञ्चलता छोड़ के ठहर जाता है। और आनन्द की सर्वोपरि अत्यन्त प्राप्ति तो ब्रह्म में ही सम्भव होती है। क्योंकि वही एक सर्वोपरि आनन्दस्वरूप ब्रह्म को जान लिया तभी जिज्ञासा निवृत्त हो गयी अन्य भी जो कोई ऐसा करेगा वह आनन्दस्वरूप ब्रह्म को प्राप्त हो सकेगा ॥५॥६॥

अन्नं न निन्द्यात्। तद्व्रतम्। प्राणो वा अन्नम्। शरीरमन्नादम्। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम्। शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वोक्तस्यान्नस्य व्यतिरेकेण महत्त्वं प्रदर्श्यते—तत्रान्नं न निन्द्यादिति विधिवाक्यम्। अन्यश्च सर्वोऽस्यैव विधिवाक्यस्यार्थवादः। प्राणो भोक्तृशक्तिप्रधानत्वाच्चराचरमत्ति तस्मात्तस्यान्नत्वम्। कस्यचिच्छरीरं केनचिदद्यत इति शरीरमप्यन्नम्। तच्च पूर्वमेवोक्तमद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यत इति॥

भा०—अन्नस्य निन्दात्यागरूपं व्रतं मनुष्येण सदैव सेव्यम्। यतोऽन्नमेव प्राणशरीरयोः स्थितिहेत्वस्ति। अन्नमन्तरा तयोर्नाश एव दृश्यते। सति च प्राणे शरीरे च धर्मार्थकाममोक्षाणां सिद्धिः कर्त्तुं शक्यते। अतः परम्परया महत्कार्यसाधकत्वादन्नस्य केनापि कदापि निन्दा नैव कार्य्या। यश्च याथातथ्येनान्नस्य तत्त्वं विमृशति स सदैवान्नस्य सञ्चयं रक्षति तस्य दानं करोति युक्त्या पथ्येन च सेवते तस्माद्बलवान् पुत्रैश्वर्यादिसुखसम्पत्त्या च सम्पन्नः सन् सुखी भवति॥ ७॥

भाषार्थः—पूर्व कहे अन्न का महत्त्व अब व्यतिरेक से दिखाते हैं (अन्नम्, न, निन्द्यात्) अन्न की निन्दा न करे यह विधिवाक्य है आगे सब इसी का अर्थवाद दिखाया है (तत्, व्रतम्) उसका नियम कर ले कि मैं अन्न की निन्दा न करूँगा (प्राणः, वै, अन्नम्) भोक्तृशक्ति में प्रधान होने से प्राण ही चराचर अन्न का भोक्ता है इस लिये प्राण को अन्न कहते हैं (शरीरम्, अन्नादम्) खाया हुआ अन्न शरीर में ठहरता वा शरीररूप बनता है इससे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर अन्नाद और किसी के शरीर को कोई सिंहादि खा जाता है इससे शरीर भी अन्न है सो पूर्व लिख चुके हैं कि खाया जाता वा खानेवाला अन्न कहाता है (प्राणे, शरीरम्, प्रतिष्ठितम्) प्राण के रहने तक शरीर ठहर सकता (शरीरे प्राणः, प्रतिष्ठितः) और शरीर प्राणों का आधार है,(एतम्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्) सो इस प्रकार अन्न में अन्न ठहरा है अर्थात् शरीर और प्राण दोनों में आधाराधेय भाव है एक दूसरे के आश्रय हैं और दोनों ही मनुष्य के आत्मा को सुख दुःख पहुँचानेवाले हैं (सः, यः, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्, वेद) सो जो पुरुष इस अन्न को अन्न के आश्रय से ठीक स्थिति रह सकती है ऐसा ठीक २ जानता है वह (प्रतितिष्ठति) ठहर सकता अर्थात् बहुत काल तक अपने प्राण और शरीर को संसार में रख सकता है (अन्नवान्, अन्नादः, भवति) अन्न का सञ्चय करने और भोजन की शक्तिवाला होता है तथा (प्रजया, पशुभिः, ब्रह्मवर्चसेन, महान्, भवति) पुत्रादि सन्तान, गौ आदि पशु और विद्याविज्ञान-सम्बन्धी तेज से बड़ा वा प्रतिष्ठित माना जाता तथा (महान्, कीर्त्या) कीर्त्ति से भी प्रतिष्ठित होता है ॥

भा०—अन्न की निन्दा त्यागनारूप नियम मनुष्य को सदा सेवना चाहिये क्योंकि अन्न ही प्राण और शरीर की रक्षा का हेतु है। अन्न के विना प्राण और देह का नाश ही होता दीखता है तथा प्राण और शरीर के रहने पर ही धर्मार्थ काम और मोक्ष की सिद्धि हो सकती है। इस कारण परम्परा से बड़े कार्य का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक होने से कदापि किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये और जो अन्न के तत्त्व को यथार्थरूप से जान लेता है वह सदैव अन्न का सञ्चय, दान, युक्ति से सेवन और पथ्य से भोजन करता है। उससे बलवान् तथा पुत्रादि ऐश्वर्यादि सुख के साधनों से युक्त हुआ सुख का भागी होता है ॥ ७ ॥

अन्नं न परिचक्षीत । तद्व्रतम् । आपो वा अन्नम् । ज्योतिरन्नादम् । अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतितिष्ठति। अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन । महान् कीर्त्या ॥ ८ ॥ अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम्। पृथिवी वा अन्नम्। आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः। आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम्। स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितं वेद प्रतिष्ठिति। अन्नवानन्नादो भवति। महान् भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान् कीर्त्या ॥

॥ इत्यष्टमनवमानुवाकौ ॥

अन्नस्य प्रत्याख्यानं न कुर्यादिति विधिवाक्यमस्यैवान्योऽर्थवादः प्रत्याख्यानं च बहुविधं विद्यमानेऽप्यन्नं नास्तीत्यादिप्रकारकम्। भोग्यशक्तिप्रधानत्वादपामन्नत्वम्। भोक्तृशक्तिप्रधानं ज्योतिः सूर्यादिकं प्राणकोटिस्थम्। ते भोक्तृभोग्ये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतरेतराश्रयेण प्रतिष्ठिते पूर्ववत् तयोरन्नत्वम्। तथा चान्नं बहु कुर्वीतेति विधिवाक्यमग्रेऽस्यैवार्थवादः। पृथिवी भोग्य-प्रधाना यतः प्रायेण पार्थिवमेव भोग्यं जगत्युपलभ्यते। भोक्तृ-प्रधान आकाशस्तेजसा प्रायेण तद्वैशिष्ट्येन च सम्बन्धात्। यद्यद्विशिष्टं तेजः सम्बद्धं तत्तद्भोक्तृशक्तिप्रधानम्। पूर्ववत्तयोः परम्पराश्रिता स्थितिरन्नत्वं चानुसन्धेयम्। एवमवादीनां महत्त्वं तत्त्वं च विज्ञाय याथार्थ्येनोपयुज्य च पूर्ववदन्नवान-न्नादो भवति महत्त्वादिफलं चाप्नोति॥

भा०—केनापि कदाप्यन्नस्य परिहारो नैव कार्य एतस्य नियम एव रक्षणीयः। अद्भिः पृथिव्या च विना कस्यापि जी-वनं न सम्भवतीति कृत्वा तयोरन्नत्वम्। ज्योतिराकाशौ प्राणस्य सहयोगिनाविति प्राणकोटिस्थत्वेन तयोरवृत्तत्वम्। अन्नस्य महान्तं सञ्चयं मनुष्यः कुर्यात्तेनान्यप्राणिनामपि यथा-सम्भवं प्राणरक्षां कुर्यात्। प्राणरक्षणादुत्कृष्टं जगति पुण्यं नास्ति। अतएवैतादृशसुकर्मसेवको जगति पुत्राद्यैश्वर्येण पर-मार्थे च ब्रह्मज्ञानसुखेन सम्पन्नो निरामयो निर्बाधानन्दभाग्भ-वति॥ ८॥ ९॥

भाषार्थः—(अन्नम्, न, परिचक्षीत) अन्न का निषेध वा खण्डन न करे यह विधिवाक्य आज्ञा है। आगे इसी का अर्थवाद कहा है (तत्, व्रतम्) यह नियम करले कि मैं अन्न का निषेध न करूंगा। खण्डन बहुत प्रकार का है जैसे अन्न के होने पर भी कह देना कि अन्न नहीं है इत्यादि (आपः, वै, अन्नम्) मुख्य कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भोग्यशक्ति के अन्तर्गत होने से जल ही अन्न है अर्थात् प्राणरक्षा का हेतु है (ज्योतिः, अन्नादम्) प्राण का सहकारी होने से सूर्यादि ज्योति अन्न का भक्षक-भोक्तृशक्ति के अन्तर्गत है (अप्सु, ज्योतिः, प्रतिष्ठितम्) भोग्य में भोक्ता (ज्योतिषि, आपः, प्रतिष्ठिताः) और भोक्ता के आश्रय से भोग्य स्थित है। इस प्रकार वे दोनों भोग्यभोक्ता परस्पर के आश्रय से स्थित हैं। और पूर्व कहे प्रकार दोनों अन्न हैं (तत्, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्) भोक्ता और भोग्य अन्न एक दूसरे के आश्रय से स्थित हैं (सः, यः, एतत् अन्नम्, अन्ने प्रतिष्ठितम्, वेद, प्रतितिष्ठति) सो जो विवेकी पुरुष भोग्यभोक्तारूप अन्न की अन्न के आश्रय से स्थिति देखता वा जानता है वह प्रतिष्ठित वा दृढस्थायी होजाता है (अन्नवान्, अन्नादः, भवति) अन्न का रखनेवाला और भोजन की शक्ति से युक्त होता है (प्रजया, पशुभिः ब्रह्मवर्चसेन, महान्, भवति) पुत्रादि सन्तान, गौ आदि पशु और विद्यासम्बन्धी तेज से जगत् में प्रकाशित होता तथा (महान्, कीर्त्या) कीर्त्ति भी उसकी अधिक होती है (अन्नम्, बहु, कुर्वीत) अन्न का बहुत सञ्चय करे यह आज्ञा है (तत्, व्रतम्) इस का नियम रखना चाहिये (पृथिवी, वै, अन्नम्) मुख्य कर भोग्य के अन्तर्गत होने से पृथिवी ही अन्न है क्योंकि जगत् में पृथिवी से बने हुए ही खाने के पदार्थ मिलते हैं (आकाशः, अन्नादः) विशेष वा प्रायः तेज के साथ सम्बंध होने से आकाश भोक्तृशक्तिप्रधान है संसार में जो २ वस्तु विशेष तैजसगुणयुक्त है वही भोक्ता का सहकारी जानो (पृथिव्याम्, आकाशः प्रतिष्ठितः)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी में आकाश और (आकाशे, पृथिवी, प्रतिष्ठिता) आकाश में पृथिवी स्थित है अर्थात् ये भी दोनों भोग्यभोक्ता एक दूसरे के आश्रय से स्थित हैं (तत्, एतत्, अन्नम्, अन्ने, प्रतिष्ठितम्) सो उक्त प्रकार ये दोनों आकाश पृथिवी भोक्ताभोग्य होने से अन्न हैं और परस्पर आधार हैं (सः, यः) इत्यादि अर्थ पूर्व के तुल्य जानना चाहिये बार २ लिखना पुनरुक्त है ॥

भा०—किसी को कभी अन्न का निषेध वा खण्डन नहीं करना चाहिये यह नियम रखना उचित है। जल और पृथ्वी के विना किसी का जीवन हो सकना सम्भव नहीं ऐसा मान कर उन दोनों को अन्न कहा है सूर्यादि ज्योति और आकाश प्राण के सहयोगी होने से भोक्ता हैं इसी लिये दोनों को अन्नाद कहा गया है। मनुष्य अन्न का बड़ा सञ्चय करे उस से यथासम्भव अन्य प्राणियों की भी प्राणरक्षा करे क्योंकि प्राण की रक्षा से बढ़ के जगत् में कोई पुण्य नहीं इसी से अन्नदान सर्वोपरि है। इसी कारण ऐसा पुण्य करनेवाला जगत् में पुत्रादिसम्बन्धी सुख से और परमार्थ में ब्रह्मज्ञान के सुख से युक्त हुआ नीरोगी और सब बाधाओं से रहित आनन्द को भोगता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

न कञ्चन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद्व्रतम्। तस्माद्यया कया च विधया बह्वन्नं प्राप्नुयात्। अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते। एतद्वै मुखतोऽन्नꣳ राद्धम्। मुखतोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते। एतद्वै मध्यतोऽन्नꣳ राद्धम्। मध्यतो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऽस्मा अन्नꣳ राध्यते। एतद्वा अन्ततोऽन्नꣳ राद्धम्। अन्ततोऽस्मा अन्नꣳ राध्यते ॥ १ ॥ य एवं वेद। क्षेम इति वाचि। योगक्षेम इति प्राणापानयोः। कर्मेति हस्तयोः। गतिरिति पादयोः। विमुक्तिरिति पायौ। इति मानुषीः समाज्ञाः। अथ दैवीः। तृप्तिरिति वृष्टौ। बलमिति विद्युति ॥ २ ॥ यश इति पशुषु। ज्योतिरिति नक्षत्रेषु। प्रजातिरमृतमानन्द इत्युपस्थे। सर्वमित्याकाशे। तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत। प्रतिष्ठावान् भवति। तन्महेत्युपासीत। महान् भवति। तन्मन इत्युपासीत। मानवान् भवति ॥ ३ ॥ तन्नम इत्युपासीत। नम्यन्तेऽस्मै कामाः। तद्ब्रह्मेत्युपासीत। ब्रह्मवान् भवति। तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत। पर्य्येणं म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः। परियेऽप्रिया भ्रातृव्याः। स यश्चायं पुरुषे यश्चासावादित्ये। स एकः ॥ ४ ॥ स य एवंवित्। अस्माँल्लोकात्प्रेत्य। एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतंप्राणमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रम्य। एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रम्य। इमाँल्लोकान् कामान्नीकामरूप्यनुसञ्चरन्। एव-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्साम गायन्नास्ते । हा३वु हा३वु हा३वु ॥ ५ ॥ अहमन्न-महमन्नमहमन्नम् । अहमन्नादो२ऽहमन्नादो२ऽहमन्नादः । अहꣳश्लोककृदहꣳश्लोककृदहꣳश्लोककृत् । अहमस्मि प्रथमजा ऋता३स्य । पूर्वं देवेभ्योऽमृतस्य ना३भायि । यो मा ददाति स इदेव मा३वाः । अहमन्नमन्नमदन्तमा३द्मि । अहं विश्वं भुवनमभ्यभवां ३ सुवर्ण्ज्योतीः । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ॥ ६ ॥

राध्यते विद्युति मानवान् भवत्येको हा३वु य एवं वेदैकञ्च ॥ इति दशमोऽनुवाकः ॥

वसतौ वासार्थमतिथिरूपमागतमभ्यागतं कञ्चन कमपि ब्राह्मणादिकं न प्रत्याचक्षीत । तथाऽऽगतायाऽतिथयेऽन्नमपि सिद्धं दातव्यमिति धर्मशास्त्रादिषु विहितमेव । तस्माद्धर्ममर्यादानिर्वाहाय यया कया विधया येन केनापि धर्म्यमार्गप्रकारेण बह्वन्नं सञ्चिनुयात् । अस्मा अतिथिलक्षणाय कल्याणमार्गदर्शकायाराधि संसिद्धं पक्वमस्माभिरन्नमस्तीति धार्मिका विद्वांस आचक्षते न कदापि नकारं कुर्वन्ति । उत्तममध्यमनिकृष्टास्त्रिविधा अतिथयः श्रद्धात्रैविध्याद्दानमपि तथैव त्रिविधं तस्य तादृशमेव दाता त्रिविधं फलमाप्नोति । यः पुरुष एवमुक्तप्रकारेणान्नदानस्य महत्फलं वेद जानाति स दानस्य यथोक्तं फलमाप्तुमर्हति । उपात्तस्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यया गुरुमुखाद्वा श्रुत्वा लब्धस्य धर्मेश्वरादिज्ञानस्य वाचि परिरक्षणं कार्यम्। वाचा स्तुतिप्रार्थनोपदेशाभ्यासाः प्रत्यहं सेवनीयाः। अलब्धस्य लाभो योगः, लब्धस्य परिरक्षणं-क्षेमं तदुभयमपि प्राणापानयोर्मध्ये धारणीयम्। प्राणायामादियोगाभ्यासद्वारा परमात्मनो ज्ञानं सम्पाद्य रक्षणीयं वर्द्धनीयं च हस्तयोर्मध्ये शुभमेव कर्म रक्षणीयम्। हस्ताभ्यामेव प्रायेण कर्म क्रियते हस्तेन्द्रियस्य कर्मैव विषयोऽस्ति स धर्मशास्त्रानुकूल एव सेव्यः। पादयोर्गतिस्तादृश्येवास्ति। विमुक्तिर्विसर्गस्त्यागो मलस्य पायुनिमित्तकः स एव तेनेन्द्रियेण कार्यो न तु पुंसि मैथुनमित्याशयः। इत्येवंप्रकारा मनुष्यशरीरेण कर्त्तव्याः समाज्ञाः सम्यगाज्ञाः सन्ति। अथ दैवीराधिदैविकाः समाज्ञाः कर्त्तव्यान्युच्यन्ते। वृष्टौ सत्यां तृप्तिर्जायते विद्युति च बलमुत्पद्यते। तस्मात्तृप्तिबलयोर्वर्द्धनाय वृष्टिविद्युत्प्रचाराय मनुष्येण प्रयत्नः कार्यः। वृष्टिविद्युतावाधिदैविकौ। अविशेषेण समदृष्ट्या सर्वान् पश्यन्तीति पशवो लोकोत्तराः समदर्शिनो जीवन्मुक्ता ज्ञानिनस्तेषां सेवनेन यशो वर्द्धते त एव देवपदवाच्याः। यशोऽर्थं तेषां सेवनं कार्यम्। नक्षत्रेषु प्रकाशोऽवस्थितोऽस्ति। प्रजातिरमृतमानन्द इति त्रयमुपस्थात्सम्भवति। सन्तानोत्पत्तिः सुखहेतुस्तस्य कारणमुपस्थमस्ति। उपस्थजन्यसुखभोगाद्विरक्तेनामृतं मोक्षः प्राप्यते। जगति चोपस्थस्याऽऽनन्दो विषयः स च तत्तरैरनुभूयते। आकाशे सर्वं प्रतिष्ठितमस्ति। तस्यापि ब्रह्मणि प्रतिष्ठा दृश्यते तस्मात्स-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्बाधारबुद्ध्या ब्रह्मोपासीत स प्रतिष्ठावान् भवति। तद्ब्रह्म सर्वस्माद्वस्तुमात्रान्महत्तरमिति महत्त्वधियोपासीत सोऽपि महत्त्वोपासनान्महान्भवति । तज्ज्ञानस्वरूपं ब्रह्मेत्युपासीत सोऽपि ज्ञानवान् भवति। तन्नमो नम्रं सर्वविधकाठिन्यविरहं निर्मलं शुद्धं निरहङ्कारं ब्रह्मोपासीतास्मै उपासकाय कामा भोग्या विषयाः कौटिल्यराहित्येन सुलभसरलरीत्या प्राप्ता भवन्ति। तद्ब्रह्म वृद्धियुक्तमस्तीत्युपासीत सोऽपि ब्रह्मवान् वृद्धियुक्तो भवति। ब्रह्मणो बृहत आकाशादेः परिमरः परमेश्वरः (परितो मृता इव निस्सामर्थ्या भवन्ति वाय्वादयो बलवत्तरा अपि यदग्रे) अस्तीति तदुपासीत तस्यापि द्विषन्तः सपत्नाः सर्वे परितो म्रियन्ते तस्य ब्रह्मोपासकस्य वृद्धां शक्तिमनुलक्ष्य तदग्रे निर्जीवा इवाशक्ता भवन्ति। एवं योऽसावुपास्यो देवः परमेश्वरः पुरुषशरीराद्युपलक्षिते कार्ये जगति पृथिव्यां व्याप्तः यश्चासावादित्ये प्रकाशमये सूर्यादौ स एक एवास्ति नास्ति तस्मिन् भेदस्स एक एव सर्वस्याधिष्ठाताऽस्ति। एवमुक्तप्रकारेण यो विद्वान् परमात्मानं वेत्ति सोऽस्मात्प्रत्यक्षाद् दृष्टिपथगताल्लोकाच्छरीरात्प्रेत्य जीवन्मुक्तिदशां प्राप्यान्नमयादिपञ्चात्मनः कार्यशरीरस्थानुपसङ्क्रम्य समीपात्सम्यक् त्यक्त्वा नीकामरूपी त्यक्तसर्वलौकिकसुखभोगाभिलाषो विद्वानिमान् चित्रविचित्रसृष्टिसंयुक्तान् कमनीयान्पृथिव्यादिलोकाननुसञ्चरन् स्वातन्त्र्येण सर्वत्र विचरति। एतत्साम सर्वत्र समतामापन्नं ब्रह्म गायन्नास्ते चाञ्चल्यरहितो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भवति कथं गायन्? हाऽवु हाऽवु हाऽवु अहो इत्येतस्मिन्नर्थे हाव्विति प्रयुक्तम्। अहो आश्चर्यस्वरूपं ब्रह्मेति गायन् स्त्रीरीभवति। अहं शब्दोऽत्र प्रकृतिपुरुषयोरैक्य एव प्रयुज्यते। अहमन्नं कस्यचिद्भक्तकस्य सिंहादेर्भक्ष्यं भवामि। अहमन्नादो भक्ष्यं स्थावरादिकमप्यहं तस्मान्मयि भक्ष्यभक्षकयोर्द्वयोरपि कथनं सम्भवति कथनस्य दाढर्याय त्रिरुक्तिः। अहं श्लोककृत्—श्लोककराणि यशोवर्द्धकानि कर्माण्यहं पुनः पुनः करोमि। ऋतस्य जगतो मध्ये प्रथमो मुख्योऽहं जातोऽस्मि परमेश्वरकृपातः सर्वदुःखेभ्यः पृथग्भूतोऽस्मि। देवेभ्यः पूर्वमर्थात् पृथिव्यादिपञ्चदेवजन्यशरीरपातात्पूर्वमेव जीवन्मुक्तिदशायाममृतस्य मोक्षस्य नाभौ मध्येऽहं तिष्ठामीत्यर्थः। यः परमात्मा मा—मां तादृशमलौकिकं स्वानुभवजन्यं सुखं ददाति स इदेव स एव निश्चयेन—अवाः—अवतु माम्। अहं पृथिव्यादिस्थरसमदन्तमाकर्षयन्तं शाकवनस्पत्योषध्यादिकमन्नमन्नं भक्ष्यमात्रं सर्वमद्मि। अहं विश्वं भुवनं सर्वं संसारमभिलक्ष्य भवां भवामि जगति सर्वदुःखेभ्यो मुक्तो भवामि। ज्योतीर्ज्योतिष्षु न यथा सुवः सूर्यः सर्वोपरि प्रकृष्टतेजस्वी भवति तद्वदहं जीवात्मसु जीवन्मुक्तिदशायां मुक्तावस्थायां च भवेयमित्यादिप्रकारेण जीवन्मुक्तिदशायां सम्प्रज्ञातसमाधिस्थ एव चिन्तयेत्॥

अस्मिन्ननुवाके श्रीमता शङ्कराचार्येण "क्षेमइति वाची" त्यारभ्य नैव सम्यग्व्याख्यातम्। तन्नये पादयोर्गतिरूपेण

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पायौ च विष्ठायास्त्यागरूपेण परमेश्वरस्तिष्ठति तथा चोपस्थसम्बन्धाज्जायमान आनन्दोऽपीश्वररूपोऽस्ति न ह्येदं विद्वद्भिरादृियते। एवमग्रेऽपि बोद्धव्यं वाक्यशः खण्डने ग्रन्थविस्तारः स्यादिति विरम्यते॥

भा०—यः कश्चिज्जग त मनुष्ययोनिं प्राप्य स्वस्य कल्याणं कर्तुमिच्छति यश्च परमात्मज्ञानप्राप्तिस्वरूपं निरामयमतिशयिताऽऽनन्दस्वरूपं निर्भयं मुक्तिपदमाकाङ्क्षति तेनान्नदानादिना नियमेनातिथिसत्कारः कार्यः। मनुष्यो यादृशमुत्तमं मध्यमं निकृष्टं वा धर्मं सेवते तादृशमेव सुखमाप्नोति तस्मादुत्तमानन्दकाङ्क्षिणोत्तमो धर्मः सेव्यः। यानि यानीन्द्रियाणि यदर्थं परमेश्वरेण सृष्टानि तैस्तानि तान्येव सुकर्माणि सेव्यानि यथा वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायश्च सेवनीयो न तु पारुष्यमनृत पैशुन्यमसम्बद्धप्रलापश्च कार्य एवमन्यैरपि ज्ञानेन्द्रियैः कर्मेन्द्रियैर्वासमुचित एव व्यवहारः सेव्यो न तु विरुद्धः। अयमपि कल्याणहेतुको धर्मः। अचलव्यापकत्वादिधर्मवन्तं परमात्मानं तदाकारवृत्त्या समाध्यवस्थायामुपासीत। यथा लोकेऽनेकशक्तियुतं पुरुषं यादृशमत्याकाङ्क्षिवदर्थी सेवते स तादृशमेव फलं तस्माल्लभते तथैव ज्ञानस्वरूपत्वादिधर्मभेदेनोपासकोऽपि परमात्मनस्तादृशमेव गुणं स्वशक्त्यनुकूलं ज्ञानादिकमवाप्य सुखी भवति। अतः कारणादुपासनाभेदा, सन्ति। अयमेव सङ्गतिजस्य फलस्याशयः। एवमेकमद्वितीयं परमात्मानं य उपासते जीवन्मुक्ति-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दशायामेव सर्वानन्दाननुभवन्त, स्वयं च सर्वबाधाभ्यो विमुक्ताः परमात्मानमानन्देन गायन्त, शान्ता, सुखीभवन्ति। अस्यानुवाकस्य समाप्तौ राध्यत इत्यादिनैतदनुवाकस्थकण्डिकानां समाप्तिः सूचिता नान्यत्किमपि विशिष्टं प्रयोजनमस्ति ॥ १० ॥

भाषार्थः—(न, कञ्चन, वसतौ, प्रत्याचक्षीत) वसने के लिये अतिथिरूप से आये किसी ब्राह्मणादि वा विरक्त धर्मोपदेशक अभ्यागत पुरुष को निषेध न करे कि यहां न ठहरो वा यहां ठहरने योग्य स्थानादि नहीं ऐसा न कहे (तत्, व्रतम्) श्रद्धापूर्वक अतिथिसत्कार और दीन दुःखियों को अन्न देने का नियम कर लेवे कि यह काम अवश्य करूंगा क्योंकि अकस्मात् आये विद्वान् वा धर्मात्मा पुरुष का पके हुए भोजनादि से सत्कार करे ऐसा विधान धर्मशास्त्रों में किया है इसी को अतिथिपूजा वा नृयज्ञ भी कहते हैं (तस्मात्, यया कया, च, विधया, बहु, अन्नम्, प्राप्नुयात्) तिस से जिस किसी प्रकार अर्थात् किसी धर्मानुकूल रीति से बहुत अन्न का सञ्चय करे (अस्मै अराधि, अन्नम्, इति, आचक्षते) "इस सच्चे अतिथि अभ्यागत पुरुष के लिये ही हम लोगों ने अन्न पकाया है" ऐसा कल्याण का मार्ग दिखानेवाले धर्मात्मा विद्वान् लोग कहा करते हैं किन्तु कभी नकार नहीं करते(एतद्वै, मुखतः अन्नम्, राद्धम्) यह उत्तम अन्न बड़ी श्रद्धा से बनाया है (मुखतः, अस्मै, अन्नम्, राध्यते) उत्तम बनाया अन्न इस अतिथि को उत्तम श्रद्धा से देता है (एतत्, वै, मध्यतः, अन्नम्, राद्धम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह मध्यम प्रकार का मध्यम श्रद्धादि के साथ अन्न बनाया है (मध्यतः, अस्मै, अन्नम्, राध्यते) मध्यम प्रकार से बनाया मध्यम श्रद्धा से इस अतिथि को दिया जाता है (एतत्, वै, अन्ततः, अन्नम्, राद्धम्) यह निकृष्ट रीति से अन्न बनाया है (अन्ततः, अस्मै, अन्नम्, राध्यते) निकृष्ट रीति से बनाया अन्न इस अतिथि को निकृष्टश्रद्धा से दिया जाता है। यहां उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन २ प्रकार–अतिथि, दाता, दान की वस्तु और श्रद्धा के दिखाये हैं इस तीन २ प्रकार के भेद से १२ बारह भेद होते हैं और इसी के अनुसार फल भी १२ बारह प्रकार के जानो। (यः एवम्, वेद) जो पुरुष इस उक्त प्रकार अन्नदान के माहात्म्य को जानता है वह दान के यथोक्त उत्तम फल को पा सकता है (क्षेमः, इति, वाचि) विद्या पढ़ने से प्राप्त किये वा गुरुमुख से सुने हुए धर्म वा ईश्वरादिसम्बन्धी ज्ञान की वाणी में रक्षा करना अर्थात् वाणी से ईश्वर की स्तुति प्रार्थना वा धर्म का उपदेश और अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिये (योगक्षेमः, इति, प्राणापानयोः) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति को योग, और प्राप्त की रक्षा को क्षेम कहते हैं। इन दोनों को प्राण और अपान में धारण करना चाहिये। अर्थात् प्राणायामादि योगाभ्यास द्वारा परमात्मा के अलभ्य अप्राप्त ज्ञान की प्राप्ति करके उस की रक्षा और वृद्धि करनी चाहिये (कर्म, इति, हस्तयोः) हाथों में शुभ कर्म रखना उचित है अर्थात् हाथों से ही प्रायः कर्म किया जाता है इसी कारण हाथ का विषय कर्म ही है वह धर्मशास्त्र के अनुकूल ही सेवना चाहिये अर्थात् हाथ से दानादि शुभ काम

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हो सकता और किसी को मारना वा किसी का वस्तु चुरालाना आदि दुष्कर्म भी हाथ से हो सकता है सो अच्छा ही कर्म करना बुरा न करना अभिप्राय है (गतिः, इति, पादयोः,) पगों का काम चलना है सो अच्छे काम को जाना अच्छी चाल चलना चाहिये अनुचित नहीं (विमुक्तिः, इति, पायौ) गुदा का काम मल का त्यागना ही है उस इन्द्रिय से इसी काम को लेना चाहिये किन्तु पुंसिमैथुन कदापि किसी को न करना चाहिये (इति, मानुषीः समाज्ञाः) ये उक्त सब मनुष्य के शरीर से करने योग्य कामों की आज्ञायें हैं (अथ, दैवीः) अब देवनाम सूर्य वा आकाशादि द्वारा सिद्ध होने वाले कार्य दिखाते हैं (तृप्तिः, इति, वृष्टौ) वर्षा होने पर ही सब चराचर की तृप्ति वा शान्ति होती है इस लिये वर्षा का उद्योग करे (बलम्, विद्युति) विद्युत् वा प्राणशक्ति के बढ़ने से बल होता है इस कारण बल बढ़ाने के लिये विद्युत् के प्रचार का प्रयत्न मनुष्य को करना चाहिये वर्षा और विद्युत् दोनों अधिदेव अर्थात् आकाश द्वारा प्राप्त होनेवाले हैं (यशः, इति, पशुषु) एक से विचार से निष्पक्ष हो के सब को देखनेवाले समदर्शी जीवन्मुक्त ज्ञानी लोग हैं उन के सेवन से जगत् में प्रतिष्ठा और यश बढ़ता है वे ही पुरुष देवता भी कहे जाते हैं कीर्ति होने के लिये उन का सेवन करना चाहिये (ज्योतिः, इति, नक्षत्रेषु,) नक्षत्रनाम तारागणों में जो प्रकाश है उनके साथ भी ईश्वर की महिमा का ध्यान करना चाहिये (प्रजातिः, अमृतम् , आनन्दः, इति, उपस्थे) उपस्थनाम भग वा लिङ्गेन्द्रिय के द्वारा सन्तानों की उत्पत्ति होती है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उस से मनुष्य का बड़ा सुख प्राप्त होता हैं। संसार में उपस्थ इन्द्रिय का विषय आनन्द है उसका अनुभव संसारी लोग किया करते हैं और द्वितीय संसारी विषय के सुखभोग से विरक्त हुए पुरुष को परमेश्वर की उपासना में ठीक २ लगने पर आनन्द का अनुभव होता है। अर्थात् यही दो प्रकार का आनन्द है अन्यत्र सुख शब्द का प्रयोग कर सकते हैं आनन्द का नहीं संसार में कामसुख (मैथुन से होनेवाला आनन्द) सर्वोपरि है। यद्यपि ब्रह्मज्ञानसम्बन्धी ही मुख्य आनन्द है और विषयानन्द का परिणाम निकृष्ट होने से उस की गणना बराबर न होनी चाहिये तथापि ब्रह्मानन्द की उपमा के लिये लोक में ऐसा प्रसिद्ध अन्य कोई दृष्टान्त नहीं है। अर्थात् यही सर्वोपरि दृष्टान्त है। जिस स्त्री पुरुष के मेल से विषयभोग में ब्रह्मज्ञान से होनेवाले आनन्द का हजारवां अंश भी आनन्द का अनुभव नहीं तो भी उस आनन्द के लिये मनुष्य कैसे २ उपाय वा छलकपटादि करता है और मनुष्य का अधिकांश परिश्रम इसी सुखभोग के लिये है अन्य सब सुख इसी के साधन हैं। ऐसी दशा में ब्रह्मज्ञान के आनन्द का कोई उपाय नहीं करता और प्रायः प्राणीमात्र विषयानन्द के पीछे पड़े हैं इस का कारण वही है कि विषयभोग का अभ्यास पड़ रहा है उस का मर्म जानते हैं और ब्रह्मज्ञान का आनन्द कभी स्वप्न में भी नहीं देखा फिर रुचि कैसे होवे। जिन मनुष्यों का चित्त किसी प्रकार ब्रह्मज्ञान की ओर कुछ भी लग जाता है वे फिर विषयानन्द में कदापि नहीं गिरते इस का भी यही कारण है कि उस सर्वोपरि बड़े आनन्द का स्वाद

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको मिल गया। यह संसार का नियम है कि जब बड़ा अधिकार वा सुख मिल जाता है तब छोटे को सभी छोड़ देते हैं। और विषयानन्द का मेल इसी लिये दिखाया है कि लोग ऐसा ही आनन्द समझ के यत्न करें तो भी वह ब्रह्मज्ञानसम्बन्धी आनन्द कुछ प्राप्त हो सकता है (सर्वम्, इति, आकाशे, तत्—प्रतिष्ठा, इति, उपासीत प्रतिष्ठावान्, भवति) आकाश में सब स्थिर हैं और आकाश की भी स्थिति ब्रह्म में दीखती है इस लिये जो ब्रह्म को सब का आधार मान के उपासना करे वह भी दूसरे साधारण कुटुम्बी आदि का आधार होता वा दीन दुःखी तथा कुटुम्बियों का पालनपोषण द्वारा धारण करता है उस के आश्रय से बहुतों का जीवन चलता है इसी कारण ऐसे व्यापक के उपासक पुरुष की लोक में प्रतिष्ठा हो जाती है। (तत्—महः, इति, उपासीत, महान्, भवति) वह उपासक परमेश्वर को सर्वोपरि बड़ा मान कर उपासना करे तिस से वह भी मनुष्यों में बड़ा हो जाता है (तत्—मनः, इति, उपासीत, मानवान्, भवति) वह परमेश्वर सदा मननशील ज्ञानस्वरूप है ऐसी उपासना करे तो वह भी ज्ञानी हो जाता है (तत्—नमः, इति, उपासोत, नम्यन्ते, अस्मै, कामाः) सब प्रकार की कठिनता से रहित निर्मल शुद्ध अहङ्कारवर्जित ब्रह्म है ऐसी उपासना करे तो उस उपासक के लिये सब भोगने योग्य विषय कुटिलतारहित सुलभ और सरलरीति से प्राप्त होते हैं और वह पुरुष कठोरतारहित नम्र सरल और अहङ्काररहित हो जाता है (तत्—ब्रह्म, इति उपासीत, ब्रह्मवान्, भवति) वह ब्रह्म वृद्धियुक्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है ऐसी उपासना करे तो वह वृद्धियुक्त होता है (तत्–ब्रह्मणः, परिमरः इति, उपासीत, परि, एनम्, म्रियन्ते, द्विषन्तः सपत्नाः परि, ये, अप्रियाः, भ्रातृव्याः) वह भी बड़े २ आकाशादि तत्त्वों के सामर्थ्य का दबानेवाला है अर्थात् वायु आदि अतिबलवान् तत्त्व वा अहङ्कारी नास्तिक दुराचारी भी जिसके आगे सर्वथा सामर्थ्यहीन मरे तुल्य अशक्त जान पड़ते हैं ऐसा मान कर उसकी उपासना करे तो उसके द्वेषी और अप्रिय आचरण करनेवाले अधर्मी दुष्ट शत्रु सब ओर से नष्ट भ्रष्ट हो जाते वा मर जाते हैं (सः, यः, च, अयम्, पुरुषे, यः, च, असौ, आदित्ये, सः, एकः) सो जो वह उपासना करने योग्य इष्टदेव परमेश्वर पुरुष नाम शरीरादि कार्य जगत्–पृथिवी के सब पदार्थों में और जो प्रकाशस्वरूप सूर्यादि लोकों में भी व्याप्त है वह एक ही जानो वही एक सब का अधिष्ठाता है उस में भेद नहीं हैं (सः, यः, एवंवित्, अस्मात्, लोकात्, प्रेत्य) सो इस उक्त प्रकार से जो विद्वान् परमेश्वर को जानता हुआ इस प्रत्यक्ष देखने में आनेवाले शरीरादि कार्य जगत् से वृद्धावस्था में तृष्णा को हटाकर (एतम्, अन्नमयम्, आत्मानम्, उपसङ्क्रम्य, एतम्, प्राणमयम्०, एतम्, मनो०, एतम्, विज्ञान०, एतम्, आनन्दमयम्०) अन्न प्राण मन विज्ञान और आनन्द इन पांच शरीर के सूक्ष्म मर्मस्वरूपों, (शरीर के तत्त्वों) को समीप से ठीक २ छोड़कर (इमान्, लोकान्, कामान्, नीकामरूपी, अनुसञ्चरन्) जिसने सब लौकिक सुख भोगों की अभिलाषा छोड़ दी ऐसा विद्वान् इन अद्भुत आचार्यरूप रचनायुक्त कामना के योग्य पृथिव्यादि लोकों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा शरीरों में सर्वत्र स्वतन्त्रता से विचरता है और (हावु, हावु, हावु,) अहो ! आश्चर्यस्वरूप ब्रह्म है अहो ! तेरी महिमा आश्चर्यमयी है तू अचिन्त्यशक्ति है इत्यादि प्रकार (एतत्, साम, गायन् आस्ते) सर्वत्र समता को प्राप्त परमेश्वर का यश गाता हुआ चञ्चलतारहित स्थिर होता है (अहम्, अन्नम्, अहम्, अन्नम्, अहम्, अन्नम्,) मैं यह चेतनतायुक्त शरीरधारी प्रकृतिपुरुष का समुदाय अन्न हूँ अर्थात् अनेक भक्षक सिंहादि का भक्ष्य हूँ मनुष्यादि के शरीरों को खा कर ही अनेकों का जीवन चलता है तथा (अहम्, अन्नादः, अहम्, अन्नादः, अहम्, अन्नादः) मैं भक्ष्य स्थावरादि को खाता हूँ इस कारण मुझ में भक्ष्यभक्षक दोनों का कथन बन सकता है। उक्त कथन को दृढ़ करने के लिये तीन बार कहा है अर्थात् यह बात दृढ़ निश्चित है कि कभी मैं भक्ष्य बनता और कभी भक्षक बनता हूँ। जब कभी स्थावर वृक्षादि में जाता हूँ तब चर प्राणियों का भक्ष्य होता और जब जङ्गम बनता हूँ तब भक्षक होता यह प्रायः नियम है कि स्थावर भक्ष्य जङ्गम भक्षक रहते हैं और कहीं २ दोनों में भक्ष्यभक्षकभाव होता है। इत्यादि प्रकार योगी वा जीवन्मुक्त ज्ञानी चिन्तन करे तथा (अहम्, श्लोककृत्, अहम्, श्लोककृत्, अहम्, श्लोककृत्) मैं श्लोक नाम कीर्त्ति को बढ़ानेवाले कर्म बार २ करता हूँ (अहम्, ऋतस्य, प्रथमजाः, अस्मि) प्रवाह से नित्य वा सत्य चराचर जगत् के बीच मैं मुख्य प्रकट हुआ हूँ अर्थात् परमात्मा की कृपा से सब दुःखों से छूट कर (पूर्वम्, देवेभ्यः, अमृतस्य, नाभी) पृथिव्यादि पांच देवताओं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उत्पन्न होनेवाले शरीर के छूटने से पूर्व ही मुक्तिदशा में अमृत नाम मुक्ति के बीच मैं स्थिर हूँ (यः, मा, ददाति, सः, इत्, एत्र, मा, अवाः) जो परमात्मा अपने अनुभव से होनेवाले वैसे अलौकिक सर्वोत्तम सुख को मुझे देता है वही निश्चय पूर्वक मेरी रक्षा करे (अहम्, अन्नम्, अन्नम्, अदन्तम्, अद्मि) मैं पृथिव्यादि के रसरूप अन्न को खींचनेवाले शाक वनस्पति वा ओषधि आदि भक्ष्यमात्र अन्न को खाता वा उसी से जीवित रह सकता हूँ (अहम्, विश्वम्, भुवनम्, अभ्यभवाम्) मैं सब संसार की अनेक दुःखभोगरूप निकृष्टदशा को देख कर जगत् के सब दुःखों से पृथक् होता हूँ (सुवः, न, ज्योतीः) जैसे सब ज्योतियों-ताराचन्द्रादि में सूर्य सर्वोपरि तेजस्वी होता है। वैसे मैं जीवात्माओं में जीवन्मुक्तिदशा वा मुक्तावस्था में तेजस्वी होऊँ इत्यादि प्रकार से जीवन्मुक्तिदशा में सम्प्रज्ञात समाधि में रह कर विद्वान् पुरुष विचार करे॥

इस अनुवाक में श्रीशङ्कर स्वामी ने (क्षेम, इति वाचि) यहां से लेकर ठीक अर्थ नहीं किया उन के मत में पगों में चलनेरूप और गुदा में विष्ठा के त्यागरूप से परमेश्वर ठहरता है। तथा उपस्थ के विषय मैथुन से होने वाला आनन्द भी ईश्वररूप है ऐसा निकलता है सो इस कथन को विद्वान् लोग कदापि न मानें गे। ऐसा ही आगे भी अर्थ किया है प्रत्येक वाक्य पर लिखने से लेख बढ़ेगा इस लिये अधिक नहीं लिखता हूँ॥

भा०—जो कोई मनुष्ययोनि को पाकर अपना कल्याण करना चाहता है और जो परमेश्वर के ज्ञान की प्राप्तिरूप नीरोग निर्भय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अत्यन्त आनन्दस्वरूप मुक्तिपद को चाहता है उस को उचित है कि पहिले अन्नादि से अतिथियों की नियमपूर्वक सेवा करे। जैसे उत्तम मध्यम वा निकृष्ट धर्म का मनुष्य सेवन करता है वैसा ही उस को सुख मिलता है इसलिये उत्तम आनन्द चाहने-वाले को उत्तम धर्म का सेवन करना चाहिये। जिन २ इन्द्रियों को परमेश्वर ने जिस लिये रचा है उन २ से वे २ सुकर्म करने चा-हियें। जैसे वाणी से सत्य हितकारी और प्रियवचन बोलना वा वेदादिशास्त्रों कों नियमपूर्वक पढ़ना किन्तु कठोर, मिथ्या, चुगुली और असम्बद्ध नहीं बोलना चाहिये। इसी प्रकार अन्य भी कर्मे-न्द्रिय वा ज्ञानेन्द्रियों से सम्यक् उचित व्यवहार का ही सेवन करना चाहिये विरुद्ध का नहीं। यह भी कल्याणकारी धर्म ही है। अचलत्व वा व्यापकत्व आदि गुणवाले परमेश्वर की समाधिदशा में तदाकारवृत्ति से उपासना करे। जैसे लोक में अनेक शक्तियुक्त-पुरुष का कोई स्वार्थी जैसी बुद्धि से सेवन करता है वह वैसा ही फल पाता है। वैसे ही ज्ञानस्वरूप होना आदि धर्मभेद से परमा-त्मा का उपासक भी वैसे ही अपनी शक्ति के अनुकूल ज्ञानादि गुण को पाकर सुखी होता है। इसी कारण से उपासना में भेद दिखाये हैं। जैसी संगति वैसी बुद्धि और फल होता है। इसका भी यही आशय है। इस प्रकार जो लोग एक अद्वितीय परमेश्वर की उपासना करते हैं वे जीवन्मुक्तिदशा में ही सब आनन्दों का अनु-भव करते स्वयं सब दुःखों से छूटे और आनन्द से परमेश्वर का यश गाते हुए शान्ति पाकर सुखी होते हैं। यहां (राध्यते) आदि से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस अनुवाक की कण्डिकाओं की पूर्त्ति का पाठ दिखाया गया है ॥१०॥

भृगुस्तस्मै यतो विशन्ति तद्विजिज्ञासस्व तत्त्रयोदशान्नं प्राणं मनो विज्ञानमिति विज्ञाय तं तपसा द्वादश द्वादशानन्द इति सैषा दशान्नं न निन्द्यात् प्राणः शरीरमन्नं न परिचक्षीतापो ज्योतिरन्नं बहुकुर्वीत पृथिव्यामाकाश एकादशैकादश । न कञ्चनैकषष्टिरेकान्नविंशतिरेकान्नविंशतिः ॥

इति भृगुवल्ली तैत्तिरीयोपनिषच्च सम्पूर्णा ॥

अयं च पाठोऽस्या भृगुवल्ल्या अर्थसम्बन्धदर्शनायास्ति । यथा प्रथमानुवाके भृगुर्वै०—इत्यत आरभ्य ब्रह्मेति पर्यन्तमेका वार्त्ता । पुनस्तस्मा इत्यारभ्य यत इत्यस्मात्पूर्वावधि द्वितीया वार्त्ता । एवमग्रेऽपि बोध्यमिदमेवास्य प्रयोजनम् ॥

(भृगुस्तस्मै०) इत्यादि पाठ यद्यपि शङ्करभाष्य के साथ मूल में नहीं छपा तथा मुम्बई आदि के मूल पुस्तकों में मिलता है और निष्प्रयोजन वा प्रक्षिप्त नहीं है किन्तु इस वल्ली का सम्बन्धार्थ दिखाने के लिये है। जैसे प्रथमानुवाक में (भृगुर्वै०) यहां से लेकर (तस्मै०) से पूर्व २ एक बात पूरी हुई फिर (तस्मै०) से लेकर (यतो०) से पूर्व २ दूसरी बात पूरी हुई । इसी प्रकार आगे भी जानो यही इस का प्रयोजन है ॥

इति भीमसेनशर्म्मकृतं तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्यं समाप्तम् ॥

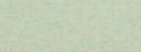

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथैतरेयोपनिषत्प्रस्तावः ॥

ऋग्वेदीयमेकमैतरेयारण्यकं नाम पुस्तकं तत्र पञ्चारण्यकानि तेष्वष्टादशाध्यायाः। तत्राधिकारिणां त्रिविधत्वाद् भेदत्रयेण सर्वस्य वक्तव्यस्य वर्णनं कृतम्। ये निकृष्टकक्षास्थास्तदर्थं तृतीयारण्यकात्पञ्चमावधि स्त्रीपुत्रधनपश्वादिकामनापूर्त्यर्था उपायाः प्रदर्शिताः। स्वर्गसुखाभिलाषिणश्च मध्यमा येषु लोकैषणायाः कामसुखभोगोत्कण्ठायाश्च प्राधान्यं क्षात्रधर्मारूढाः स्वस्येश्वरभावेन येऽन्यान्निनीषवस्तदर्थं प्रथमारण्यकाद्द्वितीयस्य तृतीयाध्यायावध्युपाया वर्णिताः। एषणात्रयजिहासवः सर्वप्रत्यक्षाप्रत्यक्षसुखभोगाभिलाषाद्विरक्ता ब्रह्मज्ञानमेव परं मन्यमानाश्चोत्तमा अधिकारिणस्तदर्थं च द्वितीयारण्यकस्य चतुर्थाध्यायात्षष्ठाध्यायावधि जीवब्रह्मविषयिकात्मविद्याया वर्णनं बोध्यम्। इयमेव चाध्यायत्रयरूपैतरेयोपनिषदिति गद्यते। तत्र प्रथमाध्याये देहाद्याकारेण परिणतस्थूलस्य जगतः सर्गप्रक्रियावर्णनं प्राकृतशरीरे जीवस्य प्रवेश प्रकारः कस्यचित्कदाचित्प्रबोधे परमात्मनः साक्षात्कारो लिङ्गं चेत्युक्तम्। द्वितीये जीवस्य गर्भागमनप्रकारो नवममासि गर्भस्थजीवस्य स्वदुःखस्थाननरकवासस्मरणेन बहूनां पूर्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मदुःखानां च स्मरणेन शोकप्रकाशनं जन्ममरणप्रवाहजन्यकष्टान्निःसरणप्रतिज्ञानं कस्यचित्सम्यक्प्रबुद्धस्य मोक्षावगमश्च. तृतीये च जीवब्रह्मात्मद्वयस्य परिचयार्थाः क्रियास्वरूपभेदा उपासकादुपास्यस्य भेदेन विज्ञाने मोक्षाधिगमश्च वर्णितः। प्रथमाध्याये त्रयः खण्डास्तत्र प्रथमखण्डे लोका आधारभूता इन्द्रियाधिष्ठानानि मुखजिह्वादीनीन्द्रियशक्तयो वागादयोऽन्नादयो लोकपालदेवताश्च सृष्टा इति वर्णितम्। द्वितीये देवतानां स्वकार्यसाधनस्थाने देहे देशभेदेन रूपभेदेन च स्थापनं देवताभिः साकं क्षुत्पिपासयोः संयोगश्च वर्णितः। तृतीये चान्नसर्गः शरीरेऽन्नग्राहकनिश्चयो जीवस्य देहप्रवेशे प्रयोजनमार्गौ, देहे जीवस्थानानि कस्यचित्प्रबुद्धस्येश्वरसाक्षात्कारश्चोक्तः। द्वितीयतृतीययोश्चैकैक एव खण्डस्तस्य विषय उक्त एव बोध्यः। एवमियमुपनिषल्लब्ध्वी सत्यपि तत्त्वज्ञानवर्णनद्वारा जनान् प्रबोधयन्ती महाप्रयोजना सम्पद्यते॥ इति—

भाषार्थः—ऋग्वेदीय ऐतरेयारण्यक नाम की एक पुस्तक है उस में पांच आरण्यक और उन पांच आरण्यकों में अठारह अध्याय हैं। वहां तीन प्रकार के उत्तम मध्यम निकृष्ट अधिकारी मान कर वक्तव्य विषय का तीन भागों में वर्णन किया है। उन में नीच कक्षा के अधिकारी धन ऐश्वर्य उत्तम उत्तम स्त्रियां पुत्र और हाथी घोड़ादि पशुओं की कामना रखनेवाले हैं। उन के लिये तीसरे से लेके पांचवें आरण्यक तक उपाय दिखाये। तथा लोकैषणा और काम सुख को बड़ा माननेवाले स्वर्गसुख के अभि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाषी पुरुष मध्यम कक्षा के अधिकारी जो कि अपने आज्ञाकारित्व (हुक्मत) द्वारा अन्यों को चलाने की इच्छा रखते उन के लिये प्रथम से द्वितीयारण्यक के तृतीयाध्याय पर्यन्त उपायों का वर्णन है। और तीनों प्रकार की एषणाओं के त्यागी प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्वर्ग सुखभोग की अभिलाष से भी विरक्त और ब्रह्मज्ञान को ही सर्वोपरि मानते हुए पुरुष उत्तम कोटि के अधिकारी हैं उन के लिये द्वितीयारण्यक के चौथे अध्याय से छठें अध्याय पर्यन्त तीन अध्यायों में जीव ब्रह्म विषयक आत्मविद्या का वर्णन किया जानो। यही तीन अध्याय रूप ऐतरेयोपनिषद् कहाती है। उक्त तीनों प्रकार के अधिकारी ही वैश्य क्षत्रिय और ब्राह्मण कोटि में गिनने योग्य हो सकते हैं क्योंकि धनैश्वर्यादि चाहनेवाला ही वैश्य, प्रभुत्वाभिलाषी क्षत्रिय और ज्ञाननिष्ट ब्राह्मण हो यह लक्षण भी ठीक ही है। इस पुस्तक के तीन अध्यायों में प्रथमाध्याय में शरीरादि रूप में बने स्थूल जगत् की रचना का क्रम वर्णन, प्राकृत शरीर में जीव के घुसने का प्रकार और परमेश्वर का साक्षात्करना ही कभी किसी के जागने का चिह्न कहा है। द्वितीयाध्याय में जीव के गर्भ में आने का प्रकार नववें महीने में गर्भस्थ जीव का अपनी दुरवस्थारूप नरक वास के स्मरण से तथा पूर्वजन्मों में भोगे बहुत बड़े २ दुःखों के स्मरण से शोक वा पश्चात्ताप करना, जन्ममरण के प्रवाह से होनेवाले कष्ट से निकलने की प्रतिज्ञा और सम्यक् जागे हुए किसी का मोक्ष का लाभ होना कहा गया। और तीसरे अध्याय में जीव ब्रह्म दोनों के परिचयार्थ कर्म और स्वरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भेद से वर्णन और उपासक जीव से उपास्य ईश्वर को भिन्न ठीक २ जान लेने पर मोक्ष प्राप्ति का वर्णन किया है। प्रथमाध्याय में तीन खण्ड हैं उनमें से प्रथम खण्ड में आधार भूत लोकों, इन्द्रियों के आधार मुख जीभ आदि, वाणी आदि इन्द्रिय शक्तियों और अग्न्यादि लोकपाल देवताओं की सृष्टि का वर्णन, द्वितीय खण्ड में देवताओं का अपने कार्यों को सिद्ध कर सकने योग्य शरीर में देश भेद वा वाणी आदिरूप भेद से स्थापन, देवताओं के साथ क्षुधापिपासा का जोड़ना वर्णित किया और तृतीय खण्ड में अन्न की रचना, शरीर में अन्न को ग्रहण करने वाले का निश्चय, जीव का शरीर में प्रवेश करने का प्रयोजन और मार्ग, देह में जीव के ठहरने के स्थान और ठीकजागे हुए किसी को ईश्वर का साक्षात्कार होना कहा है। द्वितीय तृतीय अध्यायों में एक ही खण्ड है उनका पूर्वोक्त ही विषय जानो। इस प्रकार यह उपनिषद् छोटी होनेपर भी तत्त्वज्ञान द्वारा मनुष्यों को जगानेवाली होने से बड़ी प्रयोजन-साधिका अवश्य है॥

इति प्रस्तावः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म् ॥

अथर्ववेदीयैतरेयोपनिषद्भाष्यारम्भः ।

आत्मा वा इदमेकएवाग्र आसीत् । नान्यत्किञ्चन मिषत् । स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ॥ १॥

अतति सर्वत्र नैरन्तर्येण सर्ववस्तूनि प्राप्नोतीत्यात्मा नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावः सर्वशक्तिर्मिथ्याज्ञानादिसर्वसंसार धर्मव्यतिरिक्तः सर्वज्ञः परमात्मैवैकोऽग्रे सृष्टेः प्रागिदं वै दृश्यं जगत्प्रत्यक्षत उपलभ्यमानं ततोऽभिन्नं प्रतीयमानमासीत्। तदानीमन्यत्किञ्चन मिषत्—निमेषादिक्रियावत्किमपि नासीत्—नियमेन सर्गावसरे सन्निहिते स ईक्षत सर्गकाले स्वभावेनैवोद्भूतया सिसृक्षयाऽऽलोचितवान्—लोकान् लोक्यान्प्रत्यक्षानुभवयोग्यान्स्थावरजङ्गमभेदभिन्नान्स्थूलान्मनुष्यादिपदार्थान्नहं सृजे सृजैयमित्यादिप्रकारेणालोचितवान् ॥

भा०—सर्गात्पूर्वं सर्वमिदं स्थूलं दृश्यं नामरूपाभ्यामसद्भवतिस्म न च तदानीं घटपटादिसमाख्याभिर्व्यापारः कर्तुं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युज्यते। यथा च सम्प्रति पृथिव्यादिकं स्वरूपभेदेन प्रतीयते—इयं पृथिवी नायं वायुराकाशो वा, अयं वायुरग्निर्वा नेयं पृथिवी न च तथा कारणावस्थायां पृथिव्यादयो भेदेन प्रत्येतुं शक्यन्ते पृथिव्यादीनां सूक्ष्ममचेतनं कारणं सर्वं सर्वात्मकं सर्वत्र व्याप्तं प्राप्तं विस्तीर्णमविच्छिन्नं भवति तस्मात्तदानीं स्वरूपेण परमात्मतो भिन्नेऽपि कारणे वर्त्तमानस्थूलदशापेक्षयाऽविशिष्टत्वदर्शनायात्मना सहैकत्वमुक्तम्। निरन्तरमतनं सर्वत्र व्याप्तिः प्राप्तिश्चात्मत्वमिति यौगिकार्थेन परमात्मापेक्षयाऽव्यक्तस्यानात्मत्वेऽपि स्थूलपृथिव्याद्यपेक्षया सूक्ष्मजडोपादानस्यात्मत्वमस्तु न तेन कापि वैदिकमतक्षतिरस्ति। यदि च वस्तुतो जगत उपादानं प्रधानं परमात्मनोऽभिन्नं स्यात्तदा स्थूलदशायां किकृतो भेदः स्यात्। सदैवाभेदाभ्युपगमे चासीदिति भूतक्रियानर्थक्यं प्रसज्येत। अग्रे इदं वा एक आत्मैवासीन्न तु सम्प्रतीति। यथा च पृथिव्यां गुप्तान्यदृश्यानि सुवर्णादीनि पृथिवीपदेनैव व्याप्रियन्ते निस्सारितेषु च भेदेन व्यापारो लक्ष्यते। यदि सूक्ष्मे भेदो न स्यात्तदा स्थूलेऽपि नायात्। तस्मात्स्थूलावस्थापेक्षयैवाविशेषदर्शनाय कथनमिदमिति। ये च स्थूलसूक्ष्मेण जगता सार्द्धं परमात्मनो वस्तुतोऽभेदं सार्वकालिकं वर्णयन्ति मन्यन्ते च तन्मते—आसीदिति कथनमनर्थकं स्यात्। मिषादिति विशेषणेनापि स्पष्टमवसीयते यदि मिषत्सक्रिय स्थूलं किमपि नासीत्तर्हि सूक्ष्मन्त्वासीदित्यायातम्। सूक्ष्ममपि नासीच्चेत्स्थौल्यबोधकं मिष-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्विशेषणमनर्थकं स्यात्। नान्यत् किञ्चनेत्येव ब्रूयात्। अतः प्रधानाभावप्रदर्शनं शाङ्करभाष्ये मूलाद्विरुद्धमिति सुधीभिर्निष्पक्षविचारेणेक्षणीयम्। लोकाः केन समावेशेन केनाकारेण कीदृशा निर्मातव्या इति सर्वमीक्षणं यादृशाः सृष्टा लोका दृश्यन्ते तादृशा एव सर्गारम्भे तेन स्रष्टुं व्यवसिता इति ॥१॥

भाषार्थः—(अग्रे वा इदमेक आत्मैवासीत्) इस जगत् की स्थूल रचना होनेसे पहिले यह प्रत्यक्ष दीखता जगत् एक सर्वत्र निरन्तर व्याप्त वा प्राप्त होनेवाले नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव मिथ्या ज्ञानादि संसार के दोषों से सदा अलग सर्वशक्तिमान् सर्वज्ञ एक परमात्मा के तुल्य ही सूक्ष्म व्याप्त सर्वत्र प्राप्त होने से आत्मा ही कहाता था अर्थात् अब के समान पृथिव्यादि पदार्थ भिन्न २ प्रतीत नहीं होते थे तब (नान्यत् किञ्चन मिषत्) उस आत्मासे भिन्न कोई स्थूल निमेषादि क्रियावाला नहीं था हिलना डुलना आदि क्रिया साकार में ही बन सकती है प्रकृति आदि निराकार में नहीं। (लोकान्नु सृजा इति स ईक्षत) प्रत्यक्ष देखने योग्य स्थावरजङ्गमादि पदार्थों से युक्त लोकों को मैं रचूं ऐसा ईक्षण उस परमेश्वर ने किया ॥

भा०—स्थूल रचना से पहिले यह सब स्थूल दृश्य जगत् घट पटादि नाम और अपने २ रूप से असत् रहता है। उस काल में घटपटादि नामों से व्यवहार नहीं किया जा सकता। जैसे वर्त्तमान समय में पृथिव्यादि अपने २ भिन्न स्वरूप से प्रतीत होते हैं कि यह पृथिवी है आकाश वा वायु नहीं है. तथा यह वायु है इस का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाम आकाश वा पृथिवी नहीं है। इस प्रकार प्रलय दशा में पृथिव्यादि भिन्न २ प्रतीत नहीं हो सकते किन्तु पृथिव्यादि का सूक्ष्म जड़ कारण सब सर्वरूप रहता है सर्वत्र व्याप्त और सब को प्राप्त अविच्छिन्न फैला हुआ रहता है इसी अर्थ से वह जड़ कारण आत्मपदवाच्य हो जाता अर्थात् चेतन का पर्यायवाची आत्मशब्द नहीं है। इसी से उस काल में भी परमात्मा से वह कारण अपने रूप से भिन्न रहने पर भी वर्त्तमान स्थूल दशा की अपेक्षा अभेद अविशेषता दिखाने के लिये आत्मा के साथ एकता कही है। निरन्तर सर्वत्र व्याप्त वा प्राप्त होनेवाला आत्मा कहाता है इस अर्थ से सूक्ष्म कारणभूत प्रकृति का भी नाम आत्मा हो सकता है। और परमात्मा की अपेक्षा प्रकृति को अनात्मत्व होने पर भी स्थूल पृथिव्यादि की अपेक्षा सूक्ष्म जड़ उपादान प्रकृति आत्मा है ही इस मन्तव्यसे वैदिकसिद्धान्त की कुछ हानि नहीं है। यदि वास्तव में जगत् का उपादान प्रकृति परमात्मा से अभिन्न हो तो संसारकी स्थूल दशा में भी भेद कहां से आवे? और यदि कोई जड़ चेतन का सर्वदा अभेद माने अर्थात् स्थूल सृष्टि को भी परमेश्वर से भिन्न न माने तो "पहिले यह एक आत्मा ही था" ऐसा कहना अनर्थक होगा। अर्थात् उस वाक्य का स्पष्ट अभिप्राय यह है कि रचना से पहिले सूक्ष्म होने के कारण यह कारणरूप जगत् आत्मा से भिन्न प्रतीत नहीं होता था किन्तु वर्त्तमान में तो परमेश्वर से भिन्न जगत् स्पष्ट ही है इस अर्थापत्ति से यह अभिप्राय स्पष्ट ही सिद्ध है। जैसे पृथिवी में गुप्त छिपे हुए अदृश्य सुवर्णादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ पृथिवी शब्द से ही व्यवहार में लाये जाते हैं और जब सुवर्णादि वस्तु पृथिवी से अलग निकाल लिये जाते हैं तब उनका व्यवहार पृथिवी से भिन्न होता है। यदि सूक्ष्म में कोई भेद न हो तो स्थूल में भी न आवे इस कारण स्थूलावस्था की अपेक्षा से अभेद दिखाने के लिये ही यह कथन है। और जो लोग स्थूल सूक्ष्म जगत् के साथ सब काल में परमात्मा का वास्तविक अभेद कहते तथा मानते हैं उनके मत में (आसीत्) यह भूतकाल की क्रिया अनर्थक होगी। और मिषत् इस विशेषण के पढ़ने से भी स्पष्ट निश्चय होता है कि मिषत् नाम सक्रियस्थूल पदार्थ पहिले कोई नहीं था तो सूक्ष्म था यह सिद्ध हो गया। यदि सूक्ष्म भी नहीं था तो स्थूलता अर्थ का बोधक मिषत् विशेषण कहना अनर्थक हो जायगा तब (नान्यत् किंचन) इतना ही कहना उचित था। इस से शङ्करभाष्य में प्रकृति का भी अभाव दिखाना मूल से विरुद्ध है इस को विचारशील लोग निष्पक्ष विचार से शोच लेवें किस क्रम से किस आकार से और कैसे २ रूपादि गुणवाले लोक बनाना चाहिये यह सब ईक्षण का विचार आन्दोलन कहाता है। जैसे रचे हुए लोक प्रत्यक्ष दीखते हैं वैसे ही रचने के लिये ईश्वर न सृष्टि के आरम्भ में विचार स्थिर किया॥ १॥

स इमाँल्लोकानसृजत। अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवंद्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः। पृथिवी मरो या अधस्तात्ता आपः॥ २॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स परमेश्वर इमानम्भो मरीचीर्मरमाप इति चतुरो लोकानसृजत। तत्रादौ परेण दिवं द्युलोकात्परस्तात्परस्मिन् प्रदेशेऽम्भः सूर्यस्तस्य द्यौर्द्युलोकःप्रतिष्ठाऽऽश्रय आधारस्ततो-ऽधस्तादन्तरिक्षं यत्र चन्द्रमसः प्राधान्यं स मरीचिपदवाच्य-स्तत्र रश्मिप्रसारस्य प्राधान्यात्। म्रियन्तेऽस्मिन्प्राधान्येन सद्यःसद्यो वा भूतानीति मरः पृथिवीलोकोऽन्तरिक्षादधस्तात्। ततोऽपि अधस्ताद्याः प्रविशन्ति व्याप्नुवन्ति ता आपः। इतीमे चत्वारो लोकाः सृष्टाः। परेण दिवमित्यत्र "एनपा द्वितीया" इति सूत्रेणैनप्प्रत्ययोगे द्वितीया॥

भा०—मनुना यदुक्तम्—"ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे। मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्व-तम्॥" तदेवात्र प्रकारान्तरेण व्याख्यानं बोध्यम्। सर्वस्य ब्रह्माण्डस्य प्रधानाश्चत्वारो भागाः सर्वारम्भादेवेश्वरेण व्य-वस्थापिताः। यथाऽस्मिन्मनुष्यदेहे शिरोऽम्भःपदवाच्यं यत्र सौर्यं चक्षुस्तिष्ठति। ततोऽधस्ताद्धृत्स्थं मनश्चन्द्रमसः कार्यं कारणं चान्तरिक्षं मरीचिपदवाच्यम्। ततो नाभेरधस्तात्पायू-पस्थेन्द्रियस्थितिप्रधानोऽपानो मरः प्रायेण मृत्युकारणम्। ततोऽप्यधस्तादाप्नुवन्ति पृथिवीं सर्वत्र प्रवेशहेतवो वा पादा आपः। तथैव देहाकारेण निर्मिते सर्वस्मिन् ब्रह्माण्डे चतुर्धा विभक्ता लोका विज्ञेयाः। भूप्रदेशाद्वाष्पधूमाकारेणोत्थिता आपो येन म्रियन्तध्रियन्ते निरुध्यन्ते यत उपरिष्टान्न गच्छन्ति तस्मादपां भरणादम्भः सर्यः। नाभेरधस्तादप्युत्थिते ऊष्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाष्पे मूर्च्छिं निरुध्येते म्रियेते तस्मात्तस्याप्यम्भस्त्वम्। अन्तरिक्षेऽन्यतत्त्वानां सत्त्वेऽपि सर्वज्योतिषां मरीचिप्रसारप्राधान्यात्तस्य मरीचिपदेन व्यपदेशो नायुक्तः। एवं सर्वलोकेषु जन्ममरणसत्त्वेऽपि मरुदेशवदन्यापेक्षया पृथिव्याः प्रधानं मरत्वं तथैवान्यत्राप्यपां सत्त्वेऽप्रतिषिद्धे स्वभावेनैवाधस्तादुगतिप्राधान्यात्लोकत्रयापेक्षयाऽप्यधस्तादाप इति लोकव्यपदेशः प्रधानपरः। स्वस्वकार्यसम्पादनशक्त्यर्थपराण्यत्र लोकचतुष्टयस्य नामानि प्रदर्शितानि। यथा यः पश्यति स चक्षुष्मान् रूप ग्राहकत्वं चक्षुष्ट्वम्। एवमपां भरणत्वमम्भस्त्वमित्यादिप्रकारेण लोकानां तत्त्वं स्वरूपं चात्र कथितं बोध्यम्॥ २॥

भाषार्थः—(स इमानम्भो मरीचीर्मरेमापो लोकानसृजत) उस परमेश्वर ने अम्भस्, मरीचि, मर और आप इन चार लोकों को बनाया (अदोऽम्भः परेण दिवं द्यौः प्रतिष्ठा) द्यु लोक के परले भाग उत्तरार्द्ध में रहनेवाला सूर्यलोक वा सूर्यतत्त्व अम्भस् लोक है उस अम्भस् लोक का आश्रय वा आधार दिव् लोक है उस से नीचे (अन्तरिक्षं मरीचयः) मरीचि नामक तैजस वा सौम्य किरणों के फैलने का प्रधानस्थान होने से मरीचि नामक अन्तरिक्ष लोक है जहाँ चन्द्रमा की प्रधानता और नक्षत्र गौण हैं (पृथिवीमरः) प्रधानता से जहाँ मरते वा शीघ्र २ जहाँ प्राणी मरते हैं उस पृथिवी लोक का नाम मर है वह अन्तरिक्ष से भी नीचे हैं (या अधस्तात्ता आपः) उस पृथिवी में भी जो नीचे को प्रवेश करनेवाले हैं वे आप् वा पाताल लोक हैं। ये चार लोक पहिले ईश्वर ने रचे॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०-मनुजी ने जो कहा है कि "उस अण्डे के दो खण्डों से दिव्लोक भूलोक इन दोनों के बीच में व्योम आठों दिशा और जलों का सनातन स्थान बनाया" वही व्याख्यान यहाँ प्रकारान्तर से जानो। सब ब्रह्माण्ड को प्रधान चार भागों में सृष्टि के आरम्भ से ही परमेश्वर ने व्यवस्थित किया है। जैसे इस मनुष्य के शरीर में शिर अम्भस् लोक है कि जिस में सूर्यतत्त्व का कार्य चक्षु विद्यमान है उससे नीचे हृदय में स्थित अन्तरिक्षस्थानीय चन्द्रमा का कार्य वा कारण मन है वही मरीचि पदवाच्य अन्तरिक्ष लोक है। उस से भी नीचे नाभि के अधोभाग में गुदा और उपस्थेन्द्रिय में मुख्य कर स्थित रहने वाला अपान प्रायः मरण का कारण होने से मर नामक भूलोक कहाता और उससे भी नीचे पृथिवी को प्राप्त होने वाले वा सर्वत्र प्रवेश करानेवाले पाद आप लोक है। वैसे शरीर के आकार में बने सब ब्रह्माण्ड में चार प्रकार से विभक्त किये लोक जानो। भूमि से भाफ वा धुआंरूप से उठे अप्नामक जलों का भरण धारण करने रोकनेवाला होने से सूर्यतत्त्व अम्भस् लोक कहाता है। क्योंकि धुआं आदि पार्थिव जल सूर्य से और ऊपर नहीं जाता। और अदस् के असौ पद से ब्राह्मणादि ग्रन्थों में सूर्य का ग्रहण किया गया है। और मनुष्य के शरीर में भी हृदय आमाशय पक्वाशयादि से अनेक स्थलों में उठनेवाले उष्म वाष्प मूर्द्धा में ही रुकते वही भरण नाम धारण करता इससे मूर्द्धा भी अम्भस् कहाता है। अन्तरिक्ष में अन्य तत्त्वों के होने पर भी सब ज्योतियों के किरणों के फैलाव की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिक प्रधानता होने से मरीचि पद से उसका व्यवहार होना अयुक्त नहीं है। इसी प्रकार सब लोकों में जन्म मरण होने पर भी मरुदेश के समान अर्थात् सभी देशों में प्राणी मरते हैं तथापि जलादि न मिलने के कष्टादि से जहां अधिकांश प्राणी अन्य देशापेक्षया मरते वह मरुदेश कहाता है। वैसे ही अन्य लोकोंकी अपेक्षा पृथिवी में मरण की अधिकता होने से उसका नाम मर है वैसे ही अन्य पृथिव्यादि में जलों का अभाव न होने पर भी स्वभाव से ही जल नीचे २ को प्रवेश करनेवाले होने से तीनों लोक की अपेक्षा भी आप्लोक नीचे माना गया। यह प्रधानतापरक लोकों का व्यवहार है। अपने २ कार्य को सम्पादन करने की शक्तिरूप अर्थ को जताने वाले यहां चारों लोक के अप्रसिद्ध नाम कहे, वा दिखाये हैं। जैसे जो देखता वह चक्षु इन्द्रियवाला है। वा रूप को ग्रहण करना चक्षुःपन है ऐसे ही अप्नाम जलों का भरण होना वा करना अम्भस्पन है इत्यादि प्रकार से लोकों का तत्त्वस्वरूप यहाँ कहा जानो ॥ २ ॥

स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजा इति। सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्च्छयत् ॥ ३ ॥

स ईश्वरः सर्वचराचराधारान् शुभाशुभ भोगाधिष्ठानान् चतुरो लोकान् सृष्टान् मत्वा पुनरेवेक्षत—एषां लोकानां पालकान् सृजेयमिति न हि किमपि रक्ष्यं रक्षकमन्तरा स्थातुं शक्नोति। स ईश्वरो लोकपालसर्गादद्भ्य एवात्तत्त्वप्र-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानादेव सूक्ष्मकारणात्पुरुषं पुरुषाकृतिं स्थूलप्राणिदेहस्य कारणभूतं सूक्ष्मस्य कार्यं च स्थूलपुरुषशरीरस्य पूर्वरूपं समुद्धृत्येक्षणेन कारणात्कार्यं पृथगवसीयामूर्च्छयत् सर्वतत्त्वानामप्रधानं सारं सूक्ष्मापेक्षया स्थूलं कृतवान् ॥

भा०—यद्यपि मानुषादिशरीराण्यग्नीषोमदेवताप्रधानानि पृथिवीतत्त्वप्रधानोपादानानि सन्ति तथापि सोमस्य प्राधान्यमितिकृत्वैवोपनिषदादिषु सौम्य इत्याधिक्येनपुरुषविशेषणं दृश्यते। "सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानाञ्च राजा" इति वेदे च. प्रधानः प्रबलो विशेषेण कृताधिकारो राजेत्येकएवार्थोऽस्ति पुरुषदेहस्य कारणं शुक्रमप्यप्प्रधानं सौम्यमेव। अप्रधाना स्त्री पुरुषाधीना पुरुषग्रहणेन ग्राह्या । मूर्च्छनमत्रातिसूक्ष्मापेक्षया स्थूलीकरणं विशिष्टस्थूलापेक्षया तु तस्यापि सूक्ष्मत्वमेवाभिप्रेतम् ॥ ३ ॥

शब्दार्थः—(स ईक्षतेमे नु लोका लोकपालान्नु सृजाइति) उस ईश्वर ने सब चराचर वस्तुओं के आधार और शुभाशुभ भोगों के स्थान रूप उक्त चारों लोकों को रचे हुए मान कर फिर ईक्षण किया कि ये लोक तो रचे गये पर रक्षा करने योग्य कोई भी वस्तु रक्षक के विना ठीक स्थित नहीं रहता। इस लिये मैं लोकपालों को भी बनाऊं (सोऽद्भ्य एव पुरुषं समुद्धृत्यामूर्छयत्) इस प्रकार लोकपालों को रचने की इच्छा से उस ईश्वर ने अप्तत्त्वप्रधान सौम्य स्त्री शक्तिरूप सूक्ष्म कारण से प्राणियों के स्थूल देह के पूर्वरूप कारण भूत पुरुष के आकारवाले सूक्ष्म के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारणरूप पुरुष को ईक्षण द्वारा पृथक् करके पार्थिवांश से कुछ स्थूल किया जिसे अतिसूक्ष्म से स्थूल और स्थूल मानुष देहादि से अतिसूक्ष्म भी कह सकते हैं॥

भा०—यद्यपि मनुष्यादि के शरीरों की अग्नीषोम दो देवताओं से मुख्य कर उत्पत्ति मानी है और उनमें पृथिवीतत्त्व मुख्य उपादान है तो भी सोमतत्त्व की प्रधानता मान कर ही उपनिषदादि ग्रन्थों में पुरुष का विशेषण अधिकांश सौम्य कहा दीखता है। "इन ब्राह्मणों का सोम राजा है" इस वेद के लेख से भी प्रधान प्रबल, सब का अधिकारी, राजा, यह एक ही आशय सिद्ध होता है। पुरुष के शरीर का कारण वीर्य भी जलतत्त्व प्रधान सौम्य है। स्त्री अप्रधान पुरुष के आधीन रहनेवाली है। इस कारण पुरुष के साथ में उस का भी ग्रहण हो जाता है। मूर्छन यहां अतिसूक्ष्म की अपेक्षा स्थूल करना है और विशेष स्थूल की अपेक्षा तो उसका भी सूक्ष्म होना ही इष्ट है॥ ३॥

तमभ्यतपत्तस्याऽभितप्तस्य मुखं निरभिद्यत यथाण्डम्। मुखाद्वाग्वाचोऽग्निर्नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणः प्राणाद्वायुरक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः, कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशस्त्वङ् निरभिद्यतत्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयो, हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानो अपानान्मृत्युः, शिश्नं निरभिद्यत शिश्नाद्रेतो रेतस आपः ॥ ४ ॥

इति प्रथमः खण्डः ॥

अ०—स परमेश्वरस्तं पूर्वोक्तं सूक्ष्मात्परिणतं स्थूलसर्गस्य पूर्वरूपं पिण्डाख्यं पुरुषमुद्दिश्याभ्यतपत्ततः स्थूलसिसृक्षयाऽभिध्यानपरोऽभवत्तेन तपोरूपेणाभिध्यानसंकल्पेन तस्य पुरुषस्य मुखं प्रधानाङ्गमण्डमिव निरभिद्यत सावकाशं सच्छिद्रं समपद्यत तस्मान्मुखात्तैजसकारणाद्वाक्शक्तिरुत्पन्ना तस्या वाचश्चाग्निः प्रसिद्धो भौतिकः प्रादुरभवत्। तदनन्तरं नासिके घ्राणेन्द्रियगोलकद्वयं सूक्ष्मं निरभिद्येतां छिद्रद्वयं नासिकास्थानीयं संजातं ताभ्यां प्राणो जीवनसाधनः तस्माच्च वायुः प्रादुरभवत् तदनन्तरमक्षिणी चक्षुषोरधिष्ठाने निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुः करणं तत आदित्यो देवता प्रादुरभवत्। तदनन्तरं श्रवणाधिष्ठाने कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं करणं श्रोत्राद्दिशो देवताः प्रादुरभवन्। ततस्त्वक् स्पर्शाधिष्ठानं निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमसहचरितं स्पर्शनमिन्द्रियं लोमपदवाच्यं लोमभ्यश्चौषधिवनस्पतयो वायुप्रधानाः प्रादुरभवन्। ओषध्याद्यधिष्ठातृदेवता वायुरेवास्ति तस्मादोषध्यादिपदेन वायोर्ग्रहणं बोध्यम्। ततो हृदयं निरभिद्यत हृदयादधिष्ठानान् मनो मनः करणाच्चन्द्रमा, समजायत। ततो नाभिरधिष्ठानं निरभिद्यत नाभ्या अपानो विसर्गेन्द्रियमपानान्मृ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्यु देवता प्रादुरभवत्। ततः शिश्नं निरभिद्यत ततोऽधिष्ठा नाद्रेतः करणं तस्माद्रेतस आपो देवता जाताः॥

भा०—अत्र लोकपालरूपाग्न्यादिदेवतोत्पत्तिप्रदर्शने प्र-धानाशयोऽन्यार्थप्रकाशनं च प्रसङ्गगतमेव बोध्यम्। अभि-तपनं चात्र ज्ञानमयेनेश्वरतपसा विज्ञेयं "यस्यज्ञानमयं तपः" इत्यन्यत्रोक्तत्वात्। यथा मुखादिपदानि सामान्यार्थपराणिवेदे गृह्यन्ते तथैवात्र संवेद्यम्। तेनैवाशयेनात्र तेषां पठितत्वात्। सर्वचराचरस्थूलसूक्ष्मवस्तुनि प्रवेशनद्वारं निस्सरणसाधनं च प्रधानाङ्गं मुखं यथा प्राङ्मुखी शालेत्यादिषु वेदानुयायिषु बहुषु पुस्तकेषु "अर्द्धेन नारी तस्यां विराजमसृजत्प्रभु रित्यादिना विराजः प्रादुर्भावः प्रदर्शितः। विराट्पुरुषात्तु ब्रह्मा समजा यतेति बहुत्र दृश्यते। तत्र सोमतत्त्वप्रधाना पञ्चतन्मात्राख्या स्त्रीशक्तिर्विराजो जननी स्थूलमहाभूतानां पूर्वरूपं कारणं विराट्पदवाच्यं तच्च स्थूलापेक्षया सूक्ष्ममपि स्वकारणपञ्च-तन्मात्राख्यापेक्षया स्थूलमेव। तस्य चापत्यभूतं कार्यं ब्रह्मा "ब्रह्मा वै महातेजा य एते पञ्च धातवः" इति महाभारतमोक्ष-धर्मपर्वण्युक्तम्। एतेन महाभूतानां पूर्वावस्था विराट्पद-वाच्या सिद्धा। "ततो विराडजायत०॥ इति यजुषि ३१। ५" तस्यैव विराजो मुखं प्रधानाङ्गमस्मदादिस्थूलमुखानां कारण-भूतं स्वस्य स्वाभाविकेक्षणरूपतपसा निर्भिन्नं तस्येक्षणेन विरा-जो मुखं स्वयं निरभिद्यत इति यावत्। जगति सर्वदैव प्राब-ल्यात्पुरुषस्य प्राधान्यमतो विराजि स्त्र्यंशबाहुल्येऽपि विराट्-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष इति गद्यते। कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्ट इति नियमात्सदैव मुखादित्वं कार्येष्वाविर्भूयते मुखच्छिद्रादेव यथा सम्प्रति वाङ् निस्सरति तथैव सूक्ष्मकारणभूतमुखादेव वाक्शक्तिरजायत सा च वाक् तैजसांशप्रधाना, तथा च वेदमन्त्राशयं पुरस्कृत्यैव शतपथ उक्तम् "त एव त्रयो देवाः, वागेवाग्निर्मनो वायुः प्राणः सूर्यः" अस्मिन्नेव पुस्तकेऽग्रे द्वितीयखण्डस्य चतुर्थकण्डिकायाम्—"अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्" इत्युक्तं तेन सिद्धं स्थूलाग्नेस्तैजसं कारणं वाक्पदवाच्यम्। तस्मादेव वाचोऽग्नेः प्रादुर्भावप्रदर्शनं साधुतरम्। यद्यपि वृक्षस्य कारणबीजमिति प्राधान्येन व्यवहारस्तथापि सर्वं सर्वात्मकमिति तत्त्वालोडितसिद्धान्तसिद्धो वृक्षोऽपि बीजस्य कारणं वृक्षादेव तदुत्पादात्। एवं च यद्यस्य कारणं तदपि तस्य कार्यं यच्च यस्य कार्यं तदपि तस्य कारणमिति सूक्ष्मेक्षणसाध्यमिदम्। "सूर्यं ते चक्षुर्गच्छतादित्यत्र मन्त्रे पृथिवीं ते शरीरमिति श्रूयते तदिदं प्रकृतौ विकारस्य प्रलयाभिधानमिति ॥ ३ ॥ १ ॥ २६ ॥" इति गोतमीयन्यायदर्शने वात्स्यायनः। तथा च "सूर्यं चक्षुर्गच्छतु वातमात्मा द्यां च गच्छ पृथिवीं च धर्मणा। ऋ० १०। १६। ३।" इत्यादि श्रुतिस्मृतिषु शरीरावयवचक्षुर्मनआदीनां सूर्य चन्द्रादितत्त्वान्युपादानकारणानि स्पष्टमुक्तानि। आत्मपदेन मन्त्रे प्राणस्य ग्रहणं बोध्यं वायुश्च प्राणस्योपादानं कारणम्। घटादयः पृथिव्यामिव सर्वो विकारः स्वस्वोपादाने प्रलीयते "चन्द्रमा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ॥ श्रोत्राद्वायुश्च प्राणश्च मुखादग्निरजायत ॥ यजुषि ३१ । १२" इत्यादिमन्त्रेषु मनआदीनां सूक्ष्ममुपादानमपि मनआदिपदवाच्यं तादृशेभ्यश्चमन आदिभ्यश्चन्द्रादीनामुत्पत्तिः। यत्र च सूर्यचन्द्रादयश्चक्षुर्मनआदीनामुपादानभूता निर्दिष्टास्तत्र सूर्यादिपदेन स्थलसूर्यादीनां कारणं चक्षुरादिपदैश्च प्रसिद्धानि कार्येन्द्रियाणि विवक्षितानि। एवं च वृत्तबीजवन्मुखमग्नेरग्निश्च मुखस्य कारणम्। मुखादग्निरजायत इत्यत्राग्नेर्मुखं कारणम्—"अग्निं यश्चक्र आस्यम्" इत्यथर्वमन्त्रे च मुखस्याग्निः कारणमित्युक्तम्। चक्षोः सूर्यो अजायत इत्यत्र चक्षुः सूर्यस्य कारणं यस्य सूर्यश्चक्षुरित्यत्र च सूर्यश्चक्षुषोरुपादनमेव मन्येष्वपि वायुप्राणादिषु कार्यकारणभावो योज्यः। स्थूलस्य कारणभूताद्विराट्पुरुषादेव सर्वं मुखादिकमीश्वरेण सृष्टं तेन च स्रष्टुर्महत्त्वमुपादानोपादेयाच्च स्थूलसूक्ष्माजगतः पृथक्त्वं विज्ञाप्यते। सर्ववस्तूनामुत्पादाद्बोधपत्र मर्मज्ञानं तदेव तत्त्वज्ञानं तच्चेष्टाप्तेरनिष्टहानस्य च कारणमिति सर्गव्याख्यानाशयो बोध्यो बुधैः ॥ ४ ॥

भाषार्थः—उस परमेश्वर ने (तमभ्यतपत्) सूक्ष्म से परिणत हुए स्थूल सृष्टि के पूर्वरूप उस पूर्वोक्त विराट् पुरुष को प्रकारान्तर से परिणत करने के लिये स्थूल रचना की इच्छा से तप्त किया अर्थात् अभिध्यान वा ईक्षण किया कि इससे आगे अमुक प्रकार की सृष्टि होनी चाहिये (तस्याभितप्तस्य यत्राण्डं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुखं निरभिद्यत) ईश्वर के उस अभिध्यानरूप तपःसंकल्प से उस विराट् पुरुष का अण्डे में छिद्र हो जाने के समान मुख नाम प्रधानाङ्ग अवकाशरूप छिद्रवाला हो गया (मुखाद्वाग्वाचोऽग्निः) उस तैजस कारण रूप मुख से वाक्शक्ति और उस वाक्शक्तिरूप कारण से प्रसिद्ध भौतिक अग्नि प्रकट हुआ (नासिके निरभिद्येतां नासिकाभ्यां प्राणाद्वायुः) तदनन्तर उस विराट् पुरुष में सूक्ष्म कारणरूप नासिका स्थानीय दो छिद्र हुए उन छिद्रों से जीवन हेतु प्राणक्रिया और प्राण से प्रसिद्ध वायु उत्पन्न हुआ। तदनन्तर (अक्षिणी निरभिद्येतामक्षिभ्यां चक्षुश्चक्षुष आदित्यः) चक्षुरूप इन्द्रियशक्ति के आधार चक्षुःस्थानीय सूक्ष्म दो गोलक छिद्र हुए उनसे दर्शन शक्तिरूप चक्षु और चक्षुसे आदित्य देवता उत्पन्न हुआ तदनन्तर (कर्णौ निरभिद्येतां कर्णाभ्यां श्रोत्रं श्रोत्राद्दिशः) श्रोत्रशक्तिस्थानीय कान के दो सूक्ष्म छिद्र हुए उन छिद्रों से सुनने की शक्तिरूप श्रोत्रेन्द्रिय हुआ और उससे दिशा उत्पन्न हुई तदनन्तर (त्वङ्निरभिद्यत त्वचो लोमानि लोमभ्य ओषधिवनस्पतयः) स्पर्शनस्थानी त्वचा में अनेक छिद्र प्रकट हुए जो रोमकूप कहाते उन सूक्ष्म अदृश्य छिद्रों से सक्ष्म लोम नाम स्पर्शन इन्द्रियशक्ति हुई और उससे वायुतत्त्व प्रधान ओषधि वनस्पति हुए वा ओषध्यादि का मूल कारण वायु ही यहां ओषधि वनस्पति शब्दों से लेना अभिप्रेत जानो क्योंकि स्पर्शन इन्द्रिय के अधिष्ठान त्वचा के साथ वायु का कार्य कारण सम्बन्ध सर्वशास्त्रों में प्रसिद्ध ही है। तदनन्तर (हृदयं निरभिद्यत हृदयान्मनो मनसश्चन्द्रमाः,) हृदयरूप मांसपिण्ड का सक्ष्म कारण छिद्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सहित हुआ उससे संकल्प विकल्पात्मक मनःशक्ति और मन से चन्द्रमा का प्रादुर्भाव हुआ। तदनन्तर (नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः) अपानेन्द्रिय का अधिष्ठान अपान नाम पायु—गुदेन्द्रिय सूक्ष्म रूप हुआ और उससे मृत्यु रूप हुआ और उससे मृत्यु रूप तत्त्वसम्बन्धी देवता हुआ जिसका नाम यम भी है अर्थात् वह प्रकट वा अप्रकट दुर्गन्धादि रूप एक निकृष्ट वायु का भेद है वह अनेक रूप धारी होकर जगत् में रहता है उसका आना जाना भी होता ही है। वह प्रबलता से जिस पर धावा करता है उसको मार ही डालता है उसका गुदेन्द्रिय के साथ प्रधान सम्बन्ध है और नाभिचक्र से ही नीचे को गुदेन्द्रिय की बनावट आरम्भ है। तदनन्तर (शिश्नं निरभिद्यत शिश्ना रेतो रेतस आपः) शिश्न नामक उपस्थेन्द्रिय का स्थान सूक्ष्म कारण रूप छिद्र हुआ और उससे रेत नामक उपस्थेन्द्रिय शक्ति और उससे अप् देवता उत्पन्न हुए॥

भा०—यहां पूर्व कहे लोकपाल अग्न्यादि देवताओं की उत्पत्ति दिखाने में प्रधान अभिप्राय है और अन्य वस्तुओं का व्याख्यान उन्हीं के प्रसङ्ग से है। यहां अग्नि, वायु, आदित्य, दिशा, ओषध्यादि सम्बन्धी वायु, चन्द्रमा, मृत्यु और जल तत्त्व इन आठ देवताओं की क्रम से उत्पत्ति दिखाने का यह भी प्रयोजन है कि पर २ के साथ पूर्व २ देवता का ऐसा कार्य कारण सम्बन्ध है कि पूर्व २ के अभाव में पर २ नहीं हो सकते। इन आठों में तीन भाग हैं पहिला अधिष्ठान वा आश्रय जिसको इन्द्रियगोलक वा छिद्र अथवा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वार भी कहते हैं द्वितीय उस २ छिद्रों में रहनेवाली इन्द्रिय शक्ति है तीसरा देवता वा उस २ इन्द्रिय का कार्य कारण रूप विषय है। यह निश्चय जानो कि जो २ स्थूल पदार्थ जिस २ रूप में बना दीखता है वह २ प्रथम सूक्ष्म दशा में वैसे ही सूक्ष्म अवयवों से युक्त बना करता है। जैसे छोटे वृक्ष में छोटे २ गुद्द डाली शाखा पत्ते होते और वे क्रमशः सभी बढ़ते जाते हैं तो छोटी शाखा वा पत्ते बड़ों के कारण माने जाते हैं वैसे ही वृक्ष के बीज में भी अति सूक्ष्म शाखा पत्ते सभी होते हैं तथा जिन २ अंशों से बीज बनता है उन २ अंशों में वृक्ष के पत्ते आदि अवयव बीज से भी सूक्ष्म होते हैं इस प्रकार पूर्व २ दशा पर २ दशा का कारण हुआ करती है। जैसे बीज बनने की शक्तिवाले परमाणु बीज का कारण, बीज अंकुर का और अंकुर वृक्ष का कारण होता है वैसे ही मनुष्य शरीर की दशाओं में भी कार्य कारण भाव मानना चाहिये। अभितपन ईश्वर के ज्ञान रूप तप से हुआ जानो क्योंकि "जिसका तप ज्ञानमय है" यह उपनिषदों में लेख मिलता है। मुखादि शब्दों का जैसा सामान्यार्थ वेद में लिया जाता है वैसा ही यहाँ भी जानो। उसी अभिप्राय से यहाँ मुखादि शब्द पढ़े हैं अर्थात् स्थूल सूक्ष्म सब चराचर वस्तुओं में प्रविष्ट होने वा करने।.तथा उनसे कुछ निकलने का साधन मुख कहाता अर्थात जिस से घुसना निकलना व्यवहार सिद्ध हो वह मुख कहाता है। पूर्व को जिस का द्वार हो ' ह को प्राङ्मुखी, शाला कहते हैं। यहाँ भी श्वासादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर से निकलता तथा अन्न जलादि घुसता इस से मनुष्यादि के उस २ अङ्ग को मुख कहते हैं। गुदादि से भी एक निकलना होता है किन्तु पैठना नहीं इस से वह मुख नहीं मुख का काम मुख्य घुसना ही है। वेदानुयायी बहुत पुस्तकों में लिखा है कि "परमेश्वरने जगत् के अर्द्धांश से सब वस्तु में स्त्री को बनाया अर्थात् जगत् के सूक्ष्म कारण में से आधा भाग स्त्री प्रधान नियत किया। उस में स्थूल जगत् के कारण विराट् पुरुषाकृति सूक्ष्म ब्रह्माण्ड को प्रकट किया" इत्यादि कथन से विराट् की उत्पत्ति दिखायी और विराट् पुरुष से ब्रह्मा उत्पन्न हुआ यह भी प्रसिद्ध है। उस में सोमतत्त्व प्रधान तन्मात्र नामक स्त्रीशक्ति विराट् की उत्पत्ति का स्थान माता है वही महाभूत रूप ब्रह्मा का पूर्वरूप कारण विराट् पद वाच्य है वह स्थूलकी अपेक्षा सूक्ष्म होने पर भी अपने कारण पञ्चतन्मात्र की अपेक्षा तो स्थूल ही है उसी विराट् का अपत्यभूतकार्य ब्रह्मा कहाता है "इन पृथिव्यादि पांच महाभूतों का नाम ब्रह्मा है" यह महाभारत में लिखा है। कहीं कारण शब्द से कार्य का और कार्य से कारण का भी व्यवहार होता है इस लिये कोई लोग विराट के कारण को ब्रह्मा कहें यह भी बन सकता है। इस उक्त कथन से महाभूतों की पूर्वावस्था का नाम विराट् सिद्ध है (ततो विराडजायत) इस वेद मन्त्र में इसी विराट् का प्रादुर्भाव दिखाया है। हमारे मुखों का कारण रूप उस विराट् के मुख नाम प्रधानाङ्ग को ईश्वर ने अपने स्वाभाविक रूप तप से छिद्र सहित किया अर्थात् विराट् का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मुख स्वयं ईश्वर के ईक्षण से खुल गया। जगत् में सर्वदैव प्रबल होने से पुरुष की प्रधानता है इस कारण विराट् में प्रकृति स्त्री का अधिकांश होने पर भी विराट् पुरुष कहाता है। अधिष्ठाता स्वामी राजा सदा कम एक दो होते और प्रजा बहुत होती है। कारण के तुल्य कार्य में गुण आता है इस नियम के अनुसार विराट् कारण में विद्यमान ही सूक्ष्म मुखादि अङ्ग कार्य शरीरों में प्रकट होते हैं। जैसे डाली पत्ते आदि बीज में सूक्ष्मरूप से विद्यमान ही थे वेही वृक्षाकार में परिणत होते हैं॥ और जैसे मुख के छिद्र से ही सम्मति वाणी निकलती है वैसे सूक्ष्म कारणरूप मुख से ही वाक्शक्ति प्रकट हुई और वह तैजस अंश की प्रधानता रखने वाली थी सो वेद मन्त्रों का आशय लेकर ही शतपथ ब्राह्मण में कहा है कि-"वाणी मन प्राण ये ही तीन देवता हैं जिनमें वाणी अग्नि, मन वायु और प्राण सूर्य है" और इसी ५ष्टक के द्वितीय खण्ड में आगे लिखा है कि "अग्नि वाणीरूप होकर मुख में प्रविष्ट हुआ" इससे भी सिद्ध है कि स्थूलाग्नि का तैजस कारण वाक् पद वाच्य है उसी वाणी से अग्नि का प्रादुर्भाव दिखाना ठीक है। यद्यपि मुख्य व्यवहार है कि वृक्ष का कारण बीज है तथापि "सब सब है" इस निचोड़ सिद्धान्त के अनुसार वृक्ष भी बीज का कारण है क्योंकि वृक्ष से ही बीज हुआ है। इससे यह सिद्ध हुआ कि जो जिसका कारण है वह भी उसका कार्य और जो जिसका कार्य है वह भी उसका कारण हो जाता है यह बात सूक्ष्म विचार के साथ सोचने से सम्बन्ध रखती है। "सूर्य में तेरा चक्षु और पृथिवी में

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तेरा शरीर मिल जावे" इस कथन से वेदने प्रकृति-उपादान कारण में विकार रूप चक्षु आदि का लय दिखाया है" यह गोतम के न्यायसूत्रों पर वात्स्यायन ने कहा है। और यही बात (ऋग्वेद १०।१६।३) में भी स्पष्ट कही है। इत्यादि श्रौतस्मार्त्तप्रमाणों में शरीर के अवयव चक्षु मन आदि का सूर्य चन्द्रमा आदि तत्त्व उपादान कारण स्पष्ट कहे हैं। और ऋग्वेद के मन्त्र में प्राण का ग्रहण जानो। और वायु प्राण का उपादान कारण है। जैसे पृथिवी के विकार घटादिपदार्थ पृथिवी से उत्पन्न हो २ उसी में लय होते जाते हैं वैसे सभी वस्तु अपने २ उपादान कारण में लीन हो जाता है "विराट् पुरुष के मन से चन्द्रमा और चक्षु से सूर्य उत्पन्न हुआ श्रोत्र से वायु और प्राण तथा मुख से अग्नि उत्पन्न हुआ" इत्यादि मन्त्रों में स्थूल मन आदि का सूक्ष्म उपादान भी मन आदि कहाता वैसे मन आदि से चन्द्रमादि की उत्पत्ति कही जानो। और जहाँ सूर्य चन्द्रादि मन आदि का उपादान कथन विवक्षित है वहाँ सूर्यादि पद से स्थूल सूर्यादि का तैजसादि कारण और चक्षुरादि पदों से प्रसिद्ध कार्यरूप इन्द्रियां लेनी विवक्षित हैं। इस प्रकार बीज वृक्ष के तुल्य अग्नि का मुख और मुख का कारण अग्नि है। "मुख से अग्नि प्रकट हुआ" यहाँ अग्नि का मुख कारण और (अग्निर्यश्चक्र आस्यम्) इस अथर्व मन्त्र में अग्नि को मुख का कारण कहा है (चक्षोः सूर्यो अजायत) यहां चक्षु सूर्य का कारण और (यस्य सूर्यश्चक्षुः) यहां सूर्य चक्षु का कारण है। ऐसे ही अन्य वायु प्राणादि में भी कार्य कारण भाव जानो। स्थूल के कारण भूत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विराट् पुरुष से ही सब मुखादिक साधन ईश्वर ने रचे हैं इससे सृष्टि कर्त्ता का सर्वज्ञत्व महत्त्व और स्थूल सूक्ष्म उपादानोपादेय रूप जड़ संसार से उसका पृथक्त्व जताया है। सब पदार्थों का उत्पत्ति नाम जड़ से बोध होना ही मर्म ज्ञान वही तत्त्वज्ञान कहाता वही इष्ट की प्राप्ति और अनिष्ट की हानि का कारण है यह सृष्टि रचना के व्याख्यान का आशय विचारशीलों को मानना चाहिये ॥ ४ ॥

ता एता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतंस्तमश-नायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्। ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजा-नीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति ॥ १ ॥ ताभ्यो गा-मानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति। ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति ॥ २ ॥ ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतं वतेति पुरुषो वाव सुकृतम्। ता अब्रवीद्यथा-यतनं प्रविशतेति ॥ ३ ॥

अ०—ता एता अग्न्यादिदेवता ईश्वरेण सृष्टा अस्मिन् महत्यर्णवेऽगाधसंसारसागरे प्रापतन् पतितवत्यः। तं विरा-ट्पुरुषं स्थानकरणदेवतोत्पत्तिबीजभूतमशनायापिपासाभ्याम-न्ववार्जदन्ववापितवान्संयोजितवान्। अन्ववपूर्वगत्यर्थार्ज-धातोरूपमिदम्। कार्यस्य कारणगुणपूर्वकत्वादग्न्यादिदेवता अप्यशनायापिपासाभ्यां संयुक्ताः स्वत एवासन्। ता अग्न्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिदेवता एनं स्रष्टारमब्रुवन्स्वभक्षणशक्तिप्रकटनेन सूचितवत्य आयतनमस्मभ्यं प्रजानीहि नियतं कुरु यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति। ताभ्यो देवताभ्यो गवाकृतिविशिष्टं देहं स्वनिर्मितमदर्शयत् ताः पुनर्गवाकृतिं पशुं दृष्ट्वाऽब्रुवन्वै नोऽस्मभ्यमधिष्ठायान्नमत्तमयं पशुरलमिति। ततस्ताभ्योऽश्वं सृष्टमानीयादर्शयत्पुनस्ता अब्रवन्नायमपि नोस्माकं कार्यसाधनायालमिति। ततस्ताभ्यः पुरुषं मनुष्याकृतिं सृष्टमदर्शयत्ताश्च तं मनुष्यदेहं दृष्ट्वाऽब्रुवन् वताहो सुकृतं सुष्टुनिर्मितमिदं शरीरं भोगायालम्। यस्मात्पुरुषो वाव पुरुष एवाभ्युदयं निःश्रेयससुखे सम्पादयितुं शक्तस्तस्मात्तच्छरीरमेव सुकृतं सुकर्मफलम्। ईश्वरस्ता देवता अब्रवीत्स्वभावेनैव संकेतितवान् यूयं यथायतनं स्वस्वकारणभूते पुरुषदेहांशे प्रविशतेति॥

भा०—मनुष्यादिप्राणिनां सर्वसुखदुःखावाप्तिरग्न्यादिदेवतासाध्यैवास्ति। अग्न्यादय एव विषयेन्द्रियशरीरस्थूलसूक्ष्मादिरूपेण परिणता आत्मसान्निध्येन सर्वं कुर्वन्ति पीड्यन्ते चेतरेतरम्। अर्णवकथनात्संसारस्य समुद्रवत्पारगमनाशक्यत्वं दुर्गत्वमगाधत्वं च विज्ञाप्यते। अविद्यादिक्लेशजन्यदुःखोद्रेकः सुतीव्ररोगजरामृत्युग्राहोऽनाद्यनन्तोऽपारो निरालम्बोऽपि विषयेन्द्रियसंयोगजन्यसुखानुभवमध्यो धनकामाद्यवाप्तितृष्णावायूत्थितानर्थसहस्रमहोर्मिस्तामिस्राद्यसंख्येयनरकस्थाक्रोशनजन्यमहास्वनोऽहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यशमदमतपःशौचदानदयाज्ञानोडुपो योगाभ्याससत्संगादिपथो मोक्षत-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दध्यायमतिभीष्मः संसारस्तस्मिन्नग्न्यादिदेवताजन्यशरीरादौ जीवो बध्यते तस्मात्पारगमनोपायश्चात्रोपनिषत्सु दर्शितस्तत्त्वज्ञानमेवास्ति शुभकर्मानुष्ठानादिरूपो धर्मस्तु तत्त्वज्ञानस्य हेतुस्तस्माद्धर्माचरणं प्रधानं येन बिना तत्त्वज्ञानमप्यसम्भवम्। यद्यपि क्षुत्पिपासे न केवलस्य देहस्य नापि केवलस्य जीवात्मनोऽपि तु तयोः संयोगस्य धर्मः सर्वः सुखदुःखानुभवस्तथापि क्षुत्पिपासाद्यधिष्ठानं प्रकृतिरेवास्ति। यद्यपि सर्वत्रैव जगत्यग्न्यादय एव परस्परं भक्षका भक्ष्याश्च "अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते" इति श्रवणात्। यद् भक्ष्यं तदपि कस्यचिदन्यस्य भक्षकं यच्च भक्षकं तदप्यन्यस्य भक्ष्यमिति यथाग्निर्जलस्य जलं चाग्नेस्तथापि मनुष्यादिप्राणिषु क्षुत्पिपासयोः प्राधान्यमिति कृत्वा गवादिप्राणिनो निर्दिष्टाः। यथा च स्थावरापेक्षया तिर्यग्जन्तुषु क्षुत्पिपासयोः पूरणाय साधनाधिक्यमेवं तिर्यगपेक्षयापि बुद्धिप्राबल्येन सम्भूय देशान्तराद्धस्ताभ्यामानीय सम्यक् पातुं भोक्तुं वा यथा मनुष्यः शक्नोति न च तथान्यः कोऽपीति। तेनैव यादृशं शुद्धमारोग्यं पुष्ट्यादिविशिष्टगुणवत्सारभूतमन्नमुदकं च मनुष्या अभ्यवहरन्ति न तादृशमन्ये पश्वादयस्तस्मादेव पश्वाद्यपेक्षया प्रसन्नाग्न्यादिदेवताकं लावण्यकान्त्यादियुक्तमुत्तमं मनुष्यशरीरं प्रत्यक्षमुपलभ्यते। सर्वाणि जड़तत्त्वानि चेतनाधीनान्येव सन्ति चेतनावेशाच्चैतन्यसमापन्नानि भाषणादिकं कुर्वन्ति। भाषणेऽग्नितत्त्वस्य प्राधान्यमात्मानमन्तरेण भाषणादि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यापारस्याग्न्यादिष्वसम्भवादेव जीवात्मैव भाषणादिकं करोतीति व्यवहारोऽपि युज्यत एव। वाग्ब्रवीति चक्षुः पश्यतीति व्यवहारोऽपि नायुक्तः। यो द्वयोः षष्ठीनिर्दिष्टयोर्मध्ये भवति तस्यैकतरेणापि व्यपदेशः क्रियते कर्त्तुं वा युज्यते। यथा देवदत्तस्य पुत्रो देवदत्तायाः पुत्र इति वा। वस्तुतस्तु द्वयोरेव भवति नैकस्य। एवमत्राप्यग्निदेवताकार्ये कारणे च वाचि भाषणमुक्तम्। अग्निः सर्वदेवतानां मूलं यथा वर्णानामकारस्तस्य प्राधान्येन भक्षकत्वेऽभ्युपगतेऽन्यतत्त्वानामपि गौणं भक्षकत्वमस्त्येव तस्मादन्नभक्षणाधिष्ठानयाचनं सर्वदेवतासु सम्भवति। साधनसौलभ्यात्पुरुषदेहः क्षुत्पिपासाद्यधिष्ठानेषु प्रधानइति विज्ञाप्यते नतु पश्वादिनिराकरणे तात्पर्यम्। कल्पनामात्रमीश्वरेण साकं देवतानां वाग्व्यापारस्तेन देवताः कथयन्तिस्मेवेश्वरश्च देवतासांकल्पानुरूपमुत्तरं दत्तवानिव। यद्वा मानसमेव विजृम्भणमेतत् ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(ताएता देवताः सृष्टा अस्मिन्महत्यर्णवे प्रापतन) वे ईश्वर के रचे पूर्वोक्त अग्नि आदि देवता इस महाअगाध संसार सागर में आ पड़े (तमशनायापिपासाभ्यामन्ववार्जत्) उस विराट् पुरुष को कि जो स्थान—मुखादि, वाणी आदि करण और अग्न्यादि देवताओं का बीजरूप कारण है भूख प्यास से संयुक्त किया उसके साथ भूख प्यास प्रथम लगाई और कारण के गुणों वाला कार्य होने से विराट्रूप कारण का गुण अग्न्यादि कार्य देवताओं में भी आया इस कारणअग्न्यादि देवता भी भूखप्यास से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त हुए (ताएनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन् प्रतिष्ठिता अन्न मदामेति) वे अग्न्यादि देवता इस सृष्टि कर्त्ता ईश्वर से बोले कि हमारे लिये ठहरने का स्थान बताइये जिसमें रहते हुए हम लोग अन्न खावें। अर्थात् अपनी भक्षण शक्ति को प्रकट करने द्वारा सूचना दी। यहां खाने में पीना और अन्न में जल को अन्तर्गत जानो। (ताभ्यो गामानयत्) ईश्वर ने उन देवताओं के लिये रचे हुए गोजाति के शरीर को लाकर दिखाया (ताः) वे देवता गौ पशु को देखकर (अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति) बोले कि यह पशु हमारे लिये खाने पीने का स्थान ठीक युक्त नहीं है। इसके एक ओर दांत हैं जिस कारण प्रत्येक वस्तुको पकड़ नहीं सकता हाथका काम भी मुख से लेता बुद्धि भी उत्तम भक्ष्य वस्तु के संचर्यार्थ नहीं है (ताभ्योऽश्वमानयत्ता अब्रुवन्न वै नोऽयमलमिति) तदनन्तर ईश्वर ने दोनों ओर दांत और जुड़े खुरोंवाले अपने रचे घोड़े जाति के शरीर को लाकर दिखाया कि यह शीघ्रगामी भी है शीघ्र भक्ष्यादि को कहीं से ला भी सकता दोनों ओर दांत होने से घासादि को अधिक वा शीघ्र पकड़ सकता है तब भी वे देवता बोले कि हमारी कार्य सिद्धि के लिये यह भी ठीक नहीं क्योंकि इसको भी अच्छे बुरे की परीक्षा के योग्य बुद्धि नहीं जो सत् असत् का विवेक कर सके। तदनन्तर (ताभ्यः पुरुषमानयत्ता अब्रुवन् सुकृतवतेति पुरुषो वाव सुकृतम्) उनके लिये ईश्वर ने अपने रचे मनुष्य जाति के शरीर को दिखाया और वे देवता मनुष्य देह को देखकर बोले कि ओहा! यह शरीर भोगने का स्थान बहुत अच्छा बना है। क्षुधा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पिपासा को पूर्ण करने के लिये यह स्थान आधार ठीक है (अर्थात् पृथिव्यादि पञ्चतत्त्वरूप देवताओं के निकृष्ट २ मलिनांशों से तिर्यगादि निकृष्ट योनि के देह बने हैं और सब से उत्तम २ अंश लेकर मनुष्य शरीर बनाया गया है। अग्न्यादि के उत्तमांशों की अपेक्षा निकृष्ट २ अंश असुर राक्षसादिपन से सम्बन्ध रखते और उनका उत्तम २ अंश देवतापन कहाता है उत्तमांश का उत्तमांश के साथ तथा निकृष्टांश का निकृष्टांश के साथ ठीक योग मिलता है यही अग्न्यादि का चाहना वा पुरुष शरीर का मांगना है। यह भी नियम है कि पश्वादि की अपेक्षा मनुष्य अपनी बुद्धि की प्रबलता से सार वा फल रूप उत्तम २ अन्नादि खाता तथा खा सकता है इसी कारण मनुष्य शरीर में अग्न्यादि देवता का उत्तम सार भाग है इसी लिये स्वभाव से अग्न्यादि देवताओं ने मनुष्य देह में वसना स्वीकार किया। और मनुष्यों में भी उत्तम २ शुद्ध सात्त्विक भोजी ब्राह्मणादि के शरीरों में शूद्रादि की अपेक्षा उत्कृष्ट भाग है इसलिये उत्तम से उत्तम अग्न्यादि देवता अत्युत्तम शुद्ध ब्राह्मणादि के शरीरों में रहना चाहते तथा रहते हैं) इससे सिद्ध हुआ कि मनुष्य ही संसार और परमार्थ के उत्तम २ सुखों को सिद्ध कर सकता है इससे मनुष्य शरीर का मिलना ही शुभ कर्म का फल है (ता अब्रवीद्यथायतनं प्रविशतेति) ईश्वर ने उन देवताओं से कहा अर्थात् स्वाभाविक प्रेरणा की कि तुम सब अपने २ कारण सम्बन्धी मनुष्य के देहांशों में प्रवेश करो ॥

भा०—मनुष्यादि प्राणियों की सब सुख दुःखों की प्राप्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्न्यादि देवताओं की अनुकूलता प्रतिकूलता से सम्बन्ध रखने-वाली है क्योंकि स्थूल सूक्ष्म विषय इन्द्रिय और शरीररूप में बने हुए अग्न्यादि देवता ही जीवात्मा की समीपता से सब करते और परस्पर के विरोधी अंशों से पीड़ित भी होते ही हैं। यहाँ संसार को अर्णव नाम समुद्र की उपमा देने से यह जताया है कि समुद्र के तुल्य संसार के पार पहुँचना अति कठिन है तथा दुर्गमार्ग अथाह दुःख में डूबना है। इसमें अविद्यादि क्लेशों से होने वाला दुःख ही उफान है जिस में अति तीव्र रोग, बुढ़ापा तथा मृत्यु ही बड़े ग्राह हैं यह समुद्र अनादि अनन्त अपार निरालम्ब भी है पर बीच २ में विषय और इन्द्रियों के संयोग से होनेवाला सुखानुभव ही थोड़ा सहारा जिसमें धन और काम भोग प्राप्ति की तृष्णारूप आँधी से उठे सहस्रों अनर्थ ही बड़ी २ तरंग हैं जिसमें तामिस्रादि नरकों में पड़ के चिल्लाने से होने-वाला महाभयंकर शब्द जिसमें अहिंसा सत्य ब्रह्मचर्यसेवन शान्ति जितेन्द्रियता तप शौच दान दया और ज्ञानादि धर्म का सेवन ही पार होने के लिये बड़ी नौका, योगाभ्यास सत्संगादि जिसका मार्ग मोक्ष ही जिसमें किनारा है। ऐसा संसार सागर महाभयंकर सनातन दुःखागार है इस संसार में अग्न्यादि देवताओं से हुए शरीरादि में बँध कर जीवात्मा गोता खाया करता है। इन उप-निषदों में दिखाया—वर्णन किया तत्त्वज्ञान ही दुःख सागर संसार से पार होने का उपाय है और शुभ कर्म सेवनादि रूप धर्म तो तत्त्वज्ञान का हेतु है तिस से धर्म का सेवन प्रधान है क्योंकि धर्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तत्पर हुए बिना तत्त्वज्ञान भी नहीं हो सकता यद्यपि क्षुधा पिपासा न केवल देह के और न जीवात्मा के धर्म वा गुण हैं किन्तु दोनों के संयोग का धर्म सब सुख दुःख का अनुभव है तथापि भूख प्यासादि का स्थान वा आधार प्रकृति नाम जड़ ही है। यद्यपि सर्वत्र जगत् में अग्न्यादि देवता ही भक्षक और भक्ष्य हैं क्योंकि "जो खाया जाता और जो खाता है वह सब अन्न है" इस कथन के अनुसार जो भक्ष्य है वह भी किसी का भक्षक और जो भक्षक है वह भी किसी अन्य का भक्ष्य होता है। जैसे जल अग्नि का और अग्नि जल का भक्षक है तथापि मनुष्यादि प्राणियों में क्षुधा पिपासा की प्रधानता वा प्रत्यक्ष भक्षण होने से गौ आदि प्राणियों का निर्देश किया किन्तु स्थावरों में गौण अप्रकट भक्षण होने से उनको नहीं कहा। और जैसे स्थावरों की अपेक्षा तिर्यग् जातियों में भूख प्यास को पूरा करने के लिये साधनों की अधिकता है वैसे तिर्यग्जातियों की अपेक्षा से भी अधिक बुद्धि की प्रबलता से सम्भव मान देशान्तर से हाथों के द्वारा लाकर जैसा मनुष्य सम्यक् खा पी सकता वैसा अनुकूल उत्तम वस्तु को अन्य पश्वादि कोई भी नहीं खा सकता। तिसी से जैसे शुद्ध आरोग्य पुष्टि आदि गुणों से युक्त सारभूत अन्न जल को मनुष्य खाते पीते हैं वैसे उत्तम भक्ष्य को पश्वादि नहीं खा पाते। इसी से पश्वादि की अपेक्षा शुद्ध अग्न्यादि देवताओं से युक्त और लावण्य कान्त्यादि गुणोंवाला मनुष्य का शरीर प्रत्यक्ष ही उत्तम दीखता है। सब जड़तत्त्व चेतन के ही आधीन रहते चेतन का प्रवेश होने से चेतन-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ता के साथ एकता समापत्ति को प्राप्त हुए बोलना आदि व्यवहार करते हैं। बोलने में अग्नि वायु जल तीनों का उपयोग होने पर भी अग्नि प्रधान है क्योंकि वाणी अग्नि का कार्यकारण सम्बन्ध है। आत्मा की समीपता के विना अग्न्यादि में बोलनाआदि व्यवहार होना असम्भव है इसी कारण जीवात्मा ही भाषणादि व्यवहार करता है यह कहना भी युक्त ही है और वाणी बोलती चक्षु देखता कान सुनता है इत्यादि व्यवहार भी तत्त्व के गुणों की प्रधानविवक्षा में अयुक्त नहीं है। जो वस्तु वा कार्य दो से सम्बन्ध रखता एक २ से नहीं भी होता उन में से एक २ के साथ भी व्यवहार किया जाना वा कर सकना युक्त माना जाता है। जैसे देवदत्त का पुत्र और देवदत्ता स्त्री का पुत्र वस्तुतः तो दो का ही होता है एक का नहीं। इसी प्रकार यहाँ भी अग्नि देवता के कार्य वा कारण वाणी में भाषण कहा है अग्नि सब देवताओं का मूल है जैसे वर्णों अक्षरों का मूल अकार है [आ० सि० भा० ८ अं० ७ में इस विषय का वर्णन देखो] उसको प्रधानता से भक्षक मानने पर अन्य तत्त्वों का भक्षक होना गौण होता ही है तिस से अन्नभक्षण का स्थान माँगना सब देवताओं में सम्भव है। तथा साधनों की सुलभता होने से मनुष्य का देह भूख प्यास के स्थान प्राणि जातियों में प्रधान है यह जताया गया है किन्तु पश्वादि में अग्न्यादि देवता वा भक्षणादि क्रियाओं का निषेध करना अभिप्राय नहीं। गो अश्व का ग्रहण उपलक्षणार्थ है। और ईश्वर के साथ देवताओं का बोलना कल्पना मात्र है तिस से देवता कहने से हुए और ईश्वर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ने देवताओं की आवश्यकता के अनुकूल उत्तर सा दिया। अथवा यह सब मानस विचार में चेष्टा मात्र होना है ॥३॥

अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशद्वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशदादित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशद्दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशन्नोषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशंश्चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशन् मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदापो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन् ॥४॥

अ०—यथा घटपटादयो विकारा भूमेः प्रादुर्भूताः पुनर्विनाशकाले भूमिमेवाविशन्ति ते भूमितो भवन्ति भूमिश्च तेभ्य इति परस्परं कार्यकारणभावो दृश्यत एवमत्रापि वाचोऽग्निः प्रादुर्भूयत इत्युक्तं पुनश्च तद्रूपो भूत्वा वाचः स्थानं मुखं प्रविशति। समवायिकारणं कार्यान्न कदापि वियुज्यते सूत्रादिकं पटादौ सर्वदा समवैति। एवं वायुप्राणनासिकादिष्वपि योज्यम् ॥

भा०—अत्रापि ता एवाष्टौ देवताः प्रतिलोमेन कार्यकारिण्यः प्रदर्शिताः। यथा पृथिव्याः सारो बीजं भूमित एवोत्पन्नं तस्माच्च वृक्षो जायते स वृक्षो बीजसारभूतो विनाशकाले पृथिवीमेवाविशति। एवमत्र मुखं भूमिस्थानीयं तस्मादेव छिद्ररूपाद् बीजभूता वागग्निरुत्पद्यते—"मुखादग्निरजायत" इति वेदवचनात् तस्माच्च बीजभूताद्वागग्नितो वृक्षरूपः प्रसि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ङ्गोऽग्निरुत्पन्नस्तदेव मुखाकारं छिद्रं प्रविश्य तिष्ठति। तस्मादेवान्यशरीरावयवापेक्षया मुखे प्रधानाङ्गे सत्त्वगुणप्रधानस्याग्नेः स्थानान्मुखमुत्तमाङ्गं तस्मिन्नेवोत्तमकक्षास्थब्राह्मणत्वस्य स्थितिर्वागिन्द्रियसाध्यानि च वेदाध्ययनाध्यापनादिकर्माणि मुखसाध्यान्येव। एवं मुखमग्निर्ब्राह्मणो वागिन्द्रियं भूरिति व्याहृतिरकार इत्यादयः प्रथमकक्षास्थाः। वागादीन्द्रियशक्तयः स्थावरादिष्वपि तारतम्येन सन्त्येव मनुष्यादयः स्थप्राणिषु यथा सर्वेन्द्रियादिशक्तीनामुत्तरोत्तरं मन्दतोपलभ्यते तथैवतत्रतत्र गुणभावेनाग्न्यादिदेवतानामपि न्यूना स्थितिः प्रवेशो वा। एवमग्न्यादीनां वागादीनां च सर्वव्याप्तत्वेऽपि व्यपदेशस्य प्रधानपरतया स्थावरादिषु केषुचिद्वागाद्यव्यपदेशो न दोषावहः। अग्न्यादिपदैरत्र तेषां प्रधानः शुद्धांशएव ग्राह्यः सर्वव्याप्तस्याग्न्यादेः सर्वस्य प्रवेशासम्भवात्। यथा पृथिव्यामोषधिवनस्पतयः प्ररोहन्ति तथैव पार्थिवमानुषादिशरीरे लोमानि प्ररोहन्ति रोमकूपैः सूक्ष्मैश्छिद्रैर्यथा देहाद्वायुर्निस्सरति तथौषध्यादिमार्गेण भूम्यन्तःस्थो वायुर्बहिरायाति। यत्र वायोर्गमनागमने न सम्भवतो न तत्र वृक्षादयः प्ररोहन्ति तस्माद्धातप्रधाना स्थावराणां स्थितिः। तत ओषधिवनस्पतिपदेन वायोरेव कश्चिद्भेदो विवक्षितः॥ ४॥

भाषार्थः—(अग्निर्वाग्भूत्वा मुखं प्राविशत्) अग्नि वाणी रूप होकर मुख में प्रविष्ट हुआ (अर्थात् जैसे घटपटादि विकार पदार्थ भूमि से उत्पन्न होकर फिर विनाश के समय भूमिमें ही प्रवेश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते और विद्यमान दशामें भी अपने कारण पृथिवी के आश्रय से ही रहते हैं इस प्रकार वे घटादि भूमि से होते और भूमि घटादि से होतीं ऐसा परस्पर कार्य कारणभाव दोनोंमें रहता है इसी प्रकार यहाँ भी वाणी से अग्नि का उत्पन्न होना पूर्व कहा है वही अग्नि फिर भी वाणीरूप होकर वाणी के स्थान मुख में प्रवेश करता है। जैसे घटादि तथा मनुष्यादि का देह मिट्टी रूप हो कर मिट्टी के स्थान पृथिवी में प्रवेश करता है अर्थात् समवायिकारण कार्य से कभी अलग नहीं होता) (वायुः प्राणो भूत्वा नासिके प्राविशत्) वायु प्राण रूप होकर नासिका में घुसा (आदित्यश्चक्षुर्भूत्वाऽक्षिणी प्राविशत्) आदित्य चक्षु नाम दिखाने की शक्तिरूप होकर आँखों में घुसा (दिशः श्रोत्रं भूत्वा कर्णौ प्राविशत्) दिशा श्रोत्र-श्रवण शक्ति रूप हो कानों में घुसी (औषधिवनस्पतयो लोमानि भूत्वा त्वचं प्राविशन्) ओषधि वनस्पति रोमरूप होकर त्वचा में घुसे (चन्द्रमा मनो भूत्वा हृदयं प्राविशत्) चन्द्रमा मनरूप हो कर हृदय में घुसा (मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशत्) मृत्यु अपान हो कर नाभि में घुसा [इसी कारण अपान के बिगड़े बिना मृत्यु नहीं होती] (आपो रेतो भूत्वा शिश्नं प्राविशन्) जल वीर्य-रूप वा मूत्ररूप हो कर शिश्न नाम उपस्थेन्द्रिय में घुसे।

भा०—यहाँ भी उक्त आठों देवता ही प्रतिलोम रूप से कार्य करनेवाले मनुष्य देह में दिखाये हैं। (चन्द्रमा मनसो जातः०) इत्यादि यजुर्वेद अ० ३१ के मन्त्रों में यही विषय दिखाया है। जैसे पृथिवी का सार बीज भूमि से ही उत्पन्न होता और उस बीज से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृक्ष होता वह बीज जिस में साररूप है ऐसा वृक्ष विनष्ट होने के समय मट्टी रूप होकर पृथिवी में समाजाता वैसे यहाँ मुख भूमि-स्थानी है उसी छिद्ररूप मुख से वाणी नामक अग्नि शक्ति उत्पन्न होती (मुखादग्निरजायत) इस मन्त्र में यही बात कही है उस बीजरूप वाणी नामक अग्नि से वृक्षरूप प्रसिद्ध अग्नि उत्पन्न हुआ वह उसी मुखरूप छिद्र में घुस कर रहता है। इसी से अन्य शरीर के अवयवों की अपेक्षा प्रधानाङ्ग मुखमें सत्त्वगुण की प्रधानतावाले अग्नि का स्थान होने से मुखही सबसे उत्तम अङ्ग है। उसीमें उत्तम कक्षावाले ब्राह्मणपन की स्थिति है और वाणी इन्द्रिय से सिद्ध होनेवाले वेद के पढ़ने पढ़ाने आदि काम भी मुख से ही सिद्ध होते हैं। इस प्रकार मुख अग्नि ब्राह्मण वाणी इन्द्रिय भूः यह व्याहृति ओ३म् शब्द का प्रथमाक्षर इत्यादि सब प्रथम कक्षा में हैं। वाणी आदि इन्द्रियों की शक्ति स्थावरादि में भी तारतम्य से रहती ही है। मनुष्य से नीचे पश्वादि प्राणियों में जैसे सब इन्द्रिय शक्तियों की मन्दता प्रसिद्ध दीखती है। वैसे ही उन २ निकृष्ट जातियों में गौणभाव से अग्न्यादि देवताओं की न्यून२ वा निकृष्ट२ शक्ति वा स्थिति रहती है। ऐसे अग्नि आदि तथा वाणीआदि के सर्वव्याप्त होने पर भी प्रधानतापरक शब्द का व्यवहार होनेसे किन्हीं स्थावरादि में वाणी आदि वा चक्षु आदि इन्द्रियों का व्यवहार न होना दोषकारी नहीं। और अग्न्यादि पदों से उन २ देवताओं का प्रधान शुद्धांश ही ग्रहण करना इष्ट है क्योंकि सर्वव्याप्त सब प्रकार अग्नि आदि का एक २ मुखादि में ही प्रवेश होवा असं-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्भव है। जैसे पृथिवी में ओषधि वनस्पति आदि जमते वैसे पार्थिव मनुष्यादि के शरीर में लोम-रोम निकलते हैं। सूक्ष्म छिद्र रूप रोमकूपों द्वारा जैसे वायु वा स्वेद निकलता है वैसे ओषध्यादि के द्वारा भूमि के भीतर का वायु वा जल बाहर आता है और जहां वायु का जाना आना नहीं हो सकता वहां वृक्षादि नहीं उगते इस से वायु ही स्थावरों की स्थिति का प्रधान कारण है इसी लिये यहां ओषधि बनस्पति पद से वायु का कोई भेद लेना विवक्षित है॥ ४॥

तमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामभिप्रजानीहीति । स ते अब्रवीदेतास्वेव वां देवतास्वाभजाम्येतासु भागिन्यौ करोमीति । तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः ॥ ५ ॥

इति द्वितीयः खण्डः ॥

तमीश्वरमशनायापिपासे अब्रूतामावाभ्यामायतनमभिप्रजानीहि विधत्स्व यत्र स्थिते स्वकार्यं साधयावः। स ईश्वरस्ते अब्रवीदेतास्वेवाग्न्यादिदेवतास्वाभजामि धर्मरूपत्वाद्युवयोर्न हि धर्मिणमन्तरेण क्वापि स्थितिर्युक्ता तस्मादास्वेव देवतासु संयोजयामीति। एतासु भागिन्यौ करोमीति। तस्माद्युयस्यै कस्यै च देवतायै हविर्हविष्यं गृह्यते दीयते तत्र तस्य तस्य भागस्याशनायापिपासे एव भागादायिन्यौ भवतः ॥

भा०—परमेश्वरेण सर्गारम्भे यस्मिन् वस्तुनि यादृशी शक्तिर्निर्मिता तद्वस्तु तादृशमेव प्रलयावधि स्वकार्यं साध-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यति। कारणरूपेष्वग्न्यादितत्त्वेषुच क्षुत्पिपासोत्पादनसामर्थ्यं रक्षितं तथैवाग्न्यादिदेवतामये शरीरेऽपि क्षुत्पिपासाप्रवृत्तिरुपलभ्यते। तारतम्यांशकल्पनया सर्वं हविष्यं पञ्चभूतांशैर्मिश्रितमस्ति। अग्न्यादिदेवतासु च समवायिसम्बन्धेन क्षुत्पिपासारूपा शक्तिः सर्गकालादेव संयोजिता तस्मादेव होमकाले यस्यै यस्यै देवतायै हविर्दीयते तस्यास्तस्याः क्षुत्पिपासाशक्तिरेव तत्तद्देवताभागं तस्मात्पाञ्चभौतिकहविष्यादादत्ते। क्षुत्पिपासयोरग्न्यादिभिः स्वाभाविकः प्रदीपप्रकाशयोरिव सम्बन्धस्तस्य प्रदर्शनार्थं कथनमिदम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(तमशनायापिपासे अब्रूताम्) उस ईश्वर से भूख प्यास दोनों बोली (आवाभ्यामभिप्रजानीहीति) कि हमारे लिये कोई स्थान बताइये जहाँ ठहर कर हम अपना काम करें (स ते अब्रवीदेतास्वेव देवतास्वाभजामि, एतासु भागिन्यौ वां करोमीति) उस ईश्वर ने उन दोनों से कहा कि इन्हीं उक्त अग्न्यादि देवताओं में तुमको संमिलित करता हूँ अर्थात् तुम दोनों को अग्न्यादि में भाग लेनेवाली करता हूँ (तस्माद्यस्यै कस्यै च देवतायै हविर्गृह्यते भागिन्यावेवास्यामशनायापिपासे भवतः) ईश्वर ने अग्न्यादि में खाने पीने की शक्ति सर्गारम्भ से ही नियत की है इसी से जिस किसी देवता को जो कुछ हविष्य होमादि द्वारा दिया जाता है वहां उस २ अग्न्यादि देवता में भूख प्यास ही उस २ भाग को लेती हैं ॥

भा०—परमेश्वर ने सर्गारम्भ से जिस वस्तु में जैसी शक्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वा जैसा गुण रक्खा वह वस्तु वैसा ही अपना २ कार्य प्रलय पर्यन्त करती है। कारणरूप अग्न्यादि तत्त्वों में भूख प्यास का सामर्थ्य रक्खा वैसे ही अग्न्यादि देवताओं से बने मनुष्यादि के शरीर में भी भूख प्यास की प्रवृत्ति दीखती है। न्यूनाधिक अंशों की कल्पना द्वारा सब हविष्य वस्तु पाँचों पृथिव्यादि भूतांशों के मेल से बने हैं और अग्न्यादि देवताओं में नित्य सम्बन्ध से भूख प्यास रूपशक्ति सृष्टि के आरम्भ से ही संयुक्त की है। इसी लिये होमादि के समय जिस २ देवता के लिये जो २ हविष्य दिया जाता है उस २ देवता की क्षुत्पिपासारूप शक्ति ही अपने अपने देवता के भाग को उस पञ्चभूतमय हविष्य से आकर्षित करके ले लेती है। अर्थात् प्रकाश का दीपक के साथ जैसे नित्य सम्बन्ध है वैसे भूख प्यास का अग्न्यादि के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध है इसी आशय को दिखाने के लिये यह कथन है ॥४॥

स ईक्षतेमे नु लोकाश्च लोकपालाश्चान्नमेभ्यः सृजा-इति ॥१॥ सोऽपोऽभ्यतपत्ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्तिरजायत। यो वै सा मूर्तिरजायतान्नं वै तत् ॥ २ ॥ तदेतदभिसृष्टं नदत्पराङत्यजिघांसत्तद्वाचा जिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम्। स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ३ ॥ तत्प्राणेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुम्। स यद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥४॥ तच्चक्षुषाऽ-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतुम्। स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद्दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ५ ॥ तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुम्। स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ६ ॥ तत्त्वचाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुम्। स यद्धैनत्त्वचाग्रहैष्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ७ ॥ तन्मनसाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोन्मनसा गृहीतुम्। स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद्ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ८ ॥ तच्छिश्नेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छिश्नेन ग्रहीतुम्। स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत् ॥ ९ ॥ तदपानेनाजिघृक्षत्तदावयत्। स एषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः ॥ १० ॥

अ०—स ईश्वर ईक्षत—इमे नु लोकाश्च लोकपालाश्च मया सृष्टाः क्षुत्पिपासाभ्यां च संयोजिताः क्षुत्पिपासापूर्त्तये भक्ष्यमेभ्यो नास्ति न च भक्ष्यान्नमन्तरेण भक्षकः स्थातुमर्हति तस्मादहमन्नमेभ्यः सृजै—इति। सोऽन्नं सिसृक्षुरपः स्त्रीशक्तिमनुलक्ष्याभ्यतपत् पुंस्त्वशक्तिरूपबीजरूप्याप्तत्त्वप्रधानस्त्रीशक्त्या सह संयोजनायालोचितवान् "अप एव ससर्जादौ तासु बीजमवासृजत्" इति मनुनाप्ययमेवाशयो दर्शितः। ताभ्योऽभितप्ताभ्यः प्रविष्टेक्षणाभ्योऽद्भ्य उपादानरूपाभ्यो मूर्त्तिः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिव्यजायत "अद्भ्यः पृथिवीति" तैत्तिरीयवचनात्। या वै सा मूर्त्तिरन्नं वै तत्। अन्नं पृथिवीति ब्राह्मणादिग्रन्थेषु स्पष्टमेव दृश्यते। "पृथिवी वा अन्नम्" इति तैत्तिरीयोपनिषद्भृगुवल्ल्याम्। तदेतदन्नं भक्षकाभिमुखं सृष्टं स्वभक्षणभयेनेव नदत्सद् भक्षकमतिक्रम्य पराङ्त्यजिघांसदन्यत्र गन्तुमैच्छत्। तदन्नं स भक्षकः पुरुषो वाचाऽजिघृक्षद्ग्रहीतुमैच्छत्तदन्नं वाचा ग्रहीतुं नाशक्नोत्। यद्यदिह प्रसिद्धावेनदन्नं भक्षक[illegible]ऽग्रहैष्यद् ग्रहीतुं भोक्तुं शक्नुयात्तदाऽभिव्याहृत्यैवान्नमिति वाचोच्चार्यैवान्नस्यतृप्तो भवेत्। नच वाचा ग्रहीतुं शक्नोति तस्मादेवान्नमित्युक्त्वापि नक्षन्निवर्त्तते। एवं प्राणादिष्वपि [illegible]यम् प्राणादिभिरपि तदन्नं भोक्तुमशक्नुवन्नपानेन मुख[illegible]दधस्ताद्गमनशीलेन वायुना तदन्नमजिघृक्षत्तदावयद् गृहीतवान् खादितवान्। सएषोऽन्नस्य ग्रहो ग्राहको वायुरेष योऽयं वाऽऽयुर्विकलितायुरनिश्चितायुः प्राणः सोऽन्नायुरन्नेन भक्ष्येण जीवनमायुस्थितिरस्येति तादृश एव प्रत्येतव्यः॥

भा०—पार्थिवमेव सर्वं भक्ष्यं प्राधान्येन दृश्यते। वायुजले अपि मनुष्यादिप्राणिनां भक्ष्ये जीवनहेतू प्रतीयेते तयोस्तु पार्थिवाणुसंयोगादेव जीवनहेतुत्वम्। लोके यथा भक्षकाग्निसन्निधौ पात्रस्थमग्नेर्भक्ष्यं जलं नदति वह्निना तप्तं सच्छब्दायते वाष्पादिरूपेण पराङ्गन्तुमिच्छतीवैवं सर्वमेव भक्ष्यं भक्षकप्रतापेन भयेनेव व्याकुलो भवति। अम्भोदाश्च विद्युद्ग-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येनेव गर्जन्ति परिधावन्ति च तथैव मार्जालीयादेर्भक्षकस्य भक्ष्यो मूषिकादिरपि नदति पराङ् धावति च जडे चेतने च सर्वत्रैव व्याकुलीभावस्य कारणं भक्षकस्य प्राबल्यमेवावगन्तव्यम् । सामान्येन तु पुरुषो भोक्ता प्रकृतिः स्त्रीभोग्या । सर्वत्रैव यद्भोग्यं तदपि कस्यचिदन्यस्य भोक्तृ यश्च भोक्ता सोऽप्यन्यस्य भोग्यमिति सर्वं सर्वात्मकम् । यस्मात्सर्गारम्भे भोग्यभोक्तृतत्साधनविभागावसरे न कोऽपि वागादिनेन्द्रियेणान्नमुपादातुमलमासीत्तस्मादेव सम्प्रत्यनागतकाले च न कोऽप्यन्येन्द्रियेणान्नमादातुं शक्नोति शक्ष्यति वा । पृथिवी मर इति, मृत्युरपानो भूत्वा नाभिं प्राविशदिति च पूर्वमुक्तम् । एवं चापानेन पार्थिवस्य सर्वस्यान्नस्य विशिष्टः सम्बन्धः । यथा तेजःकार्यं तैजसं चक्षुस्तस्मादेव तेजसः प्रधानं रूपगुणमेवादत्ते । एवं च "नाभिर्निरभिद्यत नाभ्या अपानोऽपानान्मृत्युः" इति पूर्वमुक्तम् । मृत्युर्मरः पृथिवीचेत्येकार्थाः शब्दा इति कृत्वाऽपानेनैव पार्थिवमन्नं ग्रहीतुं युक्तमासीत् । "अद्यतेऽत्ति च भूतानि तस्मादन्नं तदुच्यते" इति तैत्तिरीयोपनिषद्युक्तम् । पृथिव्येव बहुधा विकारभूता मनुष्यादिप्राणिभिरद्यते सैव मनुष्यादीन्सर्वानेव स्थावरजङ्गमदेहान्सर्वदाऽत्ति खादति स्वस्वरूपे प्रलीनान्करोति तस्मादनयाद्द्यापि व्युत्पत्त्या पृथिव्येवान्नपदवाच्येत्यवसेयम् । अत्र च विसर्जनसाहचर्याच्छिश्नपदेन पायविन्द्रियमपि ग्राह्यम् । पायुश्च विसर्जयितव्यं चेत्यन्यत्रोपनिषदि विसर्जनमेव विषयस्तस्य प्रदर्शितः । अपा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नपदेन च पार्थिवांशस्य कारणभूतस्य देहस्थस्य मरस्यैव ग्रहणं बोध्यम्। तेन पृथिव्येव पृथिवीमत्ति—अन्नेनैवान्नमद्यते "अन्नमन्ने प्रतिष्ठितमि'ति" तैत्तिरीयोपनिषद्युक्तम्। मनुष्यादयः स्थावरजङ्गमाः पृथिव्यन्नं खादित्वा जीवन्ति प्रतितिष्ठन्ति। पृथिव्यन्नं च चराचरशरीराणि खादत्प्रतितिष्ठतीति तदर्थो बोध्यः। तस्मादन्नमेवान्नं खादति-अन्नेनैवान्नं स्थीयत इति सर्वत्रैकएवाशयः सर्वं सर्वात्मकमिति ॥ १० ॥

भाषार्थः—(म ईक्षते मे नु लोकाश्च लोकपालाश्च) उस ईश्वरने फिर विचार किया कि पूर्वोक्त प्रकार से ये लोक अम्भस् आदि तथा अग्नि आदि लोकपाल तो मैंने रचे और इनको क्षुधा पिपासा से भी संयुक्त किया परन्तु खाने पीने के लिये इनको अन्न नहीं है और भक्ष्य के विना कोई भक्षक ठहर नहीं सकता इससे मैं (अन्नमेभ्यः सृजा इति) इन लोकपालों के लिये अन्न रचूं (सोऽपोऽभ्यतपत्) उस ईश्वरने अन्न रचने की इच्छा से अप्तत्त्व प्रधान प्रकृतिस्थ स्त्रीरूप भोग्य शक्तिकी ओर ध्यान देकर विचार किया अर्थात् भोग्य स्त्रीशक्ति के साथ पुंस्त्व शक्तिरूप बीज का संयोग करने के लिये आलोचन किया "पहिले अप् रचे और उन में बीज डाला" इस कथन से मनुजी ने भी यही आशय दिखाया है (ताभ्योऽभितप्ताभ्यो मूर्त्तिरजायत) उस ईश्वरीय ईक्षण से युक्त उपादान कारणरूप अप्तत्त्व से मूर्त्ति नाम कठिन पृथिवी उत्पन्न हुई "अप् से पृथिवी होती" यह तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है। सब शास्त्रों का अविरुद्ध तात्पर्य यही है कि सूक्ष्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अप्तत्त्व से पार्थिव तत्त्व और स्थूल अप्तत्त्व से स्थूल पृथिवी तत्त्व सदा ही उत्पन्न प्रकट वा पुष्ट होता है (या वै सा मूर्त्तिरजायतान्नं वै तत्) और जो ही वह कठिन पृथिवी उत्पन्न हुई वही सब प्राणियों का अन्न हुआ। अन्न नाम पृथिवी का है यह लेख ब्राह्मण ग्रन्थों के अनेक स्थलों में मिलता तथा तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली में स्पष्ट लिखा है कि "पृथिवी ही अन्न है" अर्थात् मनुष्यादि प्राणीमात्र के खाद्य सब पदार्थ पार्थिव ही हैं (तदेतदभिसृष्टं नदत्पराङ्त्यजिघांसत्) अग्नि आदि लोकपाल देवताओं के समीप वा समक्ष में रचे गये अपने खाये जाने के भय से नाद—शब्द करते हुए अन्नने चेतन किसी देहधारी के समान भक्षक का उल्लंघन कर भक्षक से अन्यत्र जाने की चेष्टा वा इच्छा किसी (तद्वाचाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोद्वाचा ग्रहीतुम्) उस अन्न को अग्न्यादि भक्षक लोकपाल देवताओं के संघट्ट से बने शरीरी पुरुष ने वाक् इन्द्रिय से ग्रहण करना चाहा तो वाणी से उसका ग्रहण नहीं कर सका (स यद्धैनद्वाचाऽग्रहैष्यदभिव्याहृत्यैवान्नमत्रप्स्यत्) उस अन्न को वह भक्षक पुरुष यदि वाणी से ग्रहण कर लेता तो वाणी से अन्न शब्द का उच्चारण करके ही तृप्त हो जाया करता भूख मिट जाती किन्तु वाक् इन्द्रिय से अन्न का ग्रहण नहीं होता तिसी कारण अन्न शब्द के बोलने पर भी क्षुधा की निवृत्ति नहीं होती इसी प्रकार (तत्प्राणेनाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्प्राणेन ग्रहीतुम्) उस अन्न को पुरुष ने प्राण से ग्रहण करना चाहा परन्तु प्राण से भी उसका ग्रहण नहीं कर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सका (सयद्धैनत्प्राणेनाग्रहैष्यदभिप्राण्य हैवान्नमत्रप्स्यत्) वह पुरुष यदि इस अन्न को प्राण से ग्रहण कर पाता तो प्राण की चेष्टा श्वास के गमनागमन द्वारा अन्न को सूघ कर ही तृप्त हो जाता (तच्चक्षुषाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्चक्षुषा ग्रहीतुम्) फिर उस अन्न को चक्षु से ग्रहण करना चाहा पर उसका चक्षु से भी ग्रहण नहीं कर सका (स यद्धैनच्चक्षुषाऽग्रहैष्यद् दृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्) वह पुरुष यदि इस अन्न का चक्षु से ग्रहण कर पाता तो अन्न को देख कर ही तृप्त हो जाया करता (तच्छ्रोत्रेणाजिघृक्षत्तन्नाशक्नोच्छ्रोत्रेण ग्रहीतुम्) फिर उस अन्न को कान इन्द्रिय से पुरुष ने ग्रहण करना चाहा तो उसका श्रोत्र से भी ग्रहण नहीं कर सका (स यद्धैनच्छ्रोत्रेणाग्रहैष्यच्छ्रुत्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्) वह पुरुष यदि इस अन्न का श्रोत्र से ग्रहण कर सकता तो अन्न का नाम सुन कर ही तृप्त हो जाया करता (तत्त्वचाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोत्त्वचा ग्रहीतुम्) फिर उस अन्न को पुरुष ने त्वच् इन्द्रिय से ग्रहण करना चाहा तो उसका त्वचा से भी ग्रहण नहीं कर सका (स यद्धैनत्त्वचाऽग्रहैष्यत्स्पृष्ट्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्) वह पुरुष यदि इस अन्न का त्वचा से ग्रहण कर पाता तो अन्न का स्पर्श करके ही तृप्त हो जाया करता (तन्मनसाऽजिघृक्षत्तन्नाशक्नोन्मनसा ग्रहीतुम्) फिर उस अन्न का पुरुष ने मन इन्द्रिय से ग्रहण करना चाहा तो मन से भी उसका ग्रहण नहीं कर सका (स यद्धैनन्मनसाऽग्रहैष्यद् ध्यात्वा हैवान्नमत्रप्स्यत्) वह पुरुष यदि इस अन्न का मन से ग्रहण कर पाता तो अन्न का ध्यान करके ही तृप्त हो जाया करता (तच्छिश्नेनाजिघृक्षत्तन्नाश-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कनोच्छिश्नेन ग्रहीतुम्) फिर उस अन्न को पुरुष ने शिश्न इन्द्रिय से ग्रहण करना चाहा तो शिश्न से भी ग्रहण न कर सका (स यद्धैनच्छिश्नेनाग्रहैष्यद्विसृज्य हैवान्नमत्रप्स्यत्) वह पुरुष यदि इस अन्न का शिश्न नाम उपस्थ और गुदा से ग्रहण कर पाता तो मल मूत्रादि के त्यागरूप उस २ इन्द्रिय काम के करने से ही तृप्त हो जाता भूख मिट जाती (तदपानेनाजिघृक्षत्तदावयत् स एषोऽन्नस्य ग्रहो यद्वायुरन्नायुर्वा एष यद्वायुः) फिर उस अन्न को पुरुष ने मुखद्वारा भीतर को घुसनेवाले अपान नामक वायु से ग्रहण करना अर्थात् अपने भीतर लेना चाहा तब उसको ग्रहण कर पाया इससे वह अपान अन्न का ग्रहण करनेवाला है जिस को वायु कहते हैं। वायु और अग्नि का संयोग विशेष ही प्रत्येक शरीर में जीवन है (वा—आयुः) जिसकी आयु नाम जीवन वा स्थिति रहने में विकल्प वा अनिश्चय है (कि इतने दिन जीवन रहेगा ऐसा निश्चय नहीं हो सकता) ऐसा यह प्राणादि नामक वायु अन्न से आयु युक्त हुआ जीवित रहनेवाला है अन्न के विना प्राण नहीं रह सकता ॥

भा०—मुख्यकर सब भक्ष्य पदार्थ पृथिवी का ही विकार दीखता है। जो वायु और जल भी मनुष्यादि प्राणियों के भक्ष्य जीवन के हेतु प्रतीत होते हैं वे पार्थिव अणुओं के संयोग से ही जीवन के हेतु हैं। लोक में जैसे भक्षक अग्नि के समीप में बटलोई आदि पात्र में धरा अग्निका भक्ष्य जल दाह पहुँचने से बोलता और भाफ़ आदि रूप होकर अग्नि से भिन्न देश को उछलता भागता है

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार सभी भक्ष्य वस्तु भक्षक के प्रताप से भयभीत हुआ सा व्याकुल होता है। और विद्युत् तथा वायु के भय से बादल गर्जते तथा इधर उधर को भागते हैं। ऐसे ही बिल्ली बिलाव आदि भक्षक जीवों के भक्ष्य मूसे आदि भक्षक को देखकर उससे डरते तथा दूसरी ओर को भागते हैं। जड़ चेतन सभी पदार्थों में भक्ष्य के व्याकुल होने का कारण भक्षक की प्रबलता है। सामान्य कर पुरुष भोक्ता और स्त्रीरूप प्रकृति भोग्य होती है परन्तु जो भोग्य होता वही किसी अन्य का भोक्ता हो जाता तथा जो भोक्ता है सो भी अन्य किसी का भोग्य है। अन्न ओषधि आदि पृथिवी को खानेवाला और मनुष्यों का खाद्य है इस प्रकार सब सर्वरूप होता है। जिस कारण सृष्टि के आरम्भ में जब कि भोग्य भोक्ता तथा साधनों का विभाग हुआ तब कोई भी वाक् आदि इन्द्रिय से अन्न का भक्षण नहीं कर सकता था। इसी कारण अब वर्त्तमान काल में तथा भविष्यत् में भी कोई अन्य इन्द्रिय से अन्न का ग्रहण नहीं कर सकता न कर सकेगा। पृथिवी का नाम मर है। मृत्यु अपानरूप होकर नाभि में घुसा यह पूर्व कह चुके हैं इस प्रकार अपान के साथ सब पार्थिव अन्न का विशेष सम्बन्ध है। जैसे तेज का कार्य तैजस चक्षु है इसी से वह चक्षु आग्नेय तेज के मुख्य गुणरूप का ग्रहण करता वैसे ही "नाभी से अपान अपान से मृत्यु हुआ" यह पूर्व कहा है। मृत्यु, मर, पृथिवी ये तीनों शब्द एकार्थ हैं ऐसा मान कर अपान से ही पार्थिव अन्न का ग्रहण हो सकना उचित है। तैत्तिरीयोपनिषद् भृगुवल्ली में लिखा है कि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"जो खाया जाता और जो प्राणियों के शरीरों को खा जाता है इससे वह अन्न कहाता है" सो विचार के देखें तो मनुष्यादि प्राणियों से बहुत विकाररूप हुई पृथिवी ही खायी जाती और वही पृथिवी सब मनुष्यादि चराचर शरीरों को सब समय खाती अपने में लीन करती रहती है। इस कारण इस दोनों प्रकार की व्युत्पत्ति से सिद्ध हुआ कि पृथिवी ही अन्न पद वाच्य है। यहां विसर्जन के सम्बन्ध से शिश्न पद से पायु इन्द्रिय का भी ग्रहण करना उचित प्रतीत होता है। पायु नाम गुदेन्द्रिय का विषय केवल त्याग करना ही प्रधान माना गया है। और अपान पद से कारण भूत पार्थिवांश सहित मर नामक वायु का ग्रहण जानो इससे पृथिवी को खाती वा अन्न से-ही अन्न खाया जाता है "अन्न में अन्न प्रतिष्ठित—ठहरा हुआ है" यह तैत्तिरीयोपनिषद् में लिखा है। चराचर मनुष्यादि प्राणी पृथिवी अन्न को खाकर जीवित वा स्थित रहते और पृथिवी रूप अन्न भी चराचर प्राणी आदि शरीरों को खाता हुआ ठहरता है। इससे अन्न ही अन्न को खाता और अन्न से ही अन्न ठहरता यह सब ग्रन्थों में एक ही आशय है कि सब वस्तु सर्वरूप है॥ १०॥

स ईक्षत कथंन्विदं मदृतेस्यादिति स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति। स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं यदि प्राणे-नाभिप्राणितं यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति ॥ ११ ॥ सएतमेव सीमानं विदार्यैतया द्वारा प्रापद्यत। सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनं तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्ना अयमावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति ॥ १२ ॥ स जातो भूतान्यभिव्यैक्षत् किमिहान्यं वावदिषदिति। स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यदिदमदर्शमहो ३ ॥ १३ ॥ तस्मादिदन्द्रो नामेदन्द्रो ह्वै नाम तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण। परोक्षप्रिया इव हि देवाः। परोक्षप्रिया इव हि देवाः॥१४॥ इति तृतीयः खण्डः॥ इत्यैतरेये द्वितीयारण्यके चतुर्थोऽध्यायः॥ उपनिषत्सु प्रथमोऽध्यायः समाप्तः॥

अ०—स ईक्षत कथं नु—इदं लोकलोकपालान्नसंघातं शरीरं मदृते मया जीवात्मना स्वामिना विना कार्यसाधकं स्यान्न हि किमपि स्वं स्वामिनमन्तरेण सम्यक्कार्यसाधकं सम्भवति। तस्माद्भोगस्वामिना मया जीवात्मना लोकलोकपालान्नसंघातशरीरे प्रवेष्टव्यमित्यालोच्य पुनरीक्षणं कृतवान् द्वयोरुपर्यधोमार्गयोर्मध्यात्केन कतरेण मार्गेण प्रपद्यै प्रविशेयमित्यालोचितवान्। कथं न्विदमिति कथयता जीवात्मप्रवेशस्य देहेन्द्रियादिसाध्यकार्यसिद्धिरूपं प्रयोजनं प्रदर्शितम्। स पुनरीक्षतालोचितवान्—यदि मामन्तरेण वाचाऽभिव्याहरणं शब्दोच्चारणं स्यादेवं यदि प्राणेनाभिप्राणितं यदि चक्षुषा दृष्टं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टं कर्म सिध्येदथ कोऽहं किमर्थं वा भवेयम्। वागादीनि च साधनानि न च कर्त्तारमन्तरेण किमपि कर्त्तुं शक्नुवन्ति न हि वागादिसाधनैरेव केवलैः कार्यं सिद्धयति। येन विना वागादिसाधनानि न किमपि स्वव्यापारं साधयन्ति तस्माद्यो वागादिप्रेरकः स जीव इति जीवस्वरूपावधारणपरं कथनमिदमध्यवसेयम्। स एतमेव मूर्द्धसीमानं विदार्य्यैतया द्वारा शरीरं प्रापद्यत प्रविष्टवान्। सा एषा द्वार्विदृतिर्नाम यत एनां विदार्य्यैतया जीवः प्रविशति ततोऽस्या द्वारो विदृतिर्नामास्ति। नन्दन्त्यनेन मार्गेण गत्वा प्रयाणकाले निस्सृतास्तस्मान्नान्दनं द्वारं तत्। मूर्द्धस्थब्रह्माण्डमार्गेण यस्तत्त्वज्ञः प्रयाति स ब्रह्माप्नोति मुक्तो भवतीति। शरीरे प्रविष्टस्य तस्य जीवस्य त्रय आवसथास्त्रिषु स्थानेष्वासमन्ताद्वसति विशेषत आधिक्येन तिष्ठति। अंगुल्या निर्देशेनेवावसथभेदत्रयप्रदर्शनार्थमयमावसथ इति त्रिरभ्यासः। तेष्वेव त्रिषु स्थानेष्वन्यविस्मरणेनासक्तित्रयः स्वप्नास्तानि च चक्षुःकण्ठहृदयानि स्थानानि जीवस्यावसथास्त्रयः। जागरणस्वप्नसुषुप्तयस्तिस्रोऽवस्थाविशेषा एव त्रयः स्वप्नाः। संसारे यज्जागरणं तदपि ज्ञानसम्बद्धजागरणापेक्षया शयनमेवेति मत्वा त्रयः स्वप्ना इत्युक्तम्। स जीवो महतीं निद्रामाप्तः प्रकृतौ लीन इवापि जातः कदाचिदीश्वरानुग्रहात्संस्कारबलेन वा प्रतिबुद्धो जागृतः प्रकटीभूतो भूतानि सर्वप्राणिनो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखासक्तानभिवीक्षते पश्यति ये च सुखिनो वयमिति मन्यन्ते तानपि तथैव पश्यति। तदा च इह जगति स्वतोऽन्यं कमपि पुरुषं किं वावदिषत् किं भृशं वदेन्न किमपीति संसारिण एव धनादिभोगासक्ता जना झटिति झटिति वदन्ति—इदमेवं कृतं मयेदं चैवं करिष्ये। यश्च संसारासारत्वं तत्त्वालोचनपुरस्सरं पश्यति नासौ किमपि वक्तुमिच्छति मौनावलम्बनमेव साधु मन्यते। स एव तत्त्वदर्शी स्थिरमतिः प्रत्यगात्मविचाररतो ब्रह्मनिष्ठो विरक्तः पुरुष एतं परमात्मानं ब्रह्म महान्तं ततमं ततततमं व्याप्ततममनन्तं पुरुषमेव पश्यति न हि स व्याप्तां प्रकृतिं स्त्रियं वा क्वापि पश्यति। इदं ब्रह्माहमदर्शं दृष्टवानस्मि पश्यामि वा अहो ३ इति प्लुतनिर्देशः स्वस्य कृतार्थत्वविज्ञापनार्थः। अहो ३—ज्ञातं मया दुर्विज्ञेयं ब्रह्मेति। यस्मादिदमदर्शमिति साक्षाज्ज्ञात्वा ज्ञानी परितुष्यति तस्माद् ब्रह्मण इदन्द्रइति नाम जातं तेनैवेदन्द्इति हवै प्रसिद्धं नामास्ति तमिदन्द्र सन्तं मध्यदकारलोपेन शास्त्रविद इन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण न तु प्रत्यक्षेण। इदम् अदर्शम्, इति पूर्वपदं पूर्णमुत्तरपदस्य च दृ अइति वर्णत्रयमुपादाय—प्रत्यक्षम्—इदमदर्शमिति वाक्यार्थे—इदन्द्इदि साक्षाज् ज्ञानबोधकं तस्य नामास्ति। लोके च प्रतिष्ठिताचार्यादिजनानुपनाम्ना व्यवहरन्ति साधु जना व्यवहारे मुख्यनामग्रहणं च नैव साधु मन्यन्ते। तस्मादेवात्राप्येकाक्षरं विलोप्य परोक्षार्थकरणाय—इन्द्र इति व्यवहरन्ति। देवा विचारशीलाः सज्जनाः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्वामिनो गुरव आचार्या इत्यादिगौणपरोक्षास्पदनामभिरेवोदाहरणं प्रियं मन्यन्ते। तद्वदत्रापि बोध्यम्। वर्णपरिवर्त्तनेन नामान्तरं जायते निजनामापेक्षया नामान्तरमेव परोक्षम्॥

भा०—अत्रान्ये स ईक्षतेत्यादावीक्षणकर्त्तृकत्वं परमात्मन एव मन्यन्ते तच्च "स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्" इत्यत्र जीवात्मनः कर्त्तृत्वेन ब्रह्मणश्च कर्मत्वेन स्पष्टनिर्देशात्सर्ववाक्येषु तत्पदेन जीवस्यैव ग्रहणमैतरेयग्रन्थकारस्यापीष्टमित्यपरोक्षम्। इत्यतो मूलाद्विरुद्धं तादृशं व्याख्यानमिति सुधीभिश्चिन्त्यम्। जीवात्मनश्चैतन्यस्वरूपस्य सामान्येन शरीरस्य स्थानत्रये स्थितिरस्ति शिरःकण्ठहृदयानि त्रीणि जीवस्थानानि। शिरसि तु चैतन्यस्य विशिष्टा स्थितिस्तत्रैव ज्ञानेन्द्रियाधिक्यदर्शनात्। यथा कस्यचिद्गृहे बहूनि सद्मानि भवन्ति तेषु किमपि प्रधानं तत्र च स प्रायेण तिष्ठत्येवं जीवः शिरसि प्रायेण तिष्ठति। यथा कोऽपि क्वापि यदा पूर्वं प्रवेष्टुमिच्छति तदा स्वस्थित्यै प्रधानमेव बहुसाधनसम्पन्नं स्थानमपेक्षते तथैव श्रोत्रचक्षुरादिज्ञानेन्द्रियसाधनसम्बद्धं शिरएव निवस्तुं सर्गारम्भे प्राधान्येन जीवात्मनोरीकृतम्। तेनैव च शिरोमार्गेण शरीरे प्रवेशस्तेनाङ्गीकृतः। तत्रैव ध्यानेन यादृश आनन्दः सम्भवति न तथाऽन्यत्र। ततममित्यत्र लुप्ततकारैकं पदं ततततममित्यस्य स्थाने ततमपदप्रयोगात्॥ १४॥

भाषार्थः—(स ईक्षत कथंन्विदं मदृते स्यादिति) उस शरीर के स्वामी जीवात्मा ने सोचा कि मेरे विना यह लोक तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोकपालों के समुदायांशों से बना शरीर कैसे रह सकता मेरे विन्न कैसे कार्यसाधक हो सकता है? क्योंकि कोई भी वस्तु अधिष्ठाता स्वामी के विना विचारसाध्य काम नहीं दे सकता। इस कारण भोग के स्वामी मुक्त जीवात्मा को सब तत्त्वों के संघातरूप इस शरीर में प्रवेश करना चाहिये। ऐसा आलोचन करके (स ईक्षत कतरेण प्रपद्या इति) उस ने फिर विचार किया कि ऊपर नीचे दोही प्रधान मार्ग हैं उन में से किस मार्ग से इस देह में प्रवेश करूं। यहां (कथं न्विदम्) इस कथन से जीवात्मा के प्रवेश का देह और इन्द्रियादि से होनेवाले कार्य की सिद्धि रूप प्रयोजन दिखाया है (स ईक्षत यदि वाचाऽभिव्याहृतं यदि प्राणेनाभिप्राणितम्, यदि चक्षुषा दृष्टं यदि श्रोत्रेण श्रुतं यदि त्वचा स्पृष्टं यदि मनसा ध्यातं यद्यपानेनाभ्यपानितं यदि शिश्नेन विसृष्टमथ कोऽहमिति) उस ने फ़िर भी सोचा कि यदि वाणी से शब्द बोला गया यदि प्राण से श्वास चला यदि चक्षु से देखना कानसे सुनना त्वचा से छूना मन से स्मरण करना यदि अपान से खाना आदि और यदि शिश्न से मल मूत्रादि का त्याग हुआ इस प्रकार यदि मेरे विना इन सब इन्द्रियों से उक्त काम सिद्ध हो जावें तो मैं कौन हुआ किस लिये माना जाऊं। अर्थात् वाणी आदि साधन हैं जैसे बनानेवाला चक्कू से लेखनी बनाता चक्कू स्वयं लेखनी नहीं बनालेता, सुई और सूत कपड़े को नही सी लेते कैंची स्वयं नहीं काट लेती वैसे वाणी आदि से काम लेने वाला आत्मा ही उन २ साधनों से बोलना आदि करता है आत्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बिना केवल वाणी आदि कुछ नहीं कर सकते इस से चेतन स्वरूप आत्मा के प्रवेश की आवश्यकता शरीर में दिखायी गयी और वाणी आदि का जो प्रेरक है वह जीव है। इस से जीव का स्वरूप भी वर्णन किया गया (स एतमेव सीमानं विदार्य्यैतया द्वारा प्रापद्यत) वह इसी मूर्द्धारूप ऊपर को सीमा में छेद करके इसी द्वार से शरीर में घुसा वा घुसता है। बाल्यावस्था के समय मूर्द्धा में वह छेद पिलपिलाता स्पष्ट दीखता है। इसी को ब्रह्माण्ड कहते हैं (सैषा विदृतिर्नाम द्वास्तदेतन्नान्दनम्) जिस कारण इस को विदीर्ण करके इस द्वार से जीव प्रवेश करता इस कारण वह यह शिरस्थ ब्रह्माण्डद्वारा विदृति नाम से प्रसिद्ध हुआ। और जो योगी वा ज्ञानी पुरुष मरते समय इसी द्वार से निकलते शरीर के बाहर होते और इस मार्ग से निकलने के कारण मोक्षानन्द को प्राप्त होते परमेश्वर उन को मिल जाता है इस लिये आनन्द की प्राप्ति का हेतु होने से यह द्वार नान्दन कहाता है (तस्य त्रय आवसथास्त्रयः स्वप्नाः) शरीर में प्रविष्ट हुए उस जीव के शरीर में तीन निवासस्थान हैं तीन स्थानों में वह रहता है। और उन्हीं स्थानों में यह जीव भूल में पड़ा सुध बुध न रख कर सोता है वही तीन प्रकार का सोना है (अय-मावसथोऽयमावसथोऽयमावसथ इति) जीव का यह एक निवा-सस्थान यह द्वितीय और यह तृतीय निवासस्थान शरीर में है यह एक अङ्गुली उठा कर दिखाने वा जताने के लिये कथन है कि एक चक्षु द्वितीय कण्ठ और तीसरा हृदय ये तीनों जीव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ठहरने के स्थान हैं इसी लिये तीन बार भिन्न २ शब्द पढ़ा गया। जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति ये तीनों अवस्थाविशेष ही तीन स्वप्न हैं। संसार में जो जागना है वह भी ज्ञान सम्बन्धी जागने की अपेक्षा सोना ही है यह मान कर तीन स्वप्न कहे गये (ब्रह्मोपनिषद् में स्पष्ट लिखा गया है कि—

'नेत्रे जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नं समादिशेत्।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं तद्विलक्षणम्॥'

जागरित अवस्था में नेत्र में, स्वप्न समय कण्ठ में और सुषुप्ति समय हृदय में जीव रहता है। मुख्य कर इन नियत स्थानों में जीव की प्रधानता रहने पर भी गौणता से जीव की शक्ति सब शरीर में व्याप्त रहती है) (स जातो भूतान्यभिव्यैक्षात्) वह जीव संसार की विषय वासना रूप महती निद्रा को प्राप्त बेहाश सोता हुआ प्रकृति में लीन सा हुआ भी कभी ईश्वर की कृपा वा पूर्वजन्म के संस्कारों की प्रबलता से जागता प्रकट सचेत होता (बेहोशी की हालत छोड़कर कभी कोई होश में आता) है तब सब प्राणियों को, बड़े २ धनी और राजाओं को भी दुःखरूप कीचड़ में फँसे देखता जो अपने को सुखी मानते हैं उनको भी वह दुःखी मानता है तब वह (किमिहान्यं वावदिषत्) जगत् में अपने से भिन्न अन्य किसी पुरुष से बड़े हर्ष में भर शीघ्रता के साथ क्या कहे अर्थात् कुछ नहीं। धनादि भोगों में आसक्त संसारी लोग ही हा हा कर हंसते वा शीघ्र २ बोलते हैं कि हमने यह काम ऐसा किया वा करेंगे इत्यादि। जो पुरुष तत्त्व की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बातों का आलोचन करता हुआ संसार की असारता को ध्यान देकर देखता सोचता है वह अधिक कुछ बोलना नहीं चाहता किन्तु प्रायः सब समय में मौन रहना ही अच्छा मानता है। (स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्) वही तत्त्वदर्शी स्थिरबुद्धि भीतर विचार में तत्पर ब्रह्मनिष्ठ विरक्त पुरुष इस महान् अनन्त सर्वत्रव्याप्त पुंस्त्व शक्ति प्रधान परमेश्वर को ही देखता है किन्तु प्रकृति भी व्याप्त है उसकी, ओर से विरक्त होने के कारण उसको नहीं देखता तथा भोगाभिलाषा निवृत्त हो जाने से स्त्री की ओर भी उसका ध्यान नहीं जाता (इदमदर्शमहो३) अहो बड़े आनन्द का स्थान है कि जिसकी प्राप्ति वा देखने के लिये सहस्रों मनुष्य अनेक जन्मों तक भटकते टक्कर खाते मारे मारे फिरते हैं फिर भी ईश्वर का दर्शन नहीं कर पाते उस दुर्विज्ञेय ब्रह्म को मैं साक्षात् प्रत्यक्ष देखता अनुभव करता हूँ। अहो ३ इस शब्द के आगे ३ के अक्षर से प्लुतोच्चारण इस लिये दिखाया है कि वह बड़े हर्ष के साथ बलपूर्वक पुकार के कहता है कि मेरा काम सिद्ध हो गया। लोक में भी किसी बड़े कठिन काम की सिद्धि हो जाने पर पुकार कर कहने की चाल ऐसे ही स्थलों से चलायी गयी है। (तस्मादिदन्द्रा नामेदन्द्रो हवै नाम) जिस कारण इसको मैं देखता हूँ ऐसे साक्षात् ईश्वर को जान के ज्ञानी सन्तुष्ट होता है इससे उस ईश्वर का इदन्द्र नाम हुआ इसी कारण शास्त्रकार उसको इदन्द्र नाम से कहते पुकारते हैं (तमिदन्द्रं सन्तमिन्द्रमित्याचक्षते परोक्षेण) उस इदन्द्र शब्द के पहिले दकार का लोप करके परोक्ष

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि से इन्द्र कहते हैं। यहां इदम् शब्द पूरा और अदर्शम्–में से (द् र् अ) इन तीन वर्णों को लेकर इदन्द्र शब्द की सिद्धि दिखलायी है कि "इदम्–अदर्शम्" -इसको मैंने प्रत्यक्ष देखा इस अर्थ में साक्षात् ज्ञान का बोधक इदन्द्र शब्द बनाया गया यह तो प्रत्यक्ष माना गया परन्तु एक दकार का लोप कर देने से इन्द्र शब्दान्तर हो गया। यहां प्रत्यक्षार्थबोधक इदन्द्र की अपेक्षा इन्द्र परोक्ष हो गया। इदन्द्र शब्द के प्रत्यक्ष वाच्यार्थ को ही परोक्षार्थ प्रेमी लोग इन्द्र कहते हैं। जगत् में प्रतिष्ठित लोग आचार्य गुरु पण्डित श्रोत्रिय अग्निहोत्री वाजपेयी डिप्टी तहसीलदार आदि शब्दों से व्यवहार अच्छा मानते हैं। किन्तु उन २ आचार्य आदि को निज (ख़ास) प्रत्यक्षार्थ बोधक नामों से पुकारना प्रिय नहीं माना जाता यह व्यवहार अति प्राचीन है शास्त्रों से ही लोक में भी आया है। इसी के अनुसार सब से बड़े प्रतिष्ठित महान् ईश्वर का साक्षात् निज इदन्द्र नाम से व्यवहार करना प्रसन्न न करके उसी अर्थ को जतानेवाला परोक्ष नाम इन्द्र रख लिया गया। निज नाम की अपेक्षा नामान्तर ही परोक्ष हो जाता है। सब नामान्तर वर्णों के परिवर्त्तन से बनते हैं वैसे यहां भी परिवर्त्तन हुआ है॥

भा०—यहां श्रीशङ्करस्वामी और सायणाचार्यादि लोग (उसने ईक्षण विचार किया) इत्यादि में विचार करनेवाला परमात्मा को ही मानते हैं सो (स एतमेव पुरुषं ब्रह्म ततममपश्यत्) उस जीवात्मा ने सर्वव्याप्त ब्रह्म पुरुष को ही देखा जाना यहां "सः" पद से जीव का ही ग्रहण करना ऐतरेयारण्यक ग्रन्थकार को भी स्पष्ट ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभीष्ट है। इस बात के स्पष्ट सिद्ध होने से उन सायणादि का विचार मूल से सर्वथा ही विरुद्ध है यह विचार-शीलों को ध्यान देने योग्य है। चेतनस्वरूप जीवात्मा की शरीर के शिर, कण्ठ और हृदय इन तीन स्थानों में सामान्य कर स्थिति रहती है। परन्तु चक्षु रसना श्रोत्र और घ्राण इन ज्ञानेन्द्रियों का प्रधान स्थान होने से शिर में जीवात्मा की विशेष स्थिति है। जैसे किसी राजा के बहुत महल हों उनमें कोई महल मुख्य हो जिसमें प्रायः राजगद्दी लगती हो वैसे जीवात्मा भी शिर में अधिक कर रहता है उन शिर के अनेक भागों में भी नेत्र में जीव की मुख्य स्थिति है। जैसे कोई पुरुष कहीं जब पहिले २ प्रवेश करता है तब वह अपने ठहरने के लिये सुख के बहुत साधनों से युक्त किसी मुख्य स्थान को चाहता है वैसे ही कान आंख आदि ज्ञानेन्द्रियरूप सुख के साधनों से युक्त शिर को ही मुख्य कर अपने बसने के लिये जीवात्मा ने स्वीकार किया और उसी उत्तम द्वार शिर के ब्रह्माण्ड नामक मार्ग से शरीर में घुसना जीव ने स्वीकार किया और वहां शिर में ही ईश्वर का ध्यान करने से जैसा उत्तम आनन्द होता वैसा अन्यत्र नहीं होता। इस प्रसङ्ग में यह भी प्रसंगानुसार कह देना चाहिये कि जैसे लोक में भी योग्यतानुसार स्थान मिलता है वैसे जो योगी ज्ञानी बड़े २ पुण्यात्माओं को किन्हीं शेष कर्मों के भोगार्थ जन्म लेना पड़ता है तो वे शिर के मूर्द्धस्थ मार्ग से शरीर में प्रवेश करते और मरण समय उसी मार्ग से वे निकलते भी हैं। ऐसे उत्तम कक्षा के लोग अन्य साधारण पुण्यात्माओं की अपेक्षा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन्मुक्त वा मुक्त भी माने ही जावेंगे तब इस मार्ग से निकलने वाले मुक्त होते वा जो मुक्त होने योग्य हैं वे ही इस मार्ग से निकलते हैं यह भी सिद्धान्त सापेक्ष निरपेक्ष दोनों प्रकार की मुक्तिवालों के लिये संघटित हो जायगा। द्वितीय प्रकार के पुण्यात्मा जो इन से नीचे की कक्षा में माने जायँगे उनका जन्म मरण समय मुख आंख नाक कान आदि शिर के छिद्रों द्वारा शरीर में आना जाना होना उचित है और तीसरी कक्षा के निकृष्ट पुरुषों का निकलना पैठना शरीर के नीचे के मार्गों से माना जायगा अर्थात् यहां मनुष्य शरीर में जीव के प्रवेश का विचार है सो सृष्टि के आरम्भ और बीच सब दशा में लगाना चाहिये ॥ १४ ॥

इति भीमसेनशर्मनिर्मित ऐतरेयोपनिषद्भाष्ये
प्रथमाध्यायः समाप्तिमगात् ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयोऽध्यायः ।

पुरुषे हवा अयमादितो गर्भो भवति यदेतद्रेतः । तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः सम्भूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्त्ति तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैनज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म ॥१॥ तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा स्वमङ्गं तथा । तस्मादेनां न हिनस्ति सास्यैतमात्मानमत्र गतं भावयति ॥ २ ॥ सा भावयित्री भावयितव्या भवति तं स्त्री गर्भं बिभर्त्ति सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयति । स यत्कुमारं जन्मनोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भावयत्येषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकास्तदस्य द्वितीयं जन्म ॥ ३ ॥ सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते । अथास्याऽयमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म ॥ ४ ॥ तदुक्तमृषिणा—"गर्भे नु सन्नन्वेषामवेदमहं देवानां जनिमानि विश्वा । शतं मा पुरआयसीररक्षन्नध श्येनो जवसा निरदीयम् ॥" (ऋग्वेदे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मण्डले ४ सूक्तम् २७) इति गर्भ एवैतच्छयानो वामदेव एवमुवाच ॥ ५ ॥ स एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व उत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत् ॥ ६ ॥

इति चतुर्थखण्डः इत्यैतरेयारण्यके पञ्चम उपनिषत्सु च द्वितीयाऽध्यायः समाप्तः ॥

अ०—पुरुषे पितृशरीरे हवा अयं जीव आदित आदौ गर्भो व्यासोऽन्तर्गतो भवति यदेतद्रतो वीर्यं सप्तमो धातुरुत्पद्यमानपुत्रदेहस्य कारणं गर्भाधानात्प्राक्काले पितृशरीराङ्गरूपो भवति। "यथा पयसि सर्पिस्तु गुडश्चेक्षौ रसो यथा। शरीरेषु तथा शुक्रं नृणां विद्याद्विषग्वरः" इति सुश्रुते शुक्रस्य शरीराङ्गत्वं स्पष्टमुक्तम्। तदेतत्सर्वेभ्यः शरीरावयवेभ्यः सम्भूतं समुत्पन्नं सर्वशरीरव्याप्तं तेजःसारभूतमात्मनि स्वस्वरूप एवात्मानं जीवात्मानं बिभर्त्ति धारयति। यदा पिता स्त्रियां गर्भाधानप्रकारेण सिञ्चत्यथानन्तरमेव स्वांशस्य गर्भभूतं सारभूतं तेजो जनयति तदस्य सदेहस्य जीवस्य प्रथमं जन्मास्ति ॥ १ ॥ तत्तेजःसारभूतं रेतो यस्यां स्त्रियां सिच्यते तस्या आत्मभावं गच्छति यथा स्वमङ्गं तथा स्त्रीशरीरस्याङ्गभावमाप्नोति यथा स्तनाद्यङ्गानि शरीरैकदेशभूतानि स्त्रियं न पीडयन्ति तथैवाङ्गीभूतं रेतो गर्भोऽपि तां मातरं न हिनस्ति न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पीडयति सा गर्भिण्यत्र स्वगर्भाशये गतं प्रविष्टं पुरुषांशरू॰-
मस्यात्मानं सात्मकमेतं गर्भं बुद्ध्वा विरुद्धाहारपरिवर्जना-
दिना भावयति पालयति वर्धयति वा ॥ २ ॥ सा भावयित्री
गर्भं वर्द्धयन्ती भर्त्रा भावयितव्या रक्षयितव्या भवति तं गर्भ-
मप्रसवात्स्त्री बिभर्त्ति स पिताऽग्र एव प्रसवात्पूर्वमेव गर्भा-
शये निर्मितं कुमारं जन्मनोऽग्रे प्रसवानन्तरमधिभावयति
रक्षणपोषणजातकर्मादिना तं स्वात्मजं वर्द्धयति। स पिता
जन्मानन्तरं यत्कुमारमाधिक्येन रक्षणीयं जानाति तं दृष्ट्वोत्प-
न्नं मत्वा प्रसीदति तत्स्वरूपं स्वस्यात्मानं स्वांशमेव स्वमेव
स्वयं रक्षणीयं जानाति स्वस्य रूपान्तरं दृष्ट्वा स्वयमेव प्रसी-
दति। "अङ्गादङ्गात्सम्भवसि हृदयादधि जायसे। आत्मा वै
पुत्र नामासित्वं जीव शरदः शतम् ॥" "पतिर्भार्यां संप्रविश्य
गर्भो भूत्वेह जायते।" अत्र पूर्वे वेदस्यापरं च स्मार्त्तं वचोऽ
स्ति श्रुतिस्मृतिभ्यां यदुच्यते तदेवात्रोक्तं विज्ञेयम्। एषां
प्रत्यक्षे विद्यमानानां लोकानां जनानां सन्तत्यै पितुः पुत्रस्त-
स्मादन्यस्ततोऽप्यन्य उत्पद्यते समुत्पन्नाश्च पूर्वोत्पन्नैः पित्रा-
दिभी रक्ष्यन्ते चैवं ह्यीमे लोकाः सन्ततः सर्गारम्भात्प्रलया-
वधि विस्तृता भवन्ति। तदस्य सजीवस्य देहस्य मातुः
सकाशाद् द्वितीयं जन्म भवति। अस्य पितुरात्मा सोऽयं
पुत्रः पुण्येभ्यः कर्मभ्यः शास्त्रवेदोक्तपवित्रकर्मसेवनाय प्रति-
धीयते प्रतिनिधिर्भवति। यानि शुभकर्माणि पित्राऽऽच-
रितानि ततोऽप्याधिक्येन यशःसुखहेतूनि पितुः प्रयाणका-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लात्पूर्वमेव पुत्रेण कर्त्तुमारब्धव्यानि। अथास्य पुत्रात्मकस्येतरोऽयमात्मा स्वांशरूपो देहः पिता पुत्रं प्रतिनिधिं विधाय कृतकृत्यः समापितस्वाश्रितकार्यो वयोगतो जीर्णवया वृद्धः सन् प्रैति म्रियते। स पुत्रोऽपीतः प्रयन्नेव म्रियमाण एव मरणात्प्रागेव स्वभार्यायां पुत्ररूपेण पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्मैवमग्रेऽपि बहूनि जन्मानि भवन्ति। तदुक्तमृषिणा वेदेन—"वेदमन्त्रार्थः—नु—अहो आश्चार्यमेतद्यदहं गर्भे सन् गर्भावस्थायां विद्यमान एवैषामग्निवागादिदेवानां विश्वानि जन्मानि जन्मान्यन्ववेदमानुकूल्येनजानामि ज्ञातवान् वा। यदि मातृतो जायमानः कथयत्येतत्तदा भूतार्थः साधुर्यदा च गर्भे सन्नेव वक्ति तदा (छन्दसि लुङ्लङ्लिटः) इति वर्त्तमानेलङ्। मा मां शतमनेकान्यायसीरायस्यो लोहमय्यइव दृढानि पुरः शरीराणि—अरक्षन् रक्षितवत्यः पूर्वजन्मसु तेषु शरीरेषु रक्षितोऽहमासम्। येनाहं शरीरादव्यतिरिक्तमात्मानं न ज्ञातवान्। अधाथानन्तरं सम्प्रति श्येनः शरीरान्निर्गमनशीलो जवसा वेगेन निरदीयं निर्गतोऽस्मिप्राकृतादस्माज्जडदेहाच्चैतन्यात्मस्वरूपेण शरीरे सन्नपि पृथग्भूतोऽस्मीति।" गर्भेशयानएव वामदेव ऋषिरेवमित्येतदुवाच ॥ ५ ॥ स एवं विद्वान् जानानः पुरुषो वामदेवः प्रशस्तो देवो यद्वा प्रशस्ता अपवर्गहेतुका अतिशुद्धाः शरीरस्था अग्न्यादयो देवा अस्य स सर्वोऽपि तादृशो वामदेवपदवाच्यः सर्वएवेदृशःपुरुषोऽस्मात्क्लेशहेतुकाच्छरीराद्भिन्नो जीवन्नेव तावद्दृष्टदृश्ययोर्भेदं पश्यन्नवि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्लवां योगोक्तविवेकख्यातिं प्राप्तः प्रयाणकाले च शरीरात्पृथग्भूतउत्क्रम्य निस्सृत्यामुष्मिन्परोक्षे स्वर्गे सुखानन्देन प्राप्ये लोके लोक्ये ज्ञातुं योग्ये वरेण्ये परब्रह्मणि सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्सम्भवति। द्विर्वचनं सफलात्मज्ञानस्य निष्ठाविज्ञापनायाध्यायपरिसमाप्तिद्योतनार्थं च ॥

भा०—मुमुक्षणा जिज्ञासुना पुरुषेण स्वस्योत्पत्तेस्तत्त्वं विशेषेण विज्ञेयमिदं च तत्त्वज्ञानस्य मूलं तत्त्वज्ञानाच्च सर्वदुःखप्रहाणमिति सर्वैवेतिकर्त्तव्यताऽस्य देहिनः परिसमाप्यते। इदमर्थमेव सर्वः प्राणी रात्रिन्दिवं धावति तदर्थमस्मिन्नध्याये पुरुषार्थसाफल्यं प्रदर्शितम्। यद्यपि स्त्रीदेहेऽपि सर्वप्राण्युत्पत्तेः कारणं भवति तथापि प्रधाने शब्दप्रयोगात्पुरुषप्राधान्यं ज्ञापयितुं पुरुषे हवा अयमित्याद्युक्तम्। प्रकृत्यपेक्षया जीवात्मनः पुंस्त्वं प्राधान्यं च तदपेक्षया च प्रकृतेः स्त्रीत्वमप्राधान्यं च स्त्रीशरीरेऽपि जीवात्मनो निवासः पुंस्त्वं पुरुषदेहेपि प्रकृतेः संयोगः स्त्रीत्वमिति सर्वं सर्वत्र। प्रकृतावपि कठिनः प्रबलस्तेजःप्रधानो भागः पुंस्त्वप्रधानस्तस्य च पुरुषदेहे प्राधान्याज्जीवः पुमान् पुरुषदेह एव गर्भाधानात्प्राग् निवसति। वीर्येण सहैव च स्त्रीगर्भाशये प्रविशति। सुश्रुतादिषु केषु चिन्निबन्धेषु गर्भाधानानन्तरं योषिति जीवप्रवेशः प्रदर्शितोऽत्र च पूर्वकालादेव पुरुषदेह इति। तत्रेयं व्यवस्था प्रतेतव्या केचिज्जीवाः सूर्यचन्द्रादिलोकान्तरादागत्य पृथिव्यां जायन्ते ते च वृष्ट्यादिमार्गेण भूमावागत्यौषध्यादिफलैः स-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्बद्धा वीर्येण पुरुषदेहजेन सह गर्भाशये प्रविश्य जायन्ते नच ते शरीरैरिवान्नौषध्यादिना सम्बध्यन्ते नच मदीयमिदं शरीरमिति मन्यन्ते येच दुष्कर्मप्राबल्यादोषध्यादिस्थावरेषु जायन्ते ते शस्यरूपौषधेः फलपाकावसरे विनाशे म्रियन्ते स्थावरीं योनिं जहति पुनश्च स्वसंचितशेषकर्मविपाकानुकूलानि शरीराण्याप्नुवन्ति। केचित्तु पृथिव्यामेव मृतास्तत्रैव च जायन्ते ते पुरुषदेहे वा पूर्वतः प्रविष्टा वीर्येण गर्भं आयान्ति गर्भाधानानन्तरं वा स्त्रीगर्भाशये प्रविशन्ति। ये च विशिष्टाः पापिनस्ते सद्यःसद्या म्रियन्ते जायन्ते च यथा च भृशंभृशं येऽपराध्यन्ति ते लोकेपि सद्यो दुष्कृतफलं भजन्ते ये च सद्यः फलभोगार्हास्ते स्त्रीगर्भाशये प्रविशन्ति ये च तदपेक्षया विशिष्टसुकृतिनस्ते पुरुषदेहे प्रविश्य जायन्ते। एवमोषध्यादिमार्गेण पुरुषदेहेष्वागामिनस्ततोऽप्याधिक्येन पुण्यात्मानो भवन्ति। बाह्यकारागृहादपि विशिष्टं महद्दुःखहेतुकं गर्भाशयरूपं कारागृहं तेष्वपि स्त्रीणां बुद्धिभेदाद् बाह्योपकरणभेदाच्च बहुविधं दुःखान्तितारतम्यं बाध्यम्। एवं सुश्रुतादिग्रन्थेषु यद्वैषम्यमुपलभ्यतेऽधिकारिभेदात्तत्सर्वं संगच्छते नास्ति कश्चिद्विरोध इति। जन्मत्रयप्रदर्शनमत्रोपलक्षणार्थं तेनासंख्येयानि जन्मान्यस्य जीवस्य भवन्तीति। स्त्रीगर्भाशये प्रविष्टं शुक्रं शोणितं च यदा मिश्रीभवति तदा जीवस्तस्मिन् मिश्रीभूते तादात्म्यं भजते तस्माच्छरीरेण तादात्म्यसम्बन्धेन प्रादुर्भावो जन्मेति प्रथमं जन्म तस्य गद्यते। उदराद्बहिर्निस्सरणं च द्वितीयं जन्म

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदानीमन्यदपि शरीरेण तादात्म्यं वर्धत इति । वेदमन्त्रे चाप्त सामान्यतया विशिष्टपुण्यात्मा रश्म्यादिमार्गेण पृथिव्यामागत्य पितृशरीरप्रवेशानन्तरं गर्भेजायमानः सर्व एव जीवात्मा वामदेवपदवाच्यो मतो गर्भे सन्नेव स्मरति तच्चैतद्गर्भोपनिषदि स्पष्टमेवोच्यते—"अथ नवमे मासि सर्वलक्षणज्ञानकरणसम्पूर्णो भवति पूर्वजातिं स्मरति शुभाशुभं च कर्म विन्दति ॥ ३ ॥ पूर्वयोनिसहस्राणि दृष्ट्वा चैव ततो मया। आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः । जातश्चैव मृतश्चैव जन्म चैव पुनःपुनः । यन्मया परिजनस्यार्थे कृतं कर्म शुभाशुभम् ॥ एकाकी तेन दह्येऽहं गतास्ते फलभोगिनः । अहो दुःखोदधौ मग्नो न पश्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये महेश्वरम् । अशुभक्षयकर्त्तारं फलमुक्तिप्रदायकम् ॥ यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्प्रपद्ये नारायणम्। अशुभ०॥ यदि योन्याः प्रमुच्येऽहं तत्सांख्यं योगमभ्यसे । अशुभ० ॥ यदि योन्याः प्रमुच्यामि ध्याये ब्रह्म सनातनम् ॥ अथ योनिद्वारं संप्राप्तो यन्त्रेणापीड्यमानो महता दुःखेन जातमात्रस्तु वैष्णवेन वायुना संस्पृष्टस्तदा न स्मरति जन्ममरणानि न च कर्म शुभाशुभं विन्दति ॥ ४ ॥" एवं च निरुक्तस्य परिशिष्टभागेऽप्युक्तं यद् गर्भस्य वर्णनप्रसङ्गे नवमे मासि गर्भस्थः पूर्वजन्मकृत्यं स्मरन् ब्रवीति—"मृतश्चाहं पुनर्जातो जातश्चाहं पुनर्मृतः । नानायोनिसहस्राणि मयोषितानि यानि वै ॥ आहारा विविधा भुक्ताः पीता नानाविधाः स्तनाः । मातरो विविधा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा ॥ अवाङ्मुखः पीड्यमानो जन्तुश्चैव समन्वितः ॥" इत्यादि सर्वं ग्रन्थेषु पूर्वोक्तवेदमन्त्राशयस्यैव भाष्यरूपेण वर्णनं बोध्यम्। एवं च गर्भे यज्जीवः स्मरति तद्बहिरागत्य विस्मरतीति वेदमन्त्रेणैव विज्ञाप्यते। कश्चिच्चाधिमात्रतीव्रसंवेगेन श्रद्धावीर्याद्युपायानुष्ठानतत्परो समुपार्जितबलवत्तरजन्मान्तरीयशुभसंस्कारो मातृतो जातोऽपि कृतनैरन्तर्यदीर्घकालगुरुकुलवासोऽभ्यस्तवेदादिशास्त्रो विदितवेदितव्योऽधिगतयाथातथ्योऽदृष्टजन्मनो गर्भावस्थायाश्च सर्वं वृत्तं साक्षादेव स्मरति स एव जीवन्मुक्तः सन् परमात्मतत्त्वं विदित्वा विदेहमुक्तोऽपि भवतीति तात्पर्यमन्तिमकण्डिकया सूचितम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(पुरुषे ह्वा अयमादितो गर्भो भवति) पहिले पिता नामक पुरुष के शरीर में ही यह जीव अपने शरीर के कारण वीर्य के साथ व्याप्त वा प्रविष्ट होता है अर्थात् यह जो अस्मदादि मनुष्यों का प्रत्यक्ष शरीर दृष्टिगोचर होता उसकी स्थिरता वा जीवित रहने का मुख्य कारण गर्भाधान से पूर्व पिता के शरीर में होता है अर्थात (यदेतद्रेतः) जो यह वीर्य है उसी के साथ में जीव पुरुषदेह में प्रथम रहता है (तदेतत्सर्वेभ्योऽङ्गेभ्यस्तेजः समुद्भूतमात्मन्येवात्मानं बिभर्त्ति) सो यह शरीर के सब अंशों से उत्पन्न हुआ सब देह में व्याप्त रहनेवाला शरीर का साररूप तेज नाम आग्नेय वीर्य अपने स्वरूप में ही जीवात्मा को धारण करता है सूक्ष्म होने के कारण जीवात्मा का स्वरूप वीर्य से भिन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत नहीं हो सकता। अर्थात् पुरुष के सब शरीर में जो वीर्य व्याप्त होता है वह स्त्री संयोग होने के समय सब अङ्गों से मथ कर निकल गर्भाशय में पहुँचता इसी कारण उस वीर्य से गर्भ में सब हाथ पांव आदि भिन्न २ अङ्ग बन जाते वा बढ़ जाते हैं। सब शरीर में वीर्य की व्याप्ति सुश्रुत के शारीर स्थान में स्पष्ट लिखी है "जैसे दूध में घी वा गन्ने-ईख में रस वा गुड व्याप्त रहता है वैसे मनुष्यादि प्राणियों के शरीर में वीर्य होता है (तद्यदा स्त्रियां सिञ्चत्यथैतज्जनयति तदस्य प्रथमं जन्म) उसको जब स्त्रीरूप खेत में पुरुष बोता है तब बोने के अनन्तर शीघ्र ही उस वीर्य का सन्तान बनना आरम्भ होता है वही इस शरीर सहित जीव का प्रथम जन्म है अर्थात् प्रकारान्तर से जीव की पहिली प्रकटता यही है ॥ १ ॥ (तत्स्त्रिया आत्मभूयं गच्छति यथा) वह साररूप तेजोमय वीर्य जिस स्त्री में पुरुष द्वारा सेचन किया जाता है उस स्त्री के अन्य स्तनादि अङ्गों के तुल्य एक अङ्ग हो जाता अर्थात् गर्भ उस माता के शरीर का अंश बनकर उसके भीतर रहता है (तस्मान्न हिनस्ति) जैसे उसके शरीर के स्तनादि भाग उसको दुःख नहीं देते फोड़ा फुंसी के समान पीडित नहीं करते वैसे गर्भिणी का शरीरांशरूप होकर रहनेवाला गर्भ भी पीडित नहीं करता (सास्यै तमात्मानमत्र गतं भावयति) वह गर्भिणी स्त्री अपने गर्भाशय में प्रविष्ट हुए इस पुरुष के अंशरूप सजीव गर्भ को रह गया जान कर विरुद्ध कुपथ्यादि के त्याग पूर्वक पालन पोषण करती बढ़ाती है ॥ २ ॥ (सा भावयित्री भावयितव्या भवति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह गर्भ का पालन करती हुई पति के रक्षा करने योग्य होती—भर्त्ता उसकी रक्षा करना उचित समझता है (तं गर्भं स्त्री बिभर्त्ति) उस गर्भ को प्रसव होने पर्यन्त स्त्री धारण करती है (सोऽग्र एव कुमारं जन्मनोऽग्रेधिभावयति) वह पिता प्रसव से पूर्व गर्भाशय में ही पुत्ररूप बने कुमार बच्चे को स्त्री के शरीर से जन्म हुए पश्चात् अधिकता से रक्षा पुष्टि करने योग्य मानता तथा जातकर्मादि द्वारा उस अपने आत्मज की वृद्धि करता वा चाहता है (सयत्कुमारं जन्मोऽग्रेऽधिभावयत्यात्मानमेव तद्भावयति) वह पिता जो अपने पुत्र का जन्म हुए पश्चात् उसको अधिक चाहता प्रेम करता प्रसन्न होता है सो वह अपने को ही अधिक चाहता प्रसन्न करता है क्योंकि वह पुत्रशरीर उसी पिता का अंश है। वेद में लिखा है कि "पुत्र का देह पिता के प्रत्येक अङ्गसे बनता और विशेष कर हृदय से बनता है, इसी से पिता का स्वरूप ही पुत्र होता" तथा मनुस्मृति में लिखा है कि "पति अपनी स्त्री के भीतर प्रविष्ट हो गर्भरूप बन कर फिर उत्पन्न होता इस कारण वह स्त्री उसकी जाया कहाती है" इन श्रुतिस्मृतियों से जो अभिप्राय कहा गया है वही यहाँ पर कहा जानो (एषां लोकानां सन्तत्या एवं सन्तता हीमे लोकाः) पिता से पुत्र उससे अन्य पुत्र और उससे भी जो अन्य उत्पन्न होता वा होना चाहिये यह सब उत्पत्तिपरम्परा रूप जन्यजनक भाव प्रत्यक्ष विद्यमान इन मनुष्यादि की सन्तति प्रवाह चला जाने के लिये है। क्योंकि इसी प्रकार इन लोगों का प्रवाह (सिलसिला) चल रहा है। सृष्टि के आरम्भ से प्रलय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर्यन्त मनुष्यादि का विस्तार इसी से चला करता है (तदस्य द्वितीयं जन्म) सो यह सजीव शरीर का माता के देह से बाहर निकलना द्वितीय जन्म दूसरी प्रकटता है (सोऽस्याऽयमात्मा पुण्येभ्यः कर्मभ्यः प्रतिधीयते) सो वह इस पिता का आत्मा स्वरूप पुत्र वेदशास्त्रोक्त पवित्र कर्म करने के लिये पिता का प्रतिनिधि होता अर्थात् पिता ने जैसे २ शुभ कर्मों का सेवन किया है उससे भी अधिकता के साथ कीर्त्ति तथा सुख के हेतु पुण्य कर्म करने का आरम्भ पिता के देहान्तकाल से पूर्व ही पुत्र को करना चाहिये (अथास्यायमितर आत्मा कृतकृत्यो वयोगतः प्रैति) इस पुत्ररूप देह का वा पुत्रांशरूपदेह की अपेक्षा से भिन्न पिता जिसने अपना कर्त्तव्य कर लिया अर्थात् ऋषिऋण देवऋण और पितृऋण जिसने चुका दिया तथा वृद्ध जीर्ण शरीरवाला हुआ मर जाता अन्य शरीर धारण के लिये प्रकर्षता से चला जाता है (स इतः प्रयन्नेव पुनर्जायते तदस्य तृतीयं जन्म) वह पुत्र भी मरने से पहिले ही अपनी स्त्री में पुत्ररूप से फिर उत्पन्न होता वह इसका तीसरा जन्म है। इसी प्रकार आगे २ भी बहुत जन्म होते हैं अभिप्राय यह है कि पिता पुत्रों में जीवात्मा के भिन्न होने पर भी इन्द्रिय प्राणादि सूक्ष्म भूत रूप भूतात्मा का अन्वय पिता का पुत्र के साथ माना जायगा (तदुक्तमृषिणा) सो वेद ने कहा है—वेद मन्त्र का अर्थः—(नु—अहं गर्भे सन्नेषां देवानां विश्वा जनिमान्यन्ववेदम्) अहो यह आश्चर्य्य है कि जो मैंने गर्भावस्था में विद्यमान रहते हुए ही इन अग्नि वाणी आदि देवताओं के संघात से बने इस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर के सब जन्मों को अनुकूलता से सहज में वा अनुक्रम से जाना वा जानता हूँ। सदा सबको पूर्व जाति का स्मरण नहीं होता कभी किसी को स्मरण होता यही आश्चर्य है जो कभी अकस्मात् हो वही आश्चर्य कहाता है। यदि माता से उत्पन्न हो कर ऐसा कहे तो भूतकाल का अर्थ घट सकता है और जो गर्भ में बसता हुआ ही ऐसा स्मरण करता है तो वर्त्तमान काल में लङ्लकार माना जायगा। सो पूर्व जन्म के उत्तम संस्कारी पुण्यात्मा को गर्भ में ही पूर्वजन्मों का स्मरण आता परन्तु अत्युत्तम सत्त्वगुणी प्रबल अत्यन्त पवित्रात्मा पुरुष को जन्म लेने पश्चात् भी स्मरण रहता है कि पूर्वजन्मों में मैं अमुक २ समुदाय में ऐसे २ भोगों को प्राप्त हुआः। यदि जन्म के पश्चात् किसी को भी स्मरण न रहे तो किसी को ज्ञात भी न हो कि गर्भ में पूर्वजन्मों का स्मरण होता है। परन्तु गर्भ में बहुतों को स्मरण रहता और पीछे भी जिनको स्मरण रहे ऐसे उत्तम पुरुष कम होते हैं। (मा शतमायसीः पुरो रक्षन्) लोह के समान दृढ़ अनेक शरीरों ने मेरी रक्षा की जिन शरीर बन्धनों से कोई जीव कभी बड़े प्रबल उपायों से छूट सकता है इस कारण शरीरों को आयसी कहा है। अर्थात् पूर्वजन्मों के उन शरीरों में मैं रक्षित नाम बद्ध रहा जिस बन्धन के कारण शरीर से भिन्न आत्मा को मैंने नहीं जान पाया (अध श्येनो जवसा निरदीयम्) इसके अनन्तर ही सम्प्रति शरीर से निकलने विरक्त होने के स्वभाववाला वेग के साथ इस प्राकृत जड़ शरीर से चेतन आत्मस्वरूप से शरीर में विद्यमान रहते हुए भी पृथक् हो गया हूँ (इति गर्भ एवैतच्छयानो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वामदेव एवमुवाच) गर्भ में रहते वा पड़े हुए वामदेव ऋषिने यह ऐसा कहा (स य एवं विद्वानस्माच्छरीरभेदादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत्)सो जो इस पूर्वोक्त प्रकार जानता हुआ पुरुष वाम नाम प्रशस्त देव अथवा जिसके शरीरस्थ अग्न्यादि देव अति शुद्ध पवित्र मुक्ति के हेतु हों ऐसे सभी सामान्य पुरुष का नाम वामदेव हो सकता है। अग्न्यादि की शुद्धि कहने से मन बुद्धि चित्त वाणी आदि सब प्राकृत जड़ पदार्थों की शुद्धि निर्मलता पाप दोष रहित होना आजाता है। क्योंकि बुद्धि मन आदि भी अग्नि देवों के अन्तर्गत ही प्राकृत वस्तु हैं। वह वामदेव पुरुष इस क्लेश के हेतु शरीर से जीवित रहने की दशा में ही भिन्न रहता हुआ प्रथम द्रष्टा दृश्य नाम प्रकृति पुरुष के भेद को योग शास्त्र में कही अविप्लवा विवेकख्याति को प्राप्त मरण समय में शरीर से पृथक् हुआ निकल कर सुख तथा आनन्द के साथ प्राप्त होने तथा जानने योग्य उत्तम परब्रह्म के मेल में सब कामनाओं को प्राप्त होके मुक्त हो जाता है। यहां अन्तिम क्रिया को द्विर्वचन आत्मज्ञान की सफलता का अन्त्यपरिणाम जताने तथा अध्याय की समाप्ति दिखाने के लिये है॥

भा०—मुमुक्षु जिज्ञासु पुरुषको चाहिये कि अपनी उत्पत्ति के तत्त्व को विशेष कर जाने और अपने उत्पत्ति के तत्त्व को जड़ से जानना ही मुख्य तत्त्वज्ञान है तथा तत्त्वज्ञान होने से ही मनुष्य के सब दुःख छूटते हैं। जिस कल्प एक जिस को तत्त्वज्ञान होता है वह वैसा ही दुःखो से बच सकता है। दुःखों से बचने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ही मनुष्य की सब कर्त्तव्यता समाप्त सफल हो जाती है। और दुःखों से बचने के लिये ही सब प्राणी दिन रात भाग रहे हैं इसी लिये इस अध्याय में पुरुषार्थ की सफलता दिखायी है। यद्यपि स्त्री के शरीर में भी सब प्राणियों की उत्पत्ति का कारण विद्यमान है तथापि प्रधानांश में शब्द का व्यवहार होने से पुरुष की प्रधानता जताने के लिये (पुरुषे हवा०) इत्यादि कथन है। प्रकृति की अपेक्षा से जीवात्मा पुरुष और प्रधान है और जीवात्मा की अपेक्षा से प्रकृति स्त्री तथा अप्रधान गौण है। स्त्री के शरीर में भी जीवात्मा का निवास होने से पुरुषपन तथा पुरुष के देह में भी प्रकृति का संयोग होना स्त्रीपन है इस प्रकार सब सर्वत्र है। प्रकृति में भी तैजस प्रधान कठिन तथा प्रबल भाग पुरुषपन है उस अंश की पुरुषशरीर में प्रधानता होने से पुरुष जीवपुरुष नामक पिता के देह में ही गर्भाधान से पहिले आकर ठहरता और वीर्य के साथ ही स्त्री के गर्भाशय में प्रवेश करता है। सुश्रुतादि किन्हीं ग्रन्थों में गर्भाधान के पश्चात् स्त्री के गर्भ में जीव का प्रवेश दिखाया है और यहां पुरुष के शरीर में वीर्य के साथ पहिले से जीव माना उस की व्यवस्था यह जानो कि—कोई जीव सूर्य चन्द्रमादि लोकान्तरों से आकर पृथिवी में जन्म लेते हैं वे वर्षादि के द्वारा पृथिवी में, वहां से ओषधियों में ओषधि से अन्न में अन्न से रस रुधिरादि धातुओं में होते हुए पुरुष शरीरस्थ वीर्य के साथ गर्भाशय में प्रवेश करके पूकट होते हैं परन्तु वे शरीरों के समान ओषधि आदि से सम्बन्ध नहीं रखते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् ये ओषधि आदि मेरे शरीर हैं ऐसा नहीं मानते इसी से ओषधि अन्नादि को कूटने पीसने से उन जीवों को पीड़ा वा दुःख नहीं होता। और जो जीव अपने दुष्कर्मों की प्रबलता से ओषध्यादि स्थावर योनियों में जन्म लेते वे उस २ को अपना शरीर मानते और ओषध्यादि के काटने ताड़ने से सूक्ष्म दुःखी भी होते हैं तथा वे सस्यरूप ओषधि का फल पकने के समय विनाश होने पर मर जाते अर्थात् स्थावर योनि को छोड़ देते हैं और फिर अपने संचित शेष भोग्य कर्मफलों के अनुकूल शरीरों को धारण करते और द्वितीय प्रकार के कोई जीव पृथिवी पर ही मर के वहीं फिर उत्पन्न होते वे पहिले से पुरुष के देह में प्रविष्ट हुए वीर्य के साथ गर्भ में आते अथवा गर्भाधान के पश्चात् स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट होते हैं। और जो विशेष पापी हैं वे शीघ्र २ मरते जन्मते हैं। जैसे जो शीघ्र २ अपराध करते हैं वे लोक में शीघ्र ही दुष्कर्म के फल को पाते हैं। और जो शीघ्र ही फल भोगने योग्य हैं वे स्त्री के गर्भाशय में प्रवेश करते हैं और जो उन की अपेक्षा से विशेष पुण्यात्मा हैं वे पुरुष देह में प्रवेश कर के जन्म लेते इसी प्रकार ओषध्यादि द्वारा पुरुष शरीरों में आने वाले उन बीचवालों से भी अधिक पुण्यात्मा होते हैं। बाहरी जेलखानों से भी अधिक महादुःखदायी जीव के लिये स्त्री का गर्भाशयरूप बड़ा जेल है उसमें भी स्त्रियों की बुद्धि और बाह्य साधनों के नाना भेद होने से बहुत प्रकार की न्यूनाधिक दुःख प्राप्ति जानो। इस प्रकार सुश्रुतादि ग्रन्थों में जीव के प्रवेश वि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षय में जो विषमता प्रतीत होती है पुण्य पापों के भेद से उस सब की ठीक संगति लग जाती है कोई दोष वा विरोध नहीं आता। तीन जन्म दिखाना यहाँ उपलक्षणार्थ है इससे जीवों के असंख्य जन्म होते कहे जानो। स्त्री के गर्भाशय में प्रविष्ट हुआ शुक्रशोणित जब मिलता है तब उस मिले हुए कारण में जीव तदाकार होता इस कारण शरीर के साथ तादात्म्य सम्बन्ध से जीव का प्रादुर्भाव होना उसका प्रथम जन्म कहा जाता तथा उदर से बाहर निकलना दूसरा जन्म क्योंकि तब तक शरीर के साथ और भी सम्बन्ध बढ़ जाता है और यहाँ वेदमन्त्र में सामान्यकर विशेष पुण्यात्मा किरणादि के द्वारा पृथिवी पर आकर पिता के शरीर में प्रवेश करने के पश्चात् गर्भ में प्रकट होता हुआ सभी जीवात्मा वामदेव पदवाच्य माना गया है वह गर्भ में विद्यमान बाहर निकलने से पूर्व ही स्मरण करता है सो यह विषय गर्भोपनिषद् में स्पष्ट ही लिखा है। "इस के पश्चात् नवें महीने में सब लक्षण तथा ज्ञानेन्द्रियों के ठीक २ साङ्गोपाङ्ग बन जानेपर गर्भस्थ जीव पूर्व जातियों का स्मरण करता और शुभाशुभ पूर्वकृत कर्म भी उस के समक्ष में स्मरण द्वारा उपस्थित होते हैं ॥३॥ तब वह गर्भस्थ जीव अपने भीतर ही भीतर कहता है कि–पूर्वकाल में सहस्रों योनि मैंने देखीं उन २ योनियों के खाद्य नाना प्रकार के अच्छे बुरे आहार भोजन मैंने खाये नाना प्रकार के स्तन पिये। सहस्रों बार मर २ कर मैंने जन्म लिया और असंख्यबार जन्म ले २ कर मैं मरा। स्त्री पुत्र भाई बन्धु आदि अपनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लिये अपने सुख भोगार्थ सहस्रों अनर्थ अन्याय अधर्म करके मैंने धनादि का उपार्जन किया उस पापकर्म से मैं अब अकेला जल भुंज रहा हूँ वे सब स्त्री पुत्रादि छोड़ गये। हाय! अब यहाँ मेरा कोई साथी नहीं। हा! अब कौन मुझे महाभयङ्कर दुःख से बचाये। ओ हो! बड़े भारी दुःख सागरमें डूबा जाता हूँ बचने का उपाय अब मुझे कुछ नहीं दीखता। यदि किसी प्रकार अब की बार योनिरूप ग्राहसे छूट जाऊं तो उस महान् ईश्वर के चरण शरण पकडूं कि जिस का बोध होने से ही अशुभ मलिनतारूप पापों का नाश और सब दुःखों से छूटनारूप मुक्ति फल सहज में मिल जाता है। यदि अब की बार इस महा दुःख से छूट जाऊं कि जहाँ योनि के भीतर चारो ओर लगी हड्डियों से पिसते हुए मुझ को अत्यन्त कष्ट से त्राहि २ करते निकल जाना अगाध समुद्र के पार होना है तो उस सर्वाधार सर्व दोष निवारक मुक्ति फलदाता परमात्मा का अवश्य अवश्य आराधन करूँगा जिस से ऐसे कष्ट में फिर न आने पड़े। यदि किसी प्रकार अटक जाऊँ वा उलटा पड़ जाऊँ तो यहाँ से बाहर जीवित निकल जाना कठिन है तब इसी नरक स्थान में बड़े कष्ट से मुझे प्राण त्याग करने पडेंगे महाभयङ्कर समय मेरे लिये आगया यदि अब की बार यहाँ से निकल के इस दुख से छूट जाऊं तो प्रकृति पुरुष जड़ चेतन की संख्या करनेवाले अविप्लवा विवेक ख्याति के कारण अविद्यादि क्लेशों के नाशक दुःखों से छुड़ाने वाले सांख्य नामक योग का अभ्यास अवश्य करूंगा कदापि न भूलूंगा। हे ईश्वर! किसी पूकार अब की बार बचाइये। यदि मैं इस योनिरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संकुचित मार्ग से अब की वार कैसे ही बाहर निकलपाया तो शपथ करता वा दृढ़ प्रतिज्ञा करता हूँ कि सनातन ब्रह्म सर्वान्तर्यामी का ध्यान अवश्य करूंगा अब तक भूलता आया पर अब कदापि न भूलूंगा ऐसी प्रतिज्ञा वा शपथ करते ही करते बाहर निकलने का समय आगया योनि के द्वार पर आया चारो ओर से लगी हड्डियों से अत्यन्त पीडित होता हुआ महान् दुख के साथ जन्म लिया बाहर आ पड़ा खाने पीने आदि विषयों की ओर झुकाने वा फसाने वाला बाहर का वायु लगा भूख लगी पूर्वजन्म के समय माता के दूध से क्षुधा की निवृत्ति हुई थी वही संस्कार जगा उस सूक्ष्म वासनारूप से स्थित संस्कार के जगने से दूध पीने की तृष्णा जगी पीड़ा से छूट कर प्रथम रोया पर थकावट कष्ट की अधिकता से बेहोशी आयी उसमें सो गया फिर जगा तो दूध के लिये रोया इत्यादि कारण नयी सृष्टि में आते ही गर्भ में की शपथ वा प्रतिज्ञा सब भूल गया पूर्वजन्म मरणों का भी स्मरण न रहा पूर्व किये कर्म भी भूल गये और धीरे २ विषयों की ओर तृष्णा उभड़ने लगी" गर्भस्थ प्राणी को ऐसा स्मरण जन्म होने से समीप ही होता है क्योंकि जब तक सर्वाङ्ग पूर्ण नहीं होता तावत् स्मरण की शक्ति उसमें नहीं आती [सो महान् कष्ट आने के समय वैसे २ निकृष्ट कर्मों को न करने के लिये कि जिन कर्मों का वह भयंकर फल है प्रायः स्त्री वा पुरुष प्रतिज्ञा करते शपथ खाते और जिन उपायों से बचने का सम्भव दीखता है उनको अवश्य करने की भी प्रतिज्ञा करते हैं परन्तु समय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निकल जाने पर प्रायः सभी भूल जाते हैं। प्रसव के समय की असह्य पीड़ा के समय स्त्रियाँ पुरुष से बचने की शपथ तक करती हैं और चोरादि को जब अत्यन्त कष्ट दिया जाता वा मिलता है तो वे भी आगे चोरी न करने की प्रतिज्ञा वा शपथ अवश्य करते हैं पर पीछे भूल जाते और उन्हीं २ कर्मों को फिर २ करते हैं) इसी प्रकार निरुक्त के परिशिष्ट भाग में भी लिखा है-गर्भस्थ प्राणी पूर्वजन्म के स्मरण से नवें मास गर्भ में पड़ा कहता है कि "मैं मर के फिर जन्मा, जन्म लेके फिर मरा, ऐसे असंख्य जन्म मरणों के बीच २ मैंने असंख्य योनियों में निवास किया, सब प्रकार के भले बुरे भोजन खाये, भेड़ बकरी घोड़ी गधी सूकरी कुत्ती आदि सब के भिन्न २ प्रकार के थनों से दूध पिया, नाना योनियों में नाना प्रकार के माता पिता इष्ट मित्रादि देखे। हा !! महाशोक का स्थान है कि अब मैं नीचे मुख ऊपर को गोड़ किये गर्भ में लटक रहा हूँ" इत्यादि सब कथन पूर्वोक्त वेद मन्त्र का आशय लेकर ही अनेक ग्रन्थों में भाष्यरूप से वर्णन किया गया है। इस प्रकार जीव गर्भ में जो स्मरण करता उसको बाहर आकर भूल जाता है यह वेदमन्त्र से ही जताया है। और कोई जन्मान्तर के प्रबल उपार्जित पुण्यवाला माता से उत्पन्न हुआ भी श्रद्धादि उपायों के साथ अधिमात्र तीव्र सवेग से योगाङ्गों का सेवन करने में तत्पर निरन्तर गुरुकी सेवा करके जिसने विद्या पढ़ी वेदादि शास्त्रों के निरन्तर अभ्यास से ज्ञेय को जिसने जान लिया प्राप्त होने योग्य सत्य वस्तु को जिसने पा लिया वह पिछले जन्मों और गर्भावस्था

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के सब कामों का स्मरण साक्षात् करता है वही जीवन मुक्तहुआ परमात्मा को जानकर विदेह मुक्त भी हो जाता है। यह तात्पर्य अन्तिम कण्डिका से सूचित किया है॥

इति भीमसेनशर्मनिर्मितैतरेयोपनिषद्भाष्ये

द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः॥

अथ तृतीयाध्यायारम्भः॥

कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे कतरः स आत्मा। येन वा रूपं पश्यति येन वा शब्दं शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति॥ १॥ यदेतद्हृदयं मनश्चैतत्संज्ञानमाज्ञानं विज्ञानं प्रज्ञानं मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः संकल्पः क्रतुरसुः कामो वश इति। सर्वाण्येवैतानि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति ॥ २ ॥ एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिरेते सर्वे देवा इमानि च पञ्च महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींष्येतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानीतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनो यत्किंचेदं प्राणिजङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरं सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठितं प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म ॥ ३ ॥ स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान्कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत् ॥ इत्योऽम् ॥ इत्यैतरेयारण्यके षष्ठोऽध्याय उपनिषत्सु च तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

समाप्तश्चायं ग्रन्थः ॥

अ०—अयमात्मपदवाच्यः कोऽस्ति यं वयमुपास्महे यस्योपासनाऽस्माभिः कर्तुं युक्ता स कोऽयमात्मा। कतरः स आत्मेति द्वयोरेकस्य निर्धारणे डतरदिति जीवात्मपरमात्मनोर्मध्ये क आत्मोपास्य इत्युपास्ये विज्ञातेऽन्यस्योपासकत्वं सुतरामेव निष्पत्स्यत इति। तच्च "स एतमेव ब्रह्म ततममपश्यत्" इति पूर्वकथनेनात्मद्वयं ज्ञातृज्ञेयभेदेन स्पष्टमुक्तम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्र द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो येन वा रूपं पश्यति—इत्यादिकथनेन जीवात्मनः सत्त्वं स्वरूपं च प्रत्यायितम् यदेतद् हृदयं हृदयस्थमेतन्मनस्तदपि येन यत्सहयुक्तेन कार्यमारभते सोऽयं जीवात्मेत्यन्वयः, संज्ञानमित्यारभ्य प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्तीत्यन्तेन परमात्मसत्तया जीवात्मनः स्वकार्यसाधकत्वमुच्यते। सम्यग्ज्ञानं कस्यापि सम्यग्बोध आज्ञानमीश्वरभावेनाज्ञाकरणं विशेषस्य ज्ञानं, प्रकृष्टमनतिशयं ज्ञानं, मेधा दृष्टश्रुतस्य स्मृतिस्थितिः, चक्षुर्द्वारा कस्यापि रूपोपलब्धिर्दृष्टिः, कथमनेन भवितव्यमिति मननं मतिः मनीषा—ज्ञेयोपलब्धौ स्वातन्त्र्यम्, जूतिर्विचारणायां वेगः स्मृतिः स्मरणम्, संकल्पद्रदमित्थमेवेति बोधः क्रतुरिदमित्थमेव करिष्य इत्यध्यवसायः असु, प्राणनसम्बद्धा वृत्तिः अप्राप्तविषयोत्कण्ठा कामः स्त्र्यादिवशीभावेच्छा वशः इत्याद्दीनि मनसि विद्यमानानि चैतन्यात्मलिङ्गानि जीवात्मसाहाय्येन मनसि जायमानानि निरतिशयज्ञानस्वरूपस्य परमात्मनो लिङ्गानि भवन्ति। यथा च मनोयुक्तेन चक्षुषा जीवात्मा रूपं पश्यति स च सूर्यप्रदीपादिप्रकाशमन्तरेण द्रष्टुमशक्तएव जायते तथैव सर्वव्याप्तनिरतिशयचैतन्य स्वरूपपरमात्मसाहाय्यमन्तरेणजीवात्मा मनसा सतापि न किमपि सम्यग् ज्ञानादिकर्त्तुं शक्नोतीति प्रकृष्टनिरतिशयज्ञानस्वरूपस्यात्मनः सत्त्वप्रतिपादकानि नामान्येतानि भवन्ति। यथा सत्येव प्रदीपे चक्षुषा रूपं दृश्यत एवं परमात्मना व्याप्त एव जीवः सर्वं चैतन्यसम्बद्धं कार्यं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधयति। एष ब्रह्मा ब्राह्मणः प्रकृष्टब्रह्मत्वयुक्त एष इन्द्र, प्रकृष्टं क्षत्रत्वमेष प्रजापतिः प्रजाया, पालने धनादिना रक्षणे तत्परो धनाद्यध्यक्षः प्रकृष्टसत्त्वं प्राप्तो वैश्यो वैश्यत्वं वा—एते सर्वे देवा, सर्वाणीन्द्रियाणि—इमानि प्रत्यक्षं दृश्यमानानि पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यादीनि क्षुद्रैर्नकुलसर्पादिभिर्मिश्राणीव मिश्रितान्येव—अत्रैवार्थ इव शब्दः क्षुद्रा जन्तवो मिश्रा येषु तानि सर्वप्राणिदेहानां बीजानि कारणानि पृथिव्यादीनीति पूर्वेणान्वयः। अण्डजानि पक्षिसर्पादीनि जारुजानि जरायुजानि मनुष्यगवाश्वादीनि कृमिदंशमशकमक्षिकादीनि स्वेदजानि वृक्षवनस्पतिगुल्मादीन्युद्भिज्जानि चेतराणि चेतराणीत्यादिप्रकाराणि प्राणिशरीराणि तेषु चाश्वा गावः पुरुषा हस्तिनः प्रधानाः। यत् किञ्च यत्किमपि प्राणिप्राणभृज्जङ्गमं गतिमत्पतत्रि पतनशीलं पक्ष्यादिकं यच्च स्थावरं स्थितिशीलं तत्सर्वं ब्रह्मादिस्थावरान्तं वस्तुमात्रं प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाप्रज्ञानं निरतिशयचैतन्यस्वरूपं त्रिकालाबाध्यं नेत्रं नायकं सर्वस्य स्वस्वकर्मणि चालकं ब्रह्मैव यस्यास्ति तादृशं प्रज्ञाने चिद्रूपे परमात्मनि प्रतिष्ठितम्। प्रज्ञा चितिशक्तिर्जीवात्मरूपा नेत्री नायिकास्येति तादृशो लोका जनो भुवनं वा प्रज्ञा चैतन्यस्वरूपं ब्रह्म प्रतिष्ठा प्रलयावसरे सर्वस्थित्याधारमस्ति एवं प्रज्ञानं ब्रह्मास्ति ॥३॥ स पूर्वोक्तो जीवात्मोपासको ज्ञाता ज्ञेयेनैतेनोपास्येन ब्रह्मणोपासनया प्राप्तेन सहायेन सर्वव्याप्तपरमात्मज्ञानेनाऽस्मात्प्रत्यक्षाल्लोकाद् दृश्यात्स्थूलशरीरादुत्क-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

म्य परान्तकाले देहं त्यक्त्वाऽमुष्मिन् परोक्षे सुखरूपे लोके ज्ञानदृश्ये परमेश्वरे सर्वान् कामानाप्त्वा परमात्मप्राप्तिसाध्यान्सर्वानानन्दान् प्राप्याऽमृतो मुक्तः सम्भवति। अत्रापि द्वित्वमध्यायपूर्त्तिसूचनार्थम्॥

भा०—इतः पूर्वं द्वितीयाध्यायारम्भे-"अपसर्पन्तु गर्भिण्यः" इत्ययं पाठस्तदनन्तरं च पुरुषे ह्येत्याद्युपलभ्यते। अस्याध्यायस्यारम्भे च "यथास्थानन्तु गर्भिण्यः" तदनन्तरं-कोऽयमात्मेत्यादिपाठोऽस्ति न च तयोर्वाक्ययोर्व्याख्यानं सायणादिभिः कृतं दृश्यत उपनिषत्पुस्तके च स आरम्भिकः पाठो न दृश्यत इति कृत्वा मयाऽप्युपेक्षितः। अत्रोपास्योपासकभेदेनात्मद्वयमुच्यते। स एतेन प्रज्ञेनात्मनेत्यत्र स इति पदेनोपासको जीवः प्रज्ञेनात्मनेति पदाभ्यां चोपास्य ईश्वरः प्रदर्शितः। चक्षुरादिभिश्च दर्शनादि कार्यं जायमानं द्वयोरप्यात्मनोः साहाय्यमपेक्षते। तथा च जीवश्चक्षुषा पश्यति परमात्मा च दर्शयति परमात्मनः सत्तया जीवः पश्यतीति तात्पर्यम्। यथा च व्याप्तसूक्ष्मवायोः साहाय्येन शरीरादिस्थः सर्वः स्थूलो वायुः स्वकार्यं साधयति यथा वा दिक्कालाकाशादिना विना चक्षुरादिभिरपि जीवो न किमपि करोत्येवं परमात्मसत्तयापि विना किमपि कर्त्तुमशक्तः। तथैवात्र जगति व्याप्तचिद्रूपपरमात्मानमन्तरेण न किमपि जायते। यथा च सूर्यः स्वव्याप्त्या सर्वत्र सर्वं रूपं सर्वान् मनुष्यान् चक्षुर्भ्यां दर्शयन्नपि शुभाशुभदर्शनजन्यदोषेण न लिप्यत एवं सर्वकार्येषु जीवस्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साक्षिभूतः सर्वस्य कारयितेश्वरोपि न कदापि जीवकृतपाप-पुण्यैर्लिप्यते। एवं चैकस्मिन्नेव शरीरे द्वावप्यात्मानौ सदैव तिष्ठत इति द्वासुपर्णा इत्यादिना मन्त्रेणापि स्पष्टमयमाशयो विज्ञापित इति। चेतनस्य प्राधान्यं स्वामित्वं भोक्तृत्वं सर्व-कार्यकारित्वं च-सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रमित्यादिना दर्शितम्। अ-न्यजडापेक्षया जीवः स्वामी परमेश्वरस्तु जीवस्यापि स्वाम्य-ध्यक्ष एवास्ति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(कोऽयमात्मेति वयमुपास्महे) जिसकी उपा-सना हमको करनी चाहिये वह उपासनीय आत्मा कौन है? (कतरः स आत्मा) अर्थात् आत्मा दो हैं एक जीव दूसरा ब्रह्म उन दोनों में उपासना के योग्य कौन सा है जिसकी उपासना से हमारा कल्याण हो। यहां एक के उपास्य ठहरने से द्वितीय जीवात्मा का उपास्य न होना भी स्वतः सिद्ध हो जायगा और उपास्य के साथ में द्वितीय आत्मा का उपासक होना भी सिद्ध हो जायगा। (स एतमेव०) इत्यादि पूर्व कथन से ज्ञाता-ज्ञेय भेद से दोनों आत्मा का भिन्न २ होना स्पष्ट कहा गया है। उनमें से (ये न वा०) इत्यादि पूर्व कथन से जीवात्मा की सत्ता और स्वरूप दिखाया है (येन वा रूपं पश्यति येन वा शब्दं शृणोति येन वा गन्धानाजिघ्रति येन वा वाचं व्याकरोति येन वा स्वादु चास्वादु च विजानाति) जिससे रूप को देखता शब्द को सुनता गन्धों सूँघता वाणी बोलता और जिससे प्रकृति पुरुष नाम द्रष्टादृश्य का संयोग अच्छे बुरे स्वाद को विशेष कर जानता है वह जीव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। प्रयोजन यह कि केवल जीवात्मा वा केवल बुद्धि में देखना आदि नहीं किन्तु दोनों में है परन्तु दोनों के संयोग में जीवात्मा प्रधान है इसीसे मृत शरीर कुछ नहीं देखता (यदेतद्धृदयं मनश्चैतत्) और जो यह हृदय रूप मांस पिण्ड में रहनेवाला मन है जिसका अन्तःकरण नाम भीतरी साधन रूप मन के इच्छा, द्वेष, स्मरण, सुखदुःखानुभव आदि काम हैं अर्थात् मन के द्वारा आत्मा में इच्छादि होते हैं वह जिसके बिना इच्छादि को प्रकट नहीं कर सकता वही जीवात्मा है (संज्ञानमाज्ञानंविज्ञानं प्रज्ञानम्) किसी विषय का सम्यक् ठीक जानना, स्वामी बन कर आज्ञा देना, विशेषता का जानना और प्रकृष्ट अति दूर तक सोचना (मेधा दृष्टिर्धृतिर्मतिर्मनीषा जूतिः स्मृतिः (देखे सुने को धारण करनेवाली बुद्धि, रूप का दीखना, धैर्य, यह कैसा होना चाहिये ऐसा मनन मति, जानने की स्वतन्त्रता मनीषा, विचार में शीघ्रता वा वेग-जूतिः, स्मरण (संकल्प, क्रतुरमुः कामो वशइति) क्रतु नाम ऐसा ही करूँगा ऐसी बुद्धि, प्राणक्रिया सम्बन्धिनी वृत्ति, अप्राप्त विषय की उत्कण्ठा काम और स्त्री को वशीभूत करने की इच्छा वश (सर्वाण्येतानि प्रज्ञानस्य नामधेयानि भवन्ति) ये सब आत्मा और मन के संयोग से प्रकट होनेवाले काम असीम ज्ञानस्वरूप परमात्मा के चिह्नरूप हो जाते हैं। जैसे मन युक्त चक्षु से जीवात्मा रूप को देखता है परन्तु सूर्य वा दीपक के प्रकाश के बिना आँख से रूप को नहीं देख सकता। वैसे ही सर्व व्याप्त असीम चेतनस्वरूप परमात्मा की सहायता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के बिना जीवात्मा मन के विद्यमान होने पर भी उससे सम्यग् ज्ञानादि कुछ नहीं कर सकता। इस रीति से असीम ज्ञानस्वरूप परमात्मा की विद्यमानता को प्रतिपादन करनेवाले संज्ञानादि नाम हैं क्योंकि जीव में सापेक्ष सम्यग् ज्ञानादि हैं कोई किसी की अपेक्षा सम्यक् ज्ञानी है। जो मनुष्यों में सम्यक् ज्ञानी कहावेगा वह भी ईश्वर की अपेक्षा निकृष्ट ज्ञानी होगा। केवल ईश्वर ही सर्वोपरि सम्यग् ज्ञानी, विज्ञानी प्रज्ञानस्वरूप तथा असीम मेधादि से युक्त है। जैसे दीपक के होने पर ही चक्षु से रूप दीखता वैसे परमात्मा से व्याप्त ही जीव चेतन सम्बन्धी सब काम कर सकता है (एष ब्रह्मैष इन्द्र एष प्रजापतिः) यह संसार के सब प्राणी मात्र में सब से उत्तम ब्राह्मण वा ब्राह्मणपन, यह इन्द्र नाम क्षत्रिय वा क्षत्रियपन यह प्रजापति धनादि द्वारा प्रजाका रक्षक वैश्य वा वैश्यपन (एते सर्वे देवाः) ये सब इन्द्रियरूप में बने हुए अग्न्यादि देवता (इमानि पञ्च महाभूतानि पृथिवी वायुराकाश आपो ज्योतींषि) ये प्रत्यक्ष दीखते पृथिवी वायु आकाश जल अग्नि पांच स्थूल भूत (एतानीमानि च क्षुद्रमिश्राणीव बीजानि) न्योला सांप आदि क्षुद्र जन्तु जिन पृथिव्यादि के भीतर मिले हुए ही रहते ऐसे पृथिव्यादि महाभूत सब प्राणि शरीरों की उत्पत्ति के बीज नाम मूल कारण हैं (इतराणि चेतराणि चाण्डजानि च जारायुजानि च स्वेदजानि चोद्भिज्जानि) पक्षी सांप आदि अण्डज जो अण्डा के द्वारा उत्पन्न होते, मनुष्य गौ घोड़ादि जरायुज जो जरायु से उत्पन्न होते, कीड़े डांस मच्छर मक्खी आदि गर्मी से उत्पन्न होने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले स्वेदज और वृक्ष वनस्पति गुल्मादि उद्भिज जो पृथिवी को फोड़कर उगते उत्पन्न होते ऐसे २ अन्य २ इत्यादि जड़ चेतन वस्तु तथा (अश्वा गावः पुरुषा हस्तिनः) घोड़े बैल पुरुष हाथी ये प्राणि जातियों में उत्तम वा प्रधान (यत् किञ्चेदं प्राणि जङ्गमं च पतत्रि च यच्च स्थावरम्) इत्यादि जो कुछ प्राणधारी जङ्गम चलनेवाले उड़नेवाले पक्ष्यादि तथा एक स्थान में स्थित रहनेवाले स्थावर वृक्षादि यह सब ब्रह्म से लेके स्थावर पर्यन्त वस्तुमात्र (सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रं प्रज्ञाने प्रतिष्ठित प्रज्ञानेत्रो लोकः प्रज्ञा प्रतिष्ठा प्रज्ञानं ब्रह्म) निरतिशय चेतनस्वरूप तीनों काल में एक रस रहनेवाला प्रकृष्ट ज्ञानस्वरूप ब्रह्म ही जिसको अपने काम वा नियम में चलानेवाला है ऐसा वस्तुमात्र प्रज्ञानेत्र कहाता। चेतन ज्ञानस्वरूप परमात्मा में सब ठहरा हुआ ईश्वर ही जिस सब का आधार ज्ञानस्वरूप, ईश्वर ही सब मनुष्यादि को दिखानेवाला नेत्र का भी नेत्र है वा चेतन स्वरूप जीवात्मा की शक्ति सब जड़ शरीर को चलानेवाली है प्रलय के समय चिद्रूप परमेश्वर में ही सब ठहरता है वही सब का आधार रहता है इस प्रकार प्रज्ञान नाम ब्रह्म का है (स एतेन प्रज्ञेनात्मनाऽस्माल्लोकादुत्क्रम्यामुष्मिन्स्वर्गे लोके सर्वान् कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत्समभवत्) वह पूर्वोक्त उपासक ज्ञाता जीवात्मा उपासना से प्राप्त हुए उस ज्ञेय उपास्य सहायक सर्वव्याप्त परमात्मा को जान लेने के कारण इस प्रत्यक्ष दृश्य स्थूल शरीर से परान्त नाम मुक्ति से पूर्व के मरण समय में पृथक् हो निकल कर उस परोक्ष सुखस्वरूप ज्ञान से देखने योग्य परमेश्वर के साथ में सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के अभीष्ट सुख वा आनन्दों को प्राप्त होकर मुक्त हो जाता है। यहां भी अन्त्यपद को अध्याय वा ग्रन्थ की समाप्ति जताने के लिये द्विवारा पढ़ा है॥

भा०—यहां से पूर्व द्वितीयाध्याय के आरम्भ में (अपसर्पन्तु गर्भिण्यः) ऐसा पाठ है तदनन्तर (पुरुषे हवा०) इत्यादि पाठ मिलता है तथा इस तृतीयाध्याय के आरम्भ में (यथास्थानन्तु गर्भिण्यः) ऐसा पाठ है तदनन्तर (कोऽयमात्मा०) इत्यादि पाठ ऐतरेयारण्यक में पढ़ा गया है। उन दोनों वाक्यों का व्याख्यान सायणाचार्यादि ने नहीं किया और पृथक् करके छपे उपनिषद् के पुस्तकों में वह पाठ सर्वथा ही नहीं छपा इस कारण हमने भी उस पाठ की उपेक्षा करदी अर्थात् न लिखा न छपाया। इस अध्याय में उपास्य उपासक भेद से दो आत्मा कहे हैं (स एतेन प्रज्ञेना०) यहां स पद से उपासक जीव तथा (प्रज्ञेनात्मना) इन दो पदों से उपास्य ईश्वर का ग्रहण करना दिखाया है। आँख आदि से देखना आदि काम होता हुआ दोनों आत्मा की सहायता चाहता तथा वह जीव चक्षु से देखता और परमात्मा दिखाता है अर्थात् परमात्मा की सत्ता से जीव देखना आदि काम करता यह तात्पर्य है। जैसे व्याप्त और सूक्ष्म वायु की सहायता से शरीरादि में रहनेवाला सब स्थूल वायु अपना कार्य करता है अथवा जैसे दिशा काल आकाशादि के विना जीव चक्षु आदि से कुछ भी नहीं कर सकता किसी दिशा काल और आकाशादि में ही देखना आदि करता वा कर सकता है। वैसे परमेश्वर की सत्ता के विना भी कुछ नहीं कर सकता।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे ही संसार भर में भी व्याप्त चेतन स्वरूप परमात्मा के विना कोई भी कार्य नहीं होता। और जैसे सूर्य अपने तेज प्रकाश के फैलाव से सर्वत्र सब प्राणियों को आंखों के द्वारा सब रूप दिखाता हुआ भी शुभ अशुभ दिखाने वा देखने के दोष से लिप्त नहीं होता। इसी प्रकार सब कार्यों में जीवात्मा का साक्षीरूप सब कामों का करानेवाला भी परमेश्वर जीवकृत पाप पुण्यों से दूषित नहीं होता। इस प्रकार एक ही शरीर में दो आत्मा सदा ही से रहते हैं सो (द्वा सुपर्णा०) इत्यादि मन्त्रों द्वारा वेद में यह आशय स्पष्ट खोल कर कहा गया है। चेतन शक्ति का प्रधान, स्वामी भोक्ता और सब कार्य करानेवाला होना यह (सर्वं तत्प्रज्ञानेत्रम्०) इत्यादि कथन से दिखाया है। जीव अपने आधीन पदार्थों का स्वामी है परन्तु परमेश्वर जीव का भी स्वामी अध्यक्ष ही है॥ ४॥

इति भीमसेनशर्मनिर्मितैतरेयोपनिषद्भाष्ये तृतीयोऽध्यायः समाप्तः॥ समाप्तश्चायं ग्रन्थः॥

अथ सर्वग्रन्थस्यायमाशयः—पूर्वकल्पावशिष्टकर्मणां शुभाशुभेष्टानिष्टफलभोगाय प्रतिकल्पारम्भे परमेश्वरः सर्वं पञ्चतत्त्वात्मकं स्थावरजङ्गमं निर्मिमीते। तत्र चतुर्विधेऽस्मिन्सर्वब्रह्माण्डे लोकलोकपालान्नजीवभेदचतुष्टयभिन्ने जीवस्यानादित्वादविनाशित्वादुत्पत्तिमनुक्त्वा त्रिविधस्यैवोत्पत्तिरुक्ता। यथा घृतादिकमानिनीषुस्तदाधारपात्रमादावपेक्षते तथेश्वरेण सर्वचराचराधारा लोकाश्चतुर्विधा आदौ सृष्टास्तदनन्तर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चान्यापेक्षया निशेषेणापेक्षिता अग्न्यादयोऽष्टौ लोकपालाःसाश नापिपासाः सृष्टास्तदनन्तरं च भक्ष्यमन्नं भक्ष्यभक्षकव्यवहारेण लोकयात्रासिद्ध्यर्थं सृष्टम्। तस्मिन् लोकलोकपालान्नसंघातमये शरीरे कर्मफलभोगाय जीवात्मनः प्रवेशोऽवस्थितिश्च सम्यगुक्ता। लोकादिसंघातमयेऽस्मिन् संसारचक्रे जन्ममरणप्रवाहेऽनादिकालाद्भोगासक्तः सर्व एव जीवोऽनादिकालात् सर्वं विस्मृत्य गाढं स्वपिति। कदाचित्कश्चिद्यदा जागर्त्ति तदा सर्वानन्यान्सुप्तान् विस्मृतान् दृष्ट्वा शोचति। अहो अहं सर्वं विस्मृत्य गाढनिद्रायामतिदीर्घकालात्सुप्त इदानीं मया सर्वदा सर्वदुःखविमुक्त ईश्वर एवोपासनीय इत्यवधार्योपासनारतः परमात्मानं साक्षात्कुर्वाणः कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते। यश्च वस्तुतो जागर्त्ति स एवास्यागाधसंसारसागरस्य पारं गच्छति। अन्ये च बहवो मध्येऽर्द्धजागृता भूत्वाऽपि पुनःपुनः स्वपन्ति। यथा दुष्कर्मफले महति दुःखे समुपस्थिते कथमपि ये बुध्यन्ते ते मुहुर्मुहुः प्रतिजानते नैवं पुनः करिष्यामो यस्येदं महत्कष्टफलं पुनः प्राप्नुयाम। तथा गर्भवासे नवममासे ये स्ववस्थायाः पूर्वजन्मकृत्यस्य च स्मरन्ति तेऽपि तदानीं प्रतिजानत एवानन्तरं च सर्वं तद्विस्मृत्य पुनस्तेनैव पथा यान्ति। यथा कोऽपि जले मज्जन् क्षणमुपर्यागत्य निमज्जेत्तथा सर्व एव जनो मध्ये कथंचित्प्रतिबुद्धोऽपि विषयेषु मज्जति। तदेवं स्वपतां जागरणाय महता प्रयासेनास्मिन् ग्रन्थे नैत्यिकक्षुत्पिपासादिदुःखैरुत्पत्तित एव संयोगो गर्भवासकाले च महद्दुःखं मरणभयं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

च सर्वदा सर्वार्थमुपस्थितमिति प्रदर्श्य जीवब्रह्मस्वरूपकार्य-भेदवर्णनप्रदर्शनादिना जागरिता वयम् ॥

भाषार्थः—अब ग्रन्थ की समाप्ति में सब ग्रन्थ का आशय संक्षेप से लिखते हैं—पूर्व कल्प के भोगार्थ शेष बचे (अर्थात् प्रत्येक कल्प के अन्त में प्रलय होते समय सब प्राणियों के कर्म शेष रह-जाते) कर्मों का शुभाशुभ फल भुगाने के लिये प्रत्येक कल्प के आरम्भ में परमेश्वर सब पञ्चतत्त्वों से बने जड़ और चेतन की संयोगरूप रचना को बनाता है। उसमें लोक, लोकपाल, अन्न और जीव इन चार भेदोंवाला चार प्रकार का ब्रह्माण्ड है जिन में जीव अनादि है उसका उत्पत्ति विनाश पृथिव्यादि के समान नहीं होता केवल बुद्धि आदि जड़ प्राकृत पदार्थों के साथ संयोग वा उन में प्रवेशमात्र ही जीव का उत्पन्न होना है। इस प्रकार जीव के अनादि सिद्ध होने से शेष तीन की ही रचना यहाँ कही गयी है। जैसे घृत वा जल लाने की इच्छावाला पुरुष उस के रखने को आधार रूप पात्र की आवश्यकता वा अपेक्षा प्रथम करता है वैसे ईश्वर ने भी सब चराचर के आधार चार प्रकार के अम्भसूनामादि लोकों को रचना प्रथम आवश्यक समझा। इस के पश्चात् अन्यों की अपेक्षा विशेष अपेक्षित अग्नि आदि आठ लोकपालों को क्षुधापिपासा के सहित रचा। तिस के पश्चात् क्षुधा की पूर्त्ति के अर्थ अन्न को बनाया जिससे भक्ष्य भक्ष्यक व्यवहार के द्वारा संसार का निर्वाह ठीक चले। उस लोक लोकपाल और अन्न के संघट्ट से बने शरीर में जीवात्मा का प्रवेश और शिर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि तीन स्थानों में जीव की स्थिति ठीक २ कही। लोकादि के समुदायरूप इस संसार चक्र के जन्म मरण प्रवाह में पड़े सभी जीव अनादि काल से भोगों में आसक्त अनादि काल से सब कर्त्तव्याकर्त्तव्य को भूल कर बेहोश हुए गाढ़ निद्रा में सोते हैं। उन में जब कभी कोई जागता सचेत होता है तब अन्य सब प्राणियों को अचेत सोते भूल में पड़े देख कर सोचता है कि ओ हो! मैं भी सब भूल कर अति दीर्घ काल से गाढ़ निद्रा में सोता था मैं अपनी बड़ी हानि कर चुका अब मुझको सर्वदा सर्वदुःखरहित ईश्वर की ही उपासना करनी चाहिये ऐसा दृढ़ निश्चय करके उपासना में तत्पर परमेश्वर को साक्षात् करता हुआ बड़ी घोर आपत्तियों से छूट जाता है। और जो वास्तव में जागता वा ठीक जग जाता वही इस अथाह संसार समुद्र के पार हो पाता है। और अन्य अनेक लोग अध जगे हो कर भी फिर २ सो जाते हैं कुछ कुछ भी जो २ जब २ जागजाते वे तब २ बार २ प्रतिज्ञा करते हैं कि अब फिर हम ऐसा काम कदापि न करेंगे कि जिस का महाकष्टरूप फल हमको फिर भोगना पड़े। इसी प्रकार नवम मास के समय गर्भ में बसते हुए जो जीव जागते अर्थात् अपनी वर्त्तमान दशा और पूर्वजन्मों की असंख्य विपत्तियों का स्मरण करते हैं वे गर्भस्थ भी उस समय प्रतिज्ञा अवश्य करते हैं। पर उत्पन्न होते ही उन सब प्रतिज्ञाओं को भूल कर फिर उसी मार्ग से चलने लगते हैं जिसके द्वारा असंख्य कष्ट भोगने पड़े। जैसे कोई जल में डूबता हुआ क्षण भर ऊपर को उछल कर फिर डूब जावे वैसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सभी मनुष्य विषय भोगाभिलाषरूप घोर निद्रा में सोते हुए बीच बीच किसी प्रकार किसी कारण कुछ जागे भी फिर २ विषय भोग तृष्णा के अथाह समुद्र में डूब जाते हैं। सो इस प्रकार सोते हुओं को जगाने के लिये बड़े प्रयत्नसे इस ग्रन्थमें उपदेश किया है कि नित्य भूख प्यासादि दुःखोंके साथ उत्पत्ति से ही संयोग होना, गर्भवास के समय महादुःख और मरने का भय सब काल में सबके लिये उपस्थित रहता है। यह दिखा कर जीव और ब्रह्म के स्वरूप और कार्य का वर्णन दिखाने आदि द्वारा हम लोग अवश्य जगाये गये हैं ॥इति॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ श्वेताश्वतरोपनिषत्प्रस्तावः ॥

इयं श्वेताश्वतरोपनिषद्यद्यपि वाजसनेयादिदशोपनिषदापेक्षयाऽर्वाचीना तथाप्यत्र वेदमन्त्राणामाधिक्येन रक्षणात्तदाशयेनैव विषयस्य स्फुटतया वर्णनादतिप्राचीनत्वं चास्याः वृद्धत्वं चास्याः सुस्थिरम्। जीवेश्वरप्रकृतीनां त्रयाणां पदार्थानामत्रानादित्वमन्यग्रन्थापेक्षयाऽतिस्पष्टतया प्रत्यायितम्। जीवात्मनो लक्षणं स्वरूपं चात्र स्फुटतरभेदेन प्रदर्शितम्। परमात्मस्वरूपणं चान्यत्रवदत्रापि प्रधानएव विषयः। अत्र कस्यापीतिहासः प्रधानो नास्ति किन्तु सामान्येन ब्रह्मवादिमहर्षिभिर्विशिष्टानुभवेन यः साक्षात्कृतो वेदान्तविषयस्तस्याऽतिसुगमतया व्याख्यानमुपलभ्यते। यद्यप्यत्र सर्वाण्येव पद्यानि, न कश्चिद्गद्यो भागस्तथापि येऽल्पीयसोमपि संस्कृतभाषा मर्यादां विदन्ति तेऽत्रत्याधिकतरपद्यानां मूलादेवार्थं ज्ञास्यन्ति। भाष्यं तु तात्पर्यप्रकाशनाय किञ्चिदपि संस्कृतमविजानतां बोधाय दुर्बोध्यच्छन्दसामर्थप्रकाशनाय च मयारब्धम्। अत्र षडध्यायास्तत्राद्ये जीवेश्वरप्रकृतीनां सर्वकार्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्य सर्वविधं कारणत्वं त्रयाणां भेदबोधेन विशेषतश्चेश्वर-स्वरूपबोधेन च जीवस्य सर्वविधदुःखहानलक्षणो मोक्षः, द्वितीय ईश्वरबोधेन जीवमोक्षाय योगाभ्यासप्रकारः, तृतीय-चतुर्थयोः प्रार्थनास्तुत्यादिपुरस्सरं विशेषेणेश्वरस्य स्वरूपं गुणाः कर्माणि च, पञ्चमे जीवेश्वरयोर्लक्षणं स्वरूपभेदो जीव-स्य भेदश्च, षष्ठे च ग्रन्थोपसंहारो मोक्षस्य स्वरूपं प्रकारश्चेति सर्वमेतत्षडध्यायेषु कथ्यते विशेषेण। सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इति वैदिकं सिद्धान्तमवगच्छद्भिर्विपश्चिद्भिर्यैरत्र भाष्ये मनुष्यस्य मम दोषा नाश्चर्यावहा मन्तव्याः॥

भाषार्थः—यह श्वेताश्वतरोपनिषद् वाजसनेयादि दश उप-निषदों की अपेक्षा यद्यपि पीछे बनी है इसी से जहां दश का नाम आता है वहां इसकी गणना नहीं है तथापि इस उपनिषद् में अधि-कता से वेद मन्त्रों के रखने और वेद का आशय लेकर ही विषय का स्पष्ट वर्णन होने से अतिप्राचीनता और श्रेष्ठता इसकी सिद्ध है। इसमें जीव, ईश्वर और प्रकृति इन तीनों पदार्थों का अनादि-पन अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा अत्यन्त स्पष्टता के साथ प्रतीत कराया है। जीवात्मा का भिन्न लक्षण और स्वरूप इस पुस्तक में स्पष्ट भेद के साथ दिखाया और परमात्मा के स्वरूप का निरूपण करना अन्य उपनिषदों के समान इसका भी प्रधान विषय है। इस पुस्तक में किसी का इतिहास प्रधान नहीं है किन्तु अनेक ब्रह्मवादी मह-र्षियों ने विशेष अनुभव के साथ जिस विषय को ध्यानयोग द्वारा साक्षात् हस्तामलकवत् जाना था उस सामान्य वेदान्त विषय का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें अतिसुगमता के साथ व्याख्यान किया है। यद्यपि इसमें सभी श्लोकों का पद्य भाग में वर्णन है गद्य भाग कुछ नहीं तथापि जो लोग संस्कृत की थोड़ी भी रीति जानते हैं वे भी अधिकांश श्लोकों का अर्थ मूल से ही जान सकते हैं। पर इसका विशेष भीतरी अभिप्राय खोलने, कुछ भी संस्कृत न जाननेवालों के लिये और कठिन मन्त्रों का अर्थ खोलने के लिये मैंने भाष्य किया है। प्रत्येक विषय का तत्त्वाशय ही समझना कहना लिखना कठिन होता है। इस ग्रन्थ में छ अध्याय हैं। जिनके प्रथमाध्याय में जीव ईश्वर और प्रकृतिनामक पदार्थों को सब कार्य पदार्थों का कारण ठहराना, तथा तीनों के भेद बोध से और विशेष कर ईश्वर के ज्ञान से सब प्रकार के दुःखों से छूटना रूप जीव का मोक्ष, द्वितीयाध्याय में ईश्वर ज्ञान के द्वारा जीव की मुक्ति होने के लिये योगाभ्यास का वर्णन, तृतीय चतुर्थ अध्यायों में स्तुति प्रार्थना पूर्वक विशेष कर ईश्वर के स्वरूप, गुणों और कर्मों का वर्णन, पञ्चमाध्याय में जीव ईश्वर दोनों का भिन्न २ लक्षण और स्वरूप तथा ईश्वर से जीव का स्पष्ट भेद और छठे अध्याय में ग्रन्थ का उपसंहार नाम समाप्ति, मोक्ष के स्वरूप और प्रकार का यह सब विषय छ अध्यायों में विशेष कर वर्णन किया है "सत्य ही देव और मिथ्या मनुष्य कहाते" इस वेद के सिद्धान्त को जानते हुए विद्वानों को इस मुझ अल्पज्ञ मनुष्य के किये भाष्य में दोषों का दीखना आश्चर्य न मानना चाहिये ॥

भवन्मित्रो—भीमसेन शर्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

* ओ३म् *

अथ कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्यम् ॥

ओ३म्—ब्रह्मवादिनो वदन्ति । किं कारणं ब्रह्म, कुतः स्म जाता, जीवाम केन, क्व च सम्प्रतिष्ठाः । अधिष्ठिताः केन, सुखेतरेषु वर्त्तामहे, ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥१॥

ब्रह्मवादिनो महर्षयो वाग्व्यापारेणान्यवाच्यापेक्षया ब्रह्मैवाधिक्येन वदितुं शीलाः शुद्धाः पुरुषाः परस्परमेकीभूत्वा वदन्ति । अस्य चराचरदृश्यस्य किं ब्रह्म कारणमाहोस्विदन्यदिति । अथवा किमुपादानकारणं ब्रह्माहोस्विदन्यदिति प्रश्नः । कुतो वयं जाताःस्म केन कारणेन वयं शरीरधारिणः कृताः, केन च कारणभूतेन वयं जीवामः क्व चाधारभूते प्रलयावसरे वयं प्रतिष्ठिता भवामः । केनाधिष्ठिना नियता वयं सुखेष्वितरेषु दुःखेषु च वर्त्तामहे । हे ब्रह्मविदो ब्रह्मज्ञानिनः ! भवत्कृपातो वयमेतां व्यवस्थां लभेमहि जानीयाम ।

भा०—अत्र पञ्च प्रश्नास्तेषु प्रथमः सर्गारम्भे जडस्य सं-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सारस्थ कारणजिज्ञासायां द्वितीयः प्रकृतिपुरुषसंयोगहेतुजिज्ञासायां तृतीयः स्थितिदशायां कारणं ज्ञातुं चतुर्थः प्रलयावस्थायां कारणं ज्ञातुम् पञ्चमश्च कर्मफलास्तौ कारणं विज्ञातुमेवं च सर्वदैव तत्त्व ज्ञातुं मनुष्यैरीक्षणमारब्धव्यमित्याशयः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(ब्रह्मवादिनो वदन्ति) वाणी के व्यवहार से ईश्वर विषय की ही अधिक चर्चा करने के स्वभाववाले शुद्ध महर्षि लोग परस्पर मिल कर विचार करते वा कहते हैं कि इस चराचर संसार का (किं कारणं ब्रह्म ?) क्या ब्रह्म ही कारण है। अथवा अन्य कोई अथवा यह भी प्रश्न का अर्थ हो सकता है कि कि इस जगत् के उपादान निमित्तों में से ब्रह्म कौन कारण है ? (कुतो जाताः स्म) हम सब शरीरधारी किस से उत्पन्न हुए हैं ? (केन जीवाम) हम सब किस की सत्ता से जगत् की स्थितिदशा में जीवित रहते हैं ? (क्व च सम्प्रतिष्ठाः) और प्रलय के समय किस आधार पर हम सब रहते हैं? (केनाधिष्ठिताः सुखेतरेषु वर्त्तामहे) और किसके नियत किये हुए हम लोग सुख दुःखों में प्रवृत्त हो रहे हैं अर्थात् हम को सुख दुःख कान भुगाता है? हे (ब्रह्मविद) ब्रह्मज्ञानी लोगो ! हम सब लोग (व्यवस्थाम्) इस विषय की व्यवस्था अर्थात् समाधान को आपकी कृपा से ठीक ठीक जानें वा जान सकें ॥

भा०—इस आरम्भ के मन्त्र में पांच प्रश्न हैं। उन में पहिला सृष्टि के आरम्भ समय जड़ संसार का कारण जानने की इच्छा से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरा प्रश्न प्रकृति पुरुष के संयोग का हेतु जानने के लिये तीसरा जगत् की स्थितिदशा का कारण जानने को चौथा प्रलय दशा में जीव का आधार जानने और पाँचवाँ कर्मफल प्राप्ति में कारण जानने के लिये है। इसी प्रकार सब काल में सभी विचारशील विद्वान् मनुष्यों को गूढ़ विषयों का ठीक तत्त्व जानने के लिये समीक्षण वा आन्दोलन करना चाहिये ॥ १ ॥

कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम् । संयोग एषां न त्वात्मभावादात्माऽप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥ २ ॥

कालः, स्वभावोऽग्नेरुष्णत्वादिकरूपो नियतिः पुण्यपापलक्षणं नियतिविपाकं संचितं कर्म यदृच्छा वाऽऽकाशीदीनि भूतानि यद्वा पुरुषो जीवात्माऽस्य सर्वस्य योनिः कारणमाहोस्विदेषां कालादीनां संयोगो योनिरिति विमर्शे प्रवृत्ते न योनिरिति पदद्वयं प्रत्येकेन कालादिना सम्बध्यते। कालो न योनिः स्वभावो न योनिरित्येवम् । सुखदुःखहेतोः स्वकर्मोपार्जितेष्टानिष्टफलभोगेषु बद्धत्वादनीशः पराधीन आत्मापि जीवोऽपि न योनिरात्मभावादात्मत्वेन सर्वव्याप्तत्वेन सर्वनियन्तृत्वेन न कोऽपि कालादिर्जीवो वास्य कारणमिति ॥

भा०—यद्यपि कालादीनि पृथक्पृथङ्मिलित्वा वाऽस्य जगतो निमित्तान्युपादानानि वा कानिचित्कारणानि भवन्ति तथापि तेषां सापेक्षत्वात्पराधीनत्वात्सातिशयशक्तिमत्त्वान्निर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तिशयशक्तिमदेव सर्वनियन्तृ किमपि कारणानामपि तेषां कारणं सम्भवत्येतच्च न त्वात्मभावादिति कथयता सूचितम् ॥२॥

भाषार्थः—(कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा) क्षणादि काल का परिवर्त्तन बदलना, स्वभाव—जैसे अग्नि की उष्णता अर्थात् अग्नि का स्वाभाविक गुण जैसे उष्णता गर्मी है, पुण्य पाप रूप नियतफल को अवश्य देनेवाला संचित वासनारूप कर्म, अथवा यदृच्छा नाम ईश्वर की इच्छा (भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्यम्) आकाशादि सूक्ष्म भूत अथवा पुरुष नाम जीवात्मा क्या इन कालादि में से कोई एक २ इस प्रत्यक्ष जगत् का योनि नाम कारण है ? अथवा (एषां संयोगः) इन सबका संयोग सृष्टि का कारण है ? ऐसे विचार की प्रवृत्ति में (न) नहीं अर्थात् कालादि एक २ वा इनका संयोग दोनों ही सृष्टि के कारण नहीं अर्थात् (आत्मभावात्सुखदुःखहेतोरात्माप्यनीशः) जैसे अपने संचित इष्ट अनिष्ट कर्मफल भोगों में फँसा होने से जीवात्मा पराधीन हुआ किसी कार्य का स्वतन्त्र कारण नहीं होता वैसे पराधीन कालादिक भी सृष्टि के कारण नहीं हो सकते। क्योंकि इनमें सर्वत्र व्याप्ति सर्वनियन्तृता सबको अपने आधीन कर लेने की अनन्तशक्ति नहीं है। अर्थात् कालादि जड चेतन आत्मभाव नाम सर्वव्याप्त न होने से प्रबलता वा प्रधानता के साथ स्वतन्त्र सृष्टि के कारण नहीं किन्तु पराधीनता से गौण कारण तो अवश्य हैं यह बात (आत्मभावात्) पद से जतायी है ॥

भा०—यद्यपि कालादि जड़ और चेतन जीवात्मा ये दोनों ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथक् २ वा मिल कर इस जगत् के निमित्त वा उपादान भिन्न २ कारण हैं जिसमें काल, नियति, यदृच्छा और जीवात्मा ये निमित्त तथा स्वभाव और भूत सृष्टि के उपादान कारण हैं। तो भी उनके सापेक्ष और पराधीन होने तथा परिमित अल्प शक्तिवाले होने से असीम अपरिमित शक्तियुक्त कोई सर्वनियन्ता ही उन कालादि कारणों का भी कारण ठहरता है यह बात (नत्वात्मभावात्०) कहने से जतायी गयी है। अर्थात् एक परमेश्वर ही सबका मूल प्रधान कारण है क्योंकि उसके बिना काल प्रकृति और जीवादि कारण सब मिल कर भी सृष्टि नहीं कर सकते ॥ २ ॥

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् । यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥ ३ ॥

अ०—एवमुक्तप्रकारेण विमर्शे प्रवृत्तास्ते ब्रह्मवादिनो ध्यानयोगानुगताः किं कारणमिति ध्येये लक्ष्ये योगेन समाधिनाऽनुगता ज्ञेयविषयानुगतवृत्तयः स्वगुणैः स्वस्यापरिमेयैर्ज्ञातुमशक्यैः सर्वज्ञत्वसर्वशक्तित्वादिभिरचिन्त्यैर्गुणैर्निगूढां नितरां संवृतां गुप्तां देवस्य देवानामपि देवस्य निरपेक्षदेवत्वस्यात्मशक्तिं सातत्येन सर्वगतां शक्तिं सूक्ष्मविचारेणात्मन्येवापश्यन् ज्ञातवन्तः। गुणानां व्यक्तावेव सर्वो गुणी व्यज्यते यस्य च गुणा एवाचिन्त्यास्तस्य स्वरूपमप्यचिन्त्यमेव भवति तेन स्वगुणैर्निगूढैरेव निगूढां शक्तिं ज्ञातवन्त इति योज्यम्। न च

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोऽपि ध्यानयोगानुगतिमन्तरेण तच्छक्तिं कथमपि ज्ञातुमर्हति। यः कोऽपि निरतिशयसर्वज्ञः सर्वशक्तिरेकस्तानि कालादीनि कालात्मयुक्तानि जडचेतनभेदभिन्नानि निखिलानि सर्वाण्येव कारणान्यधि स्वस्यानपेक्षनिरतिशयप्रभुत्वेन स्वायत्तीकृत्वा तिष्ठति स एव सर्वकारणानामपि कारणं न च तत्सत्तयाविना कालादीनि समस्तानि व्यस्तानि वा किमपि कर्त्तुं शक्नुवन्ति। यस्मिन्नसति यन्न भवति सति च भवति तत्तस्य कारणम्॥

भा०—अत्र च स्वभावपदेन प्रकृतिरेव वक्तुं शक्यते—अग्नौ यत्स्वाभाविकमौष्ण्यं सा च प्रकृतिरेव। प्रकृतिदशायामव्यक्ता एव गुणाः स्थूलभूतपरिणामदशायां व्यज्यन्ते। भूतपदेन च तन्मात्राख्यसूक्ष्मभूतानामुपादानत्वं बोध्यम्। अनादिकालिकसर्गप्रलययोः स्रष्टुः प्रयोजनाभावप्रदर्शनार्थो यदृच्छा शब्दः। अत्र गौणप्रधानभावप्रदर्शने तात्पर्यं न च प्रकृत्यादिकारणानि परमात्मत उत्पद्यन्त इति भ्रमितव्यम्। सर्वकारणेषु निरपेक्षनिरतिशयेश्वरत्वेन परमात्मनः प्राधान्यमुपादायैव "सर्वाः सत्यविद्या ये च पदार्था विद्यया विज्ञायन्ते तेषां सर्वेषामादिमूलं परमेश्वरोऽस्ति" इत्ययं नियम आर्यवर्यदयानन्दादिस्वामिना स्थिरीकृतः। मूलपदं चात्र प्रधानार्थपरं बोध्यम्॥३॥

भाषार्थः—इस उक्त प्रकार विचार में प्रवृत्त हुए (ते) उन ब्रह्मवादी लोगों ने (ध्यानयोगानुगताः) कारण क्या है? यह जानने के लिये विचारणीय लक्ष्य वस्तु पर एकाग्र समाधि द्वारा अनुकूल चित्त वृत्तियों को लगाते हुए (स्वगुणैर्निगूढां देवात्मशक्तिमपश्यन्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कठिनता से जानने योग्य सर्वज्ञ सर्वशक्तिपन आदि अपरिमित उस देवों के भी देव निरपेक्ष देवतापन से युक्त ईश्वर के गुणों के प्रकट न होने से छिपी हुई अप्रसिद्ध सूक्ष्म गुप्त उसकी आत्मशक्ति को ज्ञानदृष्टि से देखा। अर्थात् गुणों की प्रकटता में ही सब गुणी प्रकट होता और जिसके गुण अचिन्त्य होते उसका स्वरूप भी अचिन्त्य ही होता है। इस कारण उसके गुप्त गुणों से ही गुप्त शक्ति को देखा ऐसी योजना लगाओ। कोई भी पुरुष ध्यानसमाधि द्वारा अधिक काल तक सोचे विना उसकी शक्ति को अपने विचार से ठीक नहीं बैठा सकता (यः) जो कोई निरतिशय सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् (तानि कालात्मयुक्तान्यखिलानि कारणानि—एकोऽधितिष्ठति) एक ही काल और जीवादि जड़ चेतन भेदों से भिन्न सभी प्रकार के स्थूल सूक्ष्म उन सब कारणों को अपनी प्रबल शक्ति से दबा के सबका स्वामी बन कर सर्वत्र ठहरा अचल व्याप्त सब में ठसाठस भरा है सब ओर से सबको घेरे बैठा है वही सब कारणों का भी कारण है उसकी सत्ता के विना कालादि भिन्न २ वा मिल कर भी कुछ नहीं कर सकते। जिसके होने पर जो होता और न होने पर नहीं होता वह उसका कारण होता इस हेतु से ईश्वर ही सब सृष्टि का मूल कारण है ॥

भा०—यहां स्वभावपद से प्रकृति का ग्रहण है। अग्नि में जो स्वाभाविक उष्णता है वही उसकी प्रकृति है। प्रकृति दशा में अव्यक्त ही गुण स्थूल भूतों की रचना के समय अग्नि आदि में प्रकट हो जाते इसी का नाम स्थूल सृष्टि है। भूतपद से (कालः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वभावो०) मन्त्र में सूक्ष्म भूत नामक तन्मात्राओं को कारण कहा जानो। अनादि काल से प्रवृत्त सृष्टि और प्रलय के करने में स्रष्टा ईश्वर का कोई विशेष प्रयोजन नहीं यह दिखाने के लिये वहां यदृच्छा शब्द कहा है। यहां कारणों की गौणता प्रधानता दिखाने में ग्रन्थकार का तात्पर्य है किन्तु प्रकृति आदि जगत् के उपादान वा निमित्त कालादि भी ईश्वर से उत्पन्न होते होंगे ऐसा भ्रम नहीं करना क्योंकि सब कारणों में निरपेक्ष और निरतिशय कारणता होने से परमात्मा की प्रधानता को सर्वोपरि प्रबल मान कर ही "सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है" यह नियम सर्वोत्तमार्य्य स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने स्थिर किया था और मूल पद यहां प्रधानार्थपरक जानो क्योंकि आदि पद कारण के लिये है॥ ३॥

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्द्धारं विंशतिप्रत्यराभिः। अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम्॥ ४॥

अ०-य एकस्तानि निखिलानि कालात्मयुक्तानि कारणान्यधितिष्ठति स चोपनिषत्सु प्रकारद्वयेन प्रतिपाद्यते-जगत्सम्बन्धं विहाय केवलस्वरूपमात्रेण क्वचिद्व्याख्यानप्रकारःक्वचिच्च-"एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपंरूपं प्रतिरूपो बहिश्च" इति व्याप्य व्यापकरूपैकतया व्याख्यानम्। यत्रैक्यं तत्रापि स्वरूपतस्तयोर्भेदोऽनिवार्य एव। यथा पृथिव्यां व्याप्तान्याकाश-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाय्वग्निजलानि स्वरूपतः पृथङ् नोपलभ्यन्ते तथापि भेदोऽस्त्येव तथैवात्रापि सर्ववस्तुषु व्याप्तं तत्तद्रूपाभिन्नमप्रतीयमानमपि भिन्नं प्रत्येतव्यमेवमत्र ब्रह्मणा व्याप्तं तस्य चक्रं ब्रह्माण्डमस्मिञ्चतुर्थपद्ये द्वयोरैकरूप्येण व्याख्यायते । प्रकृतिरव्यक्तमव्याकृतं परमाणवाख्यं मायाऽभिधं वैकं सर्वस्य स्थूलसूक्ष्मस्य कारणमुपादानमेव नेमिस्थानीयमस्य तमेकनेमिम् । त्रिवृतं त्रिभिः सत्त्वरजस्तमोभिः प्रकृतिगुणैर्वृतमाच्छादितम् । ज्ञानेन्द्रियकर्मेन्द्रियभेदेन दशेन्द्रियाण्येकादशं मनः पञ्चभूतान्येवं षोडश विकारा अन्तोऽवसानं विस्तारसमाप्तिर्यस्य तादृशं षोडशान्तं यद्वा प्रश्नोपनिषदुक्तषोडशकला अंशा अन्तोऽवसानं पूर्तिरस्य । शतस्यार्द्धं पञ्चाशदरा यस्य तं शतार्द्धारं-तत्र पञ्चविपर्ययभेदाः शक्तेरष्टाविंशतिभेदास्तुष्टेर्नवाष्टौ च सिद्धय इति पञ्चाशत् । तमो मोहो महामोहस्तामिस्रोऽन्धतामिस्र इति पञ्चविधाऽविद्या । मनोबुद्धिरहङ्कारः पञ्चतन्मात्राणीत्यष्टप्रकृतिष्वात्मबुद्धिस्तमोऽष्टविधम् । अणिमाद्यष्टसिद्धिषु सामर्थ्यप्राप्तिरष्टविधो मोहः पञ्चसु प्रत्यक्षेषु पञ्चस्वानुश्रविकेषु च शब्दादिविषयेषु भोगोत्कण्ठा दशविधो महामोहः । दशसु दृष्टानुश्रविकविषयेष्वष्टविधैरैश्वर्यैः प्रयतमानस्य तेषामसिद्धौ यः क्रोधः सोऽष्टादशविधस्तामिस्रः । अष्टविधैश्वर्येण दृष्टानुश्रविकदशविषयेषु भोगायोपस्थितेष्वर्द्धभुक्तेष्वभुक्तेषु वा मृत्युना ह्रियमाणस्य यः शोकः "अहो ! महता श्रमेण क्लेशेन च समुपार्जिता मयेमे भोगाः सन्निहित-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्चायं मरणकालः पश्यतो मम सर्वमिदं प्रेयः प्रलीयते नात्र किमपि कर्त्तुं शक्त इति शोकसागर एव निमज्जामि" जायते सोऽन्धतामिस्र इति गद्यते। इत्येवमन्धतामिस्रोऽप्यष्टादशविध एवास्ति तथासत्यविद्या द्वाषष्टिभेदा सम्पद्यन्ते। मूकत्वाद्यभावो दशेन्द्रियशक्तयो नवतुष्टिषु चैकैकस्यां पुष्टौ द्वे द्वे शक्ती इत्यष्टादश इत्येवमष्टाविंशतिशक्तयः। नवविधा तुष्टिर्यथा— कश्चित्प्राकृतजगतस्तत्त्वमसारत्वं दुःखहेतुत्वं च सम्यग्बुद्ध्वा कृतार्थोऽस्मीति तुष्यति तत्त्वं ज्ञातुं शक्त इति च मन्यते स च पुनर्विरक्तः सन् विरक्तोऽहं सर्वं त्यक्तुं शक्तो वेति मन्यते तुष्यति च। एवमत्र द्विविधा शक्तिरस्ति। अन्यः कश्चित् किं जगतस्तत्त्वज्ञानेन किं वा संन्यासाश्रमोपादानेन मुक्तिस्तु स्वत एव गङ्गादर्शनादिना भवतीति मत्वा तुष्यति। अपरः कोऽपि मन्यते न हि भाग्यमन्तरेण किमपि प्राप्तुं शक्यं यदि भाग्ये मोक्षोऽस्ति तर्हि भविष्यत्येवेति परितुष्यति। "न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यती"ति मत्वा सङ्गदोषदर्शनादुपारम्य कश्चित्तुष्यति। इमाश्चतस्रस्तुष्टयो विषयाणामर्जनरक्षणादिषु हिंसादिदोषदर्शनेनास्वीकरणजन्याः पञ्च तुष्टय इति नव तुष्टयो व्याख्याताः। जन्मान्तरसंस्कारप्राबल्यादनायासेन प्रकृत्यादिविषयं तत्त्वज्ञानं जायते सा प्रथमा सिद्धिः शब्दानामभ्यासमन्तरेण पूर्वकालीनसंस्कारप्राबल्याच्छब्दश्रवणमात्राज्ज्ञानमुत्पद्यते सा द्वितीया सिद्धिः शब्दविषया शास्त्राभ्यासाद् यत्प्रकृष्टं ज्ञानमुत्पद्यते सा तृतीया। आध्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्मिकादिसुखदुःखसहिष्णुतयोत्पन्नं ज्ञानं त्रिविधा सिद्धिर्शा-
नस्य, सुहृत्सङ्गेन या ज्ञानस्य सिद्धिः सा च सप्तमी। आचा-
र्याय हितवस्तुदाने या विद्यासिद्धिः साऽष्टमी। एवं पञ्चाश-
दराः सभेदाः परिगणिता भवन्ति। दशेन्द्रियाणि तेषां च शब्द
स्पर्शरूपरसगन्धवचनादानविहरणोत्सर्गानन्दा दश विषया-
स्तान्येव विंशतिः प्रत्यरा अराणां दाढर्याय कीलकाइव भव-
न्ति तादृग्भिर्युक्तम्। अष्टसंख्यापरिमाणमस्य सोऽष्टकस्ता-
दृशैः षड्भिरष्टकैर्युक्तम्। पञ्च तन्त्वानि मनो बुद्धिरहङ्कार
इति प्रकृत्यष्टकम्, त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोऽस्थिमज्जशुक्राणि
धात्वष्टकम्। अणिमाद्यैश्वर्याष्टकम्, धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्या-
धर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्या भावाष्टकम्। अष्टौ वसवइति
वस्वष्टकम्। क्षान्तिर्दयाऽनसूयाशौचमनायासो मङ्गलमकार्प-
ण्यमस्पृहेति गुणाष्टकम्। एतैः षड्भिरष्टकैर्युक्तम्। विश्वानि
सर्वाणिस्वर्गनरकादीनि रूपाण्यस्य एकस्तृष्णारूप एव पाशो
बन्धनमस्य तद् विश्वरूपं चैकपाशं च विश्वरूपैकपाशम्।
उत्पत्तिस्थितिलयास्त्रयो मार्गभेदा अस्य द्वे शुभाशुभे मिश्रिते
कर्मणी यस्य तादृशैकमोहयुक्तमेवं भूतं ब्रह्मणश्चक्रमिव ब्रह्मा-
ण्डमधीमः स्मराम इत्युत्तरपद्येनान्वयोऽवगन्तव्यः॥

भा०—नात्र चक्रपदमालङ्कारिकं यत्कुम्भकारशकटादीनां
चक्राणि सातत्येन भ्रान्तानि दृष्ट्वा तद्वद् ब्रह्माण्डस्य चक्रत्वं
ग्रन्थकृता कल्पितमिति। अपित्वनादिवेदाशयेन ब्रह्माण्डस्या-
विरतभ्रान्तस्य यच्चक्रत्वं स्वतः सिद्धं तद्वदेवं गतिं लक्षय-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्भिर्विपश्चिद्भिर्यैः शकटाङ्गादीनामपि चक्रत्वमुपकल्पितम्। तेन ब्रह्माण्डस्य प्रधानं चक्रत्वमस्ति। कुम्भकारादिचक्राण्यत्यल्पकालं भ्रमन्ति संसारचक्रं च प्रतिकल्पारम्भे स्वाभाविकेक्षणेन परमात्मना सकृदेव भ्राम्यते तच्च तन्नियमबद्धं प्रलयावधि सातत्येन भ्राम्यति न कदापि मध्ये तस्य विरामः केनापि कर्त्तुं शक्यते। ध्यानयोगेन तत्त्वज्ञा एव तच्चक्रगतिं स्वात्मन्यालोचयन्ति। ये च केऽपि कदाचिच्चक्रगतिमालोचयन्ति ज्ञानचक्षुषा सम्यक् पश्यन्ति त एव तस्मात्प्राप्त विरामाः शाम्यन्ति दुःखान्मुच्यन्ते च यद्यपि तेषां दृष्टौ चक्रभ्रान्तिः समाप्यते तथाप्यन्यसाधारणलौकिकपुरुषापेक्षया तत्रापैवाविरततया भ्राम्यति तस्मादनाद्यनन्तकालीना चक्रगतिरस्ति। यद्यपि चक्रपदमत्र पद्ये नास्ति तथापि नेम्यरादिलिङ्गैस्तदुपादानं स्फुटमेवास्ति॥ ४॥

भाषार्थः—जो एक ईश्वर काल तथा आत्मा जीवादि उन सम्पूर्ण सृष्टि के कारणों का अधिष्ठाता है। उपनिषद् ग्रन्थों में उस का दो प्रकार से व्याख्यान किया गया है। कहीं तो संसार के साथ व्यापक उत्पादक पालकादि सम्बन्ध को छोड़ के केवल स्वरूपमात्र से उसका वर्णन है और कहीं "वह ईश्वर सब पदार्थों में उन्हीं २ के रूप से व्याप्त हो रहा है" इस कथन के अनुसार व्याप्य व्यापक रूप की एकता के साथ वर्णन है। जहां व्याप्त होने से जगत् के साथ ईश्वर की एकता है वहां भी स्वरूप से दोनों का वास्तविक भेद रहता ही है। जैसे पृथिवी में व्याप्त पृथिवी के रूप से भिन्न

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रतीत न होनेवाले आकाश वायु अग्नि जल भिन्न २ माने ही जाते हैं वैसे यहाँ भी सब पदार्थों में व्याप्त उन २ के रूप से भिन्न प्रतीत न होते हुए भी ईश्वर को भिन्न मानना चाहिये इस प्रकार ब्रह्म से व्याप्त उसके ब्रह्माण्डरूप चक्र का इस चौथे मन्त्र में दोनों व्याप्य व्यापक की एक रूपता मानकर व्याख्यान किया गया है (तमेकनेमिम्) सबके अधिष्ठाता स्वामी उस ईश्वर से व्याप्त प्रकृति प्रधान अव्याकृत अव्यक्त परमाणु वा माया आदि जिसके नाम हैं ऐसा एक सूक्ष्म उपादान कारण ही जिसकी नेमि नाम नाह है (त्रिवृतम्) सत्त्व रजस् तमस् तीनों प्रकृति के गुणों से युक्त वा आच्छादित षोडशान्तम्) पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय ग्यारहवां मन और पृथिव्यादि पांचभूत इन सालह विकाररूप पदार्थों में जिसका अन्त विस्तार की समाप्ति पूर्णता होती अथवा प्रश्नोपनिषद् में कही सोलह कलाओं में जिसका अन्त है (शतार्द्धारम्) सौ के आधे पचाश अरा जिसमें लगे हैं। पांच मिथ्या ज्ञान वा अविद्या के भेद अट्ठाईस प्रकार की शक्ति, नौ प्रकार की तुष्टि और आठ प्रकार की सिद्धियां ये ब्रह्माण्डरूप पहिये के पचास अरा हैं। उनमें तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र ये पांच अविद्या के भेद हैं जिनमें से मन, बुद्धि, अहङ्कार, पांचतन्मात्र इन आठ प्रकृतियों में आत्मबुद्धि होना अर्थात् इनको आत्मा समझना आठ प्रकार का तम. अणिमा—छोटा हो जाना, महिमा—बड़ा हो जाना, गरिमा—भारी हो जाना, लघिमा—हलका हो जाना, प्राप्ति जिसको चाहे पकड़ वा छू सके, प्राकाम्य—इच्छा का विघात न होना, ईशित्व—सब अपने आधीन

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दबा लेना और वशित्व जिसको चाहे वशीभूत कर सकना इन आठ सिद्धियों में सामर्थ्य को प्राप्त होना यह आठ प्रकार का मोह, इस जन्म में मिलने योग्य प्रत्यक्ष और जन्मान्तर में प्राप्त होने योग्य स्वर्गादि सम्बन्धी आनुश्रविक शब्दादि दश विषयों में भोगने की उत्कट इच्छा दश प्रकार का महामोह, दृष्टादृष्ट शब्दादि दो प्रकार के दश विषयों में आठ प्रकार की सिद्धियों के साथ भोगने का प्रयत्न न करते हुए पुरुष के विषय भोगों की सिद्धि न होने पर अर्थात् विघ्नादि के कारण उसको विषयभोग प्राप्त न होने पर जो क्रोध होता वह अठारह प्रकार का तामिस्रनामक मिथ्याज्ञान तथा वैसे ही आठ सिद्धियों के द्वारा भोगने के लिये उपस्थित हुए प्रत्यक्ष परोक्ष दश विषयों का आधा भोग होने वा कुछ भी न भोग पाने पर ही मृत्यु ने चोटी पकड़े पुरुष को जो शोक होता "कि हा !!! मैंने बड़े परिश्रम और बड़े कष्ट से ये भोग के सामान संचित किये थे सो अब यह मेरे मरने का समय आगया इनसे कुछ भी सुख न भोग पाया मेरे देखते ही मेरा यह प्रिय भोग सब नष्ट हुआ जाता है। हाय अब क्या करूँ अब कुछ नहीं कर सकता इससे शोकसमुद्र में ही डूबता हूँ" ये अठारह प्रकार का अन्धतामिस्र दुःख वा अविद्या है। इस प्रकार मिथ्याज्ञान वा अविद्या के ६२ बासठ भेद होते अर्थात ६२ प्रकार का मिथ्याज्ञान हो जाता है। गूंगा आदि न होना इन्द्रियों की दश शक्ति और नव तुष्टियों के साथ अट्ठारह, एक एक पुष्टि के साथ दो २ प्रकार की शक्ति जैसे कोई धन के विना संतुष्ट है तो धन के अभाव में दुःख

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न व्यापने की शक्ति और धन के मिलने पर त्याग वा उपेक्षा कर देने की शक्ति इस प्रकार एक २ तुष्टि से दो २ शक्ति सम्बन्ध रखती हैं। इस प्रकार अट्ठाईस शक्ति कहाती वा मानी जाती हैं। नव प्रकार की तुष्टि वा सन्तोष यह है कि कोई मनुष्य संसार के तत्त्व, असारता और दुःख हेतु को सम्यक् जानकर मैं कृतार्थ हूँ ऐसा विचार कर संतुष्ट होता है और मैं तत्त्व के जानने में समर्थ हूँ ऐसा मानता है वही फिर विरक्त होकर मैं विरक्त हूँ सब त्याग सकता हूँ ऐसा मानता और तुष्ट होता है ऐसे यहां दो प्रकार की शक्ति है। अन्य कोई कहता है कि जगत् के तत्त्वज्ञान से वा संन्यासाश्रम के ग्रहण से क्या प्रयोजन है? मुक्ति तो तीर्थयात्रा गङ्गास्नानादि से स्वयमेव ही हो जाती है ऐसा मान कर सन्तुष्ट हो जाता है। तथा अन्य कोई मानता है कि भाग्य के बिना कुछ नहीं होता यदि हमारे भाग्य में मोक्ष है तो हो ही जायगा। ऐसा विचार स्थिर करके संतुष्ट हो जाता तथा कोई पुरुष "विषय भोगों से कामना की तृप्ति होती नहीं" ऐसा मान कर विषयों के संग में दोष को देख के भोगों से हटकर सन्तुष्ट होता है यह चार प्रकार की तुष्टि तथा विषयों का संचय और रक्षादि करने में हिंसादि दोष देख के उन का स्वीकार न करने से पाँच प्रकार की तुष्टि उत्पन्न होती ऐसे ये नव तुष्टि हो जाती हैं। जन्मान्तर के संस्कारों की प्रबलता से सहज ही में जो प्रकृत्यादि विषयों का तत्त्वज्ञान हो जाता यह जन्मसिद्धि नामक प्रथम सिद्धि है। शब्दों का अभ्यास किये विना ही पूर्व संस्कारों की प्रबलता से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो शब्द के सुनने मात्र से अर्थज्ञान हो जाता है यह द्वितीय सिद्धि है इसी को सर्वभूतों का शब्दज्ञान कहते हैं। वेदादिशास्त्रों के अभ्यास द्वारा जो प्रबल ज्ञान प्रबल शक्ति पूर्वसंस्कारों की प्रबलता सहित प्रकट होती यह तीसरी सिद्धि, आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक इन तीन प्रकार के सुख दुःखादि द्वन्द्वों के निर्विकल्प सहनद्वारा हुई शान्ति वा सन्तोष तीन प्रकार की ज्ञानसिद्धि, मित्र वा शुद्ध हृदय पुरुषों के समागम से हुई ज्ञान की सिद्धि सातवीं तथा हितकारी दुर्लभ पदार्थ को भी विद्या-बल से लाकर गुरु को देना यह आठवीं विद्यासिद्धि है इस प्रकार ब्रह्मचक्र के पचास अरा गिनाये गये हैं। (विंशतिप्रत्यराभिः) दश इन्द्रियां और शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ये श्रोत्रादि ज्ञाने-न्द्रियों के यथासंख्य पांच विषय तथा हाथ का पकड़ना पग का चलना गुदा का त्याग उपस्थ का आनन्द और वाणी का बोलना ये कर्मेन्द्रियों के पांच विषय सब मिलके बीस प्रत्यरा नाम पचास-अराओं को पुष्ट रखने के लिये पञ्चर कहाते इनसे युक्त (अष्टकैः षड्भिः) आठ २ संख्यावाले छः अष्टकों से युक्त इनमें पांच सूक्ष्म तत्त्व, मन बुद्धि और अहङ्कार यह प्रकृत्यष्टक, त्वक् चर्म मांस रुधिर मेदा अस्थि मज्जा और वीर्य यह धातुओं का—२ अष्टक, अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशि-त्व और वशित्व ये आठ प्रकार के ३ ऐश्वर्य, धर्म ज्ञान, वैराग्य ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य अनैश्वर्य ये ४ आठभाव, आठ वसु, ५ क्षमा, दया, अनसूया, शौच, अनायास, मङ्गल उदारता,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सन्तोष यह गुणों का ६ अष्टक, इन छः अष्टकों से युक्त (विश्व-रूपैकपाशम्) स्वर्ग, नरक, पशु, पक्षी, कीट पतङ्ग, स्थावरादि नानारूपवाला, एक तृष्णा ही जिसका बन्धन है (त्रिमार्गभेदम्) उत्पत्ति स्थिति प्रलय रूप जिसके तीन मार्गभेद हैं (द्विनिमित्तैक-मोहम्) किये हुए शुभाशुभ दो प्रकार के कर्म जिसके निमित्त हैं तथा एक मोहरूप अविद्या अज्ञान से सब प्रकार ढँपा हुआ ऐसा पहिया के तुल्य ईश्वर का यह संसार चक्र है इसको ब्रह्मज्ञानी लोग ऐसा ही चिन्तन करते हैं ॥

भा०—यहां चक्र पद का अर्थ अलङ्कार से लेना आवश्यक नहीं है। कुम्हार के चाक वा गाड़ी के पहिये की तुल्यता को लेकर संसार को चक्र कहा वा माना हो सो ठीक नहीं किन्तु सनातन वेद के आशय और अनुमानादि द्वारा निरन्तर सदा भ्रमण करने परिवर्त्तित होनेवाले संसार का जो चक्रपन स्वतः सिद्ध स्वाभाविक है उसी के तुल्य दशा मानकर गाड़ी के पहिये आदि को भी विद्वानों ने चक्र माना वा कहा है। इससे ब्रह्माण्ड ही मुख्य चक्र है। कुम्हारादि के चक्र बहुत थोड़े काल तक घूमते परन्तु परमे-श्वर के स्वाभाविक ईक्षण से प्रतिकल्प के आरम्भ में संसारचक्र एक बार घुमा दिया जाता है। वह ईश्वर के प्रबल नियम से प्रलय पर्यन्त निरन्तर घूमता जिसमें अनेक असंख्य जन्म मरणादि होते रहते हैं। प्रलय से पूर्व बीच में संसार के जन्म मरणादि सम्बन्धी परिवर्त्तन प्रवाह को कोई जन रोक नहीं सकता। ध्यानावस्थ सूक्ष्म एकाग्र बुद्धि से तत्त्वज्ञानी लोग ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसारचक्र के प्रवाह को अपने आत्मा में साक्षात् देख पाते वा परख सकते हैं। और जो कोई शुभ संस्कारी पुण्यात्मा कभी इस जगत् के परिवर्त्तन प्रवाह को ज्ञानदृष्टि से सम्यक् देखते वा देख पाते हैं वे ही संसारसागर की भयंकर तरङ्गों से बचने का उपाय करते हुए शान्त होते और दुःखों से छूटते हैं। यद्यपि उन तत्त्वज्ञ लोगों की दृष्टि में संसार चक्र का घूमना समाप्त हो जाता है तथापि अन्य साधारण लौकिक पुरुषों की अपेक्षा से संसारचक्र का प्रवाह वंसाही निरन्तर बहा चला जाता है इससे सिद्ध हुआ कि बीच २ प्रलय काल में प्रवाह के रुकजाने पर भी बार २ अनादि अनन्त असंख्य सृष्टि प्रलयों का बार २ निरन्तर होत जाना भी एक चक्र प्रवाह है। इससे अनादि अनन्त संसारचक्र की गति निर्विकल्प सिद्ध है। यद्यपि चक्र पद इस श्लोक में नहीं है तथापि नेमि और अरा आदि चिन्हों से तथा छठें मन्त्र में ब्रह्मचक्र पद के स्पष्ट आने से चक्र का व्याख्यान स्फुट ही है ॥ ४ ॥

पञ्चस्रोतोऽम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्च-बुद्ध्यादिमूलाम्। पञ्चावर्त्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥ ५ ॥

अ० पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि स्रोतांसि बुद्धिप्रवाहनिस्सरण-स्थानानि यस्या अम्बुस्थानानीव तां पञ्चभूतानि पृथिव्यादी-नि योनयः कारणानि प्रवृत्तिहेतूनि तैरुग्रा वक्रा च तां, पञ्च-प्राणा ऊर्मयो यस्यां तां, पञ्चबुद्धीनां चक्षुरादिज्ञानेन्द्रियजन्य-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानानामादिमूलं कारणं मनो यस्यां तां पञ्च विषया आवर्त-स्थानीया निमज्जनहेतवो यस्यां तां गर्भजन्मजराव्याधिमरण-जन्यपञ्चमहादुःखौघानां वेगो यस्यां तां षडङ्गानि चतुश्चत्वा-रिंशच्च प्रत्यङ्गान्येवं पञ्चाशद्भेदा विभागा यस्यास्तां (तत्र ऋतस्रः शाखा मध्यं शिर इति षडङ्गानि। विंशतिरङ्गुलयः स्रोतांसि मस्तकोदरपृष्ठनाभिललाटनासाचिबुकवस्तिग्रीवाक-र्णनेत्रभ्रूशङ्खांसतण्डकक्षस्तनवृषपार्श्वस्फिग्जानुबाहूरूणीति प्रत्यङ्गानि) अविद्यादयः पञ्च क्लेशा एव पर्वाणि बन्धनानि यस्यास्ताम्। एतं नदीरूपेणावस्थितनिखिलस्य जगतो दृष्टा-न्तोदाहरणरूपं शरीरमिदमधीमः स्मराम इति ते ब्रह्मवादिनो ध्यानयोगानुगता अपश्यन्निति पूर्वेणान्वयः॥

भा०—यथा निरन्तरमहोरात्रं नदी वहत्येवं प्राणिदेहप्रधानः संसारोऽपि संसरत्येवानिशं नैरन्तर्येण तस्मादेव तस्य संसा-रत्वमन्वर्थं संघटते। अस्यां च संसारनद्यामनादिकालान्नि-मज्जन्नपि जीवो न बुध्यते न जागर्ति। कश्चिदेव कृतसाधनः सुकृतस्वदशां यदा चिन्तयति तदा स एतद्दुःखप्रधाननदीप्र-वाहान्निस्सर्त्तुमपि प्रयतत एव॥ ५॥

भाषार्थः—(पञ्चस्रोतोऽम्बुम्) पांच ज्ञानेन्द्रियों के छिद्र बुद्धिरूप अम्बु नाम जल निकलने के सोता जिसमें विद्यमान हैं (पञ्च योन्युग्रवक्राम्) पांच पृथिव्यादि भूत ही इस नदी के योनि नाम उत्पत्तिस्थान हैं जैसे हिमालय पर्वत गङ्गा नदी के निकलने का योनिनाम कारण है वैसे हम मनुष्यादि प्राणियों के शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिव्यादि भूतों से निकलते वा बनते हैं। और कारण की उग्रता तीव्रता से जैसे गङ्गादि नदियों में अनेक प्रकार की टेढ़ाई होती वैसे यहाँ भी पृथिव्यादि कारण से ही शरीरों में नाना प्रकार की कुटिलता आती है इससे हमारी देहरूप यह नदी कुटिल है (पञ्च-प्राणोर्मिम्) इस शरीरनदी में पांच प्राण ही पांच प्रकार की तरंगें हैं (पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्) ज्ञानेन्द्रियों से होनेवाली पांच प्रकार की बुद्धियों का आदि मूल जिसमें मन है (पञ्चावर्त्ताम्) पांच शब्दादि विषय जिस शरीरनदी में आवर्त्तनाम भंवर अर्थात् जीवा-त्मा को डुबाने वाले चक्कर हैं (पञ्चदुःखौघवेगाम्) गर्भवास, जन्म समय, वृद्धपन, अतिशिथिलावस्था, व्याधि-रोग और मरण इन पांच, दुःखों के कारण पापों का प्रवाह वेग से जिसमें निरन्तर बहा करता है और (पञ्चाशद्भेदाम्) जिस शरीरनदी के अंग उपांगरूप मुख्य कर पचास भेद हैं (दो हाथ, दो गोड़, ये चार शाखा एक शिर एक मदरा ये छः मुख्य अंग हैं वेद के छः अंगों से ही मनुष्य के छः अंग बने हैं क्योंकि वेद ईश्वरीय विद्या ही सब का कारण है इन छः अंगों में ४४ प्रत्यंग हैं जैसे-हाथ और पगों की बीस अंगुलियां, २१ स्नोतरूप नसें नाड़ी २२-मस्तक नाम मूर्द्धा २३-उदर २४-पीठ २५-नाभि २६-ललाट नाम माथा २७-नासिका, २८-चिबुक नाम ठोड़ी २९-बस्ति नाम पेंदन ३०-गुदी, ३१-कान ३२-नेत्र ३३-भौंहें ३४-शङ्ख ३५-कन्धा ३६-तण्ड नाम टंकना ३७-कांखें ३८-स्तन नाम थन ३९ अण्डकोष वा उपस्थ ४० पसुलियां ४१ स्फिच् नाम कटिभाग ४२ जानुनाम घोंट

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४३ बांहें ४४ दो जंघा ये चवालीस उपांग तथा पूर्वोक्त छः अंग सब पचास भेद हुए और (पञ्चपर्वाम्) और पांच अविद्यादि क्लेश जिसमें पांच गांठें हैं ऐसे नदीरूप से विद्यमान सब ब्रह्माण्ड की रचना के उदाहरण नमूनारूप इस शरीर को (अधोमः) हम ब्रह्मवादी लोग स्मरण करते हैं ऐसा वे योगी और ज्ञानी देखते जानते हैं ॥

भा०—जैसे दिन रात निरन्तर नदी बहती है ऐसे ही प्राणियों के शरीर ही जिसमें मुख्य हैं ऐसा यह सब संसार भी निरन्तर चलायमान रहता है इसी से उसका नाम संसार कहना सार्थक है। इस संसार नदी में जीव अनादिकाल से डूबता हुआ भी नहीं जागता सचेत नहीं होता किन्तु कोई उत्तम साधनवाला पुण्यात्मा पुरुष अपनी भीतरी दशा को जब सोचता है तब वह इस दुःख प्रधान नदी के प्रवाह से निकलने के लिये भी अवश्य प्रयत्न करता है ॥ ५ ॥

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते तस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे । पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥ ६ ॥

अ०—सर्वप्राणिनामजीवनमीषज्जीवनमस्मिंस्तस्मिन्सर्वाजीवे सर्वेषां प्राणिनां संस्था प्रलयो मरणं वाऽस्मिंस्तादृशे तस्मिन् पूर्वोक्ते ब्रह्मणः परमात्मनः स्वामिनो बृहन्ते महति चक्रे भ्रमणशीले संसारेऽविद्यादिक्लेशैर्हंसः स्वरूपेण शुद्धो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मलः सदसद्विवेचनशीलोऽपि जीवो भ्राम्यते। यदा स्व मात्मानं जीवं प्रेरितारमीश्वरं च मत्वा भेदेनात्मद्वयं पृथक्पृथग् ज्ञात्वा स्वात्मनि सर्वतो व्याप्तं स्वस्यातिसन्निहितं सर्वदुःखहरं परमात्मानं जुष्टः सेवनेन दीर्घकालावधि निरन्तरसेवनेन जीवोऽमृतत्वं मरणादिदुःखाभावमेति प्राप्नोति ॥

भा०—यथा नहि कोऽपि जलाशयं विहाय शुष्कस्थलाज्जलमाप्तुमर्हति तथैव सर्वदा शुद्धमुक्तेश्वरं विहाय दूरं वा मत्वा न कोऽपि मोक्षाधिकारो भवितुमर्हति। यथा चाग्निरेव शीतस्यौषधं न कोऽप्यग्निमन्तरेण शीतस्यौषधं कदापि कर्त्तुमर्हति। एवमीश्वराश्रयएव जीवात्मनः शुद्धेर्मुक्तेश्च कारणं नान्यदित्येतदेव "तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय०" इत्यादिना वेदमन्त्रेणाप्युक्तं बोध्यम् ॥६॥

भाषार्थः—(सर्वाजीवे) सब प्राणियों का जिसमें थोड़ा जीवन है (सर्वसंस्थे) सब प्राणियों का लय नाम मरण जिसमें हो जाता (तस्मिन् बृहन्ते ब्रह्मचक्रे हंसो भ्राम्यते) उस पूर्वोक्त बृहत् नाम बड़े सर्व स्वामी ब्रह्म परमात्मा के भ्रमणशील इस संसार रूप चक्र में हंस नाम स्वरूप से शुद्ध निर्मल सत्यासत्य का विवेचनशील भी जीवात्मा अविद्यादि क्लेशों से भ्रमाया जाता है (प्रेरितारमात्मानं च पृथङ्मत्वा) अपने जीवस्वरूप और प्रेरक अन्तर्यामी ईश्वर को भेद के साथ अर्थात् दोनों आत्माओं को पृथक् २ जान कर अपने आत्मा में सब ओर से व्याप्त अपने अत्यन्त समीप सर्वदुःख हरनेवाले परमेश्वर का (जुष्टः) सेवन उपा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सना करता है (ततस्तेनामृतत्वमेति) तदनन्तर उस दीर्घ काल तक निरन्तर किये सेवन वा उपासना से मरणादि सम्बन्धी महा-दुःख से छूट कर अमर हो जाता है ॥

भा०—जैसे कोई प्यासा मनुष्य जलाशय को छोड़ सूखी पृथिवी से जल को प्राप्त नहीं कर सकता वैसे ही सर्वदा सर्वथा शुद्ध निर्दोष नित्य मुक्त ईश्वर को छोड़ वा दूर मान कर कोई भी मोक्ष का अधिकारी नहीं हो सकता। और जैसे वेद के सिद्धान्तानुसार अग्नि ही शीत का औषध है इसी से किसी देश वा काल में कोई भी पुरुष अग्नि के विना शीत की निवृत्ति कदापि नहीं कर सकता इसी प्रकार ईश्वर का आश्रय वा शरण लेना ही जीवात्मा की शुद्धि निर्दोष होने और मुक्ति का कारण है अन्य नहीं यही वेद का अटल अटूट सिद्धान्त "उसी ईश्वर को जान मान वा प्राप्त होकर मनुष्य मरणादि सम्बन्धी महान् दुःखसागर से छूट सकता है किन्तु इसका अन्य कोई मार्ग वा उपाय नहीं है" इत्यादि वेद मन्त्र से कहा गया है ॥ ६ ॥

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च । अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥ ७ ॥

अ०—एतत्प्रेरितृ ब्रह्मान्यब्रह्मपदवाच्येभ्यः परमं निरतिशयब्रह्मत्वयुक्तं तूद्गीतमुत्कर्षेण वेदादिशास्त्रे गीतमुपदिष्टं "पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परागतिः" इत्यादिना,

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहि तत्सदृशं ततोऽधिकं वोपदिष्टं किमपि क्वापीति त्वर्थः। तस्मिन् ब्रह्मणि जीवेश्वरप्रकृतिभेदेन त्रयोऽवयवाः प्रलयकालेऽपि भवन्ति तत्राक्षरं चाविनश्वरं सर्वदैकरसं ब्रह्म प्रकृति पुरुषरूपभोग्यभोक्त्रोः सर्वदा जगतःकारणावस्थायामपि सुप्रतिष्ठाऽऽधारः कथ्यते। अत्र त्रिषु ब्रह्मविदो जना ध्यानेनान्तरं भेदं विदित्वा जड़चेतनस्वस्वामिरूपादिकं भेदं ज्ञात्वा वयं जीवास्तदपेक्षया नीचादपि नीचा अशक्ता तत्तु सर्वशक्ति सर्वस्वामि तत्कृपयैवास्माकं कल्याणमिति स्वस्माद्भिन्नं ज्ञात्वा समाधिपरा ब्रह्मणि लीनाः स्वरूपशून्याइव भूत्वा योनिमुक्ता जन्ममरणादिदुःखकारणाद्विमुक्ता भवन्ति॥

भा०—यद्यपि वक्ष्यमाणप्रकारेण वस्तुतो जीवब्रह्मप्रकृतयस्त्रयोऽनादिपदार्थाः। यथा च भगवद्गीतायामुक्तम्—"प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि" इतोऽग्रे परमात्मनः पृथगनादित्वमुक्तम्। तथापि प्रधानेन सहाप्रधानस्यभृत्यस्याव्यपदेशः सार्वकालिको सर्वत्रोपलभ्यते। यथा राजा गच्छति तद्वदत्रापि प्रलयावसरे स्वसहितोऽपि वेदान्तादिग्रन्थेष्वेक एवोच्यते तेन च सेनादिवद्राज्ञो भिन्नत्वबोधनाय न कोऽपि हेतुरस्तीति त्रित्वमेव सर्वदाऽनादिकालात्स्वीकार्यम्। तेषु परमात्मन एव सर्वशास्त्रानुमतमुत्कृष्टत्वं ज्ञात्वा जीवो दुःखान्मुच्यत इति॥ ७॥

भाषार्थः—(एतत्परमन्तु ब्रह्मोद्गीतम्) यह पूर्वोक्त अन्तर्यामी प्रेरक ब्रह्म, अन्य ब्रह्मपदवाच्यों से निरतिशय ब्रह्मत्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्त वेदादि शास्त्र में उत्कर्ष के साथ कहा गया है "पुरुष परमेश्वर से परे कुछ नहीं है वही सब की काष्ठा (हद्द) सीमा तथा वही सबकी परागति है" चाहे यों कहो कि सब भावोंकी अन्तिम सीमा का नाम ही ईश्वर है अर्थात् उसके तुल्य वा उससे अधिक कोई कहीं नहीं कहा गया (तस्मिंस्त्रयम्) उस एक ब्रह्म में जीव ईश्वर और प्रकृति यह तीन संख्या प्रलयकाल में भी रहती है (सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च) उन तीनों में अक्षर नाम अविनाशी सर्वदा एक रस रहनेवाला ब्रह्म, प्रकृति पुरुषरूप भोग्य भोक्ता जीव और जड़ संसार का सर्वदा कारण दशा में भी अच्छा आधार अच्छे प्रकार अपने अन्तर्गत सम्हाल के रखनेवाला होता वा कहाता है (ब्रह्मविदोऽत्रान्तरं विदित्वा) ब्रह्मज्ञानी लोग इन तीनों जीव ईश्वर प्रकृति में परस्पर अन्तर-भेद जानकर कि हम जीव लोग उसकी अपेक्षा नीच से भी नीच असमर्थ अल्पशक्ति हैं और वह ब्रह्म सर्वशक्तिमान् सर्वस्वामी है उसकी कृपा होने से ही हमारा कल्याण हो सकता है। इस प्रकार अपने से भिन्न शुद्ध सनातन ईश्वर को जानकर (ब्रह्मणि लीनास्तत्परा योनिमुक्ताः) समाधि द्वारा ब्रह्म के ध्यान में लीन और तत्पर हुए जन्म मरणादि दुःख के कारणों से मुक्त हो जाते हैं॥

भा०—यद्यपि आगे कहे प्रकार से वस्तुतः ईश्वर जीव और प्रकृति ये तीन ही पदार्थ अनादि हैं जैसा कि भगवद्गीता में कहा है (प्रकृति०) "प्रकृति और पुरुष नाम जीव दोनों को तुम अनादि जानो" इस से आगे परमेश्वर को पृथक् अनादि कहा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। तथापि प्रधान के साथ गौण वा आश्रित का नाम न लिये जाने के समान किसी महाप्रलयादि के समय में जीव और प्रकृति सहित एक ही ईश्वर कहीं कहीं कहा वा माना गया है। प्रधान ईश्वर के साथ रहते हुए गौण दोनों का नाम ही नहीं लिया इसी से आधुनिक वेदान्ती आदि को जीव तथा जगत् के कारण प्रकृति के अभाव का भ्रम हुआ और अद्वैतवाद पक्ष लेकर जीव तथा कारण को मिथ्या कहने का अवसर मिला। सो प्रधान के साथ अप्रधान का व्यवहार न होना लोक में भी प्रत्यक्ष है कि जैसे राजा जाता वा आता है इत्यादि स्थलों में राजा कहने से उसके भृत्य सेनादि भी आ जाते हैं राजा प्रधान और सेनादि गौण हैं उनका नाम नहीं लिया जाता। ऐसे सब काल में सर्वत्र ही मुख्य के साथ गौण का तिरोभाव रहता है। जैसे एक राजा कहा जाने पर भी सेनादि के भिन्न होने का खण्डन नहीं हो सकता वैसे यहां भी ईश्वर से भिन्न जीव और प्रकृति का अनादिकाल से होना सिद्ध है। उनमें से वेदादि सब शास्त्रों में कहे परमेश्वर के ही महत्त्व को जानकर जीवात्मा दुःख से छूट जाता है॥ ७॥

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः। अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाद् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ ८॥

अ०—अक्षरमविनश्वरमव्यक्तं निरतिशयसूक्ष्मं प्रकृत्याख्यं जगतः कारणं, क्षरं विनश्वरं पृथिव्यादिस्थूलं जगद्द्वयमेत-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्संयुक्तमितरेतरसंसृष्टं विश्वं सर्वमीश ईश्वरो निरतिशय-शक्तिः परमेश्वरो भरते धरति पुष्णाति च। तृतीयोऽनीशः सर्वस्वामित्वाद्रहितो जीवात्मा भोक्तृभावाद् भोगोत्कण्ठा-कारणाद्बध्यतेऽविद्यातत्कार्यदेहेन्द्रियादिभिः सम्बध्यते। पुनः स-कदापि सुकृतप्राबल्यावसरे देवं द्योतनशीलं परमात्मानं ज्ञात्वा सर्वपाशैर्बन्धनैर्मुच्यते॥

भा०—जगतः स्थूलदशायामेवानन्तभारस्य ब्रह्माण्डस्य धारकेण भाव्यं प्रलयकाले सूक्ष्मदशायां च भाराभावाद् धार-कापेक्षैव नास्ति। कार्यदशायां कारणं तत्रैव व्याप्तं तिष्ठति। लोकेऽपि यः प्रभुरीश्वरः सोऽन्यान् बिभर्त्ति यश्चानीशोऽप्रभुः स मत्स्यादिवद्भोगलोभेन बध्यते यदा च सोऽप्रभुरपि प्रभु-त्वं जानाति तदा सोऽपि दैन्यं जहाति सापेक्षदुःखादपि मुच्यत एवमिहापि बोध्यम्॥ ८॥

भाषार्थः—(क्षरमक्षरं च व्यक्तं संयुक्तमेतद्विश्वमीशो भरते) क्षर नाम विनष्ट होनेवाला व्यक्त पृथिव्यादि स्थूल कार्य जगत् और अक्षर नाम अविनाशी अव्यक्त अति सूक्ष्म जगत् का कारण प्रकृति ये दोनों कार्य कारण सदा संयुक्त रहते कारण में कार्य तथा कार्य में कारण सदा ही ओतप्रोत रहता यही सब संसार वा ब्रह्माण्ड भार है इसको असीम शक्ति रखनेवाला सर्व-स्वामी परमेश्वर सदा धारण वा पोषण करता है। (भोक्तृभावा-दनीशश्चात्मा बध्यते) तीसरा असमर्थ सब जगत् के साथ स्वामी-पन न रखन वाला जीवात्मा अविद्यादि क्लेशों और उनके कार्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर इन्द्रियादि के बन्धन में विषयभोग के लालच से बंधता पीडित होता कष्ट भोगता है। और उनमें से कभी कोई जीव (देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैर्मुच्यते) द्योतनशील सर्वप्रकाशक चेतनों का चेतन ईश्वर को जान कर सब बन्धनों से छूट जाता है॥

भा०—संसार की स्थूल दशा में ही ब्रह्माण्ड का अत्यन्त बोझा होने से धारण करनेवाले की विशेष आवश्यकता है। और प्रलय हो जाने पर संसार की सूक्ष्म दशा में विशेष बोझा न होने से धारण कर्ता की वैसी अपेक्षा नहीं है। जगत् की कार्य दशा में कारण कार्य में व्याप्त होकर रहता और प्रलय के समय कारण में कार्य सूक्ष्म होकर रहता है। लोक में भी जो समर्थ धनाद्यैश्वर्य वाला होता वही अन्य असमर्थों का पालन पोषण करता है और जो असमर्थ होता वह मछली आदि के समान भोग के लोभ से फँस जाता है। जब वह असमर्थ भी प्रभुता के मर्म को जानता है तब दीनता को छोड़ता और सापेक्ष दुःखों से भी छूटता ही है इसी पूकार यहां भी ईश्वर के शरण से अपने महत्त्व को जान के ज्ञानी मुक्त होता है॥ ८॥

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजाह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता। अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्त्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥ ९॥

अ०—जीवापेक्षया ज्ञा ज्ञानस्वरूप ईश्वरस्तदपेक्षया च जीवोऽज्ञो द्वाविमावीशानीशौ स्वाम्यस्वामिनावजावजायमानौ

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यावनादी। भोक्ता जीवो भोग्यं पृथिव्यादिविकारजन्यमन्नादिकं बहुरूपं ताभ्यां भोक्तृभोग्यार्थाभ्यां युक्तैका प्रकृतिरपि तृतीयाऽजाऽजायमाना नित्याऽनादिरिति यावत्। सर्वस्मिन् कार्ये जगति तत्तद्रूपेण व्याप्तः सर्वरूपोऽह्यकर्त्ता निष्क्रियोऽनन्तोऽनन्तशक्तिरात्मा व्याप्त ईश्वर इत्येतत्त्रयं ब्रह्म महद् भेदेन यदा विन्दते प्राप्नोति लभते यदा विश्वमायानिवृत्तिरित्युत्तरेणान्वयः॥

भा०—जीव ईश्वरः प्रकृतिश्चेति त्रयमेतदनादीति वैदिकः सिद्धान्तः। प्रकृत्यपेक्षया जीव ईशो ज्ञोऽपि परेशापेक्षया तस्यानीशत्वमज्ञत्वं चोभयमपि न दोषावहम्। सर्वस्वामीश्वरः, अनीशो जीवः। सर्वज्ञ ईशोऽल्पज्ञो जीवः। सर्वशक्तिरीश्वरोऽल्पशक्तिर्जीवः। सर्वस्रष्टेश्वरो देहबद्धो जीवः। सर्वान्तर्यामीश्वरोऽसर्वात्मा जीवः। विश्वैश्वर्य आप्तकाम ईश्वरः अल्पैश्वर्योऽनाप्तकामो जीवः। प्रकृतिश्च सर्वथैवाचेतनाऽशक्ता। इत्यादिप्रकारेणैषां त्रयाणां भेदेन ज्ञानं कृत्वा जीवो मुच्यते। एकैकस्य जीवस्याल्पत्वेऽपि जीवजातेर्महत्त्वं ब्रह्मत्वमव्याहतम्। घटपटशरीराद्यपेक्षया त्रयाणामजत्वब्रह्मत्वयोः साम्येऽपीश्वरापेक्षया जीवस्य जीवापेक्षया च प्रकृतेः सापेक्षमजत्वं महत्त्वं चेति नेश्वरे साम्यदोषः॥ ६॥

भाषार्थः—(ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशौ) जीव की अपेक्षा ईश्वर ज्ञानस्वरूप और ईश्वरापेक्षा से जीव अज्ञ है। ईश्वर स्वामी-मालिक और जीव स्वनाम-मिल्कियत के अन्तर्गत है तथा दोनों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीव ईश्वर अज नाम अनादि हैं कभी किसी से उत्पन्न नहीं हुए और (भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ह्येकाऽजा) भोक्ता जीव तथा पृथिव्यादि विकारों से उत्पन्न होनेवाला अनेक रूपों से युक्त अन्न भोग्य है इन दोनों से युक्त पूर्ण मेल रखनेवाली तीसरी एक प्रकृति भी अजा किसी से कभी उत्पन्न नहीं हुई नित्य अनादि है (विश्वरूपा ह्यकर्त्ताऽनन्तश्चात्मा) सब कार्य कारणात्मक जगत् में उसी २ के रूप से व्याप्त सर्वरूपधारी अकर्त्ता निष्क्रिय अनन्त शक्तिवाला आत्मा नाम व्याप्त ईश्वर (एतत् त्रयं ब्रह्म यदा विन्दते) ब्रह्म नाम बड़े सर्वत्र रहनेवाले इन तीनों को जब जीव प्राप्त कर लेता पृथक् २ जान लेता है तब उसकी सब माया सब छल कपट ईर्ष्या द्वषादि दोष छूट जाते हैं ॥

भा०—जीव ईश्वर और प्रकृति ये तीनों ही पदार्थ अनादि हैं यह वेद का सिद्धान्त है। प्रकृति की अपेक्षा जीव ईश्वर नाम स्वामी तथा ज्ञानस्वरूप भी है तथापि वह परमेश्वर की अपेक्षा अनीश्वर असमर्थ अस्वामी और अज्ञानी माना जाता है- इस प्रकार एक में दो विरुद्ध गुण दोष के हेतु नहीं हैं। सबका स्वामी ईश्वर जीव अनीश असमर्थ, ईश्वर-सर्वज्ञ जीव अल्पज्ञ, ईश्वर सर्व शक्तिमान् जीव अल्पशक्ति, ईश्वर सर्वस्रष्टा सर्वव्याप्त जीव शरीर में बंधा, ईश्वर सर्वात्मा सर्वान्तर्यामी जीव केवल शरीरात्मा, इश्वर सब ऐश्वर्यवाला पूर्णकाम नित्यतृप्त और जीव अल्पैश्वर्य वाला अनाप्त काम लोभी लालची है और प्रकृति सर्वथा सर्वदा अचेतन जड़ तथा असक्त असमर्थ है। इत्यादि प्रकार से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन तीनों को भद् के साथ जानकर जीव मुक्त हो जाता है। एक २ जीव अल्प है तो उसको ब्रह्म नाम महान् नहीं कह सकते तथापि जीव जाति मात्र का ग्रहण होने से सर्वत्र फैले सामान्य कर सभी जीव ब्रह्म नाम महान् कहाते हैं। घटपट शरीरादि की अपेक्षा तीनों जीवेश्वर और प्रकृति का अज और ब्रह्म नाम महत् होना समान होने पर भी ईश्वर की अपेक्षा जीव और जीव की अपेक्षा प्रकृति को सापेक्ष कम २ अजत्व और ब्रह्मत्व है ॥ ९ ॥

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः। तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥ १० ॥

अ०—महदादिरूपेण विपरिणमत इति प्रधानस्य क्षरत्वम्। संहरति सर्वं स्वस्मिन्निति हर ईश्वरः। अमृतं च तदक्षरममृताक्षरं ब्रह्म हरस्य विशेषणमेतत्। एको देव ईश्वरः क्षरात्मानौ प्रकृतिपुरुषावीशते—ईष्टे तयोः स्वामी प्रभुर्भवति स्वाधिकारे स्वनियमे तौ स्थापयति। तस्य देवस्याभिध्यानाद्योजनात्समाधानात्तत्त्वभावात्तत्त्वस्य यथार्थभावस्य सत्यस्याश्रयणाद् भूयः पुनः पुनरभ्यासेनाभिध्यानादिसेवनाच्चान्ते विश्वस्या मायाया आत्मत्वापन्नायाः प्रकृतेर्निवृत्तिर्भवति ॥

भा०—प्रधानेन तत्कार्यभोगेन च जीवस्य विशिष्टः सम्बन्धएव बन्धः परमात्मतो विमुखीकरणहेतुश्चास्ति प्रकृतिर्मम निबन्धना जड़ा ततः पृथग्भावमन्तरेणेश्वरप्राप्तिरसम्भवा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः प्रकृतेर्हेयत्वमीश्वरस्योपादेयत्वं स्वस्य चोपासकत्वं यदा जानाति तदैव त्रयाणामपि भेदेन मुक्तिहेतुकं ज्ञानं जायते १०

भाषार्थः—(क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः) महत्तत्त्वादि रूप से परिणाम को प्राप्त होता इस कारण प्रकृति क्षर नाम विनाश धर्मक है तथा प्रलय समय में सब संसार को अपने भीतर हरण कर लेता इससे संहारकर्त्ता ईश्वर नित्य मुक्त और अविनाशी है (एको देवः क्षरात्मानावीशते) एक ही देव ईश्वर प्रकृति और पुरुष नाम जीव का स्वामी होता उन दोनों को अपने अधिकार और नियम में सदा स्थापित करता है ईश्वर के नियम वा इच्छा से विरुद्ध जीव तथा प्रकृति कुछ नहीं कर सकते (भूयश्च तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावात्) बार २ उस देव ईश्वर का समाधि द्वारा विशेष कर निरन्तर ध्यान करने और तत्त्व नाम यथार्थ भाव सर्वथा सत्य का आश्रय करने से (अन्ते विश्वमायानिवृत्तिः) अन्त में आत्मभाव को प्राप्त हुई सब प्रकृति नाम बुद्धि आदि की भी निवृत्ति हो जाती है तब पुरुष केवल मुक्त हो जाता है ॥

भा०—प्रधान प्रकृति तथा उसके कार्य स्थूल जगत्सम्बन्धी भोगों के साथ जीव का विशेष सम्बन्ध होना ही बन्धन तथा परमात्मा से विमुख करनेवाला है। प्रकृति मुझको बांधनेवाली जड़ है उससे पृथक् हुए विना ईश्वर की प्राप्ति असम्भव वा दुर्लभ है। इस प्रकार प्रकृति के त्याज्य होने ईश्वर के ग्राह्य होने और अपने उपासक होने को जब जीव यथावत् जान लेता है तभी तीनों का भेदज्ञान मुक्ति का हेतु हो जाता है ॥ १० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः। तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥ ११ ॥

अ०—तं देवमीश्वरं ज्ञात्वा सर्वपाशानां बन्धहेत्वविद्याक्लेशानामपहानिस्तैः क्षीणै क्लेशैर्जन्ममरणयोः प्रहाणिः प्रकृष्टा हानिस्तेनाखिलमेव दुःखं हीयते दूरीभवति। तस्येश्वरस्य पुनरप्यभिध्यानाद् देहभेदे पूर्वकर्मोपात्तशरीरत्यागकाले विश्वमखिलमैश्वर्यमस्य तादृशं तृतीयं पदं ब्रह्म प्राप्य केवल एकः प्रकृतिसङ्गाद्विमुक्त आप्तकामो मुक्तिपदं प्राप्तो भवति मन्यते च प्राप्तं प्रापणीयं क्षीणाः क्षेतव्याः क्लेशाः ॥

भा०—सर्वमुमुक्षुपुरुषैः सर्वदा पूर्वं मिथ्याज्ञाननिवृत्तये प्रकृष्ट उपायः कार्यस्तेनैवोत्तरोत्तरं सर्वाभीष्टसिद्धिः सुलभा सम्भाव्यते। मिथ्याज्ञानापाये पराधीनतादिसर्वबन्धनानां निवृत्तौ दुःखाभावः प्रथमा कक्षा, नष्टेषु च मिथ्याज्ञानादिदोषेषु मरणादिभयनिवृत्तौ शान्तिलाभो द्वितीया दशा तदनन्तरमीश्वरबोध ईश्वरप्राप्तिस्तृतीयपरिणामो मुक्तिः ॥ ११ ॥

भावार्थः—(देवं ज्ञात्वा सर्वपाशापहानिः) उस देव ईश्वर को जानकर बन्धन के हेतु सब अविद्यादि सूक्ष्म क्लेशों का भी नाश हो जाता है (क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः) और क्लेशों के क्षीण हो जाने से जन्ममरण का सर्वथा नाश हो जाता (तस्याभिध्यानाद्देहभेदे विश्वैश्वर्यं तृतीयम्) उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर का बार २ ठीक ध्यान करने से पूर्व कर्मानुसार धारण किये शरीर का त्याग नाम मरण होने के समय सम्पूर्ण ऐश्वर्यों के स्वामी तृतीय ब्रह्मपद प्राप्त होके (केवल आप्तकामः) प्रकृति के सङ्ग से छूट कर केवल एक अभीष्ट कामना को प्राप्त हुआ मुक्तिपद को प्राप्त होता और मान लेता है कि मैंने प्राप्त होने योग्य को प्राप्त कर लिया तथा मेरे नष्ट होने योग्य क्लेश छूट गये ॥

भा०—सब मुमुक्षु पुरुषों को सब समय में पहिले मिथ्याज्ञान को छुड़ाने के लिये पूबल उपाय करना चाहिये। उसी से आगे २ सुलभता से सब अभीष्टों की सिद्धि होना सम्भव है। मिथ्या ज्ञान छूटने पर पराधीनतादि सब बन्धनों की निवृत्ति में दुःख का अभाव प्रथम कक्षा, मिथ्याज्ञानादि दोषों के नष्ट होने पर मरणादि का भय छूटने से शान्ति प्राप्त होना द्वितीय दशा, तदनन्तर ईश्वर का बोध ईश्वर की प्राप्ति यह तीसरा परिणाम ही मुक्ति है ॥ ११ ॥

एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थं नातः परं वेदितव्यं हि किञ्चित्। भोक्ता भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्ममेतत् ॥ १२ ॥

अ०—एतदुक्तं तृतीयं ब्रह्म नित्यमेव स्वस्य आत्मनि जीवस्वरूपेऽवस्थितं व्याप्तमेव ज्ञेयं नान्यत्र बहिः क्वाप्यन्वेष्यम्। कठोपनिषदि चोक्तम् "तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम्" अतो ब्रह्मणः परं प्रकृष्टं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कल्याणहेतुकं न किमपि वेदितव्यमस्ति । एकस्मिन्प्रधाने ज्ञाते प्राप्ते वा भोक्ता जीवो स्वभोक्तृत्वं भोग्यं व्यक्ताव्यक्तं कार्यकारणात्मकं जगदेतत्सर्वं मत्वा भेदेनानायासेन ज्ञात्वा मुच्यते। शास्त्रेषु प्रोक्तं सर्वमेतत् त्रिविधं ब्रह्मोक्तप्रकारेण महदिति विज्ञेयम् ॥

भा०—योगसमाधिना हृद्येव ब्रह्मणो ज्ञानायोद्योगः कार्यः। तेन बहिरन्वेषणाय प्रयतमाना भ्रान्ता इत्युक्तं भवति। लोकेऽपि यथा प्रधाने ज्ञातेऽप्रधानमनायासेनैव ज्ञातं भवति तथैव सर्वस्वामिनि ब्रह्मणि ज्ञाते सर्वमेव ज्ञायते ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(नित्यमेवैतदात्मसंस्थं ज्ञेयम्) इस पूर्व श्लोक में कहे परमात्मा को अपने आत्मा में नित्य व्याप्त ही जानना चाहिये किन्तु कहीं बाहर नहीं खोजना चाहिये अपने भीतर आत्मा में ही मनुष्य को ईश्वर का ज्ञान वा प्राप्ति हो सकती है। कठोपनिषद् में लिखा भी है कि "जो ज्ञानी लोग अपने आत्मा में ही उस ईश्वर को देखते हैं उन ही को सनातन शान्ति और सुख प्राप्त होता है अन्यों को नहीं" (अतः परं वेदितव्यं किञ्चिन्नहि) इस ब्रह्म से परे उत्तम वा अधिक जानने योग्य और कुछ भी नहीं है। एक सर्वस्वामी मुख्य वस्तु ईश्वर के जान लेने पर वा उसकी प्राप्ति हो जाने पर (भोक्ता, भोग्यं प्रेरितारं च मत्वा) भोक्ता जीव कार्य कारण रूप स्थूल सूक्ष्म भोग्य जगत् को अपने आप को तथा प्रेरक अन्तर्यामी परमेश्वर को भेद के साथ सहज में जान कर मुक्त हो जाता है (प्रोक्तं सर्वमेतत्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्रिविधं ब्रह्म) शास्त्रों में कहे ये सब तीनों पूर्व कहे प्रकार से ब्रह्म नाम बड़े हैं ॥

भा०—योग समाधि द्वारा अपने हृदय में ही ब्रह्म को जानने का उद्योग करना चाहिये। इस कारण ईश्वर को बाहर खोजने का उद्योग करनेवाले भ्रान्ति में हैं यह सिद्ध हो जाता है। लोक में भी जैसे प्रधान के जान लेने वा मिल जाने पर अप्रधान का मेल वा ज्ञान स्वयमेव हो जाता वैसे ही सवस्वामी ब्रह्म के जान लेने पर सभी शेष जान लिया जाता है ॥ १२ ॥

वह्नेर्यथा योनिगतस्य मूर्त्तिर्न दृश्यते नैव च लिङ्ग-नाशः। स भूय एवेन्धनयोनिगृह्यस्तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे ॥१३॥ स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्यान-निर्मथनाभ्यासाद्व देवं पश्येन्निगूवढत् ॥ १४ ॥ तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतस्स्वरणीषु चाग्निः। एवमात्मा-त्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ॥ १५ ॥ सर्व्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम्। आत्मविद्यातपो-मूलं तद्व ब्रह्मोपनिषत्परं तद्व ब्रह्मोपनिषत्परम् ॥ १६ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषदि प्रथमोऽध्यायः ॥

अ०—यथा वंशारणिदीपशलाकादिकारणवस्तुन्यवस्थि-तस्य वह्नेर्मूर्त्तिः साक्षाद्रूपं न दृश्यते नैव च तस्य सूक्ष्मरूपा-वस्थितस्य नाशोऽभावोऽस्ति यद्यभावः स्यात्कुत उत्पद्येत।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स भूयः पुनःपुनरेवेन्धनयोनिगृह्यो घर्षणमन्थनादिना साक्षात्स्मरति। तद्वा तद्वदेहे ब्रह्मणः प्राकट्यमप्राकट्यं चोभयमेवास्ति। प्रणवेन घर्षणादिना च ब्रह्म गृह्यते साक्षाज् ज्ञायते। स्वस्य देहमरणिं प्रणवं चोत्तरारणिं कृत्वा ध्यानयोगेन निर्मथनाभ्यासान्निगूढाग्निवद्देवं दीप्यमानं ज्योतिःस्वरूपं ब्रह्म पश्येत्साक्षात्कर्त्तुमर्हति। तिलेषु व्याप्तं तैलं यथा पीडनेनोपलभ्यते, दधनि व्याप्तमदृश्यं घृतं यथा मन्थनेन साक्षाज्जायते। स्रोतस्सु नद्याः समीपे खननेन यथाऽऽपो व्यज्यन्ते, अरणीषु मन्थनेन च यथाऽग्निराविर्भवति। एवमात्मेश्वर आत्मनि स्वस्मिन् जीवात्मस्वरूपे गृह्यतेऽसौ परोक्षोऽपि तेन जनेन साक्षात्क्रियते य एनं सत्येन सत्याचरणेन व्याजादिकं त्यक्त्वा सत्यभावोपासनेन तपोऽनुष्ठानेनैकाग्रतया चाऽनुपश्यति सर्वं पश्यन्तमनुपश्यति। क्षीरे सर्पिरिवार्पितं व्याप्तं सर्वव्यापिनमात्मानमीश्वरमात्मविद्यातपसोश्च मूलं प्रधानं प्रयोजनमुद्देशः, आत्मविद्यातपांसि च ब्रह्मज्ञानमुद्दिश्यैवोपदिष्टानि। तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्तीत्यादिकथनाद्वत्सेयमेतत्। उपनिषद एव परा प्रकृष्टबोधहेतुका यस्य येन वा मुख्योपायेन ब्रह्म ज्ञायते स एवोपनिषत्पदवाच्य इत्युभयथाप्येक एवार्थो निस्सरति। द्वित्वमत्राध्यायपरिसमाप्तिबोधनार्थं विज्ञेयम्॥

भा०—एतत्पद्यचतुष्टयेन "एतज्ज्ञेयं नित्यमेवात्मसंस्थम्" इति संक्षेपतो द्वादशपद्योक्तविषयस्य प्रपञ्चो व्याख्यानमिति यावत्। तज्जपस्तदर्थभावनमित्यादियोगशास्त्रोक्तप्रकारेण यो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिज्ञासुः दीर्घकालावधि नैरन्तर्येणैकाग्रचेतसा जितवाक्काय-मानसो वाचकप्रणवेन वाच्यमीश्वरमुपास्ते ध्यायति तन्निष्ठ-स्तत्परस्तद्बुद्धिर्भवति स कालेन स्वात्मन्येव साक्षाज्ज्ञान-चक्षुषा पश्यत्येवेश्वरमिति न कश्चिद्द विकल्पः केनापि कर्त्तुं युक्तः ॥ १३-१६ ॥

भावार्थः—(यथा योनिगतस्य वह्नेर्मूर्त्तिर्न दृश्यते नैव च लिंगनाशः) जैसे बांस अरणि और दियासलाई आदि अपने कारण में रहते अग्नि का साक्षात्स्वरूप नहीं दीख पड़ता और न उन बांस आदि में कारणरूप अग्नि के चिन्ह का अभाव होता है। यदि अभाव हो तो उत्पन्न ही कहां से वा कैसे हो ? (स भूयएवेन्धनयो-निगृह्यः) वह अग्नि फिर २ बार २ ईंधन के संयोग से घिसने मथने आदि द्वारा साक्षात् निकलता प्रकट होता जल उठता है (तद्वोभयं वै प्रणवेन देहे) उसके तुल्य इस मानुष देह में ओम् की उपासना द्वारा परमेश्वर साक्षात् ज्ञात होता और ठीक उपासना हुए विना शरीर में अप्रकट तिरोभूत रहता अर्थात् इसी शरीर में प्रकटता अप्रकटता दोनों होती है ॥ (स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्) अपने शरीर को अर्थात् अन्तःकरण की वृत्तियों को ऊपर की अरणि और ओंकार को द्वितीय अरणि कर अर्थात् ओंकार के साथ ही अपनी बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर को जोड़कर (ध्याननिर्मथनाभ्यासात्) ध्यानयोग के साथ मथने के अभ्यास से (निगूढवद्देवं पश्येत्) बांस आदि में गुप्त अग्नि के समान प्रकट हुए ज्योतिःस्वरूप अपने हृदय में सब ओर से प्रकाशमान परमेश्वर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को साक्षात् देख सकता है (तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः) जैसे तिलों में व्याप्त अदृष्ट तेल कोल्हू में डाल के पेरने से निकलता, जैसे प्रत्यक्ष न दीखता हुआ दही में व्याप्त घी मन्थन करने से साक्षात् दीखने लगता, जैसे नदी के समीप सोता में पहिले से अदृष्ट जल खोदने से चू आता और जैसे अरणी नामक लकड़ी में व्याप्त अदृष्ट अग्नि मथने वा घिसने से प्रकट हो जाता है (एवमत्मात्मानि गृह्यतेऽसौ) इसी प्रकार उस परोक्ष सर्वत्र व्याप्त ईश्वर को भी वह जीव अपने स्वरूप में ग्रहण नाम साक्षात् करता है कि (य एनं सत्येन तपसाऽनुपश्यति) जो वहाना मात्र छोड़ के सच्चे मन से तथा चित्त की एकाग्रता के साथ तप के अनुष्ठान से सर्वद्रष्टा इस परमात्मा को अनुकूलता के साथ ज्ञानदृष्टि से देखता है । (क्षीरे सर्पिरिवार्पितं सर्वव्यापिनमात्मानम्) दूध में जैसे घी व्याप्त होता वैसे सब जड़ चेतन पदार्थों में व्याप्त (आत्मविद्यातपोमूलम्) आत्मविद्या आत्मा के वर्णन का विषय और तप की प्रशंसा वा व्याख्यान जिसकी प्राप्ति के उद्देश से प्रचरित किया गया है उस ईश्वर को ज्ञानदृष्टि से जो देखते हैं उनको वह साक्षात् निर्विकल्प मिल जाता है । तथा (तद्ब्रह्मोपनिषत्परं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम्) जिसका बोध वा ज्ञान होने वा ईश्वर प्राप्ति का मार्ग बतलाने के लिये उपनिषद् पुस्तक ही परम उपयोगी है वा यों कहो कि ईश्वरप्राप्ति का सब से अधिक वा अच्छा मार्ग बतलानेवाले उपदेश का नाम ही उपनिषद् है । अर्थात् ब्रह्मज्ञान के लिये मुख्य उपाय उपनिषद् हैं वा जो मुख्य उपाय है वही उप-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निषद् है। इस दोनों प्रकार के कथन का एक ही आशय है और अध्याय की समाप्ति जताने के लिये यहां द्विर्वचन किया है॥

भा०—"इस ब्रह्म को अपने आत्मा में ही स्थित जानो" इस प्रकार बारहवें मन्त्र में संक्षेप से कहे विषय का इन चार मन्त्रों से व्याख्यान वा विस्तार किया है। "उस ओ३म् पद का वाणी से जप उच्चारण और उसके वाच्यार्थ ईश्वर की भावना अर्थात् उसमें बार२ चित्त ठहराना वा लगाना" इत्यादि योगशास्त्र में कहे प्रकार से जो जिज्ञासु पुरुष दीर्घकाल पर्यन्त एकाग्रचित्त से मन वाणी और शरीर को वशीभूत करके वाचक ओ३म् पद से वाच्य ईश्वर की निरन्तर ध्यान उपासना करता उसी में निष्ठा रखता उसी में तत्पर रहता उसी में बुद्धि लगाता है वह काल पाकर अपने आत्मा में ही ज्ञानचक्षु से ईश्वर को साक्षात् अवश्य ही देखता है इसमें किसी को कुछ विकल्प नहीं करना वा मानना चाहिये॥ १३-१६॥

इति भीमसेनशर्मनिर्मिते श्वेताश्वतरोपनि-
षद्भाष्ये प्रथमोऽध्यायः समाप्तः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ द्वितीयाऽध्यायारम्भः

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः। अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥ १ ॥

सविता मनआदीनां प्रेरको जीवात्मा प्रथमं ध्यानकालारम्भे मनो युञ्जानः समाहितं कुर्वन्नग्नेः शरीरव्याप्तस्य बुद्धेः कारणभूतस्य ज्योतिः प्रकाशं देहे निचाय्य निश्चित्य तत्त्वाय तत्त्वबोधाय पृथिव्या अधि पार्थिवदेहस्य बुद्धिस्थाने धियो धारणावतीश्चिन्तनपरा वा बुद्धीराभरदाहरेत्स्वाधीनाः कुर्यात्। यतः सवितोत्पादकः परमेश्वरोऽपि प्रथमं सर्गारम्भे प्राणिदेहेन सार्कं मनोयोगं कुर्वन् कर्त्तुं वेच्छन्नग्नेर्ज्योतिः स्थानं निचाय्य निश्चित्य पृथिव्या अधि पार्थिवशरीरस्य मध्ये तत्त्वाय तत्त्वबोधाय धिय आभरदाभरत्यादधाति ॥

भा०—प्रकृतेर्महान्महतोऽहङ्कारस्ततो मनः प्रादुर्भवति। महत्पदवाच्याच्च सत्त्वगुणात्मिका बुद्धिःसा चाहङ्कारप्रधानस्य मनसः कारणं कारणाधीनं च सर्वत्रैव जगति कार्यं नियमेनैव लक्ष्यते। कठोपनिषदि चैतदभिप्रेत्यैव "बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ मनसश्च परा बुद्धि" इत्युक्तम्।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यथा चेश्वरेण सर्गस्थितिलयेषु यानि कार्याणि सम्पादितानि तथैव यथाकालं मनुष्यः कुर्वाणोऽनिष्टं जहातीष्टं चाप्नोति तस्मादयमेव धर्मः। यथा पाकं चिकीर्षन् कोपि पिष्टादिकारणमादौ सम्पादयति सन्निहिते चादुष्टे सम्यक्कारणे कार्योत्पत्तिः सुलभा। एवमत्र मनोनिग्रहे बुद्धिरेव कारणं यद्यात्मनः स्वामिनो बुद्धिः स्वाधीना तदा सारथिरूपबुद्धेरप्याधीनं प्रग्रहरूपं मनो भवति तथा च सति मनोनिरोधः सुकरः। पूर्वोक्तध्याननिर्मथनाभ्यासादीश्वरसाक्षात्काराय चादौ मनोनिग्रहेणावश्यं भाव्यम्। न च वायुकार्यमनसो निरोधमन्तरेण प्रदीपशिखावद् बुद्धे स्थैर्यं सम्यक् प्रकाशश्च सम्भवति। नचास्थितप्रज्ञेन ध्यानादिकं कर्त्तुं शक्यते तस्मादीश्वरसाक्षात्काररूपतत्त्वबोधाय मनोनिरोधं कुर्वता कर्त्तुमिच्छता वा पुरुषेण बुद्धेर्ज्योति स्थानं सुनिश्चत्य तत्र बुद्धिः स्थाप्या तथा सति मनोनिग्रहेण तत्त्वबोधः कर्त्तुं शक्यते ॥ १ ॥

भाषार्थः—जिस कारण सविता नाम सब जगत् का उत्पादक परमेश्वर भी पहले सृष्टि के आरम्भ में मनुष्यादि शरीरों के साथ मन का संयोग करने की इच्छा करता हुआ सूक्ष्माग्नि तत्त्व के ज्योतिःस्वरूप प्रकाश के स्थान को निश्चित करके पार्थिव शरीर के भीतर तत्त्वज्ञान की सिद्धि के लिये बुद्धियों को स्थापित करता है। इसी प्रकार (सविता प्रथमं मनो युञ्जानः) मन आदि इन्द्रियों का प्रेरक जीवात्मा प्रथम ध्यान के आरम्भ में मन को समाहित स्थिर एकाग्र करता हुआ (अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य) शरीर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में व्याप्त बुद्धि के कारण रूप सूक्ष्माग्नितत्त्व के प्रकाश स्थान को शरीर में निश्चय कर के (तत्त्वाय पृथिव्या अधि धिय आभरत्) तत्त्वबोध के लिये पार्थिव शरीर के बुद्धिस्थान में धारणावती चिन्ता में तत्पर बुद्धियों को अच्छे प्रकार धारण नाम स्वाधीन करता है ॥

भा०--प्रकृतिसे महत्, महत् से अहङ्कार और उससे मन उत्पन्न होता है और महत्तत्त्व का ही नाम सत्त्वगुण प्रधान बुद्धि है और वह बुद्धि अहङ्कार में प्रधान मनका कारण है तथा कारण के आधीन कार्य का होना जगत् में सर्वत्र नियम के साथ ही दीखता है। इसी अभिप्राय से कठोपनिषद् में लिखा वा कहा है कि " शरीररूप रथ पर बुद्धि सारथि और मन लगाम है इन्द्रिय घोड़े हैं सारथि के हाथ में वा आधीन लगाम का रहना प्रसिद्ध ही है। तथा मन से बुद्धि परे है" सो कार्य से कारण उत्तम वा सूक्ष्म होता ही है। सृष्टि स्थिति और प्रलय के समय जिन कार्यों को ईश्वर ने जिस प्रकार वा जिस क्रम अथवा नियम के साथ उत्पन्न किया है वैसे ही उन २ कामों को करता हुआ मनुष्य अनिष्ट से बचता छूटता और इष्ट को प्राप्त होता वा जितना नियमानुसार करता वा कर पाता है उतने इष्ट का भागी होता है। इस से यही धर्म है। जैसे पाक बनाने की इच्छावाला कोई पुरुष पहिले भोजन के साधन आटा आदि को जोड़ता वा संचित करता है और निर्दोष ठीक साधनों के होने पर प्रत्येक काम ठीक अच्छा सुगमता से सिद्ध हो सकता है। वैसे यहाँ मन को वशीभूत करने में बुद्धि ही मुख्य कारण है यदि स्वा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिरूप आत्मा के आधीन बुद्धि रहती है तो सारथिरूप बुद्धि के भी आधीन मन हो जाता है इस प्रकार सुगमता से मनकी चञ्चलता रुक जाती और मन स्थिर हो जाता है। तब पूर्वोक्त ध्यानसम्बन्धी निर्मथनके अभ्याससे ईश्वर को साक्षात्कार अर्थात् जाननेके लिये प्रथम मन की स्थिरता और शान्ति अवश्य होनी चाहिये किन्तु वायुके कार्य नाम सन्तान रूप मन की स्थिरता वा रुकावट हुए विना दीपक की ज्योति के समान बुद्धि की स्थिर दशा और सम्यक् प्रकाश नहीं हो सकता और जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं ऐसा मनुष्य ध्यानादि कुछ नहीं कर सकता इस कारण ईश्वर के साक्षात्काररूप तत्त्वबोध के लिये मन को स्थिर करते वा करने की इच्छा करते हुए पुरुष को चाहिये कि बुद्धि के ज्योतिः—प्रकाशस्थान को सम्यक् निश्चय करके उसी स्थान में बुद्धि को स्थापित करे। ऐसा होने पर मनके रुकजाने से ज्ञानकी दीप्ति होकर तत्त्वज्ञान को प्राप्त कर सकता है ॥१॥

युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। सुवर्गेयाय शक्त्या ॥ २ ॥

वयं मनुष्या बुद्धिस्वायत्तीकरणपुरस्सरं युक्तेन समाहितेन निरुद्धेनवा मनसा सवितुरुत्पादकस्य प्रेरकस्यान्तर्यामिणो देवस्येश्वरस्य सवे वेदोक्ताज्ञायां ध्यानादिशुभकर्मणि स्वर्गाय विशिष्टसुखप्राप्तये शक्त्या यथासामर्थ्यं निरन्तरमवश्यं प्रयतामह इति दृढो व्यवसायः कार्यः ॥

भा०—दुश्चरितान्मनो निरुध्यैव मनुष्यो ज्ञानयज्ञादिषु प्रवृत्तोऽभीप्सितं सुखविशेषमाप्नोति न च मनस्यसमाहितइति।२।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(वयं युक्तेन मनसा) हम मनुष्य लोग बुद्धि को स्वाधीन करने के साथ-साथ युक्त समाहित वा विषयों की फसावट से अलग हुए शुद्ध मनसे (सवितुर्देवस्य सवे) जगत् के उत्पादक प्रेरक वा अन्तर्यामी देव ईश्वर की ध्यानादि शुभकर्मरूप वेदोक्त आज्ञा में (सुवर्गेयाय शक्त्या) विशेष सुख प्राप्ति के लिये यथाशक्ति निरन्तर प्रयत्न अवश्य करें। यह हमको दृढ़ निश्चय करना चाहिये क्योंकि सुख और शान्ति मिलने का ठीक यही मार्ग है॥

भा०—दुराचार से मन को हटा कर ही ज्ञान यज्ञादि के लिये प्रवृत्त हुआ मनुष्य अभीष्ट विशेष सुख को प्राप्त कर सकता है किन्तु मन के स्थिर हुए विना नहीं॥ २॥

युक्त्वाय सविता देवान् स्वर्यतो धिया दिवम्। बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान्॥ ३॥

सविता प्रेरकोऽन्तर्यामी विषयेभ्यः प्रत्यावृत्तान्स्वः प्रत्यगात्मवृत्तिजन्यसुखविशेषं यतः प्राप्नुवतो धिया धारणावत्या सूक्ष्मबुद्ध्या तत्त्वबोधेन दिवं द्योतनशीलं प्रकाशमयं बृहन्महद्ब्रह्म ज्योतः प्रकाशं करिष्यत आविष्करिष्यतो देवान् चक्षुरादीनीन्द्रियाणि मनोवृत्तिविशेषान् युक्त्वाय योजयित्वा स्वकृपया विषयेभ्यः प्रत्यावृत्य तान् प्रसुवाति प्रसुवेत् शुभमार्गे तान् सविता प्रेरयेदिति प्रार्थयामहे॥

भा०—यथा चोदयकालीनः सवितृपदवाच्यः सूर्यः प्राणिनः स्वशक्तिप्रवेशेन प्रबोध्य कार्येषु प्रयोजयति। जगति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य एव मुख्यः प्रबोधकः प्रेरकश्च तस्मादेव तदुदयकाले प्रायेण प्राणिनो जाग्रति। सूर्यादिप्रबोधकप्रेरकाणामपि निरतिशयप्रेरकः प्रबोधकश्चानादिसिद्ध ईश्वरः। स एव यान् स्वकार्येषु प्रेरयति ते सद्यो जगति जाग्रति। स्वस्येष्टानिष्टे विभज्य जानन्ति च येन यत्कार्यसिद्धिर्नियोगतो हेतुतश्च सम्भाव्यते तेनैव तत्साध्यमिति नियम एव सर्वत्रोपलभ्यते तस्मान्न नियमविरुद्धं किमपि कार्यमिति। इन्द्रियाणां विषयेभ्यो निरोध एव प्रत्यगात्मविचारवैशारद्यस्य प्रधानं कारणं तथा च सति मनसः स्थैर्यं सुखानुभवो ब्रह्मज्ञानं चेति सर्वं सुलभम्॥ ३॥

भाषार्थः—(सविता स्वर्यतो धिया दिवं बृहज्ज्योतिः करिष्यतः देवान् युक्त्वाय) विषयों से पीछे को लौटे, अन्तःकरण में इन्द्रिय शक्तियों के रुकने के कारण बुद्धि वा ज्ञान की अधिकता से, उत्पन्न हुए सुख विशेष को प्राप्त होते हुए और धारणावती सूक्ष्म बुद्धि द्वारा हुए तत्त्वज्ञान से प्रकाशशील अनन्त ब्रह्मज्योति को प्रकट करते हुए, चक्षु आदि इन्द्रियरूप देवों अर्थात् मन की वृत्तियों को अपनी कृपा के साथ विषयों की ओर से हटा के वशीभूत निरुद्ध बुद्धि के साथ संयुक्त करके (तान् सविता प्रसुवाति) उन इन्द्रिय देवों को सविता प्रेरक अन्तर्यामी परमात्मा शुभ मार्ग में चलने के लिये प्रेरणा करे ऐसी प्रार्थना हम लोग करते हैं॥

भा०—जैसे उदय होते समय सविता नामक सूर्य अपनी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रेरक शक्ति के प्रवेश द्वारा प्राणियों को जगा कर उनके उनके कामों में लगाता वा प्रेरणा करता है। सूर्य ही जगत् में मुख्य प्रेरक और जगानेवाला है, इसी कारण सूर्योदय के समय प्रायः मनुष्यादि जागते हैं। सूर्यादि प्रबोधक और प्रेरकों का भी सर्वोपरि प्रेरक और प्रबोधक अनादि सिद्ध ईश्वर है वही जिन मनुष्यों को अपने २ कर्त्तव्य में प्रेरित करता है वे जगत् में शीघ्र ही जाग जाते और अपने इष्ट अनिष्ट को विभाग के साथ जानने लगते हैं। और जिसके द्वारा जिस कार्य की सिद्धि नियम वा हेतुपूर्वक अवश्य हो सकती है किन्तु अन्य के द्वारा उस कार्य की वैसी सिद्धि नहीं हो सकती उसी से उसको सिद्ध करना चाहिये यह नियम सर्वत्र उपलब्ध होता है। इसलिये नियम विरुद्ध कुछ नहीं करना चाहिये इन्द्रियों का विषयों से रोकना ही भीतरी विचार की वृद्धि और स्वच्छता का कारण है ऐसा होने पर मन की स्थिरता सुख का अनुभव और ब्रह्मज्ञान यह सब होना सुगम है॥ ३॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः॥ ४॥

अ०—यो वयुनावित्प्रज्ञावेत्ता बुद्धिसाध्यसर्वकार्याणां तत्त्वतो वेत्ता सर्वज्ञोऽन्तर्याम्येक इदेक एव होत्रा कल्याणहेतुका धर्म्या यज्ञादिक्रिया वेदद्वारा विदधे विधानं कृतवान् तस्य विप्रस्य विशेषेण व्याप्तस्य बृहतोऽनन्तस्य विपश्चितः सर्व

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्य देवस्य द्योतनात्मकस्य सवितुरन्तर्यामिण ईश्वरस्य महीं महतीं परिष्टुतिस्तैः कर्तव्या ये विप्रा मेधाविनः प्रकृष्टसूक्ष्मस्थिरबुद्धियुताः प्रत्यगात्मविचारे रता मनो युञ्जते निरोधयन्ति विषयेभ्यः प्रत्यावृत्य बुद्धितत्त्वेन स्वकारणेन योजयन्ति। उतापि धियो बुद्धोर्मनःसङ्गात्प्रत्यावृत्यात्मना साकं युञ्जत आत्मविचारे प्रवर्तयन्ति। आतश्चोपसर्ग इति सूत्रेण कप्रत्ययान्तः प्राधातोर्विप्रशब्दः। विपश्चित इति मेधाविनाम वयुनेति च प्रज्ञाया नाम निघण्टौ वेदस्य कोशे द्रष्टव्यम्॥

भा०—मनसो बुद्धेश्च समाधानं स्थैर्यं विषयवासनातो निवृत्तिं चेच्छद्भिर्जनैः सवितृपदवाच्यस्यैकास्यानन्तस्य सर्वज्ञस्यान्तर्यामिणः सर्वप्रेरकस्य परमात्मनो दीर्घकालावधिनैरन्तर्येणैकाग्रचेतसा विशिष्टा स्तुतिः कार्या। अनन्यसाध्या च विषयवासनानिवृत्तिर्यथा चोदकसाध्यां पिपासानिवृत्तिमन्यसाधनेन चिकीर्षतः फलावाप्तिरसम्भवा तथैवात्राभ्यासवैराग्यादिसाधनैर्मनोवृत्तिनिरोधावसरे परमात्मशरणागतिमन्तरेण नास्त्यन्या काचि ततोधिका तत्तुल्या वा गतिरिति॥४॥

भाषार्थ— जो (वयुनाविदेकइद्धोत्रा विदधे) बुद्धि से होने वाले गुप्त सब कामों का भी जाननेवाला अन्तर्यामी एक ही परमात्मा बिना किसी की सहायता लिये कल्याण हेतु, धर्मानुकूल यज्ञादि क्रियाओं का वेदद्वारा विधान करता अर्थात् कर्त्तव्य की आज्ञा देता है उस (विप्रस्य बृहतो विपश्चितो देवस्य सवितुर्महीपरिष्टुतिः) विशेष कर सर्वव्यापक अनन्त सर्वज्ञ सब को चेतन करनेवाले प्रेरक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्यामी ईश्वर को बड़ी अधिकतर स्तुति उन लोगों को करनी चाहिये वा वे कर सकते हैं कि जो (विप्रा मनो युञ्जत उत धियो युञ्जते) उत्तम सूक्ष्म स्थिर बुद्धिवाले भीतरी विचार में तत्पर बुद्धिमान् लोग मन को और बुद्धि को योगाभ्यास द्वारा ठीक करते हैं अर्थात् विषयों की भोगवासना से मनको पीछा हटाके बद्धि के साथ युक्त करते और मन के सङ्ग से हटा कर बुद्धि को आत्मा के साथ आत्मविचार में लगाते हैं ॥

भा०—मन और बुद्धि की सावधानता स्थिरता और विषय-वासना की निवृत्ति चाहते हुए मनुष्यों को उचित है कि वे सवितृपदवाच्य अनन्त सर्वज्ञ सर्वप्रेरक अन्तर्यामी एक परमेश्वर की ही बहुत काल तक निरन्तर एकाग्रचित्त से विशेष कर स्तुति प्रार्थना करें। और विषयवासना से ठीक निवृत्ति होने का अन्य कोई साधन नहीं है जैसे कि जल से मिटनेवाली प्यास अन्य वस्तु से निवृत्त करने की इच्छावाले को फल प्राप्त होना कम सम्भव है। वैसे यहाँ भी अभ्यास वैराग्यादिसाधनों के द्वारा मन की वृत्तियों का निरोध करने के समय परमात्मा के शरणागत हुए विना उससे अधिक वा उसके तुल्य अन्य कोई गति नहीं है। क्योंकि परमात्मा सर्वोपरि संसारी भोगों की फँसावट से अलग है विषयवासना का लेशमात्र भी उससे सम्बन्ध नहीं तथा उस के शरण में पहुँचते ही मनुष्य को ऐसा अद्भुत आनन्द मिलता है जिसके सामने संसार के सब विषयों के भोग अत्यन्त फीके पड़ जाते हैं ॥४॥

युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोका यन्ति पथ्येव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शूराः। शृण्वन्ति विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः॥ ५॥

अ०—हे बुद्धिमनसी वां युवाभ्यां युवयोः शान्तिसम्पादनाय पूर्व्यं पूर्वैर्ब्रह्मादिभिरप्युपास्यं ब्रह्म युजे निर्बीजसमाधिना प्राप्तुमीहे तेन पथ्या इव सन्मार्गादनपेताः सुखेन गच्छन्तो मनुष्या इव निर्बाधाः सूराः सप्रकाशाः शुद्धा मालिन्यलेशेनापि रहिता मम श्लोकाः कीर्त्तयो वियन्ति विशेषेण दीर्घकालावधि चिरस्थायिन्यो भवन्तु। ये नरा योगाभ्यासादिशुभकर्मप्राबल्येन दिव्यानि धामानि स्थानान्युत्तमदशा आतस्थुः प्राप्तास्तेऽमृतस्य परमात्मनः पुत्रा इव रक्षणीयाः सर्वे जीवन्मुक्ता मुक्ताः प्राप्तसर्वयोगसिद्धयो वा यथेच्छाचारिणो ममेमां वाचं शृण्वन्ति शृण्वन्तु॥

भा०—यथा मनोनिरोधेनेन्द्रियाणि निरुध्यन्ते। बुद्धिसमाधानेन मन एकाग्रं जायत एवमात्मनि परमात्मविचारलग्ने बुद्ध्यादिकं सर्वं शान्तं तिष्ठति। तेन योगिना प्रतिज्ञातव्यं प्रार्थनीयं च योगिभिः सिद्धैर्जीवन्मुक्तैर्ज्ञानसीमानं प्राप्तैश्च मम सङ्गोऽस्तु ते च मां मज्जन्तमुद्धरन्तु मम वाचं शृण्वन्तु। न च तेन कीर्त्तिरेषणीयाऽपि तु पूर्वेषां योगिनां ज्ञानिनां च यथाऽद्यावधि चिरस्थायिनी निर्बाधाऽनिवार्या कीर्त्तिर्गच्छति तथाऽन्येषामपि धर्मभास्कराणां सूर्यस्येवानिवार्यः प्रकाशः प्रसरत्येव। तदर्थं परमेश्वरेण विशिष्टः सम्बन्धस्तच्छरणा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गतिस्तदुपासनमेव प्रधानम्। इमे च पञ्च मन्त्रा यजुर्वेदस्यैकादशाध्यायारम्भे यथायथमुपलभ्यन्ते। पाठान्तरं च पुस्तकान्तरवदेवानुमीयते। तत्राद्याऽनुष्टुप्, द्वितीया गायत्री, तृतीयाऽनुष्टुप्, चतुर्थी जगती, पञ्चमी च त्रिष्टुप्। ताभिश्चर्भिर्योगाभ्यासप्रकारः प्रदर्शितः ॥ ५ ॥

भाषार्थः—हे बुद्धि और मन! तुम दोनों की शान्ति स्वस्थ स्थिर दशा करने के लिये मैं (पूर्व्यं ब्रह्म नमोभिर्युजे) पूर्व सृष्टि के आरम्भ वा कल्प कल्पान्तरों में ब्रह्मादि को भी उपासना करने योग्य ब्रह्म को नमस्कार प्रणाम स्तुति प्रार्थनादि तथा निर्बीज समाधि द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा करता हूँ। उससे (पथ्येव सूराः श्लोका वियन्ति) उत्तम मार्ग को न भूले हुये वा उससे च्युत न हुए सुख पूर्वक अच्छे मार्ग में चलते हुए मनुष्यों के तुल्य प्रकाश युक्त शुद्ध, लेशमात्र भी मलिनता से रहित मेरी कीर्त्ति वा यश दीर्घकाल तक विशेष कर चिरस्थायी हो। (ये) जो लोग योगाभ्यासादि शुभ कर्मों की प्रबलता से (दिव्यानि धामान्यातस्थुः) उत्तम स्थानां वा उत्तम दशाओं को प्राप्त हुए वे (विश्वेऽमृतस्य पुत्राः शृण्वन्ति) नित्य मुक्त परमात्मा के पुत्र के समान रक्षणीय सब जीवन्मुक्त मुक्त वा योगसिद्धियों को प्राप्त कर यथेच्छाचारीबन मेरी इस वाणी को सुनें ॥

भा०—जैसे मन के निरोध से इन्द्रियां स्वयमेव वशीभूत हो जाती हैं तथा बुद्धि के सावधान निश्चल होने पर मन भी एकाग्र शान्त हो जाता है। इसी प्रकार जीवात्मा जब परमात्मा के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विचार स्तुति प्रार्थना तथा उपासना में लगता है तब बुद्धि आदि सब शान्त होके ठहर जाते हैं। इस कारण योगी को प्रार्थना करनी चाहिये कि सिद्ध जीवन्मुक्त और ज्ञान की सीमा को प्राप्त हुए योगी पुरुषों से मेरा सङ्ग हो वे लोग डूबते हुए मुझको निकालें मेरी प्रार्थना वाणी को सुनें। उस पुरुष को अपनी कीर्त्ति वा प्रतिष्ठा की इच्छा नहीं करनी चाहिये किन्तु पूर्व-काल में हो चुके अनेक योगी वा ज्ञानियों की जैसे अब तक चिर-स्थायिनी निर्विघ्न अनिवार्य कीर्त्ति स्वयमेव चली जाती है वैसे धर्म के सूर्य अन्य पुरुषों का भी प्रकाश जगत् में स्वयमेव फैलाता है उसको कोई रोक नहीं सकता। उसके लिये परमेश्वर से विशेष मेल तथा उसके शरणागत होना उसकी उपासना करना ही मुख्य है। ये पांच मन्त्र यजुर्वेद के अध्याय ११ ग्यारहवें के आरम्भ में ऐसे ही ज्यों के त्यों हैं। कुछ पाठान्तर है वह पुस्तकान्तर में होने के समान ही है। उनमें पहिला अनुष्टुप्, दूसरा गायत्री तीसरा अनुष्टुप्, चौथा जगती और पांचवां त्रिष्टुप् छन्द है। इन पाचों मन्त्रों में योगाभ्यास की रीति का मूल दिखाया गया है ॥ ५ ॥

अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राभियुज्यते। सोमो यत्रा-तिरिच्यते तत्र संजायते मनः ॥ ६ ॥

अ०—यत्र यस्मिन्योगिनि पुरुषे विषयवासनां विहाय प्राणायामाभ्यासेन वाक्कर्मणा वेदाध्ययनेन च शारीरोऽग्निः प्रदीपयितुमभितः मथ्यते यत्र वायुरभियुज्यते प्राणवायुनिरो-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धोऽभ्यस्यते यत्र च सोमप्रधानं भोज्यमतिरिच्यते त्यज्यतेऽल्पीक्रियत उत्तमभोजनवस्त्रधारणादितो मन आकृष्यते तत्र मनो मननं संजायते ॥

भा०—बहुभिः साधनैर्ज्ञानाग्नेरुद्दीपनेन समूलप्राणायामाभ्यासेन भोगोत्करणठाह्वासेन च मनः शुद्धं समाहितं सम्पद्यते ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यत्राग्निरभिमथ्यते) जो योगी पुरुष अपने अन्तःकरण में विषय भोग की वासना को त्याग के प्राणयाम के अभ्यास से तथा वेदाध्यनरूप वाणी के कर्म से शरीरस्थ अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये मन्थन करता अर्थात् वायु से अग्नि बढ़ता वा प्रकट होता और प्राण के चढ़ाने उतारने से तथा पढ़ने से वायु बढ़ता है (यत्र वायुरभियुज्यते) जिस योगी में प्राणवायु के रोकने का अभ्यास किया जाता है और (सोमो यत्रातिरिच्यते) सोम तत्त्व जिसमें प्रधान है ऐसे भोज्य पदार्थ को जो त्यागता कम करता अर्थात् उत्तम भोजन वस्त्रादि से मन को हटाता है (तत्र संजायते मनः) उसमें मनन शक्ति हिताहित पहिचानने की योग्यता प्रकट हो जाती है।

भा०—बहुत साधनों द्वारा ज्ञानाग्नि का उद्दीपन करके यम-नियमादि सहित प्राणायाम के अभ्यास और भोग की तृष्णा के त्याग से मन शुद्ध समाहित और स्थिर हो जाता है ॥ ६ ॥

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्। तत्र योनिं कृण्वसे न हि ते पूर्वमक्षिपत् ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—प्रसूयतेऽदः प्रसवं मनः पूर्वोक्तविचारोदयरूपेण सवि-त्रा मनःप्रेरकेण प्रसूतेन मनसा पूर्व्यं सनातनं ब्रह्म परमात्मानं जुषेत सेवेत। एवं यदि त्वं तस्मिन् ब्रह्मणि योनिं मेलनं कृण्वसे करोषि तदा ते तव पूर्वकालीनं कर्म न ह्यक्षिपत्—न हि जन्ममरणप्रवाहे दुःखबहुले स्रोतसि त्वां प्रक्षेप्तुमर्हति ॥

भा०—यो भोगान्निर्विण्णो ज्ञानसाधनानि संचित्य शुद्ध-समाहितैकाग्रेण मनसा ब्रह्मण एवोपासनं करोति तस्यैव शरणं गच्छति नासावपरिमितं मरणादि दुःखं पुनर्लभत इति७

भाषार्थः—(प्रसवेन सवित्रा पूर्व्यं ब्रह्म जुषेत) पूर्वोक्त उदय को प्राप्त हुए मन के प्रेरक विचार से प्रकट हुए शुद्ध मनसे सनातन ब्रह्म परमात्मा का सेवन करे (तत्र योनिं कृण्वसे) इस प्रकार यदि तू उस ब्रह्म के साथ मेल करता है तो (ते पूर्वं नह्य-क्षिपत्) तेरा पूर्वकाल में किया संचित वासनारूप कर्म दुःख जिस में बहुत है ऐसे जन्म मरणादि प्रवाह की प्रबल तरङ्गों में तुझ को नहीं फेंक सकता अर्थात् तू संसार के पार होने योग्य हो सकता है ॥

भा०—जो पुरुष भोग से उदासीन हुआ ज्ञान के साधनों का संचय करके शुद्ध समाधिस्थ एकाग्र मन से ब्रह्म की ही उपासना करता उसी के शरण में रहता है वह मरणादि सम्बन्धी अपरिमित दुःखको फिर नहीं प्राप्त करता वा फिर नहीं फंसता ॥ ७ ॥

त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संनिवेश्य । ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयावहानि ॥ ८ ॥

अ०-उरोग्रीवाशिरांसि त्रीण्युन्नतानि यस्य तत्सममवक्रं शरीरं स्थाप्य संस्थाप्य हृदीन्द्रियाणि चक्षुरादिज्ञानेन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य सन्नियम्य तै रूपदर्शनादिकमकृत्वा ब्रह्म प्रणव उडुप इव तरणसाधनं तेन भयावहानि नानानिरययातनाभयान्यावहन्ति प्रापयन्ति तानि सर्वाणि स्रोतांसीन्द्रियगोलकानि प्रबलप्रवाहयुताः सरित इव विद्वान् प्रतरेत ॥

भा०—तज्जपस्तदर्थभावनप्रकारेण प्राणायामविधिरयम् । अभ्यासवैराग्यादिसाधनैरिन्द्रियवृत्तीर्वशीकृत्यैवशरीरं समम चलं च स्थापयितुं शक्यते । इन्द्रियवशीकारः शरीरस्थैर्यकारणं सति च स्थैर्ये प्राणानायम्य मनसि प्रणवं जपन् प्रणवार्थमीश्वरं च भावयन् पुरुषो दुःखसागरं तरीतुं शक्नोतीत्याशयः ॥

भाषार्थः—(त्रिरुन्नतं समं शरीरं स्थाप्य) छाती ग्रीवा और शिर ये तीनों जिस में ऊपर को उठे हों ऐसे सीधे शरीर को आसन पर स्थिर कर अर्थात् ऐसे शरीर से बैठ कर तथा (हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य) चक्षु आदि ज्ञानेन्द्रियों को मन की रुकावट से रोककर अर्थात् इन्द्रियों के साथ मन को न लगा के किन्तु मन के साथ इन्द्रियों को जोड़ के (भयावहानि स्रोतांसि विद्वान् ब्रह्मोडुपेन सर्वाणि प्रतरेत) प्रबल वेग से बहने वाली नदि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यों के समान विषयों में वहनेवाली इन्द्रियों को नाना प्रकार के नरक भोग की यातना का भय पहुँचानेवाला जानता हुआ ओ३म् का जप और उस के वाच्यार्थ ईश्वर के चिन्तनरूप नौका से शिर के सात इन्द्रिय छिद्र सप्तस्रोतरूप नदियोंको तरे पार होवे ॥

भा०—(तज्जपस्तदर्थभावनम्) उस वाचक प्रणव का जप, वाणी से बार२ उच्चारण और उस के वाच्य ईश्वर का भावन अर्थात् बार२ चिन्तन, इस रीति से प्राणायाम का विधान यहां कहा जानो। अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन की वृत्तिरूप इन्द्रिय शक्तियों को वशीभूत करके ही कोई शरीर को निश्चल ठहरा सकता है अर्थात् इन्द्रियों का वशीकरण शरीर की स्थिरता का कारण है और शरीर के स्थिर होने पर प्राण की गति रोक कर मन में प्रणव का जप करता और प्रणवार्थ ईश्वर का भावन करता हुआ दुःखसागर के पार हो सकता है ॥ ८ ॥

प्राणान् प्रपीड्येह स युक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत। दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान्मनो धारयेताप्रमत्तः ॥ ९ ॥

अ०—सप्राणायाभ्यासी योगी युक्ता नियता शान्ता चेष्टा देहक्रिया यस्य तादृग्भूत्वा मुहुर्मुहुर्निरोधेन प्राणान् प्रपीड्य प्रपीडनेन श्वासगमनागमनशान्तिं सम्पाद्य तथा सति क्षीणे स्थिरदशामापन्नेप्राणेनासिकयैवोच्छ्वसीत न मुखेन। एवं दुष्टा अश्वा युक्ता अस्मिंस्तादृशं वाहनमिवैनं शरीररथं विद्वान्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विजान्नप्रमत्तो मनो रश्मिरूपं धारयेत। यत्र दुष्टाश्वा युक्तास्तद्रथवाहको यदा निमेषमात्रमपि प्रमाद्यति विस्मरति तदा ते दुष्टाश्वाः सरथिस्वामिकं रथं सद्य एव गर्त्तादिषु नयन्ति पातयन्त्येव वा। तथैव क्षणमपि विस्मृते दुष्टेन्द्रियवृत्तयः सद्य एव विषयगर्त्तेषु शरीररथं नेष्यन्त्येवं जानान एव न प्रमाद्यति।

भा०—प्राणचेष्टायाः स्थिरीभावे शान्ता अपीन्द्रियवृत्तयो विस्मृत आत्मनि मध्ये मध्ये पुनरपि विषयेषु धावन्ति तस्मादिन्द्रियवृत्तीनां निरोधकाले चेतस्येकाग्रेऽपि दुष्टाश्वानिवेन्द्रियाणि जानीयाज्जितानीति न विस्मरेत् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(स युक्तचेष्टः प्राणान् प्रपीड्य) वह प्राणायाम का अभ्यास करनेवाला योगी पुरुष शरीर की चेष्टा को शान्त कर बार २ रोकने द्वारा प्राण के गमन आगमन को शान्तप्रवाह से चलनेवाला करके (क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत) ऐसा होने पर प्राण धीरे २ शान्त प्रवाह से चलने लगता है तब मुख को बन्द कर केवल नासिका से श्वास लेता जावे। सात द्वारों में मुख सबसे बड़ा द्वार है इसी कारण इसमें वाणी और रसना दो इन्द्रियां रहती हैं इसके बन्द रहने से दो इन्द्रियों को जीत सकता है इस लिये मुख को प्रथम बन्द करे परन्तु जब बल पूर्वक श्वास चलता है तब मुख का बन्द कर सकना कठिन है इसलिये प्राणशक्ति के निर्बल होने से धीमे चलनेवाली हो जाने पर ऐसा होना सुगम है (दुष्टाश्वयुक्तं वाहमिवैनं विद्वान्) दुष्ट घोडे जिसमें जुड़े हों ऐसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रथ (बग्घी दो वा चार घोड़े की गाड़ी) के तुल्य दुष्ट इन्द्रियरूप घोड़ों से युक्त शरीररथ को जानता हुआ (अप्रमत्तो मनो धारयेत) प्रमाद वा भूल न करके लगाम की रस्सीरूप मनको दृढ़ता से पकड़े रहे। जिस गाड़ी में दुष्ट घोड़े लगे होते हैं उसका हांकनेवाला यदि क्षण भर भी उनकी ओर से ध्यान हटा लेवे, वा ये घोड़े ऐसे दुष्ट हैं जो थोड़ा भी भूलतेही गाड़ी को ले भाग जायेंगे ऐसा न जानता रहे तो वे दुष्ट घोड़े रथ के स्वामी सारथी तथा रथ तीनों को कहीं गढ़े आदि में ले जाके गिराते वा वृक्षादि में लेजा के दे देते हैं। वैसे ही कोई योगी वा ज्ञानी इन दुष्ट इन्द्रियों की स्वाभाविक दुष्टता को क्षण भर भी भूलजावे तो ये शीघ्र ही शरीररूप रथ को विषयरूप गड्ढों में ले जाते ऐसा जानता हुआ ही प्रमाद को छोड़ कर योगी मन को वशीभूत रख सकता है ।

भा०—प्राण की चेष्टा के स्थिर होने से इन्द्रियों की शक्ति के शान्त होने पर भी बीच २ आत्मा के किंचित् भी भूल जाने पर वे इन्द्रिय फिर २ विषयों की ओर भंड़ियाये पशु के समान भागते हैं। इस कारण इन्द्रियों के रुकने से चित्त के एकाग्र होने पर भी दुष्ट घोड़ों के समान इन्द्रियों को जानता रहे किन्तु ये मेरे वशीभूत हो गये ऐसा मान के भूल न जावे ॥ ९ ॥

समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः। मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—समेऽनिम्नेऽनुन्नते शुद्धे दुर्गन्धादिरहिते शर्करावह्नि-वालुकाविवर्जिते-शर्करा पाषाणादिचूर्णं वह्निसामीप्यं वालुकाधिक्यं च यत्र तस्माद्भिन्ने, कलहतुमुलादिशब्दाधिक्यं जलं प्राण्यागमननिवासस्थानमाश्रयो ग्रामघोषादिमनुष्यादि-वासस्थानं तैरपि विशेषतो वर्जिते तादृशे मनोनुकूले मनः स्थैर्यहेतुके यत्र दृश्यविषयसत्त्वाच्चक्षुषोः पीडनमाकर्षणं न सम्भवति तत्र गुहायां निवातस्थाने वा परमात्मनि चेतः प्रयोजयेत् ॥

भा०—एवंभूते सर्वथा चित्तेन्द्रियाकर्षकहेतुवर्जित एव गुहादिस्थाने योगाभ्यासरीत्या परमात्मध्यानं कुर्वन् योगिजनः फलभाक्स्यादिति सम्भवति । सत्स्वेव सम्यक्साधनेषु सर्वाणि कार्याणि सिद्ध्यन्ति तथैवात्रापि ज्ञेयम् ॥ १० ॥

भाषार्थः—(समे शुचौ शर्करावह्निवालुकाविवर्जिते शब्द-जलाश्रयादिभिः) जहां अधिक ऊँची नीची पृथिवी न हो किन्तु सम चौरस शुद्ध दुर्गन्धादि रहित हो, ककरीली वा पथरीली न हो, जहां अग्नि अधिक न हो, तथा जहां बालू अधिक न हो तथा जहां लड़ाई झगड़े वा मेला बाजार ग्रामादि के मनुष्यों का हल्ला-गुल्ला न सुन पड़ता हो, जहां जहां समीप वा सब ओर जलाशय न हो जिसमें जलार्थी प्राणियें वा जलाशय निवासी जीव देखने में आवें ऐसे जङ्गल देश में वा (मनोऽनुकूले न तु चक्षुपीड़ने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्) मनकी स्थिरता के हेतु जहां ग्रामादि सम्बन्धी कोई दर्शनीय वस्तु न हो जिनके दीख पड़ने से चित्त उधर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का खिचे ऐसे अधिक वायु की गति से रहित वा गुहारूप किसी स्थान में योगसाधन द्वारा आत्मा में चित्त को लगावे किन्तु वहां भी विषयवासना की ओर मन को न जाने देवे ॥

भा०—जहां चित्त वा इन्द्रियों को अपनी ओर खीचनेवाला कोई कारण न हो ऐसे गुहादि स्थान में योगाभ्यास की रीति से परमात्मा का ध्यान करता हुआ इष्ट सुख शान्तिरूप फल का भागी होना यह सम्भव है। अर्थात् जैसे सब साधनों के ठीक होने पर ही सब कार्यों की सिद्धि होती है वैसे यहां भी जानो ॥ १० ॥

नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम्। एतानि रूपाणि पुरस्सराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ॥ ११ ॥

अ०—यागे क्रियमाणे सिद्ध्यभिमुखे दीर्घकालमभ्यस्ते नीहारस्तुषारोऽर्कः सूर्योऽनिलो वायुरनलोऽग्निः खद्योतादयश्च प्रसिद्धा एषां रूपाणीव ब्रह्मण्याविष्क्रियमाणे ध्यानयागे लक्षितानि भान्ति ब्रह्मज्ञानं ब्राह्मणः साक्षात्कारः सद्यो भवितेति योगसिद्धरूपब्रह्मज्ञानस्य पूर्वरूपाणि भवन्ति ॥

भा०—न चाल्पकालाभ्यासिनोऽजितेन्द्रियस्य प्रमत्तस्य प्रतिकूलदेशे वा युञ्जानस्य कस्यापि योगसिद्धिसूचकचिह्नानि भवितुमर्हन्ति तस्माद्योगमभ्यस्यन्सर्वाङ्गपूर्तये दीर्घकालावधि निरन्तरं श्रद्धया तीव्राभ्यासेन यतेत ॥ ११ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(योगे) बहुत काल तक निरन्तर योगाभ्यास श्रद्धा पूर्वक करते २ जब योगसिद्ध होने का समय आता है तब (नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशिनाम्) तुषार धूम सूर्य अग्नि जुगुनू बिजुली मणि और चन्द्रमा (एतानि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि रूपाणि पुरस्सराणि) इन सब के रूप समाधि में ब्रह्म परमात्मा का ज्ञान होने के पूर्वरूप होते हैं। अर्थात् जब योगसिद्धि द्वारा ईश्वर का साक्षात्ज्ञान होने का समय निकट आता है तब ध्यान में तुषारादि के से रूप क्रम से दीखने लगते हैं॥

भा०—थोड़े काल के योगाभ्यासी वा योगभ्रष्ट अजितेन्द्रिय प्रमादी निरुत्साही वा प्रतिकूल स्थान में योगाभ्यास करनेवाले किसी अधकचरे योगी को योगसिद्धि के सूचक चिह्न नहीं दीख सकते। इस कारण योगाभ्यास करता हुआ सब अङ्गों की पूर्त्ति के लिये बहुत काल तक श्रद्धा के साथ तीव्राभ्यास द्वारा निरन्तर प्रयत्न करता रहे॥ १९॥

पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते। न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥ ११॥

अ० पृथ्व्याप्यतेजोनिलखे समुत्थिते स्वदेहस्थपञ्चतत्त्वानामुत्कर्षेनिकृष्टांशह्रासेन शुद्धांशे प्रबलत्वं यात उन्नते तदेवं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते दिव्यगन्धादिविषयप्रवृत्तौ सत्यां तस्य योगाग्निमयं शरीरं प्राप्तस्य योगिनो न जरा न मृत्युः ॥

भा०—यथा च सुवर्णादीनां यथायथा शोधनोपायाः क्रियन्ते तथातथा मलिनांशा असारा निवर्त्तन्ते शुद्धांशाश्च सारा वैशारद्यमाप्ताः प्रदीप्यन्ते । सार एव सर्वत्र शुद्धांश उच्यते । सार एव चिरस्थाय्यसारश्च सद्यो विनश्वरो भवत्येव । एवं योगाङ्गानुष्ठानप्राबल्येन बहुकालीनेन दृढेन शरीरेन्द्रियान्तःकरणानां मलिनांशाः शनैः शनैरपचीयन्ते शुद्धांशाश्च सारभूता वज्रमण्यादयश्चिरन्तनस्थायिनोऽविनश्वरा इव योगिशरीरं चिरन्तिष्ठति । असारमेव रोगा जरा चाक्रामति । यच्च दर्पणं यादृशं सारभूतं मालिन्यविहीनं च तस्मिन् तादृशमेव रूपवैशारद्यं सम्भवत्येवं शुद्धैः सारभूतैरेवेन्द्रियैर्विप्रकृष्टतरगन्धादिविषयाणां सम्यग्ग्रहणं सम्भवति ॥ "ज्योतिष्मती स्पर्शवती तथा रसवती परा । गन्धवत्यपरा प्रोक्ता चतस्रस्तु प्रवृत्तयः ॥ आसां योगप्रवृत्तीनां यद्येकापि प्रवर्त्तते । प्रवृत्तयोगं तं प्राहुर्योगिनो योगचिन्तकाः ॥" योगभाष्ये तु पञ्च षड् वा प्रवृत्तय उक्तास्तासु चतस्रो विषयवत्योऽविषया चैकोक्ता ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(पृथ्व्याप्यतेजोनिलखे समुत्थिते) अपने शरीरस्थ पृथिवी अप् तेज वायु और आकाशरूप पञ्चतत्त्वों के निकृष्ट मलिनांश का नाश होकर शुद्धांश की प्रबलता वा उन्नति होने की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से इस प्रकार (पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते) दिव्यगन्धादि विषयों में प्रकृष्ट साक्षात् वृत्ति होने पर अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा सूक्ष्म व्यवहित और अतिदूर के शब्दादि विषयों का साक्षात् बोध होने की शक्ति प्रकट होने पर (तस्य योगाग्निमयं शरीरं प्राप्तस्य न रोगो न जरा न मृत्युः) पञ्चतत्त्व की शुद्धि द्वारा योगाग्निरूप शरीर को प्राप्त हुए उस योगी पुरुष को न रोग न निर्बलता और न मृत्यु सताता है ॥

भा०—जैसे सुवर्णादि धातुओं के शोधने का जैसा २ उपाय किया जाता है वैसे २ मलिन असार अंश उन सुवर्णादि के निकलते जाते और शुद्ध सारांश निर्मलता को प्राप्त हुए अंश प्रदीप्त होते हैं। तथा सार ही सर्वत्र शुद्धांश कहाता और सार ही चिरस्थायी होता वा जो शुद्ध चिरंस्थायी अंश है वही सार कहाता और असार अपने स्वभाव से ही शीघ्र नष्ट होता है वा जो शीघ्र नष्ट होनेवाला है वह असार कहाता है। वैसे ही योग के तप आदि अंगों के अनुष्ठान की प्रबलता से अर्थात् बहुत काल तक दृढ़ता और निरन्तर श्रद्धा के साथ साङ्गोपांग योगाभ्यास करने से शरीर इन्द्रियां और अन्तःकरण के मलिनांश शनैः शनैः दूर हो जाते तथा शुद्ध सारभूत अंश रह जाते हैं। ऐसा होने पर शुद्ध सार वस्तु की अधिक स्थिति रह सकने से ही बहुत काल ठहरने वाले सारभूत अविनाशी हीरा आदि के तुल्य योगी का शरीर सहस्रों वर्ष ठहरनेवाला अविनाशी हो जाता है। असार मलिन वस्तु पर ही रोग और निर्बलतारूप जरावस्था अपना प्रभाव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दखल) जमाते हैं इसी से योगी के शरीर को रोगादि नहीं दबा पाते। जो दर्पण जैसा साररूप वा जैसा मलिनता रहित होता उसमें वैसा ही शुद्धरूप दीखना सम्भव है। इसी प्रकार शुद्ध सारांशरूप निर्मल इन्द्रियों से अत्यन्त दूरस्थ सूक्ष्म वा छिपे हुए गन्धादि विषयों का ग्रहण वा बोध योगी को हो सकता है "ज्योतिष्मती, रसवती, स्पर्शवती और गन्धवती ये चार योगप्रवृत्ति कही हैं। इन योगप्रवृत्तियों में से यदि किसी को एक भी सिद्ध हो जाय तो भी उसको योग में प्रविष्ट हुआ योगचिन्तक योगी लोग कहते हैं।" ये किसी अन्य ग्रन्थकार के दो श्लोक हैं इनमें चार योग प्रवृत्ति मानी हैं परन्तु (विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी) इस योगसूत्र पर व्यास भाष्य में पांच विषयों की पांच प्रवृत्तिमानी हैं। उनमें चार विषयवती और एक अविषया है ॥१२॥

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति॥१३॥

अ०—लघुत्वमालस्याद्यभाव आरोग्यं ज्वरादिजदुःखाभावोऽलोलुपत्वं कर्मस्वचाञ्चल्यं शान्त्या धैर्येण च प्रवृत्तिर्वर्णस्याकृतेब्रह्मचर्यशौचाद्यनुष्ठानाधिक्येन शुद्धिर्दीप्तिः स्वरसौष्ठवं संकोचाद्यभावेन मानसशौचेन च स्वरस्य सम्यक् स्पष्टतया निस्सरणम्, शुद्धसात्विकाल्पाहारसेवनादेव शरीरोच्छ्वासो गन्धो मूत्रपुरीषयोश्चाल्पत्वं जायत एव। इतीमां प्रथमां योगप्रवृत्तिं वदन्ति योगीश्वराः। प्रथमश्रेणिं प्रविष्टस्य योगिनो लिंगानीमानि पूर्वरूपाणि भवन्ति॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—योगाङ्गसेवनरतपुरुषस्य लघुत्वादिलिङ्गानि जायमानानि तस्य प्रथमयोगश्रेणिप्रवेशं सूचयन्ति। प्रथमश्रेणिप्रवेशानन्तरमेव द्वितीयादिश्रेणिषु प्रवेशो युज्यते। एवं च द्वितीयादिभूमिकास्वेव पूर्वपद्योक्ता योगप्रवृत्तिः सम्भवति यत्र योगाग्निमयं शरीरं योगिना प्राप्यते। अत्र प्रथमपदोपादानादेवान्यप्रवृत्तेर्द्वितीयादित्वमायाति ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वम्) आलस्यादि को छोड़कर शरीर का हलकापन, ज्वरादि रोगों का अभाव, कर्म करने में चञ्चलता का त्याग शान्ति और धीरज से प्रवृत्ति (वर्णप्रसादं स्वरसौष्ठवं च) ब्रह्मचर्य और शौचादि के अधिक सेवन से आकृति की शुद्धि प्रसन्नता शान्तिभाव का दीखना, संकोचादि के अभाव और मन के शुद्ध होने से स्पष्टता से सम्यक् वाणी स्वर निकलना (गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति) शुद्ध सात्त्विक अल्प भोजन के सेवन से शरीर के छिद्रों द्वारा शुभ अच्छे गन्ध का निकलना और मूत्र पुरीषादि मलों का कम उत्पन्न होना तथा कम निकलना योगीश्वर लोग इस दशा को योग की पहिली प्रवृत्ति कहते वा योग के प्रथम श्रेणी में प्रवेश होने का लक्षण लघुत्वादि को कहते मानते हैं ॥

भा०—यमनियमादि योगाङ्गों के सेवन में रत पुरुष के शरीर में प्रकट हुए लघुत्वादि चिन्ह उसके योग की प्रथम श्रेणी में हुए प्रवेश को जताते हैं। और प्रथम श्रेणी में प्रवेश होने के पश्चात् ही द्वितीयादि श्रेणी में प्रवेश हो सकता है। इस प्रकार द्वितीयादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमि वा दशा में ही पूर्व श्लोक में कही योगप्रवृत्ति हो सकती है कि जहाँ यागाग्नि स्वरूप शरीर को योगी प्राप्त कर सकता है। इस मन्त्र में प्रथम पद के कहने से ही अन्य पूर्वोक्त प्रवृत्ति द्वितीयादि श्रेणी में होनी सिद्ध है ॥ १३ ॥

यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत्सुधातम्। तद्वात्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥ १४ ॥

यथैव बिम्बं सुवर्णरजतादिमयं पात्रं शोधनाय मृदयोपलिप्तं यद्वा मालिन्यरूपमृत्तिकया युक्तं तत्सुधातं सुधौतं सम्यक्प्रक्षालितं तेजोमयं तेजःस्वरूपं शुद्धं सद् भ्राजते शोभते यद्वाऽग्नौ ध्मायमानं मलिनं बिम्बं यथा भ्राजते तद्वा तद्वत्—[इवार्थेत्र वा शब्दः] इन्द्रियादिसङ्गरहित एको देही देहस्वामी जीव आत्मतत्त्वं परमात्मसद्भावं प्रकर्षेण सूक्ष्मया प्रज्ञया समीक्ष्य वीतशोको निवृत्तशोकः सन् कृतार्थः सिद्धसंकल्पो भवते ॥

भा०—परमात्मसाक्षात्कारेणास्य जीवस्य वह्न्यादि संयोगेन धातूनामिव दुर्वासनादिजन्यं सर्वं मालिन्यमनायासेन सद्यएव निवर्त्तते ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(यथैव बिम्बं मृदयोपलिप्तम्) जैसे सुवर्ण चांदी आदि धातुओं का पात्र शुद्ध करने के लिये मट्टी लिप्त किया वा सामान्य मलिनतारूप मट्टी से युक्त हुआ (तत्तेजोमयं सुधातं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भ्राजते) वह अच्छे प्रकार धोने पर वा अग्नि में धर कर तपाने से शुद्ध तेजोमय हुआ शोभित होता चिलकने लगता है (तद्वैको देही—आत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य वीतशोकः कृतार्थो भवते) उसीके तुल्य इन्द्रियादि के संग से रहित अपने स्वरूप में अवस्थित अकेला जीवात्मा परमेश्वर के ठीक शुद्ध स्वरूप को सूक्ष्म बुद्धि से अच्छे प्रकार समीक्षण करके शोक से रहित कृतार्थ हो जाता है ॥

भा०—परमात्माके साक्षात् जानने से दुर्वासनादि सम्बन्धी इस जीव की सब मलिनता सुगमता से शीघ्र ही छूट जाती है ॥ १४ ॥

यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१५॥

अ०—जिज्ञासुर्जनो यदेह स्वदेहे दीपोपमेनात्मतत्त्वेन स्वस्य जीवस्वरूपेण युक्तः स्वरूपावस्थो विषयेन्द्रियादिसङ्गवर्जितो ब्रह्मतत्त्वं ब्रह्मणस्तत्त्वभावं प्रकर्षेण ध्यानगतः पश्येत् । तदा तं चाजमजन्मानं ध्रुवमचलं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धमसंसृष्टं देवं दीप्यमानमीश्वरं ज्ञात्वा सर्वदुःखबन्धनैर्मुच्यते ॥

भा०—जीवस्यान्तःकरणेऽनेकाः कुवासनारूपा दुःखबन्धहेतुका अनादिकालीना ग्रन्थयो विद्यन्ते तासामेव पाशत्वं ता एव च सर्वविधदुःखमूलचिन्ताशोकादीनामुत्पादिकास्तासामात्मदर्शनेन सत्यां निवृत्तौ शोकादयोऽपि निवर्त्तन्ते ॥१५॥

भाषार्थः—(यदेह दीपोपमेनात्मतत्त्वेन युक्तो ब्रह्मतत्त्वम्) जब जिज्ञासु पुरुष, अपने शरीरस्थ अन्तःकरण में दीपक के तुल्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप में अवस्थित अपने जीव स्वरूप से ब्रह्मतत्त्व को (प्रपश्येत्) ध्यानावस्थित हो अच्छे प्रकार देखे और उस ईश्वर को (अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैर्मुच्यते) अजन्मा, अचल और सब पृथिव्यादि स्थूल सूक्ष्म तत्त्वों से अपरामृष्ट असंयुक्त प्रकाशमान जान के सब दुःख बन्धनों से छूट जाता है ॥

भा०—जीव के अन्तःकरण में अनादि काल से संचित दुःख और बन्धन का कारण, कुवासनारूप अनेक गाठें विद्यमान हैं वे ही फांसें रस्सी के तुल्य बांधनेवाली तथा वे ही सब दुःखों के मूल चिन्ता शोकादि को उत्पन्न करनेवाली हैं। ब्रह्म ज्ञान होने से उनकी निवृत्ति होने पर शोकादि भी छूट जाते हैं ॥

एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः । स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतो मुखः ॥ १६ ॥

अ०—एष पूर्वोक्तो देवो दीप्यमान ईश्वरः सर्वा दिशः प्रदिशश्चानुगतो व्याप्तोऽन्तर्गर्भे ब्रह्माण्डस्य मध्ये पूर्वः पूर्वं जातः सर्गारम्भे सर्वं स्रष्टुं प्रादुर्भवति । स एव जातःस एव च जनिष्यमाणो यस्मिन् जायमाने सर्वमिदं जायते न तत्समोऽन्यस्य प्रादुर्भावोऽस्ति स एव चैकतोमुखेषु सर्वप्राणिषु प्रत्यङ् हृदि जनानभिव्याप्य सर्वतोमुखस्तिष्ठति ॥

भा०—परमात्मन ईक्षणरूप एव सर्गादौ प्रादुर्भावो न च तेन विना कस्यापि प्रादुर्भावो वक्तुं युज्यते । यस्मिन् जायमाने

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वमिदं जायते स एव जातो नान्यः कोपि। स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिमितिवदत्रापि कथनं बोध्यम्। तेन प्राशस्त्यपरं तस्येश्वरस्येक्षणरूपं जायमानत्वं न तु मनुष्यदेहादिवत्स कदाप्युत्पद्यते तस्य सर्वदैवाकायत्वात्। तथा सत्येव निर्जनप्रदेशादावपि तस्य व्याप्तिः ॥ १६ ॥

भाषार्थः—(एषो ह देवः प्रदिशोऽनुसर्वाः) यह पूर्वोक्त प्रकाशस्वरूप ईश्वर सब दिशा और प्रदिशाओं में व्याप्त (स उ अन्तर्गर्भे पूर्वो ह जातः.) वही सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्माण्ड के भीतर सबको रचने के लिये सब से पहिले प्रकट होता है (स एव जातः स जनिष्यमाणः) जिसके प्रकट होने पर यह सब जगत् उत्पन्न हो जाता वही कल्पारम्भ में प्रकट हुआ और वही अगले कल्पों में होगा तभी संसार की व्यवस्था चलेगी (प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः) वही एक २ ओर मुखवाले सब प्राणियों के हृदय में व्याप्त होकर सब ओर से सबको देखता है ॥

भा०—सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा का ईक्षणरूप ही प्रादुर्भाव होता है जब कि उसके विना ईक्षण किये किसी की उत्पत्ति नहीं हो सकती तो जिसके होने पर सब होता उसीका होना मुख्य हुआ "संसार में उत्पन्न वह हुआ है जिसके होने से उसके कुल वा वंश की उन्नति प्रतिष्ठा बढ़े" इस लौकिक कथन के अनुसार यहां भी कहा जाता। इससे प्रशंसापरक उस ईश्वर का ईक्षण रूप से प्रकट होना कहा है किन्तु मनुष्य शरीरादि के तुल्य वह कभी उत्पन्न नहीं होता क्योंकि वह सदा ही अकाय है। ऐसा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने पर ही निर्जन प्रदेश विकट जंगलादि में भी उसकी व्याप्ति हो सकती है यजुर्वेद अ० ३२ मं० ४ ऐसा ही है ॥ १६ ॥

यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश । य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमोनमः ॥ १७ ॥

अ०—यो देव ईश्वरोऽग्नौ योऽप्सु य ओषधीषु यो वनस्पतिषु एवमुपलक्षणमात्रकथनेन यो विश्वं सर्वं भुवनं लोकमाविवेश तस्मै देवाय नमोनमः ॥

भा०—सर्वव्याप्तेश्वराय यो भक्त्या पुनःपुर्नमस्करोति स्वेष्टसिद्धिं च ततो याचते तमेव स्तौति च स्वभावेनैव भक्तवत्सलस्तस्य कल्याणमवश्यं करोतीति भक्त्या नमस्कारादिना प्रसाद्यः । नमः पदस्य द्विर्वचनमध्यायपूर्त्यर्थं चापि बोध्यम् ॥ १७ ॥

भाषार्थः—(योऽग्नौ योऽप्सु य ओषधीषु यो वनस्पतिषु) जो अग्नि में जो जलों में जो औषधियों—गेंहू जौ आदि में और जो वट आदि वनस्पतियों में रहता इत्यादि प्रकार से (यो देवो विश्वं भुवनमाविवेश) जो देव ईश्वर सब लोक लोकान्तर संसार भर में प्रविष्ट हो रहा है (तस्मै देवाय नमोनमः) उस देव के लिये हम बार २ नमस्कार करते हैं वा करें ॥

भा०—संसारस्थ अग्नि आदि पदार्थों में जो प्रबल वा अद्भुत शक्ति दीखती है वे सब जिसकी सत्ता में वा नियम में बद्ध होकर अपना २ काम देते हैं वही ईश्वर सर्वशक्तिमान् है । जो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरुष सर्वव्यापक ईश्वर को भक्ति के साथ बार २ नमस्कार करता और अपने इष्ट की सिद्धि उससे मांगता उसी की स्तुति करता है। स्वभाव से भक्तों का उद्धार करनेवाला ईश्वर उसका कल्याण अवश्य करता है इस लिये भक्ति के साथ नमस्कारादि से उसको प्रसन्न करने का उद्योग अवश्य करना चाहिये। यहाँ नमःपद को अध्याय की समाप्ति दिखाने के लिये द्विरुक्त किया है॥ १७॥

इति भीमसेनशर्मनिर्मिते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये
द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः॥ २॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ तृतीयाऽध्यायारम्भः।

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वाँल्लोकानीशत ईशनीभिः। य एवैकउद्भवे संभवे च य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति १

मत्स्यबन्धनं जालमिवायं संसारः प्राणिबन्धहेतुत्वाज्जालं तस्य स्वामी जालवानेकोऽद्वितीयो न तस्य स्वामित्वेऽन्यः कश्चित्सम्मिलितोऽस्ति। एवं य एक ईशनीभिः साधकतमाभिः स्वशक्तिभिरीशनशीलाभिर्वा—ईशत ईष्टे सर्वं स्ववशे स्थापयति। य एवैक उद्भवे उत्पत्तौ सम्भवे स्थितिकाले च सर्वाँल्लोकानीशत ईशनीभिरित्युक्तानुवादो दार्ढ्यार्थः। (बहुलं छन्दसि। २। ४। ७३) शपो लुगभावः। ये जनास्तस्यैकत्वमीशितृत्वं चैतद्द्वयं तत्त्वतो विदुस्तेऽमृता भवन्ति॥

भा०—यथा मत्स्या जालान्निस्सर्त्तुं न शक्नुवन्त्येवं प्राणिनो दुःखाधिके जगति मग्ना अपि प्रायेण संसारजालान्निस्सर्त्तुमशक्ता भवन्ति। यथाधीवरादिर्जालवान् जालेन न बध्यते तेन मत्स्यानेव बध्नाति तथैवेश्वरो न बध्यते। यश्चकोऽपि जालस्वामिना मैत्रीं करोति न तं जाले बध्नाति सः। अपि तु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बद्धमपि निस्सारयत्येवेति मत्वा जालस्वामिप्रसादाय दुःखान्मुमुक्षुणा विशिष्टोद्योगः कार्यः।

भाषार्थः—(जालवान् य एक ईशनीभिरीशते) मछलियों को पकड़ने के लिये जैसा जाल बनाया जाता वैसे ही प्राणियों के बन्धन का हेतु होने से यह संसार जाल कहाता है। उस संसार जाल का स्वामी जालवान् कहाता जो इतने बड़े अनन्त जाल वाला अपनी अनन्त शक्तियों द्वारा सबको वश में रखता है (य एवैक उद्भवे संभवे च सर्वाँल्लोकानीशत ईशनीभिः) जो एक ही किसी अन्य की सहायता न ले कर उत्पत्ति और स्थिति काल में वा प्रलय करने के समय सब संसार को अपनी अनन्त शक्तियों से उत्पन्न आदि करता है उसकी इच्छा से विरुद्ध तिलमात्र भी उत्पत्ति स्थिति और प्रलय नहीं होता (य एतद्विदुस्तेऽमृता भवन्ति) जो मनुष्य उसकी एकता और स्वामीपन को तत्त्वरूप से ठीक २ जानते हैं वे मुक्त हो जाते हैं॥

भा०—जैसे जाल में फँसीं मछलियां निकलना चाहती हुई भी निकल नहीं सकतीं फड़फड़ा २ कर उसी में मर जाती हैं। वैसे संसार के असंख्य दुःखों में फँसे हुए भी प्राणी संसारजाल से प्रायः निकल नहीं पाते। जैसे मछली पकड़नेवाले धीमर आदि जालवाले जाल में स्वयं नहीं बँधते किन्तु उस जाल से मछलियों को ही पकड़ते हैं। वैसे ईश्वर भी संसारजाल में बद्ध नहीं होता और जो कोई इस जाल के स्वामी से मित्रता और मेलमिलाप करता है उसको वह जाल में नहीं बाँधता किन्तु स्वयं बँधे हुए को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी अपनी कृपादृष्टि से अवश्य निकाल लेता है। ऐसा मान कर दुःख से छूटने की इच्छावाले मनुष्य को उचित है कि संसाररूप जाल के स्वामी को पूसन्न करने के लिये विशेष उद्योग वा पूयत्न करे ॥१॥

एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः। प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सञ्चुकोपान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः ॥ २ ॥

अ०—यो जनान्मनुष्यादीन्संसृज्य सम्यगुत्पाद्य प्रत्यङ् तदन्तःकरणे तिष्ठति तिष्ठन्व्याप्त एव स्थितिकाले विश्वा विश्वानि सर्वाणि भुवनानि गोपा रक्षति। अन्तकाले प्रलयावसरे च यः संचुकोप संकुपितः सर्वं संहरति। एवं य इमांल्लोकानीशनीभिरीशत ईष्टे हि यतः स एको रुद्रः सर्गस्थितिलयावसरेषु जालबद्धानां रोदयितैक एवास्ति तस्मादेव पूर्वजा ज्ञानिनो योगिनश्च द्वितीयाय न तस्थुर्नोपतस्थिरे ॥

भा०—सर्गस्थितिलयरूपकार्यत्रयस्य ये ब्रह्मादीन् त्रीन् कर्तॄन् मन्यन्ते भ्रान्तास्तेऽपि तु कार्यभेदेनैकस्यैव ब्रह्मादीनि नामान्तराणि सन्ति। इह मुण्डो भवेह जटिलो भवेह शिखी-भवेतिवदेकस्यैव नामानि बहूनि भवन्ति। सम्प्रत्यपि य उत्पद्यन्ते ये लब्धायुष्काः सुखं जीवन्ति ये च म्रियन्ते तेषां सर्वेषां प्रात्यहिकसर्गस्थितिलयानामप्यतीतानागतयोरिवैक एव प्रधानं कारणमिति ये सम्यग्बुध्यन्ते ते च तमेवैकमुपासते। यतः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्वैरपि मुमुक्षुभिस्तस्य सर्वाधीशस्यैकस्य वोपासनमभिमतम-तोऽस्माभिरपि तथैवानुष्ठेयम् ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यो जनान् संसृज्य प्रत्यङ् तिष्ठति) जो मनुष्यों को सम्यक् उत्पन्न करके उनके भीतर अन्तःकरण में ठहरता और व्याप्त रहता हुआ ही जगत् के स्थितिकाल में (विश्वा-भुवनानि गोपाः) सब लोकों की रक्षा करता है (अन्तकाले संचुकोप) प्रलय का समय आते ही जो सम्यक् कुपित हुआ सब का संहार कर देता है। इस प्रकार जो (इमांल्लोकानीशनीभिरीशते) इन सब लोकों को अपनी अनन्त शक्तियों से उत्पत्ति स्थिति प्रलय करता हुआ स्वाधीन रखता है (हि एको रुद्रः) जिस कारण संसार जाल में फँसे हुए सब प्राणियों को रुलानेवाला रुद्र एक ही है इसी कारण पूर्वज ज्ञानी योगी लोगों ने भी (द्वितीयाय न तस्थुः) अन्य किसी द्वितीय की भक्ति उपासना नहीं की किन्तु उस एक की ही उपासना सब करते आये हैं ॥

भा०—सृष्टि स्थिति और प्रलयरूप तीन कार्यों के ब्रह्मा विष्णु रुद्र नामक तीन कर्त्ताओं को जो लोग भिन्न २ मानते हैं वे सब भ्रान्ति वा अविद्या में ग्रस्त हैं किन्तु कार्यभेद से एक के ही ब्रह्मादि तीन नाम हैं। जैसे कोई कहे कि "देवदत्त! तू यहां मुण्ड हो यहां जटिल हो और यहां केवल शिखाधारी हो।" इस प्रकार एक के ही बहुत नाम हो जाते हैं। वर्त्तमान समय में भी जो उत्पन्न होते जो उत्तम दशा में जीवित रहते और जो मरजाते हैं उन सब के नित्य होनेवाले उत्पत्ति स्थिति प्रलयों का भी भूत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भविष्यत् काल के तुल्य एक ही प्रधान कारण है ऐसा जो लोग ठीक २ जानते हैं वे उसी एक की उपासना करते हैं। क्योंकि पूर्वज मुमुक्षु लोगों ने भी उसी एक सर्वाधीश की उपासना स्वीकार की है। इससे हमको भी वैसा ही करना उचित है ॥ २ ॥

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात्। संबाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देवएकः ॥ ३ ॥

अ०—सर्वत्र व्याप्त्या सर्वशक्तिमत्तया च विश्वतः सर्वतश्चक्षूंषि दर्शनशक्तयो यस्य विश्वतो मुखं भक्षणशक्तिरस्य विश्वतो बाहवः स्तम्भनशक्तयः सर्वत्र यस्यैवं विश्वतः पादा देशान्तरप्राप्तिशक्तयो यस्य स तादृशः सर्वशक्तिर्देवो द्योतनशील एकएवेश्वरो द्यावाभूमी अग्नीषोमीयं दैवासुरं सप्रकाशमप्रकाशं वेत्यादिरूपं द्विविधं सर्गं जनयन् प्रादुर्भावयन् बाहुभ्यां बलद्वयेन ब्रह्मबलेन क्षत्र बलेन च [बाहुवै बलमिति ब्राह्मणम्] यद्वा धर्माधर्माभ्यां सन्धमति संगमयति पतत्रैः पतनशीलैः संसरणस्वभावैः परिवृत्तिधर्मकैः पञ्चभूतैश्च विश्वा भूतानि संगमयति संयोजयति। धमतिर्गतिकर्मा निघण्टौ २। १४। पठितः स चात्र एयर्थः ॥

भा०—विश्वतश्चक्षुरित्यादिकथनेन तस्य सर्वशक्तिमत्त्वमत्र प्रतिपादितम्। यथा कश्चिद्बाहुद्वयेन जलादिकं क्षोभयत्येवं यो भोग्यभोक्तृरूपस्त्रीपुरुषादिविधशक्तिद्वयेन सर्वमविरतम-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विश्रान्तं निरन्तरं भ्रामयति यन्त्रारूढमिव। तस्माद्यस्य स्वाभाविकबलेनैव सर्वो लोकलोकान्तरोऽनन्तोऽपि सर्गोऽविरामेण भ्राम्यति स कियच्छक्तिरिति, ध्येयम्। यजुषि १७।१९ मन्त्रोऽयं द्रष्टव्यः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—सर्वत्र व्याप्त और सर्वशक्तिमान् होने से (विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतो मुखः) स्थिति समय में सब को सब ओर आगे पीछे भीतर बाहर देखने की जिसमें शक्ति है तथा प्रलय के समय सब ओर से जिस में खाने की शक्ति है (विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् (स्थिति काल में सब ओर से अनन्त ब्रह्माण्ड को धारण करने की जिसको शक्ति है तथा दूर से भी दूर देशान्तर में पहुँचने की शक्ति भी जिसमें सब ओर से है। वह ऐसा सर्वशक्तिमान्) एको देवो द्यावाभूमी जनयन्) एक ही देव ईश्वर अग्नि-सोम, देव-असुर वा प्रकाश अप्रकाश इत्यादि रूप दो प्रकार की सृष्टि को प्रकट करता हुआ (बाहुभ्यां संधमति) ब्रह्मबल और क्षत्रबल इन दो प्रकार के बल से अथवा धर्म अधर्मरूप दो भुजाओं से सब प्राणियों को संयुक्त करता और (:पतत्रैः सम्) चलायमान स्वभाव वाले परिवर्त्तन शील पांच भूतों से सब चराचर को संयुक्त करता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में बाहु शब्द का अर्थ बल लिया गया है (दो ही बल मुख्य हैं धनबल स्वतन्त्र नहीं किन्तु पराधीन है जिसको बुद्धिबल वा बाहुबल दोनों होते उसी के पास धन भी आजाता है ॥

भा०—(विश्वतश्चक्षुः) इत्यादि कथन से उस ईश्वर का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वशक्तिमान् होना सिद्ध किया है। जैसे कोई मनुष्य दोनों बाहु से बल पूर्वक जल आदि को क्षोभित करता वैसे जो भोग्य भोक्ता-रूप स्त्री पुरुषादि दो शक्तियों से सब संसारको बीच में विश्राम न लेकर वा विरामन करके निरन्तर चक्र पर चढ़े हुए के तुल्य भ्रमा रहा है। इस कारण जिस के स्वाभाविक बल से ही सब लोक लोकान्तर अनन्त संसार भी निरन्तर भ्रमण कर रहा है वह कैसी वा कितनी शक्ति वाला हो सकता है इस पर ध्यान देना चाहिये। यजुर्वेद १७।१९। यह वेद का का मन्त्र है ज्यों का त्यों यहां लिखा गया जानो ॥ ३ ॥

यो देवानां प्रभश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ ४ ॥

योऽग्न्यादिदेवानां प्रभव उत्पत्तिहेतुरुद्भवः प्राकट्यहेतुश्च विश्वस्य सर्वस्याधिपोऽधिष्ठाता रुद्रः सर्वेषां शास्ता रोदयिता महर्षिः सर्वज्ञो निरतिशयज्ञानी यश्च पूर्वं सर्गारम्भे हिरण्यगर्भं हितकराणि रमणीयानि च सूर्यादिज्योतींषि गर्भेऽन्तर्मध्ये यस्य तादृशं स्वस्य रूपं जनयामास सर्वं स्रष्टुमीक्षणतप-आदिरूपेण प्रकटीकरोति स ईश्वरः शुभया बुद्ध्या नोऽस्मान् संयुनक्तु येन निःश्रेयसभाजो वयं स्यामेति प्रार्थनां कुर्मः ॥

भा०—यथा पुस्तकादीनां निर्माणं प्रकाशनमन्येषु प्रवृत्ति श्चैकेनैव क्रियते तथास्य भौतिकस्य दैविकस्य च सर्वस्य जगत

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्पत्तिं प्रवृत्तिं च एकएव करोति तस्मादेव स जगतः स सर्वाध्यक्षः सर्वशास्ता सर्वज्ञश्चास्ति। यथा जलेनैव महती पिपासा निवर्त्तते नान्येन साधारणोपायेनैवं सर्वाधीशसर्वज्ञप्रार्थनोपासनध्यानादिनैव प्राणिनो महद्दुःखं निवर्तते ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च) जो अग्न्यादि देवताओं की उत्पत्ति और उन २ से सिद्ध होनेवाले कार्यों में प्रवृत्ति करता जिसकी सत्ता से ही अग्न्यादि देवता अपना २ काम ठीक २ नियमानुसार देते हैं (विश्वाधिपो सुरुद्रो महर्षिः) जो सब जगत् का अधिष्ठाता सर्वोपरि शासनकर्त्ता और महान् ऋषि नाम ज्ञानी सर्वज्ञ ज्ञानस्वरूप है। जिसके आधीन जिसकी उत्पत्ति स्थिति प्रवृत्ति नहीं है जो काम ले नहीं सकता वह उसका पूर्ण अधिष्ठाता भी नहीं हो सकता इसी से वह उसका पूर्ण शासक उसकी सब दशाओं वा मर्मों का जाननेवाला भी नहीं होता (पूर्वं हिरण्यगर्भं जनयामास) पहिले सृष्टि के आरम्भ में प्रत्येक कल्प में सब के हितकारी सब कार्यों के प्रवर्त्तक प्रकाशमय दर्शनीय सूर्यादि ज्योति जिसके गर्भ नाम भीतर अप्रकटरूप से होते ऐसे अपने स्वरूप को सब जगत रचने के लिये ईक्षण वा तपरूप से प्रकट करता है (स नः शुभया बुद्ध्या संयुनक्तु) वह ईश्वर हम लोगों को अच्छी कल्याणकारिणी बुद्धि से संयुक्त करे जिससे हम निःश्रेयस सुख के भागी हों ऐसी प्रार्थना करते हैं ॥

भा०—जैसे पुस्तकादि का बनाना और प्रवृत्ति नाम सर्वत्र प्रकाशित करना ये दोनों काम जहां एक ही करता वहीं उन पुस्त-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कादि पर उसका पूर्ण अधिकार होता है वैसे ही भूतनाम स्थूल तत्त्व और देवनाम शक्तिरूप सूक्ष्म तत्त्वसम्बन्धी सब जगत् की उत्पत्ति और उन २ कार्यों में प्रवृत्ति जो एक ही करता इसी से वह सर्वाध्यक्ष सबका शासक और सर्वज्ञ है। जैसे जल से ही बढ़ी हुई प्यास शान्त वा निवृत्त होती है किन्तु अन्य किसी साधारण उपाय से नहीं इसी प्रकार सर्वज्ञ की प्रार्थना उपासना और ध्यानादि से ही जन्म मरणादि महान् दुःख निवृत्त हो सकता है॥ ४॥

या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी। तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि॥ ५॥

अ०—हे गिरिशन्त! गिरि वाचि तत्परेभ्यः शं सुखं तनोति सत्यभाषिणं सुखयति तत्संबुद्धौ, मिथ्याभाषिणां रोदयितः! रुद्र! ते तव या शिव सुखरूपा सुखप्रदा शान्ताऽघोराऽभयप्रदा सर्वभयाऽपहारिणी पापेतरस्य पुण्यस्यैव प्रकाशिनी पुण्यमेवोपासकाय ददाति न कदापि पापफलमिति तनूस्तव स्वरूपं तया शन्तमयाऽतिशयेन सुखस्वरूपया तनुवा तन्वा स्वरूपेण नोऽस्मानभिचाकशीहि—अभिपश्य कृपादृष्टिं विधेहि॥ ५॥

यामिषुं गिरिशन्त! हस्ते बिभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र! तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्॥ ६॥

अ०—हे गिरिशन्त रुद्र! यामिषुं पापफलस्य दुःखस्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हेतुमनिष्टफलप्रदानशक्तिं पापिष्वस्त्रवे क्षेप्तुं हस्ते विश्वतो बाहुरूपसर्वस्तम्भनशक्तौ बिभर्षि धारयसि। हे गिरित्र! गिरितो धर्मज्ञानप्रकाशावरकात्तमोरूपपापात्त्रातः! तामिषुं शिवां शान्तां कुरु शान्त्या दुःखभोगं समाप्य त्वदुपासनेन वयं सुखिनः स्याम। जगज्जङ्गमं पुरुषं पुरुषत्वप्रधानं विशिष्टधर्म्यकार्यसाधनक्षमं कमपि मा हिंसीर्मा बधीः॥

भा०—स्तुतिपुरस्सरा प्रार्थनाऽत्र प्रधानास्ति। ईश्वरस्तुतिप्रार्थनाभ्यां ये पुण्यरूपाः संस्कारा हृद्याविर्भवन्ति तैः पूर्वसंचिता दुःखहेतवः कुसंस्कारास्तिरोभूयन्ते शिथिलीक्रियन्ते। द्वयेऽपि संस्कारा ईश्वराधीनाः पापसंस्काराश्च शस्त्राणीव दुःखप्रदाः। यस्य कल्याणमयं मङ्गलमयं सर्वभयापहं पुण्योदयरूपं च निरतिशयं स्वरूपं तदाश्रयेणैव सूर्योदये महत्तमइव सर्वः कुवासनारूपो हार्दः पापपुञ्जः सद्यश्छिद्यते तस्यापि निरतिशय शुद्धज्ञानप्रकाशस्य परेशधृतस्याज्ञानतमश्छेदने शस्त्रत्वं बोध्यम्। यथायथा सर्वाधीशस्य प्रार्थनां स्तुतिमुपासनां च चेतसा सम्यक् करोति तथा तथा हृदि शुद्धो ज्ञानप्रकाशो वृद्धिगतो भवति। तस्मात्परमकल्याणसाधनमेतदिति ज्ञात्वा सुज्ञेनानुष्ठेयम्। यजुषीमौ मन्त्रौ द्रष्टव्यौ अ० १६। मं० २।३॥५॥६॥

भाषार्थः—हे (गिरशन्त ते या शिवाऽघोराऽपापकाशिनी तनूः) वेद रूप सत्य निर्भ्रान्त त्रिकालाबाध्य वाणी में तत्पर रहने वालों के लिये शं नाम कल्याण को विस्तृत करनेवाले वा सत्यभा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रणशीलों को सुखी रखनेवाले तथा मिथ्यावादी वा वेदविरोधियों को रुलानेवाले ईश्वर ! तुम्हारा जो सुखरूप सुखदाता शान्त निर्भयता पहुँचाने वा सब प्रकार के भय को हरने वाला तथा पाप से सर्वथा रहित निर्दोष पुण्य का ही प्रकाशक उपासक के लिये पुण्य को ही देने वाला किन्तु कभी पाप में न गिराने वाला स्वरूप है (तया शन्तमया तन्वा) उस अत्यन्त कल्याणमय सुखदायी अपने स्वरूप से (नोऽभिचाकशीहि) हम लोगोंको देखिये हम पर कृपादृष्टि कीजिये ॥

भाषार्थ—हे (गिरिशन्त !) वेद वाणी में रमणशील को सुखी रखनेवाले ईश्वर ! (यामिषुमस्तवे हस्ते बिभर्षि) जिस दुःख के हेतु अनिष्टपाप के फल देने की शक्तिरूप शस्त्र को पापियों पर फेंकने के लिये सब ओर से हाथ में धारण करते हो । हे (गिरित्र) धर्म और ज्ञान के प्रकाश को ढांपनेवाले बद्दल के समान अज्ञानान्धकाररूप पाप से बचानेवाले ईश्वर ! (तां शिवां कुरु) उस शस्त्रशक्ति को शान्त सुखमय करो जिससे हम लोग शान्ति के साथ दुःखभोग को समाप्त कर आपकी उपासना से सुखी हों और (जगत्पुरुषं मा हिंसीः) धर्मानुकूल विशेष कार्य साधने में समर्थ पुरुषार्थी सचेत मनुष्यादि किसी को मत मारो ॥

भा०—स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करना इन दोनों मन्त्रों में प्रधान है। ईश्वर की स्तुति प्रार्थना के द्वारा जो पुण्य संस्कार हृदय में प्रकट होते हैं उनसे पूर्वकाल के संचित दुःखों के हेतु

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुसंस्काररूप पाप दब जाते वा शिथिल हो जाते हैं। अच्छे बुरे दोनों प्रकार के संस्काररूप पाप पुण्य फल भोगने में ईश्वराधीन रहते उनमें पाप के संस्कार शस्त्रों के समान हृदय में दुःखोत्पादक होते हैं। जिसका कल्याणकारी मङ्गलमय सब भयों से बचानेवाला पुण्योदयरूप निरतिशय स्वरूप है उसकी शरण लेने से सूर्योदय होते ही महान् अन्धकार के तुल्य सब कुवासनारूप हृदय का पापसमूह शीघ्र ही नष्ट और छिन्न भिन्न हो जाता है। ईश्वर में रहनेवाले अत्यन्त शुद्ध उस ज्ञान प्रकाश का अज्ञानरूप शत्रु के छेदन के लिये प्रबल शस्त्र मानना चाहिये। सर्वाधीश ईश की स्तुति प्रार्थना उपासना को जैसा २ सम्यक् मन लगा के मनुष्य करता है वैसा २ उसके हृदय में शुद्ध ज्ञान का प्रकाश बढ़ता जाता है। इसी लिये स्तुति आदि परम-कल्याण का साधन है यह जान कर विचारशील को अवश्य ऐसा ही करना उचित है। यजुर्वेद अ० १६ के ये दोनों मन्त्र हैं॥ ५॥ ६॥

ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथा निकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति॥ ७॥

अ०ततो दीर्घकालीनप्रार्थनोपासनानन्तरं परं बृहन्तमत्यन्तं वृद्धं वृद्धेः पराकाष्ठां प्राप्तं सर्वभूतेषु सर्वचराचरेषु गूढं तत्तद्रूपेणैव यथानिकायं यस्य वस्तुनो यादृश्याकृतिस्तस्यां तद्रूपेणैव व्याप्तं विश्वस्य सर्वस्यैकमेव परिवेष्टितारं तमेकमेव सर्वं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्माण्डं स्वस्यान्तः कृत्वा स्वात्मना सर्वं सर्वतो व्याप्यावस्थितमीशं यथावस्थितं ज्ञात्वाऽमृता जन्ममरहिता भवन्ति ॥

भा०—उक्तप्रकारेणेश्वरस्य प्रार्थनमुपासनं च तदाभिमुख्येन दीर्घकालावधि क्रियमाणं तस्य तत्त्वेन ज्ञानस्य हेतुर्भवति तत्त्वतो ज्ञानं च मुक्तेः कारणम्। लोकेऽपि यो यस्य बहुकालं सहवासं करोति सएव तस्य समग्रं मर्म स्वभावं च वेत्ति। यश्च लोके यादृशेन सम्यङ्मिलति तादृशएव सङ्गुणमवाप्य जायते। ईश्वरश्च सर्वथा सर्वदा मुक्तः शुद्धश्च तदुपासकोऽपि तथैव मुच्यते शुध्यति च ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(ततः परं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढं विश्वैकं परिवेष्टितारम्) तिस के बाद बहुत काल तक निरन्तर प्रार्थना उपासना करने के पश्चात् जिस वस्तु की जैसी आकृति वा जिसका जैसा शरीर है उसमें उसी रूप से व्याप्त सब को सब ओर से आच्छादित करनेवाले और अपने भीतर रखनेवाले (परं बृहन्तं तमीशं ज्ञात्वा) अत्यन्त बड़े बड़प्पन की पराकाष्ठा (हद्द) को प्राप्त हुए उस ईश्वर को ज्यों का त्यों जान कर (अमृता भवन्ति) जन्म मरण रहित हो मुक्त होजाते हैं॥

भा०—उक्त प्रकार से उसकी ओर तत्परता से बहुत काल तक की हुई ईश्वर की प्रार्थना और उपासना उसको ठीक २ जानने का हेतु होती है। और उसका तत्त्व से जानना मुक्ति का कारण है। लोक में भी जा जिसका बहुत काल तक सहवास समागम मेल करता है वही उसके सब मर्म और स्वभाव को जानता है। तथा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लोक में जो जैसे गुणवाले से अधिक मेल करता है वही उसके सब मर्म और स्वभाव को जानता है। तथा लोक में जो जैसे गुण वाले से अधिक मेल करता है वह साथी के गुणों को प्राप्त करके वैसा ही हो जाता है। और ईश्वर सर्वथा सब प्रकार से सब काल में मुक्त और शुद्ध है उसका उपासक भी वैसा ही शुद्ध और मुक्त हो जाता है॥ ७॥

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।८।

अ०अहं जीव एतं परं महान्तमादित्यवर्णं प्रकाशमयं तमसोऽविद्याऽज्ञानात्सर्वथैव परस्तादतिदूरमन्धकाररहित्यस्य काष्ठां प्राप्तं [आदित्यप्रकाशाद्व्यवच्छेदार्थमिदं मेघादिनाऽऽच्छाद्यते सूर्यप्रकाशो न तथाऽयम्] पुरुषं पूर्णं वेद जानामि जीव एव कालत्रयेऽपि तमुपायैर्ज्ञातुं शक्नोति नत्वजीवः। तमेव पुरुषं विदित्वा मृत्युमत्येति—अतिक्रामति मृत्युस्तं नाक्रामति मृत्युं जयतीत्यर्थः। अयनाय निरन्तरं शान्त्या स्थित्यर्थं ब्रह्मचक्रेण यद्भ्रमणं तत्समाप्तये नान्यः कश्चिदपि पन्था मार्गो लोके वेदे वा विद्यते॥

भा०—यजुषि-अ० ३१। १८ अयं मन्त्रः। वेदमन्त्राश्च सार्वकालिकास्तदनुसारेणमन्त्रस्यायमाशयः-यदा कदापि येन केनापि यत्रकुत्रापि यादृशं यावच्च शान्त्या स्थैर्यं सुखं चावाप्यते तदा तत्र तेनेश्वराभिमुखतया तज्ज्ञानेनैव च कालत्रये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तावत्सुखं स्थैर्यं चावाप्तुं शक्यते। यत्र यादृशगुणाधिक्यं तत्र एव तल्लाभसम्भवात्। निरतिशयमहत्त्वादिविशिष्टसर्वज्ञेश्वरविज्ञानेनैवागाधसंसारार्णवोर्मिषु निमज्जद्भिः पारगमनायोद्योगः कार्यः शान्त्या सुखेन स्थित्यै नास्त्यन्यः कश्चिदुपायइति।

भाषार्थः—(अहमेतं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्पुरुषं वेद') मैं जीवात्मा इस सूर्य के तुल्य प्रकाशमय महान् तमो गुणरूप अविद्यान्धकार से सर्वथा अत्यन्त दूर (अन्धकार के अभाव की जहां सीमा हो जाती है। तम से परे कहने से जताया है कि मेघादि से सूर्य का आच्छादन होता किन्तु उस को आच्छादित करनेवाला कोई नहीं ऐसे) पूर्ण व्याप्त पुरुष को जानता हूँ अर्थात् तीनोंकाल में उपायों द्वारा जीव ही ईश्वर को जानता है निर्जीव कोई वस्तु कभी नहीं जान सकता। (तमेव विदित्वा मृत्युमत्येति) उसी पुरुष को जान कर जीव मृत्यु को जीत सकता है (अयनाय नान्यः पन्था विद्यते) शान्ति के साथ निरुपद्रव ठहरने का स्थान प्राप्त करने के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है अर्थात् ब्रह्मचक्र के साथ जो अनादि काल से जीव भ्रमण कर रहा है उस की समाप्ति अन्य किसी द्वारा नहीं होती केवल एक ईश्वर को जान के ही प्राणी अत्यन्त शान्ति और सुख में स्थिर हो सकता है॥

भा०—यजुर्वेद अ० ३१ में यह अठारहवां मन्त्र है। और वेद मन्त्रों के अर्थ सब देश कालों से एकसा ही सम्बन्ध रखते हैं किन्तु किसी निज देश काल तथा वस्तु से वेदार्थ का सम्बन्ध नहीं है। तदनुसार इस मन्त्र का अर्थ यह है कि जब कभी जहां कहीं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जिस किसी को जैसा कुछ स्थिर शान्ति वा स्थिर निरुपद्रव निरन्तर सुख मिला है मिलेगा वा मिल सकता है तब तहां तिस को तैसा सुख वा शान्ति ईश्वर की ओर तत्परता से वा उस को वैसा जानने से ही मिला है मिलेगा वा मिल सकता है। जिस वस्तु में जैसा गुण वा शक्ति विशेष कर होती उस की प्राप्ति वहीं से हो सकती है। प्यास तीनों कालमें जल सेही दूर हो सकती है अग्नि से कभी नहीं। इसलिये जिस में असीम महत्त्व वा सत्त्वप्रकाशरूप सुखादि गुण हैं उस शान्तिमय ईश्वर के विशेष ज्ञान से ही अगाध संसार-सागरकी भयङ्कर तरङ्गों में डूबते हुओं को पार होने के लिये उद्योग करना चाहिये शान्ति वा सुख से स्थिति होने के लिये अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ ८ ॥

यस्मात्परं नापरमस्ति किञ्चिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति किंचित् ॥ वृक्षइव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥ ९ ॥

अ०यस्मात्पुरुषात्परं प्रकृष्टमपरं सांसारिकं पारमार्थिकं वा तद्भिन्नं किमपि नास्ति न यस्मादणीयः सूक्ष्मतरं न च ज्यायो महत्तरं किमप्यस्ति। यश्चैक एव दिवि प्रकाशानन्दमये स्वस्वरूपे वृक्ष इव स्तब्धोऽचलस्तिष्ठति तेन पुरुषेण पूर्णेनं सर्वमिदं जगत्पूर्णं व्याप्तं यस्मादीदृशस्तस्मात्तमेव पुरुषं ज्ञात्वा मृत्युमत्येतीति पूर्वपद्येन सम्बन्धो योज्यः ॥

भा०—यत्रोत्कर्षादेःकाष्ठाप्राप्तिः स एवेश्वरस्तादृशःसन्नेव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नित्यः शुद्धो मुक्तोऽनादिरनन्तोऽचलः कूटस्थः सर्वशक्तिः सर्व-नियन्ता सर्वज्ञः सनातनः सम्भवति तस्यैव नित्यमुक्तस्य बोधो मोक्षहेतुः ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(यस्मात्परमपरं किञ्चिन्नास्ति) जिस से अधिक उत्तम संसार वा परमार्थ का अन्य कोई पदार्थ नहीं है (यस्मा ज्यायोऽस्ति किञ्चित्) जिस से अधिक सूक्ष्म वा जिस से अधिक बड़ा और कुछ नहीं जो सब सूक्ष्मों से सूक्ष्म बडों से बड़ा (एको दिवि वृक्ष इव स्तब्धस्तिष्ठति) जो एक ही अपने प्रकाशानन्दमय स्वरूप में सदा वृक्ष के तुल्य अचल हुआ ठहरता अर्थात् अन्य सब ही जीव विषयों की ओर चलायमान होते हैं (तेन पुरुषेण सर्वमिदं पूर्णम्) उस सब में पूर्ण व्याप्त पुरुष से यह सब जगत् पूर्ण है अर्थात् सब में ईश्वर भरपूर हो रहा है इसी कारण उस पुरुष को जान कर जीव मुक्त हो सकता है। यहाँ पूर्व मन्त्र के साथ इस का सम्बन्ध जानो ॥

भा०—जिस में उत्तमतादि की असीमता (हद) है वही ईश्वर होता वा ठहरता है और ईश्वर वैसा होने पर ही नित्य, शुद्ध, मुक्त, अनादि, अनन्त, अचल—कूटस्थ, सर्वशक्तिमान्, सर्वनियन्ता, सर्वज्ञ और सनातन हो सकता है उसी नित्यमुक्त का जानना जीव के लिये प्रधान मोक्ष हेतु है ॥ ९ ॥

ततो यदुत्तरतरं तदरूपमनामयम् । य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥ १० ॥

अ०—तत इदंपदवाच्याज्जगत उत्तरं सूक्ष्मं जगत उपादानं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ततोप्यतिशयेन यदुत्तरं तदुत्तरतरं तच्चारूपं रूपादिगुणरहितमनामयं सर्वोपद्रवविहीनं ये जनास्तस्योपासनादिविशेषोपायैः परमानन्दप्रदत्वमेतद्विदुर्जानन्ति ते तमेवोपासीना अमृता मुक्ता भवन्ति। अथेतरे ये न तं जानन्ति ते दुःखमेवापियन्ति लभन्ते॥

भा०—लोकेऽपि योऽन्यस्य सुखित्वकारणानि वेत्ति स तथैव कुर्वाणः सुखं लभते यश्च न वेत्ति स दुःखमेवाप्नोति १०

भाषार्थः—(ततो यदुत्तरतरम्) उस पूर्वोक्त इदंपदवाच्य स्थूल जगत् से उत्तरनाम परे जगत् का सूक्ष्म कारण है उससे भी जो उत्तरनाम परे है (तदरूपमनामयम्) वह रूपादि गुणों और सब उपद्रवों से रहित है (य एतद्विदुस्तेऽमृता भवन्ति) जो लोग उपासनादि विशेष उपायों के द्वारा परमानन्द देनेवाले इस ईश्वर को जानते हैं वे उसीके शरण में रहते हुए अमृत नाम मुक्त हो जाते (अथेतरे दुःखमेवापियन्ति) और जो लोग उसको नहीं जानते वे दुःख को ही प्राप्त होते और दुःखसागर में ही डूबते हैं॥

भा०—लोक में भी जो अन्यों के सुखी होने के कारण को जानता है वह वैसा ही करता हुआ सुख को प्राप्त कर सकता है और जो सुखप्राप्ति के मार्ग को जैसा वा जितना नहीं जानता वह वैसा वा उतना ही दुःख पाता है॥ १०॥

सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात्सर्वगतः शिवः॥ ११॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—सर्वेषु प्राण्यप्राणिषु मुखशिरोग्रीवासम्बद्धदर्शने-क्षणनिगरणजीवनशक्तयोऽस्य तादृशः सर्वप्राणिनां गुहायां बुद्धौ शेते व्याप्तस्तिष्ठति, श्रीयशोवीर्य्यज्ञानवैराग्यैश्वर्याणि भगपदवाच्यानि यत्र निरतिशयानि विद्यन्ते तादृशो भगवान् सर्वव्यापी शिवः सुखस्वरूपस्तस्मादेव सर्वगतोऽल्पगते भगवत्त्वसुखमयत्वयोरसम्भवात् ॥

भा०—ईदृश एवेश्वरः सर्वस्मादुत्तरतरःसम्भवति तस्यैव बोधोऽमृतप्राप्तेर्हेतुरिति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(सर्वाननशिरोग्रीवः) सब चराचर में मुख शिर ग्रीवा सम्बन्धिनी देखने सोचने और निगलने की शक्ति जिसकी वा जिसमें हैं अर्थात् सृष्टि करने के समय सर्वत्र जिसमें ईक्षण यह कि इस २ पदार्थ को ऐसा २ बनाना उचित है संसार की स्थितिदशा में जो सबको सर्वत्र देखता और प्रलय के समय उस २ में व्याप्त रहता हुआ ही सर्वत्र सबका प्रलय कर देता है (सर्वभूतगुहाशयः) सब प्राणियों की हृदयस्थ बुद्धि में जो व्याप्त रहता ठहरता (स भगवान् सर्वव्यापी) शोभा, कीर्त्ति, पराक्रम, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य भगपदवाच्य ये सब जिसमें असीम विद्यमान हैं ऐसा वह भगवान् जिस कारण सब में व्याप्त होने के स्वभाववाला है (तस्मात्सर्वगतः शिवः) इससे वह सुख स्वरूप और सबमें प्राप्त है। जो सब पदार्थों में व्याप्त नहीं है उसका भगवान् तथा सुखमय होना भी सम्भव नहीं ॥

भा०-ऐसा ही ईश्वर सब से परे हो सकता है उस ईश्वर का ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानना मुक्ति पाने का हेतु हो सकता है इस प्रकार इस मन्त्र को भी पूर्व विषय की पुष्टि के लिये जानो ॥ ११ ॥

महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्त्तकः । सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानोज्योतिरव्ययः ॥ १२ ॥

अ०—यतो महानतएव प्रभुर्जगत उत्पत्तिस्थितिलयान्यथाकालमनायासेन कर्तुं समर्थः सत्त्वस्यान्तःकरणस्य प्रवर्त्तकः प्रचारकः सुष्टु सम्यङ् निर्मलां पापदोषरहितामिमां परमपदप्राप्तिं मुक्तिमीशानस्तस्या अध्यक्षोऽव्ययो ज्योतिर्मयश्च ॥

भा०—न हि कोऽपि स्वयमसिद्धःपरान् साधयतीति न्याया द्दरिद्रोऽर्थिने धनं दातुमशक्त एव भवति तथैव यदि तस्मिन्महत्त्वादिकं न स्यान्मुक्तेःस्वामित्वादिकं च न स्यात्तदा कथमन्यस्मै दातुं शक्तः स्यात् ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(महान् प्रभुर्वै पुरुषः) जो महान् होता वही समर्थ हो सकता है महान् होने से ही जगत् के उत्पत्ति स्थिति लयों को अपने २ समय में सहज में कर सकता इसी से वह पुरुष है (एष सत्त्वस्य प्रवर्त्तकः) यही सत्त्वगुणरूप अन्तःकरण का मुख्य प्रवर्त्तक वा प्रचारक है (अव्ययो ज्योतिः सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानः) सम्यक् पापरहित निर्मल परमपद प्राप्तिरूप मुक्ति का देनेवाला सदा अविनाशी ज्योतिः स्वरूप प्रकाशमय है ॥

भा०—स्वयं असिद्ध अन्यों को सिद्ध नहीं बना सकता। इसी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार धनहीन से किसी अर्थी को धन नहीं मिल सकता। वैसे उस ईश्वर में महत्त्व वा मुक्ति का स्वामिपन न हो तो अन्य को मुक्ति कैसे दे सके ? ॥ १२ ॥

अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः। हृदा मनीशो मनसाऽभिक्लृप्तो यएतद्विदूरमृतास्ते भवन्ति ॥ १३ ॥

अ०—अन्तरात्मा जीवात्मनि व्याप्तोऽङ्गुष्ठमात्रस्थानोपलभ्यत्वादङ्गुष्ठमात्रः सदा मरणानन्तरमपि जनानां जननधर्मिणां हृदये सन्निविष्टो लिङ्गशरीरेण कृतसम्बन्धः। मनीशो ज्ञानस्येशानो हृदा हृदयस्थेन मनसा मननेनाभिक्लप्तो ज्ञातुं शक्तः। य एतदात्मतत्त्वमित्थमेव विदुस्तेऽमृता भवन्ति महाभयानकान्मरणदुःखान्मुच्यन्ते ॥

भा०—ये स्वस्यान्तःप्रविष्टं मननस्यापि प्रवर्त्तकं सर्वसुखाप्तिहेतुं तं बुध्यन्ते त एकाग्रचेतसा तदन्वेषणपरास्तं विदित्वा सर्वमनिष्टं जहतीष्टं च लभन्ते ॥

भाषार्थः—(सदा जनानां हृदये संनिविष्टोऽन्तरात्माऽङ्गुष्ठमात्रः) जीते समय वा मरणानन्तर भी जो सब प्राणियों के हृदय में व्याप्त रहता अर्थात् मरण पश्चात् लिङ्ग शरीर के साथ रहता सबका अन्र्यामी प्रेरक हृदय के अंगुष्ठ परिमित स्थान में ध्यानयोग द्वारा योगियों को प्राप्त होने वाला (मनीशो हृदा मनसा भिक्लृप्तः पुरुषः) मननशक्ति का भी स्वामी हृदयस्थ मननशक्ति से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानने योग्य पुरुष नाम सब से बड़ा उत्पादक ईश्वर है (य एतद्वि-दुस्तेऽमृता भवन्ति) जो लोग इस आत्मतत्त्वरूप ईश्वर को ऐसा ही जानते हैं वे महाभयानक मरणादि के दुःख से बच जाते हैं ॥

भा०—जो लोग अपने भीतर व्याप्त ज्ञान के भी प्रवर्त्तक सब सुखों की प्राप्ति का कारण ईश्वर को जानते हैं वे एकाग्र चित्त से उसके खोजने में तत्पर हुए उसको साक्षात् जान कर सब अनिष्ट को छोड़ते और इष्ट को प्राप्त हो जाते हैं ॥ २३ ॥

सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् । स भूमिं विश्व तो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥१४॥पुरुषएवेदꣳ सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् । उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥१५॥

सहस्रमसंख्यानि शीर्षाणि यस्यैवमग्रेऽपि योज्यम् । योऽसं ख्यशिरआद्यवयवसाध्यान्यसंख्यगुणानीक्षणादीनि कर्त्तुमर्हति स विश्वतः सर्वतो भूमिं पार्थिवशरीरादिकं वृत्वा व्याप्य द-शाङ्गुलिनिर्देश्यमनन्तं दशदिक्स्थं सर्वं ब्रह्माण्डमतिक्रम्य ततो बहिरप्यतिष्ठत् व्याप्तस्तिष्ठति । यद्वा दशाङ्गुलपरिमितंनाभे रुपरि हृदयं तत्रात्यन्तमाधिक्येन तिष्ठति । यदिदं सर्वं प्रत्य-क्षेणोपलभ्यमानं स्थावरजङ्गमं यद्भूतमतीतं विनष्टं यच्च भव्य-मनागतं तत्सर्वं पुरुषे सर्वमावृत्य व्याप्ते परात्मन्येवाऽस्ति तदधीनमेव सर्वमस्ति । उतापि सोऽमृतत्वस्य मुक्तेरीशानः स्वामी यच्चान्नेनातिरोहत्यन्नभक्षणेन जीवति तस्य ब्रह्मस्यापि सर्वजङ्गमस्येशानः स्वाम्यस्तीति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—शिरआद्यवयवानामीक्षणादिकमव्याहतमनन्तं कर्म योनिरवयवः सर्वत्र तिष्ठन् व्याप्तः करोति यस्मिंश्च सर्वं सूत्रे मणिगणा इव प्रोतं स एव सर्वस्य स्थूलसूक्ष्मस्याध्यक्षः सम्भवति। पुरुष इति सप्तम्येकवचनं नच प्रथमान्तं तथासति सर्वस्य पुरुषत्वे स्त्रिया अभावादेकेनोत्पादयितुमशक्तं जगत् स्यात्सर्गादावपि मायारूपा प्रकृतिः स्त्री परमात्मा च पुरुष-इति स्त्रीपुंसाभ्यामेव सर्वमिमुत्पद्यते। यथा पितापुत्रौ सापेक्षौ सिध्यतस्तथैव स्त्रीपुरुषावपि एवं स्त्रियाः सिद्धौ प्रथमान्तेन कस्य व्यावृत्तिः स्यात्। यस्मिन् यद्भवति तच्च तदधीनं यच्च यदधीनं स तस्य स्वामीति नियमः। सर्वभूतेषु चात्मानं सर्व-भूतानि चात्मनि। इति मनुनापि सप्तम्यन्तस्यानुवाद एवो-क्तः। एवं प्रकारेणेश्वरो विज्ञेय इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

भाषार्थः—(सहस्रशीर्षा सहस्राक्षः सहस्रपात् पुरुषः) असंख्य शिरों से सम्बन्ध रखने वाला सर्वत्र जिसमें सोचने की सर्वत्र जिसमें चक्षु से देखने की और सर्वत्र जिसमें गमन करने वा प्राप्त होने की असंख्य प्रकार की शक्तियां विद्यमान हैं ऐसा सब में भरपूर व्याप्त पुरुष नाम ईश्वर है (स विश्वतो भूमि वृत्वा दशाङ्गुलमत्यतिष्ठत्) वह सब ओर से पार्थिव शरी-रादि जगत् को आवरण कर सब को अपने भीतर रख और स्वयं सब ओर तथा भीतर बाहर व्याप्त होके दश अङ्गुलियों के संकेत से जताने योग्य दशो दिशा में स्थित सब ब्रह्माण्ड का उल्ल-घन कर सब के बाहर भीतर ठहरा है वा नाभि से ऊपर दशाङ्गल

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिमित हृदय में अधिकता से अत्यन्त ठहरा हुआ है (इदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं पुरुषएव) वर्त्तमान समय में जो प्रत्यक्ष दीखता, भूत नाम जो पूर्व हो चुका नष्ट हो गया वा जो भविष्यत् में होनेवाला है, तीनों काल का यह सब जगत् पुरुष नाम सब को आवरण कर व्याप्त हुए ईश्वर में ही रहता है। (यदन्नेनातिरोहत्यु-तामृतत्वस्येशानः) जो अन्न खाकर जीवित रहता वा अन्न से शरीर धारी होता उस बद्ध जीवमात्र का और अमृतनाम मुक्तों की दशा का भी स्वामी है अर्थात् मुक्ति और बन्धन सब उसीके आधीन हैं॥

भा०—शिर आदि अवयवों के ईक्षणनाम सोचने आदि अनन्त कर्म को जो अवयवों के बिना ही निर्विघ्न कर सकता और सब में व्याप्त होके ठहरता है। सूत में गुरियों के समान जिसमें सब संसार ओत प्रोत है। वही सब स्थूल सूक्ष्म जगत् का अध्यक्ष हो सकता है। इस मन्त्र में 'पुरुषे' यह सप्तमी का एकवचन है प्रथमान्त नहीं। यदि प्रथमान्त मानें तो यह अर्थ होगा कि यह सब तीनों काल में होता जगत् पुरुष ही है किन्तु स्त्री नहीं। अर्थापत्ति से स्त्री का निषेध आवेगा तो स्त्री के न होने से एक से जगत् की रचना नहीं हो सकती। सृष्टि के आरम्भ में माया नामक प्रकृति रूप स्त्री और परमात्मा पुरुष इन दोनों उपादान और निमित्त कारणों से जगत् की उत्पत्ति होती है। जैसे पिता के विना पुत्र की सिद्धि नहीं, जिसके कोई पुत्र न हो वह पिता नहीं और जिसका पिता न हो वह पुत्र नहीं कहा जा सकता इस कारण पिता वा पुत्र एक के सिद्ध होते ही अर्थापत्ति से दूसरा सिद्ध हो जाता है। वैसे

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही जिसका कोई पुरुष न हो वह स्त्री किसकी और जिसकी कोई स्त्री न हो तो वह पुरुष कैसा ? अर्थात् यहां भी पुरुष कहने से स्त्री स्वतः सिद्ध है फिर स्त्रीरूप प्रकृति की सिद्धि होने पर पुरुष किसका व्यावर्त्तक होगा ? यह प्रश्न महीधरादि पर रहा। जिसमें जो होता वह उसके आधीन रहता और जो जिसके आधीन होता उसका वही स्वामी होता यह नियम है। 'सब प्राणियों में आत्मा को और सब प्राणियों को आत्मा में देखना ही मुख्य ज्ञान है" इस मनुजी के कथनानुसार भी सप्तमी का अर्थ ठीक है। इन मन्त्रों में कहे प्रकार से ईश्वर को जानना चाहिये॥ १४॥ १५॥

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥ १६॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्। सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत्॥ १७॥

अ०—सर्वतः पाणयः पादाश्च यस्येति सर्वत्र पाण्यादिसम्बद्धादानस्तम्भनादिशक्तिमांल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति। सर्वेषामिन्द्रियगुणानां सत्त्वादिरूपश्रवणादिशक्तीनामाभासमाभासकं सर्वेन्द्रियसङ्गवर्जितं सर्वस्य प्रभुं सर्वजडस्य स्थावरस्य च नियामकमीशानं सर्वचराचरस्य स्वामिनं सर्वस्य दृश्यस्य शरणं बृहदाश्रयभूतं तदात्मतत्त्वमस्तीति॥

भा०—अत्र सापेक्षनिरपेक्षदशाभेदेन जीवेश्वरयोर्द्वयोरपि वर्णनं सम्भवति। जीवपक्षे पाणिपादादीनां शरीरेण मुख्यः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बन्धः। जातिग्रहणेन च जीवानां सर्वशाक्ष्यादीनि सम्भवन्ति। जडवस्तून्यपि जडस्याधिकरणानि सर्वजडापेक्षया सर्वचेतनस्य जीव एव महच्छरणं तस्यापि शरणं चेश्वर एवास्ति। आत्मद्वयस्यापि बोधः सर्वहितसाधक इति॥

भाषार्थः—(सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्) सब ओर से पकड़ने और चलने की हाथ पांवसम्बन्धिनी शक्ति जिसमें है और सब ओर चक्षु शिर तथा मुख सम्बन्धिनी देखने सोचने भक्षणरूप लय करने की शक्ति जिसमें है (सर्वतः श्रुतिमत्) और जो कानों के विना ही सर्वत्र सब की पुकार सुन लेता तथा (लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति) जो सबका आवरण करके लोक नाम इस ब्रह्माण्ड भर में ठहरा हुआ है (सर्वेन्द्रियगुणाभासम्) सब इन्द्रियों की सत्त्वादि गुण सम्बन्धिनी श्रवणादि शक्तियों का प्रकाशक प्रवर्त्तक (सर्वेन्द्रियविवर्जितम्) सब इन्द्रियों के सङ्गदोषों से रहित (सर्वस्य प्रभुमीशानम्) सब जड़ चेतन सूर्य चन्द्रादि जगत् का नियामक और स्वामी (सर्वस्य शरणं बृहत्) और सब का बड़ा आश्रय आधाररूप धारक पालक उत्पादक नाशक एक ही ईश्वर है॥

भा०—इन दो मन्त्रों में सापेक्ष निरपेक्ष दो दशाओं के भेद से जीव ईश्वर दोनों आत्मा का वर्णन घट जाता है। जीवपक्ष में हाथ पांव आदि का मुख्य सम्बन्ध शरीर के साथ माना जायगा और जीवों का जाति पक्ष लेकर जीव जाति मात्र के आँख आदि साधन सर्वत्र हो सकते हैं। जड़ पृथिव्यादि पदार्थ भी घट-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पटादि जड़ों के आधार होते हैं और सब जड़ों की अपेक्षा सब अचेतनों का जीव ही बड़ा आश्रय है। जीव के आधीन संसार के सब पदार्थ हैं सब के आधीन जीव नहीं परन्तु जीव का भी आश्रय सर्वोपरि ईश्वर ही है। दोनों आत्मा का जानना सब के लिये पूर्ण हितकारी है ॥ १६ ॥ १७ ॥

नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः। वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥ १८ ॥

अ०—नव द्वाराणि सप्त शिरसि द्वे चाधस्तादस्मिंस्तादृशे शरीरनगरे स्थावरस्य चरस्य च सर्वस्य दृश्यस्य वशी सर्वं वशे करोति सर्वस्य वश आधीनतायां स्वयं च तिष्ठति। योन्यं स्वाधीनं करोति स स्वयमपि तदधीनो भवत्येवेति नियम उपलभ्यते। हन्ति गच्छति देहाद्देहान्तरमिति हंसो जीवो देहस्थो बहिर्विषयानुपादातुं लेलायतेऽभिलषति ॥

भा०—अस्मिन्पद्ये केवलस्य जीवात्मन एव वर्णनम्। योऽस्य जीवस्यास्मिन् पुरेऽधिकः स्नेहो यतश्च विषयभोगोत्कण्ठया सर्वान् पदार्थान् स्वाधीनान् कर्तुमिच्छति तस्मादेव स्वयं तदधीनो भवति। यच्च विषयभोगानभिलषन्निन्द्रियाणि विषयानादातुं चालयत्ययमेवास्य बन्धो बन्धस्य प्रधानं कारणं चास्ति। तस्य हेतुरविद्या ॥ १८ ॥

भावार्थः—(स्थावरस्य चरस्य च सर्वस्य लोकस्य वशी) दृष्टिगोचर होनेवाले स्थावर जङ्गम सब संसारी पदार्थों को वश

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रखने और सब के वश में स्वयं रहनेवाला (नवद्वारे पुरे देही हंसः) सात शिर में और दो नीचे के इन्द्रियरूप छिद्र जिस में नौ द्वार हैं ऐसे इस शरीररूप नगर नाम राजधानी में बैठा हुआ एक शरीर को छोड़ के शरीरान्तर में जाने के स्वभाववाला होने से हंस नामक देह का स्वामी जीवात्मा (बहिर्लेलायते) आंख आदि झरोंखों द्वारा बाहर को झांकता विषयभोग के लालच से इन्द्रियों को लपकाता है ॥

भा०—संसार में यह नियम है कि जो अभिलाषा के साथ अन्य किसी को स्वाधीन करता है वह स्वयं भी उस के आधीन हो जाता वा राग के कारण उस को भी परवश होना पड़ता है। जीवात्मा रागपूर्वक संसार के जड़ चेतनों को स्वाधीन करता है इसी से वह भी उन २ में बद्ध हो जाता है। ईश्वर की प्रवृत्ति रागपूर्वक नहीं किन्तु स्वाभाविक है इस कारण वह बद्ध नहीं होता। इसी लिये इस मन्त्र में केवल जीवात्मा का वर्णन है। जो इस जीव का इस शरीररूप नगर में अधिक स्नेह है यही बन्ध का कारण है। जो विषय भोगका सुख चाहता हुआ विषयों के ग्रहण करने के लिये इन्द्रियों को चलाता है यही इसके बन्धन का मूल कारण है और इसका भी हेतु अविद्या है ॥ १८ ॥

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः। सवेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥ १९ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—यः पाणिपादमन्तरेण सर्वं गृह्णाति सर्वत्र गन्तुं च शक्नोति चक्षुषी अन्तरेण सर्वं पश्यति कर्णमन्तरेण सर्वस्य गुप्तमपि शब्दं शृणोति च स एव सर्वं वेद्यं वेत्ति न च तस्योक्तप्रकारको विषयबद्धः कोऽपि जीवो वेत्तास्ति तमग्र्यमनादिं महान्तमनन्तं पुरुषं परपुरुषत्वयुक्तं सर्वोत्पादकमीशं ब्रह्मविद आहुः ॥

भा०—सर्वथैव साधनमन्तरेण निरतिशयदर्शनादिकार्यसाधनं तस्मिन्भगवति सर्वशक्तिमत्त्वम् । तं चावरा लौकिका अल्पदृश्वानो बहवो मिलित्वाऽपि बोद्धुमशक्ताः । ब्रह्मनिष्ठा अनन्यरता अपि केचिदेव तन्महिमानं विदन्ति त एव दुःखान्मुच्यन्ते ॥ १९ ॥

भाषार्थः—(अपाणिपादो जवनो ग्रहीता) उस के हाथ पाँव नहीं पर ग्रहण तथा वेग से चलना आदि हाथ पाँव का काम करता (पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः) वह चक्षु के विना ही सब के कामों को सर्वत्र देखता उस के कान नहीं हैं पर सब की गुप्त बातों को भी सर्वत्र सुनता (स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्तिवेत्ता) यही सब जानने योग्य को जानता परन्तु पूर्वोक्त प्रकार विषयों में बँधा कोई जीव उस का जाननेवाला नहीं है (तमग्र्यं महान्तं पुरुषमाहुः) उस को अनादि अनन्त सर्वोपरि पुरुषपन से युक्त सर्वोत्पादक ब्रह्मज्ञानी लोग कहते हैं ॥

भा०—सर्वथा ही हाथ पग आदि साधनों के विना ग्रहण वा देखने आदि कामों को सर्वोपरि सब स्थानों में पूरे २ सिद्ध करता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही उस भगवान् में सर्वशक्तिमत्ता है। उसको संसारी बुद्धिवाले साधारण लौकिक अल्पदर्शी लोग बहुत से मिल कर भी नहीं जान सकते किन्तु उसी की ओर ध्यान रखनेवाले ब्रह्मनिष्ठ कोई २ लोग ही उसकी अपार महिमा को जान पाते वे ही संसार की बड़ी बड़ी विपत्तियों से बच सकते हैं॥ १९॥

अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः। तमक्रतुं पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्॥ २०॥

अ०—अस्य जन्तोर्जीवस्य गुहायां हृद्देशे सूक्ष्मादपि सूक्ष्मतरो महतोऽपि महत्तरो निरतिशयसूक्ष्मो निरतिशय महांश्चात्मा परमात्मा निहितोऽधिष्ठितस्तं महत्त्वादतिशयेन सर्वस्मादपरिच्छिन्नमक्रतुं क्लेशकर्मविपाकाशयैरसंसृष्टं तस्यैव सर्वाधारकस्य प्रसादात्तदनुग्रहमवाप्य वीतो निवृत्तो विषयाणामप्राप्तौ शोकस्तापोऽस्य तादृशो भूत्वैव जीवः कश्चित्पश्यति तत्त्वतस्तं जानाति॥

भा०—निवृत्तशोकादिकलमषः कश्चिदेव तस्य कृपयैव स्वस्यान्तःकरणे ध्यानेनैव निरतिशयसूक्ष्मत्वादिविशिष्टमेवेश्वरं कदाचिदेव वेत्ति। तस्मात्साधारणः कोऽपि तस्य वेत्ता नास्तीति पूर्वकथनमपि पुष्टिमेव लभते॥ २०॥

भाषार्थः—(अस्य जन्तोर्गुहायाम्) इस जीव की हृदयदेशस्थ बुद्धि में (अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा) सूक्ष्मों से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूक्ष्म और बड़ों से बड़ा अर्थात् सूक्ष्मता वा महत्त्व की अन्तिम सीमा को प्राप्त परमात्मा (निहितः) स्थिर है। और महत्त्व की असीमता से सब से अपरिच्छिन्न (तमक्रतुं महिमानमीशं धातुः प्रसादाद्वीतशोकः पश्यति) कर्मफलभोग की वासनाओं से अलिप्त महत्त्वरूप उस ईश्वर को उसी की कृपा वा प्रसन्नता से विषयभोगों के न मिलने का सोच वा ताप जिस का निवृत्त हुआ ऐसा होकर ही कोई जीव देखता जानता है ॥

भा०—शोकादि कल्मष जिस का दूर हुआ हो ऐसा कोई ही पुरुष उसकी कृपा से ही अपने अन्तःकरण में ध्यान समाधि के द्वारा ही अत्यन्त सूक्ष्मतादि युक्त ही ईश्वर को कभी जान पाता है। इस से साधारण कोई भी उसका जाननेवाला नहीं यह पूर्व का कथन भी ठीक पुष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् ।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनोऽभिवदन्ति नित्यम् २१

अ०—यदा वीतशोकस्तं पश्यति तदैवं मन्यते—अहमेतमजरं जरावस्थारहितं पुराणं सनातनं सर्वान्तर्यामिणं विभुत्वाद् व्यापकत्वात्सर्वस्मिन् गतं प्राप्तं यस्य ब्रह्मवादिनो जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यं च नित्यमभिवदन्ति तं वेद जानामि ॥

भा०—यस्य मिथ्याज्ञानापाये रागद्वेषमोहदोषादग्धबीजकल्पा भवन्ति स एव शोकादिरहितो ध्यानयोगाभ्यासेन प्रत्यक्चेतनाधिगमपुरस्सरं सर्वानन्दमयं परमात्मानं हृदि साक्षात्कुर्वन्परमं संतुष्यति ज्ञातं मया ज्ञातव्यमिति च मन्यते ॥२०॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—जब शोकादि से रहित हुआ पुरुष उसको जान लेता तब वह ऐसा मानता है कि (ब्रह्मवादिनो यस्य जन्मनिरोधं प्रदवन्ति) ब्रह्मवादी लोग जिस के जन्म ही का अभाव कहते (नित्यमभिवदन्ति) और जिस को नित्य २ अभिवादन नमस्कार प्रणामादि करते हैं उस (एतमजरं पुराणं विभुत्वात्सर्वगतं सर्वात्मानमहं वेद) इस जीर्णावस्था रहित सदा एक से सामर्थ्यवाले विभु-व्यापक होने से सब पदार्थों को प्राप्त सर्वान्तर्यामी सनातन ब्रह्म को मैं जानता हूँ ॥

भा०—मिथ्याज्ञान के छूटने पर जिस पुरुष के रागद्वेष मोहादि दोष निर्मूल भस्म हो जाते (जिन में फिर उगने की शक्ति नहीं रहती है) वही शोकादि रहित पुरुष ध्यानरूप योगाभ्यास से अपने अन्तरात्मा को जानने पूर्वक सर्व आनन्दमय परमात्मा को हृदय में साक्षात्कार करता हुआ परम सन्तोष को प्राप्त होता और मानता है कि मैंने ज्ञातव्य को जान लिया ॥२०॥

इति भीमसेनशर्मनिर्मिते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये
तृतीयोऽध्यायः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ चतुर्थोऽध्यायारम्भः ॥

यएकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति । विचैति चान्ते विश्वमादौ स देवः सनो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥ १ ॥

अ०-य एकोऽद्वितीय ईश्वरः स्वयमवर्णो ब्राह्मणादिवर्णत्ववर्जितोनिहितार्थो व्यवसितकर्मफलभोगप्रयोजनःस्वार्थनैरपेक्ष्येण स्वस्मिन्बहुविधशक्तीनां सम्बन्धादनेकान् ब्राह्मणादिवर्णान्दधाति विदधति । स देव आदौ प्रलयात्पूर्वं सर्गारम्भकाले विश्वं सर्वमिदं रक्षति । अन्ते प्रलयावसरे च व्येति विनाशयति स नोऽस्मान् शुभया कल्याणाभिमुखया बुद्ध्या संयुनक्तु येन निःश्रेयसभाजः स्याम ॥

भा०-य एकोऽसहाय एवास्य स्थावरजङ्गमस्योत्पत्तिस्थितिलयाननायासेनैव करोति स एव निरतिशयः सर्वाध्यक्षः स्वस्य कल्याणाय मनुष्येण प्रार्थनीयः ॥ १ ॥

भाषार्थः—(य एकोऽवर्णो निहितार्थः) जो एक अद्वितीय ईश्वर ब्राह्मणादिपन के गुण कर्मों से रहित सब को शुभाशुभ कर्म फल भुगाना ही जिस ने सृष्टि रचने का प्रयोजन रक्खा है ऐसा वह (बहुधा शक्तियोगादनेकान्वर्णान्दधाति) अपने नाना प्रकार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्तियों का योग होने से अनेक ब्राह्मणादि वर्णों का (जो मूल रूप से चार वर्ण और अवान्तर भेदों से असंख्य प्रकार के ब्राह्मणादि हो जाते हैं) बनाता है स (देवोऽन्ते विश्वं विचैति) वह देव ईश्वर सृष्टि स्थिति के अन्त में प्रलय का समय आते ही इस जगत् को विनष्ट कर देता (चादौ) और प्रलय से पूर्व समय में सब की रक्षा करता है (स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु) वह ईश्वर कल्याणकारिणी उत्तम धर्मानुकूल बुद्धि से हम को संयुक्त करे जिस से हम निःश्रेयस सुख के भागी हों ॥

भा०—जो एक ईश्वर किसी की सहायता न लेकर स्थावर जङ्गमरूप इस सब जगत् के उत्पत्ति स्थिति प्रलयों को सहज में ही किया करता है वही सर्वोपरि सब का स्वामी है मनुष्य को अपने कल्याण के लिये उसी की प्रार्थना करनी चाहिये ॥ १ ॥

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ॥ २ ॥

अग्निः पाचको भस्मीकरणशक्तिमान्, आदित्यः कालविभागहेतुत्वात्सर्वभावपरिणामनिमित्तम्, सर्वचेष्टादिहेतुर्वायुः, मृदुलावण्यादिगुणस्य प्रधानं कारणं चन्द्रमोऽभिधं सोमतत्त्वं सर्वत्र व्याप्तम्, शुक्रमतिशुक्रत्वं गुणः सर्वत्रस्थो ब्रह्मबृहत्तरः सर्वस्योत्पादनद्वारा वर्द्धकः, आपोऽन्तर्दाहनिवारकं शीतगुणप्रधानं तत्त्वं प्रजापतिः प्रजातायाः सृष्टेरक्षकः । अग्न्यादिपदार्थानां यत्र निरतिशयत्वं भस्मीकरणादिशक्तीनां यत्र काष्ठाप्रा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्तिः। प्राधान्यं तदेवात्मतत्त्वं प्रधानभावेनाग्न्यादिपदवाच्यम् एवकारः प्रत्येकमभिसंबध्यते ॥

भा०—संसारस्थवस्तुषु गौणमग्न्यादित्वं परात्मनि च निरतिशयं प्रधानमग्न्यादीनामप्यग्न्यादित्वस्य मूलकारणत्वात्तस्य। गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्यय इति न्यायोऽपीदृशादेव वेदान्निस्सारितः पाणिन्यादिभिस्ततः सार्वत्रिक एव विज्ञेयः। लोकेऽपि गौणमुख्ययोर्विदुषोः प्रसङ्गे मुख्य एव विद्वत्पदवाच्यः प्रतीयते विद्वांस्त्वयमेवास्तीति वदन्ति तद्वदिहापि योज्यम्। यजुर्वेदे अ० ३२ आरम्भमन्त्रः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः) सब को भस्म वा भक्षण करने की शक्तिवाला अग्नि वही, काल विभाग का हेतु होने से सब विद्यमान पदार्थों के परिणाम का निमित्त वही, सब चेष्टादि क्रियाओंका का कारण वही और सब प्रकार की कोमलता वा शोभा का मूल कारण चन्द्रमा नामक सोम वही है (तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः) तारे आदि की अत्यन्त शुद्ध कान्तिवाला शुक्र वही, सब से बड़ा उत्पत्ति द्वारा सब का बढ़ानेवाला ब्रह्म वही, भीतरी दाह वा ताप का निवारक शीतलगुण को प्रधानतावाला जल वही और उत्पन्न हुई सृष्टि का सर्वोपरि रक्षक प्रजापति वही है। अभिप्राय यह कि अग्नि आदि पदों का जिस में निरतिशय अर्थ घटता अर्थात् भस्म करने आदि शक्तियों की जिस में अत्यन्त सीमा हो जाती जो उन २ शक्तियों में सर्वोपरि प्रधान है वही आत्मतत्त्व प्रधानरूप से अग्नि आदि पदों

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का वाच्यार्थ है। मन्त्र में एव शब्द प्रत्येक अग्न्यादि शब्द के साथ लगाने के लिये है॥

भा०—अग्न्यादि नामक संसार के सब वस्तुओं में अग्न्यादिपन गौण है और परमात्मा में अग्न्यादिपन असीम है क्योंकि अग्नि आदि के अग्न्यादिपन का भी मूल कारण वही है (गौण०) गौण मुख्य दोनों के प्रसङ्ग में मुख्य में ही कार्य वा व्यवहार होता है। इस परिभाषारूपन्याय को पाणिनि आदि आचार्यों ने ऐसे ही वेद मन्त्रों से निकाला है और वेद से निकलने के कारण ही यह नियम सर्वदेशी है सब को मानना ही पड़ता है। लोक में भी गौण मुख्य दो विद्वानों के एकत्र होने पर वा दो की चर्चा होने पर मुख्य ही विद्वान् पदवाच्य होता है। लोग कहते हैं कि विद्वान् तो यही है। इसी प्रकार यहां भी अग्नि आदि पदों का वाच्यार्थ वही एक ब्रह्म कहा जाता। यह मन्त्र यजुर्वेद अ० ३२ के आरम्भ में ऐसा ही ज्यों का त्यों है॥ २॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥३॥

अ०—हे परमात्मन्! सर्वस्योत्पादने त्वं स्त्री त्वमेव पुमान स्त्रीरूपायां प्रकृतौ त्वमेवोपादानशक्तिं दधासि निमित्तरूपं पुंस्त्वं च त्वय्येवास्ति। एवं सत्यपि त्वं कुमार उत कुमार्य्येव च भवसि न च जगत उत्पादनेन तव शक्तिह्रासो न हि विषयासक्तो भवसि। त्वमेव च जीर्णो वृद्धो बहुश्रुता बहुदृष्टस्त्वं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मेव सर्वज्ञो भूत्वा दण्डेन वञ्चसि दण्डप्रदानेन दुष्कर्मभ्यः प्राणिनो निवर्त्तयसि। तस्मादेव स्वकर्मभिराविर्भूतस्त्वं विश्वतोमुखः सर्वत्र सर्वस्य साक्षाद् द्रष्टा भवसि॥

भा०—प्रकृतौ प्रकृतित्वमपि परमात्मप्रतापेनैवास्ति तस्मादेव सर्वस्यादिमूलमीश्वरः। स्त्रीपुरुषद्वयसाध्यसर्वकृत्याधारेऽपि तस्मिन् न किमपि वैषम्यं जायते निष्कलङ्क एव तिष्ठति। सर्वोत्पादकत्वेऽपि सदैव तस्य कुमारत्वम्। यो दण्डेन सर्वान् रक्षति ततः सर्वे बिभ्यति हृदि जानन्ति च। एवं विश्वतोमुखः सन्नेव दण्डेन सर्वं चालयितुं शक्नोति। तदुक्तम्—भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्य इत्यादि॥३॥

भाषार्थः—हे परमात्मन्! सब को उत्पन्न करने में (त्वं स्त्री त्वं पुमानसि) तुम्हीं स्त्री और तुम्हीं पुरुष हो अर्थात् तुम्हीं सब के माता पिता हो। यद्यपि सब की उत्पत्ति में प्रकृति स्त्री है तथापि उसमें तुमही उपादानशक्ति को धारण करते हो और निमित्त कारणरूप पुरुषपन तुम में स्वतः ही है ऐसा होने पर भी (त्वं कुमार उत वा कुमारी) तुम कुँआरे और कुँआरी हो तुम्हारे स्त्री पुरुषपन दूषित खण्डित नहीं होते अज्ञातवीर्य अज्ञातयोनि के समान तुम कोरेही बने रहते हो (त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि) तुम सदा वृद्ध बहुदृष्ट बहुश्रुत सर्वोपरि [तर्जवेंकार] सर्वज्ञ हुए दण्ड के द्वारा प्राणियों को बचाते वा दण्डविधि को साथ लिये सब को प्राप्त होते (त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः) तुम ही अपने कर्मों द्वारा सब के हृदय में प्रकट हुए सब को साक्षात् देखनेवाले होते हो॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—प्रकृति में प्रकृतिपन भी परमात्मा के प्रताप से ही है। इसी से सब का आदिमूल ईश्वर माना जाता है। स्त्री पुरुष दोनों के मेल से होनेवाले सब कामों के आधार हुए भी उस ईश्वर में कुछ भी विषमता नहीं होती वह सदा निष्कलङ्क ही बना रहता है। और सब का उत्पादक होने पर भी वह न्यारा ही रहता। जो दण्ड के द्वारा सब की रक्षा करता है उससे सब डरते और हृदय में उस को जानते हैं। इस प्रकार ईश्वर सर्वत्र सर्वसाक्षी होने पर ही दण्ड के द्वारा सब का नायक होता है। "इसके भय से अग्नि तपता और इसीके भय से सूर्य तपता है" कठोपनिषद् इत्यादि के कथन से व्यापक होकर शासनकर्त्ता ईश्वर जताया गया है॥ ३॥

नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः। अनादिस्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा॥ ४॥

अ०—नीलः कृष्णः पतंग उत्पतनशीलो भ्रमरो लोहिताक्षो रक्तनेत्रो हरितवर्णः शुकादिस्तडिद्गर्भेऽस्या तादृशो मेघ ऋतवः समुद्राश्चेत्यादिवस्तुषु तत्तद्रूपेणावस्थितः। अतएव नास्त्यादिः कारणमस्य तादृशस्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे व्यापकत्वेन सर्वत्र वर्त्तसे यतो विश्वानि भुवनानि जातान्युत्पन्नानि॥

भा०—अग्निर्यथैको भुवनंप्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव। एवमीश्वरस्तत्तद्रूपेण सर्ववस्तुष्ववस्थित इत्येवात्रोपलक्षणेन प्रदर्शितम्। न हि तस्य भिन्नं रूपं प्रतीयतेऽतिसूक्ष्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्वात् । तथा चातिसूक्ष्म एव विभुः सर्वत्र स्थित्या सर्वोत्पादकः सम्भवति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षः) उड़ने के स्वभाववाला काला पक्षी भौंरा नाम भ्रमर तथा हरा लाल नेत्रों वाला तोता आदि पक्षी (तडिद्गर्भऋतवः समुद्राः) तडित् नाम बिजुली जिस में रहती ऐसा मेघ, वसन्तादि ऋतु और समुद्र अन्तरिक्ष के वा पृथिवी इत्यादि के वस्तुओं में उन २ के ही रूप से व्यापक ठहरे हुए (अनादिस्त्वं विभुत्वेन वर्त्तसे) जिनका आदि नाम कारण कोई नहीं. ऐसे तुम व्यापकरूप से सर्वत्र वर्त्तते हो कि (यतो जातानि भुवनानि विश्वा) जिन तुम से यह सब लोक लोकान्तर अनन्त ब्रह्माण्ड भर उत्पन्न हुआ है ॥

भा०—कठोपनिषद् में लिखा है कि "जैसे अग्नि सब जगत् के उस २ पदार्थ में उस २ के रूप में ही बन रहा है" इसी प्रकार ईश्वर सब वस्तुओं में उसी २ के रूप से व्याप्त हो रहा है। यहां नीलपतङ्गादि के उपलक्षणमात्र से यह बात दिखलाई है कि अतिसूक्ष्म होने से उन २ वस्तुओं में अवस्थित ईश्वर का भिन्नरूप नहीं दीखता। वह अतिसूक्ष्म और व्यापक होने से ही अनन्त सृष्टि का उत्पादक हो सकता है ॥ ४ ॥

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ॥ अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोग्यामजोऽन्यः ॥ ५ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—लोहितशुक्लकृष्णां रजःसत्त्वतमोगुणमयीं समानरूपा उपादानकारणगुणप्रधाना बह्वीः कार्यप्रजाः सृजमानामजां स्वयमविनश्वरामनादिभूतामेकोऽजः कश्चिदनादिर्जीवो जुषमाणः प्रीतिं स्नेहं तया कुर्वन्नुशेते भजतेऽन्यः कश्चिच्च भुक्तां भोग्यां मयाऽन्यैश्चेयमिति मन्यमान एनां जहाति तेन मुच्यते॥

भा०—त्रिगुणात्मके प्रवाहेणानादिभूते जगति ये प्राणिनो भोगोत्कण्ठयाऽनुरज्यन्ते ते जन्ममरणप्रवाहपतिता दुःखमेवाधिक्येन लभन्ते। ये भोगोत्कण्ठां समापयन्ति भोगः अस्माभिर्मुक्ता नात्र भोग्यं विशिष्टं सुखमस्त्यपितु दुःखमेव बहुलमिति मन्यमाना जहात्येनामजां प्रकृतिं ते विषयदोषदर्शिनो मुच्यन्ते दुःखबहुलात्संसारचक्रप्रवाहात्। अत्र प्रकृतिजीवावनादी ग्रन्थकृता स्पष्टं प्रदर्शितौ ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(लोहितशुक्लकृष्णाम्) रक्त—लाल रजोगुणी, शुक्ल श्वेत—सत्त्वगुणी, कृष्ण काली तमोगुणी इन तीनों गुणोंवाली (सरूपा बह्वीः प्रजाः सृजमानामेकामजाम्) कारण के गुणानुकूल कार्य होने से अपने तुल्य गुणोंवाली नाना प्रकार की बहुतसी प्रजाओं को रचती हुई एक अपने स्वरूप से अविनाशिनी अनादि प्रकृति से (जुषमाणो ह्येकोऽजोऽनुशेते) प्रीति अनुराग करता हुआ कोई जीव उसके पास सोता उससे लिपटता सेवन भजन पूजन ध्यान उसी का करता है (अन्योऽजो भुक्तभोग्यामेनां जहाति) और कोई अनादि जीव विरक्त संन्यासी महात्मा इस प्रकृति को असंख्य लोगों की भोगी हुई निकृष्ट वेश्या के समान बिगड़ी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जूठी मान के छोड़ देता है उसके भोगने को बुरा समझता है। इस कारण असंख्य बड़े २ दुःखों से बच जाता है॥

भा०—त्रिगुणमय, प्रवाह से अनादि इस जगत् में जो प्राणी भोगने की उत्कण्ठा से अनुराग करते हैं वे जन्म मरण के प्रवाह में पड़े हुए अधिकता से दुःख ही पाते हैं। और जो भोग को तृष्णा को समाप्त करते कि भोग हमने भोग लिये अब अपने वा अन्यों के जूठे किये भोगों को क्या भोगें ? इन भोगों में सुख थोड़ा तथा दुःख ही बहुत है ऐसा मानते हुए इस प्रकृतिमय संसार को छोड़ देते हैं वे ही विषयों में दोष देखनेवाले दुःख ही जिसमें प्रधान है ऐसे संसारचक्र के प्रवाह से छूट जाते हैं। इस मन्त्र में अज पद से जीव और प्रकृति को ग्रन्थकार ने अनादि सिद्ध कर दिया है (लोक में अज-बकरा और अजा-बकरी को कहते हैं। जैसे कोई बकरा एकसे बहुत बच्चे जननेवाली बकरी से प्रेम करे और कोई उस बकरी से उदासीन विरक्त हो जावे ऐसे ही अनेक जीव इस संसाररूप प्रकृति से प्रीति रखते उसी से लगे लिपटे जन्मते मरते चले जा रहे हैं और कोई २ कभी २ इस शरीरादि वा स्त्री आदि रूप प्रकृति से उदासीन विरक्त होकर सनातन ईश्वर को प्राप्त हो जाते हैं)॥ ५॥

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्व-जाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽअभिचाक-शीति॥ ६॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—सुपर्णौ शोभनप्रकारेण जगतो रक्षकौ सयुजा सर्वदा संयुक्तौ व्याप्यव्यापकसम्बन्धेनाभिन्नौ सखाया समानख्याती आत्मपदवाच्यौ तौ द्वौ जीवात्मपरमात्मानौ समानमेकमेव वृक्षं छिद्यमानं नश्वरं शरीरं परितः स्वजाते समाश्रयेते तयोरन्य एको जीवः स्वादु पिप्पलं सुखदुःखरूपं कर्मफलमत्ति भुङ्क्तेऽन्यः परमात्माऽनश्नन् विवेकप्राबल्येन फलभोगात्सर्वदैव विरक्तोऽभिचाकशीति साक्षिभूतः पश्यन्नास्ते। द्वेत्यादौ सुपां सुलुगित्यादिना प्रथमाद्विवचनविभक्तेराकारादेशः॥

भा०—अत्र जीवब्रह्मणोः पृथक्त्वं वेदमन्त्रेणैव स्फुटमुच्यते। यदि सहयोगेन द्वयोरेकत्वमभिमतं स्याच्चदा सयुजेति द्विवचननिर्देशं मन्त्रकारो न कुर्यात्। मुक्तावपि नित्यनैमित्तिकभेदवद्द्वयोः शुद्धत्वमुक्तत्वादौ भेदोऽवसेयः। लोकेऽपि सर्वत्र गौणमुख्ययोः कृत्रिमाकृत्रिमयोश्च महान् भेदो दृश्यते तद्वदीश्वरस्य मुक्तत्वादिकं मुख्यमकृत्रिमं च जीवस्य च गौणं कृत्रिमं चेति भेदः। अयं मन्त्र ऋग्वेदे मण्डले १। सूक्ते १६४। २० पठितः॥ ६॥

भाषार्थः—(द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया) अच्छे प्रकार जगत् के पदार्थों के रक्षक (पॄ पालनपूरणयोः। धातु से पूर्ण शब्द बना है) सब काल में व्याप्य व्यापक सम्बन्ध से एक साथ रहनेवाले तथा चेतन वा आत्मादि एक नाम से कहानेवाले दो पक्षियों के तुल्य जीवात्मा और परमात्मा (समानं वृक्षं परिषस्वजाते) विनाश को प्राप्त होनेवाले अनित्य शरीररूप एकही वृक्ष पर रहते

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं (तयोरन्यः स्वादु पिप्पलमत्ति) उन दोनों में से एक जीवात्मा वृक्ष फल के तुल्य सुख दुःखरूप स्वादिष्ट कर्म के फल को खाता चीखता स्वाद ले २ कर खाता भोगता है और (अन्योऽनश्नन्नभिचाकशीति) द्वितीय परमात्मा कुछ भी न खाता भोगता हुआ विवेकज्ञान की अधिकता से भोग से सदा विरक्त साक्षिरूप होकर जीव के भोगों को देखता हुआ व्यापक है ॥

भा०—यहां जीव और ब्रह्म का स्पष्ट भेद वेदमन्त्र से ही कहा गया है। यदि एक साथ रहने से दोनों की एकता अभिमत होती तो (सयुजा) इस पद में मन्त्रकार द्विवचन न पढ़ते। मुक्ति में भी नित्य नैमित्तिक पदार्थों के भेद के समान दोनों के शुद्ध और मुक्त होने आदि में भेद जानो। लोक में सर्वत्र जैसे गौण मुख्य वा कृत्रिम अकृत्रिम में बड़ा भेद दीखता है वैसे यहां भी ईश्वर का मुक्त वा शुद्ध होना मुख्य तथा अकृत्रिम है और जीव का शुद्ध वा मुक्त होना गौण कृत्रिम तथा अनित्य है यही इन दोनों में बड़ा भेद जानो। यह मन्त्र ऋग्वेद १। १६४। २० में है ॥ ६ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः। जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥ ७ ॥

अ०—समान एकस्मिन् वृक्षे छिद्यमाने नश्वरे देहे पुरुषो जीवो कर्मफलरागादिजन्यभाराधिक्येन नद्यामिव दुःखे निमग्नो मुह्यमानो मोहं कुर्वन्ननीशया शोचति-पुत्रो मम मृतो भा-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

र्य्या मे नष्टा धनं मेऽपहृतं किं कुर्याम्-कथं जीवेयम्-अशक्तोऽहं प्रतिकर्त्तुम्-न किमपि कर्त्तुं शक्नोमि। एवं रोदिति विलपति मुहुर्मुहुः सन्तप्यते दुःखानलेन दह्यमानः। यदा संस्कारप्राबल्याच्छुभफलोदयाद्दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितयोगाभ्यासेन तस्मिन्नेव वृक्षेनिमग्नमन्यं बहुभिर्जुष्टं स्वतो भिन्नमीशमनन्तशक्तिं पश्यति साक्षात्करोति तदाऽस्येशस्य महिमानं बुद्ध्वा वीतशोकः सर्वविधशोकवर्जितो भवति॥

भा०—लोकेऽपि यो यादृशदुःखप्रतीकारे समर्थो नासौ शोचति यश्च दुःखनिवारणेऽशक्तः स एव शोकमग्नो जायते दुःखप्रतीकारसामर्थ्यं च प्रत्यगात्मविचारप्राबल्येन बुद्धितत्त्ववैशारद्याज्जायते। यो हि लोके यादृशो बुद्धिमान् दृश्यते स तावदेव दुःखप्रतीकारमारभते मुच्यते च दुःखात्। ईश्वरबोधश्च बुद्धेः सूक्ष्मत्ववैशारद्ययोरन्तिमं कृत्यमत एवोक्तम्—"दृश्यते त्वग्र्या बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः" अतएव सुखमभीप्सता दुःखं जिहासता च पुरुषेण समापितबाह्यविषयभोगोत्करणेनाध्यात्मरत्यासीनेन बुद्ध्यारूढेन भाव्यमित्यायातम्॥ ७॥

भाषार्थः—(समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नः) एक ही नाशवान् शरीरादि जगत् में जीवात्मा कर्मफलभोग की वासनाओं सम्बन्धी भार की अधिकता से दुःखरूप अगाध नदी में डूबता तथा (मुह्यमानः) मोहजाल में फँसा हुआ (अनीशया शोचति) दुःख निवृत्ति के लिये असमर्थ हुआ सोचता है कि-मेरा पुत्र मर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गया। हा! मेरी प्रिया स्त्री नष्ट होगई हा! मेरा धन छिन गया अधिकार छिन गया, अब क्या करूँ कैसे जीवूँ मैं असमर्थ हूँ बचाने का कुछ उपाय नहीं कर सकता ऐसे रोता विलाप करता बार २ दुःखाग्नि से जलता हुआ सन्ताप करता है। और (यदा) जब संस्कार की प्रबलतानुसार शुभ फल का उदय होने से दीर्घ काल तक निरन्तर सेवन किये योगाभ्यास द्वारा उसी वृत्त में रहते हुए भी दुःखसागर में न डूबनेवाले (अन्यं जुष्टमीशं पश्यति) अन्य बहुत ज्ञानियों योगियों से सेवित अपने से भिन्न अनन्त शक्ति ईश्वर को साक्षात् देखता है (अस्य महिमानमिति वीतशोकः) तब इस ईश्वर की महिमा को जानकर सब प्रकार के शोकों तथा दुःखों से छूट जाता है॥

भा०—लोक में भी जो जैसे दुःख के निवारण में समर्थ होता है उसको वैसा कम शोक सताता और जो दुःख के निवारण में असमर्थ होता वही शोकसागर में डूबता है। और दुःख हटाने का सामर्थ्य भी भीतरी विचार की प्रबलता से बुद्धितत्त्व की ठीक शुद्धि तथा सूक्ष्मता होने पर ही होता है। जो जैसा लोक में बुद्धिमान् दीखता है वह वैसा ही दुःख निवृत्ति का उपाय करता है और दुःख से बच जाता है। ईश्वर का बोध भी बुद्धि की ठीक शुद्धि और सूक्ष्मता का अन्तिम फल वा परिणाम है। सो कठोपनिषद् में कहा भी है कि "तेज सूक्ष्म बुद्धि द्वारा सूक्ष्मदर्शियों को ईश्वर दीखता भी है" इसीलिये दुःख का त्याग तथा सुख की प्राप्ति चाहनेवाले पुरुष को बाह्य विषयों के भोग की तृष्णा को छोड़ के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतरी आत्मविचार में रमते हुए बुद्धि पर आरूढ होना चाहिये यह अभिप्राय निकला जानो ॥ ७ ॥

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः । यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ८ ॥

अ०—ऋच ऋग्वेदादेः प्राधान्येन वाच्येऽक्षरेऽविनाशिनि व्योमवद्व्यापके परमे निरतिशये यस्मिन्नधि मध्ये विश्वे सर्वेऽग्न्यादयो देवास्तन्मयं सर्वं जगन्निषेदुर्निषीदति निरन्तरं तिष्ठति । तदविनाशि ब्रह्म यो न वेद न जानाति स ऋचा ऋग्वेदादिवेदाध्ययनेन किं करिष्यति ? न किमपीत्यर्थः । व्यर्थं तस्य वेदाध्ययनं य इद्य एव तद् ब्रह्म विदुस्त इमे समासते विगतकलमषाः सर्वोपद्रवरहिताः सुखेन सम्यगासते परमशान्त्या तिष्ठन्ति ॥

भा०-अयमेव परो धर्मो यद्यथाकथमपि योगाभ्यासादिना परमात्मचिन्तनं कुर्यात्तदर्थं वेदोऽध्येतव्यो न च वेदाध्ययनमार्गेण परमात्मज्ञानसदृशमन्यत्र क्वापि सुखमानन्दो वास्ति तस्माच्चस्य परमधर्मत्वम् । अयमपि मन्त्रः । ऋग्वेदमण्डले १ । सूक्ते १६४ । ३९ द्रष्टव्यः ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्) ऋग्वेदादि के मुख्य वाच्यार्थ अविनाशी आकाश के तुल्य व्यापक (यस्मिन्नधि-विश्वे देवा निषेदुः) जिस असीम अनन्त ईश्वर के भीतर बड़ी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बड़ी प्रबलशक्तियोंवाले सब अग्न्यादि देवता तथा देवमय सब स्थूल सूक्ष्म जगत् ठहरा हुआ है (तद्यो न वेद किमृचा करिष्यति ?) उस अविनाशी ब्रह्म को जो पुरुष नहीं जानता वह ऋग्वेदादि वेद पढ़ के क्या करेगा ? अर्थात् कुछ नहीं। उसका वेद पढ़ना व्यर्थसा ही है (य इत्तद्विदुस्त इमे समासते) जो ही लोग उस ब्रह्म को जान लेते, ईश्वर की ओर जिनका विचार झुक जाता है वे इन पाप दोष उपद्रवादि से रहित होकर सुखपूर्वक शान्ति में ठहर जाते हैं।

भा०—मनुष्यके लिये यही परम धर्म है जो जिस किसी प्रकार योगाभ्यासादि के द्वारा परमात्मा का चिन्तन करे। उसी को जानने के लिये वेद पढ़ना चाहिये और वेदाध्ययन के द्वारा परमात्मा को जानने से होनेवाले सुख के समान अन्यत्र कहीं सुख वा आनन्द नहीं है इसी से वह परम धर्म है। यह भी ऋग्वेदमण्डल १ सूक्त १६४ में का ३९ उनतालीसवाँ मन्त्र है॥ ८॥

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति। अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः॥ ९॥

अ०—यज्ञाः पञ्च महायज्ञा दर्शेष्ट्यादयश्च क्रतवो ज्योतिष्टोमादयो मखाः, व्रतानि चान्द्रायणादीनि छन्दांसि दुःखवारकाणि मनुष्येण सेव्यानि, भूतं भव्यं भविष्यच्च वर्त्तमानं त्रिकालस्थं सुखं दुःखं च मनुष्यैर्भोक्तव्यम्। एतच्च वेदाः

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टेः प्रयोजनं वदन्ति । अस्मादेव प्रयोजनाद्धेतोर्मायायाः प्रकृतेः स्वामी मायाऽस्यास्तीति मायी विश्वं सर्वमेतत्सृजते रचयति तस्मिंश्च कार्ये जगति शुभमनुष्ठातुं सृष्टा अप्यन्ये जीवाः केचिज्जीवा मायया ऽविद्यया सन्निरुद्धाः शुभकर्मसेवनाद्दूरीकृता रागादिभिर्बद्धाः ॥

भा०—अस्यां सृष्टौ केषांचिज्जीवानां विशिष्टदुःखभोगायैव जन्म केषांचिन्मध्यकक्षायां सुखदुःखोभयभोगाय केषांचिच्चाधिक्येन सुखभोगाय शुभानुष्ठानेन मोक्षभावाय च जन्म भवति तत्र मध्या उत्तमा अपि केचिद्रागेण रक्ता अधः पतन्ति कामक्रोधादय एव तेषां पातकाः शत्रवो ज्ञेयाः ॥९॥

भाषार्थः—(यज्ञाः क्रतवो व्रतानि छन्दांसि) पञ्चमहायज्ञादि नित्य कर्म तथा दर्शेष्टि आदि, क्रतुनाम ज्योतिष्टोमादि बड़े यज्ञ और चान्द्रायणादि व्रत वा सबका मूल ब्रह्मचर्य व्रत ये सब छन्द नाम छाता छप्पर छत्त आदि के समान घाम और मेघादि विपत्तियों के समान आनेवाले दुःखों से बचानेवाले हैं इन कर्त्तव्यों के द्वारा मनुष्यादि प्राणियों को सुख मिले इस प्रयोजन से तथा (भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति) भूत भविष्य और वर्त्तमान इन तीनों कांल के सुख दुःख मनुष्यादि भोगें यही सृष्टि रचने का प्रयोजन है ऐसा वेद कहते हैं (अस्मान्मायीसृजते विश्वमेतत्) इसी हेतु वा प्रयोजन से माया नामक प्रकृति का स्वामी प्रकृति को सदा अपने आधीन रखनेवाला ईश्वर इस सब जगत् को रचता है इस उक्त प्रयोजन से सृष्टि की रचना होने पर

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी (तस्मिंश्चान्यो मायया संनिरुद्धः) उस कार्य जगत् में भाग के लालच से शुभकर्मों के सेवन द्वारा मुक्त होने के लिये रचे हुए भी अनेक जीव अविद्याग्रस्त हो के शभ कर्मों के सेवन से रुक जाते, रोगादि में बद्ध हो जाते हैं।

भा०—इस सृष्टि में किन्हीं जीवों का विशेष दुःख भोगने के लिये ही, किन्हीं का मध्यम दशा में रह कर सुख दुःख दोनों भोगने के लिये और किन्हीं का शुभ कर्मानुष्ठान द्वारा अधिक सुख भोगने वा मुक्ति होने के लिये जन्म होता उनमें मध्यम और कहीं कहीं उत्तम कोटि के भी कोई कोई मनुष्य रागादि में बद्ध होके नीचे को गिर जाते हैं और उनको गिरानेवाले काम क्रोधादि ही मुख्य शत्रु जानो ॥ ९ ॥

मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनन्तु महेश्वरम्। तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ १० ॥

अ०—मायां प्रकृतिमेव विद्यान्मायास्वामिनं निमित्तकारणं कालत्रयेपि सर्गस्थितिलयेषु माया ऽस्याधिकारेस्ति तं महान्तमीश्वराणामपीश्वरं निरतिशयैश्वर्यं मायिनं विद्यात्तस्य मायिनो मायासंबद्धावयवभूतैः सर्वमिदं जगद् व्याप्तम्॥

भा०—मायाशब्दस्य ग्रन्थान्तरेष्वनेकेऽर्था उपलभ्यन्ते। वेदकोषे निघण्टौ तु प्रज्ञाया मायेति नामास्ति। तच्च प्रकृतेरवयवेषु बुद्धिपदवाच्यं महत्तत्त्वमेव सर्वप्रधानं सर्वमूलं च प्रकृतिपदवाच्यम्। अतएव गौणप्रकृत्यर्थोपादानभ्रान्तिवारणाय

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मायापदेन वेदे वेदान्ते च बुद्धिनामिका मुख्यप्रकृतिरेव ग्राह्या तस्याश्च मुख्यः स्वामीश्वर एव विज्ञेयो न तु गौणो जीवः । ईशस्यैवानन्तसत्ताशक्तिसंबद्धाः प्रकृत्यंशा जगद्व्यवस्थां चालयन्ति न तु जीवादेः साधारणसत्ताशक्तिभ्यामियतो महतः सर्गस्य सम्यग् व्यवस्था सम्भवति ॥ १० ॥

भाषार्थः—(मायान्तु प्रकृतिं विद्यात्) प्रकृति का नाम ही माया है, यद्यपि कुछ २ प्रकृति का स्वामी जीव भी है तथापि प्रधान होने से (मायिनं तु महेश्वरम्) सृष्टि, स्थिति और प्रलय तीनों काल में माया नामक प्रकृति को अपने अधिकार में रखनवाले माया के स्वामी सब के निमित्त कारण असीम ऐश्वर्यवाले अनन्त व्यापक ईश्वर का मुख्य नाम मायी है (तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्) उस मायी ईश्वर के माया सम्बन्धी स्थूल सूक्ष्म अवयवों से यह सब जगत् व्याप्त हो रहा है ॥

भा०—माया शब्द के प्रकरणानुसार अनेक अर्थ होते हैं, पर निघण्टु नामक वेद के कोष में माया नाम बुद्धि का है। सो प्रकृति के अवयवों में बुद्धिनामक महतत्त्व ही सर्वोपरि मूल वा मुख्य प्रकृति है इस कारण गौण अर्थों की भ्रान्ति हटाने के लिये यह कहा है कि वेद वा वेदान्त के ऐसे प्रकरणों में माया शब्द का अर्थ मुख्य कर प्रकृति ही लिया जावे और उसका मुख्य स्वामी अधिष्ठाता ईश्वर ही समझा जावे। क्योंकि ईश्वर की असीम शक्ति और सत्ता से युक्त हुए प्रकृति के व्याप्त सूक्ष्मांश ही जगत् की व्यवस्था को चलवा रहे हैं किन्तु जीवादि की साधारण शक्ति वा सत्ता

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के द्वारा इतने बड़े २ लोकलोकान्तर ठीक नियत व्यवस्था में नहीं रह सकते ॥ १० ॥

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम् । तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ११ ॥

अ०—य एको देव ईश्वरो योनिंयोनिं मूलोपादानप्रकृतेः सर्वानवान्तरभेदानधितिष्ठति सर्वाधिष्ठाता भवति यस्मिन्नीशे प्रलयावसरे सर्वमिदं जगत् समेति लीयते सर्गकाले च विविधतामेति नाना भवति जीवात्मा तमीशानं सर्वनियन्तारं मोक्षरूपसर्वोत्तमफलप्रदमीड्यं वेदादिना स्तुत्यं देवं निचाय्य निश्चित्येमां स्थालीपुलाकन्यायेन प्रत्यक्षानुभूतां शान्तिमत्यन्तमेति प्राप्नोति ॥

भा०—सर्वस्य स्थूलसूक्ष्मस्य योऽध्यक्षः सर्गस्थितिलयहेतुः सर्वनियन्ता सर्वरक्षकः सर्वोपरि सुखप्रदः सर्वथा सर्वदा च शान्तिमयस्तस्य स्वरूपबोध एव जीवाय निरतिशयशान्तिप्राप्तेः प्रधानं कारणमस्ति ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(यएको योनिंयोनिमधितिष्ठति) जो एक ही देव ईश्वर प्रकृतिनामक मूल उपादान के सब अवान्तर भेदों का अधिष्ठाता है (यस्मिन्निदं सं च विचैति सर्वम्) जिस ईश्वर में प्रलय के समय यह सब जगत् लीन होता और उत्पत्ति के समय नाना प्रकार के भेदोंवाला प्रकट होता (तमीशानं वरमीड्यं देवम्)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस सर्वनियन्ता, मोक्षरूप सर्वोत्तम फल देनेवाले वेदादिशास्त्रों से स्तुति के योग्य ईश्वर देव का (निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति) निश्चय करके स्थालीपुलाकन्याय से प्रत्यक्ष अनुभव की हुई इस अन्यन्त शान्ति को प्राप्त हो जाता है जिस में दुःख उपद्रव वा विघ्नों का लेशमात्र भी नहीं है ॥

भा०—सब स्थूल सूक्ष्म जगत् का जो स्वामी, सृष्टि स्थिति तथा प्रलय का कारण, सर्वनियन्ता, सर्वरक्षक, सर्वोपरि सुखदाता, सब काल में और सब प्रकार से शान्तिस्वरूप है उस का स्वरूप बोध ही जीव को अत्यन्त शान्ति मिलने का प्रधान कारण है ॥ ११ ॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।

अ०—यो देवानां स्थूलसूक्ष्माग्न्यादितत्त्वानां प्रभव उत्पत्तिस्थानमुद्भवो नियमेन तैः कार्यसाधको विश्वस्याधिपती रुद्रः शास्ता महर्षिः सर्वज्ञः सर्वविद्यानिधानस्य वेदस्य प्रकाशकोऽस्ति । हितानि रमणीयानि च सूर्यादिज्योतींषि गर्भे मध्ये यस्य तं जगत उत्पादनधारणपालनादिकर्मभिर्जायमानं प्रकटीभूतं तादृशमीश्वरं हे जनाःपश्यत ज्ञानचक्षुर्भ्यामितिशेषः स सर्वज्ञः शुभया धर्मानुगामिन्या कल्याणकारिण्या रजस्तमो लेशमलापेतया बुद्ध्या नोऽस्मान् संयुनक्तु-इतिप्रार्थयामः ॥

भा०-तस्येश्वरस्य गुणकर्मस्वभावानामालोचनेनैकाग्रचेतसा स्तुतिप्रार्थनाभ्यां चान्योपायापेक्षयाऽऽधिक्येन शान्तिमयं सुखं मनुष्येणाप्तुं शक्यते ॥ १२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—(यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च) जो स्थूल सूक्ष्म अग्न्यादि तत्त्वों का उत्पादक और नियम के साथ उनसे कार्य लेनेवाला (विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः) सब का स्वामी सब का शासक सर्वज्ञ नाम सब विद्याओंके आधार वेद का प्रकाशक (हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानम्) सब के हितकारी सब कर्त्तव्य में प्रवृत्ति के निमित्त सूर्यादि ज्योति जिस के भीतर हैं ऐसे उस जगत् की उत्पत्ति धारण पालनादि कर्मों के द्वारा प्रकट हुए ईश्वर का हे मनुष्यो ! ज्ञानदृष्टि से देखो (स शुभया बुद्ध्या नः संयुनक्तु) वह ईश्वर शुभ कल्याणकारिणी धर्मानुगामिनी बिल्कुल रजोगुण तमोगुण के भ्रम से रहित बुद्धि से हम को संयुक्त करे ऐसी हम प्रार्थना करते हैं ॥

भा०—उस ईश्वर के गुण कर्म स्वभावों के आलोचन द्वारा एकाग्रचित्त से स्तुति प्रार्थना करके जैसा अधिक शान्तिरूप सुख मनुष्य को प्राप्त हो सकता है वैसा अन्य उपाय से नहीं ॥ १२ ॥

यो देवानामधिपो यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः । य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

अ०—यो देवानाममितशक्तिमतामग्न्यादीनां तदवान्तरभेदानां चाधिपः स्वामी यस्मिन्नीश्वरे आधारे भूरादयो लोका अधि मध्ये श्रिता यदाधारेणावस्थिताः । य एव परमेश्वरस्तल्लोकस्थद्विपदो मनुष्यादेश्चतुष्पदः पश्वादेश्चेश ईष्टे तान् सर्वान्स्वाधीनान् करोति तस्मै कस्मै सुखानन्दमयाय देवाय हविषा वागादियज्ञसाधनैर्विधेम परिचरेम सेवेमहि । अत्र

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"लोपस्त आत्मनेपदेषु" इति सूत्रेण छन्दोवन्मत्वा—ईष्ट इति तलोपः। अधीगर्थदयेषां कर्मणीति सूत्रेण कर्मणि षष्ठी च ॥

भा०—स्वशरीरस्थवागादिसाधनैः स्तुतिप्रार्थनादिकरणेन स्तुत्यादौ वागादेर्विशेषनियोगेनेश्वराभिमुखतया मनुष्येण शान्त्याप्तय उद्योगः कार्यः ॥ १३ ॥

भाषार्थः—(या देवानामधिपः) जो अतुल शक्तिवाले अग्न्यादि तथा उनके अवान्तर भेदरूप तत्त्वों को वशीभूत रखने वाला (यस्मिंल्लोका अधिश्रिताः) जिस सर्वाधार ईश्वर के बीच भूरादि लोक जिसके सहारे से ठहरे हुए हैं (य ईशेऽस्य द्विपदश्चतुष्पदः) और जो परमेश्वर उस २ भूः,भुवर् आदि लोक में रहने वाले इस मनुष्यादि दो पगवाले और पश्वादि चार पगवाले प्राणिमात्र को स्वाधीन रखता है (कस्मै देवाय हविषा विधेम) उस सुख वा आनन्द स्वरूप देव के लिये हम लोग अपनी वाणी आदि साधनों से स्तुति आदिरूप पूजा करें।

भा०—अपने २ शरीरादि में स्थित वाणी आदि साधनों से स्तुति प्रार्थनादि करके अर्थात् वाणी को अन्य कामों से रोक कर स्तुति आदि में ही अधिक लगा कर ईश्वर की ओर तत्पर रहते हुए मनुष्य को शान्ति प्राप्त करने के लिये उद्योग करना चाहिये १३

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥ ४१ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०-सूक्ष्मतरप्रकृतिपरमाण्वादेरव्यक्तादप्यतिशयितं सूक्ष्मतमंसूक्ष्मत्वस्य काष्ठां प्राप्तं कलिलस्यागाधस्यानन्तस्य गहनस्य मोहावृतस्य जगतो मध्ये निरञ्जनतयावस्थितमतएव विश्वस्य सर्वस्य स्रष्टारमनेकरूपंत्तत्तद्रूपेण तत्र व्याप्तं विश्वस्यैकमेव परिवेष्टितारमनन्तं शिवमानन्दमयं परमात्मानं ज्ञात्वा ऽत्यन्तं शान्तिमेति ॥

भा०—निरतिशयसूक्ष्मत्वानन्तत्वनिर्विकारित्वादिकारणादेव कल्मषागारे जगति सर्ववस्तुषु वर्त्तमानः सर्वस्य स्रष्टा सन्नपि परमेश्वरो वस्तुदोषैर्न लिप्यते तस्मादेव तस्य निरतिशयशान्तस्य ज्ञानं जीवस्यात्यन्तशान्तिप्राप्तेः कारणं विज्ञेयम्

भाषार्थः—(सूक्ष्माति सूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये) सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म प्रकृति परमाण्वादि नामक अव्यक्त से भी परे (बारीकी की हद्द को पहुँचे) मोहरूप अगाध अनन्त अविद्या से ढपे महाभयङ्कर संसार समुद्र के बीच में वर्त्तमान निष्कलङ्क (वेदांग) रूप से अवस्थित इसी कारण (विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्) सबके उत्पादक तथा उसी २ के रूप से उस २ में व्याप्त (विश्वस्य परिवेष्टितारमेकं शिवं ज्ञात्वा) सब संसार को अपने भीतर रखने वाले एक ही आनन्द स्वरूप ईश्वर को जान कर (अत्यन्तं शान्तिमेति) जीव अत्यन्त शान्ति को प्राप्त हो जाता है

भा०—सूक्ष्मता अनन्तता और निर्विकारीपन के असीम होने से ही पापों के आधार जगत् में तथा जगत् के प्रत्येक पदार्थों में वर्त्तमान रहता और सबको उत्पन्न करता हुआ भी ईश्वर संसार

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के दोषों से दूषित नहीं होता इसी कारण उस सर्वोपरि अत्यन्त शान्तस्वरूप का जानना जीव को अत्यन्त शान्ति प्राप्त होने का कारण जानो ॥ ४१ ॥

स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः । यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्यु-पाशांश्छिनत्ति ॥ १५ ॥

अ०—स एव स्थितिकाले भुवनस्य चराचरस्य गोप्ता रक्षिता विश्वस्याधिपः स्वामी ब्रह्मादिस्थावरावधि सर्वभूतेषु गूढोऽदृश्योऽवस्थितो ब्रह्मर्षयो ब्रह्मत्वप्रधाना ज्ञानिनो देवता राजर्षयः क्षत्रत्वप्रधानास्तापसा यस्मिन् युक्ता संगच्छन्ते यमाप्नुवन्ति तमेवंभूतं ज्ञात्वा जीवो मृत्युपाशान् छिनत्ति

भा०—अग्नौ शीतनिवारणपाचनादिशक्तिरस्तीति ज्ञात्वैव तथा कुर्वाणस्तत्फलं लभते । एवमीश्वरं तत्तच्छक्तिमन्तं ज्ञात्वैव जीवो मरणादिजन्यापरिमितदुःखान्मुक्तो भवितुं शक्नोति ॥ १५ ॥

भाषार्थः—(स एव काले भुवनस्य गोप्ता) वही संसार के स्थितिकाल में सब चराचर का रक्षक (विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः) सबका स्वामी ब्रह्मादि स्थावर पर्यन्त सब में अदृश्य हो के अवस्थित (ब्रह्मर्षयो देवताश्च यस्मिन् युक्ताः) तपस्वी ज्ञानी ब्राह्मण और वैसे ही क्षत्रिय राजर्षि समाधि द्वारा जिसमें युक्त होते जिससे मेल करते जिसको प्राप्त होते हैं (तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति)

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको ऐसा ही जानकर जीव मृत्यु की फांसियों को काट डालता है॥

भा०—शीत निवारण और पकाने आदि की शक्ति अग्नि में है ऐसा जान कर ही उपाय करता हुआ पुरुष उस २ फल को जैसे प्राप्त कर पाता है इसी प्रकार ईश्वर को वैसी २ शक्तिवाला जान कर ही जीव मरने आदि में होनेवाले अपरिमित दुःख से छूट सकता है॥ १५॥

घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥१६॥

अ०—प्रतपनानन्तरं ग्रीष्मादिकाले घृतस्योपरि यत्सारूपं मण्डमतिसूक्ष्मं दृश्यते। तद्वत्साराणामपि सारं सर्वेषु जायमानेषु गूढं सुखमयमेकं विश्वस्य परिवेष्टितारं देवं ज्ञात्वा जीवः सर्वपाशैरखिलदुःखहेतुबन्धनैर्मुच्यते अत्र ज्ञात्वेत्यस्यावृत्तिर्दार्ढ्यार्था ज्ञात्वैव सर्वपाशैर्मुच्यते नान्यथेति॥

भा०—घृतादिसारवस्तूपादानायैव सर्वो लोकस्तदाप्त्या सुखलाभं मन्यमानोऽनिशं यतते। यश्च साराणामप्यसीमः सारस्तं प्रायेण न जानन्ति ये केऽपि कदाचित्तादृशं सारतायाः काष्ठां प्राप्तमीशं कथमपि विदन्ति ते तादृशमेवानन्तं सुखमश्नुवते। अत्र शिवादिपदानां मन्त्रान्तरेषु पुनरावृत्तिस्तत्तदर्थस्य दृढीकरणार्था बोध्या॥ १६॥

भाषार्थः—(घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मम्) तपाये छाने हुए घी के ऊपर पड़नेवाली साररूप अति सूक्ष्म मलाई के तुल्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(सर्वभूतेषु गूढं शिवं ज्ञात्वा) उत्पन्न हुए सब पदार्थों में गुप्त व्याप्त नाम सुखानन्दस्वरूप (विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं देवं ज्ञात्वा) और सब ब्रह्माण्ड के चारों ओर होकर सबको अपने भीतर रखनेवाले देव को जान कर ही (सर्वपाशैः) दुःख के सम्पूर्ण बन्धनों से छूट जाता है। यहां ज्ञात्वा पद दृढ़ता के लिये दो बार है कि जान के ही मोह की फांसों से छूट सकता है अन्यथा नहीं ॥

भा०—घृतादि वा चांदी सुवर्णादि सार वस्तुओं का ग्रहण करने के लिये ही सब लोग उसकी प्राप्ति से सुख मानते हुए सदा उपाय करते हैं परन्तु जो सारों का भी सार, सारपन की जिसमें हद्द है उसको प्रायः लोग नहीं जानते और जो कोई जब कभी जिस किसी प्रकार उस सारपन की अन्तिम दशा ईश्वर को जान लेते हैं वे उसकी अपेक्षा अन्य असार वस्तुओं का त्याग कर वैसे ही असीम सुखको प्राप्त हो जाते हैं। इस ग्रन्थ के अनेक मन्त्रों में कई बार कहे (सर्वभूतेषु गूढ़म्) इत्यादि पद उस २ अभिप्राय को दृढ़ करने के लिये हैं ॥ १६ ॥

एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः। हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥ १७ ॥

अ०—विश्वं सर्वं महदादि कार्यं कर्मास्य विश्वकर्मा महांश्चासावात्मा सर्वव्यापी जनानां हृदये सदा संनिविष्टो मनीषा बुद्धिरूपेण सूक्ष्मातिशुद्धहृदयस्थमननरूपज्ञानेनाभिक्लृप्तोऽभि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्यज्यमान एष प्रकृतो देवोऽस्ति य एतद्विदुस्तेऽमृता भुक्ता भवन्ति। अत्र मनीषेति तृतीयैकवचनविभक्तेः सुपामित्याकारादेशः।

भा०—सर्वोत्पादकः सर्वान्तर्यामी सर्वसुखहेतुरीश्वरोऽस्मदन्तःकरण एव सदाऽवस्थित इति मत्वा विविक्तावकाशे निरुद्धैकाग्रचेतसा ये तं ज्ञातुं यतन्ते ते तद्बोधेन दुःखान्मुच्यन्ते १७

भाषार्थः—(विश्वकर्मा महात्मा जनानां हृदये सदा संनिविष्टः) महदादि सब कार्य जगत् को रचनेवाला सर्वत्र व्यापक मनुष्यों के हृदय में सदाही विद्यमान (मनीषा हृदा मनसाऽभिक्लृप्तः) सूक्ष्म अतिशुद्ध हृदयस्थ मननरूप बुद्धि वा ज्ञान से प्रकट ज्ञात होनेवाला (एष देवः) यह प्रकृत देव ईश्वर है (य एतद्विदुस्तेऽमृता भवन्ति) जो ऐसा जानते हैं वे मुक्त हो जाते हैं॥

भा०—सबका उत्पादक सबका अन्तर्यामी सब सुखों का हेतु ईश्वर हमारे अन्तःकरण में ही सदा अवस्थित हैं ऐसा मान कर रोके हुए एकाग्रचित्त प्रदेश में जो लोग उसको जानने का यत्न करते हैं वे उस ईश्वर को जानकर शान्ति को प्राप्त होकर दुःख से छूट जाते हैं॥ १७॥

यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासच्छिव एव केवलः। तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी॥ १८॥

अ०—यदा निर्बीजासंप्रज्ञातसमाधिकाले तमःकार्याविद्यादिक्लेशजन्यदुर्निवार्यसूक्ष्मवासनानामप्यभावस्तत्तदा न दिवा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिनमिति, न च रात्रिरिति, न च जगत्सद् विद्यतइति, न च म-च्छरीरं मदीयः पदार्था वा न सन्ति सर्वाभावइति, कोपि चेतो-वृत्तिरूपः प्रत्ययो न भवत्यपि तु स्वरूपशून्येनेव ध्येयाकारनि-र्भासेन तत्स्थतदञ्जनतायाः समापत्तेः पराकाष्ठां प्राप्तेन तेन कल्याणमय एकः परमात्मैव दृश्यते नान्यः कोऽपीति। तच्चा-त्मतत्त्वमक्षरं स्वभावेनैवाविनश्वरं सवितुरुदयकालीनसूर्या-दप्याधिक्येन शोभमानं प्रकाशमयं तस्यापि कारणत्वात्। तस्मादेव च पुराणी सनातनी प्रज्ञा प्रकृष्टसर्वोत्तमज्ञानसाधिका वेदवाणी शैलान्नदीवज्जगति प्रसृता॥

भा०—"समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्"। तद्वाचा वक्तुं न केनापि शक्यतेऽतस्तादृशा-लौकिकाद्भुतसर्वोत्कृष्टसुखानुभवाय योगसमाधिमन्तरेण ना न्यः कोऽप्युपाय इति मत्वा योगाभ्यासस्तल्लिप्सुना प्रयत्ना-त्कार्य इति॥ १८॥

भाषार्थः—(यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिः) जब निर्बीज वा असंप्रज्ञात नामक समाधिस्थ हो जाने के समय तमोगुण के कार्य अविद्यादि क्लेश तथा अति कठिनता से निवृत्त होनेवाली अविद्यादि की सूक्ष्म वासनाओं का भी अभाव हो जाता है तब न दिन है ऐसा कह सकते न रात्रि (न सन्न चासच्छिव एव केवलः) जगत् विद्यमान है ऐसा भी नहीं कहा जाता तथा मेरा शरीर वा मेरे पदार्थ तथा अन्य मनुष्यादि नहीं हैं ऐसा भी भान नहीं होता किन्तु किसी प्रकार की भी चित्त की वृत्ति उस समय नहीं होती

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने स्वरूप से शून्य से हुए, केवल ध्येय के आकार में लगे हुए, उसी की ओर झुकावट और तन्मय होना रूप समापत्ति की अन्तिम सीमा को प्राप्त जीवात्मा को कल्याणमय एक परमात्मा ही दीखने लगता है अन्य कोई नहीं (तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यम्) वह आत्मतत्त्व स्वभाव से ही अविनाशी उदय काल के सूर्य से भी अधिक शुद्ध प्रकाशस्वरूप तेजोमय है क्योंकि वह सूर्यादि प्रकाशों का भी प्रकाशक है (तस्मात्पुराणी प्रज्ञा प्रसृता) उसी ईश्वर से सर्वोत्तम ज्ञान की हेतु सनातन वेदवाणी पर्वत से निकल के नदी के समान जगत् में फैली है ॥

भा०—"समाधिद्वारा धोकर शुद्ध किये चित्त को परमात्मा में लगाने से जो सुख होता वह वाणी से कहने में नहीं आता" इससे इस अन्य उपनिषद् में कहे अनुसार वैसे अलौकिक सर्वोत्तम अद्भुत सुख का अनुभव करने के लिये योगसमाधिको छोड़के अन्य कोई उपाय नहीं है ऐसा मानकर उस आनन्द का स्वाद चाहने वाला पुरुष प्रयत्न के साथ योगाभ्यास का अधिमात्रतीव्रसंवेग उपाय करे ॥ १८ ॥

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत् । न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ॥ १९ ॥

अ०—एनमुक्तं सर्वस्माद्वरेण्यं परमात्मानमपरिच्छिन्ननिरंशनिरवयत्वादिनोर्ध्वं मध्ये तिर्यञ्चं वा न कोऽपि परिजग्रभत्परिग्रहीतुं शक्नोति । न केनापि हस्ताद्यवयवेन स गृह्यते ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यस्यैकस्याखिलदिग्देशकालेष्वपरिच्छिन्नं यशोऽस्ति। सर्व-दिग्देशकालेषु य एक एवेश्वरः कैरपि स्वस्वभाषानामभिर्गीयते तस्य प्रतिमा स्थूला कापि प्रतिकृतिर्नास्ति ययेदृश इति केनापि निर्दिश्येत ॥

भा०—स्थूलवस्तुवदीश्वरः क्वापि केनापि लब्धुं शक्यत इत्ययं मानसः संकल्पो मनुष्येण त्यक्तव्यो न ह्येतेन विरुद्धनिश्च-येन प्राप्तुं शक्यते। यमीप्सति तस्य स्वरूपस्वभावगुणादीना-मुपायस्य च बोध एव तल्लाभे सुगमोपाय इति ॥१९॥

भाषार्थः—(नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये परिजग्रभत्) अंश तथा अवयवों से रहित होने से अपरिच्छिन्न सबसे उत्तम पर-मात्मा को ऊपर नीचे वा बीच में कहीं भी कोई हाथ आदि से पकड़ नहीं सकता (यस्य नाम महद्यशः) जिस एक ईश्वर का सब दिशा देश और कालों में नाम के प्रचार द्वारा यश फैला है अर्थात् सब दिशों देशों और कालों में अपनी २ भाषा के किन्हीं २ नामों द्वारा सब मनुष्य तीनों काल में अपने कल्याणार्थ एक ही ईश्वर को पुकारते गाते हैं (तस्य प्रतिमा नास्ति) उसकी कोई स्थूल प्रतिमा प्रतिकृति (तस्वीर-फोटो) नहीं है जिसके द्वारा जताया जाय कि ईश्वर ऐसा है॥

भा०—स्थूल वस्तु के तुल्य कहीं कोई ईश्वर को प्राप्त कर सकता है ऐसा मन का संकल्प मनुष्य को छोड़ देना चाहिये क्योंकि ऐसे विरुद्ध असम्भव निश्चय से उसकी प्राप्ति कभी भी नहीं हो सकती। मनुष्य जिसको प्राप्त होना वा मिलना चाहता है उस

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के स्वरूप स्वभाव गुणादि तथा उसके मिलने का उपाय वा मार्ग जानना सबसे पहिले आवश्यक है। यही उसके मिलने का सुगम उपाय है ॥ १९ ॥

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्। हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति २०

अ०—अस्य प्रकृतेश्वरस्य रूपं संदृशे मनुष्याणां समक्षे दृग्गोचरे न कदापि क्वापि तिष्ठति। अतएव कश्चन कोप्येनं चक्षुषा न साक्षात्पश्यति। किन्तु हृदा हृदयस्थेनाविषयासक्तेन स्वरूपावस्थेनैकाग्रेण मनसा सूक्ष्मशुद्धविचारेण हृदिस्थमेव य एनं ज्ञातुं प्रवर्त्तते स एव पश्यति साक्षात्करोति। एवं ये तां विदुर्जानन्ति तेऽमृतामरणादिजन्यापारदुःखरहिताः प्राप्तमुक्तदशा भवन्ति ॥

भा०—यस्माच्चक्षुरादिगम्यः स नास्ति तस्मात्तादृशोपायेन तदीप्सां विहाय सूक्ष्मशुद्धैकाग्र-ऋतम्भरप्रज्ञया स ज्ञातुं शक्य इत्युपायः कार्यः ॥ २० ॥

भाषार्थः—(अस्य रूपं संदृशे न तिष्ठति) इस प्रकृत ईश्वर का रूप गुण मनुष्यों के सामने कहीं कभी नहीं ठहरता। इसी से (एनं कश्चन चक्षुषा न पश्यति) इसको कोई पुरुष आंख से साक्षात् नहीं देख सकता किन्तु (हृदा मनसा हृदिस्थं य एनम्) विषयों की ओर न झुके वा फँसे, स्वरूप में अवस्थित, एकाग्र, शुद्ध सूक्ष्म विचार से अपने हृदय में ही स्थित इस ईश्वर को

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानने के लिये जो चेष्टा करता है वही उसको साक्षात् देख पाता है। (एवं विदुस्तेऽमृता भवन्ति) जो लोग इस उक्त प्रकार से उसको जान लेते वे मरणादि के अपार दुःख से छूट जाते हैं॥

भा०—जिस कारण चक्षु आदि से प्राप्त होने योग्य वह नहीं है इस कारण वैसे उपाय द्वारा उसको प्राप्त होने की इच्छा को छोड़ कर सूक्ष्म शुद्ध ऋतम्भरानामक एकाग्र बुद्धि से वह जाना जा सकता है ऐसा ही उपाय कर्त्तव्य है॥ २०॥

अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रतिपद्यते। रुद्र! यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्॥ २१॥

अ०—ईश्वरप्रसादादेवेष्टप्राप्तिरनिष्टहानं सुकरमिति मत्वा मन्त्रद्वयेन प्रार्थनोच्यते—हे रुद्र! सर्वेषां शास्तः! इति यस्मात्त्वमजातो न जायसे तत्सहचरितदुःखव्याधिजराक्षुत्पिपासादिभिश्च न युज्यसे तस्मादेवं मत्वा कश्चिद्भीरुः संसारार्णवमज्जनभयाद्भीतस्त्वां प्रतिपद्यते तारकस्य तव शरणं गच्छति न सर्वः। अतो हे रुद्र! यत्ते तव दक्षिणं प्रधानमाभिमुख्यं कृपाकटाक्षेण स्वभक्तान्वीक्षणं तेन मां मुमुक्षुं जिज्ञासुं नित्यं सर्वदा पाहि पालयेति प्रार्थये॥

भा०—लोके धनाद्यैश्वर्येण स्वतउत्कृष्टं सुखं भुञ्जानान् दृष्ट्वैव ज्ञात्वैव वोत्कृष्टसुखाप्तये जनाः प्रयतन्ते तथैवेहापि सर्वदुःखाद्विमुक्तस्य प्रार्थनोपासनाश्रय एव दुःखान्मुक्तेः प्रधानं कारणं न हि कोऽपि दुःखालयश्रितो लोकेऽपि सुखमाप्तुमर्हति २१

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषार्थः—अब ईश्वर की कृपा वा प्रसन्नता से ही इष्ट सुखकी प्राप्ति और अनिष्ट की हानि सुगमता से हो सकती है ऐसा मान कर दो मन्त्रों से प्रार्थना कही गयी है (रुद्र ! अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रतिपद्यते) हे सब के शासक ईश्वर ! जिस कारण तुम जन्म लेकर व्याधि जरा क्षुधा पिपासा और मरणादि के दुःखों म नहीं पड़ते सदा शुद्ध एकरस रहते हो इस कारण तुमका ऐसा ही जान वा मान के संसारसागर में डूबने वा गोताखाने से डरा हुआ कोई मनुष्य तुमको प्राप्त हो पाता है अर्थात् पार करने वाले तुम्हारे शरण में जाता है किन्तु सब नहीं। इससे हे ईश्वर ! (यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां नित्यं पाहि) जो तुम्हारी भक्त की ओर प्रधान कृपादृष्टि है उससे मुझ जिज्ञासु मुमुक्षु की नित्य सदा ही रक्षा करो यही प्रार्थना करता हूँ ॥

भा०—संसारी मनुष्य लोक में धनादि ऐश्वर्य के अधिक होने से अपनी अपेक्षा उत्तम सुख भोगनेवाले मनुष्यों को सुन देख वा जान कर ही उत्तम सुख प्राप्ति के लिये धनादि के उपार्जन में श्रम करते हैं। वैसे ही यहाँ भी सब दुःखों से मुक्त ईश्वर की प्रार्थना उपासना का आश्रय लेना ही दुःख से मुक्त होने का प्रधान कारण है। क्योंकि जगत् में भी कोई दुःख के स्थान में रहता हुआ सुख प्राप्त नहीं कर पाता ॥ २१ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषुरीरिषः। वीरान्मा नो रुद्र ! भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ २२ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—हेरुद्र ! सर्वत्र सीदसि तिष्ठसि। सदः पचाद्यच्। तादृशं सर्ववस्तुष्ववस्थितमेव त्वा त्वां हविष्मन्तो हव्यादि-साधनैर्होमादिकं कुर्वाणा वयं यतो हवामह आह्वयामस्तस्मा-त्त्वं मा नस्तोके पुत्रे, तनये पौत्र,आयुषि, नो गोषु, नोऽश्वेषु च मारीरिषो रोषं क्रोधं मा कुरु तव रोषेण तेषां विनाशो माभूत् तथा भामितः क्रोधितः केनापि कारणेन नो वीरान् पराक्रम-शीलान् भृत्यादीन्मा वधीर्नो हिंसय ॥

भा०—ईश्वरभक्तानां पुत्रादयोऽकाले नैव म्रियन्ते। नास्ति यस्माद् बलिष्ठो, यत्समो वा कश्चित्प्रभुर्नास्ति न तमनादृत्य कोऽपि कमपि मारयितुं प्रभवति। अतएवोक्तम्—मृत्युर्धावति पञ्चम इति। प्रधानमृत्युदुःखवारणप्रार्थनेऽन्यान्यल्पानि दुःखा-न्युपलक्षणेन तदन्तर्भूतत्वादेव दूरीभवितुमर्हन्ति। दुःखस्या-निष्टस्य हानमेव प्राधान्येनेष्टावाप्तिर्बोध्या। ज्ञानेन मरणादि-भयनिवृत्तिरेव प्रार्थनायाः प्रधानं प्रयोजनमल्पायुषि पुत्रादीनां मरणं न स्यादिति तु गौणं प्रार्थनाफलं बोध्यम्। अयं चान्तिमो मन्त्रो यजुषि अ० १६ षोडशे पठितः ॥ २२ ॥

भाषार्थः—(रुद्र सदमित्त्वा हविष्मन्तो हवामहे) हे रुद्र ! सब वस्तुओं में व्यापक अवस्थित ईश्वर ! तुमको हविष्यादि साधनों से होम करते हुए हम लोग जिस कारण बुलाते पुकारते स्तुति प्रार्थना करते हैं तिससे तुम (मा नस्तोके तनये मा न आयुषि) हमारे पुत्र पौत्र और हमारे स्वयं जीवन में (मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः) हमारी गौओं तथा हमारे घोड़ों में रिष—क्रोध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत्त करो। तुम्हारे रोष—क्रोध से हमारे पुत्रादि का नाश न हो जावे (भामितो मा नो वीरान् वधीः) किसी कारण से क्रोधित हुए हमारे पराक्रमशील भृत्यादि की हिंसा न कीजिये॥

भा०—ईश्वर के भक्त पुरुषों के पुत्रादि अकाल में नहीं मरते। जिससे अधिक बलवान् वा जिसके तुल्य कोई स्वामी नहीं है उसकी इच्छा के विना उसका अनादर करके कोई किसी को मार नहीं सकता। इसी लिये कठोपनिषद् में कहा है कि "ईश्वर जहाँ नहीं चाहता वहां से पांचवां मृत्यु भी भागता है" सब से मुख्य मरण दुःख निवारण की प्रार्थना में उपलक्षण से उसके अन्तर्गत होने वाले अन्य छोटे २ सब दुःख दूर हो सकते हैं और अनिष्ट दुःख का छूटना ही मुख्य कर इष्ट की प्राप्ति हुई जानो। और ज्ञान के द्वारा मृत्यु आदि का भय छूटना ही मुख्य कर प्रार्थना का प्रयोजन है तथा पूर्णायु हुए विना बीच में पुत्रादि न मरें यह भी प्रार्थना का गौण प्रयोजन है। यह बाईसवां मन्त्र यजुर्वेद के अ० १६ में १६ वां मंत्र है।

इति भीमसेनशर्मनिर्मिते श्वेताश्वतरोपनिषद्-
भाष्ये चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ पञ्चमाध्यायारम्भः।

द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याऽविद्ये निहिते यत्र गूढे। क्षरन्त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः॥ १॥

अ०—यत्र यस्मिन्नक्षरेऽविनश्वरे निरतिशये परमात्मनि, ब्रह्म परमात्मतत्त्वं परं याभ्यां प्रवाहेण जगत अनादित्वान्नास्त्यन्तोऽवसानं ययोस्ते तादृश्यौ द्वे विद्याऽविद्ये निहिते अवस्थिते गूढे अनभिव्यक्ते सूक्ष्मत्वाददृश्ये वर्त्तेते। तयोः क्षरं कल्याणमार्गाच्च्युतिहेतुरविद्याऽमृतं सर्वविधदुःखान्मुक्तिहेतुर्विद्याऽस्ति। यस्तु विद्याऽविद्ये ईशते नियमयति स निरतिशयशक्तिः सर्वज्ञः परेशस्ताभ्यामन्यः॥

भा०—यो जनोऽविद्यादिक्लेशान्सर्वानर्थहेतुं त्यक्त्वा ज्ञानप्लवेन संसारसागरं तरीतुं सर्वदुःखाद्विमुक्तिं चेच्छति। तेन विद्याऽविद्ययोः स्वाम्येवाश्रयितव्यः। न हि सर्वशक्तिस्वाम्याश्रयेण विना तदीयवस्तुनो हानमुपादानं वा कोऽपि कर्तुमर्हति॥ १॥

भाषार्थः—(यत्राक्षरे) जिस निरतिशय अविनाशी पर-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मात्मा में (ब्रह्मपरे त्वन्ते विद्याऽविद्ये निहिते गूढे) परमात्मा रूप तत्त्व जिनसे परे है ऐसी प्रवाह से जगत् के अनादि होने पर जिनका अन्त नाम समाप्ति नहीं किन्तु सदा जिनका तार चला जाता है ऐसी दो विद्या और अविद्या नाम ठीक समझना और उलटा समझना दोनों सूक्ष्मरूप से अवस्थित अदृश्य हुई वर्त्तमान हैं (क्षरन्त्वविद्या ह्यमृतन्तु विद्या) उन दोनों में से कल्याण मार्ग से अलग करने अर्थात् भुलानेवाली अविद्या कहलाती और मरणादि सम्बन्धी महादुःखदायी भयों से बचाने वा सब दुःखों से छुड़ाने वाली विद्या कहलाती है (यस्तु विद्याऽविद्ये ईशते सोऽन्यः) और जो विद्या अविद्या की व्यवस्था वा नियमकर्त्ता जिसके नियम से विरुद्ध विद्या अविद्या कुछ भी नहीं कर सकतीं जिस पर उसकी कृपा होती उसको विद्या और जिसपर कोप होता उसीको अविद्या घेरती है वह अत्यन्त शक्तिवाला सर्वज्ञ ईश्वर विद्या अविद्या दोनों से भिन्न तीसरा है ॥

भा०—जो मनुष्य सब अनर्थों के हेतु अविद्यादि क्लेशों को छुड़ा के ज्ञान वा विद्यारूप नौका के द्वारा संसाररूप समुद्र के पार होना वा सब दुःखों से छूटना चाहता है उसको उचित है कि विद्या तथा अविद्या के स्वामी का ही शरण लेवे। क्योंकि सर्वशक्तिमान् स्वामी का सहारा लिये विना उसके वस्तु को छोड़ वा ग्रहण कोई भी नहीं कर सकता। जैसे कि राजा की आज्ञा पाकर वा इशारा-मात्र पाकर राजकर्मचारी किसी को पकड़ते वा छोड़ते हैं वैसे ही कर्मानुसार मनुष्यादि को अविद्या पकड़ती वा छोड़ती है ॥ १ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः । ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्त्ति जायमानं च पश्येत् ॥ २ ॥

अ०—योऽग्रे मैथुनसर्गात्पूर्वसर्गारम्भे कपिलं कपिलवर्णं शुद्धं सात्त्विकं तैजसवर्णप्रधानाकृतिमृषिं ज्ञानाधारत्वयोग्यं स्वेनैव प्रसूतमुत्पादितं तं ज्ञानैर्वेदसंस्कारैर्बिभर्त्ति पुष्णाति । जायमानं ज्ञानादिशुभगुणोत्कर्षैर्लब्धोच्चप्रतिष्ठं च पश्येत्पश्यति तदुपरि कृपादृष्टिं करोति यश्च योनिं योनिं पृथिव्यादिकं स्थानंस्थानं विश्वानि रूपाणि सर्वान् रूपादिगुणान्सर्वा योनीश्च सर्वाणि प्रभवकारणानि चाधितिष्ठति नियमयति स कपिलादिभ्योऽन्य इति पूर्वेणान्वयः ॥

भा०—ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूवेत्यन्यत्रोक्तम् । यो हि सदा सर्वप्राणभृत्सु प्रथमो मुख्यः सर्वोपरि वेदादिशास्त्रस्य गूढाशयं वेत्ति सर्वापेक्षया प्रशस्ततमो धार्मिको ज्ञानी च भवति स तदा ब्रह्मेत्युच्यते । न हि ब्रह्माणमन्तरेण प्राणभृत्स्वन्यः कोऽपि तत्समस्ततोऽधिको वा सम्भवति । अत एव ब्रह्मादिंस्थावरान्ता जीवगतिः सर्वैर्मन्यते । न च तादृशः कोऽपि जनः परमात्मकृपामन्तरेण सिद्धः सम्भवति । तस्माद्यस्य कृपया ब्रह्मादयोऽपि महत्त्वमाप्नुवन्ति स एवास्माभिराश्रयितव्य इति ग्रन्थकृदाशयः ॥ २ ॥

भाषार्थः—(योऽग्रे कपिलं प्रसूतम्) जो मैथुनसृष्टि से

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्व सृष्टि के आरम्भ में तैजसतत्त्व प्रधान शुद्ध सत्त्वगुणी तेजस्वी ज्ञानी होने योग्य अपने आप ही उत्पन्न किये उस ऋषि नाम ब्रह्मा को (ज्ञानैर्बिभर्त्ति जायमानं च पश्येत्) वेद के संस्कार रूप ज्ञानों से पुष्ट करता और प्रसिद्ध प्रकट हुए उस ब्रह्मा पर कृपादृष्टि करता वा रखता है (य एको योनिं योनिमधितिष्ठति) और जो एक ही ईश्वर प्रत्येक पृथिव्यादि कार्य स्थान २ का (विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः) सब रूपादि गुणों तथा जिनसे स्थूल कार्य वस्तु उत्पन्न होते उन सब सूक्ष्म कारण तत्त्वों का अधिष्ठाता नियन्ता होता वह कपिलादि से भी अन्य नाम भिन्न है ॥

भा०—"सब देवता नाम उत्तम कोटि के मनुष्यादि प्राणियों में भी जो मुख्य बड़ा ज्ञानी हो वह ब्रह्मा कहाता है" यह मुण्डको पनिषद् में कहा है। जो पुरुष जब मनुष्यादि प्राणियों में वेदादि शास्त्र के आशय को सर्वोपरि जाननेवाला सब की अपेक्षा अधिक प्रशस्त धर्मात्मा और ज्ञानी होता वह उस समय ब्रह्मा कहाता है। एक ईश्वर से नीचे सब जगत्स्थ प्राणियों में सर्वोपरि को ब्रह्मा कहते हैं ब्रह्मा से भिन्न प्राणियों में अन्य कोई उत्तम वा अधिक नहीं हो सकता। इसी लिये ब्रह्मा से लेकर स्थावर पर्यन्त जीव की गति सब शास्त्रकार मानते हैं। परमात्मा की कृपा के बिना कोई मनुष्यादि प्राणी वैसे ब्रह्मापन के अधिकार को प्राप्त नहीं कर सकता इस कारण जिसकी कृपा से ब्रह्मादि भी महत्त्व को प्राप्त होते हैं उसी का आश्रय हम लोगों को करना चाहिये यह ग्रन्थकार का आशय है ॥ २ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥३॥

अ० एष उक्तो देव ईश्वरो मनुष्यपशुपक्ष्यादिरूपमेकैकं जालमेकैकं जातिभेदं जीवस्य बन्धहेतुत्वान्मत्स्यादिबन्धकं जालमिव बहुधा नानाप्रकारमेकैकां नानाभेदभिन्नां जातिं विकुर्वन् विशेषेण निर्मिमाण एतस्मिन् क्षेत्रे पञ्चतत्त्वमये ब्रह्माण्डे संहरति नाशयति। मुहुर्मुहुरुत्पादयति नाशयति च। ईशो भूयः पुनरपि तथा तथैव मध्ये मध्ये पतयो पतीन् (सुपो व्यत्ययः) लोकव्यवस्थायै यत्नशीलान् धर्मव्यवस्थापकान् मर्यादापुरुषोत्तममान्राजर्षीन् ब्रह्मर्षींश्च सृष्ट्वोत्पाद्य संहरतीति पूर्वेणान्वयः। एवं महात्मा निरतिशयात्मत्वविशिष्टः परेशः सर्वस्य सर्गस्थितिलयान्कुर्वन् सर्वाधिपत्यं कुरुते ॥

भा०—संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्ययः। मन्वन्तराण्यसंख्यानि सर्गः संहार एव च। क्रीडन्निवैततकुरुते परमेष्ठी पुनःपुनः ॥ इति मनुस्मृतौ—तथा "सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।" इत्यादि वेदे यदुक्तं यस्यैवायमाशयः। योहि लोकेऽपि येषां यादृशएवाधिपतिर्भवति। यश्च यस्य सर्गप्रतिसर्गौ करोति नच कोपि तथा कुर्वन्तं व्याहर्तुमर्हति स मुख्योऽध्यक्षः ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(एष देव एकैकं जालं बहुधा विकुर्वन्) यह पूर्वोक्त देव नाम प्रकाश स्वरूप ईश्वर जीवों के बन्धन (कैद होने पकड़ जाने के हेतु होने से मछली आदि को पकड़ने के जाल के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समान) के हेतु मनुष्य पशु पक्षी आदि एक २ जाति भेद को नाना भेदोंवाला विशेष कर बनाते हुए (ईश्वरने मनुष्यादि एक २ जाति में असंख्य अवान्तर जाति भेद कर्मानुसार किये हैं) (अस्मिन् क्षेत्रे संहरति) पञ्चतत्त्वमय इस ब्रह्माण्डरूप खेत में लीन करता जोता है [जो २ शरीरादि जिस २ पृथिव्यादि से उत्पन्न होते वे मर २ कर सदा उसी २ अपने कारण तत्त्व में लीन होते जाते हैं] अर्थात् वार २ उत्पन्न और नष्ट करता जाता है (ईशो भूयस्तथा यतयः सृष्ट्वा) ईश्वर फिर २ वैसे पूर्व कहे साधारणों की रचना के समान ही बीच २ में लोक की व्यवस्था करने के लिये धर्म की व्यवस्था बांधनेवाले विशेष उद्योगी यत्नशील साहसी मर्यादापुरुषोत्तम राजर्षि वा ब्रह्मर्षियों को उत्पन्न करके उनका भी संहार किया करता है [जैसे महाराजा राजर्षि रामचन्द्र जी आदि हुए] इस प्रकार (महात्मा सर्वाधिपत्यं कुरुते) निरतिशय आत्मिकशक्ति वाला परमेश्वर सब बडे २ पराक्रमियों की भी उत्पत्ति स्थिति लय करता हुआ-बड़ों से भी बड़ों को अपने चक्र में घुमाता हुआ सब का स्वामी बनता है ॥

भा०—मनुस्मृति में कहा है कि " अविनाशी ईश्वर सब को वार २ उत्पन्न और नष्ट करता है तथा अपने आप एक ही दशा में ठहरा हुआ खेल करने के समान असंख्य मन्वन्तरों में असंख्यबार सृष्टि और लय किया करता है " तथा वेद में कहा है कि "धाता ईश्वर सूर्य चन्द्रमादि बड़े २ शक्तिधारी वा कार्यसाधक पदार्थों को भी पूर्व कल्पों के समान ही बनाया करता है" इत्यादि

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का अभिप्राय यहां कहा जाना। लोक में भी जो पुरुष जिनका जैसा बिगाड़ बनाव कर सकता है वह वैसा ही उनका अधिपति होता और जिस की उत्पत्ति प्रलय नियमानुसार जो करता और वैसा करते हुए उसके काम में कोई विघ्न नहीं डाल सकता इसी से वह सबका मुख्य अध्यक्ष यानी स्वामी है॥ ३॥

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान्। एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः॥ ४॥

यद्-उ-अनड्वान् यद्वदनड्वानादित्यः सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च प्रकाशयन् भ्राजते [इवार्थेऽत्र उ] एवं भगवान् सम्भजनीयो वरेण्यो वरणीय एकोऽद्वितीयः स देवो द्योतनशीलः परमात्मा योनिस्वभावात् स्वस्वकारणस्वभावधारिणः पृथिव्यादीन् पदार्थानधितिष्ठति

भा०—यथा सूर्यप्रकाशसाहाय्यमन्तरेण न कस्यापि किमपि कार्यं निष्पद्यते तथैव सर्वत्रावस्थितः सर्वं भ्रामयन् य ईश्वरःसर्वजगद्यात्रा हेतुत्वेनास्य सर्वस्याधिष्ठाता भवति। यथा समीक्षकेन विना ये न किमपि कुर्वन्ति कर्त्तुं वार्हन्ति तथैवेश्वरेण विना न कोपि किमपि कर्त्तुं शक्नाति तस्मात्तस्याधिष्ठातृत्वम्॥ ४॥

भाषार्थः—(यद्वनड्वान् सर्वा दिश उर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते) जैसे सूर्य ऊपर नीचे और बीच में तिरछी सब

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिशा नाम सब ओर के पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ स्वयं प्रकाशित रहता है (एवं भगवान् वरेण्य एकः स देवः) इसी प्रकार भजन सेवन तथा स्वीकार करने योग्य वह एक अद्वितीय देव द्योतनशील परमात्मा (योनिस्वभावानधितिष्ठिति) अपने२ कारण के स्वभाव को धारण करनेवाले पृथिव्यादि पदार्थों का अधिष्ठाता बनता है ॥

भा०—जैसे सूर्य के प्रकाश की सहायता के विना किसी का कुछ काम नहीं चलता वैसे सब में ठहरा सब को भ्रमण कराता हुआ ईश्वर सब संसार के नियमानुसार चलने का हेतु होने से सब का अधिष्ठाता होता है। जैसे समीक्षक के विना जो मनुष्य कुछ नहीं करते वा कर सकते इससे वह उन प्राणियों वा कामों का अधिष्ठाता होता है वैसे यहां भी जानो ॥ ४ ॥

यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद्यः। सर्वमेतद्विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः ॥ ५ ॥

अ०—यो विश्वयोनिः सर्वस्य कार्यस्य प्रधानं कारणमीश्वरो यच्च स्वभावं वाय्वादेर्गतिमत्त्वादिकं पचति साधयति। यच्च पाच्यान् परिणतियोग्यान् पृथिव्यादीन् परिणामयेत्परिणामयति यः सर्वान् सत्त्वरजस्तमोरूपान्सभेदान् गुणांस्तत्रतत्रेन्द्रियादिषु यच्च विनियोजयेद्विनियोजयति तदेतत्स एकः सर्वं विश्वमधितिष्ठति। सर्वस्य पचनं विपरि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

णामनं विनियोजनं च तस्य सर्वाधिष्ठातृत्वम् । यच्चेति क्रियाविशेषणमभ्युपगन्तव्यं सुधीभिः ॥

भा०—लोकेऽपि तस्यतस्याधिष्ठातृत्वं तत्रत्यैः कैरपि कर्मभिरेव यथा निष्पद्यत एवमिह परमात्मवर्णनप्रसङ्गेऽप्यवगन्तव्यम् ॥ ५ ॥

भाषार्थः—(यो विश्वयोनिर्यश्च स्वभावं पचति) जो सब कार्य वस्तुओं का मुख्य कारण ईश्वर वायु में गति अग्नि में उष्णता आदि स्वभाव नाम प्राकृतिक गुणों को जो पकाता सिद्ध करता (पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेत्) अपनी २ दशा बदलने परिणत होने योग्य पृथिव्यादि को उत्पत्ति प्रलयादि में उन २ परिणाम दशा को जो प्राप्त करता (यः सर्वान् गुणांश्च यद्विनियोजयेत्) और जो ईश्वर अपने २ अवान्तर भेदों सहित सत्त्वरजस्तमोरूप सब गुणों को उन २ इन्द्रियादि में जो नियुक्त करता (एकः सर्वमेतद्विश्वमधिष्ठति) वह एक ईश्वर इस सब कार्य कारणरूप ब्रह्माण्ड का अध्यक्ष स्वामी इस प्रकार ठहरता है अर्थात् (एतत्) सबको पकाना सबका परिणाम करना और सबको सब में युक्त करना यही उसका सर्वाधिष्ठाता होना है । मन्त्र में यत् पद क्रिया का विशेषण जानो ॥

भा०—लोक में भी उस २ का अधिष्ठाता उस २ सम्बन्धी किन्ही कर्मों के द्वारा ही जैसे होता है वैसे यहां भी सबको पकाने आदि के द्वारा ईश्वर सर्वाधिष्ठाता होता है ॥ ५ ॥

तद्वेद गुह्योपनिषत्सु गूढं तद्ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम् ।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥६॥

अ०—वेदानां गुह्याउपनिषदो वेदगुह्योपनिषदो वेदाशयं मूलमुपादाय याः प्रोक्तास्तासु वेदगुह्योपनिषत्सु तदात्मतत्त्वं गूढं संवृतं विशिष्टाभ्यासरूपान्वेषणेनोपलभ्यं, तद् ब्रह्मणो वेदस्य योनिं कारणं वेद एव योनिः कारणं प्रमाणमस्य वा तादृशं ब्रह्म सर्ववेदपारगश्चतुर्वेदविदेव वेदते ज्ञातुमर्हति। पूर्वं पूर्वकाले ये देवा ऋषयश्च तद् ब्रह्म वेदं विदुस्ते परमात्मानमपि विदुस्तस्मादेव तन्मयास्तल्लग्नचेतसोऽमृता मरणादिजन्यमहादुःखान्मुक्ता वै मुक्ता एव बभूवुः। तथैवान्यदापि ये वेदं ज्ञात्वा तं जानन्ति ज्ञास्यन्ति वा तेऽपि तादृशा दुःखमुक्ता भवन्ति भविष्यन्ति च ॥

भा०—ये ये जना यथायथा वेदाशयज्ञानसाधनेन परमात्मानं जानन्ति ते तथातथा तन्मया अमृताश्च भवन्ति तावदेव च ब्रह्मत्वमपि तेषुतेषु भवत्येव। यश्च सर्वापेक्षयाऽऽधिक्येन यदा वेदपारगस्तदा स प्राधान्येन ब्रह्मेत्युच्यते। एवं च यौगिकाधिकारेण ब्रह्मणो नित्यत्वमवगन्तव्यम् ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(वेदगुह्योपनिषत्सु तद् गूढम्) वेदों का गुह्य गूढाशय प्रकाशित करनेवाली उपनिषदों में वह आत्मतत्त्व गूढ नाम गुप्त है अर्थात् उपनिषदों का विशेष अभ्यास वार २ सोच विचार रूप मर्म खोजने से प्राप्त हो सकता है (तद् ब्रह्मयोनि ब्रह्मा वेदते) ब्रह्मनाम वेद के उत्पादक प्रकाशक कारण वा वेद ही जिसकी सिद्धि में कारण नाम प्रमाण है ऐसे उस ईश्वर को चारों वेद का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

जाननेवाला वेदपारग ब्रह्मा कहाने योग्य पुरुष जान सकता है
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
अर्थात् जो वेद को जितना वा जैसा जानता है उतना वा वैसा ही न्यूनाधिक वह ईश्वर को जान सकता है। इसीसे पूर्णवेदज्ञ ईश्वर को ठीक २ जान सकता है (पूर्वे ये देवा ऋषयश्च तद्विदुः) पूर्व कालमें जिन २ ऋषि देवताओं ने अर्थात् जिन २ ब्रह्मर्षि राजर्षियों ने वेद को जाना था उन्हीं ने ईश्वर को भी जाना था इसी से (ते तन्मया अमृता वै बभूवुः) वे लोग उसी में लवलीन चित्त लगाने वाले मरणादि सम्बन्धी बड़े २ दुःखों से मुक्त ही हुए। इसी प्रकार अन्य समय में भी वेद को जानकर जो लोग ईश्वर को जानते हैं वा जानेंगे वे भी वैसे ही दुःखों से मुक्त होते हैं और होंगे

भा०—जो २ पुरुष जैसे २ वेदाशय के ज्ञानरूप साधन से परमात्मा को जानते हैं वे वैसे २ तन्मय और मुक्त होते तथा उन २ में उतनाही ब्रह्मापन भी सदा होता है। और जब जो पुरुष अधिकता से सबकी अपेक्षा वेदपारग होता तब वही मुख्य ब्रह्मा कहाता है। इस प्रकार यौगिक अधिकारी ब्रह्मा का नित्यत्व होना जानो (किसी एक निजका नाम ब्रह्मा नहीं है)॥ ६॥

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्त्ता कृतस्य तस्यैव स चोप-
भोक्ता। स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति
स्वकर्मभिः॥ ७॥

अ०-गुणैः सत्त्वादिगुणकार्यैरिन्द्रियैरन्वयः सम्बन्धो यस्य यथा चक्षुषा पश्यति श्रोत्रेण शृणोतीत्यादिः फललाभेच्छया

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मणां कर्त्ता तस्यैव स्वयंकृतस्य संचितस्य भोगोन्मुखस्यो-पभोक्ता स विश्वरूपो नानायोनिषु नानारूपधरः सुखदुःखमो-हात्मकगुणत्रयेण सम्बद्धस्त्रिवर्त्मा देवमनुष्यतिरश्चामुत्तममध्य-माधमा मार्गभेदा अस्येति पञ्चवृत्तिकस्य प्राणस्याधिपश्चैवं भूतो जीवात्मा स्वकृतकर्मभिरेव देहाद्देहान्तरं संचरति गच्छति

भा०—अत्र षड्यष्टकेन जीवस्य स्वरूपस्वभावादिकं परमात्मतो भेदेन स्पष्टतया वर्ण्यते। गुणान्वयत्वादेवैपरीत्यं च परमात्मन्यर्थादेवावगन्तव्यम्। तादृशजीवस्य परमात्मबो-धेन सर्वबन्धनेभ्यो विमुक्तिं वक्ष्यति। यदीश्वराद्भिन्नो जीवो न स्यात्तदा को विमुच्येत किमर्थं च शास्त्राणि स्युः ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(यो गुणान्वयः फलकर्मकर्त्ता) जो सत्त्वादि गुणों के कार्य इन्द्रियों से सम्बन्ध रखनेवाला [जैसे आंख से देखना, कान से सुनना आदि काम है] तथा फल भोग मिलने की इच्छा से कर्म करनेवाला (कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता) स्वयं किये उसी संचित कर्मके प्रारब्धरूप सुख दुःख फलका भोगनेवाला (सविश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा) वह नानाप्रकार की योनियों में नाना-प्रकारके रूप धारण करता, सुख,दुःख और मोह रूप सत्त्वादि तीनों गुण से बँधा तथा देव मनुष्य और तिरछे चलनेवाले पशवादि सम्बन्धी उत्तम मध्यम निकृष्ट तीनों मार्ग जिस के जाने आने के लिये हैं(प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः) तथा पांच भेदोंवाले प्राण का स्वामी ऐसा जीवात्मा अपने किये कर्मों के द्वारा ही एक शरीर छोड़ के शरीरान्तर को जाता ब्रह्मचक्रमें निरन्तर घूमता रहता है॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—इस प्रकरण में छः श्लोकों द्वारा जीव के स्वरूप तथा स्वभावादि का परमात्मा से स्पष्टतया भेद दिखाने के साथ वर्णन करते हैं। जीव को गुणान्वित कहने से गुणान्वयादि से विपरीतता परमात्मा में अर्थापत्ति द्वारा सिद्ध है। ऐसे जीव को परमात्मा के बोध द्वारा सब दुःख बन्धनों से मुक्ति कहेंगे। यदि ईश्वर से भिन्न कोई जीव न होता तो कौन मुक्त होता और किस लिये सब शास्त्र कहे जाते? अर्थात् यही प्रयोजन है॥ ७॥

अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहङ्कारसमन्वितो यः।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव—आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः।८।

योऽङ्गुष्ठमात्रपरिमितहृद्देशेऽवस्थितोरवितुल्यरूपोज्योतिः स्वरूपः संकल्पोहपङ्कारसमन्वितः सङ्कल्पैरहङ्कारेण बुद्धेर्गुणेन सुखदुःखादिभोगरूपेणात्मगुणेन स्वगुणेन चैतन्येन शरीरगुणेन जरामरणादिना वा समन्वितश्चैवाराग्रमात्रः प्रतोदप्रोतलोहशल्याग्रभागमात्रसूक्ष्मपरिमाणोऽपरोऽपि परमात्मतो भिन्नो जीवः सूक्ष्मदर्शिभिर्दृष्टः साक्षात्कृतोऽपि भवति॥

भा०—यदास्य संकल्पादयो निवर्त्तन्ते तदा दुःखान्मुच्यते निःश्रेयसमधिगच्छति। "यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः। अथ मर्त्योऽमृतो भवति" संकल्पादीनां प्राबल्यमेव ब्रह्मचक्रेऽवस्थाप्य भ्रामयति। तस्मात्संकल्पादिसमन्वितत्वप्रदर्शनं तच्छिथिलीभावे मुक्तिप्रदर्शनार्थम्॥ ८॥

भाषार्थः—(योऽङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः) जो अंगूठा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
बराबर हृदयस्थान में रहता तथा सूर्य के तुल्य प्रकाश स्वरूप (संकल्पाहङ्कारसमन्वितो बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव) वस्तुओं की प्राप्ति वा कार्यों की सिद्धि के संकल्प नाम कामनाओं, अहङ्कारों के गुण सुख दुःख भोगरूप बुद्धि के गुण (भोगो बुद्धिः। सुख दुःखादि की प्रतीति का नामही बुद्धि है वही भोग है यह वात्स्यायन का मत है) अपने चैतन्य स्वरूपतादि गुण से वा शरीर के जरामरणादि गुण से समन्वित सम्बद्ध ही रहनेवाला (आराग्रमात्रोऽप्यपरोपि दृष्टः) बैल आदि को हांकने के पैना वा कोड़ा आदि में लगी आरा नाम अरई के सूक्ष्मतर अग्रभाग के समान अतिसूक्ष्म परमात्मा से भिन्न जीवात्मा को सूक्ष्मदर्शियों ने साक्षात् देखा वा जाना है॥

भा०—जब इस के संकल्पादि निवृत्त हो जाते तब दुःखों से छूटता और मुक्ति को प्राप्त होता है। (यदा सर्वे०) इत्यादि कथन द्वारा यही बात कठोपनिषद में स्पष्ट कही है कि जब हृदय में ठहरी हुई कामना छूटती है तभी मुक्त हो सकता है संकल्पादि की प्रबलता ही ब्रह्मचक्र में धरके मनुष्य को भ्रमा रही है। इससे संकल्पादि सम्बन्ध दिखाना उस के शिथिल होने पर मुक्ति होना दिखाने वा जताने के लिये है॥ ८॥

बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्प्यते॥ ९॥

अ०—शतधा छिद्यमानस्य बालाग्रभागस्य य एको भागस्त-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
स्यापि शतधाकल्पितस्य यो भागस्तावत्परिमितो जीवो विज्ञेयः स च जीव आनन्त्यायानन्तभावाय नास्त्यन्तोऽस्य तादृश मोक्षभावाय कल्प्यते ज्ञानयज्ञादिना समर्थः क्रियते ॥

भा०—एतेनातिसूक्ष्मत्वं जीवात्मन उच्यते । नच त्रसरेणुपरिमितस्य बालाग्रभागस्य दशसहस्राणि भागाः केनापि कल्पयितुं शक्यास्तस्माच्छब्दार्थप्राधान्यं विहाय वाक्याशयएव ग्रन्थकर्तुरिष्टः ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च)बाल के अग्रभाग के सौ टुकड़े करने पर हुआ जो एक भाग उस के भी फिर सौ भाग करने पर जो एक भाग (भागो जीवः स विज्ञेयः) उतने परिमाणवाला जीव को जानो (स चानन्त्याय कल्प्यते) वह जीव जिस का अन्त नाम नाश नहीं ऐसे मोक्ष को प्राप्त होने के लिये ज्ञानयज्ञादि द्वारा समर्थ किया जाता वा होता है ॥

भा०—इस कथन से जीवात्मा का अतिसूक्ष्म होना कहा है किन्तु त्रसरेणु के तुल्य परिणामवाले बाल के अग्रभाग के दश हजार टुकड़े हो सकना सम्भव नहीं । इस लिये यहां शब्दार्थ की प्रधानता लेना ग्रन्थकार का इष्ट नहीं किन्तु वाक्य का आशय लेना मात्र अभीष्ट वा उचित है ॥ ९ ॥

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः । यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स युज्यते ॥ १० ॥

अ०—एष जीवात्मा स्वरूपतो नैव स्त्री नैष पुमान् नच-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायं नपुंसकोऽपि तु यद्यत्स्त्रीत्वादिसंबद्धं शरीरमादत्ते तेनतेन स्त्रीत्वादिना स जीवो युज्यते प्रयुज्यते लोके कन्येयं जाता पुत्रो जातो वेति ॥

भा०—जीवात्मनि स्त्रीत्वादेःकिमपि चिह्नं स्वतो नास्ति। अपि तु शरीर एव स्त्रीत्वादिचिह्नानि स्फुटमुपलभ्यन्ते। एवं च पितापुत्रादयः सम्बन्धा अपि शरीरसंयोगादेवात्मनि व्यवहियन्ते। अविद्याग्रस्तैरेवास्माभिः शरीरधर्मा जीवात्मनि शुद्धेऽपि योज्यन्ते। तदेव दुःखस्य प्रधानं कारणम्। तत्त्वज्ञानोदये च मिथ्याज्ञानापाये पुंदेहधारिणा स्त्रीशरीरधारिणा वा प्रत्यगात्मविचाररतेन जीवेन स्त्रीत्वादिरहितं शुद्धं स्वस्य रूपं बुद्ध्वा नानादुःखरहितेन सुखिना भूयते ॥ १० ॥

भाषार्थः—(नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः) यह चक्षु आदि से देखना आदि कर्म करने द्वारा प्रत्यक्ष प्रतीत होता जीवात्मा अपने स्वरूप से न स्त्री न पुरुष और न नपुंसक है किन्तु (यद्यच्छरीरमादत्ते तेनतेन स युज्यते) स्त्रीपन आदि गुण वा चिह्नों से सम्बन्ध रखने वाले जिस २ शरीर को कर्मानुसार धारण करता है उस २ स्त्रीपन आदि के साथ वह जीव लोक में प्रयोग किया जाता है कि यह कन्या हुई, पुत्र हुआ वा नपुंसक [हिजरा-हिजरी] हुआ ॥

भा०—जीवात्मा में स्त्रीपन आदि का कोई चिह्न स्वयं नहीं है किन्तु स्त्रीपन वा पुरुषपन आदि के चिह्न इस शरीर में ही स्पष्ट दीखते हैं। इसी प्रकार पितापुत्रादि के सम्बन्ध [नाते रिश्ते] भी

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
शरीर के संयोग से ही आत्मा में कहे जाते हैं। अविद्या में फंसे हुए ही हम लोग स्वयं शुद्ध भी जीवात्मा में शरीर के गुणों वा धर्मों को लगाते वा मानते हैं यही मुख्य दुःख कारण है। और जब तत्त्वज्ञानरूप विद्यासूर्य का उदय होने से मिथ्याज्ञान का नाश होने पर भीतरी अध्यात्म विचार में तत्पर पुरुषदेहधारी वा स्त्री देहधारी जीवात्मा स्त्रीपन आदि से रहित अपने स्वरूप को शुद्ध जान पाता है तभी नाना प्रकार के अपार दुःखों से रहित हुआ सुखी हो जाता है॥ १०॥

संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रासाम्बुवृष्ट्यात्मविवृद्धजन्म।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसम्प्रपद्यते ११।

अ०—यथा ग्रासाम्बुनोरन्नजलयोर्वृष्ट्या मुखद्वाराऽन्तरा सेचनेन निगलनेनात्मनः शरीरस्य क्रमशो रसरुधिरादिक्रमेणैव विवृद्धजन्मवृद्धिःप्रत्यक्षं जायते। तथैव पूर्वोपात्तदेहपातानन्तरं देही जीवः संचितकर्मजन्यैः सूक्ष्मैः संकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैः स्थानेषु मनुष्यादियोनिषु कर्मानुगानि कर्मानुसारीणि रूपाणि मनुष्याकृत्यादिसम्बद्धानि शरीराण्यनुक्रमेण-अभिसम्प्रपद्यते-ऽभितः सम्यक् प्राप्नोति। सर्वत्रैवायं जीवः पूर्वं संकल्पयति प्रत्यभिज्ञादिना कामयते तदनन्तरमिन्द्रियार्थसंनिकर्षेण स्पृशति ज्ञानेन्द्रियैर्विषयमनुभवति। स्पर्शनपदमत्रोपलक्षणार्थं। तदनन्तरं पश्यति जानाति सुखानुशयिना रागेण रज्यते। दृष्टिरत्र ज्ञानार्थः। तदनन्तरं च विषयं भोक्तुं प्रवर्त्तते तदासक्तो मुह्यति॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—जीवः कर्मानुकूलानि मनुष्यादिशरीराण्यादत्ते यथा कस्यचिज्जीवस्य मानुषदेहेनोपार्जितं बहुविधं नानायोनिषु गमनहेतुकं प्रबलं कर्म तत्रापि यत्कर्म तेष्वाधिक्येन प्रबलं तस्य फलं यत्र भोक्तुं युज्यते तादृशजातौ तावज्जायते तदनन्तरं च यादृशकर्मफलभोगपर्यायस्तादृशजातौ स जायते॥ तथा च द्वादशे मनुनोक्तं संगच्छते "श्वशूकरखरोष्ट्राणां गोजाविमृगपक्षिणाम्। चण्डालपुक्कसानां च ब्रह्महायोनिमृच्छति" ॥ ११ ॥

भाषार्थः—(ग्रासाम्बुवृष्टचात्मविवृद्धजन्म) जैसे अन्न जल खाने से रसरुधिरादि बनने द्वारा क्रमशः शरीर की प्रत्यक्ष वृद्धि होती है वैसेही पहिले धारण किये शरीर के छूटने पर (देहीसंकल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैः) जीवात्मा संचित कर्मों से होनेवाले सूक्ष्म कामना इन्द्रियों की प्रवृत्ति, साक्षात् बाध वा दृष्टिपात और मोह नाम उस २ शरीरादि में आसक्ति फँसजाना तथा अपने को भूलजाना इन सबों के द्वारा (स्थानेषु कर्मानुगानि रूपाणि—अनुक्रमेणाभिसम्प्रपद्यते) मनुष्यादि योनियों के शरीर रूप स्थानों में मनुष्य आदि आकृतियों वा भिन्न २ व्यक्तियों से सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न २ रूपों को कर्मों के क्रमानुसार सम्यक् प्राप्त होता है। यह जीवात्मा सभी कामों में सर्वत्र ही प्रथम प्रत्यभिज्ञादि द्वारा कामना करता, तदनन्तर इन्द्रिय और विषय के संयोग से स्पर्श करता अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों से विषय का अनुभव करता है। स्पर्शन के सब शरीर में व्याप्त होने से उपलक्षणार्थ ग्रहण है। तदनन्तर देखता है जा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नता है अर्थात् सुखानुशयी रागसे रंग जाता है तिसपीछे विषय को भोगने में प्रवृत्त होता उसमें लिप्त हुआ सब भूल जाता यही मोह है॥

भा०—जीवात्मा कर्मानुकूल मनुष्यादि शरीरों को धारण करता है। जैसे किसी जीव के मनुष्यदेह से संचित किये नाना योनियों में जन्म लेने के हेतु बहुत प्रकार के प्रबल कर्म हैं उन में भी जो अधिकता से प्रबल कर्म उस का फल जहां भोगना उचित है वैसी जाति में प्रथम जन्म लेता और उस के अनन्तर जैसे कर्म फल भोग की पारी हो वैसी जाति में वह जन्म लेता है। इसी के अनुसार १२ बारहवें अध्याय में मनुजी का कहना ठीक घटता है कि "कुत्ता, सुअर, गदहा, ऊँट, गौ, बकरी, भेड़, मृग, पक्षी तथा धानुक, भङ्गी आदि योनियों में ब्रह्महत्या करने वाला जीव क्रमशः जन्म लेता है॥ ११॥

स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति। क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः १२

देही जीवः स्वगुणैः स्वकृतकर्मजन्यसंचितसंस्कारैरेव तदनुकूलानि स्थूलानि सूक्ष्माणि च बहूनि रूपाणि मानुषादिनानारूपाणि शरीराणि वृणोति स्वीकरोत्यादत्ते। ततत्क्रियागुणैः पूर्वकृतकर्मगुणैरात्मगुणैर्भौतिकशरीरगुणैश्च सम्बद्धस्तेषां कर्मगुणशरीरगुणानां संयोगस्य हेतुः कारणमपरोऽपि परमात्मतो भिन्नोऽपि जीवो दृष्टः सूक्ष्मदर्शिभिः साक्षात्कृतः। पुनर्वचनं दार्ढ्यार्थम्॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—स्थूलानीत्यादिना पूर्वस्यैव स्पष्टार्थोऽनुवादः । जीवः शरीरेण संयुज्यते कर्मानुकूलानि शरीराणि स्वीकरोति यद्यपि तस्मिन् शरीरसंयोगे परः परमात्मापि प्राधान्येन हेतुरस्ति न हि कोऽपि पराधीनः स्वयमेव करोति यश्च करोति नासौ पराधीनः । ईशापेक्षया जीवः परतन्त्रः स तन्नियमबद्ध एव कर्मानुगानि निरयादिरूपशरीराण्यादत्ते तथापि जीवः संयोगहेतुर्भवति जीवमन्तरेण को जायेत ? यो जायते सएव जीव इति लक्षणं च निस्सरति ॥ १२ ॥

भाषार्थः—(देही स्वगुणैरेव बहूनि स्थूलानि सूक्ष्माणि च रूपाणि वृणोति जीवात्मा अपन किये कर्मों से संचित हानवाले संस्काररूप संचित कर्मों के द्वारा ही मनुष्यादि सम्बन्धी नाना प्रकार के रूपोंवाले स्थूल सूक्ष्म अनेक शरीरों को धारण करता है (क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः) और पूर्वकृत उन २ संचित कर्मों के गुणों से और भौतिक शरीर सम्बन्धी जातीय गुणों से संयुक्त हुआ, उन २ कर्म वा शरीर के गुणों के संयोग का हेतुनाम कारण परमात्मा से भिन्न जीवात्मा सूक्ष्मदर्शियों द्वारा साक्षात् किया इस देह में विद्यमान है। यहां (अपरोऽपिदृष्टः) यह पुनर्वार कथन जीवात्मा की भिन्नता को पुष्ट वा दृढ़ कर दिखाने के लिये है ॥

भा०—स्थूलानि—आदि कथन से पूर्व कहे अंश का ही स्पष्टार्थ अनुवाद है। जीव शरीरों से संयुक्त होता कर्मानुसार शरीरों को धारण करता है। यद्यपि उसके शरीर धारण करने में परमात्मा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी प्रधान हेतु है। क्योंकि कोई भी पराधीन स्वयं कार्य नहीं कर पाता इसीसे वह परतन्त्र होता है। यदि कर सके तो परतन्त्र नहीं हो सकता। और ईश्वर की अपेक्षा जीव परतन्त्र है वह उसके नियम में बंधा हुआ ही कर्मानुसार नरकादि भोगरूप शरीरों को धारण करता है तथापि शरीर के साथ संयोग होने का हेतु जीव अवश्य है क्योंकि जीव न हो तो कौन जन्म ले? इससे जो जन्म लेता वही जीव है यह जीव का लक्षण भी निकल आता है॥ १२॥

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्। विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः १३

अ०—कलिलस्य गहनस्य परिवर्त्तनशीलस्य संसारस्य मध्येऽनाद्यनन्तं सदैकरसमपरिवर्त्तनशीलं विश्वस्य सर्वस्य स्रष्टारमनेकरूपं तस्मिंस्तस्मिन् वस्तुनि तत्तद्रूपेणैव व्याप्तं विश्वस्यापरिमितस्यापि सर्वस्य ब्रह्माण्डस्यैकमेव परिवेष्टितारं स्वात्मना सर्वतो व्याप्यावस्थितं देवं परेशं ज्ञात्वा पूर्वोक्तो जीवात्मा सर्वपाशैर्बन्धनैर्दुःखैर्मुच्यते॥

भा०—तस्य ज्ञानमेव जीवस्य दुःखमोक्षोपाय इत्यसकृत्कथनेनापारदुःखहानस्यानन्यसाध्यत्वं द्रढयितुम्॥ १३॥

भाषार्थः—(कलिलस्य मध्येऽनाद्यनन्तम्) एक दशा में न रहनेवाले परिवर्त्तनशील अगाध वा असीम संसार समुद्र के बीच, जहां कोई भी एकसा नहीं रहता वहां अनादि अनन्त एकरस अपनी दशा न बदलने के स्वभाववाले (विश्वस्य स्रष्टार-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनेकरूपम्) सब जगत् के रचनेवाले उस २ पदार्थ नाम वस्तुमात्र में उसी २ के रूप से व्याप्त (विश्वस्यैकं परिवेष्टितारम्) अपने स्वरूप से सब ब्रह्माण्ड के सब ओर व्याप्त होके अवस्थित एक ही सबको अपने भीतर रखनेवाले (देवं ज्ञात्वा सर्वपाशैर्मुच्यते) देव ईश्वर को जान कर पूर्वोक्त जीव सब दुःखबन्धनों से छूटजाता है

भा०—उस ईश्वर का ज्ञान होना ही जीव के दुःख छूटने का उपाय है। इस बात को बार २ कहने से दृढ़ता के साथ यह जताया गया है कि अपारदुःख से छूटने का अन्य कोई साधन वा उपाय नहीं है ॥ १३ ॥

भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम् । कलासर्ग-करं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ॥ १४ ॥

अ०—भावेन सत्तयैव ग्राह्यं (अस्तीत्येवोपलब्धव्य इति कठे) यस्य सत्तयैव सर्वं सत्तात्मकमुपलभ्यते तस्यैव परा निरतिशया सत्तेति ग्राह्यम्, नीडो निवासस्थानं गृहदेहादिकं तद्रहितं, भावः स्थूलः सर्गोऽभावो लयस्तयोः कर्त्तारं शिवं कल्याणमयं तन्निष्ठाः कल्याणमेव लभन्ते, कलानां प्राणादिषो-डशमुण्डकोक्तानां सर्गकरं तादृशं देवं दीप्यमानं परेशं ये विदुर्जानन्ति ते तनुं शरीरं जहति त्यक्त्वा च विदेहमुक्ता अपि भवन्त्येव ॥

भा०—सर्वत्रैवास्तीति यः सर्वदा न तं विस्मरति तस्य गुणान् कर्माणि च सर्वदा ध्यायति स एव तं ज्ञातुमर्हति १४

भाषार्थः—(भावग्राह्यमनीडाख्यम्) जिसकी सत्ता से ही

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब सत्तारूप दीखता है उसी की सत्ता सर्वोपरि निरतिशय अविनाशिनी है इस कारण ईश्वर है क्योंकि उसके विना किसी को है या नहीं कह सकते इससे जो सदा है वह ईश्वर भाव नाम सत्ता से ही ग्राह्य है तथा नीड़ नाम घर वा शरीरादि कोई जिसका निवासस्थान नहीं (भावाभावकरं शिवम्) स्थूल सृष्टि और प्रलय करनेवाला कल्याणस्वरूप जिसका शरण लेनेवाले सभी कल्याण को ही प्राप्त होते हैं (कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्) तथा प्राणादि सोलह कला नाम मुण्डकोपनिषद् में कहे सृष्टि के भागों नाम अंशों को रचनेवाला ऐसे देव नाम परमात्मा को जो लोग जानते हैं वे शरीररूप बन्धन को छोड़ देते और विदेह मुक्त भी हो ही जाते हैं ॥

भा०—ईश्वर सर्वत्र ही है इस प्रकार जो सब काल में उस को नहीं भूलता खाते पीते चलते फिरते बैठते उठते सब दशा वा स्थानों में उसी की महिमा से संसार की व्यवस्था चलती देखता विचारता सोचता है उसके गुण कर्मों का सदा ध्यान करता है वही उसको जान सकता है ॥ १४ ॥

इति भीमसेनशर्मनिर्मिते कृष्णयजुर्वेदीयश्वेताश्वरोपनिषद्भाष्ये पञ्चमोऽध्यायः समाप्तः ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथ षष्ठाध्यायारम्भः ॥

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥ १ ॥

अ०—एके केचिल्लोके विद्वत्त्वेन विदिताः परीक्षकाभासाः कवयः स्वभावमेव कारणं वदन्ति तथाऽन्ये वेदमर्माजानानाः परितो मुह्यमानाः कालं कारणं वदन्ति। देवस्येश्वरस्य महिमा तु महत्वमेव सर्वस्य कारणमिति तु लोके वेदमर्मावलोकने ज्ञानोदये निष्पद्यते येन महिम्नेदं ब्रह्मचक्रमनिशमविरतं भ्राम्यते

भा०—कालस्वभावो नियतिर्यदृच्छेत्यादि यदुक्तं तदुपलक्षणार्थमत्र कालस्वभावयोर्ग्रहणम्। कालः प्रजा असृजत कालो अग्रे प्रजापतिम्। अथर्ववेदे। इत्यादीनि वेदादिशास्त्रवाक्यानि दृष्ट्वा सापेक्षनिरपेक्षतया शास्त्रव्यवस्थामबुद्ध्वा च केचित्पण्डितम्मन्याः कालादीनि कारणानि वदन्ति। तदिदमज्ञानम्। यत एक एव भूतभव्यादिकालकारणानां सूर्यादीनामपि कारणं निरतिशय इति बहुत्र वेदादिषु सूचितम्। यद्यपि कालादीनि गौणानि सापेक्षाणि कारणानि भवन्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथापि निरपेक्षप्रधानकारणापेक्षया तेषामकारणत्वमवगन्तव्यम् ॥ १ ॥

भाषार्थः—(एके स्वभावं तथान्ये परिमुह्यमानाः कवयः कालं वदन्ति) लोक में विद्वान्पन से प्रसिद्ध कुछ परीक्षकाभास लोग स्वभाव को तथा वेद के मर्म को न जानते हुए सब ओर से पण्डिताई के अहङ्काररूप अविद्यान्धकार में फँसे अपने को पण्डित माननेवाले कुछ लोग कालको कारण कहते वा मानते हैं (लोके देवस्यैष महिमा तु) परन्तु वेद का मर्मबोधरूप ज्ञानोदय होने पर तो उस परमात्मा की महिमा प्रबल शक्ति ही सब का कारण है यह सिद्ध हो जाता है (येनेदं ब्रह्मचक्रं भ्राम्यते) जिस महिमा नाम अचिन्त्य अनन्त आश्चर्यरूप शक्ति से यह ब्रह्मचक्र प्रत्येक समय निरन्तर भ्रमाया जाता है ॥

भा०—(कालः स्वभावो०) इत्यादि जो प्रथमाध्याय के आरम्भ में कहा है उसके उपलक्षणार्थ यहां काल और स्वभाव का ग्रहण है "काल प्रजा को रचता और काल ने ही पहिले प्रजापति को उत्पन्न किया" यह अथर्ववेद में कहा है। वेदादिशास्त्र के इत्यादि वचनों को देख के और सापेक्ष निरपेक्षरूप से शास्त्र की व्यवस्था को न जान कर अपने को पण्डित माननेवाले पण्डिताभास कुछ लोग कालादिकों को सबका कारण कहते हैं सो यह उनका अज्ञान है। क्योंकि वह ईश्वर भूत भविष्यादि काल के कारण सूर्यादि का भी निरतिशय निरपेक्ष कारण है यह बात वेदादिशास्त्रों के अनेक स्थलों में सूचित की गयी है। और अथर्ववेद के मन्त्र का

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ-सापेक्ष दशा में काल को कारणता दिखाने परक है सो ठीक ही है। इसी लिये कालादि सापेक्ष गौण सृष्टि के कारण हैं तथा निरपेक्ष प्रधान कारण की अपेक्षा उनका कारण न होना वा मानना भी ठीक सिद्ध ही है ॥ १ ॥

येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकालो गुणी सर्व विद्यः। तेनेशितं कर्म विवर्त्तते ह पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखानि चिन्त्यम् ॥ २ ॥

अ०—यो ज्ञो ज्ञानस्वरूपः सर्ववित्सर्वज्ञो गुणी शुद्धत्वनिष्पापत्वादिगुणवान् कालस्यापि यः कालोऽन्तकरः। कालकार इति पाठे कालस्यापि कर्त्ता येनावृतं हि व्याप्तमेव सर्वमिदं जगत्सदावतिष्ठते न कदाप्यव्याप्तम्। तेनेशितं तदधिष्ठातृप्रयोजकं सर्गाद्यर्थं यत्कर्म विवर्त्तते परिणमति तच्च परिणतं पृथिव्यादिपञ्चभूतात्मकं भवतीति चिन्त्यं सुधीभिः ॥

भा०—क्रियमाणं संचितं प्रारब्धनाम्ना भोगोन्मुखं च त्रिविधं कर्म। यदादौ क्रियते तदेव परिणतं संचितं भवति तस्यापि परिणामः फलं सर्वत्र जायते। यथा वृक्षमूले कृतं सेचनादि कर्म रसादिरूपेण संचितं फलरूपं जायते। एवमत्राप्ययस्कान्तमणिकल्पेश्वरप्रयोजककर्तृकं प्रकृत्याधारं सर्गारम्भे जायमानं संक्षोभनसंचलनादिकर्म परिणतिमापन्नं कालेन पृथिव्यादिपञ्चतत्त्वफलात्मकं सम्पद्यत एवं च सोऽयस्कान्तमणिकल्प ईश्वरोऽस्य सर्वस्य प्रधानमनन्यं कारणं सिद्ध्यति।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्मप्रधाना सृष्टिरिति निदर्शनाय गौणीभूतं द्रव्यं तदन्तर्भवतीति ग्रन्थकृदाशयः सूक्ष्मदृशेक्षणीयः। सम्प्रति स्थूलकार्यदशायामपि तेन व्याप्तमेव सूर्यचन्द्रपृथिव्यादिकं सर्वं जगत् नियमेन प्रवाहहेतुकं जायते। तदव्याप्तिमन्तरेण न किमपि कदापि व्यवस्थया स्थातुं कार्यं साद्धुं वाऽलं भवति ॥ २ ॥

भाषार्थः—(यो ज्ञः सर्वविद् गुणी कालकालः) जो ईश्वर ज्ञानस्वरूप, सर्वज्ञ, शुद्धता तथा सदा निष्पाप होने आदि गुणों वाला और कालका भी काल है अर्थात काल को भी खा जाने वाला तथा (कालकारः) ऐसा पाठान्तर माना जाय तो जो काल का भी करनेवाला है (येनावृतं हि सर्वमिदम्) जिससे व्याप्त ही यह सब जगत् सदा रहता अर्थात् जिससे अव्याप्त एक क्षण भर भी कोई तृणमात्र भी वस्तु नहीं ठहरता (तेनेशितं कर्म विवर्त्तते ह) वही जिसका प्रेरक अधिष्ठाता वा निमित्त कारण है ऐसा जो कर्म नाम क्रिया सृष्टि रचना के लिये प्रवृत्त होती वही प्रसिद्ध परिणाम को प्राप्त हुआ कर्म (पृथ्व्याप्यतेजोऽनिलखानि चिन्त्यम्) पृथिवी जल, अग्नि, वायु तथा आकाश नामक पञ्चतत्त्वरूप संसार बनता है यह विचारशीलों को चिन्त्य है ॥

भा०—क्रियमाण, संचित और भोगने में आनेवाला प्रारब्धरूप यह तीन प्रकार का कर्म कहाता है जो प्रथम करते समय क्रियमाण कहाता वही द्वितीय दशा में परिणत हुआ संस्कार और दीर्घ काल तक रहनेवाले संस्कार ही वासनारूप से संचित कर्म कहाते और वही कर्म तीसरी दशा में परिणाम को प्राप्त प्रारब्ध

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फलरूप होता है। इसका प्रत्यक्ष दृष्टान्त यह है कि जैसे वृक्ष की जड़ में दिया जल सिंचनादि कर्म रसादिरूप से उस वृक्ष में संचित होता हुआ काल पाकर फलरूप से प्रकट होता है। इसी प्रकार यहां चुम्बक पत्थर के समीप होने मात्र से लोहे में क्रिया प्रकट होने के समान सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर की समीपता होने मात्र से लोहस्थानी माया नामक प्रकृति में संक्षोभन वा संचलनरूप सूक्ष्म स्वाभाविक जो क्रिया होती जिसका प्रेरक कर्त्ता ईश्वर ही ठहरता है वही क्रिया परिणाम को प्राप्त होती हुई पृथिव्यादि पञ्चतत्त्व फलरूप से प्रकट हो जाती है। इस प्रकार वह ईश्वर चुम्बक पत्थर के समान कुछ चेष्टा वा इच्छा न करता हुआ भी सब सृष्टि का मुख्य कारण सिद्ध हो जाता है। इस विचार के साथ सांख्यादि किसी दर्शन का विरोध नहीं आता। ईश्वर से नीचे अन्य कारणों में संसार की रचना के लिये द्वितीय कक्षा में कर्म प्रधान है। सो कर्मप्रधानता की विवक्षा में कर्म का आधार द्रव्य गौणरूप से कर्म के अन्तर्गत कह दिया क्योंकि द्रव्य का निषेध अनिवार्य है यह ग्रन्थकार का आशय सूक्ष्म विचार से सोचने योग्य है। वर्त्तमान समय की स्थूल कार्यदशा में भी सूर्य चन्द्र वा पृथिव्यादि सब जगत् उस ईश्वर से व्याप्त हुआ ही नियम पूर्वक चलने का हेतु हो रहा है। उसकी व्याप्ति के विना कोई भी वस्तु कदापि नियम के साथ किसी कार्य को सिद्ध नहीं कर सकता। इससे वह अब भी चुम्बक के समान क्रिया का हेतु है॥ २॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तत्त्वेन समेत्य योगम्। एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥ ३ ॥

अ०—तद्भूतसर्गरूपं कर्म कृत्वा विनिवर्त्य पुनरीक्षणपुरस्सरं तत्त्वेन तत्त्वान्तरेणादिनैकेन द्वाभ्यां त्रिभिर्वा तथाऽष्टभिः प्रकृतिभिः (पञ्चतत्त्वानि मनो बुद्धिरहङ्कार इत्यष्टौ सांख्याभिमताः प्रकृतयः) योगं समेत्य संगमय तथा कालेन, सूक्ष्मैरात्मगुणैः संकल्पादिरूपैरन्तःकरणगुणैश्च तत्त्वस्य पृथिव्यादितत्त्वस्य संयोगं कृत्वा नानाविधं वस्तु सृजति। सर्वं ब्रह्मचक्रं चालयतीति च ॥

भा०—ईश्वरः सर्गारम्भे पूर्वं सूक्ष्मात्स्थूलभूतानि सृजत्यनन्तरं सर्वं परस्परसंयोगेन पञ्चविधं कृत्वा द्विभौतिकत्रिभौतिकानि चातुर्भौतिकपाञ्चभौतिकानि च नानाविधानि मनुष्यादिप्राणभृच्छरीरादीनि सृष्ट्वा तत्र बुद्ध्यादीनां संयोगं कृत्वा सर्वं चालयति ॥ ३ ॥

भाषार्थः—(तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य) पूर्वोक्त पञ्चभूतों के सृष्टिरूप कर्म को करके ईश्वर ने फिर ईक्षण किया अर्थात् भूतों से अगली होनेवाली सृष्टि के लिये ईश्वर ने अपना भीतरी स्वाभाविक विचार करके (भूयस्तत्त्वेनैकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन च सूक्ष्मैरात्मगुणैश्चैव तत्त्वस्य योगं समेत्य) फिर एक दो वा तीन तत्त्वान्तरों के साथ (जगत् के किन्हीं पदार्थों में दो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का किन्हीं में तीन का और किन्हीं में चार तत्त्वों का संयोग प्रधान माना जाता और यही ठीक है। आकाशतत्त्व यद्यपि सब में है तथापि उसका संयोग नाम बन्धन किसी में नहीं होता सदा सबसे अलग निर्लेप रहता है। एक का एक के साथ संयोग होकर दो का, एक का दो के साथ मेल होकर तीन का और एक का तीन के साथ मेल होकर चार का संयोग बनेगा) तथा पांच तत्त्व और मन बुद्धि अहङ्कार इन सांख्यदर्शनकार की मानी हुई आठ प्रकृतियों के साथ, कालके साथ और संकल्प नाम कामना—इच्छादि अन्तःकरण सम्बन्धी सूक्ष्मगुणों के साथ पृथिव्यादि तत्त्व का संयोग करके नाना प्रकार के सांसारिक पदार्थ बनाता और सब ब्रह्मचक्र को प्रवाह के साथ चला रहा है ॥

भा०—ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में प्रथम सूक्ष्म से स्थूल पृथिव्यादि भूतों को रचता है तदनन्तर सब भूतों को परस्पर मिला एक २ को पांच २ प्रकार का करके (इसी को पञ्चीकरण कहते हैं जिसमें पांच भूत पचीस प्रकार के हो जाते हैं) द्विभौतिक, त्रिभौतिक चातुर्भौतिक और पाँचभौतिक नाना प्रकार के मनुष्यादि प्राणधारियों के शरीरादि पदार्थों को रच के तथा उनमें बुद्धि का संयोग करके सब जगत् के प्रवाह को निरन्तर चलवा रहा है ॥ ३ ॥

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान्विनियोजयेद्यः । तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥ ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०—सत्त्वादिशुभगुणान्वितानि कर्माण्यारभ्य कुर्वाणः सर्वान् भावान्सर्वान्संकल्पान् यो विनियोजयेत्तेषु तेष्वेव विषयेषु समर्पयेत्त्यजेत्तेषां संकल्पानामभावे कृतानामपि रागद्वेषरहितकर्मणां नाशो जायते न च तदा कर्माणि नवानि संचीयन्ते । एवं कर्मक्षयेऽविद्यादिक्लेशवासनानां नाशे स जीवस्तत्त्वतः पृथिव्यादितत्त्वेभ्यो वस्तुतोऽन्यश्चैतन्यस्वरूपो याति देहं त्यक्त्वा केवलो गच्छति मुक्तो जायते ॥

भा०—न च प्राणभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषत इति गीतायामुक्तं तच्च कर्मणां यावद्देहभावित्वादैकान्तिकमेव सत्यम् । तस्माद्रागद्वेषवियुक्तानि कर्माणि कुर्वाणोऽपि विज्ञो बालोन्मत्तादिवत्तज्जन्यशुभाशुभफलैः संस्कारसंचयाभावान्न लिप्यते । यथा बालादयो व्यभिचारस्तेयादिकं दुष्कर्म किमपि न कुर्वन्ति तथा विरक्तोपि न करोति संस्काराभावात् । येये च सूक्ष्माः संकल्पा उत्तिष्ठन्ति तांस्तान् तत्रैव विलापयति । ध्यानहेयास्तदुवृत्तय इत्यादियोगसूत्रोक्तप्रकारेण यदा संचितवासनाः शिथिली भवन्ति नव्याश्च नोत्पद्यन्ते तदा प्रवृत्तिहेतुसंचितकर्माभावे दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितध्यानयोगाभ्यासादिना स मुक्तो भवति ॥ ४ ॥

भाषार्थः—(गुणान्वितानि कर्माण्यारभ्य) सत्त्वादिगुणों से युक्त कर्मों का आरम्भ करके कर्म करता हुआ ही (सर्वान् भावान् यो विनियोजयेत्) जो पुरुष सब भावों नाम कामनाओं को उन्हीं २ विषयों में समर्पित करदे त्याग देवे (तेषामभावे कृतकर्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नाशः) उन संकल्पों के अभाव में रागद्वेष रहित होके किये कर्मों का नाश हो जाता अर्थात् उन स्वाभाविक कर्मों से नये २ संस्कार संचित नहीं होते (कर्मक्षये स तत्त्वतोऽन्यो याति) इस प्रकार संचित वासनाओं का धीरे ध्यानादि द्वारा नाश होने पर वह जीव पृथिव्यादि तत्त्वों से जो वस्तुतः स्वरूप से भिन्न है शरीर छोड़के कैवल्य दशा को प्रात हो जाता है ॥

भा०—"जीवित रहने पर्यन्त कोई प्राणी सब कर्मों को नहीं छोड़ सकता" यह गीता में कहा है सो शरीर रहने तक कर्मों का साथ होने से यह अत्यन्त ही सत्य है। इससे जब कर्म छूट नहीं सकते तो ज्ञानी वा जिज्ञासु पुरुष रागद्वेषादि दोषों से रहित शुभ गुण युक्त कर्मों को करता हुआ भी बालक वा उन्मत्तादि के समान संस्कारों का संचय न होने से संचित कर्म से होनेवाले शुभाशुभ फलों से लिप्त नहीं होता। तथा जैसे बालकादि चोरी व्यभिचारादि किसी दुष्ट कर्म को नहीं करते वैसे संस्कारों के अभाव से विरक्त भी वैसे काम नहीं करता। और वासना रूप से अवस्थित जो २ सूक्ष्म संस्कार ज्ञानी के चित्त में उठते हैं उन २ को वहीं लीन वा नष्ट करता जाता है (ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः) इत्यादि योग सूत्रों में कही रीति से जब संचित वासना धीरे २ शिथिल हो जाती और नयी वासना उत्पन्न नहीं होने पाती तब संसार में फँसावट के हेतु संचित कर्म के अभाव में दीर्घकाल तक निरन्तर श्रद्धा भक्ति के साथ सेवन किये ध्यान योगाभ्यासादि द्वारा वह योगी मुक्त हो जाता है ॥ ४ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥५॥

अ०—स ईश्वर आदिः सर्वकारणानामपि कारणं शरीरसंयोगादिनिमित्तानां संचितकर्मणामविद्यादीनां च हेतुस्त्रिकालाद्वर्त्तमानातीतानागतरूपकालत्रयात्परो भिन्नोऽवच्छेदेन तत्र कालो नोपावर्त्तते सच प्राणादिषोडशकलास्वन्तर्गतो नास्ति। एवंभूतो मनीषिभिर्दृष्टः साक्षात्कृतः क्रियते च तं तादृशं विश्वरूपं सर्वरूपवद्वस्तुषु तत्तद्रूपेणावस्थितं भवत्यस्मात्सर्वमिति भवो भूतोऽविनश्वरो नित्यं विद्यमान एवेदृशमीड्यं सर्वस्तुत्यं देवमीश्वरं स्वचित्तस्थं पूर्वमुपास्य तन्निष्ठो भूत्वा जीवस्तत्त्वतोऽन्यो यातीति पूर्वेणैवान्वयः॥

भा०—चेतः समाधाय तस्याद्यादिपदैः कृतं व्याख्यानं विविक्तप्रदेशे यो ध्यायति बहिरन्तःकरणानि च वशीकरोति स एकस्मिन् ग्रन्थेऽध्याये पद्ये वा तस्य स्वामिनो महत्त्वमानन्दस्वरूपं च मनसोपलभ्य तुष्यत्येव ॥ ५ ॥

भाषार्थ—(स आदिः संयोगनिमित्तहेतुः) वह सब का आदि मूल कारण, शरीर संयोगादि के निमित्त—संचित कर्म वा अविद्यादि का भी हेतु (त्रिकालात्परः) भूत भविष्य वर्त्तमान रूप तीनों काल से पर नाम भिन्न जिस में भेद करनेवाले काल की प्रवृत्ति नहीं है (पहिले था वा आगे होगा वा अब हुआ पहिले न था इत्यादि) (अकलोऽपि दृष्टः) जो प्राणादि सोलह कलाओं के

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्तर्गत नहीं ऐसे ईश्वर को ज्ञानी ध्यानी लोग साक्षात् देखते जानते हैं (तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यम्) सब रूपवान् वस्तुओं में उसी २ रूप से अवस्थित, सब के उत्पत्तिस्थान, अविनाशी नित्य विद्यमान, सब के स्तुति प्रार्थना करने योग्य (स्वचित्तस्थं देवं पूर्वमुपास्य) अपने चित्तनाम अन्तःकरण में स्थित ऐसे दिव्यस्वरूप ईश्वर की तन्निष्ठ होकर प्रथम उपासना करके जीव पञ्चतत्त्वमय शरीर के बन्धन से छूट सकता है ॥

भा०—चित्त को समाहित करके उस के आद्यादिपदों से किये व्याख्यान को जो पुरुष एकान्त में बैठ कर सोचता और बाहर भीतर के इन्द्रियों को वशीभूत करता है वह एक ग्रन्थ वा एक अध्याय अथवा एक श्लोक में ही उस सर्वाध्यक्ष के महत्त्व वा आनन्दस्वरूप को मन से प्राप्त करके संतुष्ट अवश्य होता है ॥ ५ ॥

स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपञ्चः परिवर्त्ततेऽयम् । धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥ ६ ॥

अ०—समानं वृक्षं परिषस्वजाते—इत्यादिषु वृक्षः संसार उक्तस्तस्याकृतयः सूर्यादीनां रचनाप्रकारभेदाः कालाकृतयोऽहरादिरूपास्ताभिः परो भिन्नोऽन्यस्ताभिरलिप्तः । यस्मादयं प्रपञ्चो व्यक्तीभूतः संसारः परिवर्त्तते—आविर्भवति तिरोभवति च तं धर्मावहं ध्यायिनां धर्मप्रापकमधर्मनाशकं सर्वैश्वर्याणामीशं स्वामिनं विश्वस्य धामाधारममृतमरणधर्मकमात्मस्थं स्वान्तःकरणस्थं ज्ञात्वा तत्त्वतोऽन्यो याति ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—सर्वाकृतिरहित्वादेवातीन्द्रियस्तस्मादेव ध्यानयोगाभ्यासादिप्रबलतरसाधनैः शुद्धया सूक्ष्मप्रज्ञया तं कश्चिदेवाश्चर्यमिव पश्यति ॥ ६ ॥

भाषार्थः—(यस्मादयं प्रपञ्चः परिवर्त्तते) जिस से यह प्रत्यक्ष दीखता स्थूल जगत् का सब फैलाव प्रवृत्त हुआ है। अर्थात् जिस से इस सब का उत्पत्ति विनाशरूप सदा परिवर्त्तन होता रहता है (स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यः) सूर्यादि रूप वृक्षनाम नाशवान् संसार की भिन्न २ बनावटों तथा दिनरात आदि काल की भिन्न २ आकृतियों से अलिप्त और सदा अलग है (धर्मावहं पापनुदं भगेशम्) उस, ध्यानशील पुरुषों के हृदय में धर्म को पहुँचाने, संचित करने, पापरूप अधर्म को भगानेवाले सब ऐश्वर्यों के स्वामी (ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम) सब के आधारभूत मरण धर्म से रहित अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को जान कर जीव संसार के दुःखबन्धनों से छूट सकता है ॥

भा०—सब प्रकार की बनावटों से रहित होने के कारण ही ईश्वर अतीन्द्रिय है इन्द्रिय गोचर नहीं होता इसी कारण ध्यान योगाभ्यासों द्वारा शुद्ध और सूक्ष्म बुद्धि से ही कोई उस को आश्चर्य के तुल्य जान सकता वा देख सकता है ॥६॥

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्। पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ॥ ७ ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अ०--ईश्वराणां राजादीनां परमं महेश्वरं राजाधिराजादीनामपि महान्तं निरतिशयं प्रभुं देवतानामग्न्यादीनां च परमं दैवतं निरतिशयदेवत्वेन संयुक्तं पतीनां प्रजापत्यादीनामपि परमं पतिं रक्षकं सूक्ष्मतराव्यक्तादपि परस्तात् सूक्ष्मतरं तं भुवनानामीशमीड्यं सर्वस्तुत्यं देवमीश्वरं विदाम वयं जानीयामेति जनैरुत्साह उद्योगो वा कार्यः ॥

भा०--अत्र सर्वभावापेक्षयेश्वरस्य निरतिशयत्वं स्फुटमेव प्रत्याय्यते तस्माच्चस्य सातिशयज्ञानायोद्योगो न कार्यः। ईश्वरत्वादीनां यत्र काष्ठाप्राप्तिः स एव वाच्य ईश्वरोऽत्रोपनिषत्सु ज्ञेयत्वेनेष्ट इति ॥ ७ ॥

भाषार्थः—(तमीश्वराणां परमं महेश्वरम्) उस ईश्वरा के भी परम ईश्वर अर्थात् राजाधिराज (शाहंशाहों) के भी ऊपर अनन्त सामर्थ्यवाले प्रभु (तं देवतानां परमं च दैवतम्) उस अग्न्यादि देवताओं के भी परम देवता सर्वोपरि देवतापन से युक्त (पतीनां परमं पतिं परस्तात्) प्रजापति आदि प्रजारक्षकों के भी परम रक्षक, अतिसूक्ष्म अव्यक्त नामक कारण से भी परे सूक्ष्मतर (भुवनेशं देवमीड्यं विदाम) उस सब भुवनों के स्वामी सबको स्तुति करने योग्य देव ईश्वर को हम जानें वा जान सकें ऐसा उत्साह वा उद्योग मनुष्यों को करना चाहिये ॥

भा०—यहां सब विद्यमान पदार्थों की अपेक्षा स्पष्ट ही ईश्वर को निरतिशय प्रतीत कराया है इस लिये उसको किसी से छोटा वा किसी के बराबर जानने का उद्योग कदापि नहीं करना चाहिये

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वरादिपन की जहां काष्ठा प्राप्ति नाम हद्द है वही वाच्य ईश्वर यहां उपनिषदों में जानने को इष्ट है ॥ ७ ॥

न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते । पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ॥ ८ ॥

अ०—तस्य कार्यं शरीरं करणं चक्षुरादिसाधनं च न विद्यते तत्समस्तत्तुल्यस्ततोऽभ्यधिको वा न कश्चिद् दृश्यते स्वाभाविकी ज्ञानक्रियारूपा बलक्रियारूपा चास्येश्वरस्य विविधैव परा निरतिशयाऽनन्ता च शक्तिः श्रूयते वेदादिति शेषः ॥

भा०—न हि लोकेषु कोऽपि ज्ञानेन्द्रियैर्मनःषष्ठैर्विना ज्ञानक्रियां भोगायतनशरीरेण विना वा बलक्रियां कर्त्तुं शक्नोति । यश्च स्वभावेनैव देहेन्द्रियैर्विना सर्वस्य धारणं पालनं च करोति । सर्वहिताय सर्वविद्यामयं वेदं चोपदिशति तत्तुल्य स्ततोऽधिको वा को भवितुमर्हति ? न कोऽपीति ॥ ८ ॥

भाषार्थः—(तस्य कार्यं करणं च न विद्यते) उस ईश्वर का कार्य नाम शरीर तथा करणनाम चक्षु आदि इन्द्रिय नहीं हैं (न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते) तथा न कोई उसके बराबर और न कोई उससे अधिक दीखता है (स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया परा च विविधैव शक्तिरस्य श्रूयते) स्वाभाविकी ज्ञानक्रियारूप और स्वाभाविकी बलक्रियारूप नाना प्रकारकी परा नाम अनन्तशक्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस ईश्वर की वेद से सुनी जाती वा सिद्ध योगी ज्ञानियों के कथन से सुनने में आती है ॥

भा०—लोक में कोई पुरुष मन सहित छः ज्ञानेन्द्रियों के विना ज्ञानक्रिया नाम किसी को जान सकना तथा भोग के स्थान शरीर के विना किसी प्रकार का उठाना धरना पकड़ना फेंकना आदि बल सम्बन्धी कुछ कर्म नहीं कर सकता। परन्तु जो स्वभाव से ही शरीर और इन्द्रियों के विना सब जगत् का धारण पालन तथा सब के हितार्थ शुद्ध सर्वविद्यामय वेद का उपदेश मनुष्यों को करता है उसके तुल्य वा उससे अधिक और कौन हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ८ ॥

न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् । स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ॥ ९ ॥

अ०—लोके तस्य कश्चित्पतिर्नास्त्यत एव चेशिता नियन्ताऽपि नास्ति । न च तस्य किमपि लिङ्गं चिन्हं धूमादिवदनुमापकमस्ति । करणाधिपस्येन्द्रियस्वामिनो जीवस्याप्यधिपः स्वामी स सर्वस्य कारणं निमित्तमस्त्यत एवास्य कश्चिज्जनिता जनयिता निमित्तं नास्ति न चास्य कश्चिदधिपोऽस्ति ॥

भा०—कस्याप्यधिकारे यो न तिष्ठति सर्वदा सर्वथा स्वतन्त्रो निराकारः सर्वाध्यक्षः सर्वनियन्ता सर्वोत्पादकः सर्व-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विधशक्तेः काष्ठां प्राप्तश्च स एवेश्वरो नो ब्रह्म दधात्वित्यु-त्तरेणान्वयः ॥ ९ ॥

भाषार्थः—(लोके तस्य कश्चित्पतिर्नास्ति) दृष्टिगोचर होनेवाले संसार में उसका कोई पति नाम रक्षक वा पालक नहीं है (न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्) न उसका कोई नियन्ता-नियम में उसको चलानेवाला तथा न धूमादि से अग्नि आदि को जानने के तुल्य उसका अनुमान करानेवाला जगत् में कोई चिन्ह है (स कारणं करणाधिपः) वह सबका मुख्य निमित्त कारण और करण नाम इन्द्रियों के स्वामी जीव का भी अधिष्ठाता प्रभु है (न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः) और इस ईश्वर का न कोई उत्पादक निमित्त कारण और न कोई स्वामी है ॥

भा०—जो किसी के आधीन नहीं रहता, सब काल में सब प्रकार से जो स्वतन्त्र, निराकार, निराधार, निर्विकार, सर्वस्वामी, सर्वनियन्ता, सर्वोत्पादक और असीम शक्तिवाला है वही ईश्वर हमारे लिये ज्ञानमय वेद को धारण करे यह अगले मन्त्र की प्रार्थना के साथ सम्बन्ध जानो ॥ ९ ॥

यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतो देव एकः स्वमावृणोत् । स नो दधातु ब्रह्माप्ययम् ॥ १० ॥

अ०—यथोर्णनाभिः स्वदेहजैस्तन्तुभिः स्वस्यैव देहमावृणोति । (अत्रोर्णनाभपदेन तद्देहस्थो जीवात्मा गृह्यते तस्यैव प्राधान्येन कर्तृत्वभोक्तृत्वात्) तथैव प्रधानजैः प्रकृतिजैस्त

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

न्तुभिर्महदादिकार्यात्कार्यान्तरापन्नैस्तारतरैर्नानाभेदभिन्नैः पदार्थैर्यएको देव ईश्वरः स्वभावतः स्वभावेनैव गुणेन स्वं स्वस्य रूपमावृणोत्सर्वस्मिन्कार्यवस्तुनि व्याप्याद्दृश्योऽवस्थितः। स ईश्वरो नोऽस्मभ्यमप्ययमव्ययमविनश्वरं व्याप्तं ब्रह्म वेदं दधातु ॥

भा०—वेदस्यव सम्यक् तात्पर्यबोधे तत्त्वज्ञानमुत्पद्यते तदैव मिथ्याज्ञाननिवृत्तिः सत्यामेव तस्यां दुःखनिवृत्तिरतो जिज्ञासुपुरुषैर्वेदबोधायेश्वरप्रार्थनमावश्यकं कार्य्यम् ॥ १० ॥

भाषार्थः—(ऊर्णनाभ इव) जैसे मकरी अपनी ही देह से प्रकट हुए जालरूप सूतों से अपने को ही ढांपती है (यहां ऊर्णनाभ कहने से मकरी के शरीर का जीवात्मा लिया जायगा क्योंकि जीव ही मुख्य कर कर्त्ता भोक्ता माना जाता है। और दृष्टान्त में भी प्रधानज तन्तु ईश्वर से भिन्न वस्तु स्पष्ट ही हैं अन्य से ही अन्य का आच्छादन होना सम्भव है। वस्त्र से शरीर ढांपा जाता है शरीर से शरीर नहीं इस कारण अद्वैतवादियों की दाल यहां भी न गलेगी) वैसे ही (प्रधानजैस्तन्तुभिर्य एको देवः स्वभावतः स्वमावृणोत्) प्रकृति नामक प्रधान से होनेवाले महदादि कार्यों के नाना भेद भिन्न तारूप (सिलसिलेवार) पदार्थों से जो एक ही देव ईश्वर अपने स्वाभाविक ही गुण से अपने स्वरूप का आवरण करता अर्थात् सब कार्य वस्तुओं में व्यापक होके अदृश्यरूप से ठहरता है अथवा यों कहो कि कार्य पदार्थ जो प्रेयरूप बने हैं उनकी फँसावट ही ईश्वर के न दीख पड़ने का ढक्कन वा रुकावट है (हिरण्म-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

येन पात्रेण सत्यस्यापिहित मुखम्) इस वेदमन्त्र का भी यही अभिप्राय है] (स नाऽप्ययं ब्रह्म दधातु) वह ईश्वर हमारे लिये अविनाशी सत्य वेद के शुद्ध ज्ञान का धारण करे अर्थात् वेद का सर्वव्याप्त ज्ञान हमको देवे ऐसी प्रार्थना हम करते हैं॥

भा०—वेद का ही ठीक २ अभिप्राय जान लेने पर तत्त्वज्ञान होता है तभी मिथ्याज्ञान की, जो सब दुःखों का मूल कारण है निवृत्ति होती है और अविद्या की निवृत्ति होने पर ही मनुष्य की भीतरी आंखें खुलतीं और दुःख दूर भागते हैं। इस कारण वेद का बोध होने के लिये ईश्वर की प्रार्थना आवश्यक जानो॥ १०॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सवव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा। कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ ११॥

अ०—एको देव ईश्वरः सर्वप्राणिषु गूढः संवृतः सर्वाशेष्वयस्यग्निवद्व व्याप्तशीलः सर्वभूतानां प्राणिनामन्तरात्मा प्रेरकः कर्मणामध्यक्षः प्रयोजकत्वात् सर्वभूतेष्वधि-उपरिभावेन स्वस्यानन्तशक्त्या नियमयन् वसति, साक्षी सर्वस्य शुभाशुभं कर्म सर्वत्र पश्यति सर्वस्य चेता चेतयिता केवलः सर्वस्मात्सदा निर्लिप्तो निर्गुणः सत्त्वादिगुणासंसृष्टः॥

भा०—एवं प्रकारेण सर्वत्रावस्थितं सर्वसाक्षिणं सर्वनियन्तारं यो जीवः सदैवाश्रयति स एव कृतार्थः सम्पद्यते॥११॥

भाषार्थः—(एको देवः सर्वभूतेषु गूढः) एक ही देव

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर सब प्राणियों में गुप्त सूक्ष्मरूप से छिपा (सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा) सब वस्तुओं के सर्वांशों में लोहे में अग्नि के तुल्य व्यापक, सब प्राणियों का अन्तर्यामी प्रेरक (कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः) प्रयोजक होने से कर्मों का अध्यक्ष, सब प्राणियों को अपनी अनन्त शक्ति से नियम में चलाता हुआ सब में स्वामी होकर वसता (साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च) सब के शुभा शुभ कर्मों को सर्वत्र देखता, सब को चितानेवाला, सदा सब से अलग और सत्त्वादिगुणों से सदा अलग रहता है ॥

भा०—इस प्रकार से सर्वत्र विद्यमान, सर्वसाक्षी और सर्वनियन्ता ईश्वर का जो जीव सदा शरण लेता है वही कृतार्थ हो जाता है ॥ ११ ॥

एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति । तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥ १२ ॥

अ०—निष्क्रियाणां क्रियारहितानां बहूनां जीवानां य एको वशी वशे स्थापयिता । एकं बीजं प्रकृत्याख्यं कारणं यो बहुधा नानाकार्यरूपं करोति विस्तारयति । ये धीरा ध्यानशीलास्तमात्मस्थमात्मन्यवस्थितमनुपश्यन्ति सर्वान् पश्यन्तं पश्यन्ति जानन्ति तेषामेव मोक्षाख्यं शाश्वतं सनातनं सुखं नेतरेषामिति ॥

भा०—यथा जलेनैव तृषानिवृत्तिसम्भवस्तथा सर्वापे-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षया निरतिशयेन यः सुखमयः शुद्धो निष्पापस्तस्मादेव तन्निष्ठतया जीवेन सर्वापेक्षयाधिकं सुखमाप्तुं शक्यत इति ॥१२॥

भाषार्थः—(बहूनां निष्क्रियाणां य एको वशी) क्रिया गुण रहित बहुत असंख्यजीवों को जो एक ही अपने आधीन रखता (य एकं बीजं बहुधा करोति) जो प्रकृतिरूप एक ही बीजनाम कारण को असंख्य प्रकार का कार्य रूप बनाता फैलाता है (ये धीरास्तमात्मस्थमनुपश्यन्ति) जो ध्यानी ज्ञानी योगी लोग सब को देखते हुए उसको अपने आत्मा में अवस्थित देखते जानते हैं (तेषां शाश्वतं सुखं नेतरेषाम्) उन्हीं को मुक्तिनामक सनातन सुख मिलता है अन्यों को नहीं ॥

भा०—जैसे जल से ही प्यास की निवृत्ति होना सम्भव है वैसे सब की अपेक्षा जो निरतिशय सुखस्वरूप सर्वथा शुद्ध पाप दोष रहित है उसी में तत्पर हो के उसी की उपासना द्वारा जीव सब की अपेक्षा अधिक सुख पा सकता है ॥ १२ ॥

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् । तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥१३॥

अ०—नित्यानां जीवानां मध्ये योऽतिशयेन नित्यः, चेतनानां जीवानां मध्ये यो निरतिशयचेतनः, य एको बहूनां जीवानां कामान् कामनानिमित्तान् भोगान् शुभाशुभकर्मफलानि विदधाति तत्सर्वस्य कारणरूपं सांख्ययोगाधिगम्यं चेतना-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चेतनभेद्बोधजितेन्द्रियत्वादिना प्राप्तुं योग्यं देवं द्योतनात्मकमीश्वरं ज्ञात्वा सर्वपाशैः सर्वदुःखबन्धनैर्जीवो मुच्यते ॥

भा०—यत्रैकत्वं नित्यत्वं चेतनत्वं विधातृत्वं सर्वकारणत्वमेकाग्रचेतःसाध्यविवेकेन ज्ञेयत्वं देवत्वं च निरतिशयं काष्ठां प्राप्तं तस्यैव बोधोऽगाधसंसारार्णवपारगमनाय सेतुरिति ॥१३॥

भाषार्थः—(यो नित्यानां नित्यश्चेतनानां चेतनो बहूनामेकः कामान् विदधाति) जो नित्य जीवों में भी सर्वोपरि नित्य चेतन जीवों में सर्वोपरि चेतन बहुतों में एक कामनारूप संकल्प ही जिनके निमित्त कारण हैं ऐसे शुभाशुभ कर्मफलों को देता भुगाता वा नियत करता है। (तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं देवं ज्ञात्वा) उस सब के कारण विवेकख्यातिरूप सांख्यज्ञान और सावधानता जितेन्द्रियता रूप योग से ही प्राप्त होने योग्य चेतन प्रकाशमय देव ईश्वर को जान कर जीव (सर्वपाशैर्मुच्यते) सब दुःख के बन्धनों से छूट जाता है ॥

भा०—जिस में एकत्व, नित्यत्व, चेतनत्व, रचनाशक्ति सर्व कारणत्व, एकाग्र चित्त से सिद्ध होनेवाले विवेक द्वारा ज्ञेयत्व, और देवत्व असीम दशा को पहुँचा विद्यमान है उसी का जानना अगाध संसारसागर के पार पहुँचने के लिये अच्छा सीधा उत्तम पुल बँधा हुआ है ॥१३॥

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥१४॥

अ०—तत्र तस्मिन् ब्रह्मणि न सूर्यो न चन्द्रतारकं भाति नेमाः प्रत्यक्षमुपलभ्यमाना विद्युतः कार्याग्नेः कारणभूता अपि यदा भान्ति तर्हि कुतोऽयं कार्योऽग्निर्भायात्। किन्तु तमेव परमात्मानं भान्तं प्रकाशयन्तं सर्वं सूर्यादिकमनुभाति तत्प्रकाशसाहाय्यमुपलभ्यैव प्रकाशते। अर्थात् तस्य भासा दीप्त्या सर्वमिदं सूर्यादिकं विभाति प्रकाशते ॥

भा०—यथा सूर्योदयकालानन्तरं नक्षत्राण्युल्कापाताश्च दिवा सन्तोप्येवं तिरोभवन्ति यथा तदभावः प्रतीयते सर्वत्रैव सजातीयेन बलवता निर्बलसजातीयबाधनियमात्। एवं प्रकाशत्वसामान्येन सजातीयपरमात्मनि प्रकाशमयसमक्षे सर्वे सूर्यादयोऽस्तं यन्ति। अतएव ब्रह्मज्ञानोपायेषु सूर्यादेः प्रकाशस्योपयोगो नापेक्षते ॥ १४ ॥

भाषार्थः—(तत्र न सूर्यो न चन्द्रतारकं भाति) उस परमेश्वर में न सूर्य न चन्द्रमा और न तारे प्रकाश करते (नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः) तथा ये प्रत्यक्ष चमकनेवाली बिजुली जो कार्यरूप भौतिकाग्नि का कारण हैं वे भी जब उसमें प्रकाश नहीं कर सकतीं तो इस कार्यरूप अग्नि की क्या शक्ति है जो वहां प्रकाश पहुँचावे किन्तु (तमेव भान्तं सर्वमनुभाति) उसी परमात्मा को प्रकाशित देख के सब ज्योति प्रकाशित होती हैं

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् (तस्य भासा सर्वमिदं विभति) उसी के दिये प्रकाश को पाकर ये सब सूर्यादि प्रकाश करते हैं ॥

भा०—जैसे सूर्य के उदय होने के पश्चात् दिन में वहीं आकाश मण्डल में विद्यमान भी तारागण तथा उल्कापात ऐसे ढंप जाते वा दब जाते हैं जिससे उनका दिन में अभाव ही प्रतीत होता है सो यह सर्वत्र का नियम है कि सजातीय बलवान् निर्बल सजातीय का सदा ही बाधक होता है। इस प्रकार प्रकाशपन की सामान्यता से प्रकाशस्वरूप सजातीय परमात्मा के सामने सब सूर्यादि का प्रकाश अप्रकाश हो जाता है वा यों कहो कि जिन योगियों के अन्तःकरण में आत्मज्ञान के प्रकाश का उदय होता उन को सूर्यादि का प्रकाश फीका प्रतीत होने लगता है। इसी लिये ब्रह्मज्ञान के साधन वा उपायों में सूर्यादि के प्रकाश की अपेक्षा नहीं मानी गयी है ॥ १४ ॥

एको हंसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥ १५ ॥

अ०—अस्य सर्वस्य भुवनस्य ब्रह्माण्डस्य मध्ये एक एव हंसोऽविद्यादितमो हत्वा निरतिशयतया विविक्तः स एवाग्निरविद्यादिदाहको भूत्वा सलिले कुहरादिरूपेण परिणते प्रलयकालीने जगति सन्निविष्टो जलेऽग्निरिव प्रविष्टो भवति। तमेवैकं विदित्वा जीवो मृत्युमत्येति। अयनाय परमपदाप्तयेऽन्यः पन्था न विद्यते ॥

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भा०—अग्नित्वं सर्वदाहकत्वं प्रकाशकत्वं हंसत्वं विवेचकत्वं च यत्र निरतिशयं काष्ठां प्राप्तं तस्यैव बोधो मोक्षस्य सर्वदुःखप्रहाणस्य हेतुरस्ति ॥ १५ ॥

भाषार्थः—(अस्य भुवनस्य मध्ये एको हंसः) इस अनन्त ब्रह्माण्ड के बीच अविद्यादि अन्धकार से सर्वथा अलग रहने वाला सर्वोपरि एक ही परमात्मा है (स एवाग्निः सलिले सन्निविष्टः) वही अविद्यादि का दाहक दोषों को सर्वथा नष्ट करने वाला अग्नि हो कर कुहरादि के तुल्य जलरूप से परिणाम को प्राप्त हुए प्रलय समय की सूक्ष्मावस्था में जल में अग्नि के समान प्रवेश कर के रहता है (तमेव विदित्वा मृत्युमत्येति) उसी को जान कर जीव मृत्युरूप ग्राह के भय से बच सकता है (अयनान्यः पन्था न विद्यते) परमपद प्राप्ति के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ॥

भा०—सब को जलाने की शक्तिरूप अग्निपन प्रकाशकता और हंसरूप विवेचन शक्ति ये सब जिस में निरतिशय असीमरूप से हैं उसी का जानना सब दुःखों से छूटने का मुख्य हेतु है ॥१५॥

स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः । प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥१६॥

अ०—स विश्वकृत्सर्वस्य कर्त्ता स्रष्टा विश्ववित्सर्वस्य वेत्ता—आत्मा सर्वान्तर्यामी सर्वस्य योनिः कारणं ज्ञो ज्ञान-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूपः कालस्यापि कालः कर्त्ता वा शुद्धत्वादिगुणवान् सर्व-वित्सर्वं विन्दति प्राप्नोति। प्रधानक्षेत्रज्ञपतिः प्रकृतिजीवात्मनोः पालकः। सत्त्वादिगुणानामीशः संसारः प्रवाहप्रवृत्तिर्मोक्षनिःश्रेयसाधिगमः स्थितिः प्रलयो बन्धो देहेन्द्रियादिभिर्जीवस्य सम्बन्धः सर्गस्तेषां हेतुः कारणम् ॥

भा०—यतः स एव संसारमोक्षादिदशानां हेतुस्तस्मात्तस्यैव शरणगतस्तमेव विदित्वाऽपारसंसारसमुद्रपारं भवितुं शक्नोति नान्यः कश्चिदुपायोऽस्ति ॥१६॥

भाषार्थः—(स विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः) वह सब का स्रष्टा सब का ज्ञाता सर्वान्तर्यामी प्रेरक तथा सब का कारण (ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद्यः) जो कि ज्ञानस्वरूप काल का भी अन्त करने वा रचनेवाला शुद्धत्व निष्पापत्वादि गुण युक्त तथा सब को सदा प्राप्त है (प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः) प्रकृति और जीव का पालक रक्षक, सत्त्वादि गुणों का स्वामी और (संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः) प्रवाहरूप से जगत् की प्रवृत्ति, मोक्षप्राप्ति, प्रलय और उत्पत्ति का कारण है ॥

भा०—जिस कारण वही बन्ध मोक्षादि दशाओं का हेतु-कर्त्ता धर्त्ता है इससे जीव उसी के शरणागत हुआ उसी को जान कर अपार संसार समुद्र के पार हो सकता है किन्तु विपत्तियों से बचने का अन्य कोई उपाय नहीं है ॥१६॥

स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गोप्ता । य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यते ईशनाय ॥ १७ ॥

अ०--यो ज्ञो ज्ञानस्वरूपः सर्वगः सर्वव्याप्तोऽस्य सर्वस्य ब्रह्माण्डस्य गोप्ता रक्षकस्तन्मयो ज्योतिर्मयोऽमृतो मरणरहित ईशे स्वस्वरूप एव संतिष्ठते स ईशसंस्थ एवंभूत एवास्य सर्वस्य जगतो नित्यमेवेशे नियन्ता भवति । स्वरूपावस्थित्यादिकमन्तरेणान्यो हेतुरीशनाय न विद्यते ॥

भा०--इदमेवाभिप्रेत्य मनुनाप्युक्तम्--"जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः" तथा राज्ञा भर्तृहरिणा च-"लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः" जितेन्द्रियत्वं कामक्रोधलोभैरनाकर्षणं स्वरूपेऽवस्थानं चानर्थान्तरमेव । यथा चेश्वरः सदैव स्वरूपेऽवस्थितः सर्वमीट्टे दुःखान्मुक्तश्च शान्तो भवति तथाऽस्माभिरपि जितेन्द्रियत्वादिरूपा स्वरूपावस्थितिः परमसुखावाप्तये प्रत्येतव्या नान्य उपायोऽनिर्बाधसुखभोगायाऽस्ति ॥ १७ ॥

भाषार्थः—(यो ज्ञः सर्वगोऽस्य भुवनस्य गोप्ता) जो ज्ञानस्वरूप सर्वव्याप्त इस सब ब्रह्माण्ड का रक्षक (स तन्मयो ह्यमृतईशसंस्थः) वह ज्योतिःस्वरूप मृत्यु से रहित अपने नियन्तृपन में ही स्थित ऐसा रहता हुआ ही ईश्वर (अस्य जगतो नित्यमेवेशे) इस जगत् का नित्य ही नियन्ता अपने नियम में चलानेवाला होता है किन्तु (ईशनायान्यो हेतुर्न विद्यते) अपने स्वरूप में ठीक

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्थित रहने आदि से भिन्न सर्वनियन्ता होने के लिये अन्य कोई हेतु नहीं है ॥

भा०—इसी अभिप्राय से मनुजी ने भी राजधर्म में कहा है कि "राजा जितेन्द्रिय हुआ ही प्रजा को वश में रख सकता है" तथा राजा भर्तृहरि ने भी कहा है कि "जिसको काम क्रोध तथा लोभ बलात्कार खींचकर विषयों में नहीं गिरा पाते, वह तीनों लोक को वश में कर सकता है" जितेन्द्रियता, कामादि से आकर्षण न होना और स्वरूप में अवस्थिति इन सब का एक ही अर्थ है। जैसे ईश्वर सदा अपने स्वरूप में अवस्थित रहता हुआ ही सब ब्रह्माण्ड को अपने आधीन रखता और दुःखों से छूटा निरुपद्रव शान्त रहता वैसे हमको भी जितेन्द्रियतादिरूप स्वरूप में अवस्थिति परम सुख प्राप्ति के लिये मुख्यसाधन जानना चाहिये सर्वोत्तम सुख प्राप्ति के लिये अन्य कोई उपाय नहीं है ॥ १७ ॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै । तꣳह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥ १८ ॥

अ०—य ईश्वरः पूर्वं प्रत्येकसर्गारम्भे ब्रह्माणं सर्ववेदान् ज्ञातुं योग्यं पुरुषविशेषं विदधाति सृजति। यस्तस्मै वेदांश्च प्रहिणोति प्रगमयति प्रकर्षेणाग्न्यादिद्वारा प्रापयति तमात्मबुद्धिप्रकाशं स्वस्य सूक्ष्मातिविशारदबुद्धिद्वारैव प्रकाशो यो

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धो यस्य भवति तादृशं देवं द्योतनशीलमीश्वरं शरणं सर्वाश्रयभूतं मुमुक्षुर्वै मुमुक्षुः सन्नेवाहं प्रपद्ये प्राप्नोति ॥

भा०—मामपि स ईश्वरो ब्रह्मवद् वेदज्ञानपात्रं कुर्यात्तस्य शरणागत्या वेदं ज्ञातुं योग्योऽहं भवेयम् । यो मुमुक्षुः सन्नेव तं सर्वस्य शरणं प्रपित्सते तस्यैव तत्सम्बन्धेन शुद्धा सूक्ष्मा च बुद्धिस्तस्य प्रकाशिका बोधिका भवति सत्यामेव च तादृशमनीषायां वेदस्य मर्म ज्ञातुं स शक्नोति तस्मान्मुमुक्षुणा सतैव पुरुषेण स आश्रयितव्य इति ॥ १८ ॥

भाषार्थः—(यः पूर्वं ब्रह्माणं विदधाति) जो ईश्वर प्रत्येक कल्प सृष्टि के आरम्भ में सब वेदों को जानने की योग्यता रखनेवाले ब्रह्मा नामक पुरुष को रचता (यो वै तस्मै वेदांश्च प्रहिणोति) तथा जो ही ईश्वर उस ब्रह्मा के लिये वेदों को अग्नि आदि के द्वारा अच्छे प्रकार पहुँचाता है (आत्मबुद्धिप्रकाशं तं ह शरणं देवम्) अपनी सूक्ष्म अति शुद्ध निर्मल बुद्धि द्वारा ही जिस को मनुष्य जान सकता है उस प्रसिद्ध सब के आश्रयरूप आधार-शरण लेने योग्य देव प्रकाशमय ईश्वर को (अहं मुमुक्षुर्वै प्रपद्ये) मैं संसार के अगाध दुःखों से छूटने की इच्छा रखता हुआ ही प्राप्त होता हूँ ॥

भा०—मुझको भी वह ईश्वर वेद को जानने योग्य करे उस की शरणागति द्वारा वेद को जानने योग्य मैं होऊँ । इस प्रकार जो दुःखों से छूटने की इच्छा रखता हुआ ही उस सब के आश्रय [आसरे] को प्राप्त होना चाहता है, उसी की बुद्धि उस ईश्वर की

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना द्वारा सूक्ष्म निर्मल हुई उस को प्रकाशित करने वाली होती है और वैसी बुद्धि होने पर ही मनुष्य वेद का मर्म जान सकता है। इससे मुमुक्षु होकर ही मनुष्य को ईश्वर का शरण लेना चाहिये॥ १८॥

निष्कलं निष्क्रियꣳशान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्। अमृतस्य परꣳसेतुं दग्धेन्धनमिवानलम्॥ १९॥

अ०—निष्कलमंशांशिभावरहितं निष्क्रियं निर्विकारं शान्तमचलं कूटस्थं निरवद्यमनिन्द्यं निरञ्जनं निष्कलङ्कं दग्धेन्धनानलमिव सर्वथा शुद्धममृतस्य परं सर्वापेक्षया प्रकृष्टं सेतुं शरणं मुमुक्षुः सन्नेवाहं प्रपद्य इति पूर्वपद्येन साकमेवान्वयः॥

भा०—निरवयवादिरूपस्यैव परमात्मनो ध्यानं बोधः शरणागतिश्चापारदुःखसमुद्रात्पारगमनाय यादृशं प्रधानं साधनं न तादृशमन्यत्सम्भवति॥ १९॥

भाषार्थः—(निष्कलं निष्क्रियं शान्तम्) अंशांशिभाव और क्रिया से होनेवाला विकार जिसमें नहीं ऐसे शान्तिमय अचल कूटस्थ सदा एकरस (निरवद्यं निरञ्जनम्) जिसमें कोई अवगुण न होने से किसी को ग्लानि नहीं होती, सब कलङ्कों से रहित (दग्धेन्धनमिवानलम्) ईंधन के जल चुकने से जिसका धुआं मिट गया हो ऐसे अग्नि के समान सर्वथा शुद्ध ज्योतिः स्वरूप (अमृतस्य परं सेतुम्) और महाभयंकर मरणादि सम्बन्धी दुःखसागर के पार होने के लिये सर्वोपरि सर्वोत्तम पुलरूप

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा को मुक्ति की इच्छा रखता हुआ ही मैं प्राप्त होऊँ यहाँ पूर्व पद्य के साथ मेल वा अन्वय इसका भी जानो ॥

भा०—निरवयवादिरूप ही परमात्मा का जानना, ध्यान करना वा उसकी शरण लेना अपार दुःखसागर से पार होने के लिये जैसा बड़ा मुख्य साधन है वैसा अन्य कोई साधन नहीं हो सकता ॥१९॥

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः । तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥ २० ॥

अ०—यदा यस्मिन् स्थूलसर्गाभावकाले प्रलये चर्मवत्संकुचिताः सन्तो मानवा जीवा आकाशमविच्छिन्नं शून्यदशापन्नमिव प्रकृत्याख्यं तत्त्वं वेष्टयिष्यन्ति तदाश्रयं करिष्यन्ति तदा देवमीश्वरमविज्ञाय स्थूलदेहेन्द्रियभोग्यस्य दुःखस्य प्रलयावधि सापेक्षोऽन्तो नाशो भविष्यति ॥

भा०—प्रलयकाले रात्रौ स्वप्नावसर इव मूर्छितोन्माददशा यामिव वा स्थूलदेहसम्बद्धानां विषयेन्द्रियसंनिकर्षोत्पन्नानां च दुःखानामभावो जायते । तदानीं जातेऽपि दुःखाभावे परमात्मज्ञानप्रकाशाभावादानन्दानुभवो न जायते । तस्मान्नासौ मुक्तिसुखे परिगणनमर्हति ॥ २० ॥

भाषार्थः—(यदा चर्मवन्मानवा आकाशम्) जब स्थूल सृष्टि के न रहने पर प्रलय के समय अग्नि में चाम के समान संकुचित हुए मानव नाम जीवात्मा आकाश के तुल्य अविच्छिन्न शून्य दशा को पहुँचने के तुल्य हुए प्रकृति नामक तत्त्व का (वेष्टयि-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्यन्ति) आश्रय करेंगे अर्थात् स्थूल शरीरादि के न रहने से प्रकृति के अवलम्ब से जब जीव ठहरेंगे (तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति) तब प्रकाशमय ईश्वर को न जान कर भी स्थूल शरीर और इन्द्रियों से भोग में आने वाले दुःखों का प्रलय समय तक के लिये सापेक्ष नाश हो जावेगा ॥

मा०—रात में भराभर सोते समय के समान वा मूर्च्छित उन्माद (बेहोश) दशा के तुल्य स्थूल शरीर से सम्बन्ध रखने वा विषय और इन्द्रियों के संयोग से प्रतीत होने वाले दुःखों का प्रलय के समय अभाव हो जाता है। तब दुःखों का अभाव होने पर भी ईश्वर का बोध न होने से अर्थात् ईश्वर के सम्बन्ध का ज्ञान प्रकाश न होने से आनन्द का अनुभव नहीं होता इसी से मुक्ति सुख में उसको नहीं गिन सकते ॥ २० ॥

इसका दूसरा स्पष्ट भावार्थ यह है:—आकाश को चर्मवत् कोई लपेट नहीं सकता क्योंकि आकाश महान् और निरवयव है। यदि कोई लपेट ले तो लपेट ले, यह असंभव बात भी चाहे हो जाय, परन्तु विना परमात्माके जाने दुःख का अन्त होना असंभव है। सम्पादक।

तपःप्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ॥ अत्याश्रमिभ्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सम्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥ २१ ॥

अ०—बहिरन्तःकरणानां वशीकरणरूपतपसः सामर्थ्यात् देवेश्वरप्रसादाच्च ब्रह्म विद्वान् जानान: श्वेताश्वतरोऽथ स्वा

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नुभवदृढत्वानन्तरमृषिसङ्घेन जुष्टं महर्षिब्रह्मर्षिसमूहेनानन्तसुखावाप्तये सेवितं परमं पवित्रं ब्रह्मात्याश्रमिभ्यः पूज्यप्रशस्ताश्रमवासिभ्यस्तपस्विभ्यः सम्यक् प्रोवाच॥

भा०—तपसआधिक्याद्दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितादीश्वरप्रणिधानविशेषाच्च सर्वदा सर्वएव जनो ब्रह्म ज्ञातुमर्हति। यश्च सम्यक्तया यज्जानाति सएव तदन्यस्मै वक्तुं शक्नोति तस्माद् ब्रह्मजिज्ञासुना प्रबलं तप ईश्वरप्रणिधानं च दीर्घकालावधिश्रद्धया निष्ठया तत्परतया कार्यम्॥ २१॥

भाषार्थः—(तपःप्रभावाद्देवप्रसादाच्च ब्रह्म विद्वान् ह श्वेताश्वतरः) बाहर भीतर के इन्द्रियों को वशीभूत करनेरूप तपोबल से और ईश्वर की प्रसन्नता वा कृपा से ईश्वर को जानते हुए श्वेताश्वतर नामक प्रसिद्ध तपस्वी ऋषि ने (अथ ऋषिसङ्घजुष्टं परमं पवित्रम्) अपने अनुभवरूप ज्ञान को दृढ करने पश्चात् ब्रह्मर्षि महर्षियों के समुदाय ने अनन्त सुख प्राप्ति के लिये सदा जिसका सेवन किया है ऐसे परम पवित्र ईश्वर के स्वरूप का (अत्याश्रमिभ्यः सम्यक् प्रोवाच) अत्यन्त पूजनीय तपोवन के निवासी तपस्वियों के लिये सम्यक् वर्णन वा उपदेश किया॥

भा०—दीर्घ काल तक श्रद्धा वा आदर के साथ सेवन किये अधिक प्रबल तप से तथा तन मन धन लगा के लगातार की हुई ईश्वर की भक्ति से सब ही पुरुष सब काल में ईश्वर को जान सकते हैं। और जो जिसको सम्यक् रीति से जानता है वही उसका अन्य के लिये वर्णन वा उपदेश कर सकता है। इसलिये ब्रह्मज्ञान

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की इच्छा वाले पुरुष को प्रबल तप और ईश्वर की लगातार भक्ति दीर्घ काल तक करनी चाहिये ॥ २२ ॥

वेदान्ते परमं गुह्यं पुरा कल्पे प्रचोदितम् । नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥ २२ ॥ यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ । तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥ २३ ॥

इति श्वेताश्वतरोपनिषत्समाप्ता ॥

अ०—वेदान्तउपनिषत्सु ब्रह्मर्षिभिर्विदितवेदितव्यैः परावरज्ञैःपुराकल्पेपूर्वेऽतिप्राचीनकाले परमं गुह्यं गोप्यानामपि गोप्यतममात्मतत्त्वं प्रचोदितं प्रोक्तं तदप्रशान्तायापुत्रायाशिष्याय वा पुनर्नदातव्यम् । नास्ति शिष्यः पुत्रोऽस्य यश्च शास्तुं योग्यो नास्ति तादृशोभयस्मै न देयमपि तु देव ईश्वरे यस्य परा भक्तिर्यथेश्वरे तथैव गुरौ यस्य भक्तिः श्रद्धाऽचाञ्चल्यमनन्यमनस्कता चास्ति । अस्यामुपनिषदि श्वेताश्वतरेण महात्मना कथिता एतेऽर्थास्तात्पर्यबोधास्तस्य महात्मनः प्रकाशन्ते तेव सम्यग् ज्ञायन्ते ॥

भा०—निवातप्रदीपवद्विषयवायुनाऽचलितरागद्वेषरहितचेतसा यादृशो विषयमर्मावधिविचारः सम्यग्जायते न तादृशश्चलचित्तेनेति यश्चप्रशान्तोऽपुत्रोऽशिष्यो वा नाऽसौ शास्त्रस्य मर्म ज्ञातुं शक्नोति यथा दुष्टसङ्गेन दोषा आयान्त्येवमध्या-

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पनादावप्रशान्तादिसङ्गेनाशान्त्यादिदुःखहेतुदोषागमनसम्भवः परिश्रमानर्थक्यं तु दोषोऽस्त्येवातस्तादृशेभ्यो ब्रह्मविद्यादानं प्रतिषिद्धं शान्तिश्रद्धादिगुणान्विताय च दानमुत्तममिति सर्वमवदातम् ॥ २३ ॥

भाषार्थः—(पुरा कल्पे वेदान्ते परमं गुह्यं प्रचोदितम्) पूर्व बीते हुये अति प्राचीनकाल में वेद के सिद्धान्तरूप उपनिषदों के बीच पूर्वापर के जानने वाले साक्षात् प्रबलज्ञानी ब्रह्मर्षि लोगों ने ईश्वर सम्बन्धी अत्यन्त गूढ़ विषय कहा है जिसको सर्वसाधारण लोग सहज में नहीं समझ सकते इसी लिये (नाप्रशान्ताय ना पुत्रायाशिष्याय वा पुनर्दातव्यम्) जिसको शान्ति वा लोभादि निवृत्ति द्वारा वैराग्य नहीं हुआ (लोभी—तृष्णा की नदी में बहने वाला कभी शान्त स्थिर स्वस्थ नहीं रह सकता) वा जिसको पुत्र न हो किन्हीं वर्त्तमान वा पूर्वके जिन दुष्कर्मों के कारण जिसके पुत्र नहीं होते वा रहते उन्हीं के कारण उसकी बुद्धि भी कुटिल नीच होती) अथवा जिसका कोई शिष्य न हो जिसको किसी ने गुरु न बनाया हो वा जो किसी का शिष्य न हो किसी का गुरु करना मानना जो अच्छा नहीं समझता ऐसे सभी मनुष्य अच्छे प्रशस्त नहीं होते कुछ न कुछ प्रसिद्धे वा गुप्त बड़े दोष अवश्य उनमें होते हैं इस कारण ऐसे लोगों को ब्रह्म विद्या का दान वा उपदेश न करे (यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ) किन्तु जिसकी ईश्वर में सर्वोपरि भक्ति श्रद्धा और ईश्वर के तुल्य गुरु में जिसकी श्रद्धा भक्ति है (एते कथिता ह्यर्थास्तस्य महात्मनः प्रकाशन्ते महात्मनः प्रकाशन्ते) इस उपनिषद्

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में श्वेताश्वतर महर्षि के कहे ये विषय उसी ईश्वर भक्त महाशय के हृदय में प्रकाशित होते उसी महात्मा के हृदय में प्रकाश उत्पन्न करते हैं ॥

भा०—वायु रहित स्थान में रखे हुए जलते दीपक के तुल्य काम क्रोध लोभादि विषयवायु से न डुलाये हुए चित्त से जैसा सूक्ष्म विषय का मर्म पर्यन्त विचार वा बोध हो सकता है वैसा चञ्चल चित्त से कदापि नहीं। इसी कारण जो अशान्त अपुत्र और अशिष्य है वह शास्त्र के मर्म को कदापि नहीं जान सकता। जैसे दुष्ट के सङ्ग से दोष लगते हैं वैसे ही उपदेश वा पढ़ाने आदि में अशान्तादि के सङ्ग से ज्ञानी को दुःख कष्ट वा दोष लगें यह सम्भव है और परिश्रम का व्यर्थ होना भी दोष ही है इसलिये वैसों को विद्यादान करना निषिद्ध किया है। और श्रद्धालु महाशय गम्भीर शान्त सुशील को देना उत्तम है ॥ २३ ॥

इति भीमसेनशर्मनिर्मिते श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्ये षष्ठोऽध्यायो ग्रन्थश्चायं समाप्तः ॥

महर्षि-पाणिनि-प्रज्ञा-अनुसन्धान केन्द्र
तिथी.....
पु०सं०...1657
भारती पुस्तकालय

जय्यैद प्रेस, बल्लीमारान, दिल्ली-११० ००६

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत के प्राचीन मुद्रांक

लेखक—स्वामी ओमानन्द सरस्वती। मू० ५०१ रु०

पुरातत्त्वीय शोध के आधार पर लिखे गये इस मौलिक ग्रन्थ में भारत के प्राचीन प्रसिद्ध नगर कौशाम्बी, अहिच्छत्रा, स्रुघ्न, सुनेत, प्रकृतानाकनगर, रोहीतक आदि से उपलब्ध प्राचीन सैकड़ों मुद्रांक (मोहरों) का सचित्र विवरण प्रकाशित किया है। हिन्दी भाषा में इस विषय का प्रथम और स्तुत्य प्रयास किया गया है। श्री स्वामी जी ने पन्द्रह वर्ष और लाखों रुपये लगाकर यौधेय, वृष्णि, पाञ्चाल आदि गणराज्यों के सेनापति, महासेनापति आदि राज्याधिकारियों के मुद्रांक एकत्र किये हैं। प्राचीन भारत के लुप्त इतिहास के पुनर्लेखन में यह सामग्री अपना बेजोड़ स्थान रखती है। पुस्तक संग्रहणीय और पठनीय है।

भारत के प्राचीन टकसाल

लेखक—स्वामी ओमानन्द सरस्वती। मूल्य २०० रुपये

पुरातत्त्व की विशुद्ध सामग्री के आधार पर प्रस्तुत किये गये इस ऐतिहासिक शोध ग्रन्थ में प्राचीन भारत की मुद्रा निर्माण पद्धति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। इस ग्रन्थ में कार्षापण यौधेय, भारतीय यवन राजा, कुषाण, सामन्तदेव, आदिवाराह मिहिरभोज, गदिया और भारतसासानी आदि विविध प्रकार की स्वर्ण, रजत और ताम्र मुद्राओं के सांचों का सचित्र और विशद वर्णन किया गया है। यह १८ वर्षों के परिश्रम का अद्भुत और मौलिक प्रयास है। ग्रन्थ वस्तुतः पठनीय और संग्रहणीय है।

निर्देशक :

हरयाणा प्रान्तीय पुरातव संग्रहालय

(गुरुकुल झज्जर, रोहतक हरियाणा) दूरभाष ४४

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

1657

हरयाणा प्रान्तीय प्राचीन इतिहास के प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रकाशन

जिस प्रकार प्राचीन मुद्रांङ्कों (मोहरों) और लक्षणस्यान (टकसाल) का इतिहास छपा है; उसी प्रकार हम इतिहास के अनेक अमूल्य ग्रन्थ प्रकाशित कर रहे हैं, जिनकी सूची निम्न प्रकार है:—

१. हरयाणा के प्राचीन अस्त्रशस्त्र।
२. हरयाणा की प्राचीन मुद्रायें (सिक्के) १० भागों में।
३. यौधेय मुद्रायें
४. हरयाणा की प्राचीन मृन्मूर्तियां।
५. हरयाणा की प्राचीन प्रस्तरमूर्तियां।
६. हरयाणा में रामायण का प्राचीन मन्दिर।
७. हरयाणा के प्राचीन दस दुर्ग।
८. हरयाणा के प्राचीन क्षत्रियकुल।
९. हरयाणा की प्राचीन शिल्पकला।
१०. हरयाणा के प्राचीन नगर।

ये सभी ग्रन्थ सचित्र, सुन्दर और बढ़िया कागज पर सजिल्द छपेंगे। जो सज्जन १११) वा अधिक धन देकर सहायता करेंगे, उन दानियों का नाम ग्रन्थों में सचित्र प्रकाशित किया जायेगा।५०००) तथा इससे अधिक राशि दान देने वाले महानुभावों का चित्र और परिचय सधन्यवाद प्रकाशित किया जायेगा। अतः इस महत्वपूर्ण योजना को तन मन और धन से पूर्ण सहयोग देकर सफल बनायें।

इस प्रकार ये इतिहास के प्रामाणिक बड़े-बड़े ग्रन्थ शीघ्रातिशीघ्र पाठकों को भेंट करना चाहते हैं। मेरा मुख्य कार्य शेष जीवन में यही रहेगा, किन्तु इतिहास प्रमियों के पूर्ण सहयोग के बिना यह कठिन कार्य पूर्ण नहीं हो सकेगा।

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.